सागर-विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों का अनुशीलन

(१६००—१६६३)

ब्रजभूषण सिंह 'आदर्श'

•



रचना प्रकाशन

४५ ए, खुल्दाबाद

इलाहाबाद-१

©
प्रथम संस्करण १९७०

प्रकाशक
जीत मल्होत्रा
रचना प्रकाशन
इलाहाबाद-१

मुद्रक
राधा मुद्रणालय
२००, भारती भवन
इलाहाबाद-३

मूल्य
पैंतीस रुपये

आमुख

वर्तमान जनतान्त्रिक युग के हिन्दी साहित्यिक जगत् मे उपन्यास वस्तुतः साहित्यिक विधा के रूप मे शीर्ष स्थान प्राप्त कर सका है अतएव हम कह सकते हैं कि उपन्यास अपने साहित्यिक क्षेत्र मे यथार्थ जनतान्त्रिक विधा है, जिसमें आधुनिक जीवन की अनेकमुखी विविधता, जटिलता और विशदता का समावेश उसके जनतान्त्रिक रूप का ही द्योतक है। उसमे ससार के समस्त क्रिया कलाप और मनुष्य की सामाजिक-राजनीतिक, आर्थिक और नैतिक समस्याओ का व्यापक एव सशक्त प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है। सच तो यह है कि मानव-जीवन की व्यापकता ही उपन्यास की व्यापकता बन गयी है। गद्यात्मक साहित्य विधा होने के कारण उसका अभिव्यक्ति-क्षेत्र असीम है तथा वह अनेक नयी प्रविधियो को समयानुसार विकसित करता हुआ मानव और समाज की प्रत्येक समस्या एव उत्थान के साथ चरण मिलाते हुए उत्तरोत्तर प्रगतिशील है। शायद यही उसकी विशिष्ट लोकप्रियता का कारण भी है।

सर्वाधिक लोकप्रिय विधा होने पर भी आलोचकों ने अभी उसे अपेक्षित मान्यतापूर्ण दृष्टि से देखने का अपेक्षित प्रयास नहीं किया है। यह प्रवृत्ति केवल हिन्दी के ही आलोचकों मे है, ऐसा नहीं कहा जा सकता, यूरोप मे भी दीर्घकाल तक उपन्यास की महत्ता स्वीकार नही की गयी थी। उपन्यास लेखक बनना तो दूर रहा, लोग उपन्यास-पाठक भी कहलाना पसन्द नहीं करते थे। जैसा कि टामस मैकाले के शब्दों से स्पष्ट होता है :

"A novel reader—a commodious name, invented by ignorance and applied by envy in the same manner as men without learning call a scholar a pedant and men without principle call a christian a methodist."

किन्तु समय के परिवर्तन के साथ अब वही उपन्यास जीवन की व्याख्या का समर्थ माध्यम माना जाने लगा है। इतना ही नहीं, अपने जनतन्त्रीय किन्तु कलात्मक रूप में वह साहित्य के सर्वाधिक नोबुल पुरस्कार प्राप्त कर एक नया कीर्तिमान भी स्थापित कर सका है। उपन्यास के प्रभेद-विस्तार के इस युग मे उपन्यास भले ही कैसा भी रूप क्यों न ग्रहण कर ले, किन्तु उसका साफल्य मानव-जीवन की व्याख्या मे ही नीहित है। उसका ध्येय केवल जीवन के वास्तविक स्वरूप का प्रतिबिम्ब ही प्रस्तुत करना नहीं होता, अपितु वह जीवन को परिवर्तित कर मानव की उन्नततम आकृति का दिग्दर्शन कराता है। मानव-जीवन की विभिन्न परिस्थितियो मे प्रतिक्रियात्मक सम्भावना का

साहित्य पर प्रकाशित दो तीन अन्य ग्रंथो मे भी समाजवादी यथार्थवादी उपन्यासो का मूल्याकन किया गया है, जो इने गिने पृष्ठो तक ही सीमित है। सक्षेप मे कहा जा सकता है कि एकाध दर्जन उपन्यासो का जो उल्लेख यत्र-तत्र मिलता है, वह दाल मे नमक जैसा ही है। फलत निवेदित विषय की महत्ता और नवीनता अधिक व्यापक अध्ययन अन्वेषण की अपेक्षा कर रही थी।

इसम सन्देह नही कि राजनीतिक उपन्यासो की हिन्दी मे एक सुनिश्चित परम्परा है और उसे आधार बनाकर भारतीय राजनीति के परिप्रेक्ष मे वैज्ञानिक पद्धति से उसका विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जा सकता है। साहित्य का यह गुण है कि वह एक ओर जहाँ बाह्य परिस्थितियो से प्रभाव ग्रहण करता है, वहीं दूसरी ओर बाह्य परिस्थितियो के निर्माण मे सहयोगी भी होता है। कहना न होगा कि वर्तमान शताब्दी ने मानव-जीवन को नयी दृष्टि प्रदान की है और साहित्य मे—विशेषत उपन्यास मे उसका गहरा सकेत है, जिसकी उपेक्षा किसी भी दृष्टि से असम्भव है। इन्ही अनेक दृष्टियो से आधुनिक हिन्दी उपन्यास के सम्बन्ध म हमने उनका विवेच्य-काल सन् १९०० से १९६३ ई० निश्चित किया है। इसमे हमारा मूल उद्देश्य था कि हम समानान्तर रूप से विकसित भारतीय राजनीति और हिन्दी उपन्यास के विकास को उसके समग्र रूप म देख सकें। यह एक सयोग ही कहा जायेगा कि भारतीय राजनीति और हिन्दी उपन्यास का विकास समानान्तर एव समान गति से हुआ है। भारतीय राजनीति का जहाँ एक पक्ष राजनीतिक स्वतत्रता की प्राप्ति था, वहीं उसकी प्राप्ति के मार्क्सवादी, गाँधीवादी मार्ग भी थे, साथ ही साम्प्रदायिक, सामाजिक आदि अनेको विघ्नकारी समस्याएँ भी थी। स्वातत्र्योत्तर भारतीय शासन पद्धति की स्थापना की समस्या भी थी। अनेक समस्याएँ भारतीय उपन्यास की अपनी समस्याएँ रही हैं, अत एव विवेचनात्मक दृष्टिकोण से हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासो को दो वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है -वादसापेक्ष और वादनिरपेक्ष। इसके अतिरिक्त हम उन्हे राजनीतिक एव अशत: राजनीतिक रूप मे भी देख सकते हैं। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध मे मूल्याकन के समय इन्ही आधारो को मान्यता देकर राजनीतिक प्रतिमानो को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है। उपन्यास के प्रभेद विस्तार से हम उसके राजनीतिक स्वरूप के कारण भले ही उसे राजनीतिक उपन्यास की सज्ञा दे दें, किन्तु इससे उपन्यास के तत्व एव रूप विधान मे किसी प्रकार का अन्तर नही होता है। राजनीतिक उपन्यास म राजनीतिक दृष्टि होने पर भी उसका उत्कर्ष भी उन्हीं तत्वो पर आधारित होता है, जो उपन्यास के मूलभूत आधार होते हैं। अत. राजनीतिक उपन्यासो की सफलता अथवा असफलता के मूल्याकन की आधार-पीठिका भी यही तत्व हो सकते हैं।

शोध विषय से सम्बन्धित प्रस्तुत प्रबन्ध का प्रथम अध्याय भूमिका और विषय

प्रवर्तन है। इसके अन्तर्गत उपन्यास की व्युत्पत्ति तथा आधुनिक, पाश्चात्य और भारतीय समीक्षकों के उपन्यास सम्बन्धी विचारों का आश्रय लेते हुए राजनीतिक उपन्यास की समन्वित परिभाषा बनाने का प्रयास किया है। उपन्यास के स्वरूप, मूल तत्त्व, भेदोपभेद आदि से सम्बन्धित सैद्धान्तिक विवेचन के साथ राजनीतिक उपन्यास की व्याप्ति और प्रन्वयिता का निरूपण भी किया गया है। स्वरूप-निर्देशन में मौलिक उद्भावना है, क्योंकि राजनीतिक उपन्यास की अभी तक कोई निश्चित परिभाषा हिन्दी में नहीं है।

द्वितीय अध्याय में भारतीय राजनीति के क्रमिक विकास का तटस्थ विवरण देने का प्रयत्न है। इसमें सन् १९०० से वर्तमान समय तक की राजनीतिक घटनाओं और परिस्थितियों का राजनीतिक उपन्यासों को युगीन यथार्थ स्थिति में समझने में सुविधा के विचार से निष्पक्ष आलेखन है। बिना इसके उपन्यासों का अनुशीलन सम्भव नहीं था।

तृतीय अध्याय में प्रेमचन्द पूर्व-युग के हिन्दी उपन्यासों में राजनीतिक तत्वों को ढूंढने का प्रयत्न है। इसमें यह तथ्य भी स्पष्ट किया गया है कि जिस प्रकार भारतीय राजनीति ने सुधारवादी सामाजिक आन्दोलनों से अपना मार्ग प्रशस्त किया है, उसी के अनुरूप हिन्दी के राजनीतिक उपन्यास भी सामाजिक उपन्यासों के मध्य से आगे आये हैं। यही कारण है कि अंशत राजनीतिक उपन्यासों में दोनों का सम्मिश्रण हो गया है। हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यासों में राजनीतिक पक्ष का अनुशीलन कर आगे सन् १९२० से १९६३ तक के राजनीतिक उपन्यासों के क्रमिक विकास का संक्षेप में आलेखन है। इसके पूर्व हिन्दी साहित्य में किसी ने भी राजनीतिक उपन्यासों की सुव्यवस्थित परम्परा का निर्देशन नहीं किया है, अतः इस दृष्टि से यह मौलिक प्रयास ही कहा जायगा।

चतुर्थ अध्याय में हिन्दी के प्रथम राजनीतिक उपन्यासकार प्रेमचन्द के व्यक्तित्व का उद्घाटन करते हुए उनके राजनीतिक एवं अंशत राजनीतिक उपन्यासों का समसामयिक राजनीतिक परिस्थिति में अध्ययन है। इसके पूर्व प्रेमचन्द के उपन्यासों का जो अध्ययन विद्वानों ने किया है, वह उनके सामाजिक, समस्या-प्रधान, मानवतावादी स्वरूप को व्यक्त करता है। रामदीन गुप्त ने गांधीवाद के परिप्रेक्ष्य में उनके कथा-साहित्य का जो अनुशीलन किया है, वह भी वाद विशेष से सम्बद्ध होने के कारण एकांगी हो गया है। इस अध्याय में प्रेमचन्द के उपन्यास-साहित्य का भारतीय राजनीति के परिवेश में अध्ययन के कारण उसका व्यापक स्वरूप सामने आया है। कुछ आलोचकों ने भ्रमवश जासूसी उपन्यास धारा में आतंकवादी राष्ट्रवादी धारा को प्रेमचन्द-पूर्व-युग की प्रवृत्ति माना है। श्री दुर्गाप्रसाद खत्री से पत्र व्यवहार करने पर मुझे ज्ञात हुआ कि

उनके 'रक्त-मंडल' (चार भाग) और 'सफेद शैतान' (चार भाग) का रचना-काल सन् १९२८ से १९३७ तक का है। इससे ये प्रेमचन्दयुगीन कृतियों के रूप में उन आलोचकों के मत का खण्डन करती हैं। प्रेमचन्द के गांधीवादी दृष्टिकोण के समानान्तर दुर्गाप्रसाद खत्री के जासूसी उपन्यासों की आतंकवादी राष्ट्रवादी धारा युगानुरूप ही है। अत. इस अध्याय में खत्री जी के इस राजनीतिक वैशिष्ट्य का भी मूल्यांकन किया गया है।

पंचम अध्याय में प्राक् स्वाधीनता युगीन प्रमुख राजनीतिक उपन्यासकारों के समस्त राजनीतिक उपन्यासों का विस्तृत अध्ययन और अनुशीलन किया गया है। अध्याय के प्रारम्भ में सन् १९३६ से १९४७ ई० तक की राजनीतिक स्थिति पर प्रकाश डालते हुए यशपाल, अंचल और रांगेय राघव के उपन्यासों का विशेष मूल्यांकन किया गया है।

छठवें अध्याय में प्राक् स्वाधीनता-युग के उन उपन्यासकारों के उपन्यासों की विवेचना की गयी है, जिसमें राजनीतिक प्रासंगिक चर्चा समन्वित है। इसके अन्तर्गत जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी और अज्ञेय के राजनीतिक एवं अंशतः राजनीतिक उपन्यासों का मूल्यांकन है। यह 'त्रयी' हिन्दी में 'मनोविश्लेषणवादी उपन्यासकार' के रूप में ही अधिक प्रतिष्ठित है और इस पूर्वाग्रह के कारण उनके उपन्यासों का राजनीतिक स्वरूप सम्मुख न आ सका था। प्रस्तुत अध्याय में प्रथम बार उनके उपन्यासों में राजनीतिक तत्वों का विशद् अध्ययन किया गया है। साथ ही प्राक् स्वाधीनता-युगीन राजनीतिक उपन्यासों की उपलब्धियों अभावों का संक्षिप्त आलेख भी है।

सातवें अध्याय में स्वातंत्र्योत्तर काल के प्रमुख राजनीतिक उपन्यासकारों और उनके उपन्यासों की विस्तृत चर्चा है। अनेक विद्वानों का मत है कि हिन्दी में राजनीतिक उपन्यासों की कोई सुव्यवस्थित परम्परा नहीं है। शोध प्रबन्ध के चतुर्थ, पंचम, षष्ठ, सप्तम, अष्टम अध्याय में किये गये राजनीतिक उपन्यासों के मूल्यांकन से उनके भ्रम का निःसन्देह उन्मूलन हो जायेगा। प्रस्तुत अध्याय के विस्तृत कलेवर में ही ५० से अधिक राजनीतिक उपन्यासों की विवेचना इस तथ्य को पुष्ट करती है कि हिन्दी में राजनीतिक उपन्यासों की अटूट शृंखला है। फलत. असहयोग आन्दोलन से चीनी आक्रमण तक की समस्त राजनीतिक घटनाएँ एवं विचार-धाराएँ इनमें स्थान पा सकी हैं।

आलोच्य अध्याय में आचार्य चतुरसेन, वृन्दावनलाल वर्मा, मन्मथनाथ गुप्त, गुरुदत्त आदि के राजनीतिक उपन्यासों की विस्तृत विवेचना प्रथम बार इस शोध प्रबन्ध में ही की गयी है।

आठवें अध्याय में उन स्वतंत्र्योत्तरकालीन उपन्यासों का अनुशीलन है, जो आंचलिकता के क्रोड में राजनीति को प्रस्फुटित करते हैं। इसमें नागार्जुन, रेणु, भैरव-

प्रसाद गुप्त आदि उपन्यासकार है जो मूलतः आंचलिक उपन्यासकार के रूप मे जाने जाते हैं, यद्यपि उनके इन उपन्यासों का मूल स्वर राजनीतिक ही है, जिसका स्पष्टीकरण यहाँ हुआ है। अध्याय के प्रारम्भ मे आंचलिकता का राजनीतिक स्वरूप भी स्पष्ट किया गया है।

नवम् अध्याय मे राजनीतिक उपन्यासो का औपन्यासिक तत्वो के आधार पर उसकी युगान्तरकारी उपलब्धियो और प्रभावो का आकलन करते हुए उनके स्वरूप का निरूपण है।

दसवें अध्याय मे विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओ और सिद्धातो के परिवेश मे राजनीतिक उपन्यासो मे अनेक प्रभावो का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

ग्यारहवें अन्तिम अध्याय में राजनीतिक उपन्यासो के वैचारिक एवं साहित्यिक प्रदेय तथा भविष्य की सम्भावना पर विचार व्यक्त किया गया है।

इस तरह प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का विषय भारतीय राजनीति, विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओ और उपन्यास-साहित्य के 'संगम' के रूप मे विविधमुखी और व्यापक है। इन पर समग्ररूप से विचार करने के लिए आलोच्य विषय तथा कालावधि की सामयिक राजनीति एव साहित्य की गहन, सूक्ष्म एव तटस्थ दृष्टि आवश्यक थी और इसका यथासम्भव पालन किया गया है।

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यास प्रारम्भिक अवस्था से ही विशिष्टता लिए हुए हैं। राजनीतिक ज्ञानवृत्ति और राष्ट्रीय भावना के क्षेत्र मे उनके महत्वपूर्ण योगदान को देखकर हम निस्संकोच कह सकते है कि लोकतान्त्रिक समाजवाद की लक्ष्य प्राप्ति में भावी राजनीतिक उपन्यास निर्माणकारी भूमिका का निर्वाह करेंगे। किन्तु इतना होते पर भी हम कहना चाहेंगे कि सामयिक घटनाओं के चित्रण अथवा राजनीतिक सिद्धांतों के प्रचारवादी ध्येय से उपन्यास के साहित्यिक मूल्य मे वृद्धि नहीं होती। हम यह मानते हैं कि जीवन के उन्नयन मे सहायक हर प्रवृत्ति अच्छी है, किन्तु उसकी सार्थकता आदर्श के व्यापक परिवेश में ही है। साहित्य का उद्देश्य राजनीति जैसा सकुचित नही होता। सम्भवतः इसीलिए माखनलाल चतुर्वेदी ने 'उपन्यास तत्व एव रूप-विधान' की प्रस्तावना में लिखा है - "घटनाएँ बिम्ब बनाती हैं, वे इतिहास के काम आ सकती हैं। उन घटनाओ मे समय के आर-पार देखने की ताकत भी है। किन्तु प्रथम दिन राजनीति और दूसरे दिन इतिहास कहलाने वाली घटनाओ मे जितनी मर कर जीने की क्षमता है, उतनी कदाचित् जीवित रहने की क्षमता नहीं। इसीलिए ससार के प्रतिभाशालियों को घटनाओं के बिम्ब का प्रतिबिम्ब उपस्थित करना पड़ा।" वस्तुतः उपन्यास की सार्थकता भी इसी मे है।

प्रस्तुत प्रबन्ध आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी जी के निरीक्षण निर्देशन मे

हुआ है, जो हिन्दी साहित्य के मर्मज्ञ विचारक एवं अधिकृत विद्वान् हैं। मेरी दृष्टि में तो पंडित जी आलोचना-साहित्य के पारसमणि है, जो अपने स्पर्श से लौह को स्वर्ण बनाने की क्षमता से युक्त हैं। इसका अनुभव मुझे तब हुआ, जब मैं स्थानीय साहित्यिक मित्रों के साथ उनके दर्शन को गया और शोध-कार्य की दीक्षा लेकर लौटा। और फिर जनसम्पर्क अधिकारी और शोध छात्र दोनों का कार्य साथ-साथ चलने लगा। यह पंडित जी के व्यक्तित्व का प्रभाव है कि दिन को 'शासकीय सेवक' और रात्रि को 'सरस्वती-साधक' बन मैं वर्षों एकनिष्ठ भाव से शोध कार्य हेतु धैर्य-शक्ति सँजो सका। इस साधना में जो प्राप्त कर सका, उसका श्रेय वस्तुतः श्रद्धेय वाजपेयी जी के कुशल निर्देशन को ही है।

अपने इस शोध कार्य में मुझे जिन आत्मीय जनों से विशेष रूप से डॉ० रामकुमार सिंह 'कुमार' से जो सक्रिय सहयोग मिला, उनका भी मैं हृदय से आभारी हूँ।

ब्रजभूषण सिंह 'आदर्श'

सागर,
जन्माष्टमी,
३० अगस्त, १९६४

अनुक्रमणिका

० ० ०

हिन्दी के
राजनीतिक उपन्यासों का अनुशीलन

अध्याय १

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों का स्वरूप संस्थापन

> उपन्यास : शब्द व्युत्पत्ति

> भारतीय तथा पाश्चात्य मत

> उपन्यास का पारिभाषिक स्वरूप

> उपन्यास के मूल तत्त्व

> औपन्यासिक विभेदों के आधार

> कथा वस्तु

> कथानक में कल्पना का स्थान

> शैलीगत प्रभेद

> वर्ण्य वस्तु के आधार पर उपन्यासों का वर्गीकरण

> वर्ण्यवस्तु और पात्र

> पात्रों का वर्गीकरण

> निष्कर्ष

> समाज और राजनीति का पारस्परिक सम्बन्ध

> राजनीतिक उपन्यास : नूतन क्षितिज

> राजनीतिक उपन्यासों में युगीन समस्याएँ

> राजनीतिक उपन्यासों की व्याप्ति और सीमा

> राजनीतिक उपन्यासों का स्वरूप संस्थापन

> राजनीतिक एवं ऐतिहासिक उपन्यासों की पार्थक्य रेखा

उपन्यास शब्द व्युत्पत्ति

उपन्यास वर्तमान युग की देन है जो गद्य-साहित्य का कलात्मक एवं कल्पनात्मक रूप है, जिसका आधार कथा है। 'उपन्यास' शब्द संस्कृत भाषा का है, किन्तु प्राचीन संस्कृत साहित्य में इसका प्रयोग उस अर्थ में कभी नहीं हुआ, जिसमें वह आज व्यवहृत किया जाता है। उपन्यासकार प० किशोरीलाल गोस्वामी ने 'प्रणयिनी परिणय' के 'उपोद्घात' में उपन्यास के सम्बन्ध में मत व्यक्त करते हुए लिखा है कि 'जिस प्रकार साहित्य के प्रधान अंगों में 'नाटक' का प्रचार प्रथम यहाँ ही हुआ था, उसी तरह 'उपन्यास' की सृष्टि भी प्रथम यहाँ ही हुई थी यह अयौक्तिक नहीं है, परन्तु किसी-किसी महाशय का यह कथन है कि 'उपन्यास' पूर्व समय में यहाँ प्रचलित नहीं था, वरन् यह अंग्रेजों की देखा-देखी लोगों ने 'नोवेल के स्थान में उपन्यास की कल्पना कर ली है इत्यादि। परन्तु उन महात्माओं को प्रथम इसकी मीमांसा कर लेनी चाहिए, क्योंकि 'उपन्यास' उप-नी उपसर्ग पूर्वक आस धातु इन शब्दों से बना है यथा उप (समीप) नी (उपन्यास) आस (रचना) अर्थात् इसकी रचना उत्तरोत्तर आश्चर्यजनक एवं कुछ छिपी हुई कथा क्रमशः समाप्ति में स्फुटित हो और अमरकार भी 'उपन्यासस्तु वाङ्मुखम्' अर्थात् वाङमुखी वाचा यह अर्थ उपन्यास के तात्पर्य से ही घटता है, इत्यादि प्रमाणों से उपन्यास भी प्राचीन काल से भारतवर्ष में प्रचलित है और 'दशकुमार चरित्र' 'वासवदत्ता' 'श्री हर्ष चरित्' 'कादम्बरी' आदि उपन्यास इसकी प्राचीनता में जाज्वल्यमान प्रमाण हैं[1]।'

भारतीय तथा पाश्चात्य मत

इस अभिधान के उद्भावक की सूझ की प्रशंसा डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी यों की है—'उपन्यास वस्तुतः ही 'नवल' अर्थात् नया और ताजा साहित्यांग है, परन्तु फिर भी जिस मेधावी ने कथा, आख्यायिका आदि शब्दों को छोड़कर अंग्रेजी 'नावेल' का प्रतिशब्द उपन्यास माना था उसकी सूझ की प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जाता। जहाँ उसने इस नये शब्द के प्रयोग से यह सूचित किया कि यह साहित्यांग पुरानी कथाओं और आख्यायिकाओं से भिन्न जाति का है वहीं इसके शब्दार्थ के द्वारा (उप = निकट, न्यास = रखना) यह भी सूचित किया कि इस विशेष साहित्यांश के द्वारा ग्रन्थकार पाठक के निकट अपने मन की कोई विशेष बात, कोई अभिनव मत रखना चाहता है। इस

---

१ किशोरीलाल गोस्वामी : प्रणयिनी परिणय, उपोद्घात, पृष्ठ १

लिए यद्यपि यह शब्द पुरानी परम्परा के अनुकूल नहीं पड़ता, तथापि उसका प्रयोग उपन्यास की विशिष्ट प्रकृति के साथ बिलकुल बेमेल नहीं कहा जा सकता[१]।"

आलोचक गुलाब राय जी की भी मान्यता है कि अंग्रेजी शब्द नाविल (Novel) में, जिसका अर्थ नवीन है, ऊपर की कहानी का तत्व भरा हुआ है। मराठी भाषा में अंग्रेजी शब्द के आधार पर 'नवल कथा' शब्द गढ़ लिया गया है। मराठी में उपन्यास को 'कादम्बरी' भी कहते हैं। यह एक व्यक्तिवाचक नाम जातिवाचक बनाने का अच्छा उदाहरण है। उपन्यास शब्द प्राचीन नहीं है, कम से कम उस अर्थ में, जिसका आजकल व्यवहार होता है। संस्कृत लक्षण ग्रन्थों में 'उपन्यास' शब्द है। यह नाटक की संधियों का एक उपभेद है (प्रतिमुख संधि का) इसकी दो प्रकार से व्याख्या की गई है। 'उपन्यास प्रसादनम्' अर्थात् प्रसन्न करने को उपन्यास कहते हैं। दूसरी व्याख्या इस प्रकार है 'उपपत्ति कृतो ह्यर्थ उपन्यास प्रकीर्तित' अर्थात् किसी अर्थ को युक्तियुक्त के रूप में उपस्थित करना उपन्यास कहलाता है। सम्भव है कि उपन्यासों में प्रसन्नता देने की शक्ति तथा युक्तियुक्त रूप में अर्थ को उपस्थित करने की प्रवृत्ति के कारण इस तरह की कथात्मक रचनाओं का नाम उपन्यास पड़ा हो, किन्तु वास्तव में नाटक साहित्य के उपन्यास शब्द और आजकल के उपन्यास में नाम का ही साम्य है। उपन्यास का शब्दार्थ है, सामने रखना[२]।

उपरोक्त कथनों से यह स्पष्ट हो जाता है कि उपन्यास अंग्रेजी के नावेल का पर्यायवाची है। अंग्रेजी 'नावेल' शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन नोवस या नोवेलस तथा फ्रेन्च नोवो से है, जो संस्कृत के 'नव' के विकसित रूप ज्ञात होते हैं। नावेल का अर्थ नया, असाधारण या विचित्र है और जिस कहानी में नया, कल्पित तथा रोमांचकारी विवरण हो उसे नावेल कहते हैं[३]।

जोसेफ टी शिप्ले का कथन है कि नाविल इटालियन 'नूवेला' से निकला हुआ है और मोटे रूप में समाचार का समकक्ष है, वह एक नये प्रकार की चुटकुलों से भरी हुई एक ऐसी कथा का संकेत करता है जो आसन्नकालीन और सत्य दोनों है[४]।

हिन्दी में नावेल के लिए उपन्यास नामकरण के सम्बन्ध में बाबू ब्रजरत्न दास का मत विचारणीय है। उनके अनुसार हिन्दी में या भारतीय भाषाओं में जब पाश्चात्य

१ पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी का लेख, 'साहित्य-संदेश', उपन्यास अंक, अक्टूबर-नवम्बर, १९४०, पृष्ठ ४२

२. गुलाब राय, काव्य के रूप, पृष्ठ १६५

३ ब्रजरत्नदास : हिन्दी उपन्यास साहित्य, पृष्ठ ९

४ जोसेफ टी शिप्ले, डिक्शनरी ऑव वर्ल्ड लिटरेचर

प्रभाव के कारण वहाँ की सी कहानियाँ लिखी जाने लगीं तब उसके लिए नामकरण करने की आवश्यकता पड़ी। नामकरण इस प्रकार किया गया। संस्कृत में न्यास (नि + अस) शब्द के कई अर्थ हैं—धरोहर, थाती, सौंपना, मन्त्रों से अंग-प्रत्यङ्ग देवताओं को सौंपना, त्यागना, मानसिक सन्तोष आदि। उपन्यास (उप-न्यास) के अर्थ भी धरोहर, थाती, प्रोत्स, उपक्रम, मनेन आदि हैं और इसमें बड़ी कहानी का भावार्थ ग्रहण किया जाता है। हिन्दी में भारतेन्दु काल में नवन्यास शब्द भी इस अर्थ में दो एक सज्जनों ने प्रयुक्त किया था। नव शब्द का अर्थ नया, नौ संख्या, प्रशंसा बनावटी, प्रशस्त, उत्सव आदि है और इसी में न्यास शब्द का संयोग कर यह शब्द बना लिया गया था, पर इसका प्रचार नहीं हुआ। बंगला में रोमान्स के लिए इसी प्रकार रमन्यास शब्द बना पर वह भी नहीं चला। नावेल शब्द से मिलता-जुलता नवल शब्द भी बंकिम बाबू के समय प्रयुक्त हुआ था और उपन्यासकार के बदले नवल कथाकार या नवलकार का भी उपयोग किया गया था पर ये शब्द उसी समय अप्रयुक्त हो गये। अब केवल उपन्यास शब्द ही विशेष प्रचलित है[1]।

उपन्यास का पारिभाषिक स्वरूप

'उपन्यास' शब्द की व्युत्पत्ति और उसकी मीमांसा उसकी परिभाषा निर्धारित करने में अत्यन्त सहायक सिद्ध हुई है। उसके शब्दार्थ में पाठकों के निकट मन की विशेष बात या अभिनव मत युक्ति-युक्ति रूप में रखने का जो भाव निहित है उससे उपन्यास की परिभाषा को दिशा निर्देश मिला है।

यों उपन्यास शब्द के सदृश ही उपन्यास की परिभाषा के सम्बन्ध में भी अनेक मत हैं। स्काट जेम्स का मत है कि 'उपन्यास एक कला है, क्योंकि उससे एक ऐसी वस्तु का प्रदर्शन होता है, जिसे कलाकार जीवन अथवा जीवन के सत्य के रूप में भी स्वीकार करता है और इसीलिए कि इन तत्वों को एक ग्राह्य शक्ति से समन्वित करके ग्राह्य रूप में सप्रथित करता है तथा इस तथ्य के लिए हमें प्रेरित करता है कि जो उसने देखा है वह हम देख सकें और उससे आनन्द प्राप्त करें[2]।' वाल्टर एस० कैंपबैल के अनुसार 'उपन्यास एक लम्बी गद्य वर्णना है, जिसमें मानव चरित्र का उद्घाटन होता है। मानव चरित्र विविध रूपों में हमारे समक्ष आता है।[3] हिन्दी के उपन्यास-सम्राट प्रेमचन्द ने भी उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र माना है। उन्होंने लिखा है

१. ब्रजरत्नदास : हिन्दी उपन्यास साहित्य, पृष्ठ ६–१०
२ स्काट जेम्स : द मेकिंग आव द लिटरेचर, पृष्ठ ३५१–५६
३ वाल्टर एस० कम्पबेल : द कम्पलीट नावल, पृष्ठ १३६

कि 'मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र-मात्र समझता हूं। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है[1]। राल्फ फाक्स भी उपन्यास को मानव जीवन का गद्य मानते है। उनके अनुसार 'उपन्यास गद्य मे लिखी गई कथामात्र नहीं है, वह मनुष्य के जीवन का गद्य है। उपन्यास वह प्रथम कला रूप है जो समग्र मनुष्य को समझने और अभिव्यक्त करने का प्रयास करता है। • • यथार्थ की एक दूसरी ही दृष्टि उपन्यास प्रस्तुत करता है। काव्य, नाटक, सिनेमा, चित्रकला या संगीत द्वारा प्रस्तुत यथार्थ से निश्चय ही उपन्यास का यथार्थ भिन्न है। ये सब यथार्थ के उन पहलुओं को भले ही व्यक्त कर सकें जो उपन्यास की पहुँच के बाहर है, परन्तु किसी एक पुरुष, स्त्री या बच्चे का सम्पूर्ण जीवन भली प्रकार अंकित कर सकने मे इनमें से कोई भी समर्थ नहीं[2]।'

'उपन्यास एक ऐसी कृति है, जिसमें मनुष्य की सबसे बड़ी शक्तियाँ प्रदर्शित होती हैं, जिनमें मानवीय प्रकृति का अत्यन्त गम्भीर ज्ञान, उसकी विविधता के सुखद निरूपण, प्रत्युतपन्न मति और विनोद के सुन्दरतम उन्मेष, उत्तम चुनी हुई भाषा में जगत के समक्ष प्रस्तुत किये गये हैं[3]।' बास ने भी उपन्यास को 'वास्तविक जीवन का यथार्थवादी विधि से अंकित करने वाला' निरूपित किया है तथा जेम्स ने लिखा है कि 'उपन्यास एक सजीव वस्तु है। वह पूर्ण और अखण्ड है। किसी अन्य जीव के समान जिस अनुपात में उसमें सजीवता है, उस अनुपात तक मेरे विचार से यह पाया जायगा कि प्रत्येक भाग में दूसरे भागो का भी कुछ अंश है।' इस संदर्भ में क्लारारीव का मत भी द्रष्टव्य है। 'प्रोग्रेस आफ रोमान्स' में वे लिखते हैं कि 'उपन्यास यथार्थ जीवन और व्यवहार का तथा उस काल का जिसमें वह लिखा गया है, एक चित्र है।'

मार्क्सवाद के रूप में प्रचलन के उपरान्त क्रांति की प्रेरणा रूसी साहित्य का दायित्व माना जाने लगा। इसका प्रभाव अन्य देशों की भाषाओं के साहित्य पर भी पड़ा। फिलिप हेण्डर्सन ने उपन्यासकार के इस राजनीतिक दायित्व की ओर इंगित किया है[4]। हावर्ड फास्ट ने भी यह स्वीकार किया है कि उपन्यासकारों को जन क्रान्ति की प्रेरणा देने वाले उपन्यासों की रचना में सहयोग देना

१ प्रेमचन्द : साहित्य का उद्देश्य, पृष्ठ ५४
२ राल्फ फाक्स : द नावल एण्ड द पीपुल, पृष्ठ २०
३ एलीनाबेथ ड्रयू : द माडर्न नावेल, पृष्ठ ५
४ हेंडरसन : नावल टु डे पृष्ठ १५

चाहिए क्योंकि यह उसका अनिषेध्य कर्तव्य है[१]। सुप्रसिद्ध रूसी उपन्यासकार गोर्की का भी वचन है मेरे मत मे कलाकार अपने देश का सुपुत्र है, और जो सदों मे अधिक औत्सुक्य और विवेक के साथ देश के लिए काम करता है। वह दूसरो से अच्छी तरह जानता है कि स्वतन्त्रता के बिना संस्कृति और कला का अस्तित्व नहीं है, अत अपने देश की दुर्दशा मे उसकी जनता के हृदय को जगाकर उसमे वीरता का आवेग भरना उसका कर्तव्य है[२]।'

इसमे सन्देह नही कि उपन्यास का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। सम्भवतः इसीलिए उसकी तुलना करते हुए हमिश मिलेश ने लिखा है कि 'उपन्यास उन कीटाणुओं की आंखो के समान है, जिनमे आठ सौ अस्सी कांच हैं और जो उचित रूप से पृथ्वी के दृश्यों की आठ सौ अस्सी चित्रावलियाँ प्रस्तुत करते हैं[३]।' कहा गया है कि 'उपन्यास व्यर्थ बकवास के अतिरिक्त और सब कर सकता है[४]। अर्थात् उपन्यास का अस्तित्व विस्तृत है और वह सब कुछ है।

कहने का तात्पर्य यह कि 'साहित्य क्षेत्र में उपन्यास ही एक ऐसा उपकरण है जिसके द्वारा सामूहिक मानव जीवन अपनी समस्त भावनाओं और चिन्ताओं के साथ सम्पूर्ण रूप से अभिव्यक्त हो सकता है। मानव जीवन के विविध चित्रों को चित्रित करने का जितना अवकाश उपन्यासों में मिलता है उतना अन्य साहित्यिक उपकरणों मे नहीं[५]।'

इस तरह उपन्यास की विभिन्न परिभाषाओं के पीछे हमे जिस प्रधान गुण का संकेत मिलता है, वह है मानव जीवन की व्याख्या। आधुनिक मानव का जीवन राजनीति से बहुत अंशों तक परिचालित एव प्रभावित है। इस रूप मे उसका सामाजिक जीवन सामयिक राजनीति से अपने को पूर्णरूपेण पृथक नहीं कर सकता है। वस्तुत आज के मानव की सामाजिक एव राजनीतिक समस्याएँ एक दूसरे की पूरक हो गई हैं। मानव जीवन की इसी विशाल चित्रपटी पर उपन्यासकार उसके सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक परिवेश का आदर्श एव यथार्थवादी दृष्टिकोण को सत्य व कल्पना के रग बिरंगे परिधान के साथ चित्रित करता है। सम्भवत. उसकी इसी वैशिष्ट्य के कारण उपन्यास को जनतन्त्रीय साहित्यिक विधा कहा गया है।

---

१. हावर्ड फास्ट : लिटरेचर एण्ड रियल्टी पृष्ठ १५
२ मैक्सिम गोर्की लिटरेचर एण्ड लाइफ पृष्ठ १४
३. हैमिश मिलेश फ्रांस पृष्ठ ३१–३२
४. एच० जी० वेल्स : टेन्डेन्सीज आव द माडर्न नावल्स
५ आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : नया साहित्य : नये प्रश्न

उपन्यास के मूल तत्व

उपन्यास साहित्य के विकास के साथ उसके प्रकार भी वृद्धिशील हैं। उपन्यास का वर्गीकरण दो प्रकार से किया गया है—विशेष तत्व के आधार पर या वर्ण्य वस्तु के आधार पर।

पाश्चात्य उपन्यास समीक्षक हडसन ने उपन्यास के मूल तत्वों पर विचार व्यक्त करते हुए लिखा है—"उपन्यास जीवन की प्रतिकृति है। इसलिए उसका सम्बन्ध मानव-व्यापारों, क्रिया-कलापों और घटनाओं से होता है। इसी को उपन्यास की कथावस्तु कहते हैं। इन घटनाओं का विधाता मानवसृष्टि उपन्यास का पात्र कहलाता है। उपन्यास जगत में पात्रों की बातचीत को कथोपकथन कहते हैं। ये जीवन घटनाएं किसी विशिष्ट स्थान पर घटित होती हैं। इस समय और स्थान को ही, परिस्थिति वातावरण अथवा देशकाल कहते हैं। शैली का तत्व भी इसमें आवश्यक है। इन पांच तत्वों की अपेक्षा एक छठा तत्व रहता है। प्रत्येक उपन्यास में लेखक जाने या अनजाने जीवन और उसकी कुछ समस्याओं का उद्घाटन तथा विवेचन करता है।[1] इससे किसी दृष्टि का पता चलता है। यह उपन्यासकार का जीवनदर्शन है।[2]

इस प्रकार हडसन के मतानुसार कथानक, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, समय और स्थान अन्विति, शैली और कथित अथवा निहित जीवन-दर्शन ही किसी उपन्यास सदृश गद्यात्मक कृति के प्रमुख अंग हैं।[3] उपन्यास के उपर्युक्त मूल तत्वों को प्रायः सभी विद्वानों की सहमति प्राप्त है। इन मूल तत्वों के आधार पर उपन्यासों के प्रमुखतः तीन विभेद किये जाते हैं : घटना-प्रधान, चरित्र प्रधान और घटना चरित्र प्रधान तथा नाटकीय।

औपन्यासिक विभेदों के आधार

कथा वस्तु

मूल तत्वों के आधार पर उपन्यास के वर्गीकरण के लिए जिन दो तत्वों का होना अनिवार्य है वे हैं कथावस्तु और पात्र। अन्य तीन तत्व कथोपकथन, देशकाल और शैली इन्हीं दो तत्वों के प्रमुख सहायक होकर उनको गति प्रदान करते हैं।

कथानक उपन्यास की आधारशिला है। 'कथानक ही वह वस्तु होती है, जिस पर उपन्यास का भवन खड़ा होता है। इसीलिए इसे उपन्यास का ढांचा माना जाता

१. शिव नारायण श्रीवास्तव : हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ ८

२. डब्लू० एच० हडसन : एन इन्ट्रोडक्शन टू द स्टडी आव लिटरेचर, पृष्ठ १३०

३. डब्लू० एच० हडसन : एन इन्ट्रोडक्शन टू द स्टडी आव लिटरेचर, पृष्ठ १३१

है। उपन्यास के अन्य तत्व अप्रधान उपकरणों की भांति कार्य करते हैं। इस दृष्टि से इन सब तत्वो में प्रधानत कथानक के योग से ही उपन्यास की रचना होती है।[1] इसी को यो भी कहा जाता है कि 'जिस प्रकार चित्रकार पहले एक ढाचा तैयार करके उसमे तूलिका से रङ्ग भरता है, उसी प्रकार यह उपन्यास का ढाचा है। वस्तु वह मार्ग है जिसपर चलकर पात्र किसी निर्दिष्ट स्थान पर पहुचते हैं।[2] कथानक सत्य के निकट कल्पना के पुट के साथ हो सकता है। वह मौलिक, रोचक और चरित्रों एवं व्यापारों को कार्य-कारण शृंखलाबद्ध करने वाला हो जिससे जीवन सत्यों का महत्व स्पष्टतया उभरे और अभिव्यक्ति अनुभूतियुक्त हो। इसीलिए कहा गया है कि कथानक की सफलता घटनाओ के नियोजन और जीवन की विभिन्नावस्थाओ के कुशलपूर्ण चित्रण पर आधारित होनी है।

कथानक मे कल्पना का स्थान

कथानक मे कल्पना का सम्मिश्रण अनेक विद्वानो ने अनिवार्य माना है। डॉ० रामअवध द्विवेदी का मत है कि 'कथासरिता तो धारा के समान है और उन परिस्थितियो को, जिनके बीच मे से होकर धारा अग्रसर होती है, हम सरिता के किनारो से तुलना कर सकते हैं। उपन्यास मे वैयक्तिक जीवन का निरूपण सामाजिक अथवा जातीय जीवन की पृष्ठभूमि बनाकर होता है, अतएव उसमे यथार्थ के साथ कल्पना का मेल अनिवार्य है।[3] किन्तु कल्पना को आधार-युक्त होना चाहिए। इस सन्दर्भ मे हेनरी जोन्स ने स्पष्ट लिखा है कि 'अगर किसी लेखक की बुद्धि कल्पना कुशल है तो वह सूक्ष्मतम भावो मे जीवन को व्यक्त कर देती है। वह वायु के स्पन्दन को जीवन प्रदान कर सकती है। लेकिन कल्पना के लिये कुछ आधार अवश्य चाहिये। जिस तरुण लेखिका ने कभी सैनिक छावनियां नहीं देखीं उससे यह कहने मे कुछ भी अनौचित्य नहीं कि आप सैनिक जीवन मे हाथ न डालें।[4]

कथावस्तु की दृष्टि से उपन्यास दो श्रेणियो मे वर्गीकृत किये जा सकते हैं—(१) शिथिल या असम्बद्ध कथावस्तु के उपन्यास, (२) सगठित अथवा सम्बद्ध कथा-वस्तु युक्त उपन्यास। शिथिल वस्तु उपन्यासो में घटनाधिक्य से कथानक की एकसूत्रता को आघात पहुँचता है। इसके विपरीत सगठित वस्तु-उपन्यास मे

१. डॉ० शम्भुनारायण टन्डन . हिन्दी उपन्यास का उद्भव और विकास, पृ० ४१
२. ताराशकर पाठक · हिन्दी के सामाजिक उपन्यास, पृ० १२
३ डॉ० राम अवध द्विवेदी : आलोचना, उपन्यास विशेषांक पृ० ३३
४. डॉ० श्यामसुन्दर दास · साहित्यालोचन, पृ० १६२

क्रमबद्धता रहती है पर घटनाओं का स्वतन्त्र महत्व कम हो जाता है। इसमें नायक का महत्व ही विशिष्ट नहीं होता वरन् घटनाओं में एकसूत्रता होती है।

कथानक के भी दो विभेद हो सकते हैं जिन्हें आधिकारिक व प्रासंगिक कहा जाता है। इनमें आधिकारिक कथावस्तु प्रमुख होती है तथा प्रासंगिक कथा-वस्तु का उपयोग उसके सहायतार्थ होना चाहिये। कथानक को मुख्यतः तीन शैलियों में प्रस्तुत किया जा सकता है। डॉ० श्यामसुन्दर दास के मतानुसार "उपन्यासों को कथा कहने के तीन ढंग हैं। पहले में तो उपन्यासकार इतिहासकार का स्थान ग्रहण करके और वर्णनीय कथा से अपने को अलग रखकर अपने वस्तु विधान का क्रमशः उद्घाटन करता हुआ पढ़ने वालों को अपने साथ लिए हुये अन्तिम परिणाम तक पहुँचा कर अपना अभिप्रेत भाव उत्पन्न करता है। दूसरे ढङ्ग में उपन्यासकार नायक का आत्मचरित्र उसके मुँह से अथवा कभी-कभी किसी उपपात्र या गौण पात्र के मुँह से कहलाता है। तीसरा ढङ्ग वह है, जिसमें प्रायः चिट्ठियों आदि के द्वारा कथा का उद्घाटन किया जाता है। तीसरा ढङ्ग बहुत कम और पहला ढङ्ग बहुत अधिक काम में लाया जाता है। पहले ढंग का अनुसरण करने में ग्रन्थकार को अपना कौशल दिखाने का पूरा-पूरा अवसर मिलता है। दूसरे और तीसरे ढंग का अनुसरण करने में उसे कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इनमें से सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि वह अपनी समस्त सामग्री का यथोचित उपयोग नहीं कर सकता।"[1]

शैलीगत प्रभेद

इस प्रकार शैली की दृष्टि से कथानक के जो विभेद हैं वे ये हैं —वर्णनात्मक, आत्मकथात्मक और पत्रात्मक व डायरी शैली।

आत्मकथात्मक शैली में उपन्यासकार नायक नायिका या अन्य किसी पात्र का स्थान ग्रहण कर प्रत्येक घटना चक्र का वर्णन स्वयं करता है जिससे वह केवल उन्हीं बातों का विवरण प्रस्तुत कर सकता है, जिसे उसने अपने, चरित्र के अनुसार स्वयं देखा या अनुभव किया हो। नायक के चरित्र-चित्रण के महत्व की दृष्टि से इस शैली का विशेष स्थान हो सकता है। "नायक के चरित्र चित्रण की दृष्टि से उपन्यास की यह शैली सर्वोच्च है, क्योंकि स्वयं कथा कहने के कारण नायक अपने अन्तस्तल तक की बातों का अत्यन्त प्रभावपूर्ण वर्णन कर सकता है, परन्तु इस शैली में एक दोष है कि नायक के अतिरिक्त अन्य चरित्रों का सुन्दर चित्रण नहीं हो पाता। उसके अतिरिक्त कथा के सौन्दर्य को भी इस शैली से पर्याप्त क्षति होती है। इसमें वर्णनात्मक शैली के उपन्यासों की भांति मनोवैज्ञानिक चित्रण तथा

१. डा० श्यामसुन्दर दास : साहित्यालोचन, पृ० १६२

प्रकृति के सुन्दर चित्र नहीं मिल सकते । साधारणतः यह शैली केवल उन्हीं उपन्यासो के लिए उपयुक्त है जहां केवल एक ही प्रधान चरित्र हो और अन्य सभी चरित्र बहुत साधारण और संख्या मे कम हों।

वर्ण्यवस्तु के आधार पर उपन्यासो का वर्गीकरण

कथानक मे वर्ण्यवस्तु के विचार से उपन्यास के सामाजिक, प्रागैतिहासिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि विभेद किये जाते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार 'उपन्यासो और कहानियो के सामाजिक और ऐतिहासिक ये दो भेद तो बहुत प्रत्यक्ष है ' किन्तु वे ये मानते हैं कि 'कथावस्तु के स्वरूप और लक्ष्य के अनुसार हिन्दी के उपन्यासो में' अन्य भेद भी मिलते है। उनके अनुसार जो भेद दिखलाई देते हैं, वे ये है —

१—घटना-वैचित्र्य प्रधान अर्थात् केवल कुतूहलजनक जैसे जासूसी और वैज्ञानिक, आविष्कारो का चमत्कार दिखानेवाले।

२—मनुष्य के अनेक पारस्परिक सम्बन्धों की मार्मिकता पर प्रधान लक्ष्य रखने वाले।

३—समाज के भिन्न भिन्न वर्गों की परस्पर स्थिति और उनके संस्कार चित्रित करने वाले।

४—अन्तर्वृत्ति अथवा शील वैचित्र्य और उनका विकास क्रम अंकित करने वाले।

५—भिन्न-भिन्न जातियो और मतानुयायियो के बीच मनुष्यता के व्यापक सम्बन्ध पर जोर देने वाले।

६—समाज के पाखण्डपूर्ण कुत्सित पक्षो का उद्घाटन और चित्रण करने वाले।

७—बाह्य और आभ्यन्तर प्रकृति की रमणीयता का समन्वित रूप मे चित्रित करने वाले, सुन्दर और अलकृत पद विन्यास युक्त उपन्यास[1]।

इस सूची से भी शुक्ल जी को सन्तोष नहीं हुआ और सम्भवतः इसी से वे लिखते हैं 'अनुसन्धान और विचार करने पर इसी प्रकार और दृष्टियो से भी कुछ भेद किये जा सकते हैं। सामाजिक और राजनीतिक सुधारो के जो आन्दोलन देश मे चल रहे हैं, उनका आभास भी बहुत से उपन्यासो में मिलता है। प्रवीण उपन्यासकार उनका समावेश और बहुत सी बातो के बीच कौशल के साथ करते हैं[2]।'

---

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास

२ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास

आचार्य शुक्ल के उपरोक्त कथन से केवल यह तात्पर्य लेना चाहिए कि उपन्यास एक लचीला साहित्यांग है और वर्ण्यवस्तु के आधार पर उसके अनेक विभेद किये जा सकते है। कुछ विद्वान इतने विस्तार मे न जाकर वस्तु विवेचन की दृष्टि मे उसे ऐतिहासिक, ऐय्यारी जासूसी, पारिवारिक व सामाजिक विभेदो तक सीमित मानते हैं, जिसे युक्तिसगत नहीं कहा जा सकता।

वस्तुत जीवन की विविधता के अनुरूप कथावस्तु और कथावस्तु के निर्माण तत्वों मे भी एकता मे अनेकता के दर्शन होते है। अपनी रुचि के अनुसार लेखक उसका चयन कर जीवन की गाथा को सुसगठित रूप मे सवारने का प्रयत्न करता है। कथानक उपन्यास का अनिवार्य अग है फिर चाहे वह चरित्र प्रधान हो, भाव प्रमुख हो या नाटकीय।

पूर्व मे कहा जा चुका है कि यही तत्व वर्ण्यवस्तु के आधार पर भी उपन्यास का वर्गीकरण करता है। यह कहा जा सकता है कि कथानक का स्वरूप चाहे कुछ भी क्यो न हो और अभिव्यक्ति के हेतु वह किसी भी शैली को क्यो न अपनाये, वर्ण्यवस्तु के प्रति उसकी एकनिष्ठ भावना आवश्यक है। उपन्यासकार की सफलता इसी मे है कि वह अपने पाठक का तादात्म्य वर्ण्य वस्तु के सत्य से कराकर उसकी विचार प्रक्रिया को गतिशील बनाये। सच तो यह है कि मानवजीवन की व्याख्या करने के कारण उपन्यास का चित्रफलक अत्यन्त व्यापक है। इस रूप मे उसके सीमान्तर्गत जीवन के सभी अगो का समावेश हो जाता है और जिसे वह स्वानुभव से सार्वजनिक बनाता है। यह वर्ण्य वस्तु की विशिष्टता है और इसके आधार पर भी उपन्यासो का वर्गीकरण किया जा सकता है। कथानक के आधार पर श्रीनारायण अग्निहोत्री ने जो पाच वर्ग बनाये हैं वे निम्नानुसार हैं—

(१) ऐतिहासिक तथ्यो को कल्पना की रगीनी के साथ प्रस्तुत करने वाले,

(२) वाद एव प्रचार की दृष्टि से गढे हुए,

(३) अद्भुत वैज्ञानिक तथ्यो से पूर्ण,

(४) वातावरण को प्रमुखता देने वाले, और

(५) मनोविश्लेषण को प्रमुखता देने वाले[१]।

किन्तु शिवनारायण श्रीवास्तव के मतानुसार 'वर्ण्यवस्तु के विचार से धार्मिक सामाजिक, राजनीतिक, प्रागैतिहासिक, ऐतिहासिक, आर्थिक, यौन और प्राकृतिक (प्रकृति का अकन करने वाले) आदि अनेक भेद किये जा सकते है। इन सभी प्रकार के उपन्यासो की प्रधान विशेषताओ का ध्यान रखते हुए इनके मुख्य चार भेद करना

१ श्रीनारायण अग्निहोत्री : उपन्यास तत्व एव रूप विधान, पृष्ठ ३६–३७

सुविधाजनक होगा, यथा घटना प्रधान, चरित्र प्रधान, घटना-चरित्र-सापेक्ष या नाटकीय और ऐतिहासिक[२]। स्पष्ट है कि वे वर्ण्यवस्तु को अपेक्षित महत्व नहीं प्रदान करना चाहते।

इसी प्रकार डा० सुषमा धवन ने अपने शोध प्रबन्ध में उपन्यासों की सामाजिक, व्यक्तिवादी, मनोविश्लेषणवादी, समाजवादी और ऐतिहासिक श्रेणियां ही निर्धारित की हैं। यह वर्गीकरण भी अपूर्ण है क्योंकि उन्होंने राजनीतिक उपन्यासों को समाजवादी कठघरे तक सीमित कर दिया है।

वस्तुतः उपर्युक्त मत इस तथ्य के ही परिचायक हैं कि वर्ण्य-वस्तु के आधार पर उपन्यास अनेक श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है और उनमें से एक आधार राजनीतिक भी हो सकता है। हम कह सकते हैं कि *उद्दिष्ट विषय के विचार से उपन्यास के ये उपभेद अपनी सार्थकता सिद्ध कर सकते हैं।*

वर्ण्य-वस्तु और पात्र

कथा-वस्तु के बाद उपन्यास का प्रमुख तत्व पात्र या चरित्र चित्रण माना जाता है। इस रूप में राजनीतिक वर्ण्य वस्तु के सदृश पात्र भी राजनीतिक दल या सिद्धान्त के कारण राजनीतिक हो सकता है। राजनीतिक पात्र के रूप में स्वभावतः वह राजनीति से सम्बद्ध होकर राजनीति को अभिव्यक्ति देगा। उपन्यासकार का अपना योग भी इसमें कम महत्वपूर्ण नहीं होता। इस संदर्भ में ई० एम० फोरस्टर का कथन दृष्टव्य है। वे कहते हैं कि 'उपन्यास की विशेषता है कि लेखक अपने पात्रों के विषय में बात कर सकता है। उसी प्रकार उनके द्वारा उनकी वार्ता के समय हमारे सुनने का आयोजन भी कर सकता है। वह आत्मश्लाघा को छू सकता है और उस स्तर से गहराई में जाकर उपचेतना का स्पर्श पा सकता है। वह उपचेतना के मंडराते अस्तित्व को सीधे व्यापार में ला सकता है तथा वह इसे स्वागत भाषण से सम्बद्ध कर सकता है। पात्र के गुण-दोषों का लेखा ही उसका चरित्र है। पात्र समाज का एक अंश है जो समाज के गुण-दोषादि से संचालित होता है। उपन्यास का पात्र भी मानवता के नाते इसी उधेड़बुन में पड़ा हुआ एक सांसारिक जीव है। इसका हृदय एक छोटा संसार है जिसमें गुण-दोषादि द्वन्द्वों को हृदय तथा मस्तिष्क रूपी दो चक्की के पाटों में पीस कर चटनी तैयार की जाती है। पात्र के चरित्र में उत्थान-पतन और परिवर्तन करने वाली प्रक्रम् को हम अदृष्ट शृंखला का नाम ही अन्तर्द्वन्द्व है। जो उपन्यासकार इस अन्तर्द्वन्द्व की अभिव्यक्ति जितनी सुन्दरता

---

२ शिवनारायण श्रीवास्तव : हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ ४१६

से करता है वह चरित्र चित्रण की दृष्टि से उतना ही सफल माना जाता है। भले ही उपन्यास के पात्र किसी राजनीति से परिचालित क्यों न हो।

हेनरी जेम्स का कथन है कि—The great source of character creation is ofcourse the novelist's own self Some form of self projection must always take place, of reincarnation in the fictional character विकासोन्मुख चरित्र के माध्यम से ही उपन्यासकार अपने जीवन दर्शन को प्रस्तुत करने मे समर्थ होता है। किन्तु यह होने पर भी जेम्स का कथन है—This is not to say that the novelist often puts people just as they are into his books a thing which his acqaintance seem to fear and hope For life and art are very different things and existance in one is very different from existence in the other सम्भवत यही कारण है कि कुछ पात्र यथार्थता के लक्षणों से युक्त होते हुए भी यथार्थ नहीं होते।

पात्रों का वर्गीकरण

उपन्यास अपनी समग्रता म मानवजाति या समाज का छाया चित्र होता है। इस दृष्टि से उपन्यास के पात्र किसी वर्ग के प्रतिनिधि हो प्रतिनिधित्व कर सकते हैं। W Somerset Maugham का तो कहना है कि—The writer does not copy his originals, he takes what he wants from them, a few originals that have caught his attention a turn of mind that has fir d his imagination, and therefrom constructs his character

इस तरह वे राजनीतिक पात्र भी होते हैं और साधारण पात्र भी किन्तु उपन्यास म उनकी अपनी विशिष्ट भूमिका होती है। वस्तुत पात्र और वर्ण्य-वस्तु अन्योन्याश्रित होते हैं और यह तथ्य राजनीतिक उपन्यासों के लिए भी उतना ही सत्य है जितना किसी भी उपन्यास के लिए।

निष्कर्ष

उपन्यास साहित्य के अध्ययन के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि उसके चरणों के साथ-साथ उसमें रचनागत एवं विषयगत वैभिन्य होता गया है। इस भिन्न भिन्न स्वरूपों क कारण उनका वर्गीकरण किया जाने लगा और उनके प्रकार भेद की व्याख्या की जाने लगी। इस दृष्टि से उपन्यासों का विभाजन पूर्ण नहीं कहा जा सकता क्योंकि

भविष्य में औपन्यासिकों की रचना वृद्धि के अनुसार इसमें परिवर्तन एवं परिवर्धन सम्भाव्य है। कथानक एवं चरित्र-चित्रण के आधार पर औपन्यासिक विभेदों की चर्चा ऊपर की जा चुकी है। मूल रूप से यह कहा जा सकता है कि उपन्यास के वर्गीकरण का मूल धार कोई विशेष तत्त्व अथवा विशेष विषय की प्रधानता ही होता है। प्रत्येक उपन्यास में एकाधिक तत्त्वों का समावेश होता है, किन्तु उनकी पृथक् सत्ता होती है, अपना विशेष सदेश या उद्देश्य होता है। एकाधिक तत्वों के सम्मिश्रण होने से तथा उनका समुचित विश्लेषण न कर पाने से वर्गीकरण में भ्रम उत्पन्न होना स्वाभाविक है।

समाज और राजनीति का पारस्परिक सम्बन्ध

विषय की दृष्टि से देखा जाये तो मानव जीवन को दो प्रवृत्तियाँ ही मुख्यत प्रभावित करती हैं। एक वैयक्तिक और दूसरी सामाजिक। कहा गया है कि मूलभूत प्रवृत्तियों का ही औपन्यासिक प्रवृत्तियों का आधार माना जा सकता है जिसके 'चार रूप प्राप्त होते हैं जो समकालीन समाज में चेतना के चार विभिन्न स्तरों के प्रतिबिम्ब हैं [१]।' डा० धवन ने इन चार रूपों को सामाजिक, व्यक्तिवादी, मनोविश्लेषणवादी और समाजवादी उपन्यासों के अन्तर्गत रखा है तथा ऐतिहासिक उपन्यासों को पृथक् स्थान दिया है जिनमें सामाजिक एवं समाजवादी प्रवृत्तियाँ समाहित होती हैं।

उपर्युक्त वर्गीकरण के आधार पर उन्होंने सामाजिक प्रवृत्ति का वैज्ञानिक रूप समाजवादी प्रवृत्ति में देखा है और इस दृष्टि से राजनीतिक उपन्यास का क्षेत्र अस्पष्ट हो जाता है। सामाजिक परिप्रेक्ष्य में राजनीतिक उपन्यास के कार्य-क्षेत्र का मूल्यांकन समुचित एवं युक्तिसंगत नहीं है ऐसा हम नहीं मानते। साहित्य, समाज और राजनीति में अटूट सम्बन्ध है। प्रेमचन्द के शब्दों में ये चीजें माला जैसी ही हैं। जिस भाषा का साहित्य अच्छा होगा, उसका समाज भी अच्छा होगा। समाज के अच्छा होने पर मजबूरन राजनीति भी अच्छी होगी। ये तीनों साथ-साथ चलने वाली चीजें हैं—इन तीनों का उद्देश्य ही जो एक है। साहित्य इन तीनों की उत्पत्ति के लिए एक चीज का काम देता है। साहित्य और समाज और राजनीति का सबध बिलकुल पास है। समाज आदमियों के समूह को ही तो कहते हैं। समाज में जो हानि-लाभ तथा सुख-दुख होता है वह आदमियों पर ही होता है न। राजनीति में जो सुख-दुःख होता है वह आदमियों पर ही होता है न। राजनीति में जो सुख दुःख होता है, वह आदमियों पर ही पड़ता है। साहित्य से लोगों को विकास मिलता है। साहित्य से

---

१ डा० सुषमा धवन · हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ ६

आदमी की भावनाएं अच्छी और बुरी बनती हैं। इन्हीं भावनाओं को लेकर आदमी जीता है और इन तीनों चीजों की उत्पत्ति का कारण आदमी ही है [१]।

साहित्य समाज को जिस सुचारु और सुव्यवस्थित ढंग से प्रभावित कर इच्छानुसार मोड़ सकता है उतना कोई अन्य साधन नहीं। सम्भवतः इसीलिए लेनिन ने कहा कि एक अच्छा साहित्यिक किसी राजनीतिक कर्मठ से कम नहीं होता। गोर्की को लिखने के लिए स्वतन्त्रता देनी चाहिए और लेनिन ने ही गोर्की से कहा था कि तुम अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में कम्यूनिज्म के प्रचार के लिये जो कार्य कर रहे हो, वह बहुत गहरा है और निश्चय ही मानवता का कल्याण करने वाला है [२]।'

यही कारण है कि मानव-कल्याण के प्रश्न को हल करने के समय साहित्य और राजनीति को पृथक् नहीं किया जा सकता। मनुष्य को जहाँ सामाजिक प्राणी की संज्ञा दी जाती है, वहीं सुप्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तू ने उसे राजनीतिक प्राणी भी बताया है। राजनीति को साहित्य से पृथक् करना जीवन को एकांगी बना देना है। रोमां रोलां ने एक जगह लिखा है 'जो कोई मानव समाज के भविष्य के लिए युद्ध करना चाहता है उसे राजनीतिक क्षेत्र में युद्ध करना चाहिए, पर अपने मस्तिष्क की स्वाधीनता को किसी भी हालत में न छोड़ना चाहिए क्योंकि मानसिक स्वाधीनता ही उसे युद्ध-क्षेत्र पर हावी बनाए रखेगी [३]।'

व्यक्ति से परिवार बनता है। जो समाज का व्यष्टि रूप है और इसीलिए उसका अंग भी। सम्भवतः इसीलिए आचार्य नरेन्द्रदेव ने कहा था कि "सच्चे साहित्यकार का कर्त्तव्य हो जाता है कि वह मनुष्य को समाज से पृथक् करके, अमूर्त मानवता के स्वतन्त्र प्रतीक के रूप में सीमित न कर उस सामाजिक प्राणी के रूप में देखे—ऐसे समाज के सदस्य के रूप में जिसमें निरन्तर संघर्ष हो रहा है और इन संघर्षों के कारण जो प्रतिक्षण परिवर्तनशील है [४]।" जब हम मानवजीवन का विश्लेषण करते हैं तो दो तथ्य स्पष्ट रूप से सम्मुख आते हैं। मनुष्य चिन्तनशील प्राणी है और इसलिए वह अपने ढंग से विचार कर काम करना चाहता है, किन्तु सामाजिक प्राणी होने के कारण प्रत्येक मनुष्य मनमानी नहीं कर सकता। ऐसी स्थिति में एक व्यक्ति की इच्छाएं दूसरे व्यक्ति से टकराती हैं और इन्हें नियमित रखने के लिए राजनीतिक सिद्धान्त शासन की

१. शिवरानी देवी : प्रेमचन्द घर में, पृष्ठ ९४-९५
२. रांगेय राघव : प्रगतिशील साहित्य के मानदण्ड, पृष्ठ ९६
३. 'मधुकर' पाक्षिक के मार्च १९४५ के अङ्क के पृष्ठ ४२७ से।
४. आचार्य नरेन्द्रदेव : राष्ट्रीयता और समाजवाद, पृष्ठ ५५६

आवश्यकता होनी है। इस रूप में राजनीतिक सिद्धान्त की मूल समस्या यथासम्भव विशाल पैमाने पर सामाजिक कल्याण को बढाने के लिए राज्य की सत्ता तथा व्यक्ति की स्वतन्त्रता के बीच सामजस्य स्थापित करना है।

साहित्यकार भी समाज में रहने वाला एक प्राणी है और यह सम्भव नहीं है कि वह युगीन भावधाराओ से परे रह सके। हम इस कथन से सहमत है कि 'तत्कालीन सामाजिक संस्कारों का प्रतिबिम्ब उसके साहित्य पर पड़ता है और जो राजनीतिक विचारधाराओ या कर्तव्य को समझने में जिस राजनीतिक चर्चा को अस्पृश्य समझा जाता था, उसे 'पैट्रोनाइज' किया जाने लगा है। अब यह माना जाने लगा है कि हम साहित्य से समाज का, सामाजिक जीवन का, सामाजिक विचारधाराओ का वादो का सम्बन्ध मानते हैं, किन्तु अनुवर्ती रूप में। साहित्य की अपनी सत्ता के अन्तर्गत उसके निर्माण में इनका स्थान है। ये उपादान और हेतु हुआ करते हैं[1]।

साहित्य और राजनीति का पारस्परिक सम्बन्ध

सामाजिक परिप्रेक्ष्य में राजनीतिक तत्वो के बढते हुए प्रभाव और साहित्य में उसे 'अस्पृश्य' न समझे जाने का तथ्य पूर्व पृष्ठों में उद्घाटित हो चुका है। हिन्दी उपन्यास साहित्य के प्रारम्भिक वर्षों में राजनीतिक चर्चा को निषिद्ध माना जाता रहा। प्रेमचन्द से पूर्व हिन्दी उपन्यास साहित्य में राजनीतिक चर्चा प्राय नहीं है और आंग्ल शासन में यह सम्भव भी नहीं था। प्रेमचन्द ही प्रथम उपन्यासकार हैं जिन्होंने राजनीतिक पृष्ठभूमि पर उपन्यासो की रचना की। किन्तु उस काल तक महात्मा गाधी के नेतृत्व में स्वाधीनता आन्दोलन अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया था और जनता राजनीतिक चेतना से अभिभूत थी। भारतीय राजनीतिक चेतना सामाजिक आन्दोलनो के मार्ग से प्रशस्त हुई और साहित्य में विशेषत हिन्दी उपन्यास में भी वह सामाजिक उपन्यासो के मध्य विस्तारित हुई। सम्भवत. इसका कारण यह है कि 'सामाजिक तथा राजनीतिक आन्दोलन स्वभावत घुले मिले से चलते ही हैं और धर्म समाज का एक अग हो सा है। इसी से एक के नेता प्राय अन्य दो को भी साथ ही समेटते हुए अपने विचार प्रकट करते रहते हैं। कुछ सामाजिक समस्याओ को लेकर बहुत से उपन्यास, नाटक आदि लिखे गये पर कोरी राजनीति को लेकर बहुत कम। ऐसा अवश्य हुआ है कि सामाजिक समस्याओ के साथ राजनीतिक कथा भी उपन्यासों में मिली जुली चली है[2]। ऐसे उपन्यास व उपन्यासकार भी जो सामाजिक परिप्रेक्ष्य में राजनीतिक विचार या

१. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : नया साहित्य : नये प्रश्न, पृष्ठ १७

२ ब्रजरत्नदास : हिन्दी उपन्यास साहित्य, पृष्ठ १८८-१८९

तत्सबधी आन्दोलनो का चित्रण करते थे कटु आलोचनाओ के शिकार होने से न बच पाते थे। हिन्दी उपन्यास-साहित्य पर विचार व्यक्त करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि "सामाजिक उपन्यासो मे देश में चलने वाले राष्ट्रीय तथा आर्थिक आन्दोलनो का भी आभास बहुत कुछ रहता है। ताल्लुकेदारो के अत्याचार, भूखे किसानो की दारुण दशा के बडे चटकीले चित्र उनमें पाये जाते है। इस सम्बन्ध में हमारा केवल यही कहना है कि हमारे निपुण उपन्यासकारो को केवल राजनीतिक दलो द्वारा प्रचारित बातें लेकर ही न चलना चाहिए, वस्तुस्थिति पर अपनी व्यापक दृष्टि भी डालनी चाहिए।" उन्होने साहित्य और राजनीति को दो पृथक् वर्गो में विभाजित किया और साहित्य को राजनीति के ऊपर रहने की घोषणा उस समय की जब कि सामाजिक उपन्यासो में राष्ट्रीय आन्दोलनो का आभास मात्र दिखलाई दे रहा था। उन्होने अपना मत व्यक्त किया, 'साहित्य को राजनीति के ऊपर रहना चाहिए, सदा उसके इशारो पर ही न नाचना चाहिए।' यह कथन उन साहित्यकारो के पूर्वग्रह के समकक्ष है जो राजनीति को हेय दृष्टि से देखते आए हैं। आचार्य नरेन्द्रदेव के शब्दो में–'हमारे के साहित्यिको का सदा से यह कायदा रहा है कि वह राजनीतिज्ञो के हस्तक्षेप का विरोध करते आए है। वह राजनीति को सदा से ही तिरस्कार की दृष्टि से देखते आए हैं और राजनीतिज्ञो से वे सदा सशक रहते हैं। यह बात अकारण नही है। किन्तु जो लोग सामाजिक जीवन को ही बदलना चाहते हैं वह कैसे साहित्य की उपेक्षा कर सकते है? साहित्य की प्रत्येक कृति चाहे उसका स्वरूप और विषय कुछ भी क्यो न हो कुछ न कुछ राजनीतिक परिणाम अवश्य उत्पन्न करती है। यदि लेखक राजनीतिक परिस्थिति से परिचित हो और बुद्धिपूर्वक लेखन क्रिया को सम्पन्न करे तो उस क्रिया का परिणाम इच्छानुकुल हो सकता है। इससे हम अवश्य चाहेगे कि हमारे साहित्यिक वर्तमान राजनीति का ज्ञान प्राप्त करें। यदि वह जीवन से सम्पर्क रखना चाहते है और एक सफल कलाकार बनना चाहते हैं तो इस युग में जब वर्गसंघर्ष प्रबल वेग से चल रहा है वह कैसे अपने को इससे अलग कर सकते है। जीवन की कथा ही यह है। इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती[१]।

राजनीतिक उपन्यास : नूतन क्षितिज

उपर्युक्त दो उद्धरणो से उपन्यास के दो आधारभूत तत्वो की ओर ध्यान जाता है और वे हैं समसामयिक राजनीतिक आन्दोलनो का चित्रण व राजनीतिक विचार-धारा

---

१ युक्त प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन के बरेली मे हुए १६ वें अधिवेशन मे आचार्य नरेन्द्रदेव का अध्यक्षीय भाषण।

का समावेश। वस्तुत ये तत्व ही राजनीतिक उपन्यास की आधारशिला है जो उन्हे सामाजिक एव ऐतिहासिक उपन्यासो से पृथक् कर अलग अस्तित्व प्रदान करते हैं।

राजनीतिक उपन्यास की परिभाषा अभी तक निर्धारित न होने का कारण यही है कि आलोचक व इतिहासकार उसका पृथक् रूप में अस्तित्व मानने में हिचकते रहे। कहीं उन्होने इस कोटि के उपन्यासो को समाजवादी उपन्यासो में परिगणित किया और कहीं साम्यवादी। डॉ० सुषमा धवन ने समाजवादी उपन्यास की परिभाषा देते हुये लिखा है 'हिन्दी में समाजवादी अथवा प्रगतिवादी उपन्यास का विवेचन करते हुए उन्हीं रचनाओ को इस कोटि में रखा जाता है जिनमें मार्क्सवादी सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया गया हो[1]।' इसी को शैलीगत विशेषता के अन्तर्गत मानकर 'समाजवादी यथार्थवाद' कहा गया है[2]। स्पष्ट है कि इस भ्रान्ति का मूल कारण यह है कि राजनीतिक उपन्यास का वर्गीकरण विशिष्ट राजनीतिक विचारधारा के आधार पर किया जाता रहा है न कि उसके समग्र स्वरूप के अन्तर्गत। समाजवादी राजनीतिक विचारधारा के उपन्यासो का मूल्यांकन भी उसके अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाव के कारण किया गया यह बात हमें स्पष्टरूप से समझ लेनी चाहिए। इसके फलस्वरूप ही अन्य राजनीतिक विचारधाराओ को अभिव्यक्ति देने वाले उपन्यासो की अनचाहे और अनजाने उपेक्षा हुई और राजनीतिक उपन्यासो का स्वरूप सम्यापन न हो सका। गाँधीवादी, क्रान्तिकारी अथवा हिन्दुस्तान की पृष्ठभूमि पर रचित उपन्यासो का मूल्यांकन या तो किया ही नहीं गया और यदि किया भी गया तो वह सतही बनकर रह गया। उपन्यास में समसामयिक युग की राजनीतिक समस्याओं, आन्दोलनो या राजनीतिक विचारधाराओ के प्राधान्य को देखकर ही उसे राजनीतिक उपन्यास की सज्ञा दी जा सकती है। ऐसा करने पर ही इस प्रवृत्ति को रोका जा सकेगा जो राजनीतिक उपन्यास को समाजवादी, साम्यवादी, प्रगतिवादी, गाँधीवादी आदि विभिन्न कटघरो मे रखकर उनका मूल्यांकन कर उसकी विशिष्टता को आघात पहुँचाती है।

राजनीतिक उपन्यास में राजनीतिक घटनाओ या विचारधारा का समाहार कलात्मक रूप से किया जाना चाहिए। उपन्यास के मूल तत्वो के सम्बन्ध मे पूर्व मे विचार किया जा चुका है और राजनीतिक उपन्यासो मे वे तत्व एकाधिक रूप से उसके कलात्मक-सौष्ठव को श्रीमडित कर सकते हैं। राजनीतिक उपन्यास मे कथावस्तु, पात्र, कथोपकथन, स्थान, देशकाल और शैली आदि तत्वो के माध्यम से समसामयिक राजनीतिक स्थिति और उसके स्वरूप को प्रस्तुत किया जा सकता है। आगामी अध्यायो मे

१ डॉ० सुषमा धवन : हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ २८३

२ शिवनारायण श्रीवास्तव : हिन्दी उपन्यास (ऐतिहासिक अध्ययन), पृष्ठ ४७४

राजनीतिक उपन्यासो के विश्लेषण के अवसर पर इसका विशद रूप से विचार किया गया है।

उपर्युक्त विवेचन के अनुसार यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्ण्यवस्तु म राजनीतिक प्रभाव को दृष्टिगत रख उन्हे राजनीतिक उपन्यास की सज्ञा देना सर्वथा उपयुक्त है। ऐसे राजनीतिक उपन्यासो मे सम-सामयिक राजनीतिक घटना या घटनाओ, राजनीतिक पात्र या पात्रो अथवा राजनीतिक सिद्धान्तो का प्राधान्य एव अकन रहता है। कभी-कभी अन्य प्रवृत्ति के कारण उपन्यास में राजनीतिक धम गौण हो जाता है और इस रूप मे उसका सगठित स्वरूप सम्मुख न आकर आशिक रूप म ही बिखर कर रह जाता है। ऐसी स्थिति मे भी राजनीतिक प्रवृत्ति (बिखर जाने पर भी) के विचार तरगो का उच्छ्वास राष्ट्रीय जीवन को तरगित करता है। अत ऐसे उपन्यासो को भी पूर्णत राजनीतिक न होने पर भी अश-राजनीतिक विभड के अन्तर्गत स्वीकार किया जाना चाहिये।

इन्हीं आधारभूत सिद्धान्तो के द्वारा स्वतन्त्र रूप म सन् १९०० से आज तक की भारतीय राजनीति के आधार पर हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासो का अध्ययन एव उनका मूल्य निर्धारण प्रस्तुत शोध ग्रन्थ का प्रतिपाद्य है।

राजनीतिक उपन्यासो मे युगीन समस्याएँ

साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है क्योंकि उसमे विशेष ऐतिहासिक परिस्थिति से उत्पन्न विचार, भावना, अन्त प्रेरणा तथा सवेदना प्रतिबिम्बित होती है। साहित्य और समाज का पारस्परिक अभिन्न सम्बन्ध है। साहित्य का स्रष्टा व्यक्ति है। इस व्यक्ति की अपनी अभिरुचिया, आशा-आकाक्षाएँ तथा अन्त प्रेरणाएँ होती हैं। इसके निर्माण मे सामाजिक परिस्थितिया अपना प्रभाव डालती हैं। समाज का दैनदिन जीवन ही व्यक्ति साहित्यकार का वस्तु-सत्य है। उसकी यह सामाजिकता समस्याओ के साथ है और राजनीतिक परिस्थितियो या कारणो के परिणामस्वरूप है। मनुष्य सामाजिक होने के साथ-साथ राजनीतिक प्राणी भी है। साहित्यकार सामाजिक परिपार्श्व म उसको राजनीतिक परिस्थितियो से पृथक नही कर सकता। यदि साहित्य मे समाज से स्वतन्त्र शाश्वत जीवन चेतनाए है तो दूसरी ओर वह अपने युग की प्रतिच्छाया भी होता है और युगानुकूल पडने वाले भाव और विचारो की छाया से वह अपने को विमुक्त नहीं कर सकता।

स्वय प्रेमचन्द ने इस सत्य को स्वीकारा है। उनके मतानुसार 'जब क्रान्ति का युग हो, जब पुराने और जर्जर के स्थान पर नये और उन्नत समाज के लिये, निर्माण

के लिए संघर्ष हो रहा हो, तो लेखक का काम पक्षपात के साथ लोगों को संघर्ष के लिए तैयार करना है[1]।' कहना न होगा कि मानव के इस संघर्ष से साहित्यिक असंपृक्त नहीं रह सकता क्योंकि उसका एक प्रमुख दायित्व स्वस्थ और सुखी समाज का निर्माण होता है।

उपन्यास 'अनतन्त्रीय साहित्यिक विधा' है और इसका क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। फील्डिंग ने 'टाम जोन्स' की भूमिका में उपन्यास के महाकाव्यत्व पर प्रकाश डालते हुए उसे मानव प्रकृति का अध्ययन कहा है। राल्फ फाक्स ने उपन्यास को मनुष्य के जीवन का गद्य माना है। उनके शब्दों में 'उपन्यास गद्य में लिखी गई कथा मात्र नहीं है, वह मनुष्य के जीवन का गद्य है। उपन्यास वह प्रथम कला रूप है जो समग्र मनुष्य को समझने और अभिव्यक्त करने का प्रयास करता है। .. यथार्थ की एक दूसरी ही दृष्टि उपन्यास प्रस्तुत करता है। काव्य, नाटक, सिनेमा, चित्रकला या संगीत द्वारा प्रस्तुत यथार्थ से निश्चय ही उपन्यास का यथार्थ भिन्न है। ये सब यथार्थ के उन पहलुओं को भले ही व्यक्त कर सकें जो उपन्यास की पहुँच के बाहर है, परन्तु किसी एक पुरुष, स्त्री या बच्चे का सम्पूर्ण जीवन भली प्रकार अंकित कर सकने में इनमें से कोई भी समर्थ नहीं[2]।' उपन्यास एक अत्यन्त समर्थ किन्तु लचीली विधा है। यह सामूहिक मानव जीवन की और उसके संघर्षों की कलात्मक अभिव्यक्ति है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के मतानुसार 'साहित्य क्षेत्र में उपन्यास ही एक उपकरण है जिसके द्वारा सामूहिक मानव जीवन अपनी समस्त भावनाओं एवं चिन्ताओं के साथ सम्पूर्ण रूप में अभिव्यक्त हो सकता है। मानव जीवन के विविध चित्रों को चित्रित करने का जितना अवकाश उपन्यासों में मिलता है, उतना अन्य साहित्यिक उपकरणों में नहीं। किसी भी युग या समाज युगीन आदर्शों, दुर्बलताओं तथा आकांक्षाओं का पुञ्जीभूत रूप है जिससे सामूहिक मानवजीवन परिचालित होता है। यह रूप परिवर्तनशील होता है। मनुष्य स्वभावतः सामाजिक प्राणी होने से समाज में रहकर उसमें निरन्तर सुधार करते रहने के लिए प्रयत्नशील रहता है। ये प्रयत्न ही कालान्तर में राजनीतिक स्वरूप ग्रहण कर आन्दोलन का रूप लेते हैं और सफलीभूत होने पर समाज के कल्याणार्थ शासन द्वारा नियमित होते हैं।'

राजनीतिक उपन्यास अपने प्रति व्यास रूप में युगचेतना के इसी रूप को ग्रहण कर सामाजिक परिपार्श्व में मनुष्य के संघर्षशील व्यक्तित्व को प्रस्तुत कर उसकी व्याख्या

१ प्रेमचन्द चिन्तन और कला, पृष्ठ १६४
२. राल्फ फाक्स : द नावल एण्ड द पीपुल, पृष्ठ २०

करता है। वह युगीन समस्याओं को तो प्रस्तुत करता ही है उसके माध्यम से अन्तर्निहित गम्भीर सत्य को प्रस्फुरित करता है।

समाज और व्यक्ति राजनीति के अन्योन्याश्रित सम्बन्ध होने से राजनीतिक उपन्यासों का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। समाज और व्यक्ति की समस्याएँ राजनीतिक की समस्याएँ बन जाती है। इस रूप में आकर वे विषय की गम्भीरता और सप्राणता के अनुसार युगेतर और सार्वभौमिक हो जाती हैं।

साहित्य और समाज का भी पारस्परिक अभिन्न सम्बन्ध है जो गम्भीर और व्यापक है। दोनों का स्वरूप सत्यगत है। साहित्य समाज या सामाजिक जीवन का व्याख्याता होता है और उसे स्पन्दन देता है। इस व्यापक चित्रपटी के अन्तर्गत वे सभी युगीन समस्याएं आ जाती है जो मानव और समाज को प्रभावित कर उसे राजनीति से असम्पृक्त नहीं रहने देतीं। रंगभेद, धर्मभेद, जातिभेद, भाषाभेद आदि के माध्यम से समाजगत झगड़े किस तरह राजनीतिक रूप ले लेते हैं उसके उदाहरण हम आए दिन देखते ही रहते है।

आधुनिक राजनीति विचार और कार्य को संचालित कर व्यक्ति और समाज को अपने अधिकार में कर रही है। वह विस्तारवादी है और गाँधी जी सर्प के रूप में उसके स्वरूप को स्वीकार कर कहते थे कि 'राजनीति हम सभी को सर्प के घेरे के समान घेरे हुए है और जिससे चाहे कोई कितना ही प्रयास करे बाहर नहीं निकल सकता।'

राजनीति के इस विशाल स्वरूप को लेकर भिन्न-भिन्न युगीन समस्याओं पर विचार करना हमारा उद्देश्य नहीं। हिन्दी उपन्यास साहित्य में जो युगीन समस्याएं राजनीतिक स्वरूप में आई हैं, उन पर पृथक् रूप से आगे विचार किया गया है।

राजनीतिक उपन्यासों की व्याप्ति और सीमा

अरस्तू ने लिखा है कि मनुष्य एक राजनीतिक प्राणी है। राजनीति की जड़ें मनुष्य की भावना से जुड़ी हुई है। राजनीतिक सिद्धान्त की मूल समस्या यथासम्भव और यथाविधि व्यापक आधार पर सामाजिक कल्याण का समाधान प्रस्तुत करना है जो व्यष्टि और समष्टि के बीच सामंजस्य उत्पन्न करे।

साहित्य के भी उद्देश्यों में उद्देश्य प्रधान सामाजिक धारा और व्यक्ति-मूलक ऐकान्तिक धारा के दो प्रमुख रूप मानव-कल्याण का दिशा-निर्देश करते हैं। इस भावभूमि पर साहित्य और राजनीति दोनों का स्वरूप लोक मांगलिक और मानवतावादी होता है।

विचारशील और गतिशील प्राणी होने के नाते मनुष्य जीवन को अधिकाधिक पूर्ण बनाने के लिए सदा से प्रयत्नशील रहा है और अपनी इस प्रक्रिया में आने वाले बाधक तत्वों को दूर करने के समाधानों की खोज करता रहता है। यह परिवर्तनशीलता मनुष्य की सहज स्वाभाविक प्रवृत्ति है जो समाज, धर्म, अर्थ और राजनीति सभी क्षेत्रों को प्रभावित करती रहती है। विचारों के संघर्षों से प्राप्त समाधान ही बौद्धिक निरूपण ही एक विशिष्ट जीवन-दर्शन बन जाता है। इस तरह मनुष्य, साहित्य और राजनीति संयुक्त होकर एक ऐसे त्रिभुज का निर्माण करते हैं जिसकी तीनों भुजाएं समान होती हैं और इनसे बनने वाला कोण जीवन की समग्रता या लोकमांगलिक होता है।

साहित्य और राजनीति एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों एक दूसरे से तरंगित और प्रभावित होते हैं। अज्ञेय का मत है कि 'साहित्य और राजनैतिक को दो पृथक् और विरोधी तत्व मान लेना किसी प्राचीन युग में भी उचित न होता, आज के-से सघर्ष युग में वह मूर्खतापूर्ण-सा ही है[1]।' यह सर्वमान्य सत्य है कि जीवन और साहित्य एक-दूसरे के उसी भांति अन्योन्याश्रित हैं जैसे जीवन और राजनीति। जीवन की विविध समस्याओं का समाधान खोजते हुए ये तत्व जन-जीवन के इतने निकट आ गये हैं कि इन्हें अब विलग करना साधारण कार्य नहीं। दोनों को सक्रिय रूप से सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्वाह करना है और जिनका धरातल समान है। अब साहित्य 'केवल निष्क्रिय मानसिक रसास्वादन की वस्तु नहीं हो सकता, साहित्य का भी सामाजिक उत्तरदायित्व है और वह दायित्व केवल 'श्रुति स्मृति सदाचार' की रक्षा करने का दायित्व नहीं है, केवल प्रचलित से ही विशेष द्वारा प्रतिष्ठित आदर्श के अनुगमन का दायित्व नहीं है, समाज के ढांचे को आमूल बदल देने का दायित्व है[2]।'

इसी संदर्भ में क्रिस्टोफर कॉडवेल के मत को भी नहीं भुलाया जा सकता जो साहित्य को एक सामाजिक प्रक्रिया मानता है। उसका कथन है कि "Art is a social function. This is not a marxist demand, but arises from the very way in which art forms are defined Only those things are recognised art forms which have a conscious social function The phantasies of a dreamer are not art They only beacome art when they are given music, forms of

१. अज्ञेय त्रिशंकु, पृष्ठ ७३
२ महेन्द्रचरण राय · मार्क्सवाद और साहित्य, पृष्ठ १६७

words, when they are clothed in socially recognised symbols and ofcourse in the process the-e is a modification. No chai ca sounds constitute music, but sounds selected from a socially recognised scale and played on socially developed instruments."[1]

स्पष्ट है कि साहित्य एक सामाजिक प्रक्रिया है, इसीलिए वह कला है और इसी मे उसका महत्व है। साहित्य और राजनीति सामाजिक यथार्थ रूपी रथ के उन दो पहियो के महत्व है जो अलग-अलग होने पर भी एक दूसरे के पूरक हैं।

उपन्यास की परिभाषा के सम्बन्ध मे विवेचना करते हुए यह बताया जा चुका है कि वह 'मनुष्य के जीवन का गद्य' है और 'मानव जीवन का चित्र मात्र' हो युगानुरूप 'यथार्थ और व्यवहार' का चित्र प्रस्तुत करता है। इसीलिए उसे जनतान्त्रिक विधा भी कहा गया है। आधुनिक उपन्यास-साहित्य की विवशता है कि वह अधिक दूर तक यथार्थ की उपेक्षा नहीं कर सकता। यह उसके विकास का स्वस्थ और प्राणवान लक्षण है जो सामाजिक यथार्थ के परिवेश में मानव के जीवन-सघर्षों को अभिव्यक्ति देते हुए सामयिक राजनैतिक प्रेरणा-स्रोतो से रागीचित होता है।

इतना होने पर भी साहित्य और राजनीति की अपनी सीमाएं भी हैं और उपन्यास साहित्य भी उससे अपने को पृथक् नहीं रख सकता। उपन्यास जीवन की व्याख्या सत्य के आधार या उनमें निहित सदाचार, धर्म अथवा आदर्श के आधार पर करता है। केवल राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में जीवन की व्याख्या एकागी होगी यदि उसमें मानव जीवन को प्रभावित करने वाले रागो, मनोवेगो और नियमो का चित्रण न हो। कला का एक आध्यात्मिक पक्ष भी है जिसे भुलाना उपन्यासकार के लिए कभी भी उपयुक्त नहीं। ये सम्भाव्य आदर्श तथा जीवन के तात्विक तथ्य जीवन्त साहित्य के गुण हैं। यही कारण है कि गाधी जी ने राजनीति को आध्यात्मिकता से अनुप्राणित करने का प्रयास किया। वे राजनीति को (मानव) धर्म का साधन मानते थे। उनका कहना था— 'मुझे विश्व के नश्वर वैभव की चाह नहीं है, मैं तो स्वर्ग के साम्राज्य अर्थात् आध्यात्मिक विमुक्ति के लिए प्रयास कर रहा हूँ। इसलिए मेरी राष्ट्रभक्ति भी अनन्त शाति और स्वातन्त्र्य के देश की ओर मेरी यात्रा का एक पड़ाव मात्र है। इससे स्पष्ट है कि मेरे लिए धर्म से रहित राजनीति की कोई सत्ता नहीं है। राजनीति धर्म का साधन मात्र है। धर्मरहित राजनीति मृत्यु का फदा है, क्योंकि वह आत्म का हनन करती है।'

---

१. Christopher coudwell : Study in a Dying Culture, P, 44

वे राजनीति की तुलना सर्प के घेरे से करते थे । वे राजनीति के बढते हुए प्रभाव को स्पष्ट देख रहे और अनुभव कर रहे थे कि "राजनीति हम सभी को सर्प के घेरे के समान घेरे हुए है और जिससे चाहे कोई कितना ही प्रयास करे बाहर नहीं निकल सकता । मैं उस सर्प से संग्राम करना चाहता हूँ मैं राजनीति में धर्म का सम्मिलन करने की कोशिश कर रहा हूँ ।"

जीवन और राजनीति में जो सम्बन्ध होना चाहिए यह गाँधी जी के उपर्युक्त कथनों में समाहित है । इसी भाँति राजनीति का भी साहित्य में उतना ही स्थान होना चाहिए जहाँ तक वह कला और जीवन में उचित सामंजस्य करे । क्रिस्टोफर काडवेल का कथन है–

"Ours is simply a demand that you should square life with art and art with life, that you should make art living cannot you see that their separation is precisely what is evil and bourgeois[1] ?"

जीवन को यदि केवल राजनीति के दर्पण से ही देखा गया तो जो प्रतिबिम्ब दिखलाई देंगे वे सजीव सप्राण न होकर खंडित होंगे । इसीलिए प्रेमचन्द ने भी कहा था कि 'जब साहित्य की रचना किसी सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक मत के प्रचार के *लिए की जाती है, तो वह अपने ऊँचे पद से गिर जाता है–इसमें कोई सन्देह नहीं* ।' वे साहित्यकार को राजनीति के आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई मानते थे । उन्होंने लिखा है कि 'साहित्यकार का लक्ष्य केवल महफिल सजाना और मनोरंजन का सामान जुटाना नहीं है–उसका दरजा इतना न गिराइये । वह देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई भी नहीं, बल्कि उनके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सचाई है'[2] । यहाँ यह द्रष्टव्य है कि यह कथन उस उपन्यासकार की सचाई की आवाज है जो हिन्दी का प्रथम राजनीतिक उपन्यासकार है और जिसके अधिकांश उपन्यास सामयिकता के चित्रण से आच्छादित हैं ।

उपन्यास की रचना सिद्धान्त या मत विशेष को लेकर ही नहीं की जानी चाहिए क्योंकि उपन्यास का मार्ग एकांगी नहीं होता । प्राथमिक निष्ठा राजनीतिक मतवादों या शास्त्रीय सिद्धान्तों के प्रति नहीं हो सकती । उपन्यासकार को तो अपनी प्रेरणा व्यष्टि और समष्टि जीवन से ग्रहण करना होगी । मत और सिद्धान्त तो तभी स्थान प्राप्त कर सकेंगे जब वे निकट ग्राह्य हों और व्यवहारिक मानवीय धरातल पर

---

१. Christopher Coudwell Illusion and Reality, Page 289
२. प्रेमचन्द · साहित्य का उद्देश्य, पृष्ठ १५

ग्राकर रूपायित हों। मानव तत्व की महत्ता का बोध उपेक्षित नहीं किया जा सकता और उन्हीं प्रयोगों को मान्यता प्राप्त हो सकती है जो मानव सत्य की सिद्धि के लिए हो।

इस सत्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि जब तक व्यक्ति और समाज राजनीति से प्रभावित होते रहेंगे साहित्य अपने को उनसे पूर्णतः निरपेक्ष नहीं रख सकता। परन्तु यह स्मरण रखना होगा कि दोनों के एक दूसरे के पूरक होने पर भी अपने क्षेत्र हैं और साहित्य का क्षेत्र राजनीति से कहीं अधिक व्यापक और पवित्र है।

विगत चालीस वर्षों की अवधि में हिन्दी उपन्यास साहित्य के अन्तर्गत राजनीतिक उपन्यासों की सृष्टि सख्या और प्रयोग की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। राजनीतिक चेतना और स्वाधीनता के लिए हुए राष्ट्रीय आन्दोलन की आँधी इस आलोच्यावधि में जिस तीव्रता से राष्ट्र में व्याप्त हुई हिन्दी के राजनीतिक उपन्यास उसी संक्रान्तिकाल की देन हैं। इस अन्धड़-तूफान के शान्त होने पर अवाछनीय रूप से उड़ने वाली गर्द स्वय ही बैठ जायेगी और उसके बाद राजनीति के उचित सामंजस्य से जो राजनीतिक उपन्यास लिखे जायेंगे वे लोक मांगलिक भूमिका पर होंगे। इस धारणा के लिए पर्याप्त आधार हैं इसका सबसे प्रथम प्रमाण हिन्दी राजनीतिक उपन्यास में दिखलाई देने वाला क्रमिक विकास ही है जो राजनीति के ऊबड़-खाबड पथ को छोड़ समतल पर आ गया है।

इसके साथ ही हमें विरासत में प्राप्त जीवन की प्राचीन भारतीय परम्परा को भी विस्मृत नहीं करना चाहिए। हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि भारतीय मनोभूमि प्रकृति से धर्म-नीतिक है। परिस्थितियों की विवशता तक ही राजनीतिक उद्बोध उसे स्वीकार्य है किन्तु मूलत उसकी महत्वाकाक्षा राजनीतिक नहीं है। उसके मूल्य मानवीय हैं जिसके प्रति जनमानस की दृढ़ आस्था है। इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि भारतीय मानस राजनीतिक उथल-पुथल के अधीन गिरता-उठता नहीं रहा और न उसके आदर्श ही म्लान या खडित हुए। भारतीय जीवन धर्मोन्मुख है अत. नीति-रीति के नियमन के लिए राज्य के कानून से अधिक सामाजिक मान्यता पर उसका अवलम्ब अधिक रहा है। यही कारण है कि लोक-जीवन को व्यवस्थित और सतुलित करने वाली सस्थाएं भी सत्ता प्रधान न होकर भाव प्रधान हैं[1]।

लोक जीवन और साहित्य का स्वरूप सदैव समान नहीं होता और उसमे

---

१. साप्ताहिक हिन्दुस्तान, दिनाक १८ दिसम्बर, १९६० मे प्रकाशित जैनेन्द्र के एक लेख के आधार पर।

युगानुसार परिवर्तन होते रहते हैं। इतना होने पर भी वह अपनी प्राचीन परम्परा से एकदम नहीं कट जाता।

साहित्य को मतवाद के प्रचार का साधन मात्र मानना एक भूल होगी क्योंकि उसकी अपनी जीवन सापेक्ष्य स्वतन्त्र सत्ता होती है। आचार्य नन्ददुलारे 'वाजपेयी का मत है कि 'साहित्य केवल मतवाद के प्रचार का साधन नहीं बना करता, और न प्रत्यक्ष और प्रतिदिन बदलने वाले किसी राष्ट्रीय कार्यक्रम का सगी हो बन सकता है। यह 'पार्लेटियरी' वृत्ति उसे शोभा नहीं देती।'

दूसरे शब्दों में कला के साथ ही युग और सामाजिक परिवेश राजनीतिक उपन्यास का उपयुक्त मार्ग हो सकता है। इस सन्दर्भ में दृग्दर्शन के इन शब्दों की सार्थकता विचारणीय है 'जो चिन्तक या आलोचक गुलामी प्रथा का, निरंकुश शासन का, उत्पादन और व्यवसाय के एकाधिकार का, उत्पीडन का समर्थन करता है वह अपने पेशे के प्रति विश्वासघात करता है। वह भले आदमियों की संगत में बैठने का अधिकारी नहीं है। इतना काफी नहीं है कि किसी कलाकृति में कला का नैपुण्य हो, अनोखी सूझ-बूझ हो और कला का प्रशंसनीय निखार हो, सवार हो, प्रत्युत यह भी आवश्यक है कि उसमें युग और सामाजिक परिवेश के प्रति अपना दायित्व चुकाने की गम्भीर प्रेरणा हो।'

राजनीतिक उपन्यासों का स्वरूप सस्थापन

उपन्यास जीवन की व्याख्या है। प्रजातान्त्रिक शासन व्यवस्था ने मानव जीवन को एक नई सामाजिक मान्यता दी। साहित्य में भी इसका अपेक्षित प्रभाव पड़ा और तदनुसार जीवन की व्याख्या में भी परिवर्तन आया जिसे सामाजिक यथार्थ की संज्ञा मिली। इस स्थिति तक पहुँचने के लिए मानव समाज को अनेक संघर्ष करना पड़े। भारतीयों को यह सम्मान एवं अधिकार प्राप्त करने के लिए कई दशाब्दि तक संघर्ष-शील रहना पड़ा और तब जाकर कहीं सन् १९४७ में उन्हें स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। अन्य स्वतन्त्र राष्ट्रों की अपेक्षा भारतीय भाषाओं के उपन्यासों में राजनीतिक संघर्ष इसीलिए पर्याप्त अन्तर से आया।

यूरोपीय साहित्य में जर्मनी में गेटे ने सर्वप्रथम मध्यवर्ग के परिवार को नायक बनाया और यथार्थवाद की भूमिका पर हस्ताक्षर किया। फ्रांस के स्तादल ने पूँजीवादी वर्ग की ह्रासोन्मुखी दशाओं का चित्रण कर यथार्थवादी प्रवृत्ति को पुष्ट किया। बालजाक ने इस दिशा में महत्वपूर्ण पार्ट अदा किया और दैनिक जीवन की नई समस्याओं को अपने उपन्यासों में अंकित किया। बाद में टालस्टाय ने इन्हीं समस्याओं को सुचारु ढग से कलात्मक रूप दिया। रूसी लेखकों ने शोषित जीवन के सहज और स्पष्ट चित्रों

से उपन्यास साहित्य को पुष्ट किया। इन उपन्यासकारो मे तुर्गनेव व दास्ताएव्सकी के नाम उल्लेखनीय है। गोर्की के उपन्यासो ने रूसी साहित्य की शृङ्खला मे एक नई कड़ी जोडी। उसने सर्वहारा वर्ग की मार्मिक अवस्था का चित्रण पूर्ण मनोयोग से साथ किया और यथार्थवाद में सामाजिक सघर्ष को समुचित स्थान मिला। इन्हीं दिनो मार्क्स के सिद्धान्तो की प्रतिस्थापना हुई जिसने समाज को आर्थिक व्यवस्था को अपनी आधार-शिला घोषित किया। इस परिवर्तन से रूसी साहित्य मे सामूहिक मानवीय चेतना के विश्वास को समर्थन मिला।

गोर्की प्रेमचन्द के समकालीन थे और रूस मे हो रहे सामाजिक राजनीतिक और साहित्यिक परिवर्तन को मनोयोग से देख रहे थे। साहित्य मे यथार्थवाद के माध्यम से प्रविष्ट सामाजिक यथार्थ के महत्व को और अपने देश मे हो रहे राष्ट्रीय आन्दोलन मे उसकी आवश्यकता पर वे गम्भीरता से विचार कर रहे थे। प्रेमचन्द हिन्दी के प्रथम राजनीतिक उपन्यासकार है जिन्होने भारतीय राष्ट्रीय जीवन के नये क्षितिजो के उन्मेश तथा समस्याओ को अपने उपन्यासो मे स्थान दिया। गाँधीवाद के सिद्धान्तो तथा गाँधीजी के नेतृत्व मे हुए राष्ट्रीय आन्दोलन का व्यापक चित्रण ही प्रेमचन्द के उपन्यासो की सबसे बडी सफलता है। स्वाधीनता प्राप्ति के उपरान्त प्रेमचन्दोत्तर काल मे राजनीतिक स्वाधीनता को सवैधानिक रूप से स्वीकृति मिलने से तथा मार्क्सवादी विचारधारा के प्रभाव के परिणामस्वरूप समाजवादी प्रवृतिया का आग्रहपूर्वक प्रतिपादन उपन्यास की विषयवस्तु बनी। द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी जीवनदर्शन के अनुरूप सर्वहारा वर्ग की स्थिति का चित्रण कर आर्थिक वैषम्यता का साग्रह चित्रण वर्ग-सघर्ष की चेतना से उपन्यास का शृगार किया जाने लगा जो वर्गबद्ध चरित्रगत विशेषता बन कर सम्मुख आया। साहित्य सामूहिक चेतना की स्वीकृति का माध्यम बन गया।

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है उपन्यास का वर्गीकरण उसके मूल तत्वो के अथवा वर्ण्य वस्तु के आधार पर किया जा सकता है। राजनीतिक उपन्यास की मूल विशेषता उसकी सम-सामयिक राजनीतिक घटनाएँ, राजनीतिक चरित्र और राजनीतिक विचारधारा ही हो सकती है। राजनीतिक घटनाओ और चरित्र की प्रधानता के कारण जहाँ उसका एक स्वरूप चरित्र प्रधान या घटना चरित्र सापेक्ष्य हो सकता है वहाँ वह राजनीतिक वर्ण्य वस्तु, देशकाल व उद्देश्य को लेकर भी राजनीतिक स्वरूप ग्रहण कर सकता है। उसका क्षेत्र अत्यन्त विशाल है। कल्पना व यथार्थ के समन्वय से वह कलात्मक रूप धारण कर युगीन आन्दोलनो एव राजनीतिक सिद्धान्तो को जनसाधारण के लिए ग्राह्य बना सकता है। ज्ञान और आनद दोनो की पूर्ति राजनीतिक उप-

न्यासों से सम्भाव्य है और इसके लिए उपन्यास आदर्श और यथार्थवादी दोनों हो सकता है।

प्रस्तुत प्रबन्ध में सन् १९०० से सन् १९६३ की अवधि को लेकर ही हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों के अनुशीलन का प्रयास किया गया है। वस्तुत यही कालावधि भारत के राजनीतिक संघर्ष का काल है। स्वाधीनता आन्दोलन तथा राजनीतिक प्रगति की युगीन समस्याएं और उनके समाधान के प्रयास इस कालावधि में स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं जिनका प्रभाव हिन्दी उपन्यास साहित्य पर पड़ा। समसामयिक घटनायें ही कालान्तर में ऐतिहासिक स्वरूप ग्रहण कर लेती है। प्रश्न उठता है कि फिर राजनीतिक तथा ऐतिहासिक उपन्यासों की सीमा रेखा क्या हो?

राजनीतिक एवं ऐतिहासिक उपन्यासों की पार्थक्य रेखा

यदि हम मोटे रूप से विचार करें तो यह कहा जा सकता है कि बीता हुआ क्षण ही इतिहास है। इस दृष्टिकोण से तो बीती हुई प्रत्येक सम-सामयिक घटना इतिहास का रूप ग्रहण कर सकती है। किन्तु सत्य को इस रूप में सर्वमान्य नहीं माना गया है। इतिहास की परिभाषा देते हुए कहा गया है कि इतिहास पुरानी घटनाओं तथा आन्दोलनों, उनके कारणों और अन्तर-संबंधों का लिपिबद्ध विवरण है। स्पष्ट है कि इतिहास बीते हुए क्षण की अपेक्षा पुरानी घटनाओं की कहानी है। प्रश्न उठता है कि व्याख्याकारों को 'पुरानी' से कितने वर्षों की अवधि का अन्तर स्वीकार्य है। इस सम्बन्ध में पुरातत्व एवं प्राचीन इतिहास विशेषज्ञों का मत ही माना जाना चाहिए जो १०० वर्ष से अधिक बीते समय को ही ऐतिहासिक समय मानते हैं।

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों का अध्ययन करते समय इसी आधार को स्वीकार विगत सौ वर्षों की कालावधि में हुए राजनीतिक कार्य-कलाप या सिद्धान्तों के प्रतिबिम्बन को ही लिया गया है। राजनीतिक उपन्यासों का उचित सीमा-निर्धारण भी यही हो सकता है।

● ● ●

अध्याय २

भारतीय राजनीति का क्रमिक विकास : एक सर्वेक्षण

- राष्ट्रीय एकता के प्रेरणा स्रोत
- अखिल भारतीय कांग्रेस
- आतंकवादी आन्दोलन
- साम्प्रदायिकतावादी राजनीतिक संस्थाएं
    - मुस्लिम लीग
    - हिन्दू महासभा
- जनसंघ
- साम्यवादी दल

औद्योगिक और राजनीतिक क्रान्तियों ने यूरोप में जिस नवयुग का प्रारम्भ किया भारत भी उसकी प्रवृत्तियों से अपने को पृथक् न रख सका। अंग्रेजी और आंग्ल-साहित्य के सम्पर्क से इस प्रक्रिया में भारतीय राजनीति को विशिष्ट दिशा-निर्देश भी मिला।

सन् १८५७ के विद्रोह ने भारतीय जनता की राजनीतिक चेतना को वास्तव में विकसित किया। वस्तुतः यह ऐतिहासिक परम्परा का पुनरागमन तथा जनता की आत्मा की मुक्ति का उज्ज्वल स्वरूप था। भारतीय राष्ट्रवादी आन्दोलन के विकास के अनेक आधारभूत कारण हैं। इनमें सबसे प्रमुख ब्रिटिश साम्राज्यवाद है। वस्तुतः ब्रिटिश साम्राज्यवाद के कारण ही देश को एकता प्राप्त हुई तथा इसके कारण ही लोगों ने एक राष्ट्र के रूप में सोचना प्रारम्भ किया। यह इतिहास सम्मत तथ्य है कि अंग्रेजों के भारत में आने के पूर्व दक्षिण के लोग कुछ थोड़ी अवधि को छोड़कर देश के शेष भाग से अलग थे।

इस सत्य को भी स्वीकार करना ही होगा कि ब्रिटिश शासन के कारण ही भारतीयों को यूरोपीय देशों के सम्पर्क में आना पड़ा। यूरोप में १९ वीं शताब्दी में राष्ट्रीयता तथा स्वतन्त्रता की भावना चरम उत्कर्ष पर थी। यूरोपीय देशों के स्वातन्त्र्य संघर्ष के क्रियात्मक दृष्टान्तों से भारत में भी मुक्ति, स्वतन्त्रता तथा अधिकारों के विचार क्रमशः जोर पकड़ने लगे। लार्ड रानल्डशे के शब्दों में "पश्चिमी ज्ञान की नई शराब नवयुवक भारतीयों के मस्तिष्कों में चढ़ी। उन्होंने मुक्ति तथा राष्ट्रीयता के जोर से उभरा पूर्ण पान किया। उनके सम्पूर्ण दृष्टिकोण में क्रान्ति की भावना ने प्रवेश किया।"

राष्ट्र के सम्मुख इस प्रकार के अनेक दृष्टान्त थे जहाँ जनता के उचित और और संगठित संघर्ष के सामने ब्रिटिश शासन को झुकना पड़ा था।

यूरोपीय जन-जागृति के साथ ही जिस अन्य कारण को विस्मृत नहीं किया जा सकता वह था देश-व्यापी असन्तोष। राजनीतिक अधिकारों से वंचित जनता आर्थिक रूप से भी खिन्न थी। भारत की आर्थिक पद्धति को शासकों ने अपनी आवश्यकता के अनुसार ढाल दिया था और भारतीय जनता के हितों की पूर्ण रूप से उपेक्षा की जाती थी। बसन्त का कथन है कि "भारतीय अर्थ की बुराई यह थी कि भारतीय वित्त मंत्री इंग्लैंड के हितों का भारत के हितों की अपेक्षा अधिक ध्यान रखते थे। अंग्रेज अधिकारियों का भारतीय जनता के प्रति व्यवहार अमानवीय था।" कानून भी केवल ब्रिटिश

शासकों के हित के साधन थे। भारतीयों की हत्या एक साधारण कृत्य बन गई थी और सर थियोडोर मोरिसन ने सन् १८९० ई० में इस तथ्य का उद्घाटन करते हुए लिखा था कि "यह एक अवांछनीय तथ्य है तथा जिसे छिपाने का कोई लाभ नहीं कि अंग्रेजों के द्वारा भारतीयों की हत्या प्रतिदिन होने वाली घटना है।" राष्ट्र के सभी बुद्धिमान् विचारक और सुधारवादी देश के इस आर्थिक शोषण और अत्याचारों से विक्षुब्ध और क्रुद्ध थे।

भारत की गरीब पीड़ित जनता के अनेक सजीव चित्र स्वयं अंग्रेज विद्वानों ने खींचे हैं। भारत सरकार के मुक्त व्यापार की नीति देश के विकास की बाधक थी और इसके परिणामस्वरूप जनता का आर्थिक स्तर शोचनीय हो गया था। सर विलियम हंटर ने १८८० में इस तथ्य से लोगों को परिचित कराया कि 'लगभग ४ करोड़ व्यक्ति (यहाँ भारत में) अपर्याप्त भोजन पर अपना निर्वाह करते हैं।' स्वयं भारत मंत्री लार्ड सैलिसबरी ने सन् १८७५ में स्वीकार किया 'ब्रिटिश शासन भारत का रक्तशोषण कर के उसे रक्तहीन, दुर्बल बना रहा।' ब्रिटिश शासक थे और भारतीय शोषित और उपयुक्त कारणों से दोनों के मध्य कटुता पर्याप्त रूप से बढ़ती जा रही थी।

भारतीय राजनीति के बीज रूप में अंकुरित यह आक्रोश सामाजिक आन्दोलनों में निहित है। राष्ट्रीयता की यही भावना गौरवपूर्ण अतीत के स्मरण से राजाराम मोहन राय, स्वामी दयानन्द, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द आदि समाज सुधारकों की वाणी से व्यक्त हुई। स्वामी दयानंद ने अपने अनुयायियों पर प्रबल राष्ट्रीय प्रभाव डाला और श्रीमती ऐनी बेसेन्ट के शब्दों में—'दयानंद ने ही "भारत भारतीयों का" नारे को बुलन्द किया।' विवेकानन्द के प्रभाव के सम्बन्ध में भी निवेदिता का कथन है कि वह अतुलनीय है क्योंकि 'उसकी उपास्य देवी उसकी मातृभूमि।'

इस तरह सामाजिक आन्दोलनों के परिवेश में ध्वनित राष्ट्रीयता के स्वर का प्रभाव समसामयिक साहित्य और जीवन पर पड़ा।

परिवहन तथा संचार के विकसित साधनों के कारण ये विचार एक भाषा के साहित्य में पहुँच कर सारे देश में छाने लगे।

नये ज्ञान-विज्ञान आधुनिक विचारधाराओं से परिचय प्राप्त कर लेने के कारण सुशिक्षित भारतीय राजनीतिक एवं राष्ट्रीय आकांक्षाओं की पूर्ति हेतु संगठित हो अपने आन्दोलनों को चलाने का स्वप्न संजोने लगे थे।

अखिल भारतीय कांग्रेस

सन् १८५७ के विद्रोह तथा कांग्रेस की स्थापना के बीच की अवधि भारतीय राष्ट्रीयता का बीज बोने की अवधि थी। सन् १८८५ में ये बीज अंकुरित हुए और कांग्रेस की स्थापना हुई। 'कांग्रेस का इतिहास हिन्दुस्तान की आजादी की लड़ाई का

इतिहास है[१] ।' यो प्रारम्भ मे इसका उद्देश्य राजनीतिक न था। किन्तु एक वर्ष बाद ही सन् १८८३ मे दादा भाई नौरोजी ने अध्यक्ष पद से इस बात की घोषणा की कि कांग्रेस एक शुद्ध राजनीतिक संस्था है और उसका उन सामाजिक प्रश्नो से कोई सम्बन्ध नहीं है, जिनके बारे मे मतभेद पाया जाता है[२]।

कांग्रेस के इतिहास को अध्ययन की दृष्टि से दो कालो मे विभाजित किया जा सकता है—

१ – स्वाधीनता पूर्व कांग्रेस - सन् १८८५ से १९४७ तक।

२ स्वातन्त्र्योत्तर कांग्रेस सन् १९४७ से वर्तमान तक।

प्रथम चरण को तीन वर्गो मे विभाजित किया जा सकता है—

१—प्रथम चरण — सन् १८८५ से १९०५ तक

२ द्वितीय चरण — सन् १९०६ से १९१८ तक

३—तृतीय चरण — सन् १९१९ से १९४७ तक

प्रथम चरण को हम नरम राष्ट्रीयता का युग कह सकते हैं क्योंकि प्रथम दो दशक मे कांग्रेस क्रांतिकारी नहीं बनी थी। इस युग मे इसके नेता ब्रिटिश सम्राट के प्रति निष्ठा और आज्ञाकारिता की भावना को प्रकट करते थे।

द्वितीय चरण अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे सन् १९०४ मे रूस और जापान मे युद्ध प्रारम्भ हुआ और जापान की विजय से राष्ट्रीयता की एक नयी लहर प्रवाहित हुई।

---

१ सन् १८८५ मे कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन मे अध्यक्ष ने कांग्रेस का उद्देश्य इस तरह बताया—

(क) साम्राज्य के भिन्न भिन्न भागों मे देश हित के लिए लगन से काम करने वालों की आपस मे घनिष्ठता और मित्रता बढ़ाना है।

(ख) समस्त देश-प्रेमियों के हृदय से प्रत्यक्ष मैत्री-व्यवहार द्वारा वश, धर्म और प्रान्त सम्बन्धी सम्पूर्ण पूर्व-दूषित संस्कारों को मिटाना और राष्ट्रीय ऐक्य की समस्त भावनाओं का पोषण और परिवर्धन करना।

(ग) महत्त्वपूर्ण और आवश्यक सामाजिक प्रश्नों पर भारत के शिक्षित लोगों में अच्छी तरह चर्चा होने के बाद परिपक्व सम्मतियाँ प्राप्त हों, उनका प्रामाणिक संग्रह करना।

(घ) उन तरीकों और दिशाओं का निर्णय करना जिनके द्वारा भारत के राजनीतिक देश हित के कार्य करें।

—पट्टाभि सीतारमय्या . संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ १२

२ आचार्य नरेन्द्र देव : राष्ट्रीयता और समाजवाद, पृष्ठ १६

सन् १९०५ में रूस की क्रान्ति से भी देशभक्तों को नवीन स्फूर्ति मिली और आशा की क्षीण रेखा भारतीय राजनीतिक क्षितिज पर दिखलाई दी। अपने द्वितीय चरण में ही कांग्रेस ने संघर्षपूर्ण स्थिति में प्रवेश किया। साम्प्रदायिक भावना का विस्तार होने से मुसलमानों ने कांग्रेस छोड़ दी यद्यपि कांग्रेस ने साम्प्रदायिक एकता के लिए भरसक प्रयत्न किये।

तीसरा चरण - सन् १९१९ के भारत सरकार अधिनियम की स्वीकृति के साथ प्रारम्भ हुआ तथा इसकी समाप्ति भारत को स्वतन्त्रता के साथ १९४७ में हुई। इस काल को गाँधी युग कहा जा सकता है[1]। इसी समय में पाकिस्तान के विचार ने जन्म लिया और इसकी समाप्ति स्वयं पाकिस्तान की स्थापना के साथ हुई। जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि प्रथम चरण में कांग्रेस ने किसी प्रकार के क्रान्तिकारी कदम नहीं उठाये। वस्तुतः वह नरम दलीय थी और इसीलिए अपनी माँगों के प्रति उदार और नम्र थी। वह और उसके अनुयायी ब्रिटिश न्याय-भावना में विश्वास करते थे और आन्दोलन तथा अवैधानिक कार्यों के प्रति अरुचि रखते थे। फलतः उनकी कार्यवाही प्रार्थनाओं तथा अपीलों तक सीमित थी। यह तत्कालीन परिस्थितियों का परिणाम था और डॉ० पट्टाभि सीता रामय्या के शब्दों में—"हम उन्हें उनके उस दृष्टिकोण के लिए, जिसके द्वारा भारतीय राजनीतिक सुधार के रूप में उन्होंने कार्य किया, इतने अधिक दोष नहीं दे सकते, जिस प्रकार हम आजकल के किसी भवन की नींव के रूप में दब कुछ पड़ी हुई ईंट और गारे को दोष नहीं दे सकते। उन्होंने हमारे लिए यह सम्भव कर दिया कि हम भवन की एक के पश्चात् एक ऊपर की मंजिलें खड़ी कर सकें—औपनिवेशिक स्वराज्य, साम्राज्यान्तर्गत होम रूल (अपना शासन) स्वराज्य तथा इन सबके ऊपर पूर्ण स्वतन्त्रता[2]।

स्पष्ट है कि कांग्रेस की यह प्रारम्भिक नरम और भक्तिपूर्ण नीति देश व जनता पर कोई विशेष प्रभाव न डाल सकी। सन् १८९२ के भारतीय कौंसिल अधिनियम के द्वारा नरम दल को कोई उपलब्धि नहीं हुई। देश के साधनों पर विदेशी प्रभुत्व के कारण आर्थिक बोझ बढ़ने से जनता में गहरा असन्तोष व्याप्त होने लगा। असन्तोष का एक कारण १८९७ का अकाल भी था जिसने दो करोड़ आबादी का ७० हजार वर्गमील क्षेत्र प्रभावित हुआ। जनता जब इस विषम स्थिति में थी तब सरकार महारानी विक्टोरिया का राज्याभिषेक मनाकर अनावश्यक उत्सवों में धन का व्यय कर रही थी। कांग्रेस इस स्थिति का धैर्य के साथ अध्ययन कर रही थी और जनता के साथ थी। सन् १८९९

१. पट्टाभि सीतारामय्या : संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ १
२. पट्टाभि सीतारामय्या : संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ ६९

में कांग्रेस के अध्यक्ष पद से सर विलियम वैडरबर्न ने कहा था—"मैं जनता को छोड़कर किसके लिए क्या करूं ? जनता में उत्पन्न होकर जनता के द्वारा विश्वास किया जाकर मैं जनता के लिए ही मरूंगा। इन्हीं दिनों पूना में प्लेग का प्रकोप हुआ और पूना के प्लेग कमिश्नर रैन्ड की अमानुषिक एवं अव्यावहारिक कार्यवाहियों ने जनता को उत्तेजित कर दिया था। यह रोष इतना उत्कट था कि रैन्ड और उसके साथी को ललकार बन्दूकों की गोली से उड़ा दिया गया। राजनीतिक क्षितिज पर गदर के बाद यह नई क्रान्तिकारी लाली थी जो आतंकवादी राजनीति के रूप में सम्मुख आई।

आतंकवादियों की इस हिंसात्मक प्रवृत्ति ने कांग्रेस में भी उग्रता की भावना उत्पन्न की। तिलक ने जनता की तात्कालिक मन स्थिति को पहचान कर कहा, "राजनीतिक अधिकारों के लिए लड़ना ही होगा। नरम दल वालों का विचार है कि ये अधिकार प्रेरणा से प्राप्त किये जा सकते हैं। हमारा विचार है कि उनकी प्राप्ति केवल दृढ़ दबाव से ही हो सकती है।"

इस तरह एक ओर जहाँ राजनीतिक अधिकार प्राप्त करने के लिए प्रयास हो रहे थे वहाँ दूसरी ओर लार्ड कर्जन उन्हें कुचलने के लिए प्रयत्नशील था। उसका तो मत था कि भगवान ने अंग्रेजों को भारत पर शासन के लिए चुना है तथा भारत को स्वतन्त्रता प्रदान करना भगवान की इच्छा के विरुद्ध है। इसीलिए उसने ऐसे नये अधिनियम बनाये जो भारतीयों के अधिकारों को सीमित करते थे। कलकत्ता निगम अधिनियम बना जिसके अनुसार सदस्य संख्या ७५ से २५ कर दी गई और वे ही सदस्य कम किए गए जो कलकत्ता के जन प्रतिनिधि थे। दूसरा भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम था जिसके द्वारा सिण्डीकेट, सीनेट तथा फैकल्टियों की सदस्य-संख्या कम कर अंग्रेजों को महत्त्व दिया गया तथा भारतीय विद्यालय भी सरकारी हो गये। सरकारी गोपनीयता अधिनियम (१९०४) भी पारित किया गया जिसके कारण सरकार के अधिकारों में वृद्धि हुई। 'विद्रोह' शब्द की परिभाषा विस्तृत कर दी गई और अब नागरिक मामलों के उन सरकारी तथा समाचार पत्रों की आलोचना के सम्बन्ध में भी कार्यवाही की जा सकती थी, जो सरकार को सन्देह तथा घृणा के योग्य सम्भावित कर सकते थे।

सन् १९०५ में बंग-विच्छेद कर कर्जन ने मानो बढ़ती हुई अशान्ति की अग्नि में पूर्णाहुति दी। जनता का अनुमान था कि यह कार्य बंगालियों की शक्ति क्षीण करने और कलकत्ते की राजनीतिक प्रधानता को छिन्न-भिन्न करने का षड्यन्त्र है। इसका घोर विरोध हुआ और राष्ट्रीयता के रूप में 'वन्देमातरम्' का स्वर घर-घर गूँज उठा। सरकार का भी दमनचक्र तेजी से चला। प्रत्येक प्रान्त ने बंगाल के प्रश्न के साथ अपनी

समस्याओं को जोड़ कर आन्दोलन को तीव्रतर बना दिया। 'राजभक्त भारत की कमर टूट गई और सारे देश में एक नई जागृति पैदा हो गई[1]।' बंग-विच्छेद के सम्बन्ध में ए० सी० मजुमदार का मत है कि 'लार्ड कर्जन का बंगाल के विभाजन का उद्देश्य न केवल बंगाली प्रशासन को मुक्त करना था, अपितु एक मुस्लिम प्रान्त बनाना था, जहाँ इस्लाम प्रभुत्वशाली हो सके तथा उसके अनुयायी महत्त्वशाली बन सकें।' इस आन्दोलन को तीव्र बनाने में अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं ने भी योग दिया। जापान द्वारा रूस की तथा अबीसीनिया द्वारा इटली की पराजय को 'पूर्व की उन्नति का एक चिह्न, समझा गया[2]। कांग्रेस का गरम दल सक्रिय हुआ और बहिष्कार, स्वदेशी और राष्ट्रीय शिक्षा के विचारों ने और पकड़ा।

द्वितीय चरण

सन् १९०६ में दादा भाई नौरोजी ने कांग्रेस का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए कहा कि हमारा सारा आशय केवल एक शब्द स्वशासन या स्वराज्य में आ जाता है। इंग्लैण्ड या उपनिवेशों में जो शासन प्रणाली है, वही भारत में जारी की जाय[3]।' कांग्रेस को शक्तिशाली बनाने के लिए प्रान्तीय स्तर पर समिति संगठन का तथा जिला शाखाएँ प्रारम्भ करने का निर्णय लिया गया। बंग-भंग को आधार बना कर कांग्रेस का प्रथम आन्दोलन सन् १९०६ से १९११ तक चला। सरकार ने उनका तीव्रता से दमन भी किया, किन्तु बाद में सन् १९११ में बंग-भंग रद्द करने की शाही घोषणा की गई। सन् १९०७ में कांग्रेस ने स्वदेशी, बहिष्कार और राष्ट्रीय शिक्षा के क्रियात्मक प्रस्तावों को अपनाया। स्वदेशी का आन्दोलन सम्पूर्ण राष्ट्र में व्याप्त हो गया। इधर आतंकवादी गतिविधियाँ भी सक्रिय हुई। सन् १९१४ में महासमर प्रारम्भ हुआ और कांग्रेस ने स्वशासन की पुनः माँग रखी। इस समय कांग्रेस में दो दल थे—एक नरम दल और दूसरा राष्ट्रीय दल। लोकमान्य तिलक जून १९१४ में मण्डाले जेल से रिहा हुए। तिलक राष्ट्रीय दल के थे और उन्होंने राष्ट्रीय दल के पुनः संगठन एवं होम रूल आन्दोलन के लिए सन् १९१५-१६ में अथक प्रयत्न किया। सन् १९१६ में श्रीमती बेसेंट ने भी राजनीति में प्रवेश कर होमरूल आन्दोलन को लोकप्रिय बनाया। तिलक ने कहा कि नरम दलीय देश को अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँचा सकते और देश की आजादी के लिए गरम दल ही मार्गप्रदर्शक बन सकता है। तिलक ने एक नया नारा दिया—'स्वराज्य मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है। मैं इसे लेकर रहूँगा।' एक अन्य सभा में उन्होंने

१. डा० पट्टाभि सीतारामय्या : संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ ९५
२. डा० पट्टाभि सीतारामय्या : भारत का संवैधानिक इतिहास पृष्ठ २४६
३. डा० पट्टाभि सीतारामय्या : संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ ९७

कहा—'हम स्वय अपने भाग्य के विधाता हैं और उसे तभी बना सकते हैं जब हम उसे बनाने का पक्का इरादा कर लें। स्वराज्य हमसे दूर नहीं है। यह उसी क्षण हमारे पास आ जायेगा जिस क्षण हम अपने पांवो पर खड़ा होना सीख लेंगे।' इसमे सन्देह नहीं कि होमरूल आन्दोलन ने जनता मे जागरूकता उत्पन्न की। एनी बेसेन्ट के शब्दो में मैं भारत की लम्बी बन्दूक हूँ जो सब सोने वालो को जगाये' जिससे वे जाग सकें तथा अपनी मातृभूमि के लिए कार्य कर सकें।' वस्तुत यह योजना केवल राष्ट्रीय उग्रवादियो को क्रान्तिकारियो के साथ समझौतापूर्ण सन्धि से अलग रखने तथा साम्राज्यांतर्गत स्थिति मे उन्हे सन्तुष्ट बनाये रखने के लिए थी। उनके राजनीतिक सुधार का उद्देश्य देहाती परिषदो, जिला बोर्डो, नगरपालिका व प्रान्तीय विधान सभाओ के द्वारा पूर्ण स्थानीय शासन तक सीमित था। यह कहा गया कि इनके अधिकार स्वय शासन करने वाले उपनिवेशो की विधान सभाओ के समान होंगे, चाहे उन्हें किसी भी नाम से पुकारा जाये। इनके साथ ही साम्राज्य की संसद मे भी भारत का सीधा प्रतिनिधित्व होगा जब उस संस्था मे साम्राज्य के स्वय शासन करने वाले राज्य होगे। यह भारतीय जनता का अधिकार निरूपित किया गया। इन शब्दों मे एनी बेसेन्ट का यह कथन नहीं भुलाया जा सकता—"भारत अपने पुत्रों के रुधिर से तथा अपनी पुत्रियो के गर्वपूर्ण आँसुओ से इतनी अधिक स्वतन्त्रता तथा इतने अधिक अधिकारो के बदले मे सौदा नहीं करना चाहता। भारत एक जाति के रूप मे इस बात का दावा करता है कि उसे साम्राज्य के लोगो से न्याय का अधिकार प्रदान किया जाए। भारत ने इसके लिए युद्ध से पूर्व मांग की, भारत इसके लिए युद्ध के पश्चात् मांग करेगा, किन्तु पुरस्कार के रूप मे नहीं, अपितु एक अधिकार के रूप मे वह इसके लिए कहता है।"

होमरूल आन्दोलन के साथ-साथ विप्लववादियो के आन्दोलन की गतिविधियाँ भी उत्कर्ष पर थी। एनी बेसन्ट बन्दी की गई और उनकी मुक्ति के लिए व्यापक आन्दोलन हुआ, तिलक ने तो निष्क्रिय संघर्ष की धमकी दी। महासमर के कारण देश मे अशान्ति का वातावरण निर्मित हो रहा था, अत परिस्थितियो को विपरीत देख सन् १९१७ मे राज्य सचिव ने उत्तरदायी शासन देने का आश्वासन दिया।

कांग्रेस के नरम और गरम दलो में एकता स्थापित हुई तथा हिन्दू-मुस्लिम समझौता के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आन्दोलन को नई दिशा मिली। रूसी क्रान्ति की सफलता एव आत्मनिर्णय के अधिकार से अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक परिस्थितियो मे परिवर्तन आया। भारतीय जन-मानस के असन्तोष को देखकर नए भारत मन्त्री श्री माण्टेग्यू ने ब्रिटिश शासन की नई नीति की घोषणा की। इसमे कहा गया कि ब्रिटिश साम्राज्य का उद्देश्य भारतीय स्वशासन संस्थाओ का क्रमिक विकास कर उन्हें ब्रिटिश साम्राज्या-

न्तर्गत स्वशासन की दिशा मे अग्रसर करना है । कुछ ही समय बाद सन् १९१९ मे माण्टेग्यू चेम्सफोर्ड बिल के रूप मे इन सुधारो को कानून के रूप मे परिणित भी कर दिया गया । इस विधेयक मे द्विविध शासन प्रणाली, कौंसिल मे सदस्यो की नामजदगी, राज्य परिषद्, सर्टिफिकेशन और वीटो का अधिकार, आर्डिनेन्स बनाने का अधिकार और ऐसी तमाम पीछे हटाने वाली बातें थीं । डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या के शब्दो मे 'साहित्यिक दृष्टि से यह ऊँचे दरजे की चीज थी । यह ब्रिटिश राजनीतिज्ञो द्वारा तैयार किये गये राजनैतिक लेखो के समान, भारत को स्वशासन देने के सम्बन्ध मे एक निष्पक्ष बयान था । उसमे सुधारो के मार्गों की रुकावटो का बडी स्पष्टता के साथ वर्णन किया गया था और फिर भी जोर दिया गया था कि सुधार अवश्य मिलना चाहिए[1] ।' इन सुधारो वाले माण्टेग्यू बिल के साथ शासन ने रौलट बिल जैसा कानून भी बनाया । इसके अनुसार किसी भी व्यक्ति को राजद्रोह के अपराध मे बन्दी किया जा सकता था । वस्तुत इन बिलो के पीछे शासन के दो उद्देश्य निहित थे । एक ओर जहाँ वह माण्टेग्यू बिल से उदार दल के नेताओ को अपना समर्थक बनाना चाहती थी वहीं दूसरी ओर रौलट बिल के द्वारा उग्र राष्ट्रीय तत्त्वो को विनष्ट भी करना चाहती थी । अग्रेजो की इस कूटनीति को पहचान कर गाधी जी ने इस दमनकारी बिल का राष्ट्रीय स्तर पर विरोध किया । उन्होंने इसे अन्यायपूर्ण स्वाधीनता के सिद्धान्तो को घातक बताया । सारे देश ने इस आन्दोलन का समर्थन किया । इस आन्दोलन को लेकर पजाब मे अमृतसर के जलियावाला बाग मे सरकार ने सामूहिक हत्याकाण्ड का षड्यन्त्र रचा । अमृतसर का यह पूर्व नियोजित सामूहिक हत्याकाण्ड, दिल्ली और वीरमगाव के गोली-काण्ड, पजाब मे फौजी कानून के भीषण दमनकारी कृत्य आदि ने भारतीय जनता के के सुषुप्त आत्म-सम्मान को बुरी तरह झकझोर डाला । वस्तुत राष्ट्रीय जन-जा ृति के इतिहास म 'जलियावाला हत्याकाण्ड' का एक विशिष्ट स्थान है । सरकार इस जन आन्दोलन से भयभीत हो उठी और उसने अपने पक्ष मे नरमदली राजनेताओ की शक्ति को सगठित किया । इन नवीन परिस्थितियो मे काग्रेस ने सन् १९२० मे कलकत्ता मे एक विशेष अधिवेशन का आयोजन कर काग्रेस की भावी योजना पर विचार विमर्श किया । उसी वर्ष नागपुर अधिवेशन मे काग्रेस ने अहिंसात्मक असहयोग-आन्दोलन को स्वीकृत कर 'शातिपूर्ण एव वैधानिक तरीको से स्वराज्य-प्राप्ति' को अपना ध्येय घोषित किया । वस्तुत साम्राज्य के भीतर स्वायत्त शासन की असफलता स्पष्ट रूप म सम्मुख आ चुकी थी । प० जवाहरलाल नेहरू ने 'मेरी कहानी' मे स्वायत शासन की इस स्थिति पर प्रकाश डालते हुए लिखा है - "सरकार ने म्युनिसिपैलिटी के शासन का फौलादी चौखटे

१ डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या, सक्षिप्त काग्रेस का इतिहास, पृष्ठ ८३

में जैसा ढांचा बनाया, वह आमूल परिवर्तन या नवीन सुधारों को रोकने वाला था—म्युनिसिपैलिटियां हमेशा ही सरकार के कर्ज से दबी रहती हैं और इसलिए पुलिस की निगाह के अलावा सरकार जिस दूसरी निगाह म्युनिसिपैलिटी को देखती है वह है कर्ज देने वाली साहूकार की निगाह।'

ऐसी स्थिति में गांधी जी ने सत्याग्रह की घोषणा कर नये युग का सूत्रपात किया। यह वह युग था जब पंजाब के अत्याचार और खिलाफत के प्रश्न पर जनता अत्यन्त व्यग्र हो रही थी। गांधी जी द्वारा उठाया गया यह कदम कांग्रेस की नई नीति का प्रतीक है जिसका मूल स्वर विद्रोह था। इसके साथ ही कांग्रेस की आग्रहपूर्ण प्रार्थनाओं और नपे-तुले प्रस्तावों के स्थान पर स्वावलम्बन और दृढ़ आत्मविश्वास की भावना का उदय होता है। गांधी जी ने अपने १० मार्च के घोषणा-पत्र में असहयोग-आन्दोलन की रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए कहा : 'यदि हमारी मांगें स्वीकार न हुईं तो हमें क्या करना चाहिए, इस पर विचार कर लेना आवश्यक है। एक जंगली मार्ग खुल्लम-खुल्ला या छिपे हुए युद्ध का है। इस मार्ग को छोड़िए, क्योंकि वह अव्यवहार्य है। यदि मैं सबको समझा सकूं कि यह उपाय हमेशा बुरा है, तो हमारे सब उद्देश्य शीघ्र सिद्ध हो जायें। कोई व्यक्ति या कोई राष्ट्र हिंसा के त्याग द्वारा जो शक्ति उत्पन्न कर सकता है, उसका मुकाबला नहीं कर सकता। अतएव हमारे लिए असहयोग ही एकमात्र औषधि है। यदि यह सब तरह की हिंसा से मुक्त रखी जाय तो यही सबसे अच्छी और रामबाण औषधि है। यदि सहयोग-द्वारा हमारा पतन होता हो और हमारे धार्मिक भाव को आघात पहुंचता हो, तो असहयोग हमारे लिए कर्तव्य हो जाता है[१]।' खिलाफत के प्रश्न पर भारत तथा ब्रिटेन की सरकार में सुलह न हो सकी और गांधी जी के लिए असहयोग आन्दोलन को मूर्त रूप देना आवश्यक हो गया।

असहयोग आन्दोलन के लिए कांग्रेस ने जो रूपरेखा प्रस्तुत की वह इस प्रकार थी—

(क) सरकारी उपाधियों तथा अवैतनिक पदों को छोड़ दिया जाय और म्युनिसिपल बोर्ड तथा अन्य संस्थाओं में जो लोग नामजद हुए हों, वे इस्तीफा दे दें,

(ख) सरकारी दरबारों आदि द्वारा किये जाने वाले सरकारी और अर्द्ध-सरकारी उत्सवों में भाग लेने से इनकार किया जाय,

(ग) राजकीय तथा अर्द्ध राजकीय स्कूलों तथा कालेजों से छात्रों को धीरे-धीरे निकाल लिया जाय,

---

१. डॉ० बी० पट्टाभि सीतारामय्या : संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ १०४

(घ) वकीलों तथा मुवक्किलों द्वारा ब्रिटिश अदालतों का धीरे-धीरे बहिष्कार किया जाय और पंचायती अदालतों की स्थापना की जाय,

(ङ) फौजी, क्लर्की तथा मजदूरी करने वाले लोग मेसोपोटामिया में नौकरी करने के लिए भरती होने से इनकार करें,

(च) नई कौंसिलों के चुनाव के लिए खड़े हुए उम्मीदवार अपने नाम उम्मीदवारी से वापस ले लें, और

(छ) विदेशी माल का बहिष्कार किया जाय।[1]

इसके साथ ही स्वदेशी वस्त्रों को अपनाने और प्रत्येक घर में हाथ की कताई और बुनाई को पुनरुज्जीवित करने पर विशेष बल दिया गया।

असहयोग आन्दोलन के देशव्यापी प्रचार करने के लिए गांधी जी ने व्यापक दौरा किया। उनका कहना था कि अगर लोग निष्ठा के साथ इस कार्यक्रम को अपना लें तो स्वराज्य एक साल में ही मिल जायगा। अहिंसा और सत्य का परिपालन सत्याग्रही का अनिवार्य कर्तव्य निरूपित किया। आन्दोलन ने सारे राष्ट्र में नई हलचल पैदा की। स्त्रियों और मजदूरों ने भी इसमें भारी संख्या में भाग लिया। मुस्लिम लीग ने भी कन्धा से कन्धा मिलाया किन्तु दुख है कि उनका यह सहयोग पहला और अन्तिम बन कर रह गया। यद्यपि गांधी जी ने आन्दोलन में अहिंसक मार्ग को अपनाने पर जोर दिया था, किन्तु ब्रिटिश सरकार के दमन-चक्र से जनता उत्तेजित हो गई और चौरा-चौरी में हिंसात्मक घटनाएं घटित होने से असहयोग आन्दोलन स्थगित कर दिया गया। गांधी जी इस निश्चय पर पहुँचे कि आन्दोलन की सार्थकता उस समय ही है जब जनता अहिंसा के मर्म को गम्भीरता से समझ कर वैसा आचरण करे। गांधी जी द्वारा आन्दोलन वापस लेने की देश-व्यापी प्रतिक्रिया हुई और नेताओं तथा जनता ने गांधी जी की तीव्र आलोचना की। सी० आर० दास, मोतीलाल नेहरू, लाजपत राय जैसे वरिष्ठ नेताओं ने इस निश्चय के प्रति अपना असन्तोष व्यक्त किया। आन्दोलन के स्थगित होने के कारण साम्प्रदायिक तनाव में भी वृद्धि हुई। स्वयं प० जवाहरलाल जी अपनी आत्मकथा में यह स्वीकार करते हैं कि यदि यह आन्दोलन स्थगित किए जाने के बजाय सरकार द्वारा इसका दमन किया जाता तो सम्भव है कि बाद के वर्षों में फैलने वाली साम्प्रदायिक कटुता और दंगों का विस्तार इस सीमा तक न हुआ होता। आन्दोलन के स्थगन से जनता का उत्साह कुंठित हो गया और नेताओं में मतभेद उत्पन्न होने के कारण राष्ट्रीय एकता को धक्का पहुँचा।

इसी वर्ष देश में कई अन्य घटनाएं भी हुईं जिनमें से प्रिन्स आफ वेल्स के आग-

---

१ डॉ० बी० पट्टाभि सीतारामय्या : संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास, पृ० २१०-११

मन का बहिष्कार, भोपाल-विद्रोह, रेलवे-मजदूरों की हड़ताल प्रमुख थीं। युवराज का सभी स्थानों पर बहिष्कार किया गया और शासन ने कठोरता के साथ इनका दमन किया। फलत सम्पूर्ण देश में प्रदर्शन, लाठी चार्ज और गोलीकाण्ड की घटनाएँ हुई।

असहयोग आन्दोलन की असफलता और अंग्रेजो की कूटनीतिक चालो के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय एकता को आघात लगा। मुस्लिम लीग ने सदैव के लिए राष्ट्रीय आन्दोलन मे कांग्रेस का साथ छोड़ दिया। कांग्रेस में भी अनेक दल बन गये। किन्तु गांधी जी अपनी असहयोग नीति पर अटल थे। असहयोग आन्दोलन के बाद के सात वर्ष का काल राजनीतिक दृष्टि से निष्क्रियता और आत्ममन्थन का है। साथ ही यह साम्प्रदायिकता के नग्न नृत्य का इतिहास भी है। मुस्लिम लीग कांग्रेस से पृथक हो चुकी थी और मुस्लिम हितो का नारा बुलन्द करने लगी थी। उसकी प्रतिक्रिया हिन्दुओ मे भी हुई और हिन्दू महासभा की गतिविधियों मे सक्रियता आई। कांग्रेस की मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति से कट्टर हिन्दू पथी क्षुब्ध थे और अपना पृथक मार्ग बनाने के प्रयत्न मे थे। हिन्दू महासभा का अखिल भारतीय स्तर पर गठन किया गया और राष्ट्रीय स्वय सेवक की स्थापना हुई। साम्प्रदायिक भावना का तीव्रता से विस्तार हुआ और साम्प्रदायिक दगो की जैसे अटूट शृखला स्थापित हो गई।

भारतीयों के बढ़ते हुए असन्तोष को लक्ष्य करते हुए सन् १९२७ मे साइमन कमीशन की नियुक्ति की घोषणा की गई और कमीशन का उद्देश्य भारत मे उत्तरदायी शासन स्थापित करने के लिए सुधारों का एकत्रीकरण बताया गया। कांग्रेस ने साइमन कमीशन के बहिष्कार करने का निर्णय लिया, फलत सभी स्थानो पर जनता ने उसका घोर विरोध किया। लाहौर में तो लाला लाजपतराय के नेतृत्व मे प्रदर्शन करने वालो पर भीषण लाठी चार्ज किया गया जिसमे लाला लाजपतराय को सगीन चोट पहुची। कलकत्ता कांग्रेस (सन् १९२८) ने इसके विरुद्ध निन्दा का प्रस्ताव पारित किया। इस घटना ने क्रान्तिकारियों मे नई जान डाल दी और कुछ समय बाद ही उन्होंने लाला लाजपतराय के हत्यारे पुलिस अधिकारी साण्डर्स की हत्या कर दी। इसी वर्ष ८ अप्रैल को लेजिस्लेटिव असेम्बली मे बम फेंका गया और भगतसिंह और उनके साथी दत्त इस प्रकरण मे पकडे गये। सारे देश मे इसकी प्रतिक्रिया हुई और भगतसिंह भारतीय युवकों के आराध्य बन गये। कांग्रेस की नीति में परिवर्तन हुआ और मद्रास अधिवेशन मे उसने पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पास किया और अपने आपको साम्राज्यवाद विरोधी अन्तर्राष्ट्रीय लीग के साथ सम्बद्ध करने का निर्णय लिया।

इन्हीं दिनों साम्यवादी दल के नेतृत्व मे मजदूर आन्दोलन तीव्र हो रहा था। २० मार्च

१९२९ को यू० पी०, बम्बई और पंजाब आदि प्रांतों में पुलिस ने एक साथ अनेक मकानों पर छापा मारा और मजदूर आन्दोलन के वरिष्ठ नेताओं को साम्यवाद के प्रचार के अभियोग में गिरफ्तार किया। इन नेताओं पर मेरठ में मुकदमा चलाया गया जो मेरठ काण्ड के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

इन राजनीतिक गतिविधियों से सारा राष्ट्र आन्दोलित हो रहा था। राजनीतिक कैदियों के साथ अधिकारियों का व्यवहार अमानवीय था। उन्हें नाना प्रकार की यन्त्रणाएँ दी जाती थीं। फलतः यतीन्द्रनाथ दास और पूँजी विजया ने क्रमशः ६४ और १६४ दिन के ऐतिहासिक आमरण अनशन किये और शहादत पाई। इन वीरों के लिए कांग्रेस ने सैद्धान्तिक मतभेदों के बावजूद लाहौर अधिवेशन में शोक प्रस्ताव किया और कहा कि 'इन लोगों के आत्मघात के लिए भारतवर्ष की विदेशी सरकार जिम्मेदार है'[1]। इन्हीं दिनों लार्ड इरविन की ट्रेन को बम से उड़ाने का असफल प्रयत्न किया गया।

२६ जनवरी १९३० को सम्पूर्ण राष्ट्र ने स्वराज्य दिवस मनाया और कांग्रेस ने लाहौर अधिवेशन में 'शान्तिपूर्ण और उचित उपायों से पूर्ण स्वाधीनता की प्राप्ति' को अपना ध्येय घोषित किया। इस तरह प्रथम असहयोग आन्दोलन के उपरान्त १९३० तक किसी आन्दोलन का आयोजन न हो सका। स्वराज्य पार्टी कौंसिलों में जाकर भी कोई महत्वपूर्ण कार्य न कर सकी। उनकी गतिविधियाँ प्रलापकारी भाषण तक सीमित रहीं। सन् १९३० में गांधी जी के नेतृत्व में सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ हुआ और पूर्ण स्वराज्य को स्वतन्त्रता का ध्येय स्वीकार किया गया। १२ मार्च १९३० को गांधी जी ने अपनी ऐतिहासिक डांडी यात्रा प्रारम्भ की और नमक कानून भंग किया। उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और जिसके विरोध में जगह जगह प्रदर्शन और हड़तालें आयोजित हुईं। शोलापुर और पेशावर में कई दिन तक जनता का राज्य रहा। पेशावर में गढ़वाली सैनिकों ने प्रदर्शनकारियों पर गोली चलाने से इन्कार कर दिया। जनता के इस उग्र भैरव रूप को देखकर सरकार ने समझौतावादी दृष्टिकोण अपनाया और और २६ जनवरी १९३१ को गांधी जी को मुक्त कर दिया। दो माह बाद गांधी जी और वाइसराय में 'गांधी इरविन पैक्ट' हुआ जिसके अनुसार गांधी जी ने आन्दोलन स्थगित कर दिया और द्वितीय गोलमेज परिषद में कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में भाग लेना स्वीकार कर लिया। एक बार फिर देश के मजदूर और युवक वर्ग ने गांधी जी के इस निर्णय का तीव्र विरोध किया। गोलमेज परिषद् में गांधी जी को कुछ हासिल न हो सका। कहा गया है कि इस परिषद् का आयोजन ही इस उद्देश्य से किया गया था कि

१ (स०) कन्हैयालाल कांग्रेस के प्रस्ताव, पृष्ठ ४९६

स्वराज्य की माग को बातचीत और कानूनी दाव-पेंच की भूलभुलैया में भटका कर गुमराह किया जा सके। गांधी-इर्विन समझौते के द्वारा जो समय और अवसर मिला, नौकरशाही ने उसका लाभ उठाकर अपनी तैयारियाँ पूरी कर लीं। विभिन्न प्रान्तों में संकटकालीन आर्डिनेन्स जारी कर दिये गये। देश का वातावरण उत्तरोत्तर तनावपूर्ण हो गया। गांधी जी के स्वदेश लौटने पर उन्हें अन्य प्रमुख नेताओं के साथ गिरफ्तार कर कांग्रेस को गैरकानूनी घोषित कर दिया गया। द्वितीय गोलमेज परिषद् में भारत को नया विधान देने का जो ढोंग रचा गया था उसके अनुसार केवल तीन निर्णय हुए। प्रान्तीय स्तर पर स्वशासन के अधिकारों में वृद्धि की जाय, यद्यपि गवर्नर को जो विशेषाधिकार दिये गये उसके कारण बढ़े हुए अधिकारों का कोई वास्तविक मूल्य न था। केन्द्र में संघराज्य की स्थापना का जो निर्णय लिया गया उसमें राजाओं को प्रमुख स्थान मिला तथा लीग की इच्छानुसार दो राष्ट्रों की नीति के लिए वैधानिक भूमिका का निर्माण हो गया। तीसरा निर्णय ब्रिटिश साम्राज्य के आर्थिक हितों की रक्षा का था। दूसरे शब्दों में अछूतों को विशेष प्रतिनिधित्व देकर हिन्दू जाति से पृथक करने का षड्यन्त्र रचा गया। इस पर गांधी जी ने यरवदा जेल में आमरण अनशन की घोषणा की। उन्होंने अपना अनशन २० सितम्बर से प्रारम्भ किया। इस घटना से सारा देश चिंतित हो उठा और दलित जातियों से समझौता होने पर गांधी जी ने अपना अनशन समाप्त किया। आत्मशुद्धि के लिए सन् १९३३ में गांधी जी ने इक्कीस दिन के उपवास की घोषणा की और इस पर सरकार ने उन्हें जेल से रिहा कर दिया। उनकी रिहाई से देश में उत्तेजना न फैले, इस ध्येय से गांधी जी ने छः माह के लिए सविनय अवज्ञा आन्दोलन को स्थगित कर दिया। गांधी जी के इस निर्णय की कटु आलोचना हुई। विट्ठल भाई पटेल और सुभाषचन्द्र बोस जैसे वरिष्ठ नेताओं ने अपने वक्तव्य में कहा— "सविनय अवज्ञा आन्दोलन को स्थगित किए जाने की श्री गांधी की ताजा कार्यवाही असफलता की स्वीकारोक्ति है—हमारा यह स्पष्ट मत है कि राजनीतिक नेता के रूप में गांधी जी असफल हो चुके हैं। समय आ गया है कि कांग्रेस का नवीन सिद्धान्त के आधार पर नए तरीकों से पुनर्गठन किया जाए, जिसके लिए नया नेतृत्व अत्यावश्यक है[1]।" इन्हीं विचारों के कारण सन् १९३४ में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी स्थापित हुई। सच तो यह है कि रूसी समाजवाद ने भारतीय राजनीतिज्ञों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया। सन् १९३४ में आचार्य नरेन्द्रदेव की अध्यक्षता में पटना में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का जो अधिवेशन हुआ उसमें सौ से अधिक प्रतिनिधियों ने भाग लिया। समाजवादियों ने कांग्रेस के विधान तथा कार्यक्रम का विरोध कर शक्तिशाली संगठन

१. आर० पामदत्त - इण्डिया टुडे, पृष्ठ ३५३—फुटनोट

बनाने पर जोर दिया। इसी वर्ष सरकार ने भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी को अवैध घोषित कर दिया। समाजवादी विचारधारा का उन्मेष हुआ और जवाहरलाल नेहरू के कांग्रेस अध्यक्ष निर्वाचित होने के कारण उसे मान्यता प्राप्त हुई। कांग्रेसाध्यक्ष के रूप में दिये गये भाषण में उन्होंने कहा था कि "मुझे विश्वास है कि दुनिया और भारत की समस्याओं का समाधान समाजवाद में है—मैं चाहता हूँ कि कांग्रेस एक सोशलिस्ट संघटन बनकर दुनिया की उन शक्तियों का हाथ बटाय, जो नयी सभ्यता का निर्माण करने में लगी हुई हैं।" इसके पूर्व सन् १९३३ में भी उन्होंने कहा था कि "आज संसार को कम्युनिज्म और फासिज्म में से एक चुनना है। मैं तो पूरे तौर पर कम्युनिज्म के साथ हूँ। कम्युनिज्म के मूल सिद्धान्त और इतिहास का वैज्ञानिक विश्लेषण दोनों सही है[1]।" यह वह समय था जब अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति करवट ले रही थी और विश्व पर द्वितीय महायुद्ध के बादल घुमड़ने लगे थे।

भारत में समाजवादी विचारधारा के अभ्युदय होने पर भी जनता का विश्वास और श्रद्धा कांग्रेस और उसके कार्यक्रम के ऊपर ही रही आई। अहिंसक आन्दोलनों की असफलता के बाद भी गांधी जी ही जनता के सर्वमान्य नेता थे। उनकी सफलता का रहस्य बतलाते हुए यह ठीक ही कहा गया है कि गांधी जी के राजनीतिक मार्ग के अतिरिक्त अन्य कोई उपयुक्त मार्ग न था। लिबरल का वैधानिक सुधार आन्दोलन जनता को आकर्षित नहीं कर सकता था। स्वराज्य-पार्टी की कौंसिलों में प्रवेश की नीति लाभकर सिद्ध न हुई। साम्प्रदायिक दल केवल फूट को जन्म देते थे। क्रांतिकारी आन्दोलन वीरता तथा उत्साहवर्धक होते हुए भी जनता में जड़ें न जमा सका था। समाजवादी आन्दोलन के लिए उपयुक्त परिस्थितियाँ तैयार नहीं थीं। दूसरा कारण यह था कि गांधी जी की सत्याग्रह युद्ध पद्धति में सम्पूर्ण जनता भाग ले सकती थी, अतः गांधी जी भारतीय जनता के शीघ्र जननायक हो गये थे[2]।

राजनीतिक चेतना के विस्तार के कारण जो विभिन्न राजनीतिक विचार-धाराओं के प्रतिफलन से हुई, कांग्रेस को पुनः उग्र रूप धारण करना पड़ा। कांग्रेस के फैजपुर अधिवेशन में जवाहरलाल नेहरू ने स्पष्ट किया कि "हमारे सामने असली उद्देश्य यह है कि देश की सारी साम्राज्यवाद विरोधी शक्तियों का एक संयुक्त मोर्चा तैयार किया जाय। कांग्रेस ऐसा संयुक्त सार्वजनिक मोर्चा पहले भी थी और अब भी है और यह बात लाजिमी है कि जो कुछ काम हो, उसकी धुरी और बुनियाद कांग्रेस ही हो।

१ रामगोपाल भारतीय राजनीति, पृष्ठ ३७७
२ डॉ० चण्डीप्रसाद जोशी हिन्दी उपन्यास समाजशास्त्रीय विवेचन, पृष्ठ १९६

संगठित मजदूरों और किसानों के सक्रिय सहयोग से यह मोर्चा और भी मजबूत होगा और हमें इसके लिए कोशिश करनी चाहिए।' इसी अधिवेशन में विश्व युद्ध होने पर भारत द्वारा अंग्रेजों को किसी भी प्रकार का सहयोग न देने का निर्णय किया गया।

कांग्रेस की प्रतिष्ठा का ज्ञान सरकार को प्रान्तीय धारा-सभाओं के चुनाव में बहुमत में आने पर हो गया। इन चुनावों में १५८५ स्थानों में से ७११ कांग्रेस को प्राप्त हुए और पांच प्रान्तों में उसका बहुमत रहा। चार प्रान्तों में वह सबसे बड़ी पार्टी के रूप में आई तथा केवल पंजाब और सिन्ध में वह अल्पमत में रही। चुनाव के उपरान्त मन्त्रिमण्डल का गठन स्वाधीनता इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है। डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या के शब्दों में 'अमल में जब मन्त्रिमण्डल बनाये गये तब उसने राष्ट्रीय संगठन के मेहराब की चुनाई की। असहयोग का रास्ता बदला, लेकिन सहयोग का वक्त अभी नहीं आया था। एक्ट बनाने से ऐक्ट के जिस हिस्से का सम्बन्ध था उसके विरोध में कांग्रेस के रुख में कोई फर्क नहीं आया था[१]।'

प्रान्तीय शासन प्राप्त होने पर भी कांग्रेस कानून के बन्धनों के कारण कुछ विशेष कार्य न कर सकी। ऐसे भी उदाहरण देखने में आए जहाँ सत्ता-प्राप्ति के कारण कांग्रेसी कार्यकर्ताओं ने जन-हित की उपेक्षा कर वैयक्तिक स्वार्थ-साधन की पूर्ति की। कांग्रेस में मतभेद की खाई गहरी होने लगी और फलतः सुभाषचन्द्र बोस ने कांग्रेस के अन्तर्गत सन् १९३९ में अग्रगामी दल स्थापित किया। एक वामपक्षीय संगठन समिति गठित हुई जिसमें फारवर्ड ब्लाक, सोशलिस्ट, नेशनल फ्रन्ट (कम्युनिस्ट), रेडिकल डमोक्रेटिक पार्टी, किसान सभा और मजदूर संगठन के लोग शामिल थे। दल ने पूर्ण राजनीतिक स्वतन्त्रता और स्वतन्त्र समाजवादी सरकार की स्थापना अपना ध्येय घोषित किया।

पारस्परिक मतभेद की इस स्थिति में सन् १९३९ में द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ हुआ। वायसराय ने स्वेच्छा से भारत के इस युद्ध में शामिल होने की घोषणा की। कांग्रेस ने वायसराय के इस कदम की भर्त्सना करते हुए घोषित किया कि "हम ब्रिटेन को कोई सहायता नहीं दे सकते क्योंकि इसका अर्थ ब्रिटेन की उस साम्राज्यवादी नीति का समर्थन होगा जिसे मिटाने के लिए कांग्रेस सदैव प्रयत्नशील रही है। सन् १९३९ दिसम्बर माह में इन्हीं कारणों से कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों ने त्यागपत्र दे दिया। रामगढ़ कांग्रेस अधिवेशन में भी इसका तीव्र विरोध किया गया। सविनय अवज्ञा आन्दोलन का निश्चय किया गया तथा उसका नेतृत्व एक बार फिर गांधी जी के हाथों सौंपा गया। गांधी जी ने सेनापति की हैसियत से आदेश दिया—"हर

१ डॉ० बी० पट्टाभि सीतारामय्या : संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ ३१४

कांग्रेस समिति सत्याग्रह समिति बन जाय और कांग्रेसजनों की फहरिस्त बनायें जो सबके प्रति सद्‌भावना से प्रेरित हो जिन्हें किसी प्रकार की अस्पृश्यता में विश्वास न हो, जो नियमित रूप से कताई करते हों और जो दूसरे कपड़े छोड़कर केवल खादी पहनने के आदी हों।" ऐसे व्यक्तियों को 'सक्रिय सत्याग्रही' कहा गया। दूसरे प्रकार के ऐसे सत्याग्रही 'निष्क्रिय सत्याग्रही' कहे गये जिन्हें सत्याग्रह के मूल सिद्धान्तों में विश्वास था किन्तु वे कताई न करते थे और सत्याग्रह कर जेल जाने को तैयार न थे।

गांधी जी ने स्वभावानुसार वायसराय से समझौता द्वारा हल निकालने का प्रयत्न किया। किन्तु इसका कोई परिणाम न निकला। सरकार ने दमनात्मक रुख अपनाया यद्यपि तब तक सत्याग्रह प्रारम्भ नहीं हुआ था। हजारों व्यक्ति गिरफ्तार कर लिये गये और विवश हो १७ अक्टूबर १९४० को युद्ध विरोधी आन्दोलन का श्रीगणेश विनोबा जी द्वारा किया गया। उनके सम्बन्ध में बोलते हुए गांधी जी ने कहा 'मेरे बाद विनोबा अहिंसा के सबसे अच्छे व्याख्याकार हैं, वे मूर्तिमान् अहिंसा है, उन्होंने एक खास इलाके में रचनात्मक कार्य करने में अपने को संलग्न कर रखा है, उनमें मुझसे अधिक एकाग्रचितता है। उनकी युद्ध से घृणा विशुद्ध अहिंसा से उपजी है।"

आन्दोलन से सरकार को झुकना पड़ा और वायसराय ने अपनी कौंसिल में सात नरम दलीय सदस्यों को सम्मिलित किया। युद्ध सलाहकार कौंसिल बनाई गई और सत्याग्रहियों को जेल से छोड़ना प्रारम्भ किया। गांधी जी परिस्थिति को परख रहे थे और उन्होंने कहा "अब जब तक कि आतंक और अफवाहों को खत्म करने के लिए लोगों की अधिक आवश्यकता है, मैं उन्हें जेल नहीं भेजना चाहता।" उन्होंने सत्याग्रहियों से रचनात्मक कार्य में संलग्न होने का निर्देश दिया।

जापान की विजय और उसकी प्रेरणा से मोहनसिंह के नेतृत्व में राष्ट्रीय सेना के गठन से देश में नवीन जागृति आई। अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति को देखते हुए कांग्रेस के नेतृत्व में भारत का असहयोग ब्रिटिश सरकार के लिए समस्या बन गई थी। इस गत्यवरोध को दूर करने के लिए स्टैफर्ड क्रिप्स एक योजना लेकर मार्च १९४२ में भारत आये। इस योजना में कहा गया था कि नये भारतीय यूनियन का ऐसा डोमिनियन स्थापित किया जाय जो ब्रिटिश ताज के प्रति निष्ठा द्वारा ब्रिटेन व दूसरे राष्ट्रमण्डलीय राष्ट्रों से सम्बन्ध रखे लेकिन हर अर्थ में उनके समान और बराबर हो—आंतरिक या परराष्ट्र सम्बन्धी किसी मामले में किसी के अधीन न हो।

क्रिप्स विभिन्न राजनीतिक दलों के प्रतिनिधियों से मिले, किन्तु उनकी

समझौता-वार्ता असफल रही। इधर जापान की विजय भारतीयों के लिए प्रेरणा का स्रोत बन गई थी और देश उसे सहानुभूतिपूर्ण नेत्रों से देख रहा था। क्रिप्स-योजना की असफलता से जनता में रोष की भावना व्याप्त हो गई। युद्ध के कारण भारत के कष्ट बढ़ रहे थे और समस्या के निराकरण का कोई मार्ग दिखलाई नहीं पड़ता था। गांधी जी के शब्दों में "भारत एक शव के समान है जो मित्र राष्ट्रों के कन्धों पर भारी बोझ की तरह लदा हुआ है। भारत की समस्या का केवल एक हल है कि अंग्रेजी राज का अन्त हो।"

बयालीस के आन्दोलन की भूमिका तैयार हो रही थी। गांधी जी ने इस आन्दोलन के लिए प्रत्येक भारतीय का आह्वान किया। उन्होंने कहा "इसी क्षण से तुममें से हर स्त्री-पुरुष को अपने को स्वाधीन मानना चाहिए और इस तरह काम करना चाहिए मानो तुम आजाद हो और साम्राज्यवाद के चंगुल में जकड़े हुए नहीं हो।" उन्होंने जनता को "मरो या करो" का मन्त्र दिया। आन्दोलन प्रारम्भ होने के पूर्व ही बम्बई में ९ अगस्त को गांधी जी तथा कार्य समिति के सदस्यों को गिरफ्तार कर लिया गया और कांग्रेस गैर कानूनी घोषित कर दी गई। नेताओं के बिना आन्दोलन आरम्भ हो गया और देखते ही देखते उसने भयंकर रूप धारण कर लिया। सरकार ने क्रूरता से आन्दोलन का दमन किया। अनुमान के अनुसार पुलिस की गोली, बम और मार से १५,००० से कम व्यक्ति नहीं मरे। आन्दोलन की विकरालता के सम्बन्ध में भारत सरकार की सूचना में कहा गया कि "९४० मारे गये, १६३० घायल हुए, ५३८ बार गोली चलाई गई, ६०,२२९ व्यक्ति गिरफ्तार हुए, ६० बार फौज बुलाई गई। पटना, भागलपुर, नदिया, मुंगेर, तालचेरा और तमलुक में ६ बार हवाई जहाजों से बम बरसाये गये। ३१८ रेलवे स्टेशन जलाये गये, १२,००० स्थानों पर टेलीफोन व टेलीग्राफ के तार काटे गये, ९४५ डाकखाने लूटे और जलाये गये, ५९ रेलगाड़ियां पटरी से उतारी गईं, रेलवे १८ लाख रुपये के डिब्बों व इंजनों की क्षति हुई, ९ लाख रु० की ट्रकों की क्षति, स्टेशनों के नष्ट होने से ८।। लाख रु० की क्षति हुई। यद्यपि कांग्रेस की नीति अहिंसा थी पर क्रुद्ध हो जाने पर जनता ने हिंसात्मक नीति को भी अपना लिया था। सोशलिस्टों और वे जिन्हें अहिंसा में विश्वास नहीं था हिंसात्मक कार्यों की प्रेरणा देते थे।

जिस समय बयालीस की क्रान्ति जोर पकड़ रही थी सुभाषचन्द्र बोस ने 'दिल्ली चलो' का नारा बुलन्द किया और आजाद हिन्द फ़ौज के साथ स्वदेश को स्वाधीनता दिलाने हेतु बर्मा से आगे बढ़े। यह ठीक ही कहा गया है कि यदि भारत में क्रान्ति का आरम्भ न होता तो सिंगापुर में आई० एन० ए० का मोर्चा न बांधा जाता।

अनायास ही महायुद्ध ने पलटा खाया और सन् १९४४ म जापान तथा आजाद हिन्द फौज को असफलता का मुह देखना पडा । आजाद हिन्द फौज को जगह-जगह आत्मसमपरण करना पडा । इन घटनाओ ने विश्व का ध्यान भारत की ओर आकर्षित किया और अन्तर्राष्ट्रीय दबाव के कारण ब्रिटेन को उदार दृष्टिकोण अपनाने के लिए बाध्य होना पडा । सन् १९४५ म ब्रिटेन मे मजदूर दल की विजय हुई और फलत भारत सम्बधी नीति मे परिवतन आया । आजाद हिन्द फौज के अधिकारियो पर मुकदमा चलाया गया जिससे देश एक बार फिर जाग्रत हो उठा। जनता के विरोध को देखकर अभियुक्तो को मुक्त कर दिया गया । अभी यह घाव ताजा ही था कि फरवरी १९४६ मे नाविक विद्रोह हो गया । बम्बई उसके निकट १२ नौ सैनिक शिविरो व २० नगर डाले २० जहाजो के २० हजार कमचारी इस विद्रोह मे शामिल थे। लीग और काग्रेस ने इसका विरोध किया किन्तु बयालीस की क्रान्ति का विरोध करने वाली कम्युनिस्ट पार्टी ने नाविक विद्रोह का समथन किया ।

ऐसी स्थिति मे ब्रिटिश पार्लियामेंट ने भारत की राजनीतिक स्वाधीनता की योजना प्रस्तुत करने हेतु एक मिशन की नियुक्ति की । माच १९४६ म पूण स्वाधीनता देने की घोषणा भी कर दी गई। केबिनेट मिशन मे राजनीतिक दलो के नेताओ से चर्चा की पर अपने मतव्य म असफल रही । अन्तत एक अस्थायी सरकार का गठन किया गया । मुस्लिम लीग ने इसका विरोध किया और पाकिस्तान की माग पर जोर दिया । सारे देश मे साम्प्रदायिक दगे हुए और कलकत्ता, नोआखाली और बिहार के भीषण दगे भारतीय इतिहास के काले पृष्ठ बन गये ।

राष्ट्र की इस विषम आन्तरिक स्थिति म प्रधान मत्री एटली ने जून १९४८ तक भारत छोड देने का एलान किया । काग्रेस और मुस्लिम लीग दोनो पुन सक्रिय हुए । ३ जून १९४७ को देश विभाजन की घोषणा हुई और अनचाहे रूप मे काग्रेस को इसे स्वीकार करना पडा । यह एक दुखद घटना थी और स्वय गाधी जी ने इसे ३२ वर्षों के सत्याग्रह सग्राम का लज्जाजनक परिणाम बताया । देश विभाजन के साथ देश स्वाधीन हुआ और काग्रेस दल सत्तारूढ हुआ ।

आतकवादी आन्दोलन

स्वाधीनता आन्दोलन म आतकवादियो की हिंसात्मक प्रणाली का भी एक विशिष्ट योग रहा है । सन् १८५७ के विद्रोह की असफलता ने हिंसात्मक कायप्रणाली की अग्नि पर पानी डाल दिया था, किन्तु उसकी चिनगारी भीतर ही भीतर सुलगती रही । आतकवादी आन्दोलन इसके नवीन रूप म सामने आया । वस्तुत आतकवाद

उग्र राष्ट्रवाद की एक अवस्था थी जो कांग्रेस के तिलक पक्षीय राजनीतिक उग्रतावाद से भिन्न थी। आतंकवादी कांग्रेस की अपीलो और प्रेरणाओ के शान्तिपूर्ण संघर्षों पर विश्वास न करते थे। उनका विश्वास था कि पशुबल से स्थापित किये गये साम्राज्यवाद को हिंसा के द्वारा ही परास्त किया जा सकता है।

सन् १८९९ मे चाफेकर बन्धुओ ने रेएड और रिहर्स्ट की हत्या कर भारतीय राजनीति मे आतंकवादी कार्य का सूत्रपात किया और बग-भग ने विप्लवकारियो के सगठन को प्रेरणा दी। सन् १९०४ मे इसके विरुद्ध जापान की विजय ने शस्त्रवाद के प्रति भारतीयो को प्रेरणा दी। 'शस्त्र-शक्ति का सगठन कर हिंसात्मक उपायो से भारत को विदेशी शासन से मुक्त किया जा सकता है, यह विचार पुन जोर पकड़ने लगा। रेएड और रिहर्स्ट हत्याकाण्ड मे श्यामजी कृष्ण वर्मा का सक्रिय सहयोग कहा जाता है। ये स्वामी दयानन्द सरस्वती के शिष्य थे जिन्होने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया था कि 'सुशासन कभी स्वशासन का स्थान नहीं ले सकता' और 'कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है।'[1] स्वामी दयानन्द से प्रेरणा पा श्याम वर्मा ने देश को स्वतन्त्र कराने के लिए विदेश जाकर सामरिक ज्ञान प्राप्त कर एक ऐसे सगठन बनाने का प्रयास किया जो शस्त्रशक्ति पर आधारित हो। श्याम जी कृष्ण वर्मा लन्दन गये और उन्होंने वहाँ इंडियन होमरूल सोसायटी को जन्म दिया।

इस प्रकार लन्दन पहुँचे छात्रो मे विनायक दामोदर सावरकर भी थे जो बाद मे श्याम जी कृष्ण वर्मा के लन्दन से भाग निकलने पर इंडिया हाउस मे क्रान्तिकारी दल के नेता हुए।

महाराष्ट्र के अतिरिक्त विप्लववादियो का एक केन्द्र बगाल मे भी स्थापित हुआ। अरविन्द घोष के भाई वारेन्द्र घोष व स्वामी विवेकानन्द के भाई भूपेन्द्र नाथ दत्त ने बगाल मे क्रान्तिकारी विचारो का प्रचार किया। क्रान्तिकारियो के लिए जो कार्यक्रम बनाया गया उसमे जिन बातो पर जोर दिया गया वे थी—

(१) भारत के शिक्षित लोगो मे दासता के विरुद्ध घृणा पैदा करने के लिए अखबारो मे प्रबल प्रचार किया जावे।

(२) बेकारी और भुखमरी का भय भारतीयो के मन से निकाला जाये और मातृभूमि के प्रति प्रेम पैदा किया जावे।

---

१ सत्यकेतु विद्यालंकार : भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन और *नया संविधान*, पृष्ठ ६०

(३) सरकार को वन्देमातरम् के जुलूसों और स्वदेशी सम्मेलनों में लगाया जाए।
(४) युवकों को शस्त्र चलाना सिखाया जाये और अनुशासनबद्ध किया जाये।
(५) हथियार बनाये जावें, विदेशों से खरीदे जायें, और चोरी से देश में लाये जायें।
(६) आतंकवादी आन्दोलन के लिए छापे और डकैतियां मारकर धन हासिल किया जाए।

क्रान्तिकारी हिंसात्मक प्रणाली पर विश्वास करते थे। बंगाल में इनकी गतिविधियां अत्यन्त सक्रिय रहीं और प्राय लोग क्रान्तिकारी आन्दोलन को विशेषकर बंगाल का ही आन्दोलन मानते हैं और वहां इसकी सफलता का श्रेय वहां की इच्छगत परिस्थितियों को देते हैं।[1]

ये क्रान्तिकारी समितियां गुप्त रूप से कठोर अनुशासनबद्ध होकर कार्य करती थी। इनमें बंगाल की अनुशीलन सर्वाधिक कट्टर थी और प्रत्येक सदस्य को अनेक प्रतिज्ञाएं लेनी पड़ती थी।

प्राथमिक प्रतिज्ञा में समिति से कभी पृथक न होने, समिति के नियमों तथा नेताओं के आदेशों का पूर्ण पालन करने व नेता के सम्मुख सत्य भाषण करने की प्रतिज्ञा लेनी पड़ती थी।

क्रान्तिकारियों को यह प्रतिज्ञा लेनी पड़ती थी—"ओम् वन्देमातरम्"—ईश्वर, पिता, माता, गुरु, नेता तथा सर्वशक्तिमान के नाम यह प्रतिज्ञा करता हूं कि (१) मैं इस समिति से तब तक अलग न होऊंगा जब तक कि इसका उद्देश्य पूर्ण न हो जाए। मैं पिता, माता, भाई, बहिन, घर गृहस्थी किसी के बन्धन से नहीं बंधूंगा और न कोई भी बहाना न बनाकर दल का काम परिचालक की आज्ञा के अनुसार करूंगा। मैं चंचलता तथा जल्दबाजी छोड़ दल के हरेक काम को ध्यान से करूंगा।

ओउम् वन्देमातरम्—

१—ईश्वर, अग्नि, माता, गुरु तथा नेता को गवाह मानकर मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं दल की उन्नति के हरेक काम को करूंगा, इसके लिए यदि जरूरत हुई तो प्राण तथा जो कुछ मेरे पास है सबको बलिदान कर दूंगा। मैं सभी आज्ञाओं को मानूंगा तथा उन सभी के विरुद्ध काम करूंगा, जो हमारे दल के विरुद्ध हैं और उनको जहां तक हो नुकसान पहुंचाऊंगा।

१ मन्मथनाथ गुप्त : भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास, पृष्ठ ३८

२—मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि दल की भीतरी बातों को लेकर किसी से तर्क नहीं करूँगा और जो दल के सदस्य हैं उनसे भी बिना जरूरत नाम या परिचय न पूछूंगा[१]।

क्रांतिकारियों के सिद्धान्त क्या थे, उसका ज्ञान २ सितम्बर १९०९ को १५ जोराबागान स्ट्रीट कलकत्ता की तलाशी मे प्राप्त उस "सामान्य सिद्धान्त" पर्चे से होता है जिसका उल्लेख सिडीशन रिपोर्ट मे इस तरह उद्धृत किया गया है—

(क) देश की क्रांतिकारी शक्तियों का ठोस संगठन तथा दल की शक्तियों का ऐसी जगह विशेष जोर देना, जहाँ उसकी सबसे बड़ी जरूरत है।

(ख) दल के विभागों का बहुत बारीकी से विभाजन यानी एक विभाग मे काम करने वाला आदमी दूसरे को न जाने, किसी भी हालत मे एक आदमी दो विभागों का नियन्त्रण न करे।

(ग) खास करके सैनिक तथा आतंकवादी विभागों के लोगों मे कड़ा से कड़ा अनुशासन हो यहाँ तक कि बहुत त्यागी सदस्य भी इससे बरी न हो।

(घ) बातें बहुत ही गुप्त रखी जाएं, जिसको जिस बात को जानने की जरूरत नहीं, वह उसे न जाने, किसी विषय मे बातचीत दो सदस्यों मे उतनी ही हद तक हो जितनी की सख्त जरूरत हो।

(ङ) इशारों का तथा गुप्त लिपि का प्रयोग हो।

(च) दल एकदम से सब काम मे हाथ न डाल दें अर्थात् धीरे-धीरे दृढ़ता के साथ आगे बढ़ता जाए। (१) पहले तो पढ़े-लिखे लोगों मे एक केन्द्र की सृष्टि की जाय, (२ फिर जनता मे प्रचार भावनाओं की जागृति की जाय, (३) फिर सैनिक तथा आतंकवाद विभाग का संगठन किया जाय, (४) फिर एक साथ आन्दोलन करें, (५) फिर विद्रोह हो जो क्रान्ति का रूप ले ले।

दल के उद्देश्य की पूर्ति के लिए धन आवश्यक था तथा उसकी पूर्ति के लिए डकैतियाँ तथा गुप्त हत्याएं करने का प्रावधान था। डकैतियों के सबंध मे कहा गया था कि यह धनियों से टैक्स वसूल करना है। बाद मे इसे जबर्दस्ती चन्दा वसूल करना बताया गया। क्रांतिकारी दल विशेषतः राष्ट्रभक्त युवकों को अपने आन्दोलन का प्रमुख अंग बनाना चाहता था। यह तथ्य बंगाल के नवयुवकों के नाम प्रचारित अपील से स्पष्ट है जिसमें कहा गया -

'क्या शक्ति के उपासक बंगाली रक्तपात से हिचकिचायेंगे ? इस देश मे अंग्रेजों की संख्या डेढ़ लाख से अधिक नहीं है, और हर जिले मे कितने थोड़े अफसर हैं। यदि आपका इरादा पक्का हो तो एक ही दिन मे ब्रिटिश हुकूमत खत्म कर सकते हैं। अपना

१ मन्मथनाथ गुप्त . भारतीय क्रांतिकारी आन्दोलन का इतिहास, २०२-३

जीवन दे दो और उससे पहले एक जीवन खत्म कर दो। यदि आप बिना खून किये स्वतंत्रता की वेदी पर अपना बलिदान कर देंगे तो देवी की पूजा पूरी न होगी।'

बंगाल में क्रान्तिकारियों का प्रभाव अनेक वर्षों तक रहा और राजनीतिक हत्या व डकैतियों का क्रम अबाध गति से चला। बंगाल में विप्लववादियों के कार्यों में सन् १९०७ में बंगाल के गवर्नर की गाड़ी को उड़ा देने के षड्यन्त्र, मुजफ्फर हत्याकाण्ड (१९०८), अलीपुर षड्यन्त्र (१९०९), बर्हा डकैती (१९०८) अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। यों पूरे प्रान्त में समय-समय पर क्रान्तिकारी षड्यन्त्र चलते ही रहे और उसकी व्यापकता का अन्दाज इसी से लगाया जा सकता है कि 'समूचे बंगाल षड्यन्त्र केस में १,३०८ मनुष्य थे। २१० विप्लव हुए। हत्याओं के लिए की गई १०१ चेष्टाएँ असफल हुईं। ३९ मामले चले, जिसमें ८४ आदमियों की साधारण और ६३ आदमियों को कड़ी सजाएँ मिलीं। ८२ आदमियों की जमानतें और मुचलके हुए। हथियारबन्दी कानून के अभियोग में ५९ मामले चले जिसमें ५८ आदमियों को सजाएँ दी गईं[1]। बंगाल में आतंकवादियों ने पुलिस अधिकारियों, मजिस्ट्रेटों, सरकारी वकीलों, सरकारी गवाहों किसी को भी नहीं छोड़ा[2]। उनका संगठन दिनों दिन बढ़ रहा था। सिडीशन कमेटी की रिपोर्ट में कहा गया है कि ढाकावाली समिति इन संस्थाओं में सबसे तगड़ी थी। यदि और पार्टियाँ न होतीं, केवल यही समिति होती, तो भी इसका अस्तित्व सरकार के लिए बहुत बड़ा खतरा होता। १९१० से ही यह समिति फैलने लगी। बाद के सालों में यह सारे बंगाल में फैल गई और दूसरे प्रान्तों में भी इसकी शाखाएँ फैल गईं। बंगाल के बाहर इसके सदस्य असम, बिहार, पंजाब, संयुक्त प्रदेश, मध्यप्रदेश तथा पूना में काम कर रहे थे[3]। सारा बंगाल क्रान्तिकारी गतिविधियों से वर्षों तक आन्दोलित रहा और मन्मथनाथ गुप्त के शब्दों में 'मानना पड़ेगा कि जाति की मुरझाई हुई मनोवृत्ति पर शहीदों के खून की यह वर्षा काफी उत्तेजक साबित हुई। बंगाली जाति करीब-करीब एक बे-रीढ़ की जाति थी। इन लोहे की रीढ़ वालों ने उसे एक रीढ़दार जाति बना दिया[4]।

पंजाब में भी क्रान्तिकारियों की गतिविधियाँ अत्यन्त सक्रिय रहीं। विप्लव

---

१. शंकरलाल तिवारी बेढब : भारत सन् ५७ के बाद, पृष्ठ ३२

२. उदाहरणार्थ—अलीपुर षड्यन्त्र में डी० एस० पी०, सरकारी वकील और मुखबिर नरेन गोसाईं की हत्या, सन् १९१६ में डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट बसन्त चटर्जी तथा सी० आई० डी० के मधुसूदन भट्टाचार्य की हत्या।

३. मन्मथनाथ गुप्त : भारतीय क्रांतिकारी आन्दोलन का इतिहास, पृष्ठ ६५

४ मन्मथनाथ गुप्त : भारतीय क्रांतिकारी आन्दोलन का इतिहास, पृष्ठ ५१

वादियो के बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर पंजाब के गवर्नर सर डेनजिल इब्टसन ने १९०७ मे एक रिपोर्ट मे लिखा था "पूर्व तथा पश्चिम पंजाब मे ये विचार पढ़े-लिखे लोगो मे, विशेषकर वकील, मुन्शी और छात्रो मे फैले हैं, किन्तु मध्य पंजाब मे तो ये विचार दूर देहातों मे फैले मालूम देते हैं, लोगो मे बड़ी बेचैनी तथा असन्तोष है। लाहौर से आन्दोलनकारी आ-आकर अमृतसर और फिरोजपुर में राजद्रोह का प्रचार करते रहे है, फिरोजपुर मे इनको काफी सफलता मिली, जिससे अमृतसर मे ये इतने सफल न रह सके। ये रावलपिंडी, स्यालकोट तथा लायलपुर मे अंग्रेजो के विरुद्ध बड़े जोर-शोर से प्रचार-कार्य कर रहे हैं। लाहौर मे तो इस प्रचार-कार्य का कुछ कहना ही नहीं, इसमे सारे शहर मे एक गहरी बेचैनी फैली है[1]। सन् १९१२ को दिल्ली मे वायसराय पर बम फेंका गया जिसमें उनका अंगरक्षक मारा गया और वे घायल हुए। १७ मई १९१३ को लाहौर के लारेन्स बाग मे भी इन्हीं लोगो द्वारा रखे गये बम का विस्फोट हुआ था। वायसराय बमकाण्ड मे लाला अमीरचन्द, अवधबिहारी व बालमुकुन्द को फासी की सजा हुई। अमीरचन्द का लिखा हुआ एक परचा मिला था जिसमे लिखा था. "भारत संवैधानिक सुधारो से कुछ भी हासिल नहीं कर सकता। एकमात्र तरीका जिससे हम स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकते हैं, वह है क्रान्ति का तरीका। इतिहास यह बताता है कि उत्पीड़को ने किसी भी देश को अपनी खुशी से कभी आजादी नही दी और वे हमेशा तलवार से ही मुक्त किये गये[2]।" अवधबिहारी से फांसी के दिन जब उनसे अंतिम इच्छा पूछी गई तो उन्होंने कहा—"मैं तो चाहता हूँ ऐसी प्रचण्ड क्रांति की आग सुलगे जिससे यह सारी ब्रिटिश सत्ता ही नष्ट हो जाए[3]।"

असहयोग आन्दोलन की असफलता के कारण आतंकवादी गतिविधियाँ अत्यधिक सक्रिय हो उठीं। बंगाल के अतिरिक्त उत्तर भारत मे भी क्रांतिकारियो ने अपना संगठन बनाया। इन्हीं दिनो क्रान्तिकारी शचीन्द्रनाथ सान्याल ने उत्तर भारत मे एक दल स्थापित किया था। दोनो के ध्येय और उपाय समान थे अतः दोनो को संयुक्त करने के यत्न किये गये और हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसियेशन की स्थापना हुई। इसका विधान भी बनाया गया जिसके अनुसार इसका उद्देश्य सशस्त्र तथा संगठित क्रांति द्वारा भारत के सम्मिलित राज्यो का प्रजातन्त्र संघ की स्थापना निश्चित किया गया।

---

१ मन्मथनाथ गुप्त : भारतीय क्रांतिकारी आन्दोलन का इतिहास, पृष्ठ ६७
२ मन्मथनाथ गुप्त : भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास, पृष्ठ ७४
३ मन्मथनाथ गुप्त भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास, पृष्ठ ७५

प्राक असहयोग युग म क्रान्तिकारी आन्दोलन का क्षेत्र मध्यवित्त श्रेणी तक सीमित था। इस अवधि म अनेक हत्याएँ हुई, डाके डाले गये और बहुत लोगो को फासी व काले पानी की सजा हुई बहुत से षडयन्त्र हुए जिनका विस्तार अमरीका, यूरोप तथा एशिया म था। क्रान्तिकारियो का सम्पर्क जनता स न था। वे थोडे से ही लोगो तक सीमित थे। इतना होने पर भी राजनीतिक क्षेत्र को उनने दूर तक प्रभावित किया और कहा गया है कि सन् २१ तक जितने भी सुधार ब्रिटिश सरकार की ओर से किये गये उनमे क्रान्तिकारियों के कार्यों का प्रभाव है।

सन् १९१७ तक क्रांतिकारी आन्दोलन बहुत कुछ शान्त हो गया था। गाधी जी के नेतृत्व म एक नये आन्दोलन ने करवट ली। असहयोग असफल होने पर क्रान्तिकारी सगठित हुए और हिंसात्मक गतिविधिया पुन सक्रिय हुई। आतकवादियो की कुछ महत्वपूर्ण घटनाएँ ये हैं—शखारी टोला डकैती (१९२३) चटगाव डकैती (दिसम्बर १९२३) टेगट हत्या का असफल प्रयत्न—ब्रूस हत्या प्रयत्न (१९२४) काकोरी षडयन्त्र (१९२५) बब्बर अकाली आन्दोलन (१९२३) बोमेनी युद्ध (१९२३) देवघर षडयन्त्र, मनमाड बम मामला दक्षिणेश्वर बम मामला सैण्डर्स हत्या काण्ड असेम्बली बमकाड (१९२९) लाहौर षडयन्त्र (१९२८) वायसराय की गाडी पर बम (२३ दिसम्बर १९२९) भुसावल बमकाण्ड, गाडोदिया स्टोर डकैती (१९३०) डालहौजी पार्क घटना (१९३१) चटगाव शस्त्रागार काण्ड (१९३०) भासी बमकाण्ड (१९३०) पजाब के लाट पर हमला (१९३०) लैमिंगटन रोड काड (१९३१) असनुल्ला हत्याकाण्ड (१९३०) लोमैन हत्याकाण्ड (१९३०) मैमनपुर काण्ड (१९३०) सिम्पसन हत्याकाण्ड (१९३०)।

बगाल सरकार की रिपोर्ट के अनुसार १९३० म १० सफल हत्याए हुई व ५१ क्रान्तिकारियो को फासी हुई। मुख्यत बगाल म ही क्रांतिकारी काय हुए। बिहार मे पटना षडयन्त्र (१९३१) मोनीहारी षडयन्त्र (१९३१) बम्बई म हडसन हत्या प्रयत्न (१९३१) व हैक्वर्स्ट हत्याकाड (१९३१) भी उल्लेखनीय हैं।

उत्तर प्रदेश मे क्रान्तिकारी आजाद के शहीद होने तथा बगाल म लेवाग हत्या काण्ड के साथ इस धारा का प्राय अन्त हो गया। छिटपुट आतकवादी गिरोह कायम रहे और कुछ घटनाएँ होती रहीं पर आतकवाद का युग समाप्त हो गया। वस्तुत आतकवादी कार्यक्रम कभी सुव्यवस्थित या श्रृंखलाबद्ध न रहा। तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियो के अनुसार ही वे उद्देश्य प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहे और सम्भवत इसीलिए सन् १९०५ सन् १९२० तथा सन् १९३० के निकट वर्षों म कांग्रेस आन्दोलनो के समय इनकी गतिविधिया तीव्रतम रहीं। उनके कार्यक्रमों से निकट का कोई सम्बन्ध न होने पर भी जनता उनके कार्यों से प्रभावित होती थी और उनके प्रति वीरपूजा का भाव

रखती थी। दूसरे शब्दों में जनता उनकी अनुयायी नहीं थी किन्तु श्रद्धा अवश्य करती थी।

गांधीयुग में ही आतंकवादियों का प्रभाव क्षीण हो गया क्योंकि गांधी जी सत्य और अहिंसा के सबल प्रवर्तक के रूप में राष्ट्र के प्रतीक बन गये थे। वे आतंकवादियों के हिंसात्मक कार्यों की खुले रूप में आलोचना करते थे। क्रांतिकारी सुखदेव के पत्र का उत्तर देते हुए उन्होंने 'यंग इण्डिया' में लिखा था—

(१) क्रान्तिकारी कार्यवाइयों से हम ध्येय के निकट नहीं पहुँचे।

(२) इसके कारण देश का सैनिक व्यय बढ़ गया है।

(३) इनके कारण सरकार का दमनचक्र बढ़ गया है जिससे देश का कोई लाभ नहीं हुआ।

(४) जब-जब क्रांतिकारियों द्वारा किसी की हत्या हुई, तब-तब उस स्थान के लोगों पर उसका बुरा प्रभाव पड़ा।

(५) क्रान्तिकारियों द्वारा जन-समुदाय की जागृति में कोई सहायता नहीं पहुँची।

(६) जन-समुदाय पर इनके कामों का असर बुरा पड़ा है।

(७) भारत की भूमि तथा उसकी परम्परा क्रान्तिकारी हत्याओं के उपयुक्त नहीं है। इस देश के इतिहास से जो सहायता मिलती है, उससे मालूम होता है कि राजनीतिक हिंसा यहाँ उन्नति नहीं कर सकती।

(८) यदि क्रान्तिकारी, जन-समुदाय को अपने मत में परिवर्तन कर लेने का विचार करते हैं, तो उस हालत में हमें स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए बहुत ज्यादा तथा अनिश्चित समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

(९) यदि जन-साधारण हिंसात्मक काम की समर्थक हो भी जाय तो उसका परिणाम अन्त में अच्छा नहीं हो सकता। यह उपाय, जैसा कि दूसरे देशों में हुआ है, स्वयं इस उपाय के चलाने वालों को ही नष्ट कर देता है।

(१०) क्रांतिकारियों के सामने उनके विपरीत उपाय अहिंसा की सार्थकता का भी प्रत्यक्ष प्रदर्शन हो चुका है। उन्होंने देखा कि अहिंसात्मक आन्दोलन, क्रान्तिकारियों की स्फुट हिंसा तथा कुछ कुछ अहिंसात्मक आन्दोलन वालों की हिंसा के होते हुए भी कैसे बराबर अपनी गति पर चलता रहा।

(११) क्रांतिकारी भी इस बात को मान लें कि उनके आन्दोलन ने अहिंसात्मक आन्दोलन को कोई लाभ नहीं पहुँचाया, बल्कि हानि ही पहुँचाई है। यदि देश का वातावरण पूर्ण रीति से शान्त रहता तो हम अपने लक्ष्य को अब से पहिले ही प्राप्त कर चुके होते।

इसमें सन्देह नहीं कि गांधी जी के अहिंसात्मक दृष्टिकोण से आतंकवादी आन्दोलन वांछित सफलता प्राप्त कर सका, किन्तु यह भी सत्य है कि आतंकवादी प्रवृत्ति ने राष्ट्रीय आन्दोलन को बढ़ाने का उत्प्रेरक का कार्य किया और इस रूप में कांग्रेस का पूरक बना।

बीसवीं सदी के प्रारम्भिक वर्षों में राष्ट्रीय आन्दोलन त्रिमुखी था—(१) क्रान्तिकारी आन्दोलन, जो आतंकवाद के उपायों में विश्वास करता था, (२) उग्र राष्ट्रीय आन्दोलन, जो कांग्रेस की नरम नीति को अपर्याप्त समझकर अधिक उग्र नीति का समर्थक था, (३) कांग्रेस का आन्दोलन जो नरम नीति पर चलना चाहता था।

ये तीनों धाराएं गंगा के उस पवित्र संगम के सदृश थीं, जहां गंगा, यमुना और सरस्वती मिलकर एकाकार होकर भी अपना-अपना अस्तित्व बनाये रखती हैं।

साम्प्रदायिकतावादी राजनीतिक संस्थाएं

मुस्लिम लीग

भारतीय राजनीति का अध्ययन करते समय यह तथ्य स्पष्ट रूप से सम्मुख आता है कि राजनीतिक दल अपने प्रारम्भिक रूप में धार्मिक स्वरूप में अवगुंठित हैं। कांग्रेस प्रथम और प्रमुख राजनीतिक संस्था है। इसके पूर्व जो सामाजिक आन्दोलन हुए उसमें अधिकांश का नेतृत्व हिन्दू सुधारकों ने किया और यही कारण है कि धर्म के रूप में नये युग की नयी वाणी ध्वनित हुई। वस्तुत यह हिन्दुत्व का पुनर्जागरण था। स्वामी विवेकानन्द ने १८९३ में शिकागो में सर्वधर्म-सम्मेलन में हिन्दू धर्म की महत्ता पर भाषण दिया था। वे राष्ट्र की स्वाधीनता और आध्यात्मिक कार्य दोनों को राष्ट्रीयता के परिप्रेक्ष्य में देखते थे। अरविन्द का कथन है कि स्वाधीनता जीवन का लक्ष्य है और हिन्दुत्व ही हमारी यह आकांक्षा पूरी कर सकता है। किसी ने कहा तुम्हारा धर्म और संस्कृति औरों के बराबर है, किसी ने कहा, तुम्हारा धर्म और संस्कृति सबसे ऊंची है। यह सब तो हुआ, पर साथ ही ये लोग हिन्दू थे, इनकी भाषा हिन्दी थी, इनके व्याख्यानों में ऐसे दृष्टान्त तथा ऐसे युगों का उल्लेख रहता था जिसे हिन्दू ही समझ सकते थे। नतीजा यह हुआ कि इनकी वाणियों से पुष्ट होकर जो राष्ट्रीयता बनी, उसका रूप बहुत कुछ हिन्दू हो गया[१]।

कांग्रेस पर भी प्रारम्भ में इसका कुछ प्रभाव दिखाई देता है। तिलक हिन्दू पुनर्जागरण के परिमाण थे और कोई आश्चर्य नहीं कि उन्होंने भारत की स्वाधीनता के

१ मन्मथनाथ गुप्त भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास पृष्ठ ८

लिए हिन्दू उत्सवों और हिन्दू संगठन पर बड़ा बल दिया। थियोसोफिकल सोसायटी ने भी इस दिशा में कार्य किया और शिरोल के कथनानुसार 'थियोसोफिस्ट विचारधारा ने हिन्दू पुनर्जागरण को नई प्रेरणा दी और किसी हिन्दू ने इस आन्दोलन में इतना काम नहीं किया जितना श्रीमती बेसेंट ने।'

साम्प्रदायिकता का यह रूप आगे चलकर उत्कट तथा विकृत हो गया। एक ओर जहां हिन्दू अपनी नवजाग्रत चेतना अपने प्राचीन गौरवमय इतिहास से पुष्ट कर रहे थे वहां अंग्रेज भारत में मुस्लिम शासकों के उत्तराधिकारी बन कर उनकी उपेक्षा करते थे। 'मुस्लिम भारत' के लेखक मुहम्मद नोमन के कथनानुसार 'ब्रिटिश लोगों ने निश्चय कर लिया था कि नई शक्ति के विस्तार तथा जारी रखने के लिए एकमात्र उपाय यही है कि मुसलमानों को दबाया जाये तथा उन्होंने जान-बूझ कर ऐसी नीतियां, अपनायीं, जिनका उद्देश्य मुसलमानों का आर्थिक नाश करना था तथा उनकी बौद्धिक रोकथाम तथा सामान्य पतन के लिए कार्य करना था।'

सन् १८५७ के पूर्व वहाबी आन्दोलन में मुसलमानों ने भाग लिया था और जिसे ब्रिटिश सरकार ने कठोरतापूर्वक दबा दिया था। सन् १८५७ के विद्रोह के मुख्य नेता भी मुसलमान थे। यही कारण है कि सन् १८५७ के बाद अंग्रेजों ने मुसलमानों को दबाने की नीति का अवलम्बन किया।

भारत के नवजागरण काल में धार्मिक आन्दोलनों के कारण हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के समीप न आ सके। अंग्रेजों ने इसका लाभ उठाते हुए स्थिति के अनुकूल 'फूट डालो और राज्य करो' की नीति को प्रश्रय देकर साम्प्रदायिक भावना का विस्तार किया।

मुस्लिम आंग्ल प्राच्य कालेज अलीगढ़ के प्रिंसिपल मि० बैक के प्रयत्नों से मुसलमानों के नेता सर सैय्यद अहमद खां ने कांग्रेस तथा हिन्दुओं पर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया। उनकी नीति का आधार हिन्दुओं के द्वारा मुसलमानों पर शैक्षणिक, आर्थिक तथा राजनीतिक रूप से स्थायी महत्व का भय था। बैक ने ही बंगाल बिल के विरुद्ध मुसलमानों के विरोध को संगठित कर मुसलमानों को कांग्रेस में सम्मिलित होने से रोका। बैक ने लिखा है—"कांग्रेस का उद्देश्य देश के राजनीतिक नियन्त्रण को अंग्रेजों से हिन्दुओं को हस्तान्तरित करना है। मुसलमानों की इन मांगों के साथ किसी प्रकार की सहानुभूति नहीं हो सकती।" उसी का कथन है कि "भारत में संसदीय प्रणाली बहुत अनुपयुक्त है और यदि उत्तरदायी संस्थाएं यहां बनाई गई तो यह परीक्षण असफल ही होगा। मुसलमानों को हिन्दू बहुमत के अधीन रहना होगा जिसे मुसलमान बहुत नापसन्द करेगा और मुझे निश्चय है कि वह आसानी से इसे स्वीकार नहीं करेगा।"

सन् १९०५ मे बग भग हुआ । डॉ० एन० सिंह के अनुसार इसका उद्देश्य हिन्दुओ और मुसलमानो को अलग कर एक ऐसा मुस्लिम प्रान्त बनाना था जहा धार्मिक मतभेदो के आधार पर शासन हो। फलत सन् १९०६ मे भारत सरकार ने जब वैधानिक क्षेत्र मे भारत को अधिक रियायतें देने का निश्चय किया तो मुसलमानो की ओर से सर आगा खान ने मुसलमानो के लिए अलग निर्वाचन-क्षेत्रो की मांग की।

लार्ड मिन्टो ने उस दिन को जिस दिन मुसलमानो का प्रतिनिधि मण्डल उनसे मिला, भारतीय इतिहास म एक महत्त्व का दिन बताया है। यह स्पष्ट है कि लार्ड मिन्टो ही साम्प्रदायिक चुनावो का वास्तविक पिता था यद्यपि ब्रिटिश अधिकारियो ने भी अपना भाग लिया[१]।

इन परिस्थितियो मे सन् १९०६ म भारतीय मुस्लिम लीग की स्थापना हुई। इसका उद्देश्य था "सरकार से प्राप्त होने वाली सब प्रकार की व्यवस्था का यथा सम्भव समर्थन किया जाए तथा सम्पूर्ण देश म अपने सह धर्मियो के हितो की रक्षा तथा वृद्धि के लिये प्रयत्न किया जाए और तथाकथित राष्ट्रीय महासभा के बढते हुए प्रभाव को रोका जाए, जिसकी चेष्टा यह रही है कि भारत म अग्रेजी शासन का भारत म मिथ्या प्रतिनिधित्व किया जाये अथवा जिससे वैसी दयनीय स्थिति उपस्थित हो जाये तथा पढे लिखे युवको के लिए जो ऐसी सस्था के अभाव मे काग्रेस दल मे सम्मिलित हो गये है, सावजनिक जीवन के लिये उनकी योग्यता तथा उपयोग के अनुसार अवसर ढूंढा जाय।"

सन् १९११ म बग भग कानून के रद्द कर देने पर मुसलमानो को अपने अग्रेज मित्रो के ऊपर अविश्वास हुआ तथा १९१२ १३ म बालकन युद्धो के कारण यूरोप मे टर्की की शक्ति क्षीण हुई और उसे मुसलमानो ने धर्मयुद्ध सा समझा। भारतीय मुसलमानो ने इन घटनाओ पर तीव्र रोष प्रकट किया। सन् १९१३ म मुस्लिम लीग के विधान म परिवर्तन हुए और सर आगा खान के अध्यक्ष पद से त्याग पत्र देने से लीग का नेतृत्व एम० ए० जिन्ना के हाथो आ गया। लीग मे भी भारतवासियो को स्व शासन देने की माग की और इस तरह काग्रेस के बहु निकट आई। डॉ० पट्टाभि सीता रामय्या ने लिखा है कि 'सन् १९१३ की कराची-काग्रेस म हिन्दू और मुसलमानो ने अपने भेद-भाव मिटा दिये और मुस्लिम लीग के इस विचार को, कि ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत भारतवासियो को स्वशासन दिया जाय, पसन्द किया और हिन्दू मुसलमानो के बीच मेल एव सहयोग का भाव बढाने वाले मुस्लिम लीग के कथत

---

१ भारत का सवैधानिक इतिहास, पृष्ठ ३१६

को पसन्द किया[1] ।" इसी सद्भावना के साथ लीग तथा काग्रेस के अधिवेशन कई वर्षों तक एक ही स्थान पर होते रहे। सन् १९१६ मे काग्रेस तथा लीग दोनो के वार्षिक अधिवेशन लखनऊ मे हुए और लखनऊ पैक्ट बना। दोनो सस्थाओ ने एक सयुक्त योजना तैयार की जिसे काग्रेस लीग योजना के नाम से पुकारा जाता है। मुस्लिम लीग ने काग्रेस की स्वशासन की माँग मानी और काग्रेस ने लीग की पृथक् साम्प्रदायिक चुनाव-क्षेत्रो की माग स्वीकार की। तत्कालीन परिस्थितियो मे लिया गया यह निर्णय एक राजनीतिक भूल सिद्ध हुआ और अन्तत इसके कारण ही भारत-विभाजन हुआ।
ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने इस पैक्ट को हिन्दुओ और मुसलमानो के बीच हुए एक समझौते की सज्ञा दी और सन् १९२६ और १९३५ के शासन विधानो मे पृथक निर्वाचन की व्यवस्था की।

किन्तु साम्प्रदायिक आधार पर हुई यह मैत्री स्थायी न रह सकी। असहयोग आन्दोलन के समय मलाबार मे मोपला विद्रोह के समय मुसलमानो द्वारा हिन्दुओ को बलात् मुसलमान बनाने के कारण साम्प्रदायिक वैमनस्यता बढी। हिन्दुओ ने आत्मरक्षा के लिए सगठन का आन्दोलन किया और स्वामी श्रद्धानन्द ने हजारो मल्कानो की शुद्धि की। मुसलमानो ने इसका विरोध किया। इन दगो से क्षुब्ध हो गाधी जी ने २१ दिन के उपवास का व्रत लिया। इसी अवसर पर एकता परिषद् का सम्मेलन हुआ और सदस्यो ने प्रतिज्ञा की कि वे धर्म और मत की स्वतन्त्रता के सिद्धान्त का पालन कराने का अधिक से अधिक प्रयत्न करेंगे और उत्तेजन मिलने पर भी इनके विरुद्ध किये गये आचरण की निन्दा करने मे कोई कसर न रखेंगे।

किन्तु इसका कोई प्रभाव न पडा और सन् १९२५ व २६ मे पुन अनेक साम्प्रदायिक दगे हुए। सन् १९२६ मे कलकत्ता छ. सप्ताह तक हत्याकांड और अव्यवस्था का अखाडा बना रहा।

गाधी जी इन दगो से अत्यन्त निराश हो गये थे। उन्होने कलकत्ता के मिर्जापुर पार्क मे जो भाषण दिया उसमे उन्होने कहा—"मैंने अपनी अयोग्यता स्वीकार कर ली है। मैंने स्वीकार कर लिया है कि इस रोग की औषधि बताने वाले वैद्य की विशेषता मुझमे नही है। मैं तो नही देखता कि हिन्दू अथवा मुसलमान मेरी औषधि को स्वीकार करने के लिए तैयार हैं। यदि हमारे भाग्य मे यही बदा है कि एक होने से पहले हमे एक-दूसरे का खून बहाना चाहिए तो मेरा कहना है कि जितनी जल्दी हम यह कर डालें हमारे लिए उतना ही अच्छा है। यदि हम एक-दूसरे का सिर तोडने पर

१ डा० पट्टाभि सीतारामय्या : सक्षिप्त काग्रेस का इतिहास, पृष्ठ ५०

उतारू हैं तो हमे ऐसा मर्दानगी के साथ करना चाहिए हम झूठ-मूठ के आँसू न बहाने चाहिए, और यदि हम एक दूसरे के साथ दया नहीं करना चाहते तो हमें किसी दूसरे से सहानुभूति की याचना नहीं करना चाहिए।"

सन् १९२७ मे भी साम्प्रदायिक दगो की बाढ़ देखकर अगस्त १९२७ म एक बिल पारित किया गया जिसका मुख्य सार यह था—

"जो कोई व्यक्ति सम्राट् की प्रजा के किसी वर्ग की धार्मिक भावनाओ पर जान-बूझकर और बुरे इरादे से चोट पहुँचाने के लिए मौखिक या लिखित शब्दो से या दृश्य-सकेतो से उस वर्ग के धम या धार्मिक भावनाओ का अपमान करेगा या अपमान करने का प्रयत्न करेगा, उसे दो साल की सजा मिलेगी या जुर्माना होगा या उस पर सजा व जुर्माना दोनों होंगे।"

साम्प्रदायिक विद्वेष के तनावपूर्ण वातावरण मे एकता-सम्मेलन पुन आयोजित किया गया। इसमे साम्प्रदायिक दगो की भर्त्सना की गई और अहिंसा के वातावरण बनाने की अपील की। सम्मेलन ने कांग्रेस की महासमिति को हिन्दू मुस्लिम एकता के प्रचार का अधिकार प्रदान किया।

कांग्रेस सदैव से ही हिन्दू मुस्लिम ऐक्य के लिए प्रयत्नशील रही, किन्तु लीग के असहयोगात्मक रवैये से कांग्रेस की राजनीतिक प्रगति कुण्ठित होती रही। डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या का कथन है कि 'ब्रिटिश सरकार गाधी जी के लिए कोई समस्या न थी। अलबत्ता हमारे दो आन्तरिक शत्रु अवश्य थे—कांग्रेस अपने प्रति मुस्लिम लीग के रुख का मुकाबला कैसे करेगी और कांग्रेस किस हद तक लोगो को अहिंसा पर अमल करा सकेगी'[1] । द्वितीय महायुद्ध के समय भारत म शान्ति रखने और युद्ध के लिए अधिकाधिक सहयोग प्राप्त करने के लिए ब्रिटिश सरकार भी कांग्रेस और लीग के मतभेद को अपने ढङ्ग से तौलना चाहती थी। लीग अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए समयानुकूल परिस्थितियो को आधार बनाकर आगे बढती थी। यह तथ्य मुस्लिम लीग की १८ सितम्बर १९३९ की वर्किंग कमेटी के निम्न कथन से स्पष्ट है

"यदि मुसलमानो की ओर से पूर्ण, प्रभावशाली और सम्मानपूर्ण सहयोग अपेक्षित है तो उनमे 'सुरक्षा और सन्तोष' की भावना पैदा करना होगी[2]।" इस स्थिति का लाभ उठाकर भारत की स्वाधीनता के प्रश्न को ब्रिटिश सरकार यह कहकर टाल देती थी कि 'साफ तौर पर यह पता चलता है कि इन दोनो बडे दलो के बीच

---

१. डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या सक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ ३५०

२ डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या सक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ ३५१

गहरा मतभेद है ? ।" इस निर्णय के उपरान्त निराशापूर्ण स्थिति की घोषणा के साथ नये ढङ्ग से सोचने तथा निकट भविष्य की आशा का राग अलापा जाता ।

मि० जिन्ना कांग्रेस की इस विवशता से लाभ उठाने के लिए सभी सम्भव प्रयत्न बिना भिभक करते थे। कांग्रेस साम्प्रदायिक दंगों के भय के कारण सविनय आन्दोलन को प्रारम्भ करने पर हिचक रही थी और श्री जिन्ना दो राष्ट्रों के सिद्धान्त आधार पर पाकिस्तान के पृथक् निर्माण की ओर उन्मुख हो रहे थे। इससे साम्प्रदायिक दंगों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रोत्साहन मिलता था। गांधी जी के नेतृत्व में कांग्रेस मुसलमानों को अलग नहीं मानती थी और उनको साथ लेकर ही स्वाधीनता की मांग करती थी। रामगढ़ में कांग्रेस की विषय निर्धारिणी समिति और खुले अधिवेशन में गांधी जी ने स्पष्ट रूप से कहा था : 'मेरा अब यही विश्वास है कि हिन्दू-मुसलमानों के समझौता के बिना स्वराज्य नहीं मिल सकता।' स्पष्ट है कि कांग्रेस समझौतावादी दृष्टिकोण रखती थी, किन्तु जिन्ना उसे हिन्दू संस्था मानते थे और राष्ट्रीय मुसलमानों को हिन्दू व मुसलमान दोनों में से किसी का भी प्रतिनिधि नहीं मानते थे।[२] लीग या जिन्ना किसी की मध्यस्थता नहीं चाहते थे और इस तरह हिन्दू-मुस्लिम समस्या सुलझने नहीं पाती थी। ब्रिटिश सरकार इसका लाभ उठाती थी।[3] एमरी ने कामन सभा में खेद प्रकट किया कि वायसराय को शासन-परिषद् की स्थापना में असफलता मिली, क्योंकि मुस्लिम लीग ने खास तौर पर हिन्दुओं के मुकाबले में एक निश्चित प्रतिनिधित्व की मांग की और भविष्य के लिए भी यही शर्त रखी।[४]

कांग्रेस इन सबसे निर्वासित न होती थी और यही कारण है कि उसने १९४०-४१ के व्यक्तिगत सत्याग्रह में अपने १३ सूत्री रचनात्मक कार्यक्रम में हिन्दू-मुस्लिम अथवा साम्प्रदायिक एकता को सम्मिलित किया और धार्मिक प्रश्नों से अपने को पृथक् रखा।[५] ब्रिटिश राजनीतिज्ञ कांग्रेस के प्रभाव को लीग के सामने जान-बूझकर कम आंकते थे

१ डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या : संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ ३५२
२. डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या : संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ ३८२
३. डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या : संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ ३६४
४ डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या : संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ ३६२
५. गांधी जी ने 'राष्ट्रीय' झण्डा और 'हिन्दू' पताका के प्रश्न के सम्बन्ध में सिमोगा 'हिन्दू-महासभा' के मन्त्री को एक पत्र में लिखा था—'मुझे पता चला है कि गणपति-उत्सव ■ अवसर पर आयोजित जुलूस में राष्ट्रीय झण्डे का प्रयोग किया गया है। मंदिरों पर राष्ट्रीय झण्डा लगाना गलती है। कांग्रेस एक राष्ट्रीय संस्था है। कारण कि उसके द्वार सभी जातियों और धर्मों के लिए बिना किसी

क्योंकि इससे ही उनके राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति सम्भव थी। सन् १९४२ मे लार्ड सभा मे भारत विषयक बहस मे उपभारत मन्त्री ड्यूक आफ डीवनशायर ने अपने भाषण मे कहा था—"ऐसा मालूम होता है कि मुस्लिम लीग का असर और उसकी ताकत निश्चित रूप से बढ रही है। कांग्रेस के दावे को चुनौती दी जा रही है और महान् मुस्लिम जाति हमेशा ही उसके दावे को चुनौती देती रहेगी।"

भारत मे राजनीतिक दबाव को बढते हुए देख कर और द्वितीय महायुद्ध के कारण उत्पन्न अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियो को दृष्टिगत रख ब्रिटिश शासन भारतीय जनता को भुलावे मे रखने के लिए क्रिप्स मिशन का स्वांग रचा जो असफल रहा। अनेक राजनीतिज्ञ ब्रिटिश सरकार की इस चाल से तंग आकर मुस्लिम लीग की माग को स्वीकार कर एक दृढ मोर्चा तैयार करने का विचार करने लगे थे। इनमें से एक थी राजगोपालाचार्य थे। कांग्रेस भी इस निष्कर्ष पर पहुँच चुकी थी कि 'साम्प्रदायिक समस्या को सुलझाने का शक्ति भर प्रयत्न किया है, परन्तु विदेशी सत्ता की उपस्थिति में यह काम असम्भव हो गया है और वर्तमान अवास्तविकता के स्थान पर वास्तविकता की स्थापना तभी हो सकती है जब विदेशी प्रभुता और हस्तक्षेप का अन्त कर दिया जाय[1]।' वे ब्रिटिश सरकार को किसी भी कीमत पर उखाड फेंकना चाहते थे और सन् १९४२ का आन्दोलन उसी का प्रतिफल था। इस आन्दोलन मे भी लीग की प्रतिक्रिया अनुकूल नहीं थी। सन् १९४१ मे लीग ने अपने मद्रास अधिवेशन मे अपने ध्येय मे भारत में पाकिस्तान की स्थापना अथवा मुस्लिम बहुल प्रान्तो का एक पृथक् स्वायत्त शासन प्राप्त संघ बनाना स्वीकृत कर लिया था और उसके लिए प्रयत्नशील थी। लीग की वर्किंग कमेटी ने २२ अगस्त १९४२ को अपने एक प्रस्ताव मे ब्रिटिश सरकार से मुसलमानो के लिए आत्मनिर्णय का अधिकार प्रदान करने और पाकिस्तान की स्थापना के हक मे मुसलमानो के मतदान के बाद तुरन्त ही उसे कार्यान्वित करने की माग करते हुए दूसरी किसी भी पार्टी से देश मे एक अस्थायी सरकार स्थापित करने की माग की। लीग ने युद्ध प्रयत्नो मे सरकार को सहयोग नहीं दिया। उन्होने कहा—"भारत कभी भी अपनी समस्याओ का हल ढूँढने मे सफल नहीं हो सका है, और अतीत मे ब्रिटेन ने अपना हल भारत के ऊपर लादा है। इस समय वे ब्रिटेन से यह पक्का वादा ले लेना चाहते है कि लड़ाई के बाद उन्हें पाकिस्तान मिल जायगा और इसके बदले मे वे एक अस्थायी सरकार मे इस शर्त पर शामिल होने को तैयार होंगे कि उन्हे भी

भेदभाव के सुले हैं। कांग्रेस का हिन्दू या दूसरे इसी किस्म के त्योहारों उत्सवों से कोई सम्बन्ध नहीं है।"

१ डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या : संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ ४२९

हिन्दुओं जितनी ही सीटें मिलें।" लीग के अन्य नेता भी इसी के अनुसार वक्तव्य देते थे। लीग ने अपने संगठन को सुदृढ़ बनाना शुरू किया और जिन्ना ने नवम्बर १९४२ में दिल्ली में भारत के मुसलमानों से पाकिस्तान हासिल करने के लिए कटिबद्ध रहने की अपील करते हुए कहा कि या तो हम पाकिस्तान लेकर रहेंगे या फिर अपना अस्तित्व ही मिटा देंगे। लीग की पाकिस्तान की मांग भारत की स्वाधीनता के मार्ग का रोड़ा सिद्ध हो रही थी। श्री जिन्ना ने लीग के ३१वें दिल्ली अधिवेशन (१९४३) में अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा था "कांग्रेस की स्थिति वैसी ही है, जैसे पहिले थी। सिर्फ यह दूसरे शब्दों और भाषा में बताई गई है, किन्तु इसका मतलब है अखण्ड हिन्दुस्तान के आधार पर हिन्दू-राज और इस स्थिति को हम कभी स्वीकार न करेंगे।" वह पाकिस्तान की स्थापना प्रत्येक स्थिति में अनिवार्य मानते थे। ब्रिटिश सरकार इस स्थिति को भली भांति जानती थी और स्वाधीनता देने में असमर्थता व्यक्त करती थी। एमरी कांग्रेस को दोषी बताकर कहते थे कि कांग्रेस ने संघ वाले प्रस्ताव को न मानकर भूल की है और इसके परिणामस्वरूप रियासतों में असन्तोष की वृद्धि हुई है और प्रान्तों में कांग्रेस के तानाशाही तरीके से मुसलमान भी संघ-योजना के कट्टर विरोधी हो गये हैं। सन् १९४२ में लीग के प्रभाव में ५ मंत्रिमण्डल कार्य कर रहे थे। उनके प्रधान मंत्रियों को लीग के अध्यक्ष ने दल के संगठन को सुदृढ़ बनाने पर जोर दिया गया। युद्ध काल में मंत्रिमण्डलों को स्थापित कर ब्रिटिश सरकार स्वाधीनता के प्रश्न को दूर रखना चाहती थी। लीग के सदस्य और मुसलमानों में भी इससे व्यापक असन्तोष व्याप्त हो रहा था और वास्तविक राष्ट्रीय जागृति के लक्षण स्पष्ट रूप से दिखलाई दे रहे थे। सन् १९४४ में जिन्ना ने अपने वक्तव्य में कहा "यदि ब्रिटिश सरकार सच्चे हृदय से भारत में शान्ति स्थापित करने को उत्सुक है तो उसे भारत को दो स्वाधीन राष्ट्रों में बाँट देना चाहिए—पाकिस्तान मुसलमानों के लिए, जिसमें देश का एक चौथाई भाग शरीक होगा और हिन्दुस्तान हिन्दुओं के लिए जिसमें समस्त भारत का तीन चौथाई भाग होगा।

हिन्दू महासभा

मुस्लिम साम्प्रदायिकता की प्रतिक्रिया के स्वरूप ही बीसवीं शती के प्रारम्भ में हिन्दू महासभा का आविर्भाव हुआ। सन् १९३७ में कांग्रेस के पद ग्रहण के अनिवार्य परिणाम के रूप में साम्प्रदायिक समस्या ने गम्भीर रूप धारण कर लिया। इस अवसर का लाभ उठाकर साम्प्रदायिक संस्थाएं राजनीतिक संस्थाओं के रूप में सामने आईं। प्रारम्भ में हिन्दू महासभा और मुस्लिम लीग का कार्य हिन्दुओं और

मुसलमानों के धार्मिक और सांस्कृतिक स्वत्वों का संरक्षण समझा जाता था और कांग्रेस के साथ उनका समझौता हो सकता था। किन्तु सन् १९३९ में उनका विरोध मौलिक सिद्धान्तों और विचारधारा के रूप में प्रकट हुआ। लीग के दो राष्ट्रों के सिद्धान्त के विरुद्ध हिन्दू महासभा ने 'भारत हिन्दुओं के लिए' तथा 'अखण्ड भारत' का नारा बुलन्द किया।

हिन्दू महासभा में एक अंश ऐसे लोगों का था जो ब्रिटिश साम्राज्यशाही से लड़कर देश में हिन्दू राज्य की स्थापना का स्वप्न देखता था। सन् १९३७ में कांग्रेस-मन्त्रिमण्डलों की स्थापना से यह वर्ग सन्तुष्ट था। कांग्रेस में हिन्दुओं की मुख्यता होने के कारण इसका यह विश्वास हो चला था कि आगे चलकर देश में हिन्दू राज्य कायम हो सकेगा। किन्तु साम्प्रदायिक दंगों के समय कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों द्वारा जो नीति अपनायी गई उसकी वजह से यह वर्ग भी निराश हो गया। ब्रिटिश शासन असन्तुष्ट हिन्दुओं का समर्थन प्राप्त कर कांग्रेस के प्रभाव को न्यून सिद्ध करना चाहता था। अतः सन् १९४० में भारत के वाइसराय ने हिन्दू महासभा को परामर्श के लिए आमन्त्रित किया। जिस प्रकार कांग्रेस और लीग को भारत सरकार ने सदा से अधिकृत संस्थाओं के रूप में स्वीकार कर लिया था उसी प्रकार उसने ८ अगस्त १९४० के वक्तव्य में पहली बार हिन्दू महासभा को भी अधिकृत संस्था मान लिया। हिन्दू महासभा जनता से कांग्रेस के आन्दोलनों से विमुख रहने का प्रचार करती थी। सन् १९४२ में गांधी जी और उनके साथियों की गिरफ्तारी के अवसर पर श्री सावरकर ने हिन्दुओं को सलाह दी कि वे 'कांग्रेस-आन्दोलन' में किसी प्रकार की भी मदद न करें। 'इस सन्दर्भ में डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या का कथन उल्लेखनीय है—'इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं थी, क्योंकि वह भारतीय राष्ट्रवाद के स्थान पर हिन्दुत्व और हिन्दू साम्प्रदायिकता का प्रचार कर रहे थे। कांग्रेस के जेल जाने के बाद मुस्लिम बहुल प्रान्तों में मन्त्रिमण्डल बनाने में उन्होंने विभिन्न प्रान्तों में अलग-अलग कारणों से हिन्दुओं को भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया, लेकिन इन सभी मामलों में वास्तव में वह मुस्लिम लीग की नीति का अनुसरण कर रहे थे। लीग की भांति उन्हें भविष्य के बजाय अपने तात्कालिक उद्देश्य की अधिक परवाह थी, भारतीय आजादी के बजाय साम्प्रदायिक लाभ का अधिक ध्यान था और ब्रिटेन के विरुद्ध लड़ने के बजाय उसके साथ मिलकर काम करने की नीति अधिक पसन्द थी'[1]।'

इसी तथ्य का उद्घाटन करते हुए आचार्य नरेन्द्र देव ने 'संघर्ष' के दिनांक २० अगस्त १९३९ के अंक में अपने एक लेख में लिखा था :

---

१ डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या : संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ ४८१

"अपने साम्प्रदायिक स्वरूप, प्रतिगामी कार्यक्रम और साम्राज्यशाही समर्थन के कारण साम्प्रदायिक संस्थाओं के नेताओं को इस राज्य-शक्ति में उनके इच्छानुसार भाग नहीं मिल पाया और उनकी चाह उनके मन में ही दबी रहकर खटक रही है। कहने को हिन्दू सभा .. आदि साम्प्रदायिक संस्थाओं का उद्देश्य अपने सम्प्रदाय के सर्वसाधारण लोगों की भलाई के लिए प्रयत्न करना रहा है, पर यदि इन संस्थाओं द्वारा किये जाने वाले कार्य पर ध्यान दें तो हमें पता चलेगा कि व्यवहार रूप में ये संस्थाएं मुट्ठी भर सामन्तों, राजाओं, तालुकेदारों, जमींदारों और शहर के कुछ अनुदार मध्यम श्रेणी के लोगों की संस्थाएं रही हैं, जो कि धर्म के नाम पर अपने वर्ग का स्वार्थ-साधन करने, सरकारी नौकरियों और एसेम्बली में सीटें आदि प्राप्त करने के काम में लाई जाती रही हैं।"

वस्तुतः ब्रिटिश सरकार इन साम्प्रदायिक संस्थाओं का उपयोग भारत की स्वतन्त्रता के 'ब्रेक' के रूप में करती थी।

यही साम्प्रदायिक संस्थाएं राजनीतिक स्वरूप में आगे चलकर समाज के प्रतिगामी वर्गों की ताकत को सुरक्षित रखने वाली संस्थाएं बन गई। साम्राज्यवाद द्वारा पोषित एवं विस्तारित होने से ये संस्थाएं फासिस्ट विचार-धारा से अनुप्राणित हैं। द्वितीय महायुद्ध के समय फासिस्ट विचार धारा अत्यन्त बलवती थी। पूंजीवाद का ह्रास हो रहा था और सम्पूर्ण विश्व दो गुटों में बट गया था। एक ओर प्रगतिशील शक्ति थी जो पूंजीवादी समाज-व्यवस्था को हटा कर समाजवादी व्यवस्था लाना चाहती थी, दूसरी ओर वे फासिस्ट थे जो मौजूदा पूंजीवादी व्यवस्था को ही सैनिक शासन के बल पर रखना चाहते थे।

ऐसे संक्रान्ति-काल में फासिस्ट राष्ट्रों ने भारत को अपना विशेष कार्य क्षेत्र बनाने का प्रयत्न किया। हिटलर के आर्यजाति की श्रेष्ठता के सिद्धान्त के नाम पर हिन्दू युवकों में नाजी विचारधारा का प्रचार किया जा रहा था।

अपनी संकीर्ण राजनीतिक विचारधारा के कारण ये साम्प्रदायिक संस्थाएं विशाल देश को मार्ग-दर्शन देने में असमर्थ रहने के कारण विस्तार न पा सकीं। सन् १९४७ में भारत विभाजन के पश्चात् हिन्दू महासभा पृष्ठभूमि में चली गई और सन् १९४८ में गांधी हत्याकाण्ड के बाद महासभा की कार्यकारिणी समिति ने अपनी राजनीतिक गतिविधियों को समाप्त करने का निश्चय किया। किन्तु बाद में पुनः राजनीतिक रंगमंच पर आई और आम चुनावों में भाग लेकर इसने कुछ स्थान भी जीते।

जनसंघ

इसी शृंखलान्तर्गत भारतीय जनसंघ को भी परिगणित किया जाता है जो 'एक देश, एक संस्कृति तथा एक भारतीय राष्ट्र' के आदर्श का उद्घोष करता है।

इस नवोदित राजनीतिक दल की स्थापना सन् १९५१ में हुई और उसका ध्येय था चुनावों में भाग लेना था।

जनसंघ की चुनाव-घोषणा के अनुसार यह दल उद्योगों के सार्वजनिक स्वामित्व को चाहता है और विशेषकर उन उद्योगों को जो देश की जरूरी सुरक्षा के लिए आवश्यक सामग्री का उत्पादन करते हैं। पार्टी उपभोक्ता तथा उत्पादक के हित के लिए व्यक्तिगत उद्योग को राज्य व्यवस्था तथा सामान्य नियन्त्रण के अन्तर्गत उद्योगों को बढ़ाने के ध्येय से बढ़ावा देना चाहती है। उसका यह मत है कि मुनाफाखोरी तथा आर्थिक शक्ति के कुछ सीमित व्यक्तियों तक एकत्र होने से रोकने हेतु एकीकरण तथा संधियों के द्वारा नियन्त्रण रखना चाहिए। वह क्रमिक वैज्ञानिकीकरण तथा उद्योगों के विकेन्द्रीकरण को चाहती है। पार्टी वर्ग, जाति अथवा मरन का बिना प्रचार किए हुए भारत के समस्त नागरिकों को समान अधिकार देना चाहती है तथा धर्म के आधार पर अल्पसंख्यकों तथा बहुसंख्यकों का भेद स्वीकार नहीं करती है। वह गो-हत्या-विरोध करने की प्रतिज्ञा करती है तथा हिन्दी को अखिल भारतीय रूप में, दूसरी भारतीय भाषाओं को साथ में पूरा प्रोत्साहन देते हुए कार्य करने को उत्सुक है। वह संस्कृत को विशेष प्रोत्साहन देने को कृतसंकल्प है तथा राष्ट्रीय स्तर पर नवयुवकों व महिलाओं को सैनिक शिक्षा दिलाना चाहती है।

सन् १९५४ में पार्टी ने कुछ सिद्धान्तों में परिवर्तन किये। परिवर्तित घोषणा के अनुसार घरेलू उद्योग-धन्धों का बड़े पैमाने पर होने वाले उद्योगों की उत्पत्ति के क्षेत्रों की सीमा पर, सैनिक दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण उद्योगों के राष्ट्रीयकरण पर तथा कुछ अन्य उद्योगों के ऊपर राज्य के नियन्त्रण पर, पाश्चात्य तरीकों के विपरीत कृषि के तरीकों में स्वदेशी तरीकों को अपनाने पर जोर दिया गया है। तृतीय आम चुनाव में भाग लेकर इस दल ने कुछ प्रदेशों में महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया है।

साम्यवादी दल

राजनीतिक दल के रूप में साम्यवादी दल का गठन सन् १९२४ में हुआ था किन्तु प्रारम्भ से ही भारत सरकार ने इसे अवैध घोषित कर दिया था। फलत: अधिकांश साम्यवादी कांग्रेस के अन्तर्गत ही अपना कार्य करते रहे। सन् १९२८ तक साम्यवादी कार्यकर्ता कांग्रेस के मंच से अपना संगठन करते रहे और कहीं-कहीं इसकी कार्यकारिणी समिति के सदस्य तक थे। प्रारम्भिक वर्षों में उनकी संख्या बहुत स्वल्प थी और वे मुख्यत: ट्रेड यूनियनों तथा विद्यार्थियों के संगठन-कार्य तक सीमित थे। तदुपरान्त कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल के संकेत पर ये कांग्रेस से पृथक् हो जनान्दोलन से दूर हो गये। सन् १९२८ में कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल ने निश्चय किया कि उपनिवेशों में राष्ट्रीय

सुधारवादी संस्थाओं से दल को अपने से पृथक् रखना चाहिए। इसके परिणामस्वरूप कम्युनिस्ट सन् १९३०-३२ के सत्याग्रह-आन्दोलनों का विरोध करते रहे। सन् १९३१ में कम्युनिस्ट पार्टी ने समस्त राष्ट्रीय अल्प समुदायों को आत्मनिर्णय का अधिकार दे रखा है। सन् १९३४ की थीसिस में उन्होंने लिखा कि "कम्युनिस्ट पार्टी के सामने सबसे जरूरी काम एक ऐसी संस्था का निर्माण करना है जो साम्राज्यवाद का विरोध करने के लिए समस्त शोषित वर्ग के संयुक्त मोर्चे की अभिव्यक्ति हो। कम्युनिस्ट पार्टी के प्रभाव में तैयार किए हुए क्रांतिकारी कार्यकर्ता इस मोर्चे के मूलाधार होंगे और क्रांतिकारी ट्रेड यूनियन, किसान-सभाएँ और युवक संघ के क्रांतिकारी अंशों के सामूहिक सम्बन्ध के आधार पर यह संस्था बनायी जायेगी। इसे हम साम्राज्य-विरोधी लीग कह सकते हैं। सब शोषित वर्गों की मांगें इसके प्रोग्राम में शामिल की जायेंगी और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता, मजदूर और किसान राज्य आदि इसके नारे होंगे। यह एक सर्वसाधारण की संस्था होगी जिसमें सभी शोषित वर्ग के लोग सम्मिलित होंगे। इस लीग की स्वतन्त्र सत्ता होगी[1]।

साम्राज्य-विरोधिनी होने पर भी सन् १९४२ के आन्दोलन में इनका रुख ब्रिटिश सरकार की ओर था और इसने कांग्रेस के जन आन्दोलन का विरोध किया। इस विचार परिवर्तन का कारण रूस का जर्मनी के विरुद्ध युद्ध में सम्मिलित होना था। भारत सरकार ने भी उनके इस रुख को देखकर सन् १९४३ में कम्युनिस्ट पार्टी से प्रतिबन्ध हटा लिया और तब से यह स्वतन्त्र रूप से कार्य कर रही है। सन् १९४३ में ब्रिटिश सरकार को इसने युद्ध के समय पूर्ण सहायता प्रदान कर द्वितीय महायुद्ध को 'जनता का युद्ध' घोषित किया।

राष्ट्रीय समस्याओं के प्रति साम्यवादियों के विचार समय-समय पर परिवर्तित होते रहे हैं और ये परिवर्तन मूलतः रूस और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के आधार पर निर्भर होते हैं। जब तक पाकिस्तान नहीं बना था तब तक ये लीग की पाकिस्तान की माग का समर्थन करते रहे और सन् १९४६ के आम चुनावों में कांग्रेस के विरुद्ध लीग के साथ मिलकर लड़े। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद इन्होंने साम्प्रदायिक संस्थाओं के विरुद्ध छेड़े गये जिहाद में नेहरू सरकार को सहायता देने का वचन दिया पर श्री रणदिवे के नेतृत्व में इन्होंने देश के विभिन्न भागों में हिंसात्मक कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। अतः पश्चिमी बंगाल की सरकार ने साम्यवादी दल को गैर कानूनी घोषित कर दिया और बम्बई सरकार ने इसके साप्ताहिक 'जनयुग' पर पाबन्दी लगा दी[2]।

---

१. आचार्य नरेन्द्र देव

२ ज्योतिप्रसाद सूद, भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन तथा संविधान, पृष्ठ ४६२

दल की नीतियो म इन परिवर्तनो का कारण यह अलिखित नियम प्रतीत होता है कि इन नीतियो का निर्धारण देश म प्रचलित अवस्थाओ के अनुसार न होकर रूस की वैदेशिक नीति के अनुसार होगा । भारतीय साम्यवादी दल म यह एक स्वाभाविक विरोध है। भारतीय साम्यवादी पथ प्रदर्शन के लिए मास्को की ओर देखते हैं और प्रेरणा लेते है। वे मास्को को उन सब वस्तुओ का सार मानते हैं जो आधुनिक हैं, प्रगतिशील है और गतिमान हैं[1] । इस भांति वे प्रथम साम्यवादी है, बाद मे भारतीय ।

साम्यवाद एक अन्तर्राष्ट्रीय विचारधारा है और भारतीय साम्यवादी भी रूस की तरह यहाँ मार्क्स और लेनिन के अनुसार ही मजदूरो का अधिनायकत्व स्थापित करना चाहते हैं। इनका उद्देश्य है मजदूरो को रक्तमय क्रांति के लिए सगठित करना जो पुरानी व्यवस्था और उसके आदर्शो को पूर्णतया समाप्त करके एक ऐसी सामाजिक एव आर्थिक व्यवस्था को जन्म दे, जो मार्क्स और लेनिन के सिद्धान्तो पर आश्रित हो और भारतीय प्रकृति और प्रतिभा के प्रतिकूल हो। यह दल भारत की प्राचीन भूमि पर एक ऐसी विदेशी सस्कृति थोपना चाहता है जो भौतिकवाद और नास्तिकवाद म विश्वास करती है और जीवन के आध्यात्मिक आदर्शो की, जिन्हे भारत न सदा से बडा महत्त्व दिया है, अवहेलना करती है। साम्यवादियो की सफलता का अर्थ होगा भारत की प्राचीन सस्कृति एव सभ्यता की मृत्यु[2] । साम्यवाद एव गाधीवाद के सिद्धान्तो की विस्तृत विवेचना ग्यारह अध्याय म की गई है अत उसकी पुनरावृत्ति नहीं की जा रही है।

---

१ डॉ० एन० व्ही० राजकुमार इण्डियन पोलिटिकल पार्टीज, पृष्ठ ७०

२ ज्योतिप्रसाद सूद भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन तथा सविधान, पृष्ठ ४६३

अध्याय ३

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों का क्रमिक विकास

> प्रारम्भिक हिन्दी उपन्यास और राजनीति–१८८२ से १९१९ ई०
> साहित्य और राजनीति
> हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों का विकास–१९२० से १९६३ ई०
> स्वाधीनता-पूर्व हिन्दी के राजनीतिक उपन्यास
> समाजवादी चेतना से प्रभावित उपन्यास
> स्वाधीनतोत्तर राजनीतिक उपन्यास
> हिन्दू राष्ट्रीयतावादी विचार-धारा
> राजनीतिक सिद्धान्तों से समन्वित उपन्यास

(क) प्रारम्भिक हिन्दी उपन्यास और राजनीति—सन् १८८२ से १६१६ तक

हिन्दी का सर्वप्रथम मौलिक उपन्यास श्री निवासदास लिखित 'परीक्षा गुरु' माना जाता है। इससे पूर्व तीन उपन्यासों—श्रद्धाराम फुल्लौरी कृत 'भाग्यवती' भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कृत 'पूर्णप्रभा चन्द्रप्रकाश' और मुंशी ईश्वरी प्रसाद तथा कल्याण राय कृत 'वामा शिक्षक' का उल्लेख मिलता है। इनमें से 'पूर्ण प्रभाचन्द्र प्रकाश' गुजराती से अनूदित है। अतः उसे मौलिक उपन्यासों की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'भाग्यवती' नामक उपन्यास की चर्चा करते हुए लिखा है कि "भाग्यवती' नाम का एक सामाजिक उपन्यास भी सम्वत् १९३४ में उन्होंने (श्रद्धाराम फुल्लौरी) लिखा, जिसकी बड़ी प्रशंसा हुई।" इस पर भी आचार्य शुक्ल मानते हैं कि 'परीक्षा गुरु' ही 'अंग्रेजी ढंग का पहला मौलिक उपन्यास है'। इस कथन से स्पष्ट है कि 'भाग्यवती' यदि मौलिक भी है तो आधुनिक ढङ्ग का नहीं है अथवा यदि आधुनिक ढङ्ग का है तो मौलिक नहीं। यही कारण है कि अधिकांश विद्वों ने 'परीक्षा गुरु' को हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यास माना है, जो सन् १८८२ ई० में प्रकाशित हुआ था। डॉ० श्रीकृष्ण लाल और अम्बिका दत्त व्यास ने भी यही मत व्यक्त किया है। इधर डॉ० कोतमिरे के शोध प्रयासों से 'वामा शिक्षक' नामक एक नये उपन्यास पर प्रकाश पड़ा है, जिसका रचना-काल सन् १८७२ ई० कहा गया है। यह एक चरित्र प्रधान उपदेशात्मक उपन्यास है, जिसमें स्त्री-शिक्षा की आवश्यकता पर विचार किया गया है।

सच तो यह है कि भारतेन्दु-काल में हिन्दी में उपन्यास-रचना की ओर साहित्यकारों का ध्यान आकर्षित होने लगा था। स्वयं भारतेन्दु ने इस दिशा में प्रयत्न किये। फलतः उनकी प्रेरणा और प्रोत्साहन से अनेक बंगला उपन्यासों का अनुवाद हुआ तथा मौलिक उपन्यास रचना के प्रयास किये गये। इस सन्दर्भ में बाबू व्रजरत्नदास का कथन है 'यद्यपि भारतेन्दु जी ने एक भी पूरा उपन्यास नहीं लिखा है, पर एक पत्र से ज्ञात होता है कि इन्हीं के उत्साह दिलाने से उस समय स्वर्गीय श्री गोस्वामी राधाचरण जी ने 'दीप-निर्वाण' तथा 'सरोजिनी' का उल्था किया और बाबू गदाधरसिंह ने 'कादम्बरी' का संक्षिप्त तथा 'दुर्गेश नन्दिनी' का पूरा अनुवाद किया था। प० रामशंकर व्यास द्वारा 'मधुमती' और बाबू राधाकृष्ण द्वारा 'स्वर्णलता' अनूदित हुई थी। 'चन्द्र प्रभापूर्ण प्रकाश', 'राधा रानी', 'सौन्दर्यमयी' आदि भी इसी प्रकार अनूदित हुए थे[1]।' निष्कर्ष यह कि भारतेन्दु ने अनूदित उपन्यासों की परम्परा

१. बाबू व्रजरत्नदास : भारतेन्दु, पृष्ठ १६४

से हिन्दी उपन्यास का मार्ग दर्शन किया। हिन्दी में अनूदित उपन्यासों ने साहित्य-प्रेमियों का ध्यान आकर्षित किया और साहित्यिकों को उपन्यास-रचना की प्रेरणा दी। इन उपन्यासों का सूत्रपात समाज की आलोचना के रूप में हुआ। कुछ ही समय में हिन्दी उपन्यास-साहित्य ने साहित्यिक विधा के रूप में स्थान बना लिया और उसमें सामाजिक समस्याओं का समावेश किया जाने लगा। अतः यह कहा जा सकता है कि नवीन जागरण के प्रभाव से हिन्दी में जिन उपन्यासों की सृष्टि हुई— वे सामाजिक अथवा ऐतिहासिक हैं। ये इस युग के उपन्यासकारों की वर्तमान और अतीत के प्रत्यङ्कन की लालसा-भावना के द्योतक हैं।

शिवनारायण श्रीवास्तव ने प्रेमचन्द पूर्व युग के मौलिक हिन्दी उपन्यासों को पाँच श्रेणियों में विभाजित किया है—

(१) सामाजिक,
(२) ऐयारी-तिलस्मी,
(३) जासूसी,
(४) ऐतिहासिक और
(५) भाव-प्रधान[1]।

प्रारम्भिक हिन्दी उपन्यास राजनीतिक घटनाओं की अपेक्षा पुनरुत्थानवादी आन्दोलन से अधिक प्रभावित रहे हैं। इसका एक कारण यह है कि हिन्दी उपन्यास और भारतीय राजनीतिक संगठन, दोनों प्रायः साथ-साथ ही विकसित हुए हैं। इस दृष्टि से हम हिन्दी उपन्यास को कांग्रेस का अग्रज भी कह सकते हैं। कांग्रेस की स्थापना (सन् १८८५) से भारतीय राजनीति की सुव्यवस्थित परम्परा प्रारम्भ हुई। कांग्रेस-पूर्व-काल (सन् १८२१-८४ तक) वस्तुतः पुनरुत्थानवादी युग था और राममोहन राय से दयानन्द सरस्वती तक व्याप्त इस युग में प्राचीन संस्कृति के आत्म-गौरव द्वारा राष्ट्र के अभ्युत्थान की कल्पना की गई। हिन्दी के प्रथम मौलिक उपन्यास 'परीक्षा गुरु' के प्रकाशन के साथ-साथ कांग्रेस-पूर्व-काल की समाप्ति होती है, किन्तु युगीन चेतना का प्रभाव भारतीय सामाजिक जीवन पर बाद के तीन दशकों तक मिलता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि पुनरुत्थानवादी प्रभाव प्राक् गांधी-युग तक रहा और उसने सामाजिक-राजनीतिक विचारों को प्रभावित किया।

हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यासों में भी इसका प्रत्यक्ष प्रभाव परिलक्षित होता है। भारतीय समाज की दयनीय अवस्था ने समाज-सुधारकों को प्रेरणा दी। उन्होंने अनुभव किया कि सांस्कृतिक अतिवाद एवं सामाजिक जातिभेद भारतीय जीवन के विकास में

१. शिवनारायण श्रीवास्तव : हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ २३

बाधक हैं और नवीन युग के अनुरूप नहीं है। यही कारण है कि राममोहन राय ने कम से कम राजनीतिक लाभ एवं सामाजिक सुख के लिए धर्म रीति में कुछ परिवर्तन पर जोर दिया। इस युग में राममोहन राय के प्रभाव के बाद हिन्दू धर्म को ही सम्मान्य बनाने की प्रवृत्ति बलवती रही। इसने पाश्चात्य सभ्यता के प्रति विरक्ति के भाव का प्रसार किया। फलत: राजनीतिक आर्थिक पक्ष सामाजिक धार्मिक पक्ष से पृथक् माना गया। स्वामी दयानन्द और उनके आर्य समाज ने पुनरुत्थानवादी आन्दोलन को गतिशील बनाया। पाश्चात्य सभ्यता को घातक बताया गया और आत्म-गौरव द्वारा राष्ट्रोत्थान के सिद्धान्त को प्रमुखता दी गई। मूल रूप से इनकी प्रेरणा विदेशीय न होकर भारतीय आत्म-विश्लेषण की है। मूलत: आर्य समाज के दो पक्ष हैं—एक तो वैदिक विचार धारा में निष्ठा, दूसरा वैदिक सिद्धान्तों के आधार पर सामाजिक कुरीतियों का निराकरण।

इस तरह इस युग में सनातनधर्मी और आर्य समाजी, ये दो विचार-धाराएँ समानान्तर रूप से चल रही थीं। सनातनधर्मी प्राचीन रीति नीति एवं विश्वासों के समर्थक थे। इसके विरुद्ध ब्रह्म समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन आदि सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन एवं भारतीय सभ्यता-संस्कृति के अनुरूप समाज के नवसंगठन का प्रयास कर रहे थे। इतना होने पर भी दोनों कुछ प्रश्नों पर एकमत थे। सभी हिन्दू धर्म इस्लाम और ईसाइयत तथा पाश्चात्य सभ्यता से हिन्दू धर्म को बचाने में एकमत रहे। राजनीतिक गतिविधियाँ अत्यन्त क्षीण थीं और सामाजिक-सांस्कृतिक आन्दोलन तक ही एक नए समाज के निर्माण का स्वप्न सीमित था।

प्रेमचन्द पूर्व-युग के सामाजिक उपन्यासों में इन्हीं समस्याओं का चित्रण मिलता है। इस युग के अधिकतर सामाजिक उपन्यास वैदिक और पौराणिक अथवा आर्य समाजी और सनातनधर्मी विचारधारा का आन्तरिक विरोध ही चित्रित करते हैं। इन विचार-धाराओं की दृष्टि से सामाजिक उपन्यासों की तीन श्रेणियाँ बन सकती हैं—

१—सनातनधर्मी

२—आर्य समाजी

३—सुधारवादी

इन धार्मिक आन्दोलनों को अभिव्यक्ति देने के कारण उपन्यास में उपयोगिता के एक बाह्य पक्ष को स्वीकृति मिली और इससे भावी राजनीतिक उपन्यास का मार्ग प्रशस्त हुआ।

सर्वश्री लज्जाराम शर्मा मेहता, गंगाप्रसाद गुप्त, किशोरीलाल गोस्वामी इत्यादि उपन्यासकारों की कृतियों में सनातन धर्म तथा सर्वश्री श्यामबिहारी वर्मा, कृष्णलाल वर्मा, रुद्रदत्त शर्मा आदि के उपन्यासों में आर्य समाज के सिद्धान्तों का आग्रहपूर्वक प्रति

पादन किया गया है। सर्वश्री अयोध्यासिंह उपाध्याय, ब्रजनन्दन सहाय, मन्नन द्विवेदी आदि उपन्यास-लेखकों की रचनाएं सुधारवादी दृष्टिकोण से समन्वित हैं। इस युग के कुछ प्रमुख सामाजिक उपन्यासों और उनमें बीज रूप में निहित राजनीतिक भावना की चर्चा यहाँ अप्रासंगिक न होगी।

परीक्षा गुरु

हिन्दी में उपन्यासों का प्रारम्भ सामाजिक रचनाओं से हुआ और 'परीक्षा गुरु' इस उपन्यास-वाटिका का पहला सुरभित पुष्प है। इसमें युगानुरूप सुगन्ध और सौन्दर्य दोनों हैं। लेखक के शब्दों में यह 'संसारी वार्ता है, जिसमें अनुभव द्वारा उपदेश की छटा और कल्पना के सहारे समकालीन जीवन का यथार्थ जीवन दोनों का चित्रण है। लेखक का आग्रह व्यवहार-नीति पर था, इसलिए इसमें धर्म और राजनीति की चर्चा प्रत्यक्ष रूप से नहीं है। वस्तुतः उसकी दृष्टि उन राष्ट्रीय समस्याओं पर है, जो सामाजिक और आर्थिक हैं। अपनी समग्रता में आलोच्य उपन्यास शिक्षाप्रद अथवा उपदेशप्रधान है। उसमें ब्रिटिश सरकार द्वारा बलपूर्वक स्वाधीनता को अपहरण करने की वृत्ति पर क्षोभ है, जो वह लेडी जेन ग्रे के वक्तव्य के माध्यम से सांकेतिक रूप से नीति-कथन के रूप में प्रस्तुत करता है—

'इंगलैंड की गद्दी बाबत एलिज़ाबेथ और मेरी के बीच विवाद हो रहा था, उस समय लेडी जेन ग्रे को उसके पिता, पति और स्वसुर ने गद्दी पर बिठाना चाहा, परन्तु उसको राज का लोभ न था। वह होशियार, विद्वान और धर्मात्मा स्त्री थी। उसने उनको समझाया कि मेरी निस्बत मेरी और एलिज़ाबेथ का ज्यादा हक है और इस काम से तरह तरह के बखेड़े उठने की सम्भावना है। मैं अपनी वर्तमान अवस्था में बहुत प्रसन्न हूँ। इसलिए मुझको क्षमा करो, पर अन्त में उसको अपनी मरजी के उपरांत बड़ों की आज्ञा से राजगद्दी पर बैठना पड़ा, परन्तु दस दिन नहीं बीते, इतने में मेरी ने पकड़कर उसे कैद किया और उसके पति समेत फांसी का हुक्म दिया। वह फांसी के पास पहुँची। उस समय उसे अपने पति की लटकते देखकर तत्काल अपनी याददाश्त में यह तीन वचन लाटिन, यूनानी, और अंग्रेज़ी में क्रम से लिखे कि "मनुष्य जाति के न्याय ने मेरी देह को सजा दी परन्तु ईश्वर मेरे ऊपर कृपा करेगा। और मुझको किसी पाप के बदले यह सजा मिली होगी तो अज्ञान अवस्था के कारण मेरे अपराध क्षमा किये जायेंगे। और मैं आशा रखती हूँ कि सर्वशक्तिमान परमेश्वर और भविष्यत काल के मनुष्य मुझ पर कृपा दृष्टि रखेंगे।' उसने फांसी पर चढ़ कर सब लोगों के आगे एक वक्तृता दी, जिसमें अपने मरने के लिए अपने सिवाय किसी को दोष न दिया। वह बोली कि 'इंगलैंड की गद्दी पर

बैठने के वास्ते उद्योग करने का दोष मुझ पर कोई नहीं लगावेगा। परन्तु इतना दोष अवश्य लगावेगा कि वह औरो के कहने से गद्दी पर क्यो बैठी ? उसने जो भूल की वह लोभ के कारण नही, केवल बडो के आज्ञावर्ती होकर की थी सो यह कहना मेरा फर्ज था परन्तु किसी तरह करो जिसके साथ मैंने यह अनुचित व्यवहार किया उसके हाथ मे प्रसन्नता स अपने प्राण देने को तैयार हू' यह कहकर उसने बडे धैर्य से अपनी जान दी।[1] अनावश्यक रूप स इस प्रसग-कथा को जोडने का एकमात्र उद्देश्य अग्रेजो द्वारा अनैतिक रूप से भारत पर कब्जा जमाने और भविष्य म उसके लिए निश्चित दण्ड विधान का सकेत देना है। इस कथा से यह सिद्ध किया गया है कि जेन ग्रे को जब साधारण अपराध से फासी का दण्ड मिला तो उनका अ-जाम न जाने क्या होगा, जिन्होने अनाचार और अत्याचार से राज्य स्थापित किया।

एक दूसरे प्रसग म लेखक ने भारतीय रईसों के प्रति भी अपना आक्रोश व्यक्त किया है—'मुल्क म अकाल हो, गरीब विचारे भूखा मरते हो, आपके यहाँ दिन रात य हा-हा, ही ही, हो रहेगी—परमेश्वर ने आपको मनमानी मौज करने के लिए दौलत दे दी फिर औरो के दुख-दर्द म पडने की आपको क्या जरूरत रही।' स्पष्ट है कि लेखक तत्कालीन धनिक वर्ग की राष्ट्रीय सामाजिक उपेक्षा-वृत्ति को देश के लिए घातक समझता है और उन्हे अराष्ट्रीय ही मानता है।

इस युग के उपन्यासो मे युगीन राजनीति समग्रता मे न आकर सामाजिक समस्याओ के परिवेश मे साकेतिक रूप से व्यक्त हुई है। सच तो यह है कि सन् १८५७ के विद्रोह की असफलता के नैराश्य से ग्रस्त भारतीय जनता को धार्मिक व सामाजिक चेतना के माध्यम मे ही सपुष्ट किया जा सकता था।

अत राष्ट्रीयता का जो स्वरूप इन उपन्यासो म अकित हुआ है वह जातीयता तथा अतीत गौरव के रूप मे मिलता है। इसके साथ ही राजभक्ति की भावना का उन्मेष भी कई उपन्यासो मे दिखलाई देता है। ऊपरी सतह पर परस्पर विरोधिनी दिखलाई पडने वाली ये प्रवृत्तियाँ वस्तुत. तत्कालीन राजनीतिक स्थिति के अनुकूल है। इस युग म जहाँ एक ओर नव-जागरण का प्रतीक माना जाता था, वहीं दूसरी ओर नेतागण एव समाज-सुधारक ब्रिटिश सरकार को अनक नीतियो के कारण क्षुब्ध भी थे। उदाहरणार्थ काग्रेस के उदारवादी दल को ही लिया जा सकता है, जो स्वत राजभक्ति-भावना स मुक्त न था। स्वय डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या ने लिखा है कि सन् १८८५ १९१५ की अवधि मे काग्रेस ने 'राजभक्ति की शपथ भी कई बार ली। सन् १९०१ मे महारानी विक्टोरिया की मृत्यु और १९१० मे सम्राट् एडवर्ड की मृत्यु पर

1 डॉ० श्रीकृष्णलाल . श्रीनिवास ग्रन्थावली, पृष्ठ २२८

कांग्रेस को अपनी राजभक्ति फिर प्रकट करने का अवसर मिला। एडवर्ड और जार्ज पंचम के स्वागत-सम्बन्धी प्रस्ताव भी पास किये गये।'[1] प्रारम्भ में कांग्रेस की माँगें प्रार्थनाओं तक सीमित थीं। जनता के साथ उसका सीधा सम्पर्क नहीं था और कुछ बड़े लोगों के हाथों में ही उसका नेतृत्व था। 'आदर्श हिन्दू' के पात्र प० प्रियानाथ एवं उनके इस कथन में युगीन राजनीति का स्पष्ट चित्र देखा जा सकता है—'प० प्रियानाथ राजनीतिक कामों के विषय में प्राय उदासीन से हैं। उनका मत है कि जब इस विषय का आन्दोलन करने में सैकड़ों बड़े-बड़े आदमी दत्तचित्त है, तब मैं अपना सिर क्यों खपाऊँ।' वे यह भी मानते हैं कि 'जिन बातों को देने का सरकार ने वादा कर लिया है अथवा आप जिन पर अपना स्वत्व समझते हैं, उन्हें सरकार से मांगे। जब माता पिता भी बेटे-बेटी को रोने से रोटी देते हैं, तब राजा से मांगने में कोई बुराई नहीं है। तुम ज्यों-ज्यों मांगते जाते हो, त्यों-त्यों धीरे-धीरे वह देती भी जाती है। किन्तु काम वही करो, जिससे तुम्हारे 'नराणाम् च नराधिप.' इस भगद्वाक्य में बट्टा न लगे। भगवान के इस वचन से जब राजा ईश्वर का स्वरूप है, तब उसकी गवर्नमेन्ट शरीर न होने पर भी उसका शरीर है। इसलिए नियमबद्ध आन्दोलन करना आवश्यक व अच्छा है, किन्तु जो मुटमर्दी करने वाले हैं, जो उपद्रव करके डराने वाले हैं, अथवा जो अपने मिथ्या स्वार्थ के लिए औरों के प्राण लेने पर उतारू होते हैं, उनके बराबर दुनियाँ में कोई नीच नहीं। वे राजा के कट्टर दुश्मन हैं। सचमुच देशद्रोही हैं।'[2] वस्तुत ये विचार कांग्रेस की तत्कालीन नीति के अनुरूप राजभक्ति से प्रभावित तथा क्रांतिकारी प्रयासों के विरोध में है। प्रकारान्तर से राजभक्ति का यह स्वरूप किशोरीलाल गोस्वामी के सामाजिक उपन्यासों में भी मिलता है। दोनों में अन्तर केवल यह है कि लज्जाराम मेहता ने राजभक्त का खुला प्रदर्शन किया है, जब कि गोस्वामी जी ने मात्र संकेत या ब्रिटिश शासन की प्रशस्तियां लिखकर। राधाकृष्णदास ने भी 'निस्सहाय हिन्दू' में अंग्रेजी राज्य के सुव्यवस्था के कारण राजभक्ति की दुहाई के साथ अधिक कर लगाने की नीति पर दु ख भी प्रकट किया है। देशवासियों की अकर्मण्यता और दुरवस्था, दोनों का वर्णन कर उद्बोधन का प्रयास भी आलोच्य उपन्यास में मिलता है। एक समीक्षक के शब्दों में 'इस उपन्यास के द्वारा निम्न वर्ग को पहली बार मंच पर लाया गया। निम्नवर्गीय जीवन की दरिद्रता और दुर्दशा का प्रथम बार इस उपन्यास में दर्शन होता है।' उपन्यास गो-वध की समस्या पर आधारित है और मुस्लिम पात्र अब्दुल अजीज और उसकी पत्नी भी गो-वध निवारण

---

१. डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ ६५
२. लज्जाराम आदर्श हिन्दू, भाग ३, पृष्ठ २४०

के लिए बलिदान हो जाते है। इस तरह यह एक समस्यामूलक उपन्यास है जिसे जातीय धरातल से उठाकर सास्कृतिक स्तर दिया गया है।

इस युग के कतिपय सामाजिक उपन्यासो म राष्ट्रीयता का धधला स्वरूप भी देखा जा सकता है। धूमिल होने पर भी यह राष्ट की सुखसमृद्धि की आकाक्षा तथा अतीत गौरव की एक झलक देता है। सच तो यह है कि विवेच्य काल के उपन्यासकारो ने हिन्दू सस्कृति और उसके आदर्शों के प्रति ही विशेष अभिरुचि प्रदर्शित की है। फलत उनकी राष्ट्रीयता किंचित बदल कर जातीयता के अधिक निकट प्रतीत होती है। प्राचीन गौरव तथा सस्कृति इस युग के राष्ट प्रम की वाहिका के रूप म सम्मुख आई। आय समाज ने इस प्रवृत्ति को विकसित करने म मह वपूण भूमिका अदा की। अतीत के प्रति अनुरागमयी दृष्टि इस युग के सामाजिक तिलस्मी एव ऐतिहासिक उपन्यासो मे मिलती है। राष्ट्रीय उद्योग धधो के विकास कृषि सुधार शिक्षा आदि की योजनाए भी कुछ उपन्यासो मे निर्देशित है किन्तु उनको व्यापकता प्राप्त नहीं हो सकी है। हिन्दू गृहस्थ म हरसहाय ग्रामीण जीवन को देशी उद्योगो तथा कृषि विकास के नए परिवेश मे देखने का प्रयत्न किया है[1]। व्रजनन्दन सहाय के अरण्यबाला म इस तरह की योजनाए महा मा प्रमानन्द के माध्यम स प्रस्तुत की गई है—

कल काटे का जहा-तहा कारखाना खोलो। तुम्हे कपडा लोहा गाडी आदि सब पदार्थों का कारखाना खोलना होगा। ऐसा उपाय करना होगा कि अपने नित्य के व्यवहार के आवश्यक पदार्थों के लिए यहा के रहने वालो को दूसरो का मु ह न जोहना पडे। दूसरी बात यह है कि तुम्हारा देश कृषिप्रधान है अतएव यथेष्ट धन व्यय कर यहा के खेतो को उपजाऊ बनाने का यत्न करो। कृषको को खेती की सामग्री आधुनिक रीति से तैयार करा दो जो कृषक तुमसे खेती-बारी के लिए ऋण मागे उसे बिना सूद का दो[2]। वस्तुत यह योजना काग्रस की आर्थिक नीति के अनुरूप तथा अग्रेजी राज्य की आर्थिक नीति के विरुद्ध संकेतन्वी की है हिन्दू गृहस्थ का एक पात्र ग्रामीण उद्योग की दिशा म आगे आकर दियासलाई का कारखाना प्रारम्भ करने के ध्येय स आवश्यक निधि एकत्र करने के लिए विविध राजनीतिक सभाओ की सहयोग प्राप्ति को उत्सुक है। उसके इस काय की सराहना भा की जाती है आपका काय वस्तुत भारतवष का हित करनेवाला है। इस काम से केवल इस देश के दीन लोगो का ही पेट न भरेगा किन्तु भारतवष से विदेश को प्रतिवष जाने वाला हजारो रुपया बच

---

१ लज्जाराम शर्मा मेहता हिन्दू गृहस्थ, पृष्ठ ६५

२ व्रजनन्दन सहाय अरण्यबाला, पृष्ठ ३२५

जावेगा[१]।" 'परीक्षा गुरु' के पात्र भी शिक्षा-विस्तार तथा आर्थिक उन्नति के लिए प्रयत्नशील है। वे जानते है कि राष्ट्र प्राकृतिक साधनो से सम्पन्न है और यदि उनका समुचित उपयोग किया जावे तो देश खुशहाल हो सकता है। एक पात्र के शब्द हैं. 'हिन्दुस्तान की भूमि मे ईश्वर की कृपा के उन्नति करने के लायक सब सामान बहुतायत से मौजूद है केवल नदियो के पानी ही से बहुत तरह की कलें चल सकती है।' उद्योग एव व्यापार की सफलता राष्ट्रीय एकता पर निर्भर है। इसीलिए उपन्यासकार इस ओर ध्यानाकर्षित करते हुए कहता है—"जब तक हिन्दुस्तान मे और देशो से बढकर मनुष्य के लिए वस्त्र और सब तरह के सुख की सामग्री तैयार होती थी, रक्षा के उपाय ठीक-ठीक बन रहे थे, हिन्दुस्तान का वैभव प्रतिदिन बढता जाता था, परन्तु जब से हिन्दुस्तान का एका टूटा और देशो मे उन्नति हुई, बाफ और बिजली आदि कलो के द्वारा हिन्दुस्तान की अपेक्षा थोडे खर्च, थोडी मेहनत और थोडे समय मे सब काम होने लगा। हिन्दुस्तान की घटती के दिन आ गए.. ।" निश्चय ही देश की आर्थिक समृद्धि से सम्बन्धित ये प्रश्न एव उनके समाधान राष्ट्रीयता के रूप मे ही आए है।

आलोच्य काल के अनेक उपन्यासो मे अग्रेजी शिक्षा-व्यवस्था की अव्यावहारिक पक्ष पर प्रकाश डालते हैं। इन उपन्यासो मे यद्यपि राष्ट्रीयता शिक्षा सम्बन्धी कोई सुसम्बद्ध योजना नहीं मिलती है। जो विचार व्यक्त किये गए है, वे धार्मिक सनाग्रह से ग्रस्त है। इन उपन्यासकारो की दृष्टि मे अग्रेजी शिक्षा का ध्येय भारतीय नागरिको को क्लर्क बनाने तक सीमित था। कांग्रेस भी समय समय पर नौकरशाही की इस प्रवृत्ति की कटु आलोचना करती रहती थी। उपन्यास-लेखको का भी आग्रह है कि भारतीय नागरिक विदेशी शासको की नौकरी करने के बजाय देश की सुख-समृद्धि के लिए व्यापार व्यवसाय को अपनावे। शिक्षा सम्बन्धी विचारधारा की इसी परम्परा मे राष्ट्रभाषा या जातीय भाषा की आवश्यकता पर विचार करते है। 'अरण्यबाला' मे इस सन्दर्भ मे कहा गया है "शिक्षा तुम्हे अपने देश की भाषा मे देनी होगी। किन्तु लोगो की विदेशीय विविध भाषाओ को सीखना तो दूसरी बात है, किन्तु शिक्षा का माध्यम तुम्हें जगन्मान गुणागरी नागरी ही को रखना पडेगा।"[२] खेद है कि राष्ट्रभाषा के रूप मे हिन्दी को जिस आवश्यकता को हमारे प्रारम्भिक उपन्यासकारो ने पराधीनता के युग मे ही पहचान लिया था, स्वाधीनता के बाद भी वह राष्ट्र के कर्णधारो के लिए समस्या ही बनी हुई है।

---

१. लज्जाराम शर्मा मेहता हिन्दू गृहस्थ, पृष्ठ ६८

२ व्रजनन्दन सहाय अरण्यबाला, पृष्ठ ३२७

भ्रष्टाचार का विरोध

ब्रिटिश शासन-काल मे भ्रष्टाचार अनेक स्तरो पर व्याप्त था। पूर्व प्रेमचन्द युग के उपन्यासकारो ने प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रणाली से इसका विरोध किया है। हिन्दी उपन्यास-साहित्य मे पुलिस विभाग के भ्रष्टाचार का व्यापक चित्रण मिलता है। प्रारम्भिक उपन्यासो से लेकर वर्तमान युग तक इस परम्परा का शृंखलाबद्ध रूप देखा जा सकता है और जो स्वतन्त्र शोध का विषय हो सकता है। 'आदर्श दम्पति' मे अमरफीलाल की जाप की आड मे पुलिस के भ्रष्टाचार का एक सजीव चित्र अंकित है।[1] किशोरीलाल गोस्वामी के 'चन्द्रावली' मे भी पुलिस विभाग की घूसखोरी पर व्यंग्य किया गया है। नियुक्तियो मे भ्रष्टाचार का एक उदाहरण 'हिन्दू-गृहस्थ' में इस प्रकार आया है—

"वहाँ के हाई स्कूल में एक मास्टरी खाली थी। इस विज्ञापन के प्रकाशित होते ही हेडमास्टर के पास अर्जियो का ढेर लग गया। बडी सिफारिशें आई। मीयाद पूरी होने पर हेडमास्टर साहब ने उम्मीदवारो की गिनती की तो २० रुपया की नौकरी के लिए तीन एम० ए०, पन्द्रह बी० ए० और छप्पन-एन्ट्रेंस निकले। उस जगह पर एक साहब के लड़के के खानसामा का लडका जो एन्ट्रेंस फेल था, भर्ती हुआ। साहब ने उसके लिए बहुत कोशिश की थी। बस इसी कारण से उसे नौकरी मिल गई[2]।"

प्रेमचन्द-पूर्व-युग मे हिन्दी उपन्यासो का मुख्य विषय सामाजिक तथा घटनात्मक था, फिर भी ऐतिहासिक उपन्यास भी काफी सख्या मे लिखे गये। किशोरीलाल गोस्वामी हिन्दी के प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास-लेखक है। अन्य उपन्यासकारो में गगाप्रसाद गुप्त, जयरामदास गुप्त, बलदेवप्रसाद मिश्र, गिरिजानन्द तिवारी, मिश्रबन्धु इत्यादि के नाम उल्लेखनीय है। राजनीतिक दृष्टि से इन उपन्यासो का महत्त्व यही है कि इनके माध्यम से राष्ट्र को आत्म-विश्वासी बनने की प्रेरणा मिली। इन उपन्यासकारो का प्रेरणा-स्रोत मुख्यत मध्यकाल था। फलतः युगीन राजनीतिक सामाजिक वातावरण के कारण राजपूतों का मुसलमानों के साथ सघर्ष उपन्यास की कथावस्तु बनी। कर्नल टॉड का 'राजस्थान का इतिहास' अनेक ऐतिहासिक कथानकों का आधार बना और आत्म-गौरव की भावना को (जिसे स्थूल रूप मे राष्ट्र-प्रेम भी कहा जा सकता है) अभिव्यक्ति मिली। राष्ट्रीयता के राजनीतिक एवं सामाजिक विचार भी इन इस उपन्यासो मे प्रतिबिम्बित हुए।

हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक भावना जड पकडती जा रही थी। सर सैयद

१ लज्जाराम शर्मा मेहता - आदर्श दम्पति, पृष्ठ २

२. लज्जाराम शर्मा मेहता हिन्दू गृहस्थ, पृष्ठ ७

अहमद खाँ ने कांग्रेस के विरोध में सन् १८८८ में ही 'अपर इण्डिया एसोसिएशन' की की स्थापना कर ली थी। धार्मिक आन्दोलनों द्वारा उद्भूत सांस्कृतिक जागरण के इस नवयुग में धार्मिक-राजनीतिक कारणों से मुसलमानों को कुत्सित रूप में चित्रित करना आश्चर्यजनक नहीं कहा जा सकता। पराधीनता के शिकंजे में फँसे होने के कारण ब्रिटिश सत्ता का विरोध करना इन उपन्यासकारों के लिए सम्भव नहीं था। अतः अपने आक्रोश को व्यक्त करने के लिए उन्होंने उन मुसलमान शासकों के काल को विषय बनाया, जो अनाचार और अत्याचार के लिए विदेशी शासन का प्रतीक बन सकता था। वस्तुतः प्राचीन संस्कृति का आश्रय लेने का अर्थ ही था पाश्चात्य एवं मुस्लिम दोनों संस्कृति के प्रति घृणा की भावना। प्राचीन इस्लाम के वैभव का गौरव भी हिन्दुओं के लिए विदेशी तत्त्व था। लोकमान्य तिलक ने शिवाजी को राष्ट्रीय योद्धा के रूप में देखा। फलतः मुसलमानों को उपन्यास में मलिन रूप में चित्रित करने की प्रवृत्ति आई। किशोरीलाल गोस्वामी ने 'हीराबाई या बेहयाई का बोरका,' 'लखनऊ की कब्र या शाही महलसरा,' 'रजिया बेगम या रंगमहल में हलाहल' आदि उपन्यासों में पूर्वग्रह से मुसलमान शासकों को कुत्सित रूप में चित्रित किया है। इन ऐतिहासिक उपन्यासों में राजनीतिक तत्त्व भी बीज रूप में दिखलाई पड़ते हैं। 'रंग महल में हलाहल' में एक स्थल पर कहा गया है—"आपस की नाइत्तिफाकी के बीज, दूसरे की तरक्की पर जलने ने ही हिन्दुस्तान को मुद्दत से ख्वाब कर रखा है[1]।" 'नूतन ब्रह्मचारी' में भी ऐसा ही कथन मिलता है 'जहाँ एकता है वहाँ यह कब सम्भव है कि कोई बाहरी आकर अपना प्रभुत्व जमा सके[2]।" इन उदाहरणों से हम कह सकते हैं कि इन उपन्यासकारों के सम्मुख राष्ट्रीय एकता की भावना थी, भले ही तत्कालीन स्थितियों में वे उसे स्पष्टता के साथ व्यक्त न कर सके हों। इस राष्ट्रीय एकता के लिए वे समाज को वैदिक पद्धति पर संगठित करने को उत्सुक थे। इसके लिए वे धर्म साम्य और साहित्य को साधन के रूप में देखते थे। 'लीलावती व आदर्श सती' में कहा गया है कि "अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा है, यदि अंग्रेजी बाज जरा बाज आए और अपने समाज को उसी पुरानी रीति से सम्पन्न करें, जो वैदिक और वर्तमान-काल के उपयुक्त हो[3]।" 'तारा' में भी ब्रिटिश शासन-व्यवस्था की प्रशंसा के साथ ही देश की दयनीय स्थिति का अंकन भी किया है। वस्तुतः इन उपन्यासकारों में हिन्दू राष्ट्रीयता का स्वर ही प्रबल था।

प्रेमचन्द-पूर्व-युग में सामाजिक एवं ऐतिहासिक उपन्यासों में ही राजनीति का

१ किशोरीलाल गोस्वामी : रंग महल में हलाहल, पृष्ठ १७
२. बालकृष्ण भट्ट : नूतन ब्रह्मचारी, पृष्ठ २१
३ किशोरीलाल गोस्वामी : लीलावती वा आदर्श सती, पृष्ठ १२३

सांकेतिक रूप मिलता है। यह भी स्पष्ट तथा प्रभावोत्पादक नहीं कहा जा सकता। तिलस्मी ऐयारी, जासूसी एवं भाव प्रधान उपन्यासों में तो यह क्षीण स्वरूप भी नहीं दिखलाई देता। महेन्द्र चतुर्वेदी ने पूर्व-प्रेमचन्द युग के 'जासूसी डकैती उपन्यास के सर्वेक्षण में दुर्गाप्रसाद खत्री के उपन्यासों में 'राष्ट्रीय चेतना का आलोक घटनाओं के भवरे में से फूटता हुआ' देखा है।[1] किन्तु वास्तविकता तो यह है कि दुर्गाप्रसाद खत्री के इन उपन्यासों का रचना काल सन् १९२७ से १९३४ है और इस दृष्टि से ये प्रेमचन्दयुगीन उपन्यास हैं।[2]

इस युग के तिलस्मी ऐयारी उपन्यास कुतूहल और मनोरंजनप्रधान हैं और राजनीति से उनका किंचित् सम्बन्ध नहीं है। देवकीनन्दन खत्री के 'चन्द्रकान्ता' एवं 'चन्द्रकान्ता सन्तति' में तिलस्मी तथा ऐयारी हथकण्डों का चमत्कार भरा है। इन उपन्यासों के सम्बन्ध में यह कथन उचित ही है कि "इनका उद्देश्य केवल मनोरंजन करना था और इसकी सृष्टि के निमित्त वे पाठक की कुतूहल-वृत्ति जगाकर उसका परितोष करते हैं। इनका प्रयत्न होता है, इस यथार्थ जगत् की जानी-पहचानी धरती से उठाकर हमें एक ऐसे लोक में पहुँचा देना जहाँ की हर चीज आश्चर्यमयी हो, मन में कौतुक जगाये।"[3] वस्तुतः यह प्रवृत्ति राजनीति की यथार्थ एवं वैचारिक प्रवृत्ति के विपरीत है, अतः इन उपन्यासों में राजनीतिक तत्त्वों का अभाव आश्चर्यजनक नहीं माना जाना चाहिए। जहाँ मात्र मनोरंजन ही उपन्यास का ध्येय हो, वहाँ समाज के उपेक्षित तथा शोषित जन-जीवन की अपेक्षा की भी नहीं जानी चाहिए।

इस युग के उपन्यासों की दूसरी धारा जासूसी उपन्यासों से सम्बन्धित है। प्रत्यक्ष रूप से राजनीति से असम्पृक्त रहते हुए भी कुछ जासूसी उपन्यासों में डाकू पात्रों को आतंकवादी क्रान्तिकारियों के धरातल पर लाने का प्रयास मिलता है। एक मूल्यांकन में कहा गया है कि 'डाका डालने वाले पात्र नायक की गरिमा से मंडित भी किये गये क्योंकि उनका उद्देश्य अत्याचारी धनाढ्यों को दण्डित करके असहायों की की सहायता करना होता था। इन उपन्यासों के चित्रित उदार-हृदय डाकू वीर और अभिमानी होते हैं किन्तु उनकी राहें तो नैतिक एवं वैधानिक राहों को काटकर ही चलती हैं—फलतः युग की नैतिक भावना उन्हें क्षमा नहीं करती।' इसी श्रेणी में वे उपन्यास भी आते हैं जिनमें भारतीय स्वतंत्रता के लिए प्रयत्न करने वाले हिंसात्मक आन्दोलनकारियों की कथाएँ कही गई हैं। उत्साही देशभक्तों के कार्य-कलाप को केन्द्र

---

१. महेन्द्र चतुर्वेदी : हिन्दी उपन्यास : एक सर्वेक्षण, पृष्ठ ३६

२. देखिए परिशिष्ट—१

३. महेन्द्र चतुर्वेदी : हिन्दी उपन्यास : एक सर्वेक्षण, पृष्ठ २६

बनाकर लिखे जाने वाले ये उपन्यास अपना विशेष महत्त्व रखते हैं[1]। गोपालराम गहमरी इस युग के प्रमुख जासूसी उपन्यासकार हैं, जिन्होंने यूरोपीय जासूसी उपन्यासों की प्रवृत्ति को हिन्दी में अवतरित किया। जासूसी उपन्यासों में डाकुओं के जिस स्वरूप को क्रान्तिकारी आयाम के रूप में दर्शाया गया है वह दुर्गाप्रसाद खत्री के के उपन्यासों में ही मिलता है उसके पूर्व के उपन्यासों में नहीं।

प्रेमचन्द-पूर्व-युग के हिन्दी उपन्यासों में राजनीतिक तत्वों का स्पष्ट रूप नहीं उभर सका। कुछ सामाजिक उपन्यासों में राष्ट्रीय भावना का जो रूप दिखाई भी पड़ता है, वह सीमित एवं अविकसित है। सामाजिक तथा ऐतिहासिक उपन्यासों में धर्म-प्रचार की प्रवृत्ति के कारण जिस राष्ट्रीयता का रूप उभरता है, उसे हिन्दू राष्ट्रीयता का पर्याय ही माना जा सकता है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो बीसवीं शती के प्रारम्भ में जो सामाजिक आन्दोलन हुए, वे मूलतः जातीय भावना से ही अनुप्राणित हैं। उनकी राष्ट्रीयता अथवा देशोद्धार की भावना जाति को जगाकर संगठित करने तक ही सीमित थी। उसमें राष्ट्रीय भावना का वह व्यापक रूप स्पष्ट नहीं हो सका था, गांधी-युग में दिखाई पड़ता है। सनातनधर्मी उपन्यासकारों की हिन्दू राष्ट्रवादिता तात्कालिक युग के अनुरूप ही है। इसी दृष्टिकोण के कारण वे लेखक मुसलमानों के प्रति अनुदार रहे हैं और असहिष्णुता का परिचय देते हैं। ब्रिटिश शासन-व्यवस्था के दमनात्मक कानूनों के कारण इन उपन्यासकारों के लिए राष्ट्रीय भावनासमन्वित उपन्यासों की रचना करना एक टेढ़ी खीर थी। हम उनकी तुलना उस चक्की के साथ कर सकते हैं, जिसके असमान पाटों में एक है राजभक्ति का और दूसरा राष्ट्र-प्रेम का। इस विषम अवस्था में उनका ध्यान राजनीतिक समस्याओं से हटकर सामाजिक प्रश्नों में उलझना स्वाभाविक था। इन उपन्यासों में एक विशिष्टता मध्य वर्ग के पात्रों की उद्भावना भी है, जिसे राजनीतिक प्रभाव ही माना जाना चाहिए। 'परीक्षा गुरु' के मध्यवर्गीय पात्र राष्ट्रीय चेतना से युक्त हैं और शिक्षा के विकास के लिए स्कूल-कालेजों की स्थापना करते हैं। किशोरीलाल गोस्वामी के पात्रों को भी मध्यवर्गीय ही कहा जा सकता है। मध्य वर्ग अंग्रेज़ी शासन की देन है, अतः उसकी ब्रिटिश शासन के प्रति राज-भक्ति की भावना स्वाभाविक ही थी। यही कारण है कि राष्ट्रीय भावना के बावजूद भी वे विदेशी सत्ता का सक्रिय विरोध नहीं करना चाहते थे। जो राजनीतिक स्वर मुखरित हुए भी, वे इन सुधारवादी एवं उपदेशात्मक सामाजिक उपन्यासों में ही। हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों की यही पृष्ठभूमि है, जिस पर आगे चलकर राजनीतिक उपन्यासों का प्रासाद निर्मित हुआ। प्रेमचन्द के पदार्पण तक हिन्दी उपन्यासों का प्रासाद निर्मित हुआ।

---

१ महेन्द्र चतुर्वेदी : हिन्दी उपन्यास : एक सर्वेक्षण, पृष्ठ ३१–३२

प्रेमचन्द के पर्दापण तक हिन्दी उपन्यासकार उपन्यास के महत्व से अवगत हो गए थे। 'राधाकान्त' को भूमिका मे ब्रजनन्दन सहाय ने इस ओर उपन्यासकारो का ध्यान आकर्षित करते हुए लिखा था—"भविष्य म उपन्यास आदि ही के सहारे लोग समाज, देश तथा जाति की रीति-नीति एव आचार्य विचार स अवगत होते है। • उपन्यास लेखकों को उपन्यास बहुत सोच विचार कर लिखना उचित है।" यदि यह दृष्टिकोण दो दसक पूर्व निर्मित हो जाता तो हिन्दी साहित्य को बग भग और क्रान्ति कारी आन्दोलन पर दो-एक अच्छे राजनीतिक उपन्यासो की उपलब्धि हो सकती थी।

(ख) हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों का विकास

साहित्य और राजनीति

साहित्य मे राजनीतिक तत्वो को समुचित स्थान देने का विरोध सदैव से किया जाता रहा है। इधर कुछ समय से समाज मे राजनीतिक के प्रभावकारी विस्तार के परिणामस्वरूप राजनीतिज्ञो ने अपनी-अपनी मान्यताओ के अनुरूप जन-जीवन के बीच विचार धाराओ को प्रसारित करने के लिए साहित्य का आश्रय लिया। फलत लेखकों द्वारा भी उनकी कृतियो मे राजनीतिक विचारो का समर्थन किया जाने लगा। अनेक विचारक इस तथ्य को स्वीकार करने लग है कि जन जागरण के इस युग मे वर्तमान राजनीतिमय जीवन से साहित्य को विलग नही किया जा सकता। साहित्य अन्य विशेषताओ के साथ राष्ट्रीयता के वास्तविक स्वरूप के प्रकटीकरण के माध्यम के रूप म जब स्वीकृति किया जाने लगा तब वह समाज और उसके वर्ग सघर्ष से अपने को पृथक नही रख सकता। यह कहा गया है कि 'समाज के अन्तर्गत विभिन्न स्वार्थों के संघर्ष और उसके फलस्वरूप समाज म होने वाले परिवर्तन की प्रक्रिया का अध्ययन करके हम सामाजिक विकास म बोधपूर्वक सहायता दे सकते है'[1]। इतना ही नही अपितु समाज के यथार्थ चित्रण और उसकी आशाओ और आकांक्षाओ की अभिव्यक्ति करना साहित्य कारो का दायित्व माना जाने लगा है। आचार्य नरेन्द्र देव के शब्दो मे "साहित्यिक अपने कर्तव्य का तभी निर्वाह कर सकता है, जब कि वह जीवन की गहराई से अध्ययन करे, वह समाज की जीवन-सरिता मे ऊपरी तट पर स्चारित होने वाली प्रवृत्तियो तक ही अपनी दृष्टि को सीमित न रखे, अन्त सलिला सरस्वती की भाति नीचे रहकर

१ आचार्य नरेन्द्र देव : राष्ट्रीयता और समाजवाद, पृष्ठ ५६४

प्रच्छन्न रूप से कार्य करने वाली शक्तियों का भी अध्ययन करे। यह अध्ययन जन-जीवन से अलग रहकर नहीं किया जा सकता, प्रगतिशील साहित्यिक को जीवन की समस्याओं का अध्ययन करना होगा, अपनी रचनाओं में उसे समाज के वर्तमान रूप का चित्रण करना होगा, जनता की मूक अभिलाषाओं को वाणी देनी होगी, इतिहास का अध्ययन करके उसकी जीवन-प्रदायिनी शक्तियों का समर्थन करते हुए जनता का मार्ग-दर्शन करना होगा[१]।

उपन्यास को साम्यवादी लेखक रैल्फ फाक्स संसार की काल्पनिक संस्कृति के लिए पूंजीवादी सभ्यता की महत्वपूर्ण भेंट के रूप में स्वीकार करता है। उनके अनुसार उसका सबसे महान् साहसिक अभियान उपन्यास के रूप में ही हुआ है। उपन्यास में उस पूंजीवादी सभ्यता ने मानव की खोज की है। स्पष्ट है कि वह उपन्यासों का उद्भव राजनीति से मानता है। वस्तुत यह एक ऐसी लचीली किन्तु सामर्थ्यवान विधा है जो समग्र मानव जीवन को उसकी युग-चेतना के प्रवाह के साथ ध्वनित करने की क्षमता रखता है। आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी ने उपन्यास की व्याख्या करते हुए उपन्यास के इस गुण का उल्लेख किया है। उनका युक्तियुक्त कथन है कि 'साहित्य क्षेत्र में उपन्यास ही एक ऐसा उपकरण है, जिसके द्वारा सामूहिक मानवजीवन अपनी समस्त भावनाओं एवं चिन्ताओं के साथ सम्पूर्ण रूप से अभिव्यक्त हो सकता है। मानव-जीवन के विविध चित्रों को चित्रित करने का जितना अवकाश उपन्यासों में मिलता है उतना अन्य साहित्यिक उपकरणों में नहीं[२]। साहित्य के जितने रूप विधान हो सकते हैं उनमें उपन्यास एक ऐसी विधा है जो परिस्थितिजन्य रूप धारण कर सकती है। उसके सम्बन्ध में प्राय सभी परिभाषाएं इस एक निष्कर्ष पर पहुँचती हैं कि उसमें मानव-जीवन का प्रतिनिधित्व और वास्तविकता की सेवा में नियोजित कल्पना का योग आवश्यक है।

व्यक्ति और समाज एक दूसरे के अन्योन्याश्रित है और इसी रूप में ही वे अपने विकास का मार्ग खोज रहे हैं। साहित्य भी सामूहिक मानव-जीवन एवं समाज का अभिन्न होने के नाते उससे पृथक् नहीं रह सकता। साहित्य केवल शब्दों का समूह नहीं है। उसमें राजनीति और संस्कृति का समावेश होता है[३]। विद्वानों का एक दूसरा पक्ष इस समावेश को अनुवर्ती रूप में ही स्वीकारता है। आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी के अनुसार 'हम साहित्य से समाज का, सामाजिक जीवन का, सामाजिक विचार-धाराओं

१. राल्फ फाक्स : नावल एण्ड द पीपुल, पृष्ठ ६०
२ आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी : नया साहित्य : नये प्रश्न, पृष्ठ १
३. रांगेय राघव : प्रगतिशील साहित्य के मानदण्ड, पृष्ठ ६०

का-वादों का सम्बन्ध मानते हैं, किन्तु अनुवृर्ती रूप में। साहित्य की अपनी सत्ता के अन्तर्गत उसके निर्माण में इनका स्थान है। ये उसके उपादान और हेतु हुआ करते हैं नियामक और अधिकारी नहीं। साहित्य की अपनी स्वतंत्र सत्ता है, यद्यपि वह सत्ता जीवन सापेक्ष्य है[1]। वे ये भी मानते हैं कि "न केवल साहित्य का सृजन उन-उन समयों के सामयिक यथार्थ, अथवा वर्गीय संघर्ष की स्थिति विशेष से परिचालित होता है, वह उस समय के सत्ताधारी वर्ग का प्रतिनिधित्व भी करता है और साथ ही उसका प्रचार-प्रसार, आस्वाद और उपयोग भी वर्गीय सीमाओं से वेष्ठित होता है। यदि कोई वर्गीय साहित्य सामान्य जन-समाज तक पहुँचता है, तो उक्त सत्ताधारी वर्ग के ही लाभ के लिए।"

उपन्यास स्वयं में एक सम्पूर्णता होती है जो उपन्यासकार के व्यक्तिगत विचाराग्रहों से प्राप्त संसार के अनुभवों और जीवन दर्शन का दर्पण होती है। उपन्यास उसके रचयिता के मस्तिष्क का प्रतिबिम्ब होता है। काल के भंवर जाल में पड़कर परिस्थितियाँ युगानुरूप परिवर्तित होती रहती हैं और कितना ही अच्छा नियम अथवा मत क्यों न हो, वह कालबाधित होने के कारण तथा मानव की अपूर्णता के कारण समय के अन्तर पर अपने को वर्तमान के उपयुक्त नहीं पाता। समय के अनुरूप सत्य की उपलब्धि प्रयोगात्मक क्रियाओं द्वारा एक मानवीय चेष्टा है।

हिन्दी में राजनीतिक उपन्यास का जन्म परिस्थिति-जन्य है जो सामाजिक उपन्यास की परिसीमा से आगे बढ़ा हुआ एक साहसिक प्रयास है। हिन्दी उपन्यास का शैशव अति क्षीण सामाजिक एवं राजनीतिक वातावरण में प्रारम्भ हुआ था। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक समस्याएं उग्र रूप में नहीं थीं। अवकाश की मात्रा अधिक थी और मनोरंजन के साधन के रूप में उपन्यास पाठकों के अवकाश के मित्र थे। हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यास मनोरंजन प्रधान थे किन्तु प्राचीन नैतिक आदर्शों के अनुरूप ज्ञानवार्ता पुट भी उनमें निहित रहता था।

हिन्दी उपन्यास के आरम्भिक वातावरण में समयक्रम से परिवर्तन हुआ। जागरण-काल के पश्चात् भारतीय इतिहास में बीसवीं शताब्दी के आरम्भ के दशकों में भारतीय जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। भारतीय राजनीति के क्रमिक विकास का अध्ययन आगामी परिच्छेद में किया गया है, उसकी पुनरावृत्ति यहाँ अभीष्ट नहीं। सामाजिक एवं राजनीतिक चेतना से उत्पन्न विचार जगत का परिवर्तन तत्कालीन साहित्य में भी परिलक्षित होने लगा। शिक्षा के प्रसार के कारण पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति से सम्पर्क बढ़ा। अंग्रेजी साहित्य अनुशीलन में वृद्धि हुई। साधारण

---

१. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : नया साहित्य : नये प्रश्न, पृष्ठ १८

जनता भी नागरिक अधिकारों के प्रति सजग हो उठी। सन् १९२० से महात्मा गाँधी के नेतृत्व में राजनीतिक गतिविधियाँ तीव्र गति से संचालित हुईं और स्वाधीनता प्राप्ति तक का यह युग राजनीतिक संघर्षकाल रहा। राजनीतिक जागृति ने कांग्रेस के साथ हिन्दू महासभा, मुस्लिम लीग और कम्युनिस्ट पार्टी को जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया। इसका जन-साधारण और उपन्यास पर अपेक्षित प्रभाव पड़ा। 'देश की राजनीतिक परिस्थियों ने भी उपन्यास-रचना-विधान के उद्देश्य को प्रभावित किया है। विभिन्न राजनीतिक दलों के पोषकों-समर्थकों ने अपनी-अपनी मान्यताओं के अनुरूप जन-जीवन के बीच विचार-धाराओं को प्रसारित किया। अतः लेखकों के द्वारा भी उसी रूप में उनकी कृतियों में विचारों का समर्थन किया गया। आधुनिक काल में भारत के राजनीतिक क्षेत्र में जहाँ एक विशाल जन-समूह महात्मा गाँधी का अनुयायी था वहीं मार्क्सवादी विचारधारा का प्रचार भी उत्तरोत्तर विकास करता जाता था। यह स्थिति नितान्त स्वाभाविक थी। जन-जागरण-काल में विचारों की स्वतन्त्रता का विशेष स्थान होता है। अन्तु, यदि विभिन्न राजनीतिक वादों का जन्म एवं विकास भारत में भी हुआ तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। ये राजनीतिक वाद मुख्यतः गाँधीवाद, समाजवाद एवं साम्यवाद के रूप में आए[1]।'

यह आश्चर्यजनक साम्य है कि भारतीय राजनीति और हिन्दी राजनीतिक उपन्यास का विकास समानान्तर रूप से हुआ। भारतीय राजनीतिक चेतना का प्रारम्भ सन् १८८५ में कांग्रेस की स्थापना से सुव्यवस्थित हुआ। कांग्रेस का एक राजनीतिक उद्देश्य था, परन्तु साथ ही वह राष्ट्रीय पुनरुत्थान के आन्दोलन का प्रतिपादन करने वाली संस्था भी थी[2]।

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि सन् १८८५ से १९०५ तक कांग्रेस का युग नरम राष्ट्रीयता का था। "इस समय कांग्रेस की राजनीति जनता की राजनीति न थी। न जनता उस समझती थी और न जनता को वह समझाने की जरूरत ही समझी जाती थी[3]।" यह वस्तुतः बड़े आश्चर्य की बात है कि राजनीतिक जागृति अत्यन्त मन्द गति से हुई और पूर्ण स्वाधीनता का निश्चय करने में अर्द्ध शताब्दी का समय लगा गया।

हिन्दी उपन्यास को इस पृष्ठभूमि में देखने से स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय राजनीति के सदृश्य ही सन् १८८२ से १९०५ तक का समय हिन्दी उपन्यास का

१. श्रीनारायण अग्निहोत्री : उपन्यास तत्व एवं रूप-विधान, पृष्ठ १६५
२. डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या : संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ ७
३. आचार्य नरेन्द्र देव : राष्ट्रीयता और समाजवाद, पृष्ठ १३७

निर्माण काल था। भारतीय राजनीति के समान ही हिन्दी उपन्यास भी विकास के लिए संघर्ष कर रहा था, किन्तु संघर्ष की गति शिथिल होने से विशेष उपलब्धि नहीं मिलती। इनमें यथार्थ चित्रण का अभाव है तथा शृङ्गारिक भावना का परिपोषण ही विशेष रूप से किया गया।

राजनीतिक विचार-धारा के क्षीण होने पर भी उसका कुछ-न-कुछ प्रभाव तो समाज पर पड़ ही रहा था जो समाज की समस्याओं के प्रति पूर्णत विरक्त न था।

सम-सामयिक चित्रण राजनीतिक उपन्यास का गुण है और उसका बीज इस काल में अंकुरित हुआ पर अनुर्वरक भूमि के कारण पनप न सका।

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का तीसरा चरण महात्मा गाँधी के नेतृत्व में सन् १९१९ से प्रारम्भ हुआ और उसकी समाप्ति भारत की स्वतन्त्रता के साथ सन् १९४७ में हुई। भारतीय राजनीति और हिन्दी उपन्यास दोनों की दृष्टि से यह कालावधि विकास काल कही जा सकती है। भारतीय राजनीति का नेतृत्व कर रहे थे महात्मा गाँधी और हिन्दी उपन्यास का मुन्शी प्रेमचन्द।

गाँधी जी ने राजनीति को नया रूप दिया और प्रेमचन्द ने उपन्यास को नई अभिव्यक्ति जो सम-सामयिक राजनीति से प्रभावित थी। दोनों अपने अपने क्षेत्र में प्रयोग कर रहे थे और दोनों का ध्येय था परिष्कार कर स्वाधीनता की प्राप्ति। गाँधी जी की समस्त राजनीतिक विचारसरणि की आधार-शिला उनके धार्मिक एवं नैतिक विश्वास थे। किन्तु उनका धर्म संकुचित और साम्प्रदायिक नहीं था। वह विश्वजनीन था। उन्होंने राजनीति को आध्यात्मिकता का रूप प्रदान किया। वे राजनीतिक विशुद्धता के लिए बाह्य धार्मिक आडम्बर के पक्षपाती न होकर हृदय की मानवता पर जोर देते थे। उनकी दृष्टि में ईश्वर और सत्य दो पर्यायवाची शब्द थे। संसार सत्य की सुदृढ़ नींव पर ठहरा हुआ है। वे सत्य का जीवन के विविध क्षेत्रों में समावेश मानते थे। राजनीति भी इससे अछूती नहीं। वे मानवतावादी थे।

प्रेमचन्द भी मानवतावादी थे और साहित्य को उसके साधन के रूप में मानते थे। उनका कथन है "साहित्य की सृष्टि मानव समुदाय को आगे बढ़ाने उठाने के वास्ते ही होती है।" "हमें तो सुन्दर भावों को चित्रित करके मानव हृदय को ऊपर उठाना है। नहीं तो साहित्य की महत्ता और आवश्यकता क्या रह जायेगी[१]। गाँधी जी राजनीति को मानव जीवन के उन्नयन का साधन मानते थे तो प्रेमचन्द भी साहित्य को राजनीतिक से पृथक् देखने के हिमायती न थे। उनके अनुसार 'साहित्य का आधार

१. प्रेमचन्द : कुछ विचार, पृष्ठ ८८

जीवन है। इसी नीव पर साहित्य की दीवार खडी होती है।[1] उनका स्पष्ट मत है कि "साहित्य का उद्देश्य जीवन के आदर्श को उपस्थित करना है, जिसे हम जीवन मे कदम-कदम पर आने वाली कठिनाइयो का सामना कर सकें। अगर साहित्य से जीवन का सही रास्ता न मिले तो ऐसे साहित्य से लाभ ही क्या? ......अगर उससे हमे जीवन का अच्छा मार्ग नही मिलता तो उस रचना से हमारा कोई फायदा नही।[2]

गाँधी जी राजनीति को जीवन से अलग नही मानते थे और प्रेमचन्द साहित्य को राजनीति से। दोनो का लक्ष्य तत्कालीन समाज को संघर्ष के लिए गतिशील बनाना था जिससे राष्ट्रीय आन्दोलनो को बल मिले। उनका उद्देश्य मानव-जीवन की उच्चता के लिए प्रयास करना था इन राष्ट्रीय परिस्थितियो मे प्रेमचन्द ने कलम उठाई और प्रथम बार हिन्दी उपन्यास को विशुद्ध राजनीतिक संस्पर्श मिला।

सच तो यह है कि उपन्यासकार प्रेमचन्द गाँधीयुग की साहित्यक देन है और उनके उपन्यासो मे गाँधी युग और गाँधीवाद दोनो साकार हो उठे गाँधीयुग मे राष्ट्रीय विचारों का चरम उत्कर्ष दिखाई पडता है। स्वाधीनता की भावना का उत्थान होता है और हिन्दी के प्रथम राजनीतिक उपन्यासकार के रूप मे प्रेमचन्द अपने उपन्यासो मे इसे सजाते सवारते हैं। गाँधी जी के जन आन्दोलन के तीन पक्ष थे

१—व्यक्ति को उत्पीडित करने वाली सामाजिक-धार्मिक रूढियों के विरुद्ध आन्दोलन,

२—राष्ट्रीय निर्धनता के फलस्वरूप आर्थिक व्यवस्था के विरुद्ध आन्दोलन, और

३ विदेशी शासन सत्ता के विरुद्ध आन्दोलन।

प्रेमचन्द के उपन्यासो मे उपर्युक्त तीनो स्वरूप उरेहे गये हैं। उपन्यास-साहित्य मे राजनीतिक तत्वों को प्राधान्य देकर उन्होने जिस नूतन परम्परा को प्रारम्भ किया, वह निरन्तर विकासोन्मुख है इस क्रमिक विकास का अध्ययन करने के लिए हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासो को दो वर्ग मे विभाजित किया जा सकता है—

(१) स्वाधीनता-पूर्व-हिन्दी के राजनीतिक उपन्यास,

(२) स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी के राजनीतिक उपन्यास

स्वाधीनता-पूर्व-हिन्दी के राजनीतिक उपन्यास

जैसा कि हम पूर्व मे ही निर्देशित कर चुके हैं, हिन्दी के राजनीतिक उपन्यास का प्रारम्भ प्रेमचन्द के 'प्रेमाश्रम' से होता है। प्रेमचन्द-पूर्व युग के हिन्दी के सामाजिक

---

१ प्रेमचन्द पृष्ठ ७८१

२ प्रेमचन्द हंस, जनवरी, पृष्ठ १६३२

उपन्यासों में राजनीतिक चर्चा का प्रायः अभाव है और जहाँ-कहीं कुछ संकेत मिलता भी है, उसे अत्यधिक महत्व नहीं दिया जा सकता। इसका महत्व राजनीतिक उपन्यासों के अध्ययन की दृष्टि से उतना ही है, जितना चूना-गारे का भवन निर्माण में। इस तरह स्वाधीनतापूर्व-राजनीतिक उपन्यासों का रचना-काल सन् १९२२ से १९४७ तक निर्धारित होता है। यह विवेच्य-काल वस्तुतः राष्ट्रीय आन्दोलनों का युग था। आन्दोलन की सफलता के लिए जनता को जागृत करना अत्यावश्यक था और साहित्य इसकी महत्वपूर्ण धुरी बन सकता था। अतः भारतीय राजनीतिज्ञों का ध्यान साहित्य और साहित्यकार की ओर जाना स्वाभाविक था। महात्मा गाँधी ने स्वयं सन् १९२२ में मध्य प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के ५ वें नागपुर अधिवेशन के लिए प्रेषित अपने सन्देश में ऐसी रचनाओं के सृजन पर जोर दिया था जिससे राजक्रान्ति में सहयोग मिले।[१] समय की इस पुकार से भारतीय साहित्यकार भी अपरिचित नहीं थे। स्वयं प्रेमचन्द ने अनेक स्थलों पर साहित्य और राजनीतिक के पारस्परिक सम्बन्ध को न केवल अनिवार्य बतलाया, अपितु अपने उपन्यासों में भारतीय जनता द्वारा समर्थित राष्ट्रीय आन्दोलन और साम्राज्यशाही का व्यापक अंकन किया।

आलोच्यकाल के ये राजनीतिक उपन्यास वस्तुतः जन-जागरण के उपन्यास हैं। विषय-सौष्ठव की दृष्टि से इनके निम्न स्वरूप दिखलाई पड़ते हैं :—

१—राष्ट्रीय आन्दोलन एवं गाँधी-दर्शन से समन्वित उपन्यास।

२—समाजवादी चेतना से अनुप्राणित उपन्यास।

दुर्गा प्रसाद खत्री के जासूसी उपन्यासों में भी आतंकवादी कार्यविधि एवं विचार पद्धति का आभास मिलता है और जिसे राष्ट्रीय आन्दोलन के अन्तर्गत ही स्वीकार किया जाना चाहिए।

प्रेमचन्द, सियारामशरण गुप्त और जैनेन्द्र की 'त्रयी' ने गाँधी-दर्शन को अपने उपन्यासों में स्वीकृति दी है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में गाँधीयुग और गाँधी-दर्शन दोनों का व्यापक चित्रण है। उनके 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि' और 'कर्मभूमि' में गाँधी जी के जन-आन्दोलन के उन तीनों पक्षों को अभिव्यक्ति मिली है, जिसका उल्लेख हम पूर्व ही में कर चुके हैं। सियारामशरण गुप्त ने 'गोदे' 'नारी' और 'अंतिम आकांक्षा' उपन्यास में गाँधीवाद के तात्विक स्वरूप को ग्रहण कर उसके सत्य और अहिंसा का प्रतिष्ठापन कर हृदय-परिवर्तन से सामाजिक सुधार की परिकल्पना की है। जैनेन्द्र के 'सुनीता,' 'सुखदा' 'विवर्त' आदि उपन्यासों में गाँधीवाद को बौद्धिक रूप से स्वीकार किया गया है। जैनेन्द्र के उपन्यासों में क्रान्तिकारियों के जीवन को भी निकट से देखने का प्रयास किया

---

१. देखिए परिशिष्ट २

गया है, जिसका प्रेमचन्द एव सियारामशरण गुप्त के उपन्यासो मे अभाव है। प्रेमचन्द ने वीरमालसिंह जैसे एकाध क्रान्तिकारी पात्र की उद्भावना अवश्य की है, किन्तु उनका आग्रह गांधीवादी पात्रो पर ही अधिक रहा है। जैनेन्द्र मे फ्रायड की काम-पीडा और गांधीवादी आत्म पीडा का जो सम्मिश्रण देखने को मिलता है वह उनके रहस्यवादी दृष्टिकोण को स्पष्टीकरण देता है। यही कारण है कि वे सामाजिक असगतियो का निषेध आत्मपीडा के सिद्धान्त को अपना कर करना चाहते हैं। इस 'त्रयी' के उपन्यासो मे विदेशीय शासन सत्ता के विरुद्ध आन्दोलन का चित्रण केवल प्रेमचन्द के उपन्यासों मे ही मिलता है। जैनेन्द्र के 'विवर्त' मे क्रान्तिकारियो के आन्दोलन की रूपरेखा अस्पष्ट तथा असगतिपूर्ण है। सियारामशरण गुप्त के उपन्यासो मे तो आन्दोलन की विरल छाया भी नही है। उनकी आस्था आन्दोलनों मे नहीं अपितु गांधीवादी नैतिक सिद्धान्तों मे है जिसका मूलाधार मानवता है। उनके गांधीवादी उपन्यासो मे सामाजिक चेतना के दर्शन तो होते है किन्तु उसमे सामाजिक-सघर्ष का अभाव है।

समाजवादी चेतना से प्रभावित उपन्यास

गांधीवाद के प्रति प्रेमचन्द के विचार-परिवर्तन का जो आभास 'मगल सूत्र' मे दिखलाई पडता है, वह वस्तुत भारतीय राजनीति मे प्रविष्ट समाजवादी विचार-दर्शन (सन् १९३४) का ही प्रतिफलन है। भारत के राजनीतिक, आर्थिक और साहित्यिक क्षेत्र मे इसकी सक्रिय भूमिका सन् १९३१ के उपरान्त मिलती है। इस विचार-धारा ने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के प्रचार-प्रसार का एक नूतन मार्ग प्रशस्त किया। कहा गया है कि "द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद बहिर्मुखी दृष्टिकोण सम्पृक्त क्रान्ति और विद्रोह के मार्ग पर चलने वाला सम्योन्मुख भौतिक जीवन-दर्शन है जो जीवन के किसी आध्यात्मिक सत्य मे विश्वास न करके इसी नाना रूपात्मक पचभूत मय जगत को जीवन का अन्तिम सत्य उद्घोषित करता है। वह इस विश्व मे पदार्थ से ऊपर अन्य किसी वस्तु या विचार की सत्ता नही मानता। उसके अनुसार इस विश्व मे केवल एक ही सत्ता है-आधिभौतिक। आध्यात्मिक तथा आधिदैविक सत्ताओ का वस्तुत: कोई अस्तित्व नही है, वह केवल मन की छलना है।"

इन मार्क्सवादी सिद्धान्तो को राहुल सांकृत्यायन, यशपाल, रांगेय राघव और 'अचल' ने अपने प्राक् स्वाधीनता युगीन उपन्यासो मे स्वीकृति प्रदान की। राहुल अपने राजनीतिक उपन्यासो मे केवल क्रांतिकारी प्रयत्नो पर निर्भर नहीं करते। 'जीने के लिए' (१९४०) का पात्र कहता है - "मेरे दिल मे बाल जीवन से ही देश-सेवा की कितनी उमगें है, तुम यह भी जानते हो कि देश की स्वतन्त्रता के लिए मेरा चित्त कितना उत्तेजित हो जाता है। और यदि इक्के-दुक्के बम और पिस्तौल चलाने पर मुझे

विश्वास होता, तो मैं कब का उसमें लग गया होता।" दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि उनके उपन्यासों में भावात्मक क्रान्ति को स्थान नहीं है। उनमें राजनीतिक स्वतन्त्रता की उपादेयता को लेकर शोषण वृत्ति के विरुद्ध विवेकपूर्ण क्रान्ति की संयोजना की गई है। उनमें विचारों की प्रौढ़ता मिलती है। उदाहरण स्वरूप विभिन्न जातियों एवं वर्गों की एकता और शोषण पर यह कथन द्रष्टव्य है—

"सभी वर्गों की एकता को मैं अच्छा समझता हूँ, लेकिन यह सम्भव नहीं। राजा-महाराजाओं और धनियों का स्वार्थ नहीं है, जो कि साधारण जनता का। रेजिडेण्ट के सामने महाराज चाहे सटक जाते हों, लेकिन प्रजा की इज्जत, धन और प्राण के साथ वे खेल खेल सकते हैं। शोषण हानिकारक है, लेकिन जातियों का सहयोग बड़ी लाभदायक चीज है। उस सहयोग से दोनों देशों को बहुत से राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और सामाजिक फायदे हो सकते हैं। हमारे देशवासी अब कभी-कभी दबी जबान से सहयोग का जिक्र करने लगे हैं तो भी वे शोषण ही का दूसरा नाम सहयोग रखना चाहते हैं। लेकिन हिन्दुस्तानी इस भुलावे में नहीं आ सकते। हिन्दुस्तानी न कायर है न निर्बुद्धि।"

राहुल जी के राजनीतिक कथानक पर आधारित उपन्यासों में ऐसे विवरण प्रचुरता से आकर मार्क्स के राजनीतिक सिद्धान्तों को पाठकों के लिए ग्राह्य बनाने में सहयोग देते हैं। राहुल ने ऐतिहासिक उपन्यासों में मार्क्स के सिद्धान्तों का प्रतिपादन विशेष रूप से किया है, किन्तु वह हमारे शोध-प्रबन्ध से सम्बन्धित नहीं है।

भौतिकवादी दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति यशपाल के उपन्यासों की विशेषता है। **'दादा कामरेड'** (१९४१) मार्क्सवादी चेतना से युक्त उनका प्रथम उपन्यास है जिसमें तत्कालिक राजनीतिक धारणाओं का अंकन है। प्राक् स्वाधीनता युग में गाँधीवाद, आतंकवाद और साम्यवाद की किरणें प्रकाशमान थीं। आलोच्य उपन्यास में लेखक ने अहिंसा को अनुपयुक्त सिद्ध करते हुए मार्क्स की हिंसात्मक शक्ति को प्रमुखता देते हुए प्रगतिशील जीवन का चित्रण किया है। उपन्यास का मूल उद्देश्य साम्यवादी चेतना को विकासोन्मुख चित्रित करते हुए गाँधीवादी तथा आतंकवादी प्रवृत्तियों को ह्रासोन्मुख बताना है। आलोच्यावधि में यशपाल के 'देश द्रोही' और 'पार्टी कामरेड' उपन्यास भी प्रकाशित हुए। 'देश द्रोही' में ब्यालीस की क्रान्ति में 'पार्टी कामरेड' में नाविक विद्रोह की राष्ट्रीय घटनाओं को लेकर जिस कथानक की सृष्टि की गई है, वह मार्क्सवादी विचार-धारा का ही पोषण करती है। स्वाधीनतोत्तर काल में भी यशपाल ने इस विचार धारा की आधार पीठिका पर अनेक उपन्यासों की रचना की जिनका उल्लेख आगे किया गया है। स्वाधीनता पूर्व युग में जिन उपन्यासों में समाजवादी चेतना की पृष्ठभूमि में राजनीतिक आलेखन मिलता है, उनमें 'अचल' के 'चढ़ती धूप'

(१९४५), 'नई इमारत' (१९४७) एवं 'उल्का' (१९४७) तथा रांगेय राघव के 'घरौंदे' व 'विषाद मठ' (१९४६) उल्लेख योग है। 'चढ़ती धूप' में सन् १९३२ से १९३९ तक के घटना काल के समाजवादी चेतना के परिप्रेक्ष्य में छात्र समुदाय के युगानुकूल मनोभावों को उरेहा गया है। 'नई इमारत' में बयालीस की क्रान्ति तथा सामयिक राजनीतिक वातावरण अंकित है। इस राजनीतिक घटना के माध्यम से स्वतन्त्रता और समाजवाद की अभिव्यक्ति दी गई है। 'उल्का' में नारी-समस्या का समाधान समाजवादी ढंग से प्रस्तुत किया गया है। रांगेय राघव का 'घरौंदे' अर्ध- राजनीतिक है जिसमें प्रसंगानुसार वर्ग-संघर्ष का एक चित्र अंकित है। पूंजीवादी व्यवस्था से उत्पन्न विषमताओं की सफल व्यंजना भी मिलती है। 'विषाद मठ' में बंगाल के दुर्भिक्ष को लेकर पूंजीवादी के विरुद्ध सामाजिक चेतना को प्रबुद्ध करने का प्रयत्न किया गया है।

इलाचन्द्र जोशी कृत 'सन्यासी' और 'निर्वासित' भी इसी युग के अर्ध-राजनीतिक उपन्यास हैं जिसमें सामयिक राजनीति की चर्चा की गई है। 'निर्वासित' इस दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है जिसमें द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ से कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल की स्थापना की कालावधि को लेकर मध्य वर्ग पर पड़ने वाली युद्धकालीन प्रतिक्रियाओं का अंकन किया गया है। इसके साथ ही वर्ग में विभाजित सामाजिक शोषण और क्रांति परक पक्षों की अभिव्यंजना भी मिलती है। इस युग का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण उपन्यास भगवतीचरण वर्मा का 'टेढ़ेमेढ़े रास्ते' है जो भारतीय राजनीतिक धरातल के व्यापक चित्रफलक पर विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओं के परस्परिक विरोध को चित्रित करता है। एक आलोचक के मतानुसार 'सम-सामयिक भारतीय जीवन में क्रियाशील विभिन्न विचार धाराओं, उनके प्रेरणा स्रोतों और कार्य-पद्धतियों का अपने अनुभव के अनुसार विश्लेषण करने का कलात्मक प्रयत्न' इस उपन्यास में किया गया है। वर्मा जी ने किसी विशिष्टवाद का प्रतिपादन न कर के तत्कालीन राजनीतिक वातावरण को कथानक का आधार बनाया है। गांधीवाद के प्रति विरोध मम'त्व युगानुकूल ही कहा जायेगा।

इस तरह प्राक्-स्वाधीनता युग के उपन्यासों में तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों एवं राजनीतिक सिद्धान्तों का समाहार मिलता है। इस युग के उपन्यासों ने मूलतः सामयिक राजनीतिक गतिविधियों से प्रेरणा लेकर अपना मार्ग बनाया अतः मुख्यतः गांधी-दर्शन ही इन कृतियों में अपनी समग्रता के साथ प्रस्तुत हो सका है। जिन उपन्यासों में आतंकवादी प्रवृत्ति का चित्रण हुआ है, उनका भी उद्देश्य गांधीवादी की आस्था को पुष्ट करना रहा है।

स्वाधीनतोत्तर राजनीतिक उपन्यास

स्वाधीनोत्तर काल को राजनीतिक उपन्यास का उत्कर्ष काल कहा जा सकता है। सच तो यह है कि इस युग के अधिकांश उपन्यासों में किसी न किसी रूप में राजनीतिक प्रभाव ढूँढा जा सकता है विशुद्ध राजनीतिक दृष्टि से भी राजनीति समन्वित उपन्यासों की एक बड़ी शृंखला दिखाई पड़ती है।

स्वाधीनता-पूर्व उपन्यासकारों में जैनेन्द्र, यशपाल, इलाचन्द्र जोशी, रांगेय राघव, चतुरसेन शास्त्री, गुरुदत्त-वर्तमान काल में भी राजनीतिक उपन्यासों की रचना निरन्तर कर रहे हैं। जैनेन्द्र के 'सुखदा' 'विवर्त' और 'जयवर्द्धन' स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त की औपन्यासिक कृतियाँ हैं जो राजनीतिक सन्दर्भ से युक्त है। 'सुखदा' में कथा-पूर्व-दीप्ति पद्धति से 'हिंसा के द्वन्द्व रूप महत्त्वान्धता का सुखदा के व्याज से बारीक विवेचन करते हुए लेखक ने स्त्री पक्ष की ओर भी ध्यान दिया है। इसीलिए अनेक क्रान्तिकारियों (पात्रों) की उद्भावना की गई है। क्रान्ति की कथा वर्णित कर अहिंसा का प्रतिष्ठापन करना ही 'सुखदा' का मुख्य लक्ष्य है। 'विवर्त' में भी हिंसावृत्ति का खण्डन और अहिंसा की श्रेष्ठता प्रतिपादित करने का प्रयास है। इसमें जितेन नामक क्रान्तिकारी के हृदय-परिवर्तन का चित्रण गाँधी-दर्शन की आधार-पीठिका पर किया गया है। इस युग के राजनीतिक उपन्यासों में गाँधीवाद का ह्रास दिखाई देता है। गाँधीवाद या सर्वोदय को जिन उपन्यासों में स्थान दिया गया है, उनमें 'ज्वालामुखी' (१९५६) 'बूंद और समुद्र' (१९५६), 'अनबुझी प्यास' (१९५०), 'कठपुतली' (१९६२), 'दुखमोचन' (१९५७), 'बयालिस' (१९४८), 'निशिकान्त' (१९५५) आदि प्रमुख है। 'बूंद और समुद्र' में सर्वोदयी भावना का उज्ज्वल स्वरूप उभरा है। इस उपन्यास की मूल भावना सर्वोदय समाज की स्थापना है। बाबा राम जी के रूप में सन्त विनोबा की झाँकी ही मूर्त्त हो उठी है। शेष अन्य उपन्यासों में गाँधी युग की घटनाएँ चित्रित है और उनके अनुरूप गाँधीवाद के एकाधिक सिद्धान्तों को सराहना स्वाभाविक ही है। 'ज्वालामुखी,' और 'बयालीस' सन् १९४२ की क्रान्ति पर तथा 'कठपुतली' राष्ट्र-विभाजन के कथानक पर आधारित उपन्यास है। 'अनबुझी प्यास' में कांग्रेस के असहयोग आन्दोलन से प्रभावित बुन्देलखण्ड क्षेत्र का चित्रण है।

उपन्यास साहित्य में गाँधीवाद के ह्रास का कारण समाजवादी चेतना का तीव्र गति से विस्तार होना है। विगत दो दशकों में रचित समाजवादी यथार्थवादी उपन्यासों की एक अटूट शृंखला मार्क्सवादी जीवन-दर्शन से अनुप्राणित है। यशपाल, नागार्जुन, भैरवप्रसाद गुप्त, अमृतराय, अमरकान्त, इलाचन्द्र भिक्षु, नित्यानन्द वात्स्यायन, महेन्द्रनाथ, रांगेय राघव, राजेन्द्र यादव, हिमांशु श्रीवास्तव, 'कैफ' आदि के राजनीतिक

उपन्यास मार्क्सवाद से प्रभावित है। इन उपन्यासो मे यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि भौतिक जगत का अस्तित्व मनुष्य के चिन्तन से स्वतन्त्र है। भौतिक शक्तियो मानव चेतना को बदलती है और मानव चेतना भौतिक शक्तियो को बदलती है। इस प्रकार भौतिक परिस्थितियो को बदलता हुआ मानव स्वयं को भी बदलता है।[1] यशपाल कृत 'मनुष्य के रूप' और 'झूठा सच' मे मार्क्सवाद का कलात्मक प्रकटन है। 'मनुष्य के रूप' मे सामाजिक विषमता के कारण मनुष्य के बनते बिगड़ते रूप, पूँजीवादी अनैतिकता तथा राष्ट्रीय आन्दोलन के चित्र तथा साम्यवादियो की कार्य पद्धति का चित्रण मिलता है। वृहदाकार 'झूठा-सच' विभाजन की पृष्ठ भूमि पर निम्न मध्यवर्गीय पजाबी जन समाज का सजीव चित्र प्रस्तुत करता है। रागेय राघव के 'हुजूर' मे वर्तमान समाज के शोषण और आर्थिक वैषम्य के चित्रो के माध्यम से युग सत्य को समाजवादी दृष्टिकोण से अभिव्यक्त करता है। रागेय राघव का 'सीधा-सादा रास्ता,' अमृतराय का 'बीज' और भैरवप्रसाद गुप्त कृत 'मशाल,' 'गगा मैया' और 'सती मैया का चौरा' उपन्यासो मे प्रगतिशील चेतना की अभिव्यक्ति मिली है।

इस युग के बाद निरपेक्ष राजनीतिक उपन्यासो का एक अन्य वर्ग भी है जिसके कथानक राष्ट्रीय आन्दोलनो को लेकर चले हैं। मन्मथनाथ गुप्त द्वारा भारतीय स्वातन्त्र्य सग्राम के सन् १९२१ से स्वाधीनता प्राप्ति तक की व्यापक पृष्ठ भूमि पर रचित उपन्यास-सप्तक-- 'जागरण' 'रैन अधेरी' 'रगमच', 'अपराजित' प्रतिक्रिया' और 'सागर सगम' की गणना इसी श्रेणी के अन्तर्गत की जा सकती है। निसन्देह भारतीय स्वाधीनता सग्राम की राजनीतिक घटनाओ, राजनीतिक दलो की गतिविधियो एव राजनीतिक विचार धाराओ को इतने विस्तृत चित्रफलक मे समेटने का यह एक साहसिक प्रयत्न है। 'रैन अधेरी' के 'दो शब्द' मे लेखक ने कहा है - "स्वतन्त्रता आन्दोलन हमारी गगा की ही तरह है जिसमे न जाने कहा-कहा से छोटी-बड़ी धाराएँ आकर मिली हैं। यह कहना कि उसमे केवल एक ही धारा थी, या यहाँ तक कहना कि उसमे प्रमुख रूप से एक ही धारा थी, सत्य का अपलाप है। इसमे अलग अलग धाराएँ आई और वे मिलकर एक बहुत तगडी धारा मे परिणत हो गई, जिसके सामने ब्रिटिश साम्राज्य के पाव उखड गये और उसे बोरिया बिस्तर बाँध कर यहाँ से कूच करना पडा।[1] इसी आधार पर लेखक ने विवेच्य काल की राजनीतिक तरगो को उपन्यास मे रूपायित किया है। इतना होने पर भी पूर्वग्रह के कारण क्रान्तिकारियों की गतिविधियो को कांग्रेस के क्रिया-कलापो की तुलना मे प्रमुखता मिल गई है।

इस वर्ग के अन्य उपन्यासो मे यज्ञदत्त शर्मा कृत 'दो पहलू' और 'इन्सान'

---

१ रैल्फ फाक्स : नावल एण्ड दी पीपुल, पृष्ठ १ ५

रघुवीरशरण मित्र कृत 'बलिदान' गोविन्ददास कृत 'इन्दुमति' चतुरसेन शास्त्री कृत धर्मपुत्र' भगवतीशरण वर्मा कृत 'भूले बिसरे चित्र' मिश्रबन्धुओं का 'स्वतन्त्र भारत' विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

स्वाधीनता प्राप्ति के उपरान्त के राष्ट्रीय वातावरण को लेकर भी विविध राजनीतिक उपन्यासों की रचना भी कतिपय उपन्यासकारों ने की है। ऐसे उपन्यासों में अनन्तगोपाल शेवडे कृत 'भग्न मन्दिर' अमृत राय कृत 'हाथी के दांत' उपेन्द्रनाथ 'अश्क' कृत 'बडी-बडी आँखें' चतुरसेन शास्त्री कृत 'उदयास्त' और 'बगुले के पंख' नागार्जुन कृत 'हीरक जयन्ती' 'रेणु' कृत 'मैला आंचल' और 'परती परिकथा' यज्ञदत्त कृत 'अन्तिम चरण' 'निर्माण पथ' और 'बदलती राहें' वृन्दावनलाल वर्मा कृत 'अमर बेल' को परिगणित किया जा सकता है।

इनमें से 'बगुले के पंख' 'भग्न मन्दिर' 'हाथी के दांत तथा 'हीरक जयन्ती' व्यंग प्रधान उपन्यास है तथा सत्तारूढ दल और उसके तथा कथित जन-प्रतिनिधियों के भ्रष्टाचार व काले कारनामों का पर्दाफाश करते है। 'अश्क' का प्रतीकात्मक उपन्यास 'बड़ी-बड़ी आखें' वर्तमान प्रशासन व्यवस्था पर प्रच्छन्न व्यग्य है इन लघुकाय उपन्यासों में कांग्रेस-सरकार के विभिन्न कमजोर पक्षों पर आघात कर उसकी कथनी और करनी में अन्तर निरूपित किया गया है। 'रेणु' यज्ञदत्त, वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास में वर्तमानयुग के निर्माणात्मक गतिविधियों की अभिव्यंजना करने का प्रयत्न है। यज्ञदत्त के 'बदलती राहें' और वृन्दावनलाल वर्मा के 'अमरबेल' में सहकारी भावना से नव-निर्माण का सन्देश दिया गया है।

हिन्दू राष्ट्रीयतावादी विचार-धारा

भारतीय राजनीति में हिन्दू राष्ट्रीयतावाद का विस्तार मुस्लिम लीग की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ और राष्ट्र विभाजन तथा कांग्रेस की मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति से उसका संवर्द्धन हुआ। स्वाधीनता के उपरान्त राजनीतिक वैचारिक स्वतन्त्रता के कारण इस विचार-धारा में गतिशीलता आई। हिन्दुत्व पर असीम आस्था के रूप में राजनीतिक उपन्यासों का एक नवीन अध्याय गुरुदत्त के उपन्यासों से आरम्भ हुआ। सन् १९४२ से १९६२ तक दो दसक की अवधि में गुरुदत्त के ६६ से अधिक सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक आदि उपन्यास प्रकाशित हो चुके है। इनके प्राय सभी उपन्यासों में हिन्दु संस्कृति या हिन्दू राष्ट्रीयवाद की जमकर वकालत की गई है। इस प्रवृत्ति को आधार बनाकर गुरुदत्त ने एक ओर जहाँ कांग्रेस और गांधीवाद के कतिपय सिद्धान्तों की कटु आलोचना की है, वहाँ दूसरी ओर मार्क्सवादी का भी जमकर विरोध किया है। इनके अधिकांश राजनीतिक उपन्यासों में साम्प्रदायिक भावना के कारण

मुस्लिम पात्रों को मलिन चित्रण प्राप्त होता है जो साहित्य की दृष्टि से उचित नहीं कहा जा सकता।

राजनीतिक सिद्धान्तों से समन्वित उपन्यास

कुछ उपन्यासकारों ने विभिन्न राजनीतिक विचार-धाराओं का अध्ययन मनन कर उन्हें समन्वित करने का प्रयत्न भी किया है। इलाचन्द्र जोशी कृत 'निर्वासित', 'मुक्तिपथ' और 'जिप्सी' तथा चतुरसेन शास्त्री कृत 'उदयास्त' आदि उपन्यासों को इसी कोटि में रखा जा सकता है। मनोविश्लेषणवादी उपन्यासकार इलाचन्द्र जोशी के सम्बन्ध में यह कथन उपयुक्त है कि—"वास्तव में जोशी जी अपने गम्भीर चिन्तन तथा गहन अनुभूति के आधार पर व्यक्ति और समाज की समस्याओं का विश्लेषण तथा समाधान करना चाहते हैं। इसलिए उनका दृष्टिकोण मार्क्सवादी और मनोविश्लेषणवाद के समन्वय की ओर उन्मुख है[1]।" मनोविश्लेषणवाद ही नहीं अपितु सर्वोदय भावना का समन्वय भी उनमें मिलता है और इस आधार पर ही वे 'समन्वय साधना' की उपयुक्तता को 'मुक्ति पथ' में प्रतिपादित करने का प्रयास करते हैं। चतुरसेन जी ने भी 'उदयास्त' में सत्य व अहिंसा के माध्यम से जिस समाजवाद का स्वप्न संजोया था वह 'लोकतान्त्रिक समाजवाद' के रूप में कांग्रेस द्वारा इसी वर्ष स्वीकृति पा चुका है।

स्वातन्त्र्योत्तर काल के राजनीतिक उपन्यासों के अनुशीलन से निम्नांकित तथ्य प्राप्त होते हैं—

(१) गांधीवाद का ह्रास-गामी युगीन राजनीतिक विचारों का इस युग के उपन्यासों-सपष्ट ह्रास दिखाई पड़ता है। इसके विपरीत समाजवादी चेतना विस्तारोन्मुख है। स्वाधीनताभारत में राजनीतिक स्वतन्त्रता के सिद्धान्त को स्वीकार्य किये जाने से विभिन्न राजनीतिक दलों को अपने राजनीतिक विचारों के प्रचार-प्रसार का सुयोग मिला। हिन्दी उपन्यास इन विचारों का समर्थ वाहक बना। गान्धीवाद, सर्वोदय, साम्यवाद, समाजवाद और हिन्दू-राष्ट्रीयतावाद के राजनीतिक सिद्धान्त उपन्यास के परिवेश में खण्डन अथवा मण्डन के लिए प्रयुक्त होने लगे। इनमें से मार्क्सवाद का प्रभाव हिन्दी उपन्यासों में सर्वाधिक उभरा है।

(२) स्वाधीनतपरान्त राष्ट्रीयता का जो स्वरूप जन-साधारण में व्याप्त हुआ उसने राष्ट्रीय आन्दोलनों की ऐतिहासिक घटनाओं को गौरव के रूप में प्रतिष्ठित किया। इस रूप में राजनीतिक जगत की छोटी-बड़ी घटनाएं राष्ट्र प्रेम की

---

१ सुषमा धवन : हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ २०४

प्रेरणा-स्रोत बन उपन्यास-साहित्य में अंकित हुई। सन् १९२० से १९४७ तक की प्रमुख घटनाएं एवं सामयिक राजनीतिक इतिहास उपन्यासों का वर्ण्य विषय बना।

संक्षेप में भारतीय राजनीति और राजनीतिक उपन्यासों का क्रमिक विकास तुलनात्मक दृष्टि से इस रूप में हुआ है :—

प्रथम चरण — सन् १८८५ से १९२० तक . राष्ट्रीय चेतना का आभास
द्वितीय चरण — सन् १९२१ से १९३६ तक . गांधी-वाद और राष्ट्रीय आन्दोलनों की अभिव्यक्ति
तृतीय चरण — सन् १९३७ से १९६३ तक जनवाद प्रभावित राष्ट्रीय भावना का चित्रण।

प्रथम चरण के हिन्दी उपन्यासों में राष्ट्रीय भावनाओं की सशक्त अभिव्यक्ति का अभाव है। इनमें नवजागरण का सांस्कृतिक पक्ष ही अधिक उभरता है। कतिपय उपन्यासों में राजभक्ति और राष्ट्रभक्ति का विचित्र मिश्रण है। कुछ उपन्यासों में भारतेन्दु युग की प्रवृत्ति के अनुसार आर्थिक व्यवस्था की आलोचना और मातृभाषा का प्रेम भी प्रकट हुआ है जिसे राष्ट्रीय चेतना के प्रारम्भिक रूप में ग्रहण किया जा सकता है।

द्वितीय चरण को गांधी युग कहा जाता है। गांधी जी के नेतृत्व में राजनीतिक गतिविधियां अत्यधिक सक्रिय हुई हैं और सामाजिक समस्याएं भी राजनीतिक परिवेश में प्रस्तुत होने लगीं। आन्दोलनों के साथ राजनीतिक विचारधाराओं विशेषतः गांधीवाद का प्रचार भी दिनोदिन बढ़ते गया। रूस की राजक्रान्ति के बाद मार्क्सवाद का बीजारोपण भी हुआ, किन्तु उसकी गति मजदूर आन्दोलन तक ही सीमित रही। इस युग के एकमात्र राजनीतिक उपन्यासकार प्रेमचन्द का उपन्यास साहित्य मूलतः राष्ट्रीय साहित्य है। उनके उपन्यासमें गांधी-दर्शन अपनी समस्त विशिष्टताओं के साथ चित्रित है इसी युग में जैनेन्द्र और सियारामशरण गुप्त ने अपने उपन्यासों में गांधीवाद के अध्यात्मिक एवं तात्विक स्वरूप का कथानक में समावेश किया।

तृतीय चरण में राष्ट्रीयता अपने उत्कट स्वरूप में प्रकट होती है और जन-क्रान्ति के समकक्ष तक जा पहुँचती है। इस युग के राजनीतिक उपन्यासों की मूल प्रवृत्तियाँ पूर्व में ही निर्देशित की जा चुकी हैं। वस्तुतः यह काल राजनीतिक उपन्यासकारों का उत्कर्ष काल है और आज के उपन्यासकार केवल सामयिक चित्रण ही नहीं करते प्रत्युत भविष्य की दिशाओं का निर्देशन भी करते हैं।

●●●

अध्याय ४

प्रेमचन्द युगीन राजनीतिक उपन्यासो का अध्ययन

> प्रेमचन्द युगीन राजनीतिक स्थिति, राजनीतिक प्रवृत्तियाँ
> प्रेमचन्द का व्यक्तित्व—जन्म, पारिवारिक स्थिति, शिक्षा, व्यवसाय
> साहित्यकार प्रेमचन्द—उपन्यास के रूप मे
—प्रेमचन्द के उपन्यास एव रचना काल
—राजनीतिक दृष्टिकोण
—प्रेमचन्द के प्रेरणा स्रोत
> प्रेमचन्द के प्राक् गाँधीयुगीन उपन्यासों मे राजनीतिक तत्व
> प्रेमचन्द के राजनीतिक उपन्यास
* प्रेमाश्रम—हिन्दू मुस्लिम ऐक्य की समस्या, अन्य राजनीतिक समस्याएँ, कौंसिल-चुनाव, समाजवाद का संकेत।
* रंगभूमि—राजनीतिक पृष्ठभूमि, अहिंसक क्रान्ति का समर्थन, राजनीतिक घटनाएँ।
* कर्मभूमि—कर्मभूमि का कर्मयोग, नारी चेतना का विकास, लगानबन्दी आन्दोलन और सामयिक राजनीति, हृदय परिवर्तन का गाँधीय सिद्धान्त, हिन्दू-मुस्लिम एकता, अहिंसा, स्वावलम्बन और आत्मनिर्भरता।
> प्रेमचन्द के अन्य—राजनीतिक उपन्यास
* कायाकल्प—सामाजिक राजनीतिक प्रश्न, रियासतों और देशी नरेशों की समस्या, अन्य राजनीतिक सकेत, अलौकिक प्रसग और गाँधीवाद।
* गबन – राजनीतिक घटनाएँ, नौकरशाही की भूमिका बनाम पुलिस का नग्न नृत्य, स्वराज की कल्पना, गाँधीवाद की गूँज।
* गोदान – मजदूर आन्दोलन, समाजवादी चेतना, निष्कर्ष
> जासूसी उपन्यासों मे राजनीतिक तत्व
दुर्गाप्रसाद खत्री के 'रक्त मडल' और 'सफेद शैतान' सरकार परस्त व्यक्तित्व, राजनीतिक स्वरूप।

प्रेमचंद-युगीन राजनीतिक स्थिति

उपन्यास सम्राट प्रेमचद का जन्म सन् १८५७ के विद्रोह के २३ वर्ष उपरान्त सन् १८८० ई० को हुआ था। इसीलिए जब वे तरुणावस्था मे थे तब भारतीय जनता मे राजनीतिक चेतना क्रमश विकासोन्मुख थी और साम्राज्यवाद की प्रसगतियो से परिचित व त्रस्त ही मुक्ति का मार्ग ढूंढ रही थी। उन्नीसवी शती मे यूरोप मे राष्ट्रीयता तथा स्वतन्त्रता के लिए जो सघर्ष चल रहे थे भारतीय जनता उसे पूरी तरह से समझने का प्रयास कर रही थी। यूरोप के देशो के स्वातन्त्र्य-सघर्ष के क्रियात्मक दृष्टान्तो से प्रेरणा पा भारतीयो मे भी देश की स्वाधीनता के लिए सघर्ष की भावना बलवती हो रही थी। मुक्ति, स्वतन्त्रता तथा अधिकारो के प्रति सचेष्ट प्रयत्नो को देखकर ही लार्ड रानल्डशे ने कहा है कि "पश्चिमी ज्ञान की नयी शराब नवयुवक भारतीयो के मस्तिष्को मे चढी। उन्होने मुक्ति तथा राष्ट्रीयता के स्रोत से उसका पूर्ण पान किया। उनके सम्पूर्ण दृष्टिकोण मे क्राति की भावना ने प्रवेश किया।" राष्ट्र की आर्थिक स्थिति चिन्तनीय थी और लोगो के लिए जीवन यापन एक जटिल समस्या थी। इस सबध मे सर विलियम हटर का कथन, जो उन्होने सन् १८८० मे दिया है अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वे लिखते है 'लगभग ४ करोड व्यक्ति यहा अपर्याप्त भोजन पर अपना निर्वाह करते है।" तत्कालीन भारत मन्त्री लार्ड सैलिसबरी ने १८७५ मे इस सत्य को स्वीकार करते हुए स्पष्ट रूप से कहा था कि 'ब्रिटिश शासन भारत का रक्तशोषण करके उसे रक्तहीन, दुर्बल बना रहा है।"

आर्थिक दुरवस्था ने असतोष को व्यापक बनाया और सभी बुद्धिमान विचारक और सुधारवादी लोग विक्षुब्ध हो क्रांतिकारी ढग से सोचने विचारने के लिये विवश हुए। अनेक समाज सुधारको ने जनता मे अपने विचारो के माध्यम से राष्ट्रीयता के अनुकूल भूमि तैयार की। कर्नल अल्काट के कथनानुसार 'स्वामी दयानद ने अपने अनुयायियो पर प्रबल राष्ट्रीय प्रभाव डाला।' श्रीमती ऐनी बेसेन्ट ने भी स्वीकार किया है कि 'दयानद ने ही भारत भारतीयो का है, इस नारे को बुलन्द किया।' दयानद सरस्वती के अतिरिक्त स्वामी विवेकानद का योगदान भी विस्मृत नही किया जा सकता। उनके सबध मे निवेदिता का कथन है कि 'उनकी उपास्य देवी उनकी मातृभूमि थी।' इस तरह राजा राममोहन राय, स्वामी दयानद, स्वामी रामकृष्ण परमहस व स्वामी विवेकानद सामाजिक सुधार के साथ राष्ट्रीयता की भावना को विस्तारित कर रहे थे।

प्रेमचद के जन्म के पूर्व-सामाजिक एव राष्ट्रीय कार्यों से निर्मित इस पृष्ठ भूमि पर ही सन् १८८५ मे काग्रेस की स्थापना हुई। काग्रेस का इतिहास हिन्दुस्तान की

आजादी की लडाई का इतिहास है[1]। जिस समय कांग्रेस की स्थापना हुई प्रेमचंद की आयु पांच वर्ष की थी और इस तरह वे जीवन भर कांग्रेस द्वारा लडी जाने वाली आजादी की लडाई को कर्मयोगी की सतेज दृष्टि से देखते रहे।

कांग्रेस के स्वाधीनता आंदोलन को तीन चरणों मे विभाजित किया जा सकता है। प्रथम चरण सन् १८८५ से १९०५ तक का माना जाता है। इस अवधि मे *प्रेमचन्द आर्थिक वैषम्य से जूझते हुए शिक्षा प्राप्त कर जीविकोपार्जन मे जुट गये थे।* वे मध्यवर्गीय परिवार के थे और प्रतिदिन होने वाले आर्थिक अभावों से भलीभांति परिचित हो चुके थे। यह नरम राष्ट्रीयता का युग था। कांग्रेस का स्वरूप भी सौम्य था, क्रांतिकारी नहीं। इसके नेता ब्रिटिश सम्राट के प्रति निष्ठा और आज्ञाकारिता की भावना को प्रकट करते थे। इन परिस्थितियो मे परिवर्तन आया और सन् १९०६ से १९१८ की अवधि मे कांग्रेस ने संघर्षपूर्ण स्थिति में प्रवेश किया। यह कांग्रेस के स्वाधीनता आंदोलन का द्वितीय चरण था। इस अवधि मे साम्प्रदायिकता का विस्तार हुआ तथा अंग्रेजो की कूटनीति के कारण मुसलमानो ने कांग्रेस का साथ छोड दिया। तीसरा चरण सन् १९१९ के भारत सरकार अधिनियम की स्वीकृति के साथ आरम्भ हुआ और इसकी समाप्ति सन् १९४७ मे भारत की स्वतन्त्रता के साथ हुई। इस चरण को "गाधीयुग" भी कहा जा सकता है[2]। इस युग मे नरमदल वालों ने कांग्रेस को छोड दिया तथा पाकिस्तान के निर्माण का विचार साकार हुआ।

प्रेमचन्द की मृत्यु सन् १९३६ मे हुई और इस तरह वे गांधीयुग के संघर्ष और नैराश्य को ही देख सके उसकी उपलब्धि को नहीं। उन्होंने राजनीतिक भारत के तीनों चरणों को निकट से देखा और सन् १९०१ से १९३६ तक का भारत उनकी सूक्ष्म दृष्टि का केन्द्र रहा। प्रेमचन्द का यह युग भारतीय जनता के राष्ट्रीय संघर्ष का युग है। उन्होंने देखा था कि प्रारम्भिक वर्षो मे कांग्रेस का दृष्टिकोण समझौतावादी था। अपनी मांगो के प्रति वह नम्र थी। सस्था के कर्णधार एव अनुयायी ब्रिटिश न्याय भावना मे विश्वास करते थे और आंदोलन अथवा अवैधानिक उपायो मे विश्वास न करते थे। यह भारत का राजनीतिक उदयकाल था और 'हम उन्हें उनके इस दृष्टिकोण के लिए, जिनके द्वारा भारतीय राजनीतिक सुधार के नेताओ के रूप मे उन्होंने कार्य किया, इससे अधिक दोष नहीं दे सकते, जिस प्रकार हम आजकल के किसी भवन को नीव के रूप मे दब कर गडी हुई इंट और गारे को दोष नही दे सकते। उन्होंने हमारे लिए यह सम्भव कर दिया कि हम भवन की एक के पश्चात एक ऊपर की मंजिलें खडी

१. डॉ० पट्टाभि सीतारमैय्या . "कॉ० कांग्रेस का इतिहास"

२ डॉ० पट्टाभि सीतारमैय्या : "का० कांग्रेस का इतिहास"

कर सकें औपनिवेशिक स्वराज्य, साम्राज्यान्तर्गत होम रूप (अपना शासन) स्वराज्य तथा इन सबसे पूर्ण स्वातन्त्र्य[१]।

जनता स्वाधीनता-संग्राम की रीढ़ बन चुकी थी। कांग्रेसाध्यक्ष सर विलियम वेडरबर्न ने सन् १८९९ में अध्यक्ष पद से कहा था। 'मैं जनता को छोड़कर किसके लिए कार्य करूँ? जनता में उत्पन्न होकर जनता के द्वारा विश्वास किया जाकर मैं जनता के लिये ही मरूंगा।

प्रेमचन्द ने लेखन कार्य इस प्रथम चरण में ही प्रारम्भ किया था और उनके प्रारम्भिक उपन्यास में सामाजिक सुधार के लिए प्रस्तुत दृष्टिकोण तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का ही परिचायक है। इस कालावधि में वे देश के साधनों पर विदेशी प्रभुत्व के कारण बढ़ते हुए आर्थिक बोझ और उससे फैलते हुए असंतोष सन् १८९७ ई० के भयंकर दुर्भिक्ष और बम्बई प्रान्त में फैले प्लेग से उत्पन्न आतंकवादी प्रक्रियाओं को सूक्ष्म दृष्टि से देखते रहे और अपने उपन्यासकार को राष्ट्रीय कथानक के लिए तैयार करते रहे। वे समझ गये थे कि राजनीतिक वातावरण में निकट भविष्य में जो परिवर्तन अवश्यम्भावी हैं उसके लिए जनता को तैयार होना है। लोकमान्य तिलक ने भी इन्हीं दिनों कहा था कि 'राजनीतिक अधिकारों के लिए लड़ना ही होगा। नरमदल वालों का विचार है कि ये अधिकार प्रेरणा से प्राप्त किये जा सकते हैं। हमारा विचार है कि उनकी प्राप्ति केवल दृढ़ दबाव से ही हो सकती है।'

प्रेमचन्द जी पारिवारिक अर्थाभाव के कारण सन् १८९९ में सरकारी अध्यापक के रूप में नियुक्त हो शासकीय सेवा में आये। पिता की मृत्यु हो चुकी थी और एक भरे-पूरे परिवार का बोझ उनके कंधों पर था। राजनीतिक वातावरण अस्थिर था और दुर्भिक्ष ने राष्ट्रीय आर्थिक स्थिति को विषम बना दिया था। इतना होने पर भी उनका पूर्ववर्ती व समकालीन हिन्दी उपन्यास-साहित्य सुधारवादी या तिलस्मी ही था। प्रेमचन्द ने देखा कि उन्हें स्वयं आगे आकर एक नई परम्परा बनानी होगी। किन्तु उनके सामने भी अनेक कठिनाइयां थीं। सन् १९०४ में सरकारी गोपनीयतावाला अधिनियम स्वीकृत हो चुका था। इस अधिनियम ने शासन के हाथों प्रचंड शक्ति सौंप दी। 'विद्रोह' शब्द की परिभाषा विस्तृत हो गई और नागरिक मामलों के उन सरकारी रहस्यों तथा समाचारपत्रों की आलोचना के संबंध में कार्यवाही की जा सकती थी जो सरकार को सन्देह तथा घृणा के योग्य संभावित कर सकते थे। सन् १९०५ में बंग-भंग के विरुद्ध आंदोलन के दमन में शासन का उग्र रूप सामने आ चुका था।

---

१. डॉ० पट्टाभि सीतारमैय्या, स० कांग्रेस का इतिहास

राष्ट्रीवादी आदोलन यद्यपि एक रूप धारण करने जा रहा था तथापि वह समय ऐसा न था जिनमे शासकीय सेवा में रहते हुए कोई उपन्यासकार अपनी राष्ट्रीय भावनाओं को अभिव्यक्ति दे सके।

द्वितीय चरण मे आदोलन ने उग्र रूप धारण किया। उग्रवादी जिन साधनों को अपना अस्त्र मानते थे वे थे बहिष्कार, स्वदेशी तथा राष्ट्रीय शिक्षा। असहयोग आदोलन के सबध में बी० सी० पाल का कथन था 'जो कुछ हम कर सकते हैं वह यह है, हम सरकार को नौकरी करने वाले आदमी बिलकुल न दें तो हम सरकार को असमव बना सकते है। अरविन्द घोष ने स्पष्ट रूप से घोषणा की 'हमारे सभी आंदोलनों मे स्वतन्त्रता जीवन का लक्ष्य है, तथा एकमात्र हिन्दुत्व ही हमारी आकांक्षा की पूर्ति कर सकता है।' उग्रवादियो का स्मरण करते हुए देसाई ने लिखा है 'उग्रतावादी नेता हिन्दुओं के वैदिक अतीत, अशोक तथा चन्द्रगुप्त के महान् आसी शासनकाल को, राणाप्रताप तथा शिवाजी के वीरतापूर्ण कार्यों, झाँसी की रानी, लक्ष्मीबाई तथा १८५७ के नेताओं के देश-प्रेम पूर्ण कार्य्य की स्मृतियों को ताजा करते हैं।' इस युग के सर्वमान्य नेता लोकमान्य तिलक ने भी हिन्दुत्व की भावना पर विशेष जोर दिया।' 'तिलक की हिन्दू पुनर्जागरण के परिणाम थे और कोई आश्चर्य नहीं कि उन्होंने भारत की स्वाधीनता के लिए हिन्दू उत्सवों और हिन्दू सगठन पर बड़ा बल दिया।' थियोसोफिकल सोसायटी ने भी इस दिशा मे कार्य किया तथा शिरोल के मतानुसार 'थियोसोफिस्ट विचारधारा ने हिन्दू पुनर्जागरण को नई प्रेरणा दी और किसी हिन्दू ने इस आदोलन मे इतना काम नही किया जितना श्रीमती बेसेन्ट ने।'

कांग्रेस आदोलन के इस द्वितीय चरण मे लोकमान्य तिलक व ऐनी बेसेंट ने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। तिलक जी ने देश का तूफानी दौरा किया और जनता को एक नया नारा दिया 'स्वराज्य मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है, मैं इसे लेकर रहूँगा।' उग्रतावादी नेताओं की विचारधारा और हिन्दुत्व की भावना ने जनता को प्रभावित किया और घबराकर सरकार ने भी अनेक दमनात्मक कानून बनाये। लोकमान्य तिलक गिरफ्तार कर माडले जेल मे रखे गये और इस तरह १९१४ तक भारतीय राजनीतिक से अलग रहे। सन् १९१५ मे श्रीमती ऐनी बेसेंट के होम रूल संबंधी प्रस्तावों ने पुन. राजनीतिक वातावरण मे गरमी ला दी और गरमदलीय राजनीतिज्ञों का उत्कर्ष होने लगा। सरकार ने होम रूल आदोलन का कठोरता के साथ दमन किया। श्रीमती ऐनी बेसेंट बन्दी कर ली गई। तिलक जी ने निष्क्रिय सघर्ष की धमकी दी और इस आदोलन के फलस्वरूप सन् १९१९ मे भारत-सरकार का अधिनियम स्वीकृत हुआ। प्रेमचन्द इन बदलती हुई परिस्थितियों मे स्वय का निर्माण कर रहे थे। राष्ट्र मे हो रहे

परिवर्तनो से वे भिज्ञ थे और अपने को राष्ट्रीय कार्यो के लिए सौंपने को व्यग्र हो रहे थे।

तृतीय चरण मे सन् १९२० म गाधी जी के नेतृत्व मे असहयोग आदोलन प्रारम्भ करने का निर्णय लिया गया । यह कांग्रेस का प्रथम सक्रिय क्रांतिकारी कदम था । इसके अनेक कारण थे । अब तक गाधी जी ब्रिटिश सरकार की न्यायप्रियता पर विश्वास करते थे और इसी विश्वास पर उन्होंने प्रथम महायुद्ध म अग्रेज सरकार का पूरा साथ दिया था । किन्तु इसके उपरान्त भी जलियावाला बाग काड, पजाब मे मार्शलला और हटर कमेटी की जाच से अग्रेजो की न्यायप्रियता से उनका विश्वास उठ गया । जनता मे असतोष तो था ही । कलकत्ता अधिवेशन मे असहयोग का प्रस्ताव ८७३ के विरुद्ध १८५५ के बहुमत से पारित हुआ । कांग्रेस ने असहयोग का सात-सूत्री कार्यक्रम जनता के सामने रखा और उसका देश-व्यापी प्रचार करने के लिए गाधी जी ने दौरा किया । उनकी घोषणा थी कि अगर लोग पूरे मन से इस कार्यक्रम को अपना लें तो स्वराज एक साल मे मिल जायेगा । असहयोगियो के लिए अहिंसा और सत्य का परिपालन आवश्यक प्रतिपादित किया । सारे देश मे असहयोग आदोलन का व्यापक प्रभाव पडा । कांग्रेस ने चालीस लाख स्वयसेवक भरती किये बीस हजार चरखे बनवाये और सेठ जमनालाल बजाज ने प्रैक्टिस छोडने वाले वकीलो के लिए एक लाख रुपया सालाना देने की घोषणा की। कांग्रेस के आव्हान पर प्रिंस ऑफ वेल्स के भारत आगमन (१९२१) का बहिष्कार किया गया तथा बम्बई व कलकत्ता मे सफल हडतालें हुईं । ब्रिटिश सरकार का दमन चक्र चला । सेडीशस एक्ट पारित हुआ और करीब २५ हजार व्यक्ति पकडे गये । इस दमन नीति के विरुद्ध कांग्रेस ने १९२१ मे व्यक्तिगत और सामूहिक सविनय अवज्ञा आदोलन का निश्चय लिया । जनता ने उत्साह के साथ भाग लिया किंतु चौरीचौरा काड के फलस्वरूप गाधी जी ने आदोलन वापस ले लिया । जनता अत्यन्त उग्र थी और उसने गाधी जी की कड़ी आलोचना की । जनता के मनोभाव को देखकर सरकार ने अवसर को उपयुक्त समझ गाधी जी को गिरफ्तार कर लिया और उन्हें ६ वर्ष का कारावास दिया गया ।

राष्ट्र म हो रहे इन परिवर्तनो तथा गाधी जी के प्रभाव के सम्मोहन मे प्रेमचन्द ने भी शासकीय सेवा से पद त्याग कर प्रकाशन का कार्य प्रारम्भ किया । प्रेमचन्द अब शासकीय बधनो से मुक्त थे और राष्ट्रीय आदोलन मे अपना योग दान देने के लिए स्वतन्त्र । उनकी लौह-लेखनी उठी और वर्षों से सचित आकांक्षायें उपन्यास के विस्तृत चित्रफलक मे चित्रित होने लगी । सम-सामयिक राजनीतिक वातावरण को साहित्य का सबल मिला और इस तरह प्रेमचन्द की लेखनी से सूत्रपात हुआ राजनीतिक उपन्यासो की नवीन परम्परा का ।

सन् १९२० से १९३६ तक भारतीय राजनीति में भारी परिवर्तन हुए। सन् १९२१ में मालाबार में खिलाफत राज्य स्थापित करने से मोपला विद्रोह हो गया जिसने साम्प्रदायिक रूप ग्रहण कर लिया। असहयोग आंदोलन के बाद गांधी जी के गिरफ्तार हो जाने से कांग्रेस में आपसी मतभेदों में वृद्धि हुई और कर्मठ सेनानी सी० आर० दास ने कांग्रेस के अध्यक्ष पद से स्तीफा दे दिया। उन्होंने स्वाराज्य पार्टी स्थापित की जिसका उद्देश्य कांग्रेस द्वारा विधान मंडलों में भाग लेकर कार्यक्रम को सफल बनाना था। वे चुनाव में भाग लेने और वोट देने के अधिकार के औचित्य को स्वीकार करते थे। गांधी जी ने बहुमत को इस पक्ष में देखकर मौन सम्मति दे दी। इस प्रकार कांग्रेस का कार्य रचनात्मक और स्वाराज्य पार्टी का विधान मंडलों में जाकर अवरोध उत्पन्न करना हो गया। यों दोनों का उद्देश्य स्वराज्य प्राप्ति था पर तरीकों में विभिन्नता थी। सन् १९२३ के चुनाव में स्वराज्य पार्टी को अच्छी सफलता मिली किन्तु विधान मंडलों में जाकर भी वे विशेष कार्य न कर सके। सन् १९२६ में स्वराज्य पार्टी भग हो गई, सन् १९२७ में साइमन कमीशन की नियुक्ति हुई। साइमन कमीशन का सारे भारत में विरोध किया गया पर बिना सहयोग के ही कमीशन ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी। दिसम्बर १९२९ में कांग्रेस ने स्वतन्त्रता प्रस्ताव पारित कर स्वराज्य का अर्थ पूर्ण स्वतन्त्रता घोषित किया। २६ जनवरी ३० को स्वाधीनता दिवस के रूपमें मनाने के निश्चय के साथ गांधी जी के नेतृत्व में सविनय अवज्ञा कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया। गांधी जी ने १२ मार्च ३० से प्रसिद्ध डांडी यात्रा प्रारम्भ की। सरकार ने दमनात्मक उपायों का अवलंब लिया और हजारों व्यक्ति जेलों में ठूस दिये गये। कांग्रेस ने सन् १९३० में होने वाले प्रथम गोलमेज सम्मेलन का बहिष्कार किया। परिणाम स्वरूप ५ मार्च १९३१ को गांधी-इर्विन समझौता हुआ। गांधी जी कांग्रेस के सर्वाधिकारी प्रतिनिधि के रूप में द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में सम्मिलित हुए। इस परिषद में जिन्ना के हस्तक्षेप विभिन्न सम्प्रदायों के प्रतिनिधित्व के संबंध में कोई निर्णय न हो सका। भारत पहुँचते ही गांधी जी को गिरफ्तार कर लिया गया। भारी संख्या में कांग्रेसी कार्यकर्ता भी गिरफ्तार किये गये। अगस्त १९३२ में रैम्जे मैकडानल्ड ने साम्प्रदायिक बटवारे के संबंध में ब्रिटिश सरकार के निर्णय की घोषणा की। कांग्रेस ने तीसरे गोलमेज सम्मेलन में भाग लिया और मार्च १९३३ में श्वेतपत्र के प्रस्ताव स्वीकृत किये गये। एक वर्ष उपरांत केन्द्रीय विधान मंडल के चुनाव हुए जिसमें कांग्रेस को पर्याप्त सफलता मिली। साम्प्रदायिक निर्णय के संबंध में कांग्रेस मौन रही और १९३५ के अधिनियम के अनुसार चुनाव हुए। कांग्रेस ने चुनाव में भाग लेकर अनेक प्रांतों में बहुमत प्राप्त किया। इन्हीं दिनों सन् १९३६ में प्रेमचन्द ने अपनी इहलीला समाप्त की।

राजनीतिक प्रवृत्तिया

प्रेमचन्द के जीवन-काल मे मुख्यतः दो प्रकार की राजनीतिक प्रवृत्तियां क्रियाशील थी—(१) अहिंसात्मक व (२) हिंसात्मक। कांग्रेस अहिंसात्मक तरीके से स्वराज्य प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील थी जबकि आतकवादी हिसात्मक प्रणाली के अनुयायी थे। ये दोनो प्रवृत्तिया बलवती थी। इनके अतिरिक्त सन् १९२४ मे साम्यवादी पार्टी स्थापित हुई थी जो शीघ्र ही भारत सरकार द्वारा अवैध घोषित कर दी गई। यह रूस की साम्यवादी पार्टी के सिद्धान्तो के अनुरूप थी। अवैध घोषित होने से अधिकाश साम्यवादी कार्यकर्ता काग्रेस के मच से ही अपना कार्य करते रहे। उनका कार्यक्षेत्र ट्रेड यूनियनो तथा छात्रो के सगठन तक सीमित था।

प्रेमचन्द के अन्तिम दिनो मे काग्रेस समाजवादी पार्टी की स्थापना हुई और इसने १९३४-३५ मे काग्रेस के अन्दर वामपक्षी सगठन के रूप मे कार्य किया।

प्रेमचन्द के जीवन काल मे मुस्लिम साम्प्रदायिकता का विकास उत्कर्ष पर पहुँच गया था और हिन्दू महासभा भी हिन्दुओ के हितो के नाम पर सक्रिय हो रही थी।

इन सब राजनीतिक पार्टियो और विचारो के बावजूद काग्रेस ही एकमात्र देशव्यापी राजनीतिक दल रहा और सन् १९२० से १९३६ का समय गाधी-युग के नाम से पुकारा गया। गांधी-युग की राजनीतिक विशेषता है गाधी-वाद की उपलब्धि जिसका समाहार बहुत कुछ प्रेमचन्द के राजनीतिक उपन्यासों मे हुआ।

प्रेमचन्द का व्यक्तित्व

जिस राजनीतिक वातावरण मे प्रेमचन्द का विकास हुआ उसका उल्लेख पूर्व मे किया जा चुका है जिससे प्रेमचन्द के व्यक्तित्व और कृतित्व को समझने में सुविधा हो।

जन्म

हिन्दी के प्रथम राजनीतिक उपन्यासकार प्रेमचन्द का जन्म निम्न मध्यवर्ग परिवार में ३१ जुलाई १८८० को वाराणसी से चार मील दूर लमही पाण्डेपुर मे हुआ। यह वह समय था जब राष्ट्र नई चेतना के साथ आगे बढ रहा था। हम अमृतराय जी के इन शब्दो से पूर्णत: सहमत हैं कि 'प्रेमचन्द का जन्म लगभग उसी समय हुआ था जब कि इन्डियन नेशनल काग्रेस का। कांग्रेस का जन्म इस बात की परोक्ष स्वीकृति थी कि देश मे स्वतंत्रता की काफी सशक्त चेतना उस समय वर्तमान थी। स्वतत्रता की

भावना वातावरण में थी। इसलिए यह स्वाभाविक था कि आरम्भ से ही प्रेमचन्द पर उसका प्रभाव पड़े[१]।

पारिवारिक स्थिति

प्रेमचन्द का साहित्यिक जीवन सन् १९०१ से प्रारम्भ हुआ और इस तरह बाल्यावस्था व तरुणावस्था के चौदह वर्षों तक वे विषम आर्थिक तथा पारिवारिक परिस्थितियों से जूझते रहे। इनके पिता मुन्शी अजायबलाल डाकखाने में क्लर्क थे। उनकी आर्थिक स्थिति कभी सन्तोषजनक न रही। प्रारम्भ में पन्द्रह बीस रुपये मासिक पाते थे, चालीस रुपये तक पहुँचते-पहुँचते उनका देहान्त हो गया[२]। वंशानुगत कुछ कास्त थी जो जीवन-निर्वाह के लिए अपर्याप्त थी। इन आर्थिक परिस्थितियों के बीच जब उनके यहाँ पुत्र हुआ तो पिता व चाचा ने बालक का नामकरण क्रमशः धनपतराय व नवाबराय रखा। नामकरण सम्भवतः परिवार की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति का विपर्यय था और जो अभिभावकों की ऐश्वर्य सम्बन्धी दमित आकांक्षाओं का प्रतीक माना जा सकता है। इन्हीं आर्थिक विषमताओं के बीच प्रेमचन्द ने सम्पूर्ण जीवन जिया। वे बाल्यावस्था का स्मरण कर एक स्थान पर लिखते हैं—"अबेरा के पुल का चमरौधा जूता मैंने बहुत दिनों तक नहीं पहना है। जब तक पिता जी जीवित रहे, तब तक उन्होंने मेरे लिए बारह आने से ज्यादा का जूता कभी नहीं खरीदा और चार आने से ज्यादा गज का कपड़ा नहीं खरीदा।" उनके ही शब्दों में—"पैसों की दिक्कत तो मुझे हमेशा रहती थी। बारह आने महीना फीस लगती थी। उन बारह आनों में से एक-आध आना हर महीने खा जाता था। जिस स्कूल में मैं था, उसमें छोटी जाति के लोग थे। वे लोग मुझसे लेकर दो चार पैसे खा लेते थे। इसलिए फीस देने में बड़ी दिक्कत होती थी।"

आर्थिक दुरवस्था तो थी ही मां का प्यार भी वे भरपूर न पा सके। आठ वर्ष के थे तो मां की मृत्यु हो गई और पिता ने दूसरा विवाह कर लिया। मां का स्नेह तो मिला नहीं, विमाता से भी उसकी पूर्ति न हो सकी। इस मनोव्यथा को प्रेमचन्द जी ने अपने कथा-साहित्य में अनेक स्थलों पर पात्रों के माध्यम से भी व्यक्त किया। 'कर्मभूमि' के अमरकांत का यह परिचय जैसे प्रेमचन्द का ही हो—'अमरकांत की माता का उसके बचपन ही में देहान्त हो गया। समरकान्त ने मित्रों के कहने सुनने से दूसरा विवाह कर लिया था। उस सात साल के बालक ने नई मां का बड़े प्रेम से स्वागत किया, लेकिन उसे जल्द मालूम हो गया कि उसकी नई माता उसकी जिद और शरारतों को उस क्षमा

१　संपादक डॉ० इन्द्रनाथ मदान—'प्रेमचन्द : चिन्तन और कला,' पृष्ठ २०१

२　हंसराज रहबर : 'प्रेमचन्द जीवन और कृतित्व,' पृष्ठ ९

दृष्टि से नही देखती जैसे उसकी मा देखती थी। वह अपनी मा का अकेला लाडला था। बडा जिद्दी, बडा नटखट। जो बात मुँह से निकल जाती, उसे पूरा ही करके छोडता। नई माता जो बात-बात पर डाटती थी। यहाँ तक कि उसे माता से द्वेष हो गया। जिस बात को वह मना करती, उसे अवश्य कर करता। पिता से भी ढीठ हो गया। पिता और पुत्र मे स्नेह का बन्धन न रहा।" हसराज रहबर के शब्दो मे—"निस्सदेह यह प्रेमचद की आत्मकथा है।" विमाता, पिता और पुत्र के उपर्युक्त हार्दिक विक्षोभो का सकेत 'सौतेली मा', 'अलग्योझा,' 'प्रेरणा' आदि कहानियो मे भी देखने को मिलता है। इस तरह 'दरिद्रता, विमाता का निठुर व्यवहार, पिता की अवहेलना और उदासीनता, यह वातावरण था जिनमे प्रेमचन्द का बचपन बीता[१]।'

शिक्षा

घर पर उर्दू व फारसी का अध्ययन कर शिक्षा का आरम्भ मदरसे से हुआ। उन्हे पढने-लिखने की ओर विशेष रुचि न थी जो मा-बाप का वात्सल्य प्राप्त न कर सकने का ही प्रतिफल था। 'धनपतराय को मदरसे से, मौलवी से और किताबो से कोई विशेष प्रेम न था[२]।' 'भावुक धनपतराय मदरसे से हफ्तो गैरहाजिर रहते थे, और खेतो बागो मे घूम कर प्रकृति से अनुभव प्राप्त करते, सिपाहियो की कवायद देखने और बैंड सुनते थे। इस आवारगी मे उनका चचेरा भाई भी उनके साथ होता था, जो उम्र मे उनसे दो साल बडा था[३]।'

पिता का स्थानान्तर गोरखपुर होने पर वे स्कूल मे पढने लगे। मिडिल स्कूल मे शिक्षा के साथ-साथ तिलस्मे होशरुबा का शौक लगा। 'रोजाना वे अपने कम उम्र दोस्त के साथ स्कूल के बाद उसके मकान पर जाते थे। वहाँ तम्बाकू के बडे-बडे स्याह पिंडो के पीछे तम्बाकू फरोश और उसके अहबाब बैठकर बराबर हुक्का पीते और तिलस्मे होशरुबा पढते थे[४]।'

इस तरह बाल्यकाल की कटुताओ के बीच १३ वर्ष की आयु मे वे साहित्य की ओर आकृष्ट हुए। वह उर्दू के उपन्यासो का जमाना था और वे मौलाना शरर, प० रतननाथ सरशार, मिर्जा रुसवा की कृतियो मे आकठ डूब गये। रेनाल्ड के उपन्यास भी उन्हे बहुत प्रिय थे। साहित्याभिरुचि पाठ्य पुस्तको के अध्ययन मे बाधक सिद्ध हुई।

१ हसराज रहबर : 'प्रेमचन्द जीवन और कृतित्व,' पृष्ठ ८

२ हसराज रहबर : 'प्रेमचन्द जीवन और कृतित्व,' पृष्ठ १०

३ हसराज रहबर : 'प्रेमचन्द जीवन और कृतित्व,' पृष्ठ ११

४ हसराज रहबर : 'प्रेमचन्द जीवन और कृतित्व,' पृष्ठ १२

इन्ही दिनो उनका विवाह भी कर दिया गया। यह घटना सन् १८९५ मे हुई जब वे १५ वर्ष के थे। वे अभी मैट्रिक भी न कर पाये थे कि पिता का देहावसान हो गया और परिवार का उत्तरदायित्व उनके ही कंधो पर आ गया। उत्तरदायित्व आने से उन्हे बोध हुआ और पढने की इच्छा बलवती हुई। इस ओर उन्होने ध्यान भी दिया पर सन् १८९८ मे मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण कर उन्हें १८९९ मे अठारह रुपये पर सरकारी अध्यापक हो जाना पड़ा।

इस समय तक इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना हुए ग्यारह वर्ष हो चुके थे। यह प्रथम सुव्यवस्थित राजनीतिक प्रयास था जिसने देश को एक नई प्रेरणा और दिशा-निर्देश दिया। इन्ही दिनो आतंकवादियो की गतिविधिया भी सक्रिय हो रही थीं। सन् १८९७ मे दो युवको ने एक अंग्रेज का वध कर दिया था जिससे उन्हे फांसी दे दी गई। इस घटना से देश मे रोष व्याप्त था। प्रेमचन्द इन घटनाओ का तटस्थ होकर मन और मस्तिष्क मे आकलन कर रहे थे।

व्यवसाय

अध्ययन की लालसा बनी हुई थी और फलस्वरूप वे प्राइमरी शाला मे अध्यापन करते हुए दो बार इन्टर की परीक्षा मे बैठे पर असफल रहे। सन् १९०२ में इलाहाबाद ट्रेनिंग कालेज मे भरती हुए और १९०४ मे जूनियर क्लास की परीक्षा में अव्वल आये और जूनियर सर्टिफिकेट की सनद लेकर निकले। सन् १९१० मे इटरमीडिएट की परीक्षा उत्तीर्ण करते समय वे गवर्नमेंट स्कूल मे सरकारी अध्यापक थे। सन् १९१९ मे वे जब गोरखपुर मे अध्यापक थे उन्होंने बी० ए० किया। सन् १९२१ के असहयोग आदोलन मे उन्होंने सरकारी सेवा से त्याग पत्र दे काशी मे प्रकाशन का कार्य प्रारम्भ किया। करीब डेढ़ वर्ष तक 'मर्यादा' का सम्पादन, फिर एक वर्ष काशी विद्यापीठ मे अध्यापक रहे। अध्यापन छोड़ 'सरस्वती प्रेस' को प्रारम्भ किया। घाटा आया तो लखनऊ गये और गगा पुस्तकमाला व फिर नवलकिशोर प्रेस मे 'माधुरी' तथा साहित्य सुमन माला के सम्पादक रहे। सन् १९३० से 'हस' का प्रकाशन सपादन प्रारम्भ किया और १९३४ मे एक फिल्म कम्पनी मे गये पर एक वर्ष रह कर लौट आये। जिन्दगी के लिए वे सदा सघर्ष करते रहे बिना किसी विश्रान्ति के और ८ अक्टूबर १९३६ को काशी मे गोलोक वासी हुये। यह सत्य है कि 'प्रेमच द को सम्पन्न जीवन बिताना सारी उम्र नसीब न हुआ लेकिन वह अपने लिए और देश की जनता के लिए सदा सम्पन्न और समृद्ध जीवन के स्वप्न देखते रहे[1]।'

---

१. हसराज रहबर : 'प्रेमचन्द जीवन और कृतित्व' पृष्ठ २६

साहित्यकार प्रेमचन्द

उपन्यासकार के रूप में

प्रेमचन्द का रचनाकाल सन् १९०१ से माना जाता है। वे लिखते हैं, 'मैंने पहले-पहल १९०७ में गल्प लिखना शुरू किया। डाक्टर रवीन्द्रनाथ के कई गल्प मैंने अंग्रेजी में पढ़े थे, जिनका उर्दू अनुवाद कई पत्रिकाओं में छपवाया था। उपन्यास तो मैंने १९०१ ही से लिखना शुरू किया। मेरा एक उपन्यास १९०२ में निकला और दूसरा १९०४ में लेकिन गल्प सन् १९०७ से पहले मैंने एक भी न लिखी। मेरी पहली कहानी का नाम था 'संसार का सबसे अनमोल रत्न'। वह १९०७ में 'जमाना' उर्दू में छपी। इसके बाद मैंने 'जमाना' में चार-पांच कहानियाँ और लिखीं।'

साहित्य सृजन की प्रेरणा उन्हें मौलाना शरर, पं० रतन नाथ सरशार, मिर्जा रुसवा के कथा साहित्य और रेनाल्ड के उर्दू में अनूदित उपन्यासों से छात्रावस्था में ही मिली। इन दिनों वे केवल १३ वर्ष के थे। वे लिखते हैं कि 'मेरी पहली रचना का समय लगभग सन् १८९३ है जब धनपत की अवस्था कोई तेरह वर्ष होगी। सन् १८९४ में एक नाटक लिखा जिसका नाम 'होनहार बिरवान के चिकने चिकने पात' था[1]। यह उनका प्रारम्भिक प्रयास था।

उपन्यास और उनका रचनाकाल

उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि उपन्यास लेखन की ओर उनकी रुझान स्वाभाविक थी और सन् १९१६ से १९३६ के बीच उन्होंने हिन्दी में अनेक महत्वपूर्ण उपन्यासों की रचना की। काल क्रमानुसार उनके उपन्यासों की तालिका प्रकाशनकाल सहित निम्नानुसार है -

१—वरदान	सन्
२—सेवासदन	सन् १९१८
३—प्रेमाश्रम	सन् १९२३
४—रंगभूमि	सन् १९२५
५—कायाकल्प	सन् १९२६
६—निर्मला	सन् १९२७
७—प्रतिज्ञा	सन् १९२९
८—गबन	सन् १९३१

१. हंसराज रहबर : 'प्रेमचन्द जीवन और कृतित्व' पृष्ठ ३६

९–कर्मभूमि सन् १९३२ ,
१०–गोदान सन् १९३६
११–मंगलसूत्र (अपूर्ण)

प्रेमचन्द के उपन्यासो के प्रकाशन काल के सम्बन्ध मे विद्वानो मे मतभेद पाया जाता है। श्रीमती गीतालाल ने 'साहित्य' जनवरी, १९६० मे प्रेमचन्द के उपन्यासो के प्रकाशन काल का शोधपूर्ण विवेचन किया है। उनके काल निर्धारण से पूर्ण सहमति प्रकट करते हुए हम भी उपर्युक्त तिथियो को मान्यता दे रहे हैं।

उपर्युक्त तिथियों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द के एकाध उपन्यास को छोड़कर उनके प्राय सभी हिन्दी उपन्यास गाँधी युगीन कृतियाँ हैं। यह युग भारतीय जनता के राष्ट्रीय सघर्ष का था और एक ईमानदार साहित्यकार के अनुरूप ही प्रेमचन्द ने उस सघर्ष का अपने उपन्यासो मे निर्वाह किया। वे अपने युग की सामाजिक, राजनीतिक एव आर्थिक परिस्थितियो व विचारधाराओ को सूक्ष्मता के के साथ आत्मसात् कर उन्हे आन्दोलन मे जूझती जनता तक पहुँचा कर अपने कर्तव्य का पालन करते रहे। यही कारण है कि प्राक् गाँधीयुगीन कृतियो को छोड़, प्राय: सभी उपन्यासो मे गाँधी युग के राजनीतिक वातावरण का सजीव चित्रण उनके उपन्यासो मे मिलता है। तत्कालीन भारत की प्रमुख समस्या राष्ट्र को साम्राज्यवादी शक्तियो से मुक्ति दिलानी थी। भारत की समग्र चेतना व कर्मशक्ति ब्रिटिश साम्राज्यवाद को उखाड़ फेंकने मे लगी हुई थी।

राजनीतिक दृष्टिकोण

प्रेमचन्द के जीवन पर संक्षिप्त विचार करते हुए हम यह पूर्व ही मे देखे चुके हैं कि राष्ट्रीय आन्दोलन से उनका स्व- का कोई निकट सबध नही रहा। सिवाय इसके *कि सन् १९२१ मे असहयोग आन्दोलन में उन्होंने २२ वर्षीय शासकीय सेवा से पद-* त्याग कर दिया। आन्दोलन को उन्होने बौद्धिक रूप से देखा था और बुद्धिजीवी के रूप मे ही उसका प्रचार जनसाधारण मे करना चाहते थे।

पत्नी शिवरानी जी से हुई उनकी वार्ता मे इसका उल्लेख मिलता है—शिवरानी बोली—इसका मतलब है आप भी महात्मा गाँधी के चेले हो गये। प्रेमचन्द—चेला बनने का मतलब किसी की पूजा करना नही, उसके गुणो को अपनाना होता है। मैंने उन्हें अपना कर ही तो 'प्रेमाश्रम' लिखा जो सन् १९२२ मे छपा है प्रेमचन्द ने कहा कि दलील की बात नही। वह भी मजदूरो-किसानो की भलाई के लिए आंदोलन चला रहे हैं और मैं भी कलम से यही कुछ कर रहा हूँ[1]।

---

१ शिवरानी देवी : 'प्रेमचन्द घर में'

स्पष्ट है कि प्रेमचन्द साहित्य में राजनीतिक चित्रण को महत्वपूर्ण मानते थे। इस रूप में वे साहित्यकार को आंदोलनकारी से कम स्वीकार नहीं करते। वे साहित्य, समाज और राजनीति में अटूट सम्बन्ध मानते थे। उनका कथन है 'ये चीजें माला जैसी ही हैं। जिस भाषा का साहित्य अच्छा होगा, उसका समाज भी अच्छा होगा। समाज के अच्छा होने पर भी मजबूरन राजनीति भी अच्छी होगी। ये तीनों साथ साथ चलने वाली चीजें हैं—इन तीनों का उद्देश्य ही जो एक है। साहित्य इन तीनों (शेष दोनों) की उत्पत्ति के लिए एक बीज का काम देता है। साहित्य और समाज और राजनीति का सम्बन्ध बिलकुल अटल है।'

वे इसकी विस्तृत व्याख्या करते हैं कि, 'समाज आदमियों के समूह को ही तो कहते हैं। समाज में जो हानिलाभ तथा सुख-दुःख होता है वह आदमियों ही पर पड़ता है। साहित्य से लोगों को विकास मिलता है। साहित्य से आदमी की भावनाएं अच्छी और बुरी बनती हैं। इन्हीं भावनाओं को लेकर आदमी जीता है और इन सब तीनों चीजों की उत्पत्ति का कारण आदमी ही है।'[१]

साहित्य को वे राजनीति से ऊँचे स्तर का मानते थे। उनकी दृष्टि में साहित्य राजनीति का मार्ग-दर्शक था। उनके शब्दों में साहित्य राजनीति के पीछे चलने वाली चीज नहीं, उसके आगे आगे चलने वाली एडवान्स गार्ड है। वह उस विद्रोह का नाम है, जो मनुष्य के हृदय में अन्याय अनीति और कुरुचि से उत्पन्न होता है।[२]

साहित्य और राजनीति दोनों को वे समाज के उन्नयन के लिए समान रूप से उत्तरदायी मानते थे और इसी कारण उन्हें उपयोगिता की तुला पर तौलते थे। उनका स्पष्ट कथन है कि 'साहित्य की प्रवृत्ति अहंवाद या व्यक्तिवाद तक परिमित नहीं रह गई है। बल्कि वह मनोवैज्ञानिक और सामाजिक होती जाती है। तब वह व्यक्ति को समाज से अलग नहीं देखता है। इसलिए नहीं की वह समाज पर हुकूमत करे, उसे अपनी अपनी स्वार्थ-साधना का औजार बनाये मानो उसमें और समाज में सनातन शत्रुता है, बल्कि इसलिए कि समाज के अस्तित्व के साथ उसका अस्तित्व कायम है और समाज से अलग होकर उसका मूल्य शून्य के बराबर हो जाता है।[३] साहित्य को वे जीवन की समस्याओं पर विचार करने का साधन मानते थे। एक स्थल पर उन्होंने लिखा है, अब साहित्य केवल मन बहलाव की चीज नहीं है, मनोरंजन के सिवाय उसका और भी कुछ उद्देश्य है। अब वह केवल नायक-नायिका के संयोग-वियोग की कहानी

---

१. शिवरानी देवी : 'प्रेमचन्द घर में', पृष्ठ ६४-६५

२ प्रेमचन्द : 'कुछ विचार,' पृष्ठ ७४

३ प्रेमचन्द : 'कुछ विचार' पृष्ठ १७

नहीं सुनाता, किन्तु जीवन की समस्याओं पर भी विचार करता है और उन्हें हल करता है।[1] वे इस सत्य से भी परिचित थे कि साहित्य अपने काल का प्रतिबिम्ब होता है। जो भाव और विचार लोगों के हृदयों को स्पन्दित करते हैं, वही साहित्य पर भी अपनी छाया डालते हैं।[2]

इसमें संदेह नहीं कि शोषित और पीड़ित भारतीय जनता के यथार्थ अंकन के प्रति प्रेमचन्द की यही विचार धारा उन्हें प्रेरणा देती रही। उन्होंने भारतीय समाज और राजनीतिक संघर्ष को निकट से देखा और उसका 'फोटो ग्राफिक' चित्रण प्रस्तुत किया। ऐसा करना उनके लिये विवशता थी। उनके ही शब्दों में 'जब हम देखते हैं कि हम भांति भांति के राजनीतिक बन्धनों में जकड़े हुए हैं, जिधर निगाह उठती है दुःख और दरिद्रता के भीषण दृश्य दिखाई देते है, विपत्ति का करुण क्रन्दन सुनाई देता है, तो कैसे संभव है कि किसी विचारशील प्राणी का हृदय न दहल उठे।[3] और इन सबका चित्रण उपन्यास में ही सहज संभव है, ऐसा वे मानते थे। सभी प्रकार के विचारों की अभिव्यक्ति देने में उपन्यास समर्थ है और इसीलिए उन्होंने कहा भी कि 'उपन्यास में आपकी कलम में जितनी शक्ति हो अपना जोर दिखाइए, राजनीति पर तर्क कीजिए, किसी महफिल के वर्णन में दस-बीस पृष्ठ लिख डालिए, कोई दूषण नहीं।[4]' कहना न होगा कि उपन्यास में राजनीतिक चित्रण को ये दूषण नहीं मानते थे। यही कारण है कि राजनीतिक वातावरण की छाया उनके उपन्यासों में व्याप्त है कहीं घनी, कहीं विरल।

उनके उपन्यास गांधी युग की राजनीतिक चेतना से स्पन्दित हैं। उसमें राष्ट्र की असन्तोष पूर्ण आर्थिक दशा, किसानों और मजदूरों के निरन्तर शोषण और आर्थिक वैषम्य की कहानी का मार्मिक चित्रण तो है ही उनमें जागृति उत्पन्न करने का प्रयास भी है जिसके लिए कांग्रेस राजनीतिक रूप से प्रयत्नशील थी।

कांग्रेस ने किसानों की दयनीयावस्था से प्रेरित होकर सत्याग्रह आन्दोलन चलाया, स्वदेशी का नारा बुलन्द किया और असहयोग का मार्ग प्रशस्त किया। प्रेमचन्द ने इन प्रयासों के क्रमिक विकास को देखा था, उससे अत्यधिक प्रभावित भी थे और यही कारण है कि 'कर्मभूमि' और 'रङ्गभूमि' तत्कालीन राजनीतिक वातावरण

---

१. प्रेमचन्द : 'कुछ विचार' पृष्ठ ६
२ प्रेमचन्द : 'कुछ विचार' पृष्ठ ४६
३ प्रेमचन्द : कुछ विचार' पृष्ठ २४
४. प्रेमचन्द : 'कुछ विचार' पृष्ठ २४

ही कथ्य बना और जिनके पात्र ऐतिहासिक न होकर भी उस व्यापक आन्दोलन के पात्र हैं।

हिन्दी के उपन्यासकारों में प्रेमचन्द ही एक ऐसे हैं जिनका मूल्यांकन सर्वाधिक आलोचकों ने विभिन्न दृष्टिकोण से किया है। उनके उपन्यासों में समाज सापेक्ष्यता देख कर कुछ विद्वान उन्हें सामाजिक उपन्यासकार और कुछ उपन्यासों में विभिन्न समस्याओं को देखकर समस्यामूलक उपन्यासकार मानते हैं। डॉ० राम विलास शर्मा ने 'प्रेमचन्द आलोचनात्मक परिचय' में विभिन्न सामाजिक आर्थिक वर्गों के माध्यम से प्रेमचन्द के कथा-साहित्य का मूल्यांकन किया है। इन्हीं आधारों पर डॉ० त्रिलोकी नारायण दीक्षित ने उन्हें अपनी पुस्तक 'प्रेमचन्द' में मार्क्सवादी चौखटे में कसने का प्रयत्न किया। इसके ठीक विपरीत कुछ समीक्षकों ने उन्हें गांधीवाद का प्रचारक सिद्ध करने का प्रयास किया। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने मानवतावादी उपन्यासकार के रूप में उन्हें देखा और लिखा, "यह मानने में तो शायद कठिनाई अनुभव की जाय कि प्रेमचन्द गांधीवादी या साम्यवादी सिद्धान्तों से कभी प्रभावित ही नहीं हुए परन्तु यह स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं कि प्रेमचन्द पूर्णरूप से मानवतावादी थे।" शिल्प की दृष्टि से भी उनके उपन्यास साहित्य का वर्गीकरण यथार्थवादी और आदर्शोन्मुख यथार्थवादी के रूप में किया गया। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी तो आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की सत्ता ही नहीं मानते।

कहना न होगा कि विद्वानों के इन विभिन्न मतों के प्रतिपादन से प्रेमचन्द के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण कम और भ्रम की स्थिति अधिक निर्मित की गई है।

ऐसे उपन्यासकार को जिसने विभिन्न आधारों पर अनेक उपन्यासों की सृष्टि की हो किसी वर्ग के अन्तर्गत रखना उचित नहीं क्योंकि उससे मूल्यांकन एकांगी ही होगा। मेरे मत से तो समीक्षकों के मूल्यांकन रूपी पत्थरों से प्रेमचन्द का उपन्यास साहित्य रूपी दर्पण दरक गया है और प्रत्येक समीक्षक अपने टुकड़े में अपनी मान्यताओं का स्वरूप देखने का प्रयास कर रहा है। यदि राजनीतिक धरातल पर उनके समग्र उपन्यास साहित्य को देखा जाय तो जो अनेक विभाजन किये गये हैं व भ्रम फैला है वह बहुत अंशों में दूर हो सकता है। एक सजग साहित्यकार होने के नाते प्रेमचन्द अपने युग, देश और राष्ट्रीय आन्दोलन की परिस्थितियों से अपरिचित नहीं थे ऐसी स्थिति में सच तो यह है कि उन्होंने एक साहित्यिक कलाकार के यथार्थ दृष्टिकोण से सभी प्रकार की समकालीन परिस्थितियों का अंकन किया है। अतएव उन्हें मुख्यतः गांधीवादी या जनवादी कहना उतना उचित नहीं।

प्रेमचन्द के प्रेरणा-स्रोत

प्रेमचन्द जी न केवल हिन्दी राजनीतिक उपन्यास अपितु हिन्दी उपन्यास साहित्य के युग प्रवर्तक हैं। राष्ट्रीय राजनीतिक परिस्थितियों ने उनके साहित्यकार को स्फुरित किया और उनके उपन्यास साहित्य में तत्कालीन राजनीतिक व सामाजिक जीवन अपनी यथार्थता के साथ चित्रित हुआ। प्रेमचन्द गाँधी युग की साहित्यिक देन हैं और उन्हें हम चाहें तो 'हिन्दी साहित्य का गाँधी' भी कह सकते हैं। किन्तु उनके राजनीतिक उपन्यासों की रचना के पीछे जो साहित्यिक प्रेरणा थी वह बंगला उपन्यास साहित्य की ही है, रूसी उपन्यास साहित्य की नहीं जैसा कि कभी-कभी कहा जाता है। वे बंकिमचन्द्र और रवीन्द्रनाथ ठाकुर से प्रभावित थे। 'जमाना' के सम्पादक मुन्शी दया-नारायण निगम को ४ मार्च १९१४ को लिखे एक पत्र में वे कहते हैं—'मुझे अभी तक यह मालूम नहीं हुआ, कि कौन सी तरजे-तहरीर (रचना-शैली) अख्तियार करूँ ? कभी तो बंकिम की नकल करता हूँ, कभी आजाद के पीछे चलता हूँ।' सन् १९१४ तक प्रेमचन्द ने हिन्दी में उपन्यास नहीं लिखा था अतः बंकिमचन्द्र की नकल करने का प्रश्न ही नहीं उठता। यहाँ 'नकल' से तात्पर्य प्रभावित होने से है। बंकिमचन्द्र के कई उपन्यास तब तक हिन्दी में अनूदित हो चुके थे और इनमें से 'आनन्दमठ' अपनी राज नीतिक चेतना के कारण बहुत लोकप्रिय भी हुआ था। इन्हीं दिनों शरत और रवीन्द्र बाबू के अनूदित उपन्यास भी हिन्दी पाठकों के आकर्षण-केन्द्र थे और इनमें से कई राजनीतिक भाव भूमि पर आधारित थे। प्रेमचन्द ने १९०७ से गल्प लिखना प्रारम्भ किया था और रवीन्द्र बाबू के कई गल्प अंग्रेजी से उर्दू में अनूदित कर प्रकाशित करवाये थे। निश्चय ही उन्होंने एक जागरूक पाठक के नाते 'आनन्दमठ' और 'गोरा' के प्रणेताओं और उनके राजनीतिक उपन्यासों से प्रेरणा प्राप्त की होगी। सन् १९१८ तक प्रेमचन्द का ध्यान कौमी जज्बा की ओर नहीं गया था और मुकर्मी अब्दुल्ला आसफअली खा साहब ने १९१८ में प्रेमचन्द को सलाह दी—'उन्हें ऐसे किस्से और नावल लिखने चाहिए, जिससे कौमी जज्बा की नश्वानमा (राष्ट्रीय भावनाओं की अभिवृद्धि) में मदद मिले। फौकल आदत वाकआत (अस्वाभाविक घटनाओं) से पाक हो।' इस पर प्रेमचन्द ने मुन्शी दयानारायण के मार्फत जवाब दिया था—'मिस्टर अब्दुल्ला की राय पर अमल करूँगा, हालांकि 'सुपरनेचरल एलीमेन्ट्स' आदमी की जिन्दगी में शामिल हैं।' इसी बीच उन्होंने असहयोग आन्दोलन और गाँधी जी के नेतृत्व से प्रभावित हो नौकरी से त्याग पत्र दिया और शासकीय बन्धनों से मुक्त हुए। इन परिस्थितियों में *'प्रेमाश्रम'* की रचना हुई जिसने कौमी जज्बा की नश्वोनमा की इसमें किसे सन्देह हो सकता है। इसके लिए उन्हें बंगला-साहित्य की पृष्ठभूमि मिली और स्वानुभूति से राष्ट्रीय समस्याओं के आकलन के साथ गाँधी-वादी राजनीति।

प्रेमचन्द के उपन्यासो के रचनाकाल के अनुसार उनके उपन्यासो को प्राक्-गाँधीयुगीन उपन्यास और गाँधी युगीन उपन्यास की श्रेणी मे वर्गीकृत किया जा सकता है।

उनके प्राक् गाँधीयुगीन उपन्यास वरदान, प्रतिज्ञा और सेवासदन हैं तथा शेष अन्य अर्थात् प्रेमाश्रम, रगभूमि, कायाकल्प, निर्मला, गबन, कर्मभूमि, गोदान और मगल-सूत्र गाँधी युगीन कृतियाँ हैं।

प्राक्-गाधीयुगीन उपन्यासो मे राजनीति

प्राक्-गाँधीयुग मे राजनीति की अपेक्षा सामाजिक सुधार की प्रवृत्ति विशेष थी। आतकवादी गतिविधियाँ अवश्य सक्रिय थी किन्तु शासकीय सेवारत प्रेमचन्द को उनके यथातथ्य चित्रण मे अनेक बाधाएँ थी। हिन्दी मे सामाजिक उपन्यासो की उस परम्परा का भी अभाव था जिसके आधार पर राजनीतिक चेतना प्रस्फुटित होती। काग्रेस मे तिलक जैसे नेताओ का प्रभाव बढ रहा था पर राजनीतिक दृष्टिकोण अभी भी अस्पष्ट था। राजनीति और धर्म समाज की आड मे राह खोज रही थी। ऐसे युग मे जब केवल राष्ट्रीयता की भावना भर हो और राजनीतिक लक्ष्य अस्पष्ट न हो प्रेमचन्द के प्रारम्भिक उपन्यासो मे राजनीतिक चित्रण के अभाव का कारण सरलता से समझा जा सकता है। इतना होने पर भी 'वरदान,' 'प्रतिज्ञा' और 'सेवासदन' राजनीतिक वातावरण से शून्य नही। 'वरदान' मे जो प्रेमचन्द का सभवत प्रथम उपन्यास है देशभक्ति की सूक्ष्म रेखा दिखलाई देती है जो 'वरदान' के पात्रो के राष्ट्रीय आत्म गौरव के रूप मे व्यक्त हुई है। एक प्रसंग आता है कि विरजन के श्वसुर डिप्टी श्यामाचरण एक बार अग्रेज कलक्टर को सलाम करने गये। दो घटे प्रतीक्षा करने के बाद साहब बहादुर निकले और फिर कभी आने के लिए कहकर चलते बने। डिप्टी साहब भविष्य मे फिर किसी अग्रेज से मिलने नही गये[1]। इस घटना से अग्रेज शासको की प्रकृति और भारतीयो के राष्ट्रीय आत्म गौरव का स्पष्ट सकेत है। 'वरदान' के एक पात्र बाबू राधाचरण भी देश सेवा के लिए सरकारी नौकरी से इस्तीफा दे देते हैं[2]। भारतीयो की दीन-हीन अभाव ग्रस्त जनता का चित्रण भी मिलता है। गरीबी के मारे किसान सख्ती से वसूल होने वाली लगान, पुलिस के हथकन्डे भी 'वरदान' मे देखे जा सकते हैं। प्लेग से सहस्रो व्यक्तियो की मृत्यु[3] और बाढ का प्रकोप[4] का उल्लेख भी है। ऐसा प्रतीत होता है कि

१. प्रेमचन्द : वरदान, पृ ठ २५-२६
२ प्रेमचन्द . वरदान, पृष्ठ १४६
३ प्रेमचन्द : वरदान, पृष्ठ ८८
४. प्रेमचन्द : वरदान, पृष्ठ १७१

'प्लेग' का जो विवरण 'वरदान' में आया है वह सन् १८९७ में हुए प्लेग का ही है जो पूना में मिस्टर रेण्ड की हत्या के कारण राजनीतिक महत्व का बन गया था।

'प्रतिज्ञा' में भी गांधीय सिद्धान्तों की हल्की सी झलक है। 'प्रतिज्ञा' १९०४-०५ में प्रकाशित 'प्रेमा' का संशोधित संस्करण है जो डॉ० रामरतन भटनागर के अनुसार १९२९ में प्रकाशित हुआ था। 'प्रतिज्ञा' की मूल समस्या विधवा-विवाह है और इसे केन्द्र बनाकर नारी-समस्या पर जो विचार व्यक्त किये गये हैं उन पर गांधी जी का प्रभाव मिलता है पर न्यूनांश में इसी प्रकार 'सेवासदन' में वेश्याओं की समस्या ही प्रमुख है किन्तु उस सामयिक राजनीतिक घटनाओं का भी कुछ उल्लेख मिलता है। पदमसिंह के प्रस्ताव को स्थानीय नेतागण किस तरह सामाजिक प्रश्न से राजनीतिक समस्या बनाकर साम्प्रदायिक तनाव को जन्म देते है इसका प्रसंग 'सेवासदन' में देखा जा सकता है। रुस्तम भाई इस प्रवृत्ति को देखकर जैसे कांग्रेस कार्यक्रम की उद्घोषणा करते हैं 'मुझे यह देख कर शोक हो रहा है कि आप लोग एक सामाजिक प्रश्न को हिन्दू-मुसलमानों के विवाद का स्वरूप दे रहे हैं। सूद के प्रश्न को भी यह रंग देने की चेष्टा की गयी थी। ऐसे राष्ट्रीय विषयों को विवाद ग्रस्त बनाने से कुछ हिन्दू साहूकारों का भला हो जाता है, किन्तु इससे राष्ट्रीयता को जो चोट लगती है उसका अनुमान करना कठिन है[१]।

साम्प्रदायिक हथकण्डों के सिवाय किसानों के शोषण, धन और धर्म के अपावन गठ बन्धन के चित्र चेतू और जमींदार महन्त रामदास की कथा-प्रसंग से प्रस्तुत किये गये हैं। विदेशी शोषण का एक उदाहरण शान्ता मुगलसराय स्टेशन पर भारतीय और अंग्रेज यात्री के बीच की वैषम्यता में देखती है[२]।

हिन्दी उपन्यास में 'सेवासदन' में राष्ट्रभाषा के महत्व और उसके स्वरूप पर सर्वप्रथम उल्लेख करने का श्रेय प्रेमचन्द को है। यह बात अलग है कि यह प्रश्न भी गांधी जी के राजनीतिक विचार की ही प्रतिध्वनि है। गांधी जी ने १९०८ में ही राष्ट्र भाषा के प्रश्न को उठाया था और १९१८ में उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा था 'जब तक हम हिन्दी भाषा को राष्ट्रीय और अपनी-अपनी प्रान्तीय भाषाओं को उनका स्थान नहीं देते, तब तक स्वराज्य की सब बातें निरर्थक हैं[३]।

प्रेमचन्द भी गांधी जी से इस प्रश्न पर पूर्णतया सहमत थे और 'सेवासदन' में कई स्थलों पर गांधी जी के राष्ट्रभाषा सम्बन्धी विचारों को स्वीकृति दी गई है। उन्होंने

---

१. प्रेमचन्द : सेवासदन, पृष्ठ १८०
२ प्रेमचन्द : सेवासदन, पृष्ठ ८
३. गांधी जी : राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी, पृष्ठ १५

अपने पात्र से कहलवाया है—'यह हमारे साथ कितना बड़ा अन्याय है, हम कैसे ही चरित्रवान् हो, कितने ही बुद्धिमान हो, कितने ही विचारशील हो, पर अंग्रेजी भाषा का ज्ञान न होने से उनका कुछ मूल्य नहीं, हमसे अधम और कौन होगा जो इस अन्याय को चुपचाप सहते हैं[1]।' कुमार अनिरुद्ध सिंह भी नहीं समझ पाते कि 'अंग्रेजी भाषा बोलने और लिखने में लोग क्यों अपना गौरव समझते हैं[2]।' प्रेमचन्द के उपन्यास-साहित्य का अनुशीलन करने पर हम इस तथ्य पर पहुँचते हैं कि जिस प्रकार सामाजिक सुधारवादी आन्दोलन से भारतीय राजनीति का विकास हुआ उसी के अनुकूल सामाजिक सुधारवादी उपन्यास साहित्य से ही प्रेमचन्द की राजनीतिक विचार धारा। उनके प्रारम्भिक सामाजिक उपन्यासों की ही नींव पर उनके राजनीतिक उपन्यासों की रचना हुई।

प्रेमचन्द के राजनीतिक उपन्यास

प्रेमाश्रम

'प्रेमाश्रम' हिन्दी का प्रथम राजनीतिक उपन्यास है जिसमें तत्कालीन जमींदारी प्रथा के विरुद्ध लखनपुर के कृषकों के संघर्ष की उज्जवल गाथा किसान जीवन के विशाल फलक पर अंकित की गई है। इसमें शोषक और शोषित वर्गों की समसामयिक राजनीतिक स्थिति को सामाजिक परिपार्श्व में प्रस्तुत करने के कारण वर्ग संघर्ष का सजीव चित्रण है। वर्ग संघर्ष से तात्पर्य भारतीयों का विदेशी शासन एवं शोषण और देश की गरीबी आदि है।

गाँधी जी के राजनीतिक विचारों से प्रभावित हो शासकीय सेवा से त्यागपत्र देकर लेखन कार्य स्वीकार करने के कारण प्रेमचन्द जी के लिए यह स्वाभाविक ही था कि अपने प्रथम राजनीतिक उपन्यास में वे गाँधीवाद के मूल सिद्धान्तों को स्थान देते। *'प्रेमाश्रम' में किसानों की गाथा भी सोद्देश्य प्रस्तुत की गई है। उस समय की राजनीतिक* स्थिति पर यदि ध्यान दिया जाये तो यह तथ्य स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि महात्मा गाँधी के नेतृत्व में कांग्रेस का विस्तार मध्यवर्गीय समाज से विस्तरित होकर निम्नवर्गीय समाज को समेटने के प्रयास में था। कहा जाता है कि कांग्रेस ने १९०५-१९१९ के युग में भारतीय किसानों की कठिनाइयों की ओर उतना ध्यान नहीं दिया था जितना उद्योग-पतियों की आवश्यकता की ओर[3]। कांग्रेस का नेतृत्व हाथों में लेते ही

१. प्रेमचन्द : सेवासदन, पृष्ठ २८८
२. प्रेमचन्द : सेवासदन, पृष्ठ २५२
३. एन० जी० रंगा : सोशल बैक ग्राउन्ड आव इन्डियन नेशनलिज्म, पृष्ठ १६५

गाँधी जी ने इस दुर्लक्ष्य को अनुभव कर घोषणा की थी कि गाँव ही भारत के प्राण हैं और उनकी उपेक्षा करके स्वाधीनता के लक्ष्य को प्राप्त करना असंभव है। गाँवों की जनता से निकट का सम्पर्क रहने से प्रेमचन्द किसानों की हीनावस्था से भली भाँति परिचित थे और जानते थे कि बिना उनके सक्रिय सहयोग के कोई भी आन्दोलन सफलीभूत नहीं हो सकता। गाँधी जी के इस नये दृष्टिकोण को उपन्यास के माध्यम से स्थापित करने का इससे अच्छा सुयोग उन्हें भला और कब मिल सकता था। स्वयं प्रेमचन्द जी ने अपनी पत्नी से इस सत्य को स्वीकार किया है कि भारतीय किसानों और मजदूरों के सुख-चैन के लिए गाँधी जी जो राजनीतिक प्रयास कर रहे हैं, 'प्रेमाश्रम' उन्हीं प्रयत्नों का साहित्यिक रूपान्तर है[1]। भारतीय किसानों में राजनीतिक चेतना का विकास सन् १९१८ से प्रारम्भ हो गया था। उत्तर प्रदेश भारत का प्रमुख कृषि प्रधान क्षेत्र और राजनीतिक चेतना का केन्द्र था। यहीं सन् १९१८ ई० प्रयाग में बाबा रामचन्द्र के नेतृत्व में किसान सभा का गठन हुआ था। किसान सभा का लक्ष्य किसानों के प्रति होने वाले अन्यायों का शान्तिपूर्ण ढंग से प्रतिकार करना था। सभा के सदस्यों को प्रतिज्ञा लेनी पड़ती थी कि वे सदा शान्त रहेंगे, गैर कानूनी टैक्स नहीं देंगे, बेगार नहीं करेंगे, भूसा, रसद आदि बाजार भाव पर ही देंगे, नजराना नहीं देंगे इत्यादि। प्रयाग के अतिरिक्त परतापगढ़, रायबरेली, जौनपुर आदि जिलों में किसान सभा का कार्यक्षेत्र फैल गया था। इन जिलों की गतिविधियों से प्रेमचन्द भिज्ञ थे और "प्रेमाश्रम" में वर्णित किसान-संघर्ष की गाथा किसान सभा के आन्दोलनों की प्रतिच्छाया है। गाँधी जी या कांग्रेस ने किसानों की समस्याओं को सन् १९३० में उठाया था। आचार्य नरेन्द्रदेव के कथनानुसार "कांग्रेस के मंच से सबसे प्रथम हमें सन् १९३० में जनता से संबंध रखने वाले आर्थिक प्रश्नों की चर्चा सुनायी देती है और यह चर्चा उठी महात्मा जी द्वारा लार्ड इर्विन के सम्मुख रखी गई माँगों के रूप में। यह माँग थी लगान को कम से ५० फीसदी कम कर देने की। इस माँग का कारण यही था कि किसानों की आवाज अब कांग्रेस तक आने लगी थी। आर्थिक प्रश्नों की ओर कांग्रेस का ध्यान इस समय से बढ़ने लगता है। कराची कांग्रेस में और उसके बाद लखनऊ कांग्रेस में पं० नेहरू ने जनता से संबंध रखने वाले प्रश्नों को कांग्रेस द्वारा हाथ में लेने की आवश्यकता पर जोर दिया। इसका कारण यह था कि इसके पहले बारडोली (गुजरात) और यू० पी० में किसानों की समस्या राजनीतिक क्षेत्र में आकर हमारी राष्ट्रीय लड़ाई की मुख्य हथियार बन गई थी[2]।"

---

१ शिवरानी देवी : प्रेमचन्द घर में, पृष्ठ ६५

२. आचार्य नरेन्द्र देव : 'राष्ट्रीयता और समाजवाद' पृष्ठ १३८

स्पष्ट है कि प्रेमचन्द द्वारा 'प्रेमाश्रम' में वर्णित किसान संघर्ष तत्कालीन राजनीतिक समस्या थी जिसका समाधान गाँधीवादी दृष्टिकोण से हुआ है। उपन्यास का नायक है प्रेमशंकर जो गाँधीवादी विचारों का वाहक है। वह अंग्रेजों द्वारा निर्मित जमींदार या ताल्लुकेदारी की प्रथा को अनुचित मानता है। डिप्टी ज्वालासिंह से वह स्पष्ट कहता है —"भूमि उसकी है जो उसको जोते। शासक को उसकी उपज में भाग लेने का अधिकार इसलिए है कि वह देश में शांति और रक्षा की व्यवस्था करता है, जिसके बिना खेती हो ही नहीं सकती। किसी तीसरे वर्ग का समाज में कोई स्थान नहीं है[1]।" वह इस तीसरे वर्ग को देशद्रोही मानता है। उसके शब्दों में 'इसे रियासत कहना भूल है। यह निरी दलाली है। नवाबों के जमाने में किसी सूबेदार ने इस इलाके की आमदनी वसूल करने के लिए मेरे दादा को नियुक्त किया था। मेरे पिता पर भी नवाबों की कृपा दृष्टि बनी रही। इसके बाद अंग्रेजों का जमाना आया और यह अधिकार पिता जी के हाथ से निकल गया। लेकिन राज विद्रोह के समय पिता जी ने तन मन से अंग्रेजों की सहायता की। शांति स्थापित होने पर हमें वही पुराना अधिकार फिर मिल गया। यही इस रियासत की हकीकत है[2]।

यह है जमींदारी प्रथा का वह राजनीतिक कुत्सित रूप जो अंग्रेजों ने साम्राज्य की सुरक्षा हेतु निर्मित किया था। प्रेमशंकर और मायाशंकर दोनों इस प्रथा के विरुद्ध होने पर गाँधीवादी होने के कारण जमींदारों या ताल्लुकेदारों का विरोध नहीं करते। मायाशंकर के शब्दों में—"भूमि या तो ईश्वर की है जिसने इसकी सृष्टि की या किसान की जो ईश्वर के इच्छा के अनुसार इसका उपयोग करता है। राजा देश की रक्षा करता है इसलिए उसे किसानों से कर लेने का अधिकार है, चाहे प्रत्यक्ष रूप में ले या कोई इससे कम आपत्तिजनक व्यवस्था करे। अगर किसी अन्य वर्ग या श्रेणी को मीरास, मिल्कियत, जायदाद अधिकार के नाम पर किसानों को अपना भोग्य पदार्थ बनाने की स्वच्छंदता दी जाती है तो इस प्रथा को वर्तमान समाज व्यवस्था का कलंक चिन्ह समझना चाहिए[3]। यहाँ यह स्मरणीय है कि नागपुर कांग्रेस (१९२०) में पारित प्रस्ताव में भी कांग्रेस ने सब देशी नरेशों से भी प्रार्थना की कि वे अपनी अपनी रियासतों में पूर्ण उत्तरदायी शासन स्थापित करने के लिए शीघ्र से शीघ्र प्रयत्न करें[4]। स्पष्ट है कि कांग्रेस भी राजा, जमींदारों या ताल्लुकेदारों को दोषी नहीं मानकर प्रथा को ही तत्कालीन अव्यवस्था का मूल कारण मानती थी। इसका मूल राजनीतिक

---

१ प्रेमचन्द 'प्रेमाश्रम' पृष्ठ १४२

२ प्रेमचन्द 'प्रेमाश्रम' पृष्ठ २६५

३ प्रेमचन्द 'प्रेमाश्रम' पृष्ठ ३८२

४. डा० बी० पट्टाभि सीतारामय्या : 'स० कांग्रेस का इतिहास' पृष्ठ ११३

कारण यह था कि कांग्रेस अंग्रेजों के साथ-साथ देशी नरेशों या जमींदारों का विरोध कर उनको अपने विरुद्ध न करना चाहती थी क्योंकि इससे आन्दोलन क्षीण पड़ सकता था। कांग्रेस को जिन विषम राजनीतिक स्थितियों में आन्दोलन करना था उसके लायक उसका संगठन मजबूत न था और इसलिए वह बहुसंख्यक जमींदारों का विरोध कर विपत्ति मोल न लेना चाहती थी जमींदारी प्रथा का विरोध उस दोहरी धार वाली तलवार के समान था जो अंग्रेजी सत्ता और जमींदारी प्रथा पर आघात करती थी। प्रेमशंकर मानना है कि दोष जमींदारों, ताल्लुकेदारों और रईसों का नहीं वरन् प्रथा का है जिनके कारण समाज का बल, बुद्धि और विद्या में श्रेष्ठ तथा हृदय और मस्तिष्क के गुणों से अलंकृत यह अंग आलस्य, विलास और अविचार के बंधनों में जकड़ा हुआ है[१]। इस उरजीवी वर्ग की निस्सारता व्यक्त कर उनका आवरणयुक्त विरोध कांग्रेस की सामयिक राजनीति थी और 'प्रेमाश्रम' के उपन्यासकार ने उसका यथातथ्य अनुसरण अ ने काल्पनिक कथानक में कर राजनीतिक चेतना का प्रतिपादन किया है।

इसका एक मात्र उपाय था हृदय परिवर्तन द्वारा वह अहिंसात्मक सुधारवादी मार्ग, जिससे जमींदारों का सहयोग प्राप्त करते हुए अंग्रेजी सत्ता से जूझा जा सकता था। कांग्रेस अंग्रेजों और उनके द्वारा स्थापित जमींदारी के चक्रव्यूह में फँस कर अपनी शक्ति क्षीण नहीं करना चाहती थी। प्रेमचन्द तत्कालीन राजनीति के इस पक्ष से परिचित थे और इसीलिए उन्होंने जहाँ किसानों का श्रम के साधिकार उपभोग करने के लिए कटिबद्ध दिखाया है वहीं उपन्यास के नायक प्रेमशंकर के त्याग और निस्वार्थ सेवा से पराभूत मायाशंकर को जमींदारी की माया से निकाल कर सम्पूर्ण इलाका किसानों के बीच वितरित करते हुए बताया है। हृदय परिवर्तन के कारण मायाशंकर आदर्शवादी बन जाते हैं। वे कहते हैं—'मुझे किसानों की गर्दन पर अपना जुआ रखने का कोई अधिकार नहीं। मैं आप सब सज्जनों के सम्मुख उन अधिकारों और स्वत्वों का त्याग करता हूँ जो प्रथा, नियम और समाज व्यवस्था ने मुझे दिये हैं। मैं अपनी प्रजा को अपने अधिकारों के बंधन से मुक्त करता हूँ। वह न मेरे असामी हैं, न मैं उनका ताल्लुकेदार हूँ। वह सब सज्जन मेरे मित्र हैं, मेरे भाई हैं, आज से वह अपनी जोत के स्वयं जमींदार हैं। अब उन्हें मेरे कारिन्दों के अन्याय और मेरी स्वार्थ-भक्ति की यन्त्रणाएं न सहनी पड़ेंगी। वह इजाफे, एखराज, बेगार की विडम्बनाओं से निवृत हो गये।[२]'

इस प्रकार प्रेमचन्द ने किसानों की समस्याओं को प्रस्तुत करते समय शासन

---

१. प्रेमचन्द : 'प्रेमाश्रम', पृष्ठ १४२
२ प्रेमचन्द : 'प्रेमाश्रम,' पृष्ठ ३८३

की शोषक वृत्ति और निर्मम कृत्यों का चित्रण अवश्य किया है किन्तु उसका समाधान गाँधीवादी है। सामन्तवादी शोषक वर्ग के हृदय-परिवर्तन की यह संभाव्यता आकस्मिक रूप से संदिग्ध ही मानी जा सकती है बिना किसी प्रकार के सम-सामायिक राजनीतिक विचारो की प्रतिच्छाया के प्रेमचन्द ने गाँधीय राजनीतिक तरीको से समाज के घृणित स्वरूप को बदलने का स्वप्न सजोया है। 'रामराज्य' की स्थापना के लिए प्रेमशंकर द्वारा स्वेच्छा से अपने स्वत्वो का परित्याग कर अहिंसक क्रान्ति को प्रोत्साहित किया गया है। प्रेमशंकर के इस अनूठे उदाहरण से प्रभावित हो सुक्खु चौधरी भी चालीस बीघा जमीन गाँव के भूमिहीनो को बाँट देता है।[१] । साहूकार भी इस सकामक वृत्ति से बच नही पाते। बिसेसर साह जो आने रुपया ब्याज लेते थे जब रुपये सैंकड़ा का ही सूद लेते हैं। इस सामाजिक क्रान्ति के कारण गाँव मे 'पहले जहाँ परस्पर द्वेष, ईर्ष्या, फूट, अहंकार आदि का बोलबाला था वहाँ अब सद्भाव, सहयोग और आत्मनिर्भरताजन्य सुख, शांति तथा आत्मोल्लास' की स्थिति आ जाती है[२]। और बलराज इसे ही रामराज्य की संज्ञा देता है।[३]

उपन्यास लेखक ने पात्रो का हृदय परिवर्तन गाँधीय सिद्धान्त के अनुसार कराया है और जो इसमे असमर्थ रहे उन्होंने आत्महत्या का पथ ग्रहण किया जैसे ज्ञानशंकर ने।

'प्रेमाश्रम' के सम्बन्ध मे यह कथन उचित है कि—इसमें जहाँ तक यथार्थ का चित्रण है, उसके सत्य से क्या किसी को इन्कार होगा। लेकिन आदर्श के सम्बन्ध मे कहा जा सकता है कि यह भावुकता और स्वप्न की प्रेरणावश किया गया है। इस सम्बन्ध मे स्पष्टीकरण दिया जा सकता है कि प्रेमचन्द साहित्य नदी के दो तटो के समान है जिसके इस ओर यथार्थ है, उस ओर आदर्श। इस छोर पर खड़े प्रेमचन्द उस छोर का स्वप्न सजाते हैं और समाज को उस तक पहुँचने के लिए प्रेरित करते हैं।[४]' और उस छोर तक पहुँचाने वाली नौका है गाँधीवाद।

प्रेमचन्द की कल्पना का समाज 'विद्वज्जनो की एक छोटी सी संगत थी, विद्वानो के पक्षपात और अहंकार से मुक्त। वास्तव मे वह सारल्य संतोष और सुविचार की तपोभूमि थी। यहाँ न ईर्ष्या का संताप था, न लोभ का उन्माद, न तृष्णा का प्रकोप। यहाँ धन की न पूजा होती थी और न दीनता पैरो तले कुचली जाती थी। यहाँ न एक गद्दी लगा कर बैठता था और न दूसरा अपराधियो की भाँति उसके सामने हाथ बाँध

१ प्रेमचन्द : 'प्रेमाश्रम' पृष्ठ ३८८
२ प्रेमचन्द : 'प्रेमाश्रम' पृष्ठ ३८९
३ प्रेमचन्द : 'प्रेमाश्रम' पृष्ठ ३८९
४ राजेश्वर गुरु 'प्रेमचन्द : एक अध्ययन' पृष्ठ १६४

कर खड़ा होता था। वहाँ स्वामी की घुड़कियाँ, न थी न सेवक की दीन ठकुर सोहतिया। यहाँ सब एक दूसरे के सेवक, एक दूसरे के मित्र और हितैषी थे[1]।

हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य की समस्या

'प्रेमाश्रम' में हिन्दू मुस्लिम एकता पर जोर दिया गया है और बताया गया है कि संघर्ष का कोई आर्थिक, सांस्कृतिक अथवा धार्मिक पहलू न होकर आपसी विद्वेष के पीछे साम्राज्यवादी षडयन्त्र ही प्रमुख हैं। गांधी जी के नेतृत्व में कांग्रेस हिन्दू मुस्लिम ऐक्य के लिए प्रयत्नशील थी और परिणाम स्वरूप १९१६ की लखनऊ कांग्रेस में साम्प्रदायिक एकता के लिए कांग्रेस-लीग समझौता स्वीकृत हो चुका था। सन् १९२१ में कांग्रेस के अध्यक्ष पद पर निर्वाचित हकीम अजमल खाँ हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रतिमूर्ति थे। स्वयंसेवकों को भी जो सात प्रतिज्ञाएँ लेनी पड़तीं थी उनमें एक थी—'मुझे साम्प्रदायिक एकता पर विश्वास है और उसकी उन्नति के लिए मैं सदैव प्रयत्नशील रहूँगा।' हिन्दू मुस्लिम ऐक्य की समस्या अंग्रेजों की राजनीतिक चाल थी और इसका उद्देश्य था दोनों सम्प्रदायों को आपस में लड़ा कर कमजोर करना जिससे साम्राज्यवादी नींव सुदृढ़ हो सके। यह निर्विवाद है कि 'हिन्दू-मुस्लिम समस्या का आधार धार्मिक नहीं है, वरन् उसका विशिष्ट राजनीतिक पहलू है जिसने एकता के किसी भी प्रयत्न को कारगर सिद्ध नहीं होने दिया। ऊपरी तौर पर उसका रूप धार्मिक दिखाई देता है, लेकिन वास्तव में धर्म का तो, राजनीतिक महत्वाकांक्षा को पूरा करने के लिए मात्र 'हथियार' के रूप में नाम लिया गया।

प्रेमचन्द इस तथ्य से भलीभाँति परिचित थे। 'सेवासदन' में इमामबाड़े का वली तेग अली से उन्होंने कहलवाया है—'इस वक्त, उर्दू-हिन्दी का झगड़ा, गोरक्षी का मसला, जुदागाना इन्तखाब सूद का मुमानिअत कानून इन सबों ने मजहबी तास्सुब के भड़काने में मदद दी आ रही है[2]। इसका परिणाम हुआ कि 'पोलिटिकल मफाद का जोर है, हक और इन्साफ का नाम न लीजिए। अगर आप मुदर्रिस हैं तो हिन्दू लड़कों को फेल कीजिए। तहसीलदार हैं तो हिन्दुओं पर टैक्स लगाइये, मजिस्ट्रेट हैं तो हिन्दुओं को सजायें दीजिए अगर आपको हुस्न और इश्क का शौक है तो किसी हिन्दू नाजनीन को उड़ाइये, तब आप कौम के खादिम, कौम के मुहसिन, कौमी किश्ती के नाखुदा सब कुछ है[3]।'

---

१. प्रेमचन्द : 'प्रेमाश्रम', पृष्ठ ६१४
२. प्रेमचन्द : 'सेवासदन,' पृष्ठ २४६
३. प्रेमचन्द : 'सेवासदन,' पृष्ठ १७४

'प्रेमाश्रम' में भी हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष के इन्हीं मूल कारणों पर गंभीरता से विचार किया गया है।

प्रेमाश्रम' में भी वर्णित अन्य राजनीतिक समस्यायें

भूमि समस्या

'प्रेमाश्रम' की प्रमुख समस्या भूमि समस्या है जिसकी नींव में समाज व्यवस्था और आर्थिक पहलू हैं। तत्कालीन राजनीतिक चेतना की पृष्ठभूमि में इस भूमि-समस्या को चित्रित किया गया है।

भूमि समस्या के प्रश्न को लेकर जमींदार और किसान के विविध रूप उपन्यास में उभरे हैं। प्रेमचन्द ने जमींदारों के तीन स्तरों का उद्घाटन किया है। एक हैं ज्ञानेश्वर जो शोषण का प्रतीक है दूसरे हैं राय कमलानंद—जो समझदार और विचार में किसानों के समर्थक हैं। तीसरा प्रकार व्यक्त हुआ है गायत्री के चरित्र-चित्रण में।

उसी का विश्लेषण करते हुए राजेश्वर गुरु की मान्यता है कि 'प्रेमाश्रम' में जमींदारों की तीन पीढ़ियाँ मिलती हैं। एक है लाला जटाशंकर की, जो समाप्त हो चुकी है, दूसरी है लाला ज्ञानशंकर की, जिसके कारनामे सारे प्रेमाश्रम में बिखरे पड़े हैं, तीसरी है मायाशंकर की, जो साम्यवाद को स्वेच्छा से स्वीकार करता है। क्या इन तीनों पीढ़ियों के द्वारा भारतीय समाज के तीन युगों का चित्रण नहीं किया गया है? भारतीय समाज में सामन्तवाद, पूँजीवाद (या साम्यवाद) का ऐतिहासिक सजीव विवेचन 'प्रेमाश्रम' में मिलता है।[1] वे यह भी मानते हैं कि 'प्रेमाश्रम' सामन्ती व्यवस्था के अन्त, पूँजी ाद और बुद्धिवाद के दुष्परिणाम और किसानों के दुर्दम साहस के साथ जाग उठने की कहानी है। इस तरह प्रेमाश्रम की मूल कथा किसान-जमींदार संघर्ष की कल्पना लेकर चलती है।[2]

वस्तुतः गुरु जी का मूल्यांकन संतुलित न होकर पूर्वाग्रह पर ही अधिक आधारित है विशेषकर साम्यवादी दृष्टि से। यथार्थ में डाक्टर शा० की यह दृष्टि उनके अपने युग की है 'प्रेमाश्रम' के समय की नहीं। इस दृष्टि से प्रसिद्ध साम्यवादी आलोचक रामविलास शर्मा का मत विशेष रूप से द्रष्टव्य है—'प्रेमाश्रम में वे उन किसानों की जिन्दगी की तस्वीर खींचना चाहते थे जिन्हें साहित्य के लक्षण ग्रन्थों में जगह न मिलती थी। वे उस अत्याचार और अन्याय की कहानी सुनाना चाहते थे जिसे उपक्रम, उपसंहार, प्रयोजन और उत्पत्ति की चर्चा करने वाले सज्जन प्रायः भूल जाया करते थे।[3]

१ राजेश्वर गुरु 'प्रेमचन्द एक अध्ययन' पृष्ठ १५३
२ राजेश्वर गुरु 'प्रेमचन्द - एक अध्ययन' पृष्ठ १५५
३ डॉ० रामविलास शर्मा : प्रेमचन्द और उनका युग' पृष्ठ ४२-४३

उपन्यास में एक ओर ज्ञानशंकर, प्रेमशंकर, गायत्री, कमलानन्द आदि जमींदार वर्ग के पात्र हैं, उनकी समस्याएँ हैं, उनकी कथा है, दूसरी ओर गौस खां, मनोहर, कादिर बलराज जैसे किसान हैं और उनकी समस्याएँ हैं और दोनों की समस्याएँ एक दूसरे की आश्रित है। किसान के शोषण का चित्रण करना था अतः जमींदारों का चित्रण भी आवश्यक था। समस्याओं का समाधान गाँधीय सिद्धान्तों से करना था अतः अन्त में मायाशंकर और किसान दोनों वर्गों का सहकारिता की खेती में एक वर्गहीन समाज में विलय होता है। स्वयं प्रगतिवादी आलोचक डॉ० रामविलास शर्मा इस तथ्य को स्वीकार करते हैं। उनका कथन है 'प्रेमाश्रम में खूब विभिन्नता है, उसका ध्येय किसानों को सरकारी और जमींदारी शासन के बीच पिसता हुआ दिखाना है। पूरा उपन्यास पढ़ने पर गाँवों का समाज, उसकी समस्याएँ, शोषणयन्त्र की विचित्र गतिविधि, सभी से हमारा परिचय हो जाता है[1]।' राय साहब कमलानन्द, जमींदार होते हुए भी उसकी असलियत पर आवरण डालने की चेष्टा नहीं करते। उनके शब्दों में—'इसे रियासत कहना भूल है, यह निरी दलाली है। इस भूमि पर मेरा क्या अधिकार है। मैंने इसे बाहुबल से नहीं लिया राज विद्रोह के समय पिताजी ने तन-मन से अंग्रेजों की सहायता की। शान्ति स्थापित होने पर हमें अधिकार मिल गया। यही इस रियासत की हकीकत है। हम केवल लगान वसूल करने के लिए रखे गये हैं। इसी दलाली के लिए हम एक दूसरे के खून से अपने हाथ रंगते हैं। इसी दीन हत्या को हम रोब कहते हैं। इसी कारिन्दगिरी पर हम फूले नहीं समाते...तुम कहोगे, यह सब कोरी बकवाद है। रियासत इतनी बुरी चीज है तो उसे छोड़ क्यों नहीं देते। हाँ, यही तो रोना है कि इस रियासत ने हमें विलासी, आलसी और अपाहिज बना दिया। हम अब किसी काम के नहीं रहे। प्रेमाश्रम में भूमि समस्या इतनी महत्वपूर्ण है कि जहाँ कहीं भी अन्य समस्याओं का उल्लेख है वह सब भूमि व्यवस्था के उद्घाटन अथवा उसके भयंकर रूप को सामने रखने में है।

राजसभा के चुनाव

'प्रेमाश्रम' में राजसभा के चुनावों का संकेत भी है। प्रेमाश्रम समाज के सभी उम्मीदवार राजसभा के लिए निर्वाचित होते हैं। जहाँ राजसभा के अन्य व्यक्ति राजसभा में जाकर सो गये, वहाँ प्रेमाश्रम समाज के लोगों में वह शिथिलता न थी। वहाँ लोग पहले से ही सेवाधर्म के अनुगामी थे, अब उन्हें अपने कार्यक्षेत्र को विस्तृत करने का मौका हाथ लगा[2]। कांग्रेस स्वराजदल की ही यह अभिव्यक्ति है।

१. सम्पादक—डॉ० इन्द्रनाथ मदान : 'प्रेमचन्द चिन्तन और कला,' पृष्ठ १९२
२ प्रेमचन्द : 'प्रेमाश्रम' पृष्ठ ६२६

साम्यवाद के विस्तार का सकेत

'प्रेमाश्रम' मे जमींदारो की तीन पीढियो का चित्रण है। एक है जटाशंकर की दूसरी ज्ञानशकर की और तीसरी मायाशकर की। जटाशकर का युग समाप्त हो चुका है और ज्ञानशंकर का उत्कर्ष पर। तीसरी पीढ़ी है मायाशंकर की जो भविष्य की सभावना है मायाशकर साम्यवाद की ओर सन्मुख है यद्यपि साम्यवाद की विवेचना लेखक का ध्येय नही है।

एक अन्य स्थल पर भी साम्यवाद की झलक दिखलाने की चेष्टा है—'तुम लोग तो मेरी हसी उडाते हो, मानो कास्तकार कुछ होना ही नही, वह जमींदार की बेगार ही भरने के लिए बनाया गया है। लेकिन मेरे पास जो पत्र आया है, उसमे लिखा है कि रूस मे कास्तकारो ही का राज है, वह जो चाहते हैं करते हैं। वहाँ हाल की बात है, काश्तकारो ने राजा को गद्दी से उतार दिया है और अब किसानो और मजदूरो की पचायत राज करती है[1]।'

समाजवाद या साम्यवाद सबधी दो चार उदरण अवश्य ढूंढे जा सकते हैं किन्तु उनके आधार पर राजेश्वर गुरु का यह कहना उचित नही है कि 'भारतीय समाज मे सामन्तवाद, पूँजीवाद और समाजवाद (या साम्यवाद) का ऐतिहासिक सजीव विवेचन 'प्रेमाश्रम मे मिलता है[2]।

'रंगभूमि' और उसकी राजनीतिक पृष्ठभूमि

'रगभूमि' प्रेमचन्द का अत्यन्त महत्वपूर्ण राजनीतिक उपन्यास है और क्षेत्र 'प्रेमाश्रम' से कही व्यापक है। इसकी रचना जिन दिनो हुई गाँधी जी का सत्याग्रह आन्दोलन पूर्ण उत्कर्ष पर था। प्रथम सत्याग्रह आन्दोलन स्थगित हो चुका था और दूसरे सविनय अवज्ञा आन्दोलन के लिए राष्ट्र तैयार हो रहा था। 'प्रेमाश्रम' का गाँधीय उपन्यासकार इस सत्याग्रह आन्दोलन के चित्रण के लिए अपने को मानसिक-रूप से तैयार कर चुका था। गाँधीवादी राजनीतिक विचारधारा से अनुप्राणित होने के कारण ही 'रगभूमि' को आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने 'गाँधीवादी उपन्यास' कहा है। उनका मूल्याकन है कि रगभूमि गाँधीवादी उपन्यास इसलिए कहा जाता है कि यह गाँधी जी की राजनीतिक चेतना से अनुप्राणित है। रगभूमि प्रेमचन्द जी की उपन्यास कला का एक विकसित सोपान है। गाँधीवाद का प्रभाव साहित्य व जीवन पर जैसा

---

१ प्रेमचन्द . 'प्रेमाश्रम' पृष्ठ ६६

२ राजेश्वर गुरु 'प्रेमचन्द : एक अध्ययन' पृष्ठ ५५३

भी कुछ पढा, वह रंगभूमि मे दिखलाई पडता है[१]। गाँधी जी के सामाजिक, राजनीतिक तथा आदर्श-मूलक विचारो से यह उपन्यास प्रभावित है।

'रंगभूमि' की कथा का केन्द्र-बिन्दु है सूरदास एक अन्धा गरीब भिखारी। सूरदास का परिचय ही क्या ? 'भारतवर्ष मे अन्धे आदमियो के लिए न नाम की जरूरत होती है, न काम की। सूरदास उनका बना बनाया नाम है, और भीख मागना बना बनाया काम।' फिर भला उपन्यास के नायक सूरदास के और अधिक परिचय की क्या आवश्यकता। मानवोय गुणो से युक्त उसका चरित्र समुज्जवल है। स्पष्टवादिता, सत्यप्रेम, न्यायनिष्ठा, परोपकार, विनय, विवेक और उदारता के दुर्लभ गुणो से उसका जीवन विकसित है और इन्ही के कारण वह पांडेपुर का लोकप्रिय व्यक्तित्व बन गया है। सूरदास दस बीघा धरती जमीन का मालिक है जिस पर बनारस के उद्योगपति जान सेवक की दृष्टि पडती है। जान सेवक इस जमीन को प्राप्त कर सिगरेट का कारखाना खोलकर औद्योगिक विकास मे सहायक बनना चाहते है। सारे प्रलोभन के बाद भी सूरदास उस जमीन को बेचने को तैयार नहीं हुआ। वह जानता था कि कारखाने की स्थापना से गाँव की सुख-शांति नष्ट हो जायेगी और जीवन दूषित हो जायेगा। पर सूरदास की एक न चली और नगर-बोर्ड के प्रधान चतारी के राजा महेन्द्र प्रताप ने जबर्दस्ती उसकी जमीन जान सेवक को दिला दी। इस अन्याय का वह अहिंसात्मक ढग से विरोध करता है इसमे उसे सफलता भी मिलती है यद्यपि बाद मे वह जमीन निकल ही गई और कारखाना भी स्थापित हो गया।

कारखाना बन जाने पर कुलियो के आवास व्यवस्था की समस्या उपस्थित होने पर जान सेवक पांडेपुर को मुआवजा देकर खाली करा लेने की स्वीकृति प्राप्त कर लेते हैं। अन्य लोग तो विवश हो घर त्याग कर देते हैं पर सूरदास एक इच हिलने को भी तैयार नही। जनता की पूर्ण महानुभूति उसके साथ है। सशस्त्र पुलिस जब उसकी झोपडी गिराने का प्रयत्न करती है विशाल जनसमूह विरोध व्यक्त करती है। गोली चलती है और अनेक व्यक्ति धाराशायी होते है। पुलिस पर इसका अत्यधिक प्रभाव पडता है और वे गोली चलाने से इकार कर देते है। इस पर गोरखो की फौज बुलाई गई। सूरदास जनता की हिंसात्मक वृत्ति के शमन के लिए भैरों के कन्धे पर बैठ कर आग्रह करता है—'आप लोग वास्तव मे मेरी सहायता करने नही आए हैं। हाकिमो के मन में, पुलिस के मन मे जो दया और धरम का खयाल आता, उसे आप लोगो ने जमा होकर क्रोध बना दिया है। मैं हाकिमो को दिखा देता कि एक दीन है। अन्धा आदमी एक फौज को कैसे पीछे हटा देता है, तोप का मुँह कैसे बन्द कर देता

---

१. आचार्य नंददुलारे वाजपेयी : 'आधुनिक साहित्य', पृष्ठ १६५

है, तलवार की धार कैसे मोड़ देता है। मैं धरम के बल पर लड़ना चाहता था।' इसके आगे वह कुछ न कह सका। मिस्टर क्लार्क ने उसे कुछ बोलते देख यह समझा कि वह जनता को बगावत के लिए उकसा रहा है। और उन्होंने पिस्तौल से उसका निशाना बना दिया। सूरदास भैरो के कंधे से जमीन पर गिर पड़ा।

रंगभूमि की प्रधान समस्या औद्योगिक सभ्यता बनाम कृषि सभ्यता है जिसका उपन्यास में प्रतिनिधित्व करते हैं जान सेवक व सूरदास। डॉ० सुषमा धवन के मत के अनुसार, जिसे हम भी उचित मानते हैं, 'उपन्यास का मूल उद्देश्य पारस्परिक प्रेम एवं सहयोग पर आधारित प्राचीन सामन्ती ग्रामीण व्यवस्था और प्रतिद्वन्द्विता एवं व्यवसायिक वृत्ति पर स्थित नवीन पूंजीवादी सभ्यता के बीच मौलिक संघर्ष को अत्यन्त विस्तृत तथा व्यापक रूप में चित्रित करके औद्योगीकरण का विरोध करना है जो पूंजीवादी संस्कृति व साम्राज्यवादी राजनीति का परिणाम व प्रतीक है[1]।''

भारत में औद्योगीकरण का प्रारम्भ प्रथम महायुद्ध के उपरांत हुआ और 'रंगभूमि' के रचनाकाल तक उसका काफी विस्तार हो गया था। गाँधी जी औद्योगिकरण को शोषण और सामाजिक व नैतिक दुर्गुणों के विस्तार का सहायक मानते थे अतः उसका विरोध करते थे। उनका मत था कि आधुनिक अर्थशास्त्र का एक मात्र आधार भौतिक उन्नति है। धर्मनीति से उसका कोई सम्बन्ध नहीं रह गया है। वह पशुबल का पूजक और आत्मशक्ति का विरोधी है। इस अर्थशास्त्र का अनुगमन करने के कारण ही हमारे जीवन के दो अभिन्न अंगों में—नगर और देहात उद्योग एवं कृषि परस्पर विरोध का आविर्भाव हो गया है[2]। वे मानते थे कि आज हमारे जीवन में जो कृत्रिमता, अधार्मिकता तथा अनैतिकता बढ़ रही है, सामूहिक और केन्द्रीकृत उत्पादन ही उसका मुख्य कारण है। 'प्रेमाश्रम' में प्रेमचन्द जी ने गृह-उद्योगों की सार्थकता प्रतिपादित की थी। वे गाँधी जी के इस कथन से सहमत थे कि औद्योगीकरण से गृह-उद्योग नष्ट होंगे और ग्रामीणों का आर्थिक स्तर गिर जायेगा। इसीलिए उन्होंने अपने एक पात्र से कहलवाया है—"उन्हें घर से निर्वासित करके दुर्व्यसन के जाल में न फंसाए, उनके आत्माभिमान का सर्वनाश न करें और यह उसी दशा में हो सकता है जब घरेलू शिल्प का प्रचार किया जाय और वह अपने गांव में कुल और बिरादरी की तीव्र दृष्टि के सम्मुख अपना अपना काम करते रहें।'

राय साहब घरेलू शिल्प के मार्ग में आये अवरोधों को दूर करने का उपाय भी सुझाते हैं—'हमें विदेशी वस्तुओं पर कर लगाना पड़ेगा। योरोपवाले दूसरे देशों से कच्चा

१. डॉ० सुषमा धवन - 'हिन्दी उपन्यास,' पृष्ठ ३३
२ गांधी विचार दोहन, पृष्ठ ८७-८८

माल ले जाते हैं, जहाज किराया देते हैं, उन्हें मजूरों को कड़ी मजूरी देनी पड़ती है, उस पर हिस्सादारों को नफा भी खूब चाहिए। हमारा घरेलू शिल्प इन समस्त बाधाओं से मुक्त रहेगा और कोई कारण नहीं कि उचित संगठन के साथ वह विदेशी व्यापार पर विजय न पा सके। वास्तव में हमने कभी इस प्रश्न पर ध्यान नहीं दिया। पूजीवाले लोग इस समस्या पर विचार करते हुए डरते हैं। वे जानते हैं कि घरेलू शिल्प हमारे प्रभुत्व का अन्त कर देगा। इसीलिए वे इसका विरोध करते हैं।

प्रेमचन्द जी ने 'रंगभूमि' की भावना गांधी जी से ग्रहण की। 'रंगभूमि' की मूल कथा वस्तु बनारस के व्यवसायी जान सेवक द्वारा सिगरेट के कारखाने के लिए सूरदास की दस बीघा जमीन हथियाने के सफल प्रयत्नों और अन्याय के प्रतिकार में सूरदास के असफल सत्याग्रह को लेकर चली है। सूरदास धर्म, न्याय और सत्य के लिए आदर्श सत्याग्रही के रूप में लड़ता है। वह मानता है कि सत्य को, न्याय को किसी सहायक की आवश्यकता नहीं है[1]। सत्य के प्रति उसकी अगाध निष्ठा है और उसके लिए वह प्राणोत्सर्ग को भी तैयार रहता है। उसका विश्वास है कि 'बदनामी के डर से जो आदमी धरम से मुंह फेर ले, वह आदमी नहीं है'[2]। वह सत्य का अन्वेषक और अहिंसा का पुजारी है। यह कथन उचित ही है—"सूरदास की प्रतिमा भी गांधीवादी आदर्श के सांचे में ढली हुई है। सत्य, अहिंसा और अस्तेय का उसमें ऐसा समावेश हो गया है कि वह आदर्श मूर्त हो जाता है[3]।" गांधीवादी विचारधारा से ओतप्रोत होने के कारण ही इसे 'गांधीवाद के उन्माद की विभोर अवस्था में लिखित उपन्यास'[4] कहा गया है।

अहिंसक क्रान्ति का समर्थन

'रंगभूमि' में उपन्यासकार ने गांधी जी के अहिंसा का समर्थन किया है। 'सूरदास, का अहिंसा पर गहरा विश्वास है। गांधीवाद के इस सिद्धान्त पर भी उसकी आस्था है कि साध्य के समान उसे प्राप्त करने के साधन भी उच्च और श्रेष्ठ होना चाहिए। उसमें महात्मा गांधी के अनासक्तिवाद की स्पष्ट अभिव्यक्ति है। वह जीवन की उपमा खेल से देता है और मानता है कि 'सच्चे खिलाड़ी कभी रोते नहीं, बाजी पर बाजी पर बाजी हारते हैं, चोट पर चोट खाते हैं, धक्के पर धक्के सहते हैं पर मैदान

---

१. प्रेमचन्द—'रंगभूमि,' भाग १, पृष्ठ १६०
२ प्रेमचन्द—'रंगभूमि,' भाग १, पृष्ठ १६०
३ सुषमा धवन—'हिन्दी उपन्यास,' पृष्ठ ३४
४. डॉ० इन्द्रनाथ मदान (संपादक)—'प्रेमचन्द : चिन्तन व कला,' पृष्ठ ४६

पर डटे रहते हैं, उनकी त्योरियों पर बल नहीं पड़ते। खेल में रोना कैसा ? खेल हँसने के लिए, दिल बहलाने के लिए हैं, रोने के लिए नहीं[1]।' मरण शैय्या पर पड़ा हुआ वह कहता है, 'हमारा दम उखड़ जाता है, हाँफने लगते हैं और खिलाड़ियों को मिलाकर नहीं खेलते, आपस में झगड़ते हैं—कोई किसी को नहीं मानता। तुम खेलने में निपुण हो, हम अनाड़ी हैं। बस, इतना ही फरक है[2]।

वस्तुतः सूरदास का यह अंतिम संदेश सन् २१ के असफल असहयोग आन्दोलन से उत्पन्न राष्ट्रीय नैराश्य के प्रत्युत्तर में है जो आन्दोलनकारी जनता में नई आशा का संचार करता है। प्रथम असहयोग आन्दोलन असफल होने पर भी जनता की नैतिक विजय का प्रतीक था क्योंकि अन्याय का प्रतिकार करना ही स्वयं में एक असफलता है। इसी का संकेत देते हुए सूरदास कहता है—"हम हारे, तो क्या, मैदान से भागे तो नहीं, रोए तो नहीं धाधली तो नहीं की। फिर खेलेंगे, जरा दम ले लेने दो, हार-हार कर तुम्हीं से खेलना सीखेंगे और एक न एक दिन हमारी जीत होगी, जरूर होगी[3]।'

इन्हीं सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति सूरदास के गीतों में भी मिलती है। इन गीतों के द्वारा स्वतन्त्रता-संग्राम के सेनानियों को गाँधी दर्शन का बोध कराने का सहेतुक प्रयत्न किया गया है।

सूरदास का गीत है—

> शांति-समर में कभी भूल कर धैर्य नहीं खोना होगा,
> वज्र-प्रहार भले सिर पर हो, नहीं किन्तु रोना होगा।
> अरि से बदला लेने का मन बीज नहीं बोना होगा,
> घर में कान तूल देकर फिर तुझे नहीं सोना होगा।
> देश दाग को रुधिर-वारि से हर्षित हो धोना होगा,
> देश कार्य की सारी गठरी सिर पर रख ढोना होगा।
> आँखें लाल, भवें टेढ़ी कर, क्रोध नहीं करना होगा,
> बलि वेदी पर तुझे हर्ष से बढ़कर कट मरना होगा।
> नश्वर है नर देह, मौत से कभी नहीं डरना होगा,
> सत्य मार्ग को छोड़ स्वार्थ पथ पैर नहीं धरना होगा।

१ प्रेमचन्द—'रंगभूमि,' पृष्ठ १२९
२ प्रेमचन्द—'रंगभूमि,' पृष्ठ ५३१
३ प्रेमचन्द—'रंगभूमि' पृष्ठ ५३१

होगी निश्चित जीत धर्म की, यही भाव भरना होगा,
मातृ-भूमि के लिए जगत में जीना औ मरना होगा[1]।

सूरदास के उपर्युक्त गीत मे गाँधीवाद के मूलभूत सिद्धान्तो का निदर्शन है। सूरदास स्वाधीनता-संग्राम को अहिंसक युद्ध मानता है और इसमें प्रतिपक्षी के प्रति हिंसक प्रवृतियो को त्याज्य बनाता है। उसका दृढ़ विश्वास है कि सत्य का मार्ग ग्रहण करने से धर्म की विजय सुनिश्चित है।

सूरदास का जीवन-संग्राम धर्म और नैतिक आदर्शो पर आधारित है और उसका यही भाग्यातिवाद उसके इस गीत में देखने को मिलता है—

भई, क्यों रन से मुँह मोड़ें ?
वीरों का काम है लड़ना, कुछ नाम जगत में करना,
क्यों निज मरजादा छोड़ें ?
भई, क्यों रन से मुँह मोड़ें ?
क्यों जीत की तुझको इच्छा, क्यों हार की तुझको चिन्ता,
क्यों दुख से नाता जोड़ें ?
भई, क्यों रन से मुँह मोड़ें
तू रंगभूमि में आया, दिखलाने अपनी माया,
क्यों धरम-नीति को तोड़ें ?
भई, क्यों रन से मुँह मोड़ें ?[2]

गाँधी जी के सदृश्य सूरदास भी विजय और पराजय दोनो को समभाव से ग्रहण करने का उपदेश देता है। वह उस नैतिक क्रांति का समर्थक है जिसकी आधार शिला त्याग और आत्मशक्ति है।

प्रेमचन्द ने सम-सामयिक आतंकवाद के विरोध मे अहिंसक क्रांति का चित्रण सोद्देश्य किया है। प्रेमचन्द युग में आतंकवादी गतिविधियां अपने उत्कर्ष पर थीं। गाँधी जी आतंकवादी प्रवृतियो के प्रसार को देश के लिए घातक मानते थे और उनकी दृष्टि में अहिंसक क्रांति ही स्वाधीनता- संग्राम का एकमात्र हल था। वे मनुष्य की सद्वृत्तियों और हृदय-परिवर्तन के सिद्धान्त पर अगाध विश्वास करते थे। प्रेमचन्द जी ने 'रंगभूमि' मे इन सिद्धान्तो को पात्रो के जीवन मे घटित किया है। वीरपाल सिंह तथा विनय के

१. प्रेमचन्द : 'रंगभूमि' भाग १, पृष्ठ ५४
२ प्रेमचन्द : 'रंगभूमि' भाग १, पृष्ठ ३२४

चरित्रों की उद्भावना उपन्यास लेखक ने इसी उद्देश्य से की है। वीरपाल सिंह आतंकवादी है तथा हिंसात्मक कृत्यों को साध्य की प्राप्ति का साधन मानते हैं। इसके विपरीत हैं उनके विरोधी विनय, जो रक्तपात पूर्ण हत्याकाड तथा लूटमार को सर्वथा अनुचित मानते है। प्रेमचन्द का यह दृष्टिकोण भी गाँधी जी की विचारधारा का प्रतिरूप है। कहा गया है कि 'धन-बाहुल्य को दूर करने के लिए वह यथा सभव कानून द्वारा सम्पति जब्त करना या स्वामित्व का अधिकार छीनना नहीं चाहते थे। धनिकों को आर्थिक समता के आदर्श को अपनाने को और सम्पति का ट्रस्टी या सरक्षक की हैसियत से निर्धनों के लाभ के लिए उपयोग करने को तैयार करने के लिए गाँधी जी समझाने बुझाने शिक्षा, अहिंसक असहयोग और दूसरे अहिंसक साधनों के प्रयोग के पक्ष मे थे।[1] उनका विश्वास था कि मनुष्य के देवत्व का आध्यात्मिक साधनों से हृदय परिवर्तन कर सामाजिक व्यवस्था म क्राति की जा सकती है। साराश गाधी जी के सिद्धान्त मार्क्सवाद के प्रतिकूल नहीं थे केवल उनके प्रतिपादन म मौलिक अतर था विनय इसी सिद्धान्त को अपना कर जसवतनगर म अहिंसक क्राति द्वारा आमूल परिवर्तन करता है। इसका परिणाम होना है—"जसवन्तनगर के प्रात म एक बच्चा भी नहीं है, जो उन्हे न पहचानता हो। देहात के लोग उनके इतने भक्त हो गए है कि ज्यो ही वह किसी गाँव मे जा पहुचते है, सारा गाव उनके दर्शनो के लिए एकत्र हो जाता है। उन्होने उन्हें अपनी मदद आप करना सिखाया है। इस प्रात के लोग अब अन्य जतुओ को भगाने के लिए पुलीस के यहाँ नहीं दौड़े जाते, स्वय सगठित होकर उन्हें भगाते है, जरा-जरा से बात पर अदालतों के द्वार नहीं खटखटाने जाते, पचायतो मे समझौता कर लेते है, जहाँ कभी कुए न थे, वहा अब पक्के कुए तैयार हो गए है, सफाई की ओर भी लोग ध्यान देने लगे हैं, दरवाजो पर कूडा-करकट के ढेर नहीं जमा किए जाते। सामूहिक जीवन का फिर पुनरुद्धार होने लगा है।[2] किन्तु यह परिवर्तन आरोपित सा लगता है क्योंकि यह परिवर्तन क्यो और कैसे हुआ इसका कोई चित्र सम्मुख नहीं आता। विनय भी गाँधीवादी पात्र है। वह कुवर भरतसिंह का इकलौता पुत्र है और सेवा भाव से जनसेवक बनने को आतुर है। वह धन-सम्पति को मानव की विषमता का कारण मानता है। उसके उद्गार है—"हम जायदाद के लिए अपनी आत्मिक स्वतत्रता की हत्या क्या करें हम जायदाद के स्वामी बन कर रहेंगे, उसके दास बनकर नहीं। अगर सम्पति से निवृति न प्राप्त कर सके, तो इस तपस्या का प्रयोजन ही क्या?"[3] वह वर्ग-सघर्ष के स्थान पर

१. गोपीनाथ धावन—'सर्वोदय तत्व दर्शन' पृष्ठ २०७
२ प्रेमचन्द—'रगभूमि' पृष्ठ २९३ (भाग—१)
३ प्रेमचन्द—'रगभूमि' ४२८

वर्ग-समन्वय का अनुयायी है। त्याग विनय के जीवन की प्रमुख वृत्ति है और इसकी चरम सीमा है उसका पैतृक सम्पत्ति से त्याग पत्र देना। विनय और सोफिया का प्रेम-आदर्श गांधी जी के आदर्शों के अनुकूल है मन आत्मिक संबंध है जो त्याग, बलिदान और सेवाभाव पर आधारित है।[1]

हृदय परिवर्तन की प्रक्रिया अनेक पात्रों में देखी जा सकती है। 'भैरो के हृदय की मलिनता का सूरदास के चरित्र की शुचिता से प्रक्षालन कर प्रेमचन्द ने गांधीवादी नीति के हृदय परिवर्तन के आदर्श को मूर्तिमान किया है।' भैरो के समान राजा महेंद्र कुमार सिंह और जान सेवक में भी सद्भावना जाग्रत होती है और वे अपने अहं का परित्याग कर सूरदास से क्षमा-याचना करते हैं। इनमें आत्मग्लानि और अनुताप की भावना का आविर्भाव हृदय-परिवर्तन का ही सूचक है। राजा साहब कहते हैं - 'सूरदास, मैं तुमसे अपनी भूलों की क्षमा मांगने आया हूँ। अगर मेरे बस की बात होती तो मैं आज अपने जीवन को तुम्हारे जीवन से बदल लेता।''[2] सामन्तशाही के प्रतीक राजा साहब का हृदय परिवर्तन तो होता ही है, पूंजीवादी प्रतीक जान सेवक भी सूरदास के सम्मुख नत हो जाते हैं। उनका कथन है—''मेरे हाथों तुम्हारा बड़ा अहित हुआ। इसके लिए मुझे क्षमा करना। लोकमत के अनुसार मैं जीता और तुम हारे, पर मैं जीतकर भी दुःखी हूँ, तुम हार कर भी सुखी हो।''[3]

इस प्रकार लेखक ने सामन्तवादी स्वार्थी दृष्टिकोण को सहानुभूति को जनता की की सहानुभूति और प्रेम में आवेष्ठित कर दिया है।

अन्य राजनीतिक घटनाएं

''रंगभूमि' में प्रेमचन्द जी ने अनेक राजनीतिक समस्याओं तथा घटनाओं का आलेखन किया है। पूंजीवाद को जन्म देने वाले यन्त्र परिचालित उद्योगों के गुण दोष, पूंजीवादी-व्यवस्था की शोषण विधि,दासता के दिनों में स्वत्वाविशिष्ट सामन्तवर्ग की मनोवृत्ति एवं कार्यविधि, अंग्रेज शासकों का स्वेच्छाचार, पोलीटिकल एजेन्ट द्वारा नियन्त्रित-निर्देशित देशी राज्यों की क्रूर एवं भ्रष्टाचार पूर्ण शासन-नीति, कौंसिल के भारतीय मेम्बरों की उपहासास्पद तथा व्यर्थ स्थिति, और उठती हुई जनभावना तथा देशानुरक्ति के बड़े ही सजीव चित्र 'रंगभूमि में अंकित हैं। १९२० के असहयोग आन्दोलन तथा शासन की दमनात्मक कार्यों की प्रतिच्छाया भी प्रस्तुत उपन्यास में मिलती है।

---

१ सुषमा धवन—'हिन्दी उपन्यास' पृष्ठ ३५
२. प्रेमचन्द—'रंगभूमि,' पृष्ठ ४१७
३. प्रेमचन्द—'रंगभूमि,' पृष्ठ ४२४

सूरदास को केन्द्र बनाकर जो सत्याग्रह आन्दोलन चला है उसका गाँधीवादी विचारधारा के अनुकूल चित्रण है। सम सामयिक समूह की मनोवृति, भावनाओं के आवेश-प्रेरित उतार-चढाव, नौकरशाही की कार्य-पद्धति का विवरण भी सजीव है।

नारी जागरुकता की दृष्टि से सोफिया, जान्हवी और इन्दु का चित्रण विशिष्टता लिए है। कुँवर भरतसिंह राजा महेन्द्रप्रताप सिंह तथा जसवन्त नगर के महाराज सामन्त वर्ग का प्रतिनिधित्व करते है। इनके व्यग-चरित्र अच्छे बन पडे है।

कहा गया है 'औद्योगिकीकरण का विरोध, धार्मिक स्वतन्त्रता का पोषण, स्वाधीनता-प्राप्ति के लिए वैधानिक उपायो के प्रति अनास्था, सत्य अहिंसा मे विश्वास, आत्मबल को जागरित करने की सत्प्रेरणा त्याग व बलिदान पर आधारित प्रेम का आदर्शस्वरूप गाँधीवादी जीवन-दर्शन के मूल्य तथा सिद्धान्त है जिनकी अभिव्यक्ति उपन्यास का मूल उद्देश्य है,।

प्रेमचन्द अपने युग के सजग कथाकार थे और रगभूमि के व्यापक चित्र फलक मे उन्होने स्वतत्रता पूर्व राष्ट्र की समस्त आर्थिक राजनीतिक और सामाजिक समस्याओ को उरेहा है।

उपन्यास की प्रमुख राजनीतिक समस्याए है—औद्योगिकीकरण की व भारतीय रियासतो की। उपन्यास की आधिकारिक कथा, जिसका नायक है सूरदास औद्योगिकीकरण की समस्या को लेकर विस्तार पाती है। इसके साथ ही है विनय सोफिया की प्रेम कथा जो भारती रियासतो की तत्कालीन राजनीतिक स्थिति पर प्रकाश डालती है। उपन्यास का विस्तार इन्ही समस्याओ को लेकर हुआ है अत ग्रामीण घटनाओ का चित्रण भी राजनीतिक दृष्टिकोण से किया गया है। इसमे सदेह नही कि प्रस्तुत उपन्यास मे गाँधीवादी आदर्शो की प्रतिष्ठा करने का आग्रह प्रबल है पर गाँधीवादी दर्शन की अपूर्णता (रचना काल के समय जब कि गाँधी जी के ही शब्दो मे वे प्रयोग कर रहे थे) से अनेक असगतिया भी। ये असगतिया प्रेमचन्द जी की नहीं तद्युगीन राजनीति की हैं।

कर्मभूमि' और उसका कर्मयोग

'प्रेमाश्रम' और 'रगभूमि' की रचना के उपरात प्रेमचन्द जी 'कर्मभूमि' मे पुन सशक्त राजनीतिक उपन्यासकार के रूप म सामने आए। यह कहा गया है कि "प्रेमचन्द की उपन्यास-कला 'प्रेमाश्रम,' 'रगभूमि' तथा कर्मभूमि' की त्रिवेणी मे गाँधीवादी जीवन दर्शन से पूर्णतया प्रभावित है[1]।" 'कर्मभूमि' को मूल समस्या स्वाधीनता की समस्या

१. सुषमा धवन —'हिन्दी उपन्यास,' पृष्ठ ३९

है। अछूतो और किसानों की समस्याए उसी राजनीतिक समस्या का अग बन कर चित्रित हुई हैं। 'कर्मभूमि' की पृष्ठभूमि मे सविनय अवज्ञा-आन्दोलन और उत्तरप्रदेश के किसानो के लगानबदी-आन्दोलन की गहरी छाप देखी जा सकती है। रामदीन गुप्त के शब्दो मे 'यही राष्ट्रीय आदोलन प्रस्तुत उपन्यास का प्रेरणा स्रोत, है, आधार है। 'कर्मभूमि' मे भारत के इस स्वाधीनता सग्राम और तज्जन्य जन-जागृति के व्यापक प्रसार का अकन किया है। इस आदोलन मे हिन्दू और मुसलमान, नागरिक और किसान, विद्यार्थी और प्रोफेसर, अछूत और सवर्ण, युवक और वृद्ध, माताएं और बहिनें, दूकानदार और मजदूर—सभी सक्रिय रूप से भाग लेते हैं। सच्चे अर्थों मे जिस विशाल राष्ट्रीय स्तर पर यह आन्दोलन लड़ा गया था, 'कर्मभूमि' उसकी व्यापकता और गहराई का वास्तविक चित्र प्रस्तुत करता है[1]।' इसी व्यापकता के कारण उपन्यास में अछूत-समस्या राजनीतिक जागरण, नौकरशाही की दमनात्मक कार्यविधि, आर्थिक शोषण, किसानो की समस्या आदि प्रश्नो को राजनीतिक परिपार्श्व मे अकित किया गया है। इन प्रश्नो का समाधान समझौतावादी ढग से किया गया है जो मात्र गाँधीवादी तारीका है। एक आलोचक का मत है—"कर्मभूमि मे एक प्रमुख पात्र के बलिदान के बाद दूई एक ओर जनता की जीत को तुच्छ करते हुए, जनता की आवाज को नजर अदाज करके दूसरी ओर वे शासक और शोषित मे मेल करा देते हैं। वे समस्या के सफल अन्त को 'कमेटीवाद' मे बदल कर जनता के सारे बलिदान और त्याग को धूल मे मिला देते हैं।" वस्तुत: प्रेमचन्द जी का यह समझौतावाद गांधी जी की देन है जो प्रेमचन्द के सम्मुख गांधी-इरविन पैक्ट के रूप मे आई थी।

'कर्मभूमि' मे दो कथाए सग्रथित हैं, एक ग्राम की और दूसरी नगर की। दोनो एक दूसरे की पूरक हैं और उनको जोड़ने वाली कड़ी है अमरकान्त। गांव और नगर दोनो की कथावस्तु राजनीतिक है। गाँव मे अमरकान्त लगान बन्दी का आन्दोलन चलाता है और नगर मे अछूतों का। 'कर्मभूमि' के रचनाकाल की प्रमुख समस्या अछूतों की थी और प्रस्तुत उपन्यास मे उसका वृहत चित्र अंकित है। इसीलिए अमरकान्त की गाथा अछूत आन्दोलन की प्रेरणात्मक गाथा बन जाती है। प्रेमचन्द ही प्रथम उपन्यासकार हैं जिन्होंने व्यापक स्तर पर अछूतोद्धार को वाणी दी।

आलोच्य उपन्यास मे अछूतोद्धार-आन्दोलन शहर और ग्राम दोनो धरातलो पर उठाया गया है। अछूत समस्या के विविध पहलू हैं और उनमें से एक धार्मिक है। इसका समाधान हरिजनों के मन्दिर-प्रवेश तक सीमित है। अछूतोद्धार का दूसरा पक्ष सामाजिक और आर्थिक है और जो सामाजिक क्रांति की अपेक्षा रखता है। प्राचीन

---

१ रामदीन गुप्त— 'प्रेमचन्द और गांधीवाद,' पृष्ठ २३९-४०

समय से चली आ रही अछूत-समस्या 'कर्मभूमि' के रचनाकाल में राजनीतिक बन गई थी।

'कर्मभूमि' में चमारों की जीवन-व्यथा और संघर्ष का वर्णन है। अमर परदेशी के रूप में चमारों के गाँव में पहुँचता है। वह गाँधीवादी पात्र है अतः वह गाँव में पहुँच कर प्रसंगानुकूल घोषणा करता है— "मैं जात-पाँत नहीं मानता माता जी। जो सच्चा है, वह चमार भी हो, तो आदर के योग्य है, जो दगाबाज झूठा, लम्पट हो, वह ब्राह्मण भी हो तो आदर के योग्य नहीं।"[1] गाँधी जी ने अछूतों को पृथक जाति मानने से इंकार किया था। उन्होंने गोलमेज परिषद् में कहा था— 'हम नहीं चाहते कि अस्पृश्यों का एक पृथक जाति के रूप में वर्गीकरण किया जाय। अस्पृश्यता जीवित रहे इसकी अपेक्षा मैं यह अधिक अच्छा समझूँगा कि हिन्दू-धर्म ही डूब जाय।' उन्होंने घोषणा की—' इस बात का विरोध करने वाला यदि सिर्फ मैं ही अकेला होऊँ तो भी अपने प्राणों की बाजी लगाकर मैं इसका विरोध करूँगा।[2]

महात्मा गांधी के अछूतोद्धार-कार्यक्रम को दो विभिन्न क्षेत्रों में निषेधात्मक व रचनात्मक रूप में देखा जा सकता है। रचनात्मक कार्यक्रम उनकी कार्यविधि का अभिन्न अंग हुआ करता था। वे मानते थे कि अछूत समस्या को दूर करने के लिए अछूतों में व्याप्त कमजोरियों को पहले दूर करना होगा। इसी कार्यक्रम के अन्तर्गत उपन्यासकार ने अछूतों में व्याप्त कुरीतियों और कुप्रथाओं को हटाने और शिक्षा प्रचार पर विशेष जोर दिया है। हरिजन सेवक के रूप में अमर के प्रयासों से चमारों में नवीन चेतना का सचार होता है। वे दुर्व्यसनों का परित्याग कर नये जीवन का श्रीगणेश करते हैं। वे मुर्दा मांस खाना त्याग देते हैं। अछूतों की निरक्षरता और कुसंस्कारों को हटाने के लिए कर्मभूमि में प्रेमचन्द ने गांधी के अछूतोद्धार से ही प्रेरणा ली है। गांधी जी का मत था—' अछूतों में मुर्दा हुई मरदार मांस खाने की प्रथा ही बतलाती है कि उनकी दरिद्रता के दूर होने और उन्हें समझाने से यह आदत छूट सकती है।"[3] अमर के प्रयत्नों से अछूतों द्वारा मुर्दा मांस का परित्याग गांधी जी के उपर्युक्त वक्तव्य का ही अनुसरण है। अछूतों का जीवन-परिवर्तन गाँधीवादी रक्तहीन क्रांति के अनुरूप होता है। गांधी जी मुर्दामांस खाने के प्रबल विरोधी थे क्योंकि उनके अनुसार इसके कारण आत्मशुद्धि संभव नहीं है। १८ मार्च १९३३ को 'हरिजन' में इस विषय पर अपने विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा था— But the eating of carrion is

---

१ प्रेमचन्द—कर्मभूमि, पृष्ठ १४८

२ पट्टाभि सीतारमैय्या—'संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास', पृष्ठ २४३

३ गांधी विचार दोहन, पृष्ठ ४५

a most filthy habit, regarded as one of the heinous sin in Hindu scriptures, and it is essential that at this hour of self Purification our Harijan brethren should be helped to get rid of this habit, अमर जैसे गाँधी जी के सिद्धान्तो का प्रचारक ही है जो चमारो के साथ उठ-बैठ कर उन्हे नया पथ दिखलाता है। उसकी दृष्टि मे चमार मुर्दामास या अखाद्य पदार्थ सेवी होने के कारण घृणित नहीं हुए क्योंकि उसके सामने गाँधी जी का सिद्धात है जो गन्दे भोजन की अपेक्षा गन्दे विचार वाले को घृणित मानते थे।[1]

अछूतों की श्रद्धा अमर पर बढती जाती है। वे उसके कहने से मद्यपान सेवन भी छोड देते है। वे उसके इस तर्क से सहमत हो जाते है कि जहाँ सौ मे अस्सी आदमियों को दोनो जून भरपेट भोजन भी न मिलता हो, वहाँ शराब पीना गरीबो के खून पीने के बराबर है।[2] गाँधी जी के अनुसार भी "जब लोग भुखमरी और नगेपन के किनारे खडे हो तब शराब, अफीम, वगैरह के बारे मे सोचा भी नही जा सकता।"[3] अमर भी गाँधी जी के सदृश्य इन कुप्रथाओं का उन्मूलन आत्मिक शक्ति के द्वारा ही सभव मानता है। वह कहता है—"फिर वही डाट-फटकार की बात? अरे दादा? डाट-फटकार से कुछ न होगा। दिलो मे पैठिये। ऐसी हवा फैला दीजिए कि ताडी-शराब से लोगो को घृणा हो जाय।"[4]

'कर्मभूमि' मे प्रेमचन्द जी ने कर्मयोग का सदेश दिया है और इसी कारण अछूत वर्ग कभी या दमित रूप मे चित्रित नहीं किया गया है। नगर मे अछूतोद्धार का जो आन्दोलन होता है उसमे अछूतो की विजय होती है और सघर्ष के अनन्तर उन्हें मन्दिर प्रवेश का अधिकार प्राप्त हो जाता है। अछूतो की यह विजय कितनी थोथी है उसका विवरण भी प्रेमचन्द प्रस्तुत करना नही भूलते। वे लिखते हैं—"दूसरे दिन मन्दिर मे कितना समारोह हुआ, शहर मे कितनी हलचल मची, कितने उत्सव मनाये गये, इसकी चर्चा करने की जरूरत नहीं। सारे दिन मन्दिर मे भक्तो का ताता लगा रहा। ब्रह्मचारी आज फिर विराजमान हो गये थे और जितनी दक्षिणा उन्हें आज मिली, उतनी शायद उम्र भर मे न मिली होगी। इससे उसके मन का विद्रोह बहुत कुछ

---

१ बापू के हरिजन, पृष्ठ ६८-७०
"गदा भोजन करने वाला अछूत है या गन्दे विचार धारण करने वाला? दोनों मे से कौन ज्यादा बुरा है?"

२ प्रेमचन्द—'कर्मभूमि,' पृष्ठ १६५

३ गांधी साहित्य, भाग ४, पृष्ठ ५४

४ प्रेमचन्द—'कर्मभूमि,' पृष्ठ २८८

शांत हो गया, किन्तु ऊँची जाति वाले सज्जन अब भी मन्दिर में देह बचाकर आते और नाक सिकोड़े हुए कतरा कर निकल जाते थे।"[१]

गांधी जी मन्दिर प्रवेश को सार्वजनिक जीवन में अछूतों से समता का व्यवहार मानते थे। इस प्रसंग से प्रेमचन्द जी ने यह बताने का प्रयत्न किया है कि मन्दिर प्रवेश से अछूतोद्धार सम्भव नहीं है क्योंकि इससे उनके आर्थिक एवं सामाजिक जीवन में ऐसा परिवर्तन नहीं आता जिससे वे शोषण से मुक्त हो सकें। स्वयं गांधी जी भी इससे सहमत थे और उन्होंने लिखा है— There is undoubtedly a difference of opinion as to the emphasis laid on temple entry as compared to the economic and political uplift ..... The fact is temple entry is not a substitute for any other uplift .. ... it is not impossible to conceive that untouchables may all become economically and politically superior to the caste-Hindus and may yet be treated as untouchables by caste-Hindus, no matter how poor and degraded they themselves may be ?" जैसा कि पूर्व ही कहा जा चुका है प्रेमचन्द जी को केवल मन्दिर-प्रवेश से सन्तोष न था और यही कारण है कि उन्होंने म्युनिस्पल बोर्ड के विरुद्ध निम्न जातियों के संघर्ष की योजना कर जन जागृति को नया मोड़ दिया। 'नगर की जनता अब उस दशा में न थी कि उस पर कितना ही अन्याय हो और वह चुपचाप सहती जाय। उसे अपने स्वत्व का ज्ञान हो चुका था। उन्हें मालूम हो गया था कि उन्हें भी आराम से रहने का उतना ही अधिकार है, जितना धनियों को। एक बार संगठित आग्रह की सफलता देख चुके थे। अधिकारियों की यह निरंकुशता यह स्वार्थपरता उन्हें असह्य हो गयी।'[२] म्युनिसिपल बोर्ड जब दलित वर्ग की झोपड़ियों को समूल नष्ट करने के लिए कटिबद्ध हो जाती है उस समय रेणुका देवी कहती है—"अब जनता इस तरह मरने को तैयार नहीं हैं। अगर मरना ही है तो इस मैदान में, खुले आकाश के नीचे, चन्द्रमा के शीतल प्रकाश में मरना बिलों में मरने से ही कहीं अच्छा है।"[३] इस प्रकार मन्दिर प्रवेश की घटना दिशा निर्देशक बन जाती है और राजनीतिक चेतना का कारण होती है।

---

१. प्रेमचन्द—'कर्मभूमि,' पृष्ठ २१५
२ प्रेमचन्द—कर्मभूमि', पृष्ठ १४२
३. प्रेमचन्द—'कर्मभूमि', पृष्ठ ३१५

नारी चेतना का विकास

अछूतोद्धार आन्दोलन की विशिष्टता है नारी वर्ग द्वारा अछूत विरोधी तत्वों का खुला विरोध। नारी की धर्मपरायणता की इस संवेदनशीलता के द्वारा अस्पृश्यता की भावना की खाई पाटने का प्रयत्न किया है। इतनी ही नहीं 'कर्मभूमि' के नारी पात्र राजनीतिक गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग लेते हैं।

गाँधी जी स्वतन्त्रता आन्दोलन में नारी समुदाय के सहयोग की अनिवार्यता पर विशेष जोर देते थे। वे मानते थे कि यदि राष्ट्र की स्त्रियाँ पुरुषों के साथ न बढ़ेंगी तो सच्ची स्वतन्त्रता कभी भी प्राप्त न होगी। स्वयं श्रीमती प्रेमचन्द ने असहयोग आन्दोलन में भाग लिया था और जेल गईं थीं। प्रेमचन्द ने 'कर्मभूमि' में नारी पात्रों को गाँधी जी की कल्पना के अनुसार ही चित्रित किया है। प्रायः सभी प्रमुख नारी पात्र राष्ट्रीय आन्दोलनों में मुक्त रूप से भाग लेते दिखलाये गये हैं। सुखदा, सकीना, मैना, पठानिन, रेणुका देवी जहाँ एक ओर नगर के आन्दोलन का संचालन करती हैं वहाँ मुन्नी और सलोनी जैसी ग्रामीण महिलाएँ ग्राम के आन्दोलन में पुरुषों के कंधा से कंधा मिलाकर बढ़ती हैं।

रेणुका देवी की सम्पूर्ण सम्पत्ति सेवा-आश्रम को देना गाँधीयुग की ही देन है।

इन नारी पात्रों में सुखदा एक सशक्त पात्र है। हृदय परिवर्तन के उपरान्त गाँधी-वादी विचार धारा की वाहक बन जाती है। वह जनता के आन्दोलन की सचालिका है, और अपनी मर्यादा को जानती है। वह कहती है—"तुम्हारे पास कितनी शक्ति है इसका उन्हें ख्याल नहीं है, वे समझते हैं कि यह गरीब लोग हमारा कर क्या लेंगे। मैं कहती हूँ कि तुम्हारे ही हाथों सब कुछ है। हमें लड़ाई नहीं करनी है, फसाद नहीं करना है, सिर्फ हड़ताल करना है यह दिखाने के लिए कि तुमने बोर्ड के फैसले को मंजूर नहीं किया।"

लगान बंदी आन्दोलन और सामयिक राजनीति

'कर्मभूमि' में लगानबन्दी का जो आन्दोलन चित्रित किया गया है उसके मूल में सन् '२९-३०' का विश्व व्यापी संकट है जिसके कारण किसान की आर्थिक स्थिति विषम हो उठी थी। इसके साथ ही किसानों में राजनीतिक चेतना का विस्तार भी हो रहा था और सन् १९२८ में बारदोली के किसान-आन्दोलन की सफलता से उनके आत्म-विश्वास में वृद्धि हुई थी।

उत्तर प्रदेश के किसानों की स्थिति आर्थिक मंदी के कारण अत्यन्त दयनीय हो गयी थी और २८ मई १९३१ के 'यंग इंडिया' में गाँधी जी ने किसानों के नाम जो पत्र

प्रकाशित किया था उसमें लिखा था—"Bad as your condition was even in normal times the unprecedented fall this year in the prices of the crops usually grown by you made it infinitely worse" गांधी जी ने इसी सन्दर्भ में गवर्नर से नैनीताल जाकर भेंट कर उन्हें वस्तुस्थिति से अवगत कराया था। किन्तु उन्होंने किसानों को सलाह दी थी कि वे किसी के भड़काने में न आयें और लगान की राशि में से जो वे दे सकें अवश्य भुगतान कर दें।

इस पृष्ठभूमि में स्वामी आत्मानंद और अमरकान्त की राजनीतिक भूमिका स्पष्ट हो जाती है। आत्मानंद का मार्ग हिंसा का है वह चमारों की पंचायत में किसानों को महन्त जी (जो जमींदार भी है) का मकान तथा ठाकुर द्वारा घेर लेने और बलपूर्वक अपनी मांगें पूर्ण करवाने पर जोर देता है।[1] अमरकान्त की दृष्टि में (जो कांग्रेस की दृष्टि है) हिंसक प्रयत्न अवांछनीय हैं और वह आन्दोलन को यथासम्भव कुंठित करने का प्रयत्न करता है। इतना ही नहीं अपितु वह अपने साथी स्वामी आत्मानन्द को गिरफ्तार करवाने की योजना भी रखता है। किसानों के आन्दोलन को सर्वनाश का मार्ग निरूपित करता है और उसकी प्रतिक्रियावादिता उस समय स्पष्ट हो जाती है जब वह गर्व से कहता है—"अगर धैर्य से काम लोगे तो सब कुछ हो जायगा। हुल्लड़ मचाओगे, तो कुछ न होगा, उल्टे और डंडे पड़ेंगे।"[2] कांग्रेस जमींदारों के अधिकारों पर अतिक्रमण नहीं करना चाहती थी। स्वयं गांधी जी ने इसी प्रसंग पर कहा था—Let me warn you against listening to the advice, if it has reached you, that you have no need to pay to Zamindars any rent at all I hope that you will not listen to such advice no matter who gives it. Congressmen cannot, we do not seek to injure the Zamindars we aim not to destruction of property.

कहना न होगा कि अमरकांत गांधी जी के निर्देशों का ही पालन करता है और यथार्थ से आँखें मूँद लेता है। यह ठीक ही कहा गया है कि 'लगान बन्दी—आन्दोलन के प्रति उसके दृष्टिकोण को हम उस युग के कांग्रेसी नेतृत्व के दृष्टिकोण का प्रतिनिधि मान सकते हैं।' वस्तुतः यह स्थिति गांधी इरविन पैक्ट से उत्पन्न हुई थी और 'कर्मभूमि' के पात्र उसे अभिव्यक्ति देते हैं। अमर और समरकांत दोनों के वक्तव्यों में गांधीवादी सिद्धान्तों का समर्थन किया गया है। अमर के अनुसार आन्दोलनकारियों को त्याग, कष्ट सहन बलिदान और सत्य का मार्ग अपनाना चाहिए क्योंकि विजय का वास्तविक मार्ग

१. प्रेमचन्द—'कर्मभूमि', पृष्ठ २६३-६४
२ प्रेमचन्द—'कर्मभूमि' पृष्ठ ३०७

वही है। समरकांत भी कहता है—'तुम धर्म की लडाई लड रहे हो। लडाई नहीं, यह तपस्या है। तपस्या मे क्रोध और द्वेष आ जाता है, तो तपस्या भंग हो जाती है।'[1] वह नीतिपरता से शासको के हृदय-परिवर्तन पर विश्वास करता है—'आपको अपनी नीतिपरता से अपने शासको को नीति पर लाना है। यदि वह नीति पर ही होते, तो आपको यह तपस्या क्यो करनी पडती ? आप अनीति पर उन्नति से नही, नीति से विजय पा सकते हैं।'[2]

उपन्यास का अन्त गांधीवादी दृष्टिकोण से होता है। सरकार किसानो की मांगो पर विचारार्थ एक सात सदस्यीय समिति गठित कर उसमे जनता के पांच सदस्य सम्मिलित करती है। शेष दो सदस्य सरकार का प्रतिनिधित्व करते हैं। अमरनाथ इस प्रसंग पर जो वक्तव्य देता है वह जैसे गांधी जी की गूंज है। 'हम इसके सिवाय और क्या चाहते है कि गरीब किसानो के साथ इन्साफ किया जाय और जब उस उद्देश्य को पूरा करने के इरादे से एक ऐसी कमेटी बनाई जा रही है, जिससे यह आशा नही की जा सकती कि वह किसानो के साथ अन्याय करे, तो हमारा धर्म है कि उसका स्वागत करें।

इस समझौते के बाद आंदोलन से सम्बन्धित व्यक्ति उसी प्रकार मुक्त कर दिये जाते है जैसे सामयिक आंदोलन की समाप्ति और समझौते पर कांग्रेस नेता। 'इस प्रकार महात्मा गांधी के सविनय अवज्ञा-आंदोलन की भांति 'कर्मभूमि' का लगानबन्दी आंदोलन भी 'कमेटीवाद' और समझौते की भूलभुलैया मे खो जाता है।'[3]

हृदय-परिवर्तन का गांधीय सिद्धान्त

उपन्यास मे हृदय-परिवर्तन के गांधीय सिद्धांत को व्यापक स्वीकृति दी गई। वैयक्तिक और सामूहिक दोनो ढग से हृदय-परिवर्तन के अनेक उदाहरण 'कर्मभूमि' मे देखे जा सकते है।

नैना के बलिदान से सेठ धनीराम का हृदय परिवर्तन, अमरकांत के उपदेशो से समरकांत का हृदय-परिवर्तन, हृदय परिवर्तन के कारण सलीम का पद-त्याग और सुखदा की राष्ट्रीय सेवा आदि वैयक्तिक हृदय-परिवर्तन के उदाहरण है। सामूहिक हृदय का उदाहरण अमर द्वारा चमारो के गाँव की कायापलट है।

---

१. प्रेमचन्द—'कर्मभूमि' पृष्ठ ३५१
२. प्रेमचन्द—'कर्मभूमि' पृष्ठ ३५२
३. रामदीन गुप्त, 'प्रेमचन्द और गांधीवाद' पृष्ठ २५७

हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रयास

'कायाकल्प' में प्रेमचन्द जी का साम्प्रदायिकता विरोधी स्वर ही उपन्यास की आत्मा है। 'कर्मभूमि' में भी प्रेमचन्द ने हिन्दू मुस्लिम एकता पर अपना दृष्टिकोण प्रकट किया है। सलीम और अमरकान्त की मित्रता व पारस्परिक व्यवहार और समरकान्त का पठानिन के प्रति दया भाव के प्रसंग इसी उद्देश्य से जोड़े हैं।

अहिंसा, स्वावलंबन और आत्म निर्भरता

गाँधी जी आत्मिक विकास के लिए अहिंसा, स्वावलंबन और आत्म निर्भरता को बहुत महत्व देते है। 'कर्मभूमि' के पात्रों द्वारा भी इसका प्रतिपादन कराया गया है। सम्पूर्ण उपन्यास अहिंसा की उज्ज्वलता से मंडित है। स्वामी आत्मानंद और सलीम दो एक स्थल पर अपनी हिंसात्मक प्रवृत्ति प्रदर्शित अवश्य करते हैं किन्तु उसका उद्देश्य अहिंसा को गौरवान्वित करना ही है। 'कर्मभूमि' में वर्णित आंदोलनों में भी अहिंसा का महत्व प्रतिपादित किया गया है और सामयिक राजनीतिक प्रभाव के कारण जो हिंसात्मक गतिविधियाँ अंकित की गई है उनकी व्यर्थता भी वहीं सिद्ध कर दी गई है।

प्रेमचन्द के अंश-राजनीतिक उपन्यास

प्रेमचन्द के प्रायः समस्त उपन्यासों में राजनीतिक चेतना का सम्यक प्रस्फुटन मिलता है। 'गबन' गोदान' व 'मंगल सूत्र' (अपूर्ण) में सामाजिक समस्याएँ प्रमुख हैं, राजनीतिक प्रश्न गौण। इसीलिए उन्हें अंश राजनीतिक उपन्यास ही मानना उपयुक्त होगा।

'कायाकल्प' और उसमें निहित राजनीति

प्रेमचन्द जी के 'कायाकल्प' में भी गाँधीवाद के आध्यात्मिकता एवं नैतिक पक्ष का चित्रण मिलता है। रामदीन गुप्त के मत से 'यूं तो गाँधीवादी और नैतिकता किसी-न-किसी रूप में मध्यवर्गीय प्रेमचन्द की सभी रचनाओं में पाई जाती है, किन्तु 'कायाकल्प' का तो मूल प्रतिपाद्य ही यह है।'[1] राजनीतिक संस्पर्श होने पर भी 'कायाकल्प' में ऐन्द्रजालिक कृत्यों और अतिमानवीय तत्वों की अधिकता है और जिसके कारण राजनीतिक स्वरूप पूर्ण रूपेण ऊभर नहीं सका है। एक आलोचक ने सत्य ही लिखा है कि 'कायाकल्प' में ऐसे अन्धविश्वासों की ऐसी अनर्थक बहुलता है कि इसका

१. रामदीन गुप्त—प्रेमचन्द और गांधीवाद' पृष्ठ २०५

मूल्य केवल आध्यात्मिक जगत की वस्तु बन कर आकाश में उतराता रहता है। इसे वास्तविक जीवन के कटु अनुभव के बाद मानसिक-जगत् का विश्राम स्थल कहना ही ठीक होगा।'[1]

'कायाकल्प' को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—एक का सम्बन्ध सामयिक राजनीतिक समस्याओं से है और दूसरे का कायाकल्प की अलौकिक रहस्यमयी शक्तियों से। दोनों में से प्रथम भाग अधिक सबल है और जिसके अन्तर्गत सामन्तों और जागीरदारों की संस्कृति की वास्तविकता व हिन्दू मुस्लिम की समस्या पर ठोस विचार व्यक्त किये गये हैं।

राजेश्वर गुरु ने इन दोनों भागों को ही तीन खण्डों में विभाजित किया है। उनके अनुसार—'कायाकल्प की कथा के तीन भाग हैं—एक भाग का सम्बन्ध हिन्दू-मुस्लिम-समस्या से है, दूसरे का किसान, प्रजा और राजा से है और तीसरा भाग राजा के अन्तःपुर का यथार्थ चित्रण है।'[2]

हिन्दू-मुस्लिम समस्या

'सेवासदन' में प्रेमचन्द जी ने सर्वप्रथम इस समस्या की ओर संकेत किया था। गाँधी जी के प्रयत्नों से लखनऊ पैक्ट के उपरान्त जो समझौता हुआ था उसके कारण कुछ वर्षों तक यह समस्या सुलझी सी प्रतीत होने लगी। किन्तु प्रथम सहयोग आंदोलन के बाद और 'कायाकल्प' के रचनाकाल के समय राष्ट्र में साम्प्रदायिक भावना पुनः बलवती हुई। हिन्दू-मुस्लिम एकता के क्षेत्र में प्रेमचन्द जी गाँधीजी के कट्टर समर्थक थे। उनके उपन्यास-साहित्य में इस समस्या के कारणों और उसे सुलझाने का यथार्थ और स्थायी हल मिलता है। 'कायाकल्प' में तो साम्प्रदायिक-भावना के विविध पक्षों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है।

आलोच्य उपन्यास में साम्प्रदायिक समस्या गाय की कुरबानी को मुख्य विषय बना कर सम्मुख आई है। इस समस्त प्रकरण में गाँधीवादी विचारधारा ही पात्रों के माध्यम से मुखरित हुई है।

यशोदानन्द और महमूद छात्र जीवन से ही साम्यप्रदायिक भेदों को भूल कर जन सेवा के क्षेत्र में योगदान दे रहे हैं। समय के परिवर्तन के साथ दोनों पथ-च्युत हो साम्प्रदायिकता का मार्ग अपना लेते हैं। इतना ही नहीं अपितु अब आगरे में गाय की कुर्बानी के प्रश्न को लेकर हुए हिन्दू-मुस्लिम दंगे में दोनों मित्र एक-दूसरे के प्राण के गाहक हो जाते हैं।

---

१ गंगा प्रसाद पांडेय—'हिन्दी कथा साहित्य' पृष्ठ ५८

२ राजेश्वर गुरु—'प्रेमचन्द : एक अध्ययन' पृष्ठ १८८

यह भावना ऐसे मजहब की देन है जो स्वार्थी कठमुल्लों के इशारे पर चलता है। राधामोहन यशोदानन्दन को बताता है—'जिस दिन आप गये, उसी दिन पंजाब से मौलवी दीन मुहम्मद साहब का आगमन हुआ। खुले मैदान में मुसलमानों का एक बड़ा जलसा हुआ उसमें मौलाना साहब ने जाने क्या जहर उगला कि तभी से मुसलमानों को कुर्बानी की धुन सवार है। इधर हिन्दुओं को यह जिद है कि चाहे खून की नदी बह जाय, पर कुर्बानी न होने पायेगी। दोनों तरफ से तैयारियाँ हो रही हैं, हम लोग तो समझा कर हार गये।'[1]

साधारण सी बात मजहब के नशे में तूल पकड़ लेती है। इधर ख्वाजा साहब ने फतवा दिया, जो मुसलमान किसी हिन्दू औरत को निकाल ले जाये, उसे एक हजार हजों का सवाब होगा। उधर काशी के पंडितों ने घोषित किया एक मुसलमान का वध एक हजार गौ दानों से श्रेष्ठ है।

ख्वाजा महमूद और यशोदानन्दन के बीच जो लम्बी बहस होती है उसमें इंगित किया गया है कि यदि पारस्परिक भावनाओं का ध्यान रखा जाय तो ऐसे मामूली झगड़े जो भी भीषण रूप लेते हैं सहज ही समाप्त हो सकते हैं। एक गाय के पीछे—एक पशु के पीछे इंसानों का खून बहाना कभी भी मानवीय नहीं कहा जा सकता।

चक्रधर यशोदानन्दन से कहता है—'अहिंसा का नियम गौओं के लिए ही नहीं, मनुष्यों के लिए भी तो है।

यशोदानन्दन—कैसी बातें करते हो, जी। क्या यहाँ खड़े होकर अपनी आँखों से गौ की हत्या होते देखें?

चक्रधर—अगर आप एक बार दिल थाम कर देख लेंगे, तो यकीन है कि फिर आपको कभी यह दृश्य न देखना पड़ेगा।

यशोदा—हम इतने उदार नहीं हैं। ..

चक्रधर—तो फिर आइये, लेकिन उस गौ को बचाने के लिये आपको अपने एक भाई का खून करना पड़ेगा।'[2]

चक्रधर का यह वैयक्तिक रूप है जो गाँधीवादी सिद्धान्तों के अनुरूप चित्रित किया गया है।

उसका यह कथन अत्यन्त मार्मिक है—'हर एक कुरबानी हिन्दुस्तान के २१ करोड़ हिन्दुओं के दिलों को जख्मी कर देती है, और इतनी बड़ी तादाद के दिलों को

१ प्रेमचन्द—'कायाकल्प', पृष्ठ ३८
२ प्रेमचन्द—'कायाकल्प,' पृष्ठ ३५

दुखाना बड़ी से बड़ी कौम के लिए भी एक दिन पछतावे का बाइस हो सकता है। हिन्दुओं से ज्यादा बेनफसुब कौम दुनिया में नहीं है, लेकिन जब आप उनकी दिलजारी और महज दिलजारी के लिए कुरबानी चाहते हैं, तो उनको सदमा जरूर होता है और उनके दिलों में जो शोला उठता है, उसका आप ख्याल नहीं कर सकते। अगर आपको यकीन न आये, तो देख लीजिए कि इस गाय के साथ ही एक हिन्दू कितनी खुशी से अपनी जान दे सकता है।'[1]

और चक्रधर सचमुच जान देने को तैयार हो जाते हैं। उनके इस कृत्य से ख्वाजा का हृदय परिवर्तन होता है। वे इस घटना से अभिभूत हो कहते हैं—'काश, तुम जैसे समझदार तुम्हारे और भाई भी होते। मगर यहाँ तो लोग हमें मलिच्छ कहते हैं। यहाँ तक कि हमें कुत्तों से भी नजिस समझते हैं। उनकी थालियों में कुत्ते खाते हैं, पर मुसलमान उनके गिलास में पानी नहीं पी सकता है।.. अब कुछ कुछ उम्मीद हो रही है कि शायद दोनों कौमों में इत्तफाक हो जाय।'[2]

वस्तुतः साम्प्रदायिक भावना उभाड़ने के पीछे अंग्रेज सरकार और उनके पिट्ठुओं की ही सक्रिय भूमिका थी। ख्वाजा महमूद इस तथ्य से परिचित होने पर महल्या से कहते हैं—'दोनों कौमों में कुछ ऐसे लोग हैं, जिनकी इज्जत और सरवत दोनों को लड़ाते रहने पर ही कायम है ..मेरा तो कौल है कि हिन्दू रहो, चाहे मुसलमान रहो, खुदा के सच्चे बंदे रहो। सारी खूबियाँ किसी एक ही कौम के हिस्से में नहीं आईं। न सब मुसलमान देवता हैं, इसी तरह न सभी हिन्दू काफिर हैं, न सभी मुसलमान मोमिन। जो आदमी दूसरी कौम से जितनी ही नफरत करता है, समझ लीजिए कि वह खुदा से उतनी ही दूर है।'[3]

गाँधी जी के सदृश प्रेमचन्द जी भी इन्सानियत का मार्ग ही धर्म का मार्ग मानते हैं। उनका कथन है "मैं तो नीति को ही धर्म समझता हूँ, और सभी सम्प्रदायों की नीति एक सी है—बुरे हिन्दू से अच्छा मुसलमान उतना ही अच्छा है जितना बुरे मुसलमान से अच्छा हिन्दू।"[4]

चक्रधर आधारहीन भय की भावना को ही इन झगड़ों के मूल में देखता है। वह मनोरमा से कहता है—"मुसलमानों को लोग नाहक बदनाम करते हैं। फिसाद से वे

१ प्रेमचन्द–'कायाकल्प,' पृष्ठ ३६-३७
२. प्रेमचन्द–'कायाकल्प,' पृष्ठ ४०
३. प्रेमचन्द–'कायाकल्प,' पृष्ठ ४२७
४ प्रेमचन्द–'कर्मभूमि,' पृष्ठ २२७

भी उतना ही डरते हैं, जितना हिन्दू। शांति की इच्छा भी उनमें हिन्दुओं से कम नहीं है। लोगों का यह ख्याल कि मुसलमान लोग हिन्दुओं पर राज्य करने का स्वप्न देख रहे हैं, बिलकुल गलत है। मुसलमानों को केवल यह शंका हो गयी है कि हिन्दू उनसे पुराना बैर चुकाना चाहते हैं, और उनकी हस्ती को मिटा देने की फ़िक्र कर रहे हैं। इसी भय से वे जरा-जरा सी बात पर तिनक उठते हैं और मरने मारने पर आमादा हो जाते हैं।"[1]

भय की यह भावना संचारित करने का श्रेय साम्राज्यवादियों को है क्योंकि इससे उनकी 'फूट करो और राज्य करो' की राजनीतिक ध्येय की पूर्ति होती है। उनका यह कार्य इतना सुव्यवस्थित ढङ्ग से होता था कि दूसरा को इसका आभास भी न हो पाता था। ख्वाजा महमूद की स्वीकरोक्ति है— 'खुदा गवाह है, मैंने इत्तहाद की कोशिश की। अब भी मेरा यह ईमान है कि इत्तहाद ही से इस बदनसीब कौम की नजात होगी। यशोदा भी इत्तहाद का उतना ही हामी था, जितना मैं, शायद मुझसे भी ज्यादा लेकिन खुदा जाने वह कौन सी ताकत थी, जो हम दोनों को बरसरेजङ्ग रखती थी। हम दोनों दिल से मेल करना चाहते थे, पर हमारी मर्जी के खिलाफ कोई जैबी ताकत हमको लड़ाती रहती थी।"[2]

यशोदानन्दन की पत्नी दोनों कौमों के पारस्परिक मेल-मिलाप में ही सुख और समृद्धि देखती है। यशोदानन्दन का यह मार्ग दर्शन करती है—"न मुसलमानों के लिए दुनियाँ में कोई दूसरा ठौर ठिकाना है, न हिन्दुओं के लिए। दोनों इसी देश में रहेंगे और इसी देश में मरेंगे। फिर आपस में क्यों लड़े मरते हो। न तुम्हारे निगले वे निगले जायेंगे न उनके निगले तुम निगले जाओगे, मिलजुल कर रहो।"[3]

यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि 'कायाकल्प' में सामयिक दूषित साम्प्रदायिक परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण किया गया है। इस कथन से हम सहमत हैं कि 'प्रेमचन्द ने निर्भीकता और अन्तर्भेदनी दृष्टि के साथ कहा कि इस देश में हिन्दू मुस्लिम एकता ही स्वाभाविक स्थिति है, संघर्ष की अस्वाभाविक परिस्थितियों के लिए कोई तीसरी ताकत जिम्मेदार है। जिसके हाथ में कुछ स्वार्थ के पुतले खेलने के लिए तैयार रहते हैं। इस अस्वाभाविक परिस्थिति से मुक्ति का मार्ग इन्सानियत का आग्रह है और कायाकल्प में प्रेमचन्द साम्प्रदायिक घृणा को मानव प्रेम से जीतने के प्रयत्न में लगे दीखते हैं।'[4]

---

१. प्रेमचन्द—'कर्मभूमि,' पृष्ठ ५७
२ प्रेमचन्द—'कर्मभूमि,' पृष्ठ २६१
३ प्रेमचन्द—'कायाकल्प,' पृष्ठ १५९ ६०
४. 'नवभारत,' का दीपावली विशेषांक, सम्वत २०१८, पृष्ठ ३१७

रियासतों और देशी नरेशों की समस्या

'कायाकल्प' में चित्रित दूसरी राजनीतिक समस्या देशी रियासतों और नरेशों और खेतिहर प्रजा की है। 'रंगभूमि' में भी इस समस्या की ओर इंगित किया गया है। 'कायाकल्प' में पुनः इस समस्या को उठाकर देशी रियासतों और नरेशों की सम सामयिक स्थिति और भविष्य की संभावनाओं का उल्लेख किया गया है।

ब्रिटिश-शासकों की साम्राज्यवादी चालों के मुहरों के रूप में पुनर्जीवित सामन्त प्रथा स्वतन्त्रता प्राप्ति में एक बड़ी अवरोधक शक्ति थी। रियासतों की प्रजा की स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी। वह भयंकर शोषण का शिकार थी और उनकी मुक्ति का प्रश्न स्वाधीनता प्राप्ति का ही एक अंग था। रियासती जनता में जागृति का प्रसार करना और राजसत्ता की निरर्थकता सिद्ध करना आवश्यक था क्योंकि इसके द्वारा ही राष्ट्रीय आंदोलन को बल मिल सकता था। 'कायाकल्प' में प्रजा और राजा की यथार्थ स्थिति के चित्रण से वैषम्य दिखलाकर संघर्ष की स्वाभाविक स्थिति प्रस्तुत की गई है।

उपन्यास के प्रमुख सामन्ती पात्र हैं जगदीशपुर की महारानी देवप्रिया, दीवान ठाकुर हरिसेवक सिंह व नये राजा साहब ठाकुर विशालसिंह।

इसके विपरीत हैं चक्रधर, जो रियासती जनता में नवीन चेतना फूंकते हैं, राजा के तिलकोत्सव पर मजदूरों का संगठन कर जेल जाते हैं। चक्रधर कहता है—"सारा देश गुलामी की बेड़ियों में जकड़ा हुआ है, फिर भी हम अपने भाइयों की गर्दन पर छुरी रखने से बाज नहीं आते। इतनी दुर्दशा पर भी हमारी आँखें नहीं खुलतीं। जिनसे लड़ना चाहिए उनके तो तलवे चाटते हैं और जिनसे गले मिलना चाहिए उनकी गर्दन दबाते हैं और यह सारा जुल्म हमारे पढ़े लिखे भाई ही कर रहे हैं। हमारी शिक्षा ने हमें पशु बना दिया है। राजा साहब की जात से लोगों को कैसी-कैसी आशाएँ थीं, लेकिन अभी गद्दी पर बैठे छः महीने भी नहीं हुए और इन्होंने भी वही पुराना ढङ्ग अख्तियार कर लिया। प्रजा से डंडों के जोर से रुपये वसूल किये जा रहे हैं और कोई फरियाद नहीं सुनता[1]।"

रियासती अफसरों के अत्याचारों का चित्रण भी इसी सन्दर्भ में किया गया है। उनकी कमजोरी भी प्रकट की गई है। मनोरमा चक्रधर से कहती है—"अभी एक गोरा आ जाय तो घर में दुम दबाकर भागेंगे। उस वक्त जबान भी न खुलेगी। उससे जरा आँखें मिलादये तो देखिए, ठोकर जमाता है या नहीं। उससे तो बोलने की हिम्मत नहीं,

---

१ प्रेमचन्द—'कायाकल्प,' पृष्ठ १३२

बेचारे दोनों को सताते फिरते हैं। यह तो मरे को मारना हुआ। इसे हुकूमत नहीं कहते। यह चोरी भी नहीं है। यह केवल मुरदे और गिद्ध का तमाशा है।"[1]

समय के परिवर्तन के साथ जनता में राजनीतिक चेतना का जो उभार आया उसकी ओर 'रंगभूमि' में ही इंगित किया गया था। प्रेमचन्दजी ने अपने एक पात्र से कहलवाया है— अब वह जमाना नहीं रहा, जब राजे रईसों के नाम आदर से लिए जाते थे, जनता को स्वयं ही उनमें भक्ति होती थी। वे दिन बिदा हो गये। ऐश्वर्य भक्ति प्राचीन काल की राज्य भक्ति का एक अंश थी। प्रजा अपने राजा जागीरदार, यहां तक कि अपने जमींदार पर सिर कटा देती थी। यह सर्वमान्य नीति सिद्धान्त था कि राजा भोक्ता है, प्रजा भोग्य है। यही सृष्टि का नियम था लेकिन आज राजा और प्रजा में भोक्ता और भोग्य का सबंध नहीं है, अब सेवक और सेव्य का सम्बन्ध है।'[2] और इसके भी आगे यह कहा जा सकता है कि आज का युग तो जनता के ही राजा बनने का है।

'कायाकल्प' में गद्दी के उत्सव के समय हम जन-सेवक और सेव्य की भावना को तिरोहित होते देखते हैं। विलासिता और नियतना की विषमता से जनता में असन्तोष होता है। पर राजा विशाल सिंह को इसकी जैसे कोई चिन्ता नहीं। वे कहते हैं— 'मैं प्रजा का गुलाम नहीं हूं। प्रजा मेरे पैरों की धूल है। मुझे अधिकार है कि उसके साथ जैसा उचित समझूं, वैसा सलूक करूं। किसी को हमारे और हमारी प्रजा के बीच में बोलने का हक नहीं।'[3]

किन्तु चक्रधर के नेतृत्व में संघर्ष होता है और वह गिरफ्तार होता है। चक्रधर मानता है कि उसकी गिरफ्तारी जनता के असतोष को दूर करने का सही हल नहीं। वह मानता है कि 'जब तक असन्तोष के कारण होंगे, ऐसी दुर्घटनाएं होगी और फिर होंगी। मुझे आप पकड़ सकते है, कैद कर सकते है। इससे चाहे आपको शांति हो पर वह असंतोष अणुमात्र भी कम न होगा, जिससे प्रजा का जीवन असह्य हो गया है। *असन्तोष को नष्ट कर आप प्रजा को शान्त नहीं कर सकते।'*[4] *यहां उस राजनीतिक* सिद्धान्त की प्रतिध्वनि मिलती है जिसके अनुसार यह कहा जाता है कि असंतुष्ट प्रजा पर किसी प्रकार का शासन नहीं किया जा सकता।

रियासती वातावरण में चक्रधर जैसा गांधीवादी पात्र भी पथभ्रष्ट[1] हो जाता है,

१ प्रेमचन्द — कायाकल्प,' पृष्ठ १०३
२ प्रेमचन्द — रंगभूमि,' पृष्ठ ३६६
३ प्रेमचन्द — 'कायाकल्प,' पृष्ठ १४५
४. प्रेमचन्द — 'कायाकल्प,' पृष्ठ १४४ १४५

इस विडम्बना का चित्रण भी उपन्यास में प्रस्तुत है। सत्ता की प्राप्ति उसकी सद्वृत्तियों को भी नष्ट करने से नहीं चूकती। धन्नासिंह चक्रधर के इस परिवर्तन पर आश्चर्यचकित है। स्वयं चक्रधर भी मानते हैं—'आह मुझ पर भी प्रभुता का जादू चल गया। अब मुझे अनुभव हो गया कि इस वातावरण में रहकर मेरे लिए अपनी मनोवृत्तियों को स्थिर रखना असाध्य है।'[१]

उनकी आत्मा जीवित है और वे अपने कर्तव्य को पहिचान अर्धरात्रि में सबको निद्रामग्न छोड़ निष्क्रमण करते हैं। उस स्थिति में उन्हें राजा का विशाल महल सहस्र नेत्रों वाले पिशाच की भाँति प्रतीत होता है।

राजाओं के काले कारनामों को चित्रित करने पर भी प्रेमचन्द जी ने गाँधीय सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति को दोषी न मानकर परिस्थितियों को ही दोषी बतलाया है। स्वयं राजा साहब का स्पष्टीकरण इसी आधार पर दिया गया है। वे कहते हैं—"ईश्वर जानता है, मेरे मन में प्रजा हित के कैसे-कैसे हौसले थे। मैं अपनी रियासत में रामराज्य का युग लाना चाहता था, पर दुर्भाग्य से परिस्थिति कुछ ऐसी होती जाती है कि मुझे वे सभी काम करने पड़ते हैं, जिनसे मुझे घृणा थी। न जाने वह कौन सी शक्ति है, जो मुझे अपनी आत्मा के विरुद्ध आचरण करने के लिए मजबूर कर देती है मैं हिंसक-जन्तुओं से घिरा हुआ हूँ।'[२] इन्हीं हिंसक-जन्तुओं ने विशाल सिंह के प्रजावाद की भावना को कुण्ठित कर कार्यरूप में परिणत न होने दिया। वह सामन्तवादी मशीनरी का ही एक 'बोल्ट' बनकर राजसी विलासिता में जीवन-यापन करने को बाध्य हो गया।

एक आलोचक ने 'कायाकल्प' में जिन तीन तथ्यों को देखा है वे ये हैं—(१) इन रियासतों के नरेशों की स्थिति ब्रिटिश नौकरशाही के इशारों पर नाचने वाली कठ-पुतलियों से अधिक नहीं है, (२) निरंकुश अधिकारियों के बढ़ते हुए अत्याचारों के कारण इन रियासतों की जनता में भीतर-ही-भीतर असंतोष की आग धुमड़ रही है तथा (३) भीतर-ही-भीतर धुमड़ने वाला यह असंतोष जब एक व्यापक जनांदोलन का रूप ग्रहण करने लगता है तो विनय और चक्रधर सरीखे गाँधीवादी नेता अहिंसा के नाम पर उसके मार्ग पर आकर खड़े हो जाते हैं और इस प्रकार गाँधीवादी-नेतृत्व के प्रच्छन्न सहयोग से यह जनांदोलन कुचल दिया जाता है।[३]

---

१ प्रेमचन्द – 'कायाकल्प,' पृष्ठ ३३३
२ प्रेमचन्द –'कायाकल्प,' पृष्ठ १६०
३. रामदीन गुप्त –'प्रेमचन्द और गाँधीवाद,' पृष्ठ २११-१२

अन्य राजनीतिक संकेत

'कायाकल्प' में उपर्युक्त दो प्रमुख राजनीतिक समस्याओं के अतिरिक्त कुछ अन्य राजनीतिक संकेत भी देखे जा सकते हैं। इनमें सम-सामयिक नेताओं में जन सम्पर्कीय भावना का अभाव और मजदूरों में समाजवादी चेतना का प्रस्फुटन मुख्य है।

जेल से जब चक्रधर छूटकर आता है तो अनुभव करता—"हमारे नेताओं में यही तो बड़ा ऐब है कि वे स्वयं देहातों में न जाकर शहरों में पड़े रहते हैं, जिससे देहातों की सच्ची दशा उन्हें नहीं मालूम होती, न वे उन्हें वह शक्ति ही हाथ आती है, न जनता पर उनका वह प्रभाव ही पड़ता है, जिसके बगैर राजनीति सफल हो ही नहीं सकती।"[1]

समाजवादी चेतना को उद्भावना मजदूरों के विरोध को लेकर की गई है। चमार और मजदूर जब हिंसात्मक कृत्यों के लिए उद्यत होते हैं, तब चक्रधर गाँधीवाद फार्मूले के साथ सामने आता है। वह कहता है—"अगर तुम्हें खून की ऐसी प्यास है, तो मैं हाजिर हूँ। मेरी लाश को पैरों से कुचल कर तभी तुम आगे बढ़ सकते हो।"[2] इस अवसर पर एक मजदूर का कथन है—"हमारे एक सौ जवान भून डाले, तब आप कहाँ थे? यारो, क्या खड़े हो, बाबू जी क्या बिगड़ा है। मारे तो हम गये है न? मारो बढ़के।"[3] इतना ही नहीं, मजदूर के शब्द शोला बन जाते है—"भैया, तुम सान्त-सान्त बका करते हो, लेकिन उसका फल क्या होता है। हमें जो चाहता है, मारता है, जो चाहता है, पीसता है, तो क्या हम सान्त बैठे रहे? सान्त रहने से तो और भी हमारी दुरगत होती है। हमें सान्त रहना मत सिखाओ। हमें मरना सिखाओ, तभी हमारा उद्धार कर सकोगे।"[4]

मजदूरों के बीच पनप रही इस चेतना का संकेत मात्र देना ही गाँधीवादी प्रेमचन्द को अभीष्ट था अन्यथा उसका व्यापक स्वरूप उन्होंने प्रस्तुत नहीं किया। एक प्रकार प्रेमचन्द का यहाँ पर गाँधी जी के अहिंसात्मक आन्दोलन द्वारा साधना की सिद्धि में शंकालु हृदय प्रतिबिम्बित हो रहा है। शायद उनकी चेतना साम्यवादी वर्ग संघर्ष की ओर मुड़ने सी लगती है।

---

१. प्रेमचन्द—'कायाकल्प,' पृष्ठ २५३
२ प्रेमचन्द—'कायाकल्प,' पृष्ठ ११६
३ प्रेमचन्द—'कायाकल्प,' पृष्ठ ११६
४. प्रेमचन्द—'कायाकल्प,' पृष्ठ ११७

अलौकिक प्रसंग और गाँधीवाद

'कायाकल्प' में पुनर्जन्म के अलौकिक प्रसङ्ग राजनीतिक न होने पर भी गाँधी जी की मान्यता को लेकर ही चित्रित हैं। गाँधी जी का कथन है—"मैं पुनर्जन्म में उतना ही विश्वास करता हूँ जितना अपने वर्तमान शरीर के अस्तित्व में।" देवप्रिया के चरित्र को देखकर ऐसा लगता है प्रेमचन्द गाँधी जी के प्रत्येक कथन को ब्रह्म-वाक्य मानते थे और उसे कथा का रूप दे देने को आतुर हो उठते थे। उनकी 'गाँधीनिष्ठा' ने उन्हें जहाँ ऊपर उठाया है वहाँ दूसरी ओर उनके औपन्यासिक-स्वरूप को कुण्ठित भी किया है। 'कायाकल्प' के शैथिल्य का भी यही कारण है। फिर भी इस अलौकिक प्रसंग को, जो सम्पूर्ण उपन्यास का पचमांश भी न होगा,[1] छोड़ देने पर 'कायाकल्प' सामयिक राजनीतिक चेतना से सुपुष्ट कृति है और अनेक समस्याओं को उद्घाटित करती है।

गबन

'गबन' में प्रेमचन्द जी ने वर्गगत असतुलन का चित्रण अत्यन्त मनोयोग से किया है। इसमें मध्यवर्गीय समाज की विभिन्न समस्याओं का कलात्मक अकन है। एक विज्ञ आलोचक का भी मत है—"हमने इस उपन्यास को 'गहने की ट्रेजेडी' कहा है, परन्तु कहानी का मूल विषय यही होने पर भी समस्या का यह रूप एक अत्यन्त व्यापक समस्या का ही अंग है। यह समस्या है वर्गगत असंतुलन। गहने वर्ग श्रेष्ठता के ही प्रतीक हैं। हमारे इस पूंजीवादी समाज की सारी व्यवस्था वर्ग की विभिन्नता पर ही आश्रित है।"[2]

कथावस्तु के आरम्भ में आभूषण की समस्या को केन्द्र बनाकर मध्यवर्गीय भारतीय-नारी की समस्या को चित्रित किया गया है तथा प्रासंगिक रूप में कलकत्ता की कथा समावेश कर भारतीय स्वाधीनता की समस्या को अभिव्यक्ति दी गई है। कहा गया है कि प्रस्तुत उपन्यास के स्पष्टतः दो भाग हैं जिन्हें हम पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध अथवा क्रमशः प्रयाग और कलकत्ता की कथाएँ कह सकते हैं। कलकत्ता की कथा वस्तुतः राजनीतिक उपन्यासकार प्रेमचन्द की राजनीतिक आस्था का ही परिणाम है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी की मान्यता है कि इन कथाओं को एक ही उपन्यास में न जोड़कर यदि उनके आधार पर दो अलग-अलग उपन्यासों (एक शुद्ध पारिवारिक और दूसरा शुद्ध राजनीतिक) की रचना की जाती तो क्या अच्छा रहता।

१. शिवनारायण श्रीवास्तव—'हिन्दी उपन्यास,' पृष्ठ ६८
२. शिवनारायण श्रीवास्तव—'हिन्दी उपन्यास,' पृष्ठ ६८

प्रेमचन्द राजनीति को समाजनीति से पृथक नहीं मानते थे और उद्देश्य दोनों को साथ लेकर मानवतावादी दृष्टिकोण की स्थापना होता था, जो सामयिक दृष्टि से उचित भी था। वे कला को उपयोगितावाद की कसौटी पर कसते थे। कलकत्ते में प्रसंग को लेकर विस्तार पाने वाली कथा सोद्देश्य है और सामयिक राजनीति के अनेक पृष्ठों को प्रस्तुत करती है।

'गबन' में राजनीतिक घटनाएँ

'गबन' में स्वदेशी आन्दोलन और अवसरवादी नेताओं की कथनी और करनी के अन्तर की झलक स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। देवीदीन स्वदेशी-आन्दोलन का सच्चा सेनानी है। वह 'दिखावटी' राष्ट्रभक्तों में से नहीं है। उसके परिवार में ही राष्ट्र प्रेम का संस्कार रक्त में व्याप्त है और उसके दो युवक पुत्र राष्ट्रीय बलिवेदी पर अपने जीवन की आहुति देते हैं। देवीदीन के त्याग और देश-प्रेम का मूल तब ही समझा जा सकता है जब सामयिक कांग्रेसी नेतृत्व और उच्चवर्गीय नेताओं के साथ उसका मूल्यांकन किया जाय। और सामयिक राजनीतिक स्थिति (दलीय स्थिति भी कह सकते हैं) उसके ही शब्दों में देखिए—"इन बड़े-बड़े आदमियों के किये कुछ न होगा। इन्हें बस रोना आता है, छोकरियों की भाँति बिसूरने के सिवा इनसे और कुछ नहीं हो सकता। बड़े-बड़े देश-भगतों को बिना विलायती शराब के चैन नहीं आता। उनके घर में जाकर देखो तो एक भी देसी चीज न मिलेगी। दिखाने को दस-बीस कुरते गाढ़े के बनवा लिये, घर का और सब सामान बिलायती है। सब-के-सब भोग विलास में अन्धे हो रहे हैं, छोटे भी और बड़े भी। उस पर दावा यह है कि देश का उद्धार करेंगे। अरे तुम क्या देश का उद्धार करोगे? पहले अपना उद्धार कर लो। गरीबों को लूटकर बिलायत का घर भरना तुम्हारा काम है। हाँ, रोये जाव, बिलायती सराबें उड़ाओ, बिलायती मोटरें दौड़ाओ, बिलायती मुरब्बे और अचार चखो, बिलायती बरतनों में खाओ, बिलायती दवाइयाँ पीयो, पर देश के नाम को रोये जाओ।"[1] यह स्थिति थी सभ्य तथा उच्चवर्गीय कांग्रेसी नेतृत्व की, जो घड़ियाली आँसुओं की ओट में अपनी स्वार्थ-सिद्धि में मग्न थे। वस्तुत. गांधीवाद राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ जो पूँजीवादी तत्व सहयोगी थे वे तब भी भ्रष्ट थे और स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त अपनी धनशक्ति और प्रभाव, नाम, व्यावहारिक कुशलता, के कारण राजनीति पर हावी होकर आज के भ्रष्टाचार के प्रणेता हुए।

---

१. प्रेमचन्द—'गबन,' पृष्ठ २१८

नौकरशाही की भूमिका बनाम पुलिस का नग्न-नृत्य

अंग्रेजी शासन का एक प्रमुख स्तम्भ था पुलिस प्रशासन और उसके बेशुमार काले कृत्य, जिसके ऊपर टिका था अत्याचारी शासन। भारतीय स्वतन्त्रता का आंदोलन देशभक्त जनता के उज्जवल इतिहास का ही नहीं अपितु पुलिस के अत्याचारों का रोमांचक इतिहास भी है। प्रेमचन्द ने 'गबन' में पुलिस-अत्याचारों को बेझिझक अनावृत किया है। कलकत्ता पुलिस ने रामनाथ की झूठी साखी पर जिन १४ राजनीतिक कार्यकर्ताओं को डकैती केस में फँसाने का कुचक्र रचा उसमें १९२९-३० के कुख्यात मेरठ षड्यन्त्र केस की गूंज है।[1] इस प्रसंग से पुलिस की उन चालाकियों का पता चलता है जो राजनीतिक कार्यकर्ताओं को तंग करने के लिए अपनाई जाती थी।

स्वराज्य की कल्पना

'गबन' में जन साधारण के स्वराज्य की कल्पना का चित्रण भी मिलता है। देवीदीन निम्न मध्य वर्ग का प्रतीक है और उसकी दृष्टि में स्वराज्य ही सुराज की यथार्थता है। वह सर्वोदयी भावना की समानता का समर्थक है और स्वराज्य होने पर उसकी ही प्रतिष्ठा चाहता है। वह स्वराज्य के लिए मंच पर उछलकूद मचाने वाले 'भाषणवीरों' से पूछता है—"जब तुम सुराज का नाम लेते हो, उसका कौन सा रूप तुम्हारी आँखों के सामने आता है? तुम बड़ी-बड़ी तलब लोगे, तुम भी अंग्रेजों की तरह बंगलों में रहोगे, पहाड़ों की हवा खाओगे, अंग्रेजी ठाट बनाये घूमोगे, इस सुराज से देश का क्या कल्याण होगा। तुम्हारी और तुम्हारे भाई-बंदों की जिन्दगी भले आराम और ठाठ से गुजरे, पर देश का तो कोई भला न होगा।[2] वह स्वराज्य प्राप्ति पर जिसकी अपेक्षा करता है वह है—'तो सुराज मिलने पर दस-दस, पांच-पांच हजार के अफसर नहीं रहेंगे, ? वकीलों की लूट नहीं रहेगी ? पुलिस की लूट बन्द हो जायेगी।'[3] किन्तु सामयिक राजनीतिज्ञों के कृत्यों से उसे जो असंतोष है उसके कारण उसे आशंका है कि केवल स्वाराज्य से ही शोषण समाप्त न होगा और तथा कथित नेतागण अपना ही हित साधन करेंगे। वह धन और धर्म के अपावन गठबंधन से भी चिंतित है। युग-चेता कलाकार भविष्य का कितना सजग द्रष्टा होता है आज को इस शासन प्रणाली से प्रेमचन्द जी की वे भविष्य वाणियाँ पूर्ण रूपेण सत्य सिद्ध हो रही हैं।

---

१ रामदीन गुप्त - 'प्रेमचन्द और गांधीवाद,' पृष्ठ २३६
२. प्रेमचन्द—'गबन' पृष्ठ २१८
३. प्रेमचन्द—'गबन' पृष्ठ २१८

गांधीवाद की गूँज

यथार्थवादी उपन्यास होने पर 'गबन' गांधीवादी आदर्शवादिता से अछूता नहीं। 'हृदय-परिवर्तन' की गाँधीय-आस्था जोहरा में आकस्मिक रूप से प्रस्फुटित हुई है। जालपा का व्यक्तित्व केवल जोहरा को ही नहीं अपितु रामनाथ को भी प्रभावित करता है और वह अपने हृदय परिवर्तन के कारण अपने बयान बदलने को सहमत हो जाता है। हृदय-परिवर्तन को गांधी जी सहज मानवीय प्रक्रिया के रूप में देखते थे और उन्हीं के स्वर में या कहे तर्क के रूप में 'गबन' के एक पात्र के द्वारा कहा गया है—'जिस आदमी में हत्या करने की शक्ति हो, उसमें हत्या न करने की शक्ति का न होना अचंभे की बात है। जिसमें दौड़ने की शक्ति हो, उसमें खड़े रहने की शक्ति न हो, इसे कौन मानेगा ?'[1]

गोदान

'गबन' के उपरांत प्रेमचन्द का यथार्थवादी दृष्टिकोण 'गोदान' में साहूकारों द्वारा किसान के शोषण की कहानी में सम्मुख आया। 'गोदान' तक पहुँचते-पहुँचते प्रेमचन्द की गांधीवादी राजनीति से प्रसूत आदर्शवादिता के रंग बिरंगे स्वप्न बिखर गये। शिवनारायण श्रीवास्तव का मत है—'वे जितना ही आदर्श की ओर बढ़ते गये वह उनसे उतना ही दूर होता गया। अतएव मृत्यु की ओर बढ़ते हुए प्रेमचन्द ने 'गोदान' देकर किंचित क्षोभ के साथ ही उठ उठकर गिर जाने वाले जीवन की नैराश्यपूर्ण कठोर वास्तविकता का नग्न परिचय कराया।'[2] रामदीन गुप्त की मान्यता है कि लगभग एक युग तक अहिंसा पथीय जीवन-दर्शन की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक उपयोगिता को परखने के पश्चात् 'गोदान' तक आते-आते प्रेमचन्द के सम्मुख उसकी निस्सारता भली भांति प्रकट हो चुकी थी। महात्मा गांधी के कार्य-क्रम और जीवन-दर्शन के प्रति की प्रेमचन्द की श्रद्धा-भक्ति की भावना खंडित हो चली थी और उनके आदर्श बांध में दरारें पड़ने लगी थीं।'[3]

राजनीतिक उपन्यासकार प्रेमचन्द का यह एक मात्र एवं सर्वोत्कृष्ट उपन्यास है जो 'किसी सामयिक आन्दोलन या हलचल को आधार बना कर नहीं चला है। किसी विशिष्ट सामाजिक, राजनीतिक या आर्थिक आन्दोलन को अपनी रचना का विषय न बनाकर गोदानकार ने भारतीय किसान के समूचे जीवन और उसके दुःख दर्द

१. प्रेमचन्द—'गबन' पृष्ठ ३२४
२. शिवनारायण श्रीवास्तव—'हिन्दी उपन्यास' पृष्ठ १०७
३. रामदीन गुप्त—'प्रेमचन्द और गांधीवाद' पृष्ठ २२६

को ही वाणी प्रदान करने का प्रयास किया है।' 'गोदान' में किसान की ऋण-समस्या है जो उसके जीवन को बुरी तरह ग्रसित किये हुए है। गोदान-इन्हीं महाजनी शोषण की गाथा है जिसमें भारतीय कृषक के जीवन का सम्पूर्ण वृत्त आ जाता है। उपन्यास का नायक होरी भारतीय कृषक की विवशताओं का प्रतीक है। डॉ० रामविलास शर्मा का यह कथन सत्य है कि 'गोदान' की मूल समस्या शोषित तथा उत्पीड़ित कृषक के ऋण की समस्या है।'[1]

'गोदान' के रचनाकाल में भारतीय राजनीति में समाजवादी चेतना का विस्तार हो रहा था। एक ओर कांग्रेस के अन्तर्गत ही समाजवादी दल स्थापित हो गया था और दूसरी ओर साम्यवादी गतिविधियाँ भी जोर पकड़ रही थीं। गांधीवाद आन्दोलनों की असफलता से कुंठित हो रहा था और जनता की आकांक्षाओं की पूर्ति में असमर्थ सिद्ध हो रहा था। प्रेमचन्द का राजनीतिक राजमार्ग गांधीवाद था जो १९३६ में उस राजनीतिक चौराहे में आ मिला था जहाँ अन्य राजनीतिक विचारधाराओं के मार्ग आ मिले थे। 'गोदानकार' चौराहे पर पहुँच कर तटस्थ रूप से पर्यवलोकन करता है। राजमार्ग पर वह बहुत चल चुका है अधिक चलने का उसमें अब धैर्य नहीं। अन्य मार्ग अनजाने हैं जिस पर चलने से वह हिचकिचाता है। साम्यवाद मार्ग पर कुछ दूर वह चला पर लौट कर पुनः चौराहे पर आ गया। मार्ग की यह दूरी उसे यदि रुचि नहीं तो बुरी भी नहीं लगी पर यही 'गोदान' की राजनीतिक द्विविधा है।

मातादीन और सीलिया की कहानी पर गांधीवाद का अवशिष्ट प्रभाव है। यह ठीक ही कहा गया है कि 'सिलिया उस युग की उपज है, जिसमें गांधी जी के अछूतोद्धार कार्यक्रम की भावना व्याप्त थी। सिलिया चमारिन का निरन्तर स्वेच्छापूर्वक आत्म-त्याग मद में मातादीन के धर्म-पाखण्ड पर विजय प्राप्त करता है।' अन्यायी मातादीन का हृदय परिवर्तन भी गांधीय सिद्धान्त का प्रतीक है।

मजदूर आन्दोलन

शक्कर मिल के मजदूरों की हड़ताल को लेकर 'गोदान' में मजदूर आन्दोलन की अभिव्यक्ति दी गई है जिसमें गांधीवाद और साम्यवाद का अभिन्न गठबन्धन है। गांधी दर्शन के अनुसार हड़ताल का कारण न्याय सम्मत, कार्य पद्धति अहिंसात्मक और अन्त समझौतावादी होता है। हड़ताल सत्याग्रह (सत्य के आग्रह) का प्रतिरूप है और वह अहिंसक प्रयत्नों से वर्ग समन्वय को प्रोत्साहित करता है। मजदूर-आन्दोलन का चित्रण युगानुरूप न होकर गांधीवादी ढंग से हुआ है। मिल में आग लग जाने से मजदूर-हड़ताल

१. रामविलास शर्मा—'प्रेमचन्द और उनका युग,' पृष्ठ ११५

को मुक्त होना है और गोविन्दी कहती है—'मैं तो खुश हूँ कि तुम्हारे सिर से यह बोझ टला। अब तुम्हारे लड़के आदमी होंगे, स्वार्थ और अभिमान के पुतले नहीं। जीवन का सुख दूसरों को सुखी करने में है, उनको लूटने में नहीं। बुरा न मानना अब तक तुम्हारे जीवन का अर्थ था आत्मसेवा, भोग और विलास। दैव ने तुम्हें उसे साधना से वंचित करके तुम्हें ज्यादा ऊँचे और पवित्र जीवन का रास्ता खोल दिया है।'[1]

'गोदान' के रचनाकाल में मजदूर-आन्दोलन काफी सशक्त हो गया था और भारतीय राजनीति में उसकी महत्वपूर्ण भूमिका थी, पर 'गोदान' में इसका चित्रण नहीं मिलता जिसका कारण प्रेमचन्द पर गाँधीवाद का सर्वाधिक प्रभाव ही है। प्रेमचन्द ने इस प्रकरण से यह सिद्ध करना चाहा है कि हिंसक हड़ताल निस्सार होती है और शोषित और शोषक दोनों के लिए अहितकर भी।

प्रेमचन्द के राजनीतिक उपन्यास

प्रेमचन्द ने सामयिक राजनीति, राजनीतिक विचारधारा और राजनीतिक घटनाओं और राजनीतिक समस्याओं को कभी आँख से ओझल नहीं होने दिया। उनकी आत्मा व्यापक सहानुभूति से प्लावित थी और इसी मानवतावादी दृष्टिकोण के कारण उनमें सभी कोटि के व्यक्तियों के प्रति सहज आत्मीय भाव और निष्ठा थी। एक विज्ञ का मत है, और जो सत्य है कि 'प्रेमचन्द की दृष्टि सदा वर्तमान पर रही और इन्होंने केवल अपने काल की सामाजिक परिस्थितियों तथा समस्याओं को लेकर रचनायें की, जिन पर तत्कालीन राजनीतिक आंदोलनों तथा समस्याओं का पुट है।'[2]

प्रेमचन्द के उपन्यासों की राजनीतिक विशिष्टता गांधीय सिद्धान्तों के प्रति उनकी अटूट आस्था है। डॉ० नगेन्द्र के शब्दों में—'गांधी युग के प्रथम तीन चरणों के सामाजिक राजनीतिक, आर्थिक और साम्प्रदायिक जीवन के सभी पहलुओं और समस्याओं का जितना सांगोपांग और सटीक चित्रण प्रेमचन्द में मिलता है वैसा हिन्दी के तो किसी साहित्यकार में मिलता ही नहीं है, भारत के अन्य किसी साहित्यकार में भी मिलता है, इसमें संदेह है।'[3] उन्होंने सामयिक जन-जीवन को एकाग्रता से अंकित किया है और कहा गया है—'प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में अपने युग अर्थात् गाँधीयुग के तीन चरणों के सामाजिक-राजनीतिक जीवन का अत्यन्त पूर्ण इतिहास दे दिया है। वास्तव में जिस समय उत्तर प्रदेश के इतिहास के काल-खंड का सामाजिक इतिहास

१ प्रेमचन्द—'गोदान' पृष्ठ २६५
२ ब्रजरत्नदास—'हिन्दी उपन्यास साहित्य' पृष्ठ २२३
३ डॉ० नगेन्द्र—'विचार और विवेचन' पृष्ठ ९०

लिखा जायगा, उस समय प्रेमचन्द के उपन्यासों से अधिक व्यवस्थित सामग्री अन्यत्र नहीं मिलेगी। और यदि इतिहासकार राजनीति से आतंकित होकर विवेक न खो बैठा तो वह उन्हें भी पट्टाभि के इतिहास और नेहरू और राजेन्द्र बाबू की जीवनियों से कम महत्त्व नहीं देगा।'[1]

गाँधीवाद में दृढ़ आस्था होने पर भी प्रेमचन्द ने तटस्थ राजनीतिक दृष्टि अपनाई और परिणाम स्वरूप उनके उपन्यासों में अन्य राजनीतिक विचार धारा का भी उसके सामयिक प्रभाव के अनुरूप क्षीण किन्तु स्पष्ट स्पर्श भी देखा जा सकता है। इन्हीं प्रभावों के कारण कतिपय आलोचक मानव मतवाद की पुष्टि हेतु वर्ग-चेतना के प्रभावों मात्र भी ढूँढ लेते हैं। इससे इंकार नहीं किया जा सकता कि प्रेमचन्द ने गाँधीवाद की जीवनदायिनी वर्षा के साथ समाजवादी बीर-बहूटियों से मानव जीवन की हरीतिमा में रंग-वैविध्य उत्पन्न किया है। किन्तु इस हरीतिमा के लिए वर्षा ही अत्यावश्यक है यह वे नहीं भूले। इससे भी आगे उनका एक स्वतंत्र सामाजिक एवं राजनीति चिंतक का स्वरूप भी उभरता है। स्वराज्योपरांत जिन परिस्थितियों की ओर जिनका विवरण पीछे दिया जा चुका है, उपन्यासकार ने जो संकेत किया था वह वर्तमान समय की कसौटी पर कितनी खरी उतर रही है, स्पष्ट है। अतएव हम कह सकते हैं कि प्रेमचन्द के भविष्य की पारदर्शी दृष्टि वादों से परे एक स्वतंत्र अस्तित्व भी रखती है।

उनके उपन्यास-साहित्य के अध्ययन से उनके विकासवादी समाजवाद की झलक मिलती है। वे कष्ट-सहिष्णुता, त्याग और अहिंसा द्वारा आध्यात्मिक दबाव वाली गाँधीवादी नीति के समर्थक हैं। वे क्रांति से डरते हैं क्योंकि उससे तानाशाही की सम्भावना रहती है। इन्द्रनाथ मदान को लिखे एक पत्र में उन्होंने इसका स्पष्ट संकेत दिया है—'हमारा उद्देश्य जनमत तैयार करना है इसलिए मैं सामाजिक विकास में विश्वास रखता हूँ। अच्छे तरीकों के असफल होने पर ही क्रांति होती है। मेरा आदर्श है, प्रत्येक को समान अवसर का प्राप्त होना। इस सोपान तक बिना विकास के कैसे पहुँचा जा सकता है, इसका निर्णय लोगों के आचरण पर निर्भर है। जब तक हम व्यक्तिगत रूप से उन्नत नहीं हैं तब तक कोई भी सामाजिक व्यवस्था आगे नहीं बढ़ सकती। क्रांति का परिणाम हमारे लिए क्या होगा यह संदेहास्पद है। हो सकता है कि वह सब प्रकार की व्यक्तिगत स्वाधीनता को छीन कर तानाशाही के घृणित रूप में हमारे सामने आ खड़ा हो। मैं शुद्धिकरण के के पक्ष में

---

१. डा० नगेन्द्र—'विचार और विवेचन,' पृष्ठ ८१

तो हूँ, उसे नष्ट करने के पक्ष मे नही। यदि मुझे यह विश्वास हो जाता और मैं जान लेता कि ध्वंस से हमे स्वर्ग मिलेगा तो मैने ध्वंस की भी चिन्ता नही की होती।'[1]

और उन्हें यह विश्वास कौन दिलाता अतः उन्होने सर्वहारा क्रांति का मार्ग न अपनाकर वैधानिक और शांति पूर्ण मार्ग को ही उचित समझा जो सामयिक राजनीतिक परिस्थितियों के अनुकूल था।

किसान समस्या को लेकर उन्होने शोषक और शोषितो का चित्रण किया। आक्रोश उत्पन्न करने वाली सामाजिक राजनीतिक असगतियो से परिचित कराया, विभिन्न राष्ट्रीय आंदोलनो के ध्येय को स्पष्ट किया और नई चेतना को भी स्वीकृति दी। उनका चित्रफलक इतना व्यापक है कि उसमे प्रत्येक प्रकार के दृष्टात मिल सकते हैं। इतना होने पर भी उनके राजनीतिक उपन्यास गाँधीवाद-सापेक्ष्य ही और सामयिक जीवन के परिपार्श्व मे गांधीय-सिद्धान्तो की सहानुभूतिक विवेचना ही उनका उद्देश्य है। गाँधीवाद की प्राण प्रतिष्ठा ही उनके उपन्यासो की विशिष्टता है जो हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासो मे आज भी अद्वितीय है।

समाजवादी चेतना

प्रेमचन्द्र का मूल्यांकन करते हुए डॉ॰ रामविलास शर्मा ने लिखा है—'उनका उद्देश्य सामयिकता व देशकाल की विशेषता से परे नही था, उनका साहित्य सामयिकता की सतह को छूने वाला साहित्य नही था, उसमे गहराई में डूबने वाला, देशकाल की विशेषताओं के परस्पर संबंध को चित्रित करने वाला साहित्य था।'[2]

स्वय प्रेमचन्द देशकाल की महत्ता से अपरिचित नही। वे मानते हैं कि 'साहित्यकार बहुधा अपने देशकाल से प्रभावित होता है। जब कोई लहर देश मे उठती है, तो साहित्यकार के लिए उससे अविचलित रहना असभव हो जाता है। जीवन पर साहित्य से अधिक प्रकाश और कौन वस्तु डाल सकती है क्योकि अपने देशकाल का प्रतिबिंब होता है।'[3]

देशकाल के अन्तर्गत ही समाजवादी चेतना का अकन प्रेमचन्द साहित्य मे मिलता है। उनका मत था—'कम्यूनिज्म चाहे फैले, चाहे न फैले परन्तु एक आदर्श समाज का आधार बदल गया है। दुनिया के बारे मे भारतवर्ष जैसा रूढ़िवादी देश विचार मग्न रह सकता है लेकिन सारा ससार समाजवाद की ओर बढ रहा है। समाजवादी

१ सं॰ इन्द्रनाथ मदान—'प्रेमचन्द : चिन्तन और कला,' पृष्ठ २३१-३२
२ डॉ॰ रामविलास शर्मा—'प्रेमचन्द और उनका युग,' पृष्ठ १२२
३. प्रेमचन्द—'कुछ विचार,' पृष्ठ ७७

का नास्तिकतावाद और बिना जन्म और परम्परा का विचार किये सबको समान अवसर देना सच्चे धर्म के अधिक निकट है।'

रूस की क्रांति का संकेत 'प्रेमाश्रम' का एक कृषक पात्र देता है। स्वयं प्रेमचन्द रूस की इस समाजवादी व्यवस्था से प्रभावित थे—'यही शायद दुनियाँ का नियम हो गया है कि कमजोर को सहजोर चूसें। हाँ, रूस है जहाँ पर कि बड़ों को मार-मार कर दुरुस्त कर दिया गया, अब वहाँ गरीबों को आनंद है। शायद यहाँ भी कुछ दिनों में रूस जैसा हो।'[1]

किन्तु 'गोदान' तक उनकी साम्यवादी आस्था उपन्यास में प्रस्फुटित नहीं हुई। अपने युग की आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक विषमताओं का चित्रण करने पर भी उनमें समाजवादी आग्रह नहीं है। यहाँ तक कि वे केवल भारतीय स्वाधीनता आंदोलनों के ही साथ थे। वे एक ऐसे आदर्श समाज की कल्पना अवश्य करते हैं जिसमें शोषित और शोषक का भेद न हो और मानव जीवन सुख और शांति पर आधारित हो। यह उनका मानववादी दृष्टिकोण था। जो व्यावहारिक रूप में जनवाद है। डॉ० नगेन्द्र का कथन है—'जनवाद के दो रूप है—एक दक्षिण पक्ष का जनवाद, जो जागरण-सुधार मूलक है, दूसरा वाम पक्ष का जनवाद, जो क्रांतिमूलक है। अपने युगधर्म के अनुकूल, युग-पुरुष गाँधी के प्रभाव में, प्रेमचन्द ने जागरण-सुधार मूलक जनवाद को ही ग्रहण किया। गाँधीवाद के आध्यात्मिक पक्ष को वे नहीं अपना सके।'[2]

जागरण सुधार मूलक जनवाद के कारण उनकी दृष्टि आदर्शोन्मुख रही। किसानों और मजदूरों या दूसरे शब्दों में शोषितों को अपने अधिकारों के लिए जागृत करने का जो प्रयास उन्होंने किया वह गाँधीय सिद्धान्तों के अनुरूप तथा भावात्मक है। इसी कारण उनके उपन्यासों में वर्ग-संघर्ष के रूप में समाजवादी चेतना की स्थापना न हो सकी। उनके राजनीतिक उपन्यासों में शोषितों की गाथा है और उसका प्रमुख पक्ष है आर्थिक समस्या किन्तु इतना होने पर भी उन्होंने उसका समाधान के अर्थ वैषम्य को मार्क्सवादी सिद्धान्तानुसार सामाजिक जीवन की ग्रंथि नहीं बनने दिया। यही कारण है कि नई चेतना के प्रतिनिधि पात्र बलराज और गोबर शोषण का विरोध अपने वर्ग के आधार पर नहीं करते। जमींदारी प्रथा के खिलाफ होने पर भी वे जमींदारों के साथ सहानुभूति रखते हैं। उनकी सहानुभूति राजनीतिक नहीं वास्तविक है। 'पापी को उन्होंने क्षमा नहीं किया, शोषण के अपराधों की उन्होंने कहीं उपेक्षा नहीं की। उनके उपन्यास में दण्ड या निषेध नहीं है—उनमें एक ओर बहिष्कार से लेकर कारावास और मृत्यु तक

१ शिवरानी देवी—'प्रेमचन्द : घर में,' पृष्ठ ६६

२ डॉ नगेन्द्र—'विचार और विवेचन' पृष्ठ ६६

और दूसरी ओर उपवास आदि से लेकर आत्मघात तक का दण्ड है।' वे भूमि और उद्योगों के राष्ट्रीयकरण की उपयुक्तता से अधिक महत्व विकासवादी मार्ग को देते थे। क्रांति का मार्ग उन्हें स्वीकार नहीं और अहिंसा ही उनका साध्य है। 'गोदान' और 'मंगल सूत्र' (अपूर्ण) में वे अवश्य कुछ विचलित हुए। कहा गया है कि 'मंगल सूत्र' में उनके भीतर का गाँधी या तो सो गया है, या उसकी मूर्ति अब उनके मंदिर में नहीं रह गई है। वे मानव के मन को दया धर्म सेवा नीति से जीत सकने को संभव नहीं मानते। गाँधी जी की तरह जिन्हें वे अब तक ट्रस्टी समझते रहे हैं आज उनसे लड़ने के लिए वे हथियार बांधने का उपक्रम कर रहे हैं।'[१] प्रेमचन्द ने इस अपूर्ण उपन्यास के प्रारम्भिक पृष्ठों में समाजवादी दृष्टिकोण अवश्य दिया है किन्तु कौन कह सकता है, पूर्ण उपन्यास समग्र रूप में कौन सा प्रभाव निर्मित करता।

'मंगल-सूत्र' के रचनाकाल में समाजवादी विचारधारा जोर पकड़ रही थी और स्वयं कांग्रेस और उसके वरिष्ठ नेता उस पर गम्भीरता से विचार कर रहे थे। पं० जवाहरलाल नेहरू ने सन् १९३४ में समाजवाद की सर्वसामान्य मूल कल्पना प्रस्तुत करते हुए कहा था कि "समाजवाद कई प्रकार का है। पर इसके सम्बन्ध में कुछ मूलभूत मसलों पर सभी समाजवादी एकमत हैं। वे ये हैं—भूमि, खानें और बड़े-बड़े कारखानों पर तथा उपार्जन और विभाजन के साधनों पर उदाहरणार्थ रेल, बैंक इत्यादि पर राज्य का नियन्त्रण स्थापित हो जाए। उद्देश्य यह है कि किसी व्यक्ति को ऐसा अवसर न दिया जाए कि वह उत्पादन और विभाजन के इन साधनों पर अधिकार करके दूसरे व्यक्तियों का शोषण कर सके, अथवा दूसरों की मेहनत की कमाई से स्वयं लाभान्वित होता रहे। लोकतंत्र का अर्थ अधिकारों की समानता है। अधिकार मात्र एक वोट का ही नहीं, अपितु आर्थिक और सामाजिक समानता भी आवश्यक है।[२]

स्पष्ट है कि कांग्रेस का ध्येय लोकतंत्र की स्थापना था और उसमें कल्पना सन्निहित थी लोकतंत्र की सफलता समाजवाद के बिना सम्भव नहीं। पंडित नेहरू को इन्हीं दिनों कांग्रेसाध्यक्ष भी इसीलिए बनाया गया था क्योंकि वे 'गाँधीवाद और समाजवाद के मध्य सेतु' माने जाते थे। स्पष्टतः प्रेमचन्द में होने वाला यह परिवर्तन कांग्रेस में होने वाले परिवर्तन और समाजवाद के प्रति होने वाले आग्रह का ही द्योतक है न कि रूसी समाजवाद का। यदि ऐसा न होता तो वे 'गोदान' में (जो 'मंगल सूत्र' के कुछ माह पूर्व ही प्रकाशित हुआ था) मजदूरों की हड़ताल का चित्रण समाजवादी चेतनानुसार करते क्योंकि १९३५-३६ तक कानपुर, अहमदाबाद और बंबई में मजदूरों की बड़ी-बड़ी हड़तालें

१. राजेश्वर गुरु—'प्रेमचन्द : एक अध्ययन' पृष्ठ २४६
२ 'आजकल' (मासिक) वर्ष १९, अंक १२, पूर्णांक २३७, पृष्ठ ५

हो चुकी थी। स्पष्ट है कि प्रेमचन्द को कांग्रेस के सिद्धान्तों पर आस्था थी और समाजवाद की ओर वे भी उसी समय उन्मुख हुए जब कांग्रेस का रुख उस ओर हुआ। 'गोदान' और 'मंगलसूत्र' इसी काल की रचनायें हैं। यदि यह मान लिया जाए कि 'मंगलसूत्र, मे प्रेमचन्द अपनी ही जीवन-गाथा कहने जा रहे थे तो यह भी माना जाना चाहिए कि यह कांग्रेस और गाँधीवाद की सफलता और असफलताओं का राजनीतिक इतिहास होता। गाँधीवाद और समाजवाद की व्याख्या का यह कलात्मक सगम होता। किन्तु अपूर्ण उपन्यास के सम्भावित भावी रूप की चर्चा उपयुक्त नही। चार परिच्छेदों के इस अपूर्ण उपन्यास से केवल यह तथ्य मिलता है कि आदर्शवाद से हटकर वे सामाजिक यथार्थवाद की ओर झुक रहे थे और इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि 'दरिन्दों के बीच में, उनसे लड़ने के लिए हथियार बाँधना पड़ेगा। उनके पंजों का शिकार बनना देवतापन नहीं, जड़ता है।'[१]

जासूसी उपन्यासों में राजनीतिक तत्व

दुर्गाप्रसाद खत्री के 'रक्त मन्डल' व सफेद शैतान'

प्रेमचन्द युगीन उपन्यास साहित्य में राजनीतिक संसर्श प्रेमचन्द के उपन्यासों के अतिरिक्त दुर्गाप्रसाद खत्री के 'रक्त मंडल' और 'सफेद शैतान' मे भी देखा जा सकता है। प्रेमचन्द गाँधीवाद के समर्थक थे और उनके उपन्यास वाद-सापेक्ष्य कहे जा सकते हैं। गाँधीवाद के सिवाय उन दिनों आतंकवादी प्रवृत्ति भी उत्कर्ष पर थी। यह गाँधीवाद की अहिंसक क्रांति के विरोध में हिंसात्मक कार्य-पद्धति पर आस्थावान थी। खत्री जी के 'रक्त मडल' (चार-भाग) व 'सफेद शैतान' (चार भाग) में आतंकवादी गतिविधियों का संकेतात्मक स्वरूप प्रकट हुआ। 'रक्तमंडल' का प्रथम भाग सन् १९२८ में तथा चतुर्थ भाग सन् १९३० में प्रकाशित हुआ था। 'रक्तमंडल' के उपरांत सन् १९१४ मे 'सफेद शैतान' का प्रथम भाग और १९३७ में अंतिम यानी चतुर्थ भाग निकला। इस प्रकार प्रेमचन्द के 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि', 'कायाकल्प', 'गबन,' 'कर्मभूमि' और 'गोदान' के रचनाकाल मे इन उपन्यासों का प्रकाशन गाँधीवाद के प्रतिक्रिया स्वरूप भी माना जा सकता है।

औपन्यासिक दृष्टि से दुर्गाप्रसाद खत्री के ये उपन्यास देवकीनन्दन खत्री (पिता) के तिलस्मी उपन्यासों की श्रेणी मे होते हुए भी साम्राज्य विरोधी भावना के कारण उनसे कुछ अलग भी हैं। शिल्प की दृष्टि से भी इनमें जो एक अन्तर स्पष्ट है वह है कथा

१ प्रेमचन्द स्मृति—'मंगल सूत्र', पृष्ठ २६३

का आगे की ओर गतिशील होना। गुलाबराय ने तिलस्मी और जासूसी उपन्यासो का मूल्यांकन करते हुए जो भेद बताया है उसके अनुसार तिलस्मी उपन्यासो मे घटना का क्रम आगे की ओर बढता है, पर जासूसी उपन्यासो मे पीछे की ओर आता है।

दुर्गाप्रसाद ने अनेक उपन्यास लिखे हैं जिनमे लाल पजा, प्रतिशोध रक्तमडल और सफेद शैतान एक ही शृंखला की कडी हैं और इनके प्रमुख पात्रो को हम एक के बाद दूसरे उपन्यास में अपने कार्यक्षेत्र का विस्तार करते हुए देख सकते हैं।

इन साम्राज्य विरोधी उपन्यासो मे पात्रो की दो विशिष्ट श्रेणियाँ हैं—एक श्रेणी मे लुटेरे, बलवाई, विद्रोही और क्रान्तिकारी हैं। भारत को ही नही अपितु सम्पूर्ण एशिया को साम्राज्यवादी पंजे से छुडाने के लिए प्रयत्नशील हैं। दूसरी ओर साम्राज्य वादी पोषक पात्रो के रूप मे गोरे अफसर, रजवाडे, रायबहादुर, खान बहादुर और नौकरशाही के प्रतिनिधिक पात्र हैं। इन दोनो शक्तियो का सघर्ष ही प्रस्तुत उपन्यासो का प्रतिपाद्य है। 'लालपजा' और 'प्रतिशोध' मे इस सघर्ष का प्रारम्भिक रूप दिखाई पडता है। पात्र आतकवादी हैं और किसी भी प्रकार का अपमान उन्हें सह्य नही। 'अदालत ! अदालत ! क्या मैं अदालत जाऊँ ? हम लोग बेइज्जती का बदला अदालतो द्वारा नही लेते, बल्कि इससे लेते हैं ! कहते हुए उन्होंने एक तमचा निकाल कर सामने के टेबुल पर रख दिया। दूसरे व्यक्ति ने एक क्षण तक साहब के लाल चेहरे को देखा और तब चुपचाप अपना पिस्तौल उनके तमचे के बगल म रख दिया।" यह एक प्रसग है 'लाल पजा' का, जो पात्रो के दृढ निश्चय और निर्भीकता का परिचय देता है।

'लाल पजा' मे नवयुवको के दल द्वारा सगठित रूप से आजादी के प्रयासो पर गदरपार्टी, रिपब्लिकन आर्मी और रिवोल्यूशनरी पार्टी के सिद्धाता का ही अस्पष्ट प्रभाव है। स्वय खत्री जी का कथन है—' येन केन प्रकारेण द्रव्य प्राप्त करना और उसे अस्त्र-शस्त्र की प्राप्ति मे लगाना इसी का कुछ वर्णन इस पुस्तक मे हैं। रोचकता के ख्याल से कुछ औपन्यासिक पुट दे दिया गया है परन्तु लक्ष्य वही है। प्राप्त द्रव्य की सहायता से नवयुवकों का एक दल दुर्गम स्थानो मे अपना जीवन बिताता है, और अस्त्र-शस्त्र बनाकर आजादी के शत्रुओ को मार भगाता और देश को स्वतन्त्र करता है।"[1]

वस्तुत यही पात्र आगे चलकर 'रक्तमडल' मे अधिक उभरते हैं। वे जनता की अपेक्षा वैज्ञानिक शक्ति पर अधिक विश्वास करते हैं और शस्त्रो के बल पर अग्रेजी साम्राज्यवाद को पलटने की योजना बनाते हैं। उनका कथन है—"विज्ञान के सहारे अग्रेजो ने भारत को गुलाम बनाया और विज्ञान के सहारे उन्हें पराजित किया जा

१. हिन्दी प्रचारक, माह अक्टूबर-नवम्बर ६०, पृष्ठ १०

सकता है।" आतंकवादी भी अस्त्र-शस्त्र-बम, पिस्तौल की शक्ति के सहारे आतंक की सृष्टि करते थे। खत्री जी के पात्र उनसे भी दो कदम आगे हैं। वे मृत्युकिरण, मनोगी वायुयान, एटमी बन्दूक और विषैली गैस का उपयोग करते हैं, जिससे जठना में संहार हो। आतंकवादियों द्वारा जो छुटपुट हमले या हत्याएँ होती थीं वे व्यक्तिवादी प्रयासों तक सीमित थीं और जन-साधारण इस तथ्य से परिचित था कि इनके-दुक्के लोगों की मृत्यु से राष्ट्र स्वाधीन नहीं हो सकता। सम्भवत यही कारण है कि खत्री जी ने ऐसे वैज्ञानिक अस्त्र-शस्त्रों की कल्पना की जो सामूहिक संहार कर सकें।

'रक्तमंडल' के रचनाकाल के रजवाड़ों की समस्या प्रमुख थी और स्वयं प्रेमचन्द ने इसका चित्रण अपने उपन्यासों में किया है। "रक्त मंडल" में भी इस समस्या का संकेत मिलता है। रक्तमंडल के सदस्यों की भावना है कि यदि देशी रियासतें हिम्मत से काम लें और सहयोग दें तो अंग्रेज साम्राज्यवाद को देश से बाहर निकालने में देर न लगे। लेकिन देशी रजवाड़े तो साम्राज्यवाद के पोषक हैं और ऐसा कुछ नहीं करना चाहते जिसके कारण उन पर किसी प्रकार की आँच आए। उनकी सेवा भक्ति देखिए—रियासत में लाट साहब का आगमन होने वाला है। उनके लिए बिनायती ढंग का स्नानागार और शौचालय बनवाने पर जी खोल कर व्यय होता है। लाट साहब के स्वागत में सारा नगर सजाया जाता है, महफिलों का आयोजन होता है। 'रक्तमंडल' को यह सह्य नहीं वह नवाब साहब को परवाना भेजता है—"मुल्क की गुलामी के इन दिनों में भी बीनी हुई इज्जत की कुछ याद दिलाने वाली यहाँ की कुछ रियासतें हैं। वे भी जब बेहयाई का बुरका पहनकर ठोकर मारने वाले जूतों को सिर पर रखती हैं और जिसकी बदौलत गले का तौक गले में पड़ा, उन्हीं की इज्जत करते हैं तो कलेजों पर साँप लोट जाता है।"

'रक्त मंडल' में देशी रजवाड़ों का यही प्रतिक्रियावादी रूप उभर कर सामने आया है।

सरकार-परस्त व्यक्तित्व

सरकार परस्त पात्र के रूप में गोपालशंकर की अवतारणा की गई है। राय बहादुर और खानबहादुर जैसे पदवीधारी पात्र भी इसी श्रेणी के हैं। आतंकवादी गतिविधियों की आलोचना एक सामान्य बात थी। स्वयं गांधी जी और उनके नेतृत्व में कार्य कर रही कांग्रेस आतंकवादियों के खिलाफ थी। किन्तु क्रांतिकारी अपने मार्ग को उचित मानते थे। गोपालशंकर 'रक्तमंडल' के कार्यों का विरोधी है। 'रक्तमंडल' उसे संदेश भेजता है—"हम तुम्हें बहुत दिनों से जानते हैं। वक्त—बेवक्त सरकार की मदद

करते रहने पर भी हम लोगों ने तुम्हें कुछ नहीं कहा, क्योंकि हम लोग जानते हैं कि तुम बड़े भारी विद्वान हो और मुल्क तुम्हें इज्जत की निगाह से देखता है।

तुम्हें यकीन हो चाहे न हो, पर हम लोग जो कुछ कर रहे हैं, वह अपने देश के फायदे के लिए ही कर रहे हैं। हमारे काम में रुकावट डालने वाला चाहे कितना ही विद्वान क्यों न हो, पर देश का दुश्मन ही कहलायगा और उसे इस दुनिया से उठा देना ही मुनासिब होगा।

पर साम्राज्यवादी शक्तियाँ प्रबल हैं और गोपालशंकर की पीठ पर उनका हाथ है जिससे 'रक्तमंडल' के पाँव उखड़ जाते हैं और उसके सदस्य स्याम में शरण लेते हैं।

सदस्यों का स्याम में जाकर शरण लेना मोहेश्य है और एशिया में साम्राज्य वादियों के विस्तार का दिग्दर्शन कराता है। स्याम में 'रक्तमंडल' का नामकरण होता है 'त्रिकटक' और ध्येय रहता है पूर्व को पश्चिम के साम्राज्यवादी पंजों से मुक्ति दिलाना। वस्तुतः यह चिन्तन अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का ही परिणाम है। रूस के उदाहरण ने विश्व की आँखें खोल दी थीं और साम्राज्यवाद का अन्तर्राष्ट्रीय विरोध होने लगा था। 'त्रिकटक' भी इसी भावना का प्रतीक है। उसके ध्वज पर अंकित है—
' एशिया के हाथ अलग रखो।

स्याम में फ्रांसीसी उपनिवेशवादियों का प्रभुत्व है। एशिया में उपनिवेशवादियों का नेतृत्व करता है ब्रिटिश साम्राज्य और त्रिकटक को नष्ट करने की जिम्मेदारी भी वही लेता है। भारत के लाट गोपालशंकर को बुलाते हैं और त्रिकटक के दमन का भार सौंपते हैं। 'सन्देश भैनान' का रचनाकाल १९३८-३९ है और यह युग था जब आतंकवादी गतिविधियाँ प्रायः समाप्त हो गई थीं। कांग्रेस वैधानिक रूप से आन्दोलन कर रही थी किन्तु जनता कुछ उत्तेजित नहीं हो रही थी। अत्याचारों का ताना पूर्ववत् बना हुआ था। गोपालशंकर लाट साहब से कहता है—'उस समय आप लोगों की मदद करके मैंने भीषण भूल की। नहीं कि मेरे मन में उस समय तक, और ईश्वर जानता है कि मैं सत्य कहता हूँ, यह विश्वास था कि अंग्रेजों का हमारे देश में आना हमारे जगत के और समय के कल्याण का कारण हुआ है। मगर आज मेरी विचार धारा बदल गई है और मैं सोचने लगा हूँ कि यह सब मन आपका नहीं जमाने का है और यहाँ मेरे मुल्क में जो कोई भी होता हिन्दू, मुसलमान या ईसाई वही जमाने की चपेट में पड़कर वैसी ही उन्नति करता जो आप लोगों ने यहाँ आकर इस देश में की। माफ कीजियेगा, उस समय के और आज के मेरे दृष्टिकोण में अन्तर पड़ गया है और अभी हाल ही में जो शासन प्रणाली के परिवर्तन आपने किये हैं उनको और देखना हुआ मैं सोचने लगा हूँ कि क्या मैंने 'भयानक भार' (रक्तमंडल के मुखिया) का विरोध

कर गलती तो नहीं की ? अगर अपने अद्भुत अस्त्र शस्त्रों की मदद से निकटक एशिया को स्वतन्त्र करते है तो मुझे उनके मार्ग मे बाधक होने का कोई कारण नही है, लेकिन अगर वे अत्याचार करेंगे, उसकी मदद से खुद अपना राज्य कायम करने की चेष्टा करेंगे तो आप विश्वास रखें, माई लार्ड, कि मेरे यन्त्र, मेरी बुद्धि, मेरा शरीर आगे बढेगा और उनके मार्ग का बाधक होगा।''

स्याम जाकर गोपालशंकर उपनिवेशवादियो की बर्बरता को देखते हैं और उनका भ्रम दूर हो जाता है– ''अभी तक मैं समझता था कि काली, भूरी और पीली जातियो पर सफेद जाति का प्रभुत्व होना प्रकृति की दया है, इससे वे उन्नत होगी और अपनी दशा सुधारेंगी, पर आज मैं समझ गया हूँ कि परमात्मा का शाप उन पर पड़ा है ..मैं जान गया हूं कि क्रूरता और बर्बरता मे आप लोग नादिरशाह और चंगेज से कहीं बढ़ कर है। वे लोग तो केवल शरीर के आभूषण और पीठ के कपड़े उतार लिया करते थे, पर आप लोग तो शरीरो का रक्त तक खीच लेते हैं।''

खत्री जी के इन जासूसी उपन्यासो मे राजनीति का हृदय स्पन्दित है। राजनीतिक उपन्यासो के तत्वो के अभाव के उपरान्त भी पात्रो की राष्ट्रीय भावना ऐसी है जिसे आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दो मे, साहित्यिक या राजनीतिक लकलका कहकर नजर अन्दाज नही किया जा सकता 'जो पाठक को बेहोश तथा अभिभूत कर देता है।' नागर जी के मत से सहमत होते हुए हम भी यह कहना चाहेंगे कि ''जासूसी उपन्यासो की इस बाढ मे 'रक्तमडल' और 'सफेद शैतान' जैसे उपन्यासों की दूसरी कडी नहीं मिलती। इन दोनो उपन्यासो मे उभरकर आनेवाली साम्राज्यवादी विरोधी भावना, उपनिवेशी उत्पीडन और अनाचार से ग्रस्त अपने देश की और समूचे एशिया की जनता के प्रति सहानुभूति, इन उपन्यासो को एक ऐसी विशिष्टता प्रदान कर देती है जो अन्य उपन्यासो मे नही मिलती।''[1]

'रक्त मडल' के साम्राज्यवाद विरोधी तीव्र अभिव्यक्ति के कारण ही उसे ब्रिटिश सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया था।



१ आलोचना, वर्ष ४, अंक १, पृष्ठ २००

अध्याय ५

प्राक् स्वाधीनता युग के राजनीतिक उपन्यास

> राजनीतिक स्थिति—समाजवादी चेतना का विस्तार, कांग्रेस की स्थिति, द्वितीय महायुद्ध की प्रतिक्रिया, बयालीस की क्रांति, दिल्ली चलो, बंगाल का अकाल, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक स्थिति, नाविक विद्रोह, अन्तरिम सरकार, स्वतंत्रता-प्राप्ति एवं देश-विभाजन।

> राजनीतिक उपन्यासकार एवं राजनीतिक उपन्यास

> उपन्यासकार यशपाल—व्यक्तित्व, राजनीतिक एवं साहित्यिक मान्यताएं

> यशपाल के राजनीतिक उपन्यास—

* दादा कामरेड
* देश द्रोही
* पार्टी कामरेड
* मनुष्य के रूप
* झूठा सच

> 'अंचल' के राजनीतिक उपन्यास—

* चढ़ती धूप
* नई इमारत
* उल्का

> रांगेय राघव के उपन्यासों में राजनीतिक तत्व—

* विषाद मठ
* हुजूर
* सीधा सादा रास्ता

प्रेमचन्द जी की मृत्यु के उपरान्त भारतीय राजनीति में द्रुतगति से परिवर्तन हुए। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक विचारधाराओं का भी सम्यक विवेचन किया जाने लगा। कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में जवाहरलाल जी नेहरू ने अपने भाषण में कहा था "दुनियां में दो प्रतिस्पर्धी राजनीतिक और आर्थिक ढांचे तैयार है, ये दोनों व्यवस्थाएँ इस समय एक दूसरे के प्रति सहनशील है, पर उनमें मौलिक विरोध है और वे दुनिया पर आधिपत्य जमाने के लिए लड़ रही है। एक व्यवस्था पूँजीवाद की है जो अनिवार्य रूप से उपनिवेशीकरण द्वारा साम्राज्यशाही शक्तियों को जन्म देती है, ये साम्राज्यवादी शक्तियाँ एक दूसरे को हड़प लेने को उतावली रहती है, दूसरी व्यवस्था सोवियत यूनियन के नये समाजवाद की है जो दिनोंदिन उन्नति कर रहा है - यद्यपि बहुधा इसके लिए बड़ी कीमत चुकानी पड़ती है, यहाँ पूँजीवाद की समस्याएँ नहीं है।"

यहाँ यह स्मरणीय है कि प्रेमचन्द जी का झुकाव भी साम्राज्यवादी उपनिवेशवाद और पूँजीवाद के विरुद्ध और समाजवाद के पक्ष में था और जिसकी स्पष्ट झलक उनके अंतिम अपूर्ण उपन्यास 'मंगल सूत्र' में दिखलायी पड़ती है।

समाजवाद के प्रति उन्मुख होने पर भी आलोच्यावधि में इस दिशा में ऐसा कुछ नहीं हुआ जिसे महत्वपूर्ण उपलब्धि माना जा सके। सन् १९३०–३४ के सविनय अवज्ञा आन्दोलनों में गाँधी जी के सिद्धान्तों के मत-वैभिन्य होने पर कांग्रेस के एक पक्ष ने रचनात्मक कार्यों के स्थान पर किसान-मजदूर संगठन की आवश्यकता पर बल दिया जिससे अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष किया जा सके।

समाजवादी विचारधारा को परिपुष्ट करने की दृष्टि से सन् १९३१ में कांग्रेस के अन्दर ही समाजवादी पार्टी की स्थापना की गई थी। समाजवादी दल ने अपना जो कार्यक्रम स्वीकार किया उसमें ४ मुद्दे प्रमुख थे—

(१) मजदूरों और किसानों को स्वतन्त्रता और समाजवाद की प्राप्ति के लिए शक्तिशाली रूप से संगठित कर जन-आन्दोलन को गतिशील बनाना।
(२) समस्त साम्राज्यवादी युद्धों का विरोध करना।
(३) वैधानिक प्रश्नों पर अंग्रेजी सरकार से कोई समझौता वार्ता न करना, और
(४) सत्ता प्राप्ति के बाद भारत का विधान बनाने के लिए संविधान सभा गठित करना।

कांग्रेस के वाम पक्ष का झुकाव मार्क्सवाद की तरफ होने से समाजवादी विचार धारा को गति मिली। अनेक महत्वपूर्ण नेताओं का समर्थन भी उन्हें प्राप्त हुआ।

इतना होने पर भी मार्क्सवाद की जड़ें गहरी न जा सकीं क्योंकि जनता का व्यापक सहयोग उन्हें प्राप्त न हो सका।

सन् १९३३-३४ में बिखरे हुए कम्युनिस्टों का संगठनात्मक एका होने पर जब कार्य को आगे बढ़ाने का अवसर आया द्वितीय महायुद्ध के समय प्रमुख कम्युनिस्टों को जेल में डाल दिया गया। किन्तु युद्ध में जर्मनी के रूस पर हमले और रूस के मित्र राष्ट्रों के साथ सम्मिलित होने से युद्ध के प्रति कम्युनिस्टों का रुख बदल गया। उन्होंने युद्ध को 'लोकयुद्ध' कहा और सहयोग देने की इच्छा व्यक्त की। ऐसी स्थिति में अधिकांश कम्युनिस्ट दल्ला छोड़ दिए गए।

कांग्रेस की स्थिति

विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओं के बावजूद भी जनता का आस्था कांग्रेस और उसके सिद्धान्तों के ऊपर थी। भारतीय राजनीतिक मुक्ति के लिए कांग्रेस अपने सिद्धान्तों पर अडिग थी किन्तु उसके साथ वह अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को भी अपनी दृष्टि से ओझल नहीं होने देती थी। समाज तथा विचारधारा में बदल हुए स्वरूप का देखते हुए जवाहरलाल जी नेहरू को कांग्रेस का अध्यक्ष चुना गया क्योंकि 'वह पुराने और नये में एक जोड़ने वाली कड़ी थे। वह गांधीवाद और साम्यवाद के बीच एक सेतु की तरह थे।'[1] राष्ट्र में समाजवादी चेतना को देखकर ही कांग्रेस ने खतिहर कार्यक्रम हाथ में लिया। कांग्रेस के अध्यक्ष के साम्यवादी दृष्टिकोण की प्रबलता का आभास इसी से किया जा सकता है कि 'उनके विचारों में पूरा साम्यवाद का दम था।'[2]

कांग्रेस ने प्रान्तीय धारा सभाओं के चुनाव के लिए एक चुनाव घोषणा पत्र तैयार किया। आचार्य कृपलानी ने जो मजदूर कांग्रेस के नेता थे, अपना कार्यक्रम बनाया और मजदूर यूनियनों के सम्बन्धों और औद्योगिक सम्बन्धों के सम्बन्ध में सूचना एकत्र की। ये घटनाएँ इस तथ्य की परिचायक हैं कि कांग्रेस भी कुछ अंशों में समाजवाद से प्रभावित हो गई थी।

कांग्रेस की नीति में समाजवादी चिन्तन का प्रवेश अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी हलचलों का परिणाम मानना चाहिए। सन् १९३६ में सोवियत रूस के नये विधान को स्वीकृति देने के लिए कांग्रेस में २०४० प्रतिनिधि एकत्र हुए थे। डॉ० पट्टाभि सीता

१ डा० पट्टाभि सीतारमैय्या – 'कांग्रेस का इतिहास,' पृष्ठ ९६३
२ डॉ० पट्टाभि सीतारमैय्या – 'स० कांग्रेस का इतिहास,' पृष्ठ ९६४

रमैय्या ने इसे बहुमुखी राष्ट्रीय उन्नति की अभिव्यक्ति निरूपित किया है। उनके शब्दो मे 'पिछले बारह बरसो मे जो आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सास्कृतिक उन्नति हुई थी, उसकी यह अभिव्यक्ति थी। जरा सी देर मे एक विशुद्ध खेतिहर देश, संसार की अत्युन्नत शक्तियो मे गिना जाने लगा था और वहा खेती के साथ उद्योगो का भी समान रूप से विकास हो गया था।' सोवियत रूस की सफलता से एक तरफ मजदूरो और किसानो के अधिकारो पर जोर दिया जाने लगा, दूसरी तरफ फासिस्टवाद और साम्राज्यवाद का विरोध किया जाने लगा।

फैजपुर अधिवेशन (१९३७) मे काग्रेस ने विश्वयुद्ध होने पर ब्रिटिश साम्राज्यवाद को युद्ध सम्बन्धी सहायता न देने तथा सीमा से लगे राष्ट्रो से मैत्री सम्बन्धी प्रस्ताव पारित किया था। फैजपुर अधिवेशन के बाद ही चुनाव हुए और मद्रास, सयुक्त प्रान्त, मध्यप्रात, बिहार और उडीसा मे काग्रेस का बहुमत रहा और पजाब और सिंध मे वह अल्प सख्यक थी। बगाल, बम्बई, आसाम और सीमाप्रान्त मे काग्रेस सब से बडी पार्टी थी।

चुनाव के उपरांत मन्त्रिमडल बने और राष्ट्रीय जीवन मे एक नई प्रक्रिया प्रारम्भ हुई।

काग्रेस मन्त्रिमडल स्थापित होने पर किसानो और मजदूरो की स्थिति मे कोई अन्तर नही आया और किसानो ने अपना सगठन कायम किया। इस बार उन्होने हसिया-हथौडा वाला लाल रग का सोवियत झडा अपनाया और किसानो और कम्यु निस्टो मे यह झडा अधिकाधिक चल पडा और पं० जवाहर लाल नेहरू के लगातार कहने सुनने पर भी स्थिति मे सुधार नही हुआ।'[1] कुछ प्रान्तो मे समाजवादियो ने कम्युनिस्टो का साथ देना शुरू कर दिया और कुछ मे वे राष्ट्रवादियो मे मिल गये। हिंसा और अहिंसा के बीच पुन सघर्ष उठ खडा हुआ। जनता मे मन्त्रिमडलो के प्रति गहरा असतोष व्याप्त हो गया। और 'जनता आश्चर्य से पूछने लगी कि यह जमीदार किस तरह अब भी कायम है, पुलिस के जुल्म क्यो बदस्तूर जारी हैं, किसानो के कष्ट और दुःख अब भी क्यो दूर नहीं हो पाते, हिंसा के अभियोगो मे दण्डित लोग अब भी क्यो जेलो मे सड रहे हैं?'

सत्ता पाकर काग्रेस के कार्यकर्त्ताओ का भी नैतिक पतन होने लगा था। स्वय काग्रेस महासमिति ने एक प्रस्ताव मे कहा - 'नागरिक स्वतन्त्रता के नाम पर लोग—कुछ काग्रेसजन भी—कत्ल, आगजनी लूटपाट और हिंसात्मक वर्गयुद्ध का प्रचार करते

---

१ डॉ० पट्टाभि सीतारमैय्या—'कांग्रेस का इतिहास,' पृष्ठ ३१८

पाये गये हैं, बहुत से अखबार झूठ और हिंसा का प्रचार कर रहे है, हिंसा के लिए उभार रहे है और प्रत्यक्ष झूठ को चला रहे हैं।'

इन्हीं तथा अन्य कारणों से कांग्रेस मे आपसी मतभेद होने लगा और सुभाष-चन्द्र बोस ने मतभेदो के कारण सन् १९३८ मे कांग्रेस मे एक अग्रगामी दल (फारवर्ड ब्लाक) की स्थापना की। दल का कार्यक्रम त्रिसूत्री था—वामपक्षीय सदस्यो का सगठन, कांग्रेस के बहुमत का समर्थन प्राप्त करना और आजादी के लिए राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रारम्भ। इसने पूर्ण राजनीतिक स्वतन्त्रता व स्वतन्त्र सोशिलिस्ट सरकार की स्थापना का लक्ष्य स्वीकार किया और ब्रिटिश भारत और देशी रियासतो मे एक साथ साम्राज्य विरोधी आन्दोलन की तैयारी का नारा दिया।

द्वितीय महायुद्ध को प्रतिक्रिया

कांग्रेस के आपसी मतभेद जिन दिनो चरम सीमा पर पहुँच रहे थे सन् १९३९ मे द्वितीय महायुद्ध का सूत्रपात हुआ जिससे भारतीय राजनीति मे आमूल परिवर्तन आ गया। द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ होते ही वायसराय ने बिना किसी से सलाह लिये इस युद्ध मे भारत के शामिल होने की घोषणा कर दी। कांग्रेस ने इसका विरोध किया और दिसम्बर १९३९ तक कांग्रेस मंत्रिमडलो ने इस्तीफा दे दिया।

रामगढ अधिवेशन (१९४०) मे मौलाना अबुलकलाम आजाद ने घोषणा करते हुए कहा, 'भारत नात्सीवाद या फासिस्टवाद का भविष्य सहन नही कर सकता पर ब्रिटिश साम्राज्यवाद से वह और भी ऊब चुका है। यदि भारत को स्वतन्त्रता का अपना अधिकार नहीं मिलता तो इसका अर्थ यही होगा कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद अपनी तमाम परम्पराओ और विशेषताओ के साथ पनप रहा है। और ऐसी हालत मे भारत इसकी विजय मे मदद करने के लिए किसी भी तरह तैयार न होगा।'

कांग्रेस ने सविनय अवज्ञा का कदम उठाने का निश्चय किया और गाँधी जी इसके सेनापति बनाये गये।

गाँधी जी ने वायसराय से चर्चा कर कहा कि 'अगर हम सरकार से ऐसी घोषणा प्राप्त कर सकें कि कांग्रेस युद्ध विरोधी तथा युद्ध की सरकारी तैयारियो से असहयोग का प्रचार कर सकेगी तो हम सविनय अवज्ञा आन्दोलन नही करेंगे।' वायसराय गाँधी जी के इस विकल्प को इसलिए स्वीकार नही कर सका क्योंकि इससे युद्ध प्रयत्नो मे शिथिलता आती। दूसरे युद्ध सहायक विरोधी गतिविधियो के लिए सुभाष चन्द्र बोस को पहले ही सरकार ने गिरफ्तार कर लिया था।

भारत रक्षा कानून के नाम पर सरकार ने कांग्रेस का दमन करना प्रारम्भ कर

दिया, यद्यपि उस समय तक सत्याग्रह प्रारम्भ न हो सका था। दो हजार व्यक्ति पकड़े गये और जनता के नागरिक अधिकारों पर आघात किया गया। सरकार की दमन-नीति को देखकर १७ अक्टूबर १९४० को युद्ध विरोधी आन्दोलन प्रारम्भ किया गया। विनोबा जी ने युद्ध विरोधी भाषण से इसका श्रीगणेश किया।

कांग्रेस के सविनय अवज्ञा आन्दोलन के फलस्वरूप अपनी कौंसिल में सदस्य संख्या में वृद्धि कर आठ नरम दलीय भारतीय शामिल कर लिये। युद्ध सलाहकार कौंसिल की रचना भी हुई और सरकार ने अपना रुख बदला।

जापान के युद्ध में शामिल हो जाने के कारण एक नई स्थिति उत्पन्न हुई। जापान ने अंग्रेज सेना के मुख्य सेनापति जनरल हण्ट का आत्म समर्पण के लिए विवश कर दिया और उसने १५ फरवरी १९४२ को सेना के ७० हजार सिपाहियों को हथियार रख देने की आज्ञा दी। इसमें ४० हजार हिन्दुस्तानी सिपाही थे जिसे जापानी सेनापति कप्तान फुजीवारा ने कैप्टन मोहनसिंह की कमान में या ने देश की आजादी के युद्ध के लिए सौंप दिए। कुछ समय बाद मोहनसिंह से मतभेद होने पर जापानियों ने उन्हें गुप्त रूप से गायब कर दिया और राष्ट्रीय सेना को तोड़ देना पड़ा

भारत में एक नई जागृति फैलने लगी। मार्च १९४२ में ब्रिटिश युद्ध मंत्रिमंडल के सदस्य स्टैफर्ड क्रिप्स राजनीतिक गत्यावरोध दूर करने के लिये एक सुझाव लेकर भारत आये। सुझाव की भूमिका में कहा गया है 'ध्येय यह है कि नये भारतीय यूनियन का ऐसा डोमिनियन स्थापित किया जाय जो ब्रिटिश ताज के प्रति निष्ठा द्वारा ब्रिटेन व दूसरे राष्ट्र मण्डलीय राष्ट्रों से सम्बन्ध रखें लेकिन हर अर्थ में उनके समान और बराबर हो—आन्तरिक या परराष्ट्र सम्बन्धी किसी मामले में किसी के आधीन न हो।'

क्रिप्स ने प्रस्ताव पर विभिन्न राजनीतिक दलों के नेताओं से चर्चा की। रायटर पर कहा, 'यह मेरे पैरों हुण्डी है जो भविष्य में ही भुन सकती है, चाहे इस स्वीकार करो चाहे न करो।' क्रिप्स की यह समझौता-यात्रा असफल रही और इससे गहरी निराशा फैली।

गांधी जी ने अप्रैल १९४२ को कांग्रेस महासमिति और कार्य समिति को सुझाव दिया कि—'क्रिप्स प्रस्ताव ने साम्राज्यवाद का नग्न रूप सामने रख दिया है, ब्रिटेन भारत की रक्षा में असमर्थ है, भारतीय और ब्रिटिश हितों में विरोधाभास है, जापान भारत से नहीं ब्रिटिश साम्राज्य से युद्ध कर रहा है, युद्ध में भारत का शामिल होना विशुद्ध रूप से ब्रिटिश निर्णय है और अंग्रेजों को भारत छोड़ देना चाहिए, ताकि भारतवासी देश की रक्षा कर सकें। भारत की जापान या अन्य देशों से कोई दुश्मनी नहीं है किन्तु जापान यदि भारत पर हमला करता है तो उसे अहिंसात्मक असहयोग

का सामना करना पड़ेगा।' मसौदे में गांधी जी का कथन था कि ब्रिटेन मित्रभाव और शान्तिपूर्ण ढंग से भारत छोड़ दे।

वयालीस की क्रांति

इसी आधार पर गांधी जी ने १९४२ के आन्दोलन का संगठन किया और बम्बई में महासमिति के ऐतिहासिक अधिवेशन में कहा—"मैं फौरन आजादी चाहता हूं। आज रात को ही, कल सवेरे से पहले आजादी चाहता हूं—अगर वह प्राप्त हो सके। अब आजादी साम्प्रदायिक एकता की प्रतीक्षा नहीं कर सकती। यदि वह एकता अभी प्राप्त हुई तो उसके लिए सब जितनी कुरबानी करना पड़ेगी, पहले उससे कम में काम चल जाता। पर कांग्रेस को आजादी हासिल करनी है या उसे हासिल करने की कोशिश में मिट जाना है। और यह भी न भूलो कि जिस आजादी को पाने के लिए कांग्रेस जूझ रही है वह सिर्फ कांग्रेस जनों के लिए ही न होगी, वरन् भारत की ४० करोड़ जनता के लिए होगी। कांग्रेस जनों को सदैव जनता के तुच्छ सेवक बने रहना है।

जनता से उन्होंने कहा "इसी क्षण से तुममें से हर स्त्री पुरुष का अपने को स्वाधीन मानना चाहिए और इस तरह काम करना चाहिए मानो तुम आजाद हो और साम्राज्यवाद के चंगुल में जकड़े हुए नहीं हो। यही स्वतन्त्रता का सत्य है। गुलामी की जंजीर उसी वक्त टूट जाती है जिस क्षण गुलाम अपने को स्वतन्त्र मान लेता है।" गांधी जी ने स्पष्ट रूप से निर्देश दिया था, 'कोई भी काम छिपाकर नहीं किया जायगा यह खुला विद्रोह है। इस संघर्ष में छिपाव पाप है। स्वाधीन व्यक्ति को छिपकर कोई काम नहीं करना चाहिए।' उन्होंने जनता को 'करेंगे या मरेंगे' का क्रांति मन्त्र दिया।

गांधी जी वायसराय से मिलने के बाद यह आन्दोलन प्रारम्भ करना चाहते थे। किन्तु ९ अगस्त को प्रातः ही उन्हें व कांग्रेस कार्यसमिति के सदस्यों को साथ गिरफ्तार कर अज्ञात दिशा की ओर भेज दिया गया। कांग्रेस समितियाँ अवैध घोषित कर दी गईं। जनता आश्चर्य चकित देखती रही और तीव्र आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। सरकार का दमन चक्र चला।

आन्दोलन के सम्बन्ध में गांधी जी ने गृह सचिव को अपने पत्र में लिखा था कि 'कांग्रेस की नीति अहिंसा की है और इस बात में कोई संशय नहीं है। कांग्रेस नेताओं की अंधाधुंध गिरफ्तारियों से जनता इतनी क्रोधित हो गयी लगती है कि अपना आत्म सन्तुलन खो बैठी। मेरी धारणा है कि जो विनाश हुआ है उसके लिए कांग्रेस नहीं, सरकार जिम्मेदार है।'

सरकार के दमन चक्र के कारण आन्दोलन ने गुप्त रूप धारण कर लिया और गुप्त उपायों से उसे जीवित रखा गया।

दिल्ली चलो

जिन दिनों सारे देश में 'करो या मरो' की ललकार गूंज रही थी उन्हीं दिनों सुभाषचन्द्र बोस जुलाई १९४३ में पूर्वी युद्ध क्षेत्र में अवतीर्ण हुए। नेता जी के रूप में आई० एन० ए० को नया जीवन मिला और 'दिल्ली चलो' का नारा बुलन्द हुआ। ये दोनों क्रांति की सेना के दो मोर्चे थे और ये एक दूसरे के पूरक। देश को स्वाधीन करने में इन दोनों मोर्चों का अपना-अपना योग था।

पूर्वी युद्ध क्षेत्र की स्थिति ऐसी थी कि उससे भारतीय स्वतन्त्रता युद्ध में लाभ उठाया जा सकता था। बर्मा के प्रमुख भाग पर जापान का अधिकार हो गया था और आसाम के रास्ते भारत पर आक्रमण करने का मार्ग खुल गया था। सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व में २१ अक्तूबर १९४३ को 'स्वतन्त्र भारत की अस्थायी सरकार' की स्थापना हुई। इसके घोषणापत्र में कहा गया, 'अस्थायी सरकार का यह काम होगा कि वह अंग्रेजों और उनके साथियों को भारत से निकालने के लिए युद्ध करे। इसके पश्चात् अस्थायी सरकार आजादहिंद में लोकप्रिय प्रजातन्त्र शासन की स्थापना करेगी। जब तक अंग्रेज भारत से न निकल जायें और जब तक आजादहिंद की राष्ट्रीय सरकार मातृभूमि में स्थापित न हो, तब तक अपने अधिकार में आये हुए प्रदेशों का शासन अस्थायी सरकार भारतीय प्रजा के ट्रस्टी के तौर पर करेगी।'

आजाद हिन्द फौज को सम्बोधित करते हुए नेता जी ने कहा था, 'भारत के सिपाहियो ! वहां दूर पर नदियों और जंगलों और पहाड़ों के पार हमारा देश है—जहां की मिट्टी से हम सब बने हैं, जहां हम अब जा रहे हैं। सुनो ! हिन्दुस्तान पुकार रहा है ! हिन्दुस्तान की राजधानी, दिल्ली तुम्हें पुकार रही है। हमारे ३८ करोड़ देशवासी पुकार रहे हैं। खून-खून को पुकार रहा है। उठो ! अब खोने के लिए समय नहीं है ! हथियार उठाओ ! दिल्ली का रास्ता आजादी का रास्ता है। दिल्ली चलो !'

सन् १९४४ के अन्तिम महीनों में जापान की निरन्तर पराजय ने आई० एन० ए० की गतिविधियों को कुंठित कर दिया और उनके पांव उखड़ गये। उन्हें भी जगह-जगह पर आत्म समर्पण करना पड़ा।

बंगाल का अकाल (१९४३)

महायुद्ध से उत्पन्न विभिषिकाओं में से एक बंगाल का अकाल था। सरकार के अनुसार इस अकाल में १५ लाख व्यक्ति मरे पर कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्राच्य मानव विज्ञान विभाग ने अकाल ग्रस्त गांवों में जांच करके जो अनुमान लगाया उसके अनुसार ३४ लाख व्यक्ति मरे। युद्ध के कारण बड़ी मात्रा में चावल बाहर भेजा गया

और मुनाफाखोरों ने इस जघन्य पाप में १५० करोड़ रुपये का मुनाफा कमाया। इस दुर्भिक्ष की अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिक्रिया हुई। समाचार पत्रों और नेताओं ने ब्रिटिश जनमत का ध्यान आकर्षित किया। मजदूर नेता विलियम डोवी ने इस दुर्भिक्ष को मनुष्य निर्मित बताया। उन्होंने कहा—'जो दुर्भिक्ष भारत पर छाया हुआ है वह मनुष्य का पैदा किया हुआ है। इसका मुख्य कारण है कि शासन करने वालों ने जनता का सहयोग न प्राप्त करके देश में उत्पात और अव्यवस्था उत्पन्न कर दी।'

बंगाल के दुर्भिक्ष ने देशवासियों के मन में एक गहरा असंतोष उत्पन्न किया।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक स्थिति

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक परिवर्तनों के कारण ब्रिटिश शासन को अपनी नीतियों में परिवर्तन करने को बाध्य होना पड़ा। इधर संसार का लोकमत और उधर अमरीका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट का विशेष आग्रह कि भारत की परिस्थिति को शीघ्र ही संभाला जाय, इसलिए इंगलैंड को अपने व्यवहार में कुछ नर्मी लाने के लिए बाध्य होना पड़ा। इसी बीच १९४५ में इंगलैंड में चर्चिल मंत्रिमंडल का पतन हुआ और मजदूर दल विजयी हुआ। इस परिवर्तन से ब्रिटेन की भारत संबंधी नीति में परिवर्तन आया।

इसी बीच अंग्रेज सरकार ने आजाद हिंद फौज के अधिकारियों पर मुकदमा चलाया और इससे देश में जोश की ज्वाला सी भड़क गई। इस संबंध में इन्द्र विद्यावाचस्पति का यह कथन महत्वपूर्ण है कि अंग्रेजी सरकार ने भारत के दो शताब्दियों के शासन काल में मूर्खताएं तो कई कीं, परन्तु आजाद हिन्द फौज के अधिकारियों पर अभियोग चलाने की मूर्खता के बराबर कोई न थी।

नाविक विद्रोह

आजाद हिन्द फौज के अधिकारियों पर चलाये गये अभियोग का सम्पूर्ण राष्ट्र में खुल कर विरोध किया और परिणाम स्वरूप वे अभियोग मुक्त कर दिये गये। जनता को अपनी शक्ति पर विश्वास हुआ और सबसे बड़ी बात यह हुई कि ब्रिटिश शासन के प्रति विद्रोह के कीटाणु सेनाओं में भी प्रविष्ट हुए।

सन् १९४६ को १९ फरवरी को रायल इण्डियन नेवी के भारतीय नाविकों ने विद्रोह कर दिया। ब्रिटिश साम्राज्य के इतिहास में यह प्रथम अनहोनी घटना थी। विद्रोह का कारण था भारतीय और अंग्रेज नाविकों के प्रति भेदभाव पूर्ण व्यवहार। यह विद्रोह कई दिन चला और सारे देश में हलचल मच गई।

कम्यूनिस्टों ने इस विद्रोह का समर्थन किया किन्तु कांग्रेस और लीग दोनों इसके

विरोध में थे। आश्चर्य की बात है कि विद्रोही नाविकों ने शासकीय अंग्रेजी सेनाओं को आत्मसमर्पण न करके समझौते में सरदार पटेल की मध्यस्थता व शर्तें स्वीकार की। तात्पर्य कि भारत में ब्रिटिश शासन के मूल स्तम्भ भारतीय सेनाओं में भी राष्ट्रीय चेतना का जागरण हो चुका था।

मिल मजदूरों द्वारा कारखानों में हड़तालों का सिलसिला भी सरकार के लिए सिरदर्द बना हुआ था। एक शासकीय प्रतिवेदन के अनुसार सन् १९४६ में १९, ६१,००० मजदूरों ने हड़ताल की जिसमें २७, १७,००० घंटों का नुकसान हुआ।

इन हड़तालों ने मजदूरों में राजनीतिक चेतना का प्रसार किया और वर्ग-संघर्ष के लिए वातावरण बनाने में योग दिया।

अस्थायी सरकार का निर्माण और साम्प्रदायिक दंगे

अन्तर्राष्ट्रीय दबाव तथा भारत में आए दिन होने वाली घटनाओं से निर्मित आन्तरिक स्थिति को दृष्टिगत रख इंगलैंड की पार्लियामेंट ने १६ फरवरी १९४६ को एक मिशन की घोषणा की और बताया कि उक्त मिशन भारतीय लोकमत के नेताओं से मिलकर भारत की राजनीतिक स्वाधीनता की योजना प्रस्तुत करेगा। मिशन अपने प्रयत्नों में असफल रहा और उसने परामर्श दिया कि नया संविधान बनने तक वायसराय अपनी कैबिनेट का ऐसी रीति से निर्माण करे कि उसमें देश के विभिन्न दलों के प्रतिनिधि हों और उसे अस्थायी सरकार का रूप दिया जा सके। लीग और कांग्रेस का समझौता न होने पर वायसराय ने १६ भारतीय सदस्यों की एक कौंसिल की घोषणा कर दी।

मुस्लिम लीग ने इसका विरोध किया और १६ अगस्त १९४६ को 'प्रतिवाद दिवस' मनाने की घोषणा की। इस सीधी कार्यवाही का उद्देश्य था 'पाकिस्तान प्राप्त करना, मुसलमानों के न्याय सगत अधिकारों का दावा करना और वर्तमान अंग्रेजों की गुलामी और भविष्य में कल्पित स्वर्ण हिन्दुओं की गुलामी से छुटकारा लेकर अपना राष्ट्रीय आत्म सम्मान प्राप्त करना।'[1] बंगाल के लीग मंत्रिमंडल ने उस दिन सार्वजनिक छुट्टी घोषित की। परिणाम स्वरूप कलकत्ता में जो खूनी उत्पात हुआ वह भारतीय इतिहास की एक दु:खद घटना है। हजारों हिन्दुओं के घर लूट लिये गए, सैकड़ों जला दिये गये और अनगिनत व्यक्ति घायल किये गये। दो दिन के बाद जब हिन्दू संगठित हो गये, तो उन्होंने उत्पात का उत्तर उत्पात से देना शुरू किया।

अन्तरिम सरकार के शपथ लेने पर लीग की ओर से 'मातम दिवस' मनाया गया और सम्पूर्ण राष्ट्र में गृहयुद्ध का दृश्य उपस्थित हो गया। नोआखाली में हिन्दुओं पर जो अत्याचार हुआ उससे देश कांप उठा। साम्प्रदायिकता के इस नग्न नृत्य को शांत

करने गांधी जी नोआखाली गये। उन्होंने शान्ति स्थापना के लिए चार माह तक सत्य, अहिंसा, प्रेम-धर्म का प्रचार किया।

नोआखाली की प्रतिक्रिया बिहार में हुई। वहां २५ अक्टूबर को नोआखाली दिवस मनाया गया और मुसलमानों से नोआखाली का बदला लिया गया। गांधी जी के एक वक्तव्य के अनुसार बिहार के उपद्रवों में कम से कम १० हजार व्यक्ति मारे गये।

स्वतन्त्रता एवं देश विभाजन

ऐसी स्थिति में प्रधान मन्त्री एटली ने घोषणा कर दी कि अंग्रेज जून १९४८ तक भारत छोड़ देंगे। इस घोषणा से राष्ट्र में नई राजनीतिक हलचल हुई और लोगों का ध्यान साम्प्रदायिक दंगों की ओर से विमुख हुआ। इसके उपरान्त ३ जून १९४७ को एटली ने देश के विभाजन की घोषणा की। कांग्रेस के सम्मुख इसे स्वीकार करने के अतिरिक्त दूसरा विकल्प न था। गांधी जी इसके विरोध में थे और इसे उन्होंने एक आध्यात्मिक दुर्घटना' और ३२ वर्षों के सत्याग्रह-संग्राम का लज्जाजनक परिणाम बताया।

आलोच्य तिथि के राजनीतिक उपन्यासकारों की रचनाओं के विश्लेषण करने पर उपर्युक्त राजनीतिक विचारधाराओं और राजनीतिक घटनाओं का निम्नांकित विवरण मिलता है। इस काल के प्रमुख उपन्यासकार जैनेन्द्र, यशपाल, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, भगवतीचरण वर्मा हैं जिनके उपन्यासों में राजनीतिक संसार दिखाई पड़ता है। आलोच्यकाल में रांगेय राघव कृत 'घरौंदे' व 'विषादमठ', गुरुदत्त के 'स्वाधीनता के पथ पर' व 'पथिक', अमृतलाल नागर कृत 'महाकाल', यज्ञदत्त शर्मा कृत 'दो पहलू,' राधिका रमण सिंह के 'पुरुष और नारी,' श्रीनाथ सिंह कृत 'जागरण' तथा मन्मथनाथ गुप्त के 'चित्र' में राजनीतिक पक्ष गहराई के साथ चित्रित हुआ है। इनमें से अधिकांश लेखकों ने स्वातन्त्र्योत्तर काल में भी राजनीतिक उपन्यासों की सृष्टि की। इस परिच्छेद में आलोच्यावधि के उन प्रमुख राजनीतिक उपन्यासकारों का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है जिन्होंने प्राक् स्वाधीनता युग से प्रारम्भ कर स्वतन्त्र्योत्तर काल तक राजनीतिक उपन्यास लिखे।

राजनीतिक उपन्यासकार यशपाल

प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी राजनीतिक उपन्यासकारों में यशपाल अग्रणी हैं। राजनीतिक पृष्ठभूमि में जन जीवन, सामाजिक संघर्षों और राष्ट्रीय जागृति का चित्रण मार्क्सवादी दृष्टिकोण से करने के कारण इन्हें जनवादी उपन्यासकार माना जाता

है। वर्तमान मध्यवर्गीय समाज का चित्रण उन्होंने मार्क्सवादी समाज दर्शन और मतवाद के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इसीलिए कहा गया है कि 'यशपाल ने उपन्यास को सिद्धान्त-प्रचार का साधन बनाया है'[1] और यह सत्य भी है क्योंकि उनके सभी पात्र मार्क्सवादी सिद्धान्तिक भूमिका से ही संचालित हैं।

यशपाल की उपन्यास कला और उसमें निहित राजनीतिक तत्वों का विश्लेषण तथा विवेचन करने के लिए उनके व्यक्तित्व को समझना आवश्यक है।

व्यक्तित्व

यशपाल का जन्म पंजाब के एक मध्यवर्गीय परिवार में हुआ। परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी और इनकी मां अध्यापन करके परिवार का भरण-पोषण करती थीं। पंजाब भारतीय राष्ट्रीय जाग्रति का प्रमुख केन्द्र रहा है और वहां सामाजिक सुधार में आर्यसमाज का महत्वपूर्ण योग रहा है। प्रारम्भिक रूप में राष्ट्रीय भावना के प्रसार में आर्य समाज जैसी संस्थाओं की भूमिका अत्यन्त महत्व की रही है।

यशपाल का परिवार आर्य समाज के सिद्धान्तों का अनुयायी था। उनकी मां के हृदय में देश भक्ति की भावना उत्कट रूप में थी और वे अवसरानुकूल कांग्रेस के कार्यों में भी सक्रिय भाग लिया करती थीं। इसी राष्ट्रीय भावना के कारण उन्होंने यशपाल को प्राथमिक शिक्षा हेतु गुरुकुल में प्रविष्ट कराया। आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण इनकी फीस आदि नहीं लगती थी और अस्वस्थ रहने से विशेष रूप से निशुल्क खाद्य की व्यवस्था थी। इस स्थिति में उनमें हीनावस्था से पूंजीवाद के विरुद्ध घृणा की गांठ छात्रावस्था से पड़ गई।

बाद में उन्होंने लाहौर नेशनल कालेज में प्रवेश लिया। जहां उनका सम्पर्क सुखदेव व भगतसिंह से हुआ जो क्रांतिकारी गतिविधियों में भाग लेते थे। यशपाल के बचपन के राष्ट्रीय संस्कार प्रबल हुए और वे कांग्रेस के आंदोलनों में स्वयं सेवक के रूप में भाग लेने लगे। किन्तु सत्याग्रह के प्रति उनके विचार शीघ्र ही बदल गये और वे इस दार्शनिक तत्व पर पहुँचे कि 'यदि भय और आत्मरक्षा की प्रवृत्ति मनुष्य में स्वाभाविक है तो आत्म हनन को सत्याग्रह का नाम देकर लक्ष्य बना लेना जरूर स्वाभाविक है।' राष्ट्र की परतन्त्रता से क्षुब्ध होकर यशपाल व भगतसिंह ने राष्ट्र के लिए जीवन अर्पण का संकल्प 'हिन्दुस्तानी समाजवादी प्रजातंत्र सेना' के में रूप क्रांतिकारी दल गठित किया और सामूहिक सशस्त्र क्रांति की योजनाएं रूप लेने लगीं। लाला लाजपतराय को लाठी

1. शिवनारायण श्रीवास्तव — 'हिन्दी उपन्यास,' पृष्ठ ३२२

मारने वाले पुलिस इन्स्पेक्टर सैन्डर्स को गोली मारने के बाद फैक्टरी के पकड़े जाने पर यशपाल को फरार होना पड़ा।

क्रान्तिकारी दल में काम करते हुए उनका सम्पर्क दल की एक सदस्या प्रकाशवती से हुआ। वे उनकी ओर आकृष्ट हुए और बिना दल की अनुमति के पति पत्नी सम्बन्ध स्थापित कर लिया। दल के लोगों ने इसका विरोध किया और यशपाल का दल के अनुशासन भंग करने के आरोप में गोली मार देने का निश्चय किया गया। किसी सदस्य के द्वारा निर्णय की जानकारी यशपाल को भी हुई और उन्होंने आजाद का अपना स्पष्टीकरण देने का प्रयास किया। आजाद ने यह जानकर कि दल में गोपनीयता भंग होती है दल का ही भंग कर दिया। यशपाल को यह अच्छा न लगा और वे आजाद की सहायता से क्रान्तिकारी प्रयासों में लगे रहे। बाद में आजाद भी शहीद हो गये और १९३२ में यशपाल गिरफ्तार कर लिये गये। यशपाल पर मुकदमा चला और १४ वर्ष का कारावास का दंड मिला। इस बीच दल बिखर गया, राजनीतिक परिस्थितियां बदल गई।

सन् १९३७ में कांग्रेसी मन्त्रिमंडल बना और राजनीतिक बन्दी मुक्त किये गये। यशपाल अस्वस्थ थे। मार्च २ मार्च १९३७ को रिहाई के बाद वे ४ ५माह भुवाली सैनिटोरियम में रहे।

कारावास की अवधि में यशपाल का सारा समय अध्ययन एवं चिन्तन में व्यतीत हुआ। उन्होंने देखा कि भारतीय समाज का एक भाग समाजवादी विचारधारा से प्रभावित हो रहा है और साम्यवादी दल क्रियाशील हो गया है। अतः यशपाल ने बौद्धिक रूप से मार्क्सवाद का ग्रहण कर उसे साहित्य के माध्यम से प्रचार व प्रसार का माध्यम बनाया।

यशपाल की राजनीतिक एवं साहित्यिक मान्यताएं

जिन मनर्षों के बीच यशपाल का व्यक्तित्व उभरा है बहुत अंशों में उनका प्रभाव ही उनकी साहित्यिक चेतना का आधार है। यही कारण है कि उनकी मान्यता है कि 'यदि जीवन संघर्ष है और कला जीवन की भावना की अभिव्यक्ति है तो कला संघर्ष का द्योतक हुए बिना नहीं रह सकती केवल निरर्थक कला ही संघर्ष द्वारा विकास की भावना से शून्य हो सकती है।'[1]

वे मार्क्सवादी हैं और स्टालिन के इस कथन को स्वीकार करते हैं कि 'कलाकार मानव आत्मा का इन्जीनियर है।' उनकी कला का उद्देश्य मन बहलाव ही नहीं किन्तु समाज का भौतिक और सांस्कृतिक कल्याण होना चाहिए।[2] साम्यवादी

१ यशपाल — 'बात-बात में बात', पृष्ठ २८
२ यशपाल — 'बात-बात में बात',

विचार धारा के वाहक होने के कारण वे कला की सार्थकता सामाजिक जीवन की पूर्णता के प्रयत्न में मानते हैं। 'दादा कामरेड' की भूमिका में उन्होंने इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए लिखा है, "कला को कला के निर्लिप्त क्षेत्र में ही न रखकर मैं उसे भावों या विचारों का वाहक बनाने की चेष्टा क्यों करता हूँ ?... क्योंकि जीवन में मेरी साध केवल व्यक्तिगत जीवन-यापन ही नहीं बल्कि सामाजिक जीवन की पूर्णता है, इसलिए कला में सब कुछ जोड़कर भी मैं कला को केवल व्यक्तिगत सतोष के लिए नहीं समझ सकता कला का उद्देश्य है जीवन में पूर्णता का यत्न। बजाय इसके कि कला का यत्न बहुत कर हवा में पैंतरे बदलकर शांत हो जाय, क्या यह भी अधिक अच्छा नहीं कि वह समाज के लिए विकास और नवीन कला के लिए आधार प्रस्तुत करे।[1]

स्पष्ट है कि यशपाल का साहित्यकार एक पूर्व निर्धारित राजनीतिक भावभूमि के अनुरूप ही चिन्तन और मनन करता है। उसके भीतर साम्यवाद के संस्कार अत्यन्त प्रबल हैं और वह इन सिद्धान्तों को नहीं स्वीकार कर सकता जिनके अनुसार किसी बनी बनाई लीक अथवा नपे तुले आदर्शों के आधार पर साहित्य की प्रगति और उसका उन्नयन नहीं हो सकता, बदलते हुए समय के साथ ही प्रगति का मार्ग भी बदलेगा। हमारे आदर्शों में भी परिवर्तन और उलट फेर होंगे। साहित्य के साथ जीवन को सम्बद्ध किये रखने का आशय इतना ही है कि जीवन मर्यादिनी आधार भूत चेतना साहित्य से लुप्त न हो जाय। जीवन का लक्ष्य है जीना। जीवन जितना व्यापक और समुन्नत स्वरूप धारण कर सके उतनी ही साहित्यकार की कृत कार्यता होगी।[2]

कहने की आवश्यकता नहीं कि यशपाल की दृष्टि में प्रगतिवादी साहित्य विशिष्ट राजनीतिक सिद्धान्तों का साहित्यिक संस्करण है। वे लिखते हैं — "प्रगतिशील साहित्य का काम समाज के विकास के मार्ग में आने वाली अन्ध विश्वास, रूढ़िवाद की अड़चनों का दूर करना है। समाज को शोषण के बन्धनों से मुक्त करना है कार्यक्रम में प्रगतिशील क्रान्तिकारी सर्वहारा श्रेणी का अस्त्र साधन बनना प्रगतिशील साहित्य का ध्येय है। काल्पनिक सुखों की अनुभूति के भ्रम जाल को दूर करके मानवता की भौतिक और मानसिक समृद्धि के रचनात्मक कार्य के लिए प्रेरणा देना प्रगतिशील साहित्य का मार्ग है।[3] प्रगतिशीलवादी साहित्य प्रत्येक वस्तु को यथार्थ की दृष्टि से देखता है। वह इन्द्रियानुभव को ही सत्य स्वीकार करता है और इसी के अन्तर्गत कुरूप सत्य को अभिव्यक्ति देता है। यशपाल ने इसी सामाजिक यथार्थवाद का प्रतिपादन किया है। यशपाल के उपन्यास-

---

१. यशपाल — 'दादा कामरेड दो शब्द', पृष्ठ ४
२ आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी — 'आधुनिक हिन्दी साहित्य,' पृष्ठ ३२८
३ यशपाल — बात बात में बात, पृष्ठ २७

साहित्य के संबध मे एक समीक्षक का कथन है कि 'यदि यशपाल के उपन्यासो मे फ्रायड के प्रभाव को निकाल दिया जाय तो उनका साहित्य सामाजिक यथार्थवाद का प्रतिनिधित्व कर सकता है यशपाल का दृष्टिकोण सर्वत्र सामाजिक यथार्थवादी और निर्वैयक्तिक रहा है।'[1] साम्यवाद के प्रबल आग्रह के साथ उन्होने सामाजिक समस्या जनित चित्रो का अकन किया है यह एक मूलभूत तथ्य है। और इस आधार पर ही यशपाल के उनके उपन्यासो का विवेचन किया जा सकता है। साम्यवादी जीवन दर्शन के आलोक मे ही उपन्यासो की छटा देखी जा सकती है। वस्तुत- 'यशपाल आधुनिक नागरिक जीवन के चित्रकार हैं और भारत का सर्वहारा वर्ग प्रथम बार आपके पात्रो मे अपना विजयी स्वर उठाता है। मार्क्सवाद के वैज्ञानिक विचार-दर्शन को उपन्यास कला मे ढालने का पहला प्रयास यशपाल ने किया है।'[2] स्वय यशपाल का कथन है, 'देश की जनता की मुक्ति केवल क्राति द्वारा ही सम्भव है। क्राति से हमारा अभिप्राय केवल जनता और विदेशी सरकार मे सशस्त्र सघर्ष ही नही है। हमारी क्राति का लक्ष्य एक नवीन न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था है। इस क्राति का उद्देश्य पूजीवाद को समाप्त कर श्रेणी विहीन की स्थापना करना और विदेशी तथा देशी शोषण से जनता को मुक्त कर आत्मनिर्णय द्वारा जीवन का अवसर देना है। इसका उपाय शोषको के हाथ से शासन शक्ति लेकर मजदूर श्रेणी की स्थापना ही है।'[3]

यशपाल मार्क्सवादी साहित्यशैली के यथार्थवादी उपन्यासकार हैं।

यशपाल के उपन्यासो का वर्गीकरण

यशपाल के राजनीतिक एवं साहित्यिक जीवन के मध्य की विभेदक रेखा अत्यत सूक्ष्म है। राजनीतिक जीवन मे जिस साम्यवाद का उन्होंने अवलम्ब लिया उन्ही धारणाओ को साहित्य मे अभिव्यक्ति दी। कहा गया है कि विभिन्न कथाओ और घटनाओ के आधार से स्वय के सिद्धान्तो का प्रकटीकरण लेखक का उद्देश्य है। यही कारण है कि उनके प्रायः सभी उपन्यास केवल 'अमिता' को छोडकर राजनीतिक वातावरण की प्रमुखता लिये हुए हैं। उनके एक अन्य उपन्यास 'दिव्या' मे यद्यपि इतिहास की मार्क्सवादी व्याख्या है तथापि उसके बौद्धकालीन ऐतिहासिक उपन्यास होने के कारण वह हमारी विवेचना के अन्तर्गत नही आता। उपरोक्त दो उपन्यासो को छोडकर यशपाल के अन्य उपन्यास निम्नानुसार हैं—

१ समालोचक – 'यथार्थवाद विशेषाक, फरवरी १९५९, पृष्ठ १९४
२ आलोचना – जनवरी, १९५७, पृष्ठ ८८
३ यशपाल – 'सिंहावलोकन,' पृष्ठ १४४

१—दादा कामरेड (१९४१)
२—देशद्रोही (१९४३)
३—पार्टी कामरेड (१९४६)
४—मनुष्य के रूप (१९४९)
५—झूठा-सच (दो भाग)

प्रथम भाग — 'वतन और देश' (१९५८)
दूसरा भाग — 'देश का भविष्य' (१९६०)

मार्क्सवादी जीवन दर्शन ही उनकी नवीन विचारधारा का मूल है जो उनके प्रत्येक उपन्यास में व्याप्त है।

दादा कामरेड

'दादा कामरेड' यशपाल का प्रथम राजनीतिक उपन्यास है जो उन्होंने क्रांतिकारी के रूप में लम्बे कारावास से मुक्त होने के उपरान्त लिखा। त्रिभुवन सिंह के शब्दों में 'दादा कामरेड' हिन्दी साहित्य में पहला उपन्यास है जिसमें रोमान्स और राजनीतिक सिद्धान्तों का मिश्रण हुआ है। यह उपन्यास शरद बाबू के बंगला उपन्यास 'पथेर दावी' द्वारा क्रान्तिकारियों के जीवन और आदर्शों के सम्बन्ध में उत्पन्न हुई भ्रामक धारणाओं का निराकरण करने के लिए लिखा गया है। इतना ही नहीं बल्कि यह श्री जैनेन्द्र की आदर्श पुरुष का खिलौना 'सुनीता' का उत्तर भी है।[1]

'दादा कमरेड' के लेखन के पीछे लेखक का चाहे जो मतव्य रहा हो किन्तु इस में सदेह नहीं कि इसमें तत्कालीन राजनीतिक धारणाओं को अभिव्यक्ति मिली है। तत्कालीन राजनीतिक विचारधारा में मुख्य रूप से गाँधीवाद, आतंकवाद तथा साम्यवाद थी। कथावस्तु का विस्तार राजनीतिक क्रान्तिकारी दल से विस्तार पाता है। और आतंकवाद व गाँधीवाद की शक्ति की क्षीणता को बतलाते हुए साम्यवादी जीवन-दर्शन के उत्कर्ष को उद्घाटित कर एक विशेष वर्ग के प्रति सहानुभूति का प्रसार करता है। उपन्यासकार ने भूमिका में लिखा भी है 'समाज में पूँजीवाद, गाँधीवाद और समाजवाद के संघर्ष के बीच परिस्थितियों, व्यवस्था और धारणाओं में सामजस्य ढूँढने का इस पुस्तक में प्रयास किया गया है।'

उपन्यास के प्रमुख पात्र हैं दादा कामरेड, जो पहले आतंकवादियों के नेता के रूप में सम्मुख आते हैं, कामरेड बनकर साम्यवादी जीवन दर्शन के माहत्म्य का दिग्दर्शन करते हैं। दादा का साथी है हरीश जो जेल से भागा हुआ क्रांतिकारी है, उपन्यास में

१ त्रिभुवन सिंह — 'हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद,' पृष्ठ २०५

में जिसके अनेक नाम तथा रूप हैं, साम्यवादी जीवन दर्शन को स्वीकार कर अपने जीवन का बलिदान कर नवीन चेतना का प्रतिनिधित्व करता है।

प्रारम्भ में पाठक हरीश को सशस्त्र क्रांति में आस्थावान पाता है। किंतु जेल से भागने के बाद वह अनुभव करता है कि 'गुप्त पार्टी बना दस-पांच आदमियों में अपनी शक्ति को सकुचित कर देने से कोई लाभ नहीं है।' वह कहता है 'अब तक हमारी संपूर्ण शक्ति डकैतियां करने में अधिकतर और कुछ राजनीतिक हत्याओं में काम आई है। किन्तु हमारा उद्देश्य तो यह नहीं है। हमारा उद्देश्य तो यह है कि हम देश की जनता का शोषण समाप्त कर उनके लिए आत्मनिर्णय का अधिकार प्राप्त करना। हमें अपना टेकनीक बदलना चाहिए—बजाय शहादत के परिणाम की ओर ध्यान देना चाहिए। रूस ने क्या किया ?—हम अपने आदमियों के जरिए कांग्रेस में घुसें और दूसरे जन आंदोलन में हाथ उठावें।'

हरीश का दूसरा रूप शैला के प्रणयी के रूप में हम देखते हैं। शैलबाला से वह आन्दोलन के प्रति सहानुभूति और सहायता तथा स्वयं के लिए स्नेह प्राप्त करता है। दल का एक अन्य सदस्य है बी० एम० जो शैल को चाहता है और हरीश और शैल के प्रेम-बंधन को देखकर ईर्षालु हो जाता है। वह शैल को अपने प्रति आकर्षित करने में असफल हो दादा तथा पार्टी के अन्य सदस्यों के बीच हरीश पर यह आरोप लगाता है कि उसने पार्टी की 'सैम्पैथाइजर' शैला को पार्टी के कार्य से दूसरे लोगों से मिलने और घर छोड़ने के लिए मना किया है। पार्टी की बैठक बुलाई गई जिसमें हरीश भी गया। बैठक में हरीश के अभियोगों की चर्चा की गई जिसे उसने असत्य प्रमाणित किया। वह बैठक में आतंकवादी नीति का विरोध और सामूहिक जन क्रांति के पक्ष में अपने विचार व्यक्त करता है। वह कहता है 'जनता से दूर गुफाओं और तहखानों में बंद रह कर हम न तो जनता का सहयोग पा सकते हैं और न उनका नेतृत्व कर सकते हैं। यह पिस्तौल, रिवॉल्वर और बम एक तरह से हमारी क्रांति के मार्ग की रुकावट ही नहीं बन रहे, बल्कि यह हमें खाये जा रहे हैं। हमारी सम्पूर्ण शक्ति समाप्त हो जाती है एक डकैती करने में ताकि हम और हथियार प्राप्त कर सकें। इस डकैती से हमें क्या मिलता है ? जनता की सहानुभूति से हम वंचित हो जाते हैं। हम सौ पचास आदमी तो स्वराज्य नहीं ले सकते। स्वराज्य को जनता का संयुक्त प्रयत्न ही ला सकता है।'[1]

मतभेद की इसी तीव्रता के कारण पार्टी हरीश को गोली मार देने का निर्णय लेती है। शैल को यह निर्णय ज्ञात हो जाता है और वह हरीश को लेकर अपने मित्र राबर्ट और सखी नैनसी के साथ मसूरी जाती है जहां हरीश अपने को मिराजकर के

---

१. यशपाल—'दादा कामरेड,' पृष्ठ ४६

रूप में बदल कर मजदूरों का संगठन कर क्रान्ति की जागृति फैलाता है। मजदूरों के क्वार्टरों में रहकर वह कपड़ा मिल के सेक्रेटरी का काम करने लगा। संगठन हो जाने पर वह मिल में हड़ताल करवा देता है। आर्थिक कठिनाइयों के कारण हड़ताल टूटने की शंका होती है।

दादा देहली पार्टी को पैसे भेजने के लिए सेठ भोलाराम जीवाराम के यहां डकैती डालते है और शैल से मिलने और यह जानने पर कि उसे रुपये की आवश्यकता है रुपया उसे दे देते है। शैल वह रुपया हरीश को दे आती है। हड़ताल सफल होती है किन्तु हरीश को डाका डालने के अपराध में गिरफ्तार कर लिया जाता है। अदालत में वह साम्राज्यवाद की शोषण नीति के विरोध में वक्तव्य देता है। हरीश को प्राण दण्ड दिया गया।

इधर शैल गर्भवती हो जाती है और उसे लाला ध्याननन्द (पिता) कलंकिनी कहकर घर से निकल जाने का आदेश देते हैं। हरीश के प्राणदण्ड का समाचार पढ़कर दादा शैल से मिलने आते हैं और शैल के आश्रय मांगने पर उसे अपने साथ ले जाते हैं हरीश द्वारा जलाई हुई ज्योति की रक्षा के लिए।

संक्षेप में यही 'दादा कामरेड' की कथावस्तु है जो क्रांतिकारियों के हिंसात्मक आन्दोलन, कांग्रेस के अहिंसात्मक विद्रोह तथा साम्यवादी दल की हड़तालों व मजदूर संगठनों के आधार को लेकर विस्तार पाती है। कथानक तत्कालीन विशेषतः १९३०से १९३६ की राजनीतिक भाव का होने पर भी इसकी घटनाएं यथार्थ नहीं काल्पनिक हैं। राजनीतिक पात्र भी काल्पनिक हैं। एक आलोचक के मतानुसार दादा के रूप में प्रसिद्ध क्रांतिकारी चन्द्रशेखर आजाद का और हरीश के रूप में स्वयं यशपाल का व्यक्तित्व झलकता है।[1] किन्तु राजनीतिक दृष्टि से देखने पर यह युक्ति संगत प्रतीत नहीं होता। उपन्यास की घटनायें काल्पनिक हैं और उनका उपरोक्त व्यक्तियों के जीवन से संबंध नहीं है। केवल मात्र हरीश और शैल के प्रेम संबंध और परिणाम स्वरूप पार्टी द्वारा हरीश को प्राणदण्ड की सजा देने तथा शैल द्वारा यह ज्ञात होने पर हरीश के आरोपों का स्पष्टीकरण देने की घटना की समता क्रान्तिकारी यशपाल व प्रकाशवती (श्रीमती यशपाल) से हो सकती है। आजाद का यशपाल से घनिष्ठ संबंध रहा है किन्तु दादा में उनके व्यक्तित्व का या जीवन घटनाओं का सादृश्य नहीं है। वस्तुतः दादा कामरेड में किसी व्यक्ति विशेष का चित्रण न होकर क्रांतिकारियों तथा साम्यवादियों की कार्यप्रणालियों का यथार्थवादी चित्रण किया गया है। कांग्रेस के अहिंसात्मक आन्दोलन के साथ-साथ चलने वाले क्रांतिकारियों के हिंसात्मक आन्दोलन तथा क्रांति-

---

१ त्रिभुवन सिंह—'हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद,' पृष्ठ २०५

कारियो के अनुशासन संबंधी कठोर नियमो का सजीव तथा इतिहास सम्मत चित्रण किया गया है। क्रान्तिकारियो के अन्दर संदिग्ध व्यक्तियो को गोली से उड़ा देने की व्यवस्था थी इसका संकेत हमे उस एक मत्रणा से मिल जाता है जिसमे डाका डालने की योजना बनाई जा रही थी। मजदूरो के हड़ताल का चित्र तो स्पष्ट्तः रूसी साम्यवाद की ओर सकेत है।

इस राजनीतिक उपन्यास मे यशपाल के राजनीतिक एव सामाजिक विचारो को अभिव्यक्ति मिली है और जो नवीन समाजवादी चेतना की ओर इगित करती है। प्रकाशचन्द गुप्त के मत से 'दादा कामरेड मे आप (यशपाल) आतकवाद मे टूटती आस्था और मार्क्सवाद मे दृढ होते हुए विश्वास की कथा कहते हैं।'[1]

कतिपय आलोचक राजनीतिक उपन्यासो मे रोमास की स्थापना को उचित नही मानते। यशपाल के उपन्यासो मे राजनीतिक-रोमान्स की उद्भावना उनका अपना शिल्प वैशिष्ट्य है। 'दादा कामरेड मे जिस रोमान्स की योजना की गई है, वह ठीक है पर उसको चित्रित करने मे जिस सयम की आवश्यकता थी उसका निर्वाह इस उपन्यास मे नहीं हो सका है।'[2] शैल के रूप मे नारी का जो स्वरूप प्रस्तुत किया गया है वह पाठक की श्रद्धा का पात्र न बन सकेगा यह यशपाल स्वयं अनुभव करते हैं और इसीलिए वे लिखते हैं 'आवरण के कुछ प्रेमियो को शैल के व्यवहार मे नग्नता दिखाई देगी। इस तरह का चरित्र पेश करना वे आदर्श की दृष्टि से घृणित समझेंगे। हो सकता है शैल उनकी सहानुभूति न पा सके।'[3]

यही कारण है कि यशपाल के उपन्यासो मे मार्क्स तथा फ्रायड दोनो के ही आत्यन्तिक दृष्टिकोणो का समाहार हुआ है। इस वैशिष्ट्य के कारण ही विद्रोह और काम दोनो का सापेक्ष विश्लेषण उनके उपन्यासो मे मिलता है।

देशद्रोही

यशपाल का दूसरा राजनीतिक उपन्यास 'देशद्रोही' सन् १९४३ मे प्रकाशित हुआ। 'दादा कामरेड मे शरत बाबू के 'पथ के दावेदार' के बाद का क्रान्तिकारी जीवन है, 'देशद्रोही' मे प्रेमचन्द के गोदान के बाद का राजनीतिक जगत। दादा कामरेड का धरातल राष्ट्रीय है, देशद्रोही का धरातल अन्तर्राष्ट्रीय।'[4] 'देशद्रोही' मे भारतीय साम्यवादी दल का समर्थन किया गया है तथा सन् १९४२ की क्रांति मे साम्यवादी

---

१ आलोचना जनवरी १९५७, पृष्ठ ८४
२ सुरेशचन्द्र तिवारी—यशपाल और हिन्दी कथा साहित्य
३ यशपाल—'दादा कामरेड,' भूमिका मे
४ शांतिप्रिय द्विवेदी—सामायिकी, पृष्ठ २८१

दल की भूमिका का स्पष्टीकरण किया गया है। 'गांधीवाद तथा कांग्रेस की आलोचना एवं रूसी समाजवाद का प्रतिपादन इस उपन्यास का लक्ष्य प्रतीत होता है।'[1]

उपन्यास की कथा का आधार सन् बयालीस की क्रांति है तथा सम्पूर्ण कथा-वस्तु ९ प्रकरणों में विभक्त है। कथा आरम्भ में राजनीतिक दशाओं के वर्णन से प्रारम्भ होती है और नायक खन्ना के सीमान्त जाने की घटना से कथा में आकस्मिक मोड़ आता है। यहाँ से मूल कथा दो सूत्रों में विभक्त हो विकसित होती है। कथा का पहला सूत्र दिल्ली और उसके आसपास के वातावरण में रहता है, परन्तु उसका दूसरा सूत्र खन्ना के साथ अन्तर्राष्ट्रीय धरातल का स्पर्श करता है। खन्ना सीमाप्रान्त के फौजी अस्पताल का डाक्टर है। एक रात छापा मारकर वजीरी लोग लूट के सामान के साथ डॉ० खन्ना को भी ले जाते हैं। इस स्थल पर वजीरियों के पाशविक व्यवहार का रोमांचकारी वर्णन है। वजीरियों को लालच था कि डाक्टर खन्ना के परिवार वाले काफी रुपया देकर उसे छुड़ा लेंगे। खन्ना वजीरियों के प्रस्ताव के अनुसार अपने घर पत्र लिख कर चार हजार रुपये की माँग करता है जिससे वह मुक्त हो सके। किन्तु प्राय पाँच महीने बाद जब कबीले के एक वजीरी ने बन्नू से लौटने के बाद समाचार दिया कि उसका पत्र दिल्ली भेज दिया गया था किन्तु उसका उत्तर प्राप्त नहीं हुआ। ऐसी स्थिति में वजीरी खन्ना को ईद के दिन कलमा पढ़कर उसे मुसलमान बना देते हैं। अब वह खन्ना से अन्सार होकर गजनी लाया गया और उसका प्रबन्ध पोस्तीनों के व्यापारी अब्दुल्ला के हाथ बेच दिया गया। यहीं उसका सम्पर्क अब्दुल्ला के पुत्र नासिर से होता है जो उदार, सहृदय और नवीन भावनाओं का युवक है। नासिर अपने ज्ञान के अनुसार खन्ना से भारत और रूस की राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन के बारे में जिज्ञासा करता है। इधर अब्दुल्ला की सांघातिक बीमारी में चिकित्सा एवं परिचर्या के कारण अब्दुल्ला अन्सार से प्रभावित हो अपनी पुत्री नर्गिस का विवाह अन्सार से कर देता है। नर्गिस के सान्निध्य में खन्ना अपनी पत्नी राज को विस्मृत करने का प्रयत्न करता है। किन्तु कुछ समय उपरांत उसका मन उद्वेगहीन, उद्देश्यहीन जीवन से उकता गया और एक दिन वह नासिर के साथ चरस के व्यापारियों की सहायता लेकर गुप्त रूप से रूस के स्तालिनाबाद पहुँचते हैं। वहाँ से वे अधिकारियों द्वारा समरकंद भेजे गये और अधिकारियों के प्रश्नों का संतोषप्रद उत्तर देने पर अन्सार को चिकित्सा विभाग में तथा नासिर को तेल के कारखाने में काम दिया गया।

स्वास्थ्य गृह में डाक्टर का सम्पर्क खोज विभाग के अध्यक्ष डॉ० जिमोनोफ, शिशुशाला की अध्यक्षा कामरेड खातून, तथा एक अन्य स्त्री कार्यकर्त्री गुलशों से होता

१. शिवनारायण श्रीवास्तव—'हिन्दी उपन्यास,' पृष्ठ ३२४

हे। जिमोनोफ को राजनीति से रुचि न थी। उन्हें वैज्ञानिक अनुसंधान की सुविधाएं प्राप्त थीं और इससे वे सन्तुष्ट थे। कामरेड वतून आरशाही युद्ध म पर्याप्त यन्त्रणा झेल चुकी थी और अब साम्यवाद के लिए 'इस स्त्री के लिए जीवन का प्रत्येक कार्य ससार व्यापी पूँजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध निरन्तर युद्ध की शृखला है।' गुलशा को डाक्टर मे प्रेम है और जिसके प्रति डाक्टर का आकर्षण भी दुर्दमनीय था। किन्तु राज का विचार डाक्टर को गुलशा के मोहपाश से दूर रखता। अपनी पलायन वृत्ति के कारण डाक्टर समरकन्द मे टिक न सका और राजनीतिक शिक्षा ग्रहण करने के लिए मास्को चला गया। वहीं उसे नासिर मिल गया। कुछ दिन वहां रहने के उपरांत डॉ० व नासिर काले समुद्र की राह भारत की ओर चल पडे।

खन्ना की अनुपस्थिति म स्वदेश म जो क्या-सूत्र रह जाता है, वह इतनी लम्बी अवधि म अनेक मोड ले चुकता है। पति का समाचार न मिलने स डाक्टर की पत्नी राजदुलारी अत्यन्त व्याकुल होती हैं और इसी स्थिति म अब उन्हें सीमान्त के फौजी अधिकारियो से डाक्टर खन्ना की मृत्यु का सवाद मिलता है तो वे मृत्यु की आकाक्षा से अफीम खा लेती हैं। किन्तु तत्काल उपचार हो जाने से वे बच जाती हैं। उनको दुःख और चिन्ता की इस स्थिति मे डाक्टर खन्ना के मित्र शिवनाथ व बद्रीबाबू से बहुत सहायता व समवेदना मिलती है। ये दोनो ही राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता थे। शिवनाथ व डाक्टर एक समय आतकवादी दल के सदस्य थे और बम के आतक से राष्ट्रोद्धार की योजना कार्यान्वित करना चाहते थे। किन्तु पहले ही बम म शिवनाथ पकड लिया गया और उसे सजा हुई। जेल से छूटने के बाद वह समाजवादी दल का नेता हो गया। बद्रीबाबू दक्षिण पथी काग्रेसी थे जो गाँधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम म अटूट आस्था-वान थे। मजदूरी के कार्यक्रम को लेकर शिवनाथ ने उनके नेतृत्व का चुनौती-सी दी। बहुत दिनो तक पति का शोक मनाते रहने के बाद जब राज ने अपने घर म अपनी वास्तविक स्थिति देखी तो वह बद्री बाबू की प्रेरणा से उनके सेवाश्रम म जाकर उनको सहयोग देने लगी। इस तरह राज बद्रीबाबू के निकट आई और एक दिन समाचार प्रकाशित हुआ, 'राजनैतिक विवाह' देहली के प्रसिद्ध नेता बद्रीबाबू का श्रीमती राज दुलारी से अदालती विवाह।' तीसरे ही दिन समाचार था —'चादनी चौक देहली में युद्धविरोधी व्याख्यान देने के कारण त्यागमूर्ति बद्रीबाबू की गिरफ्तारी।' राज रानी खेत म आश्रम म रहने लगी और वहां कुछ समय उपरान्त उसे पुत्र प्राप्ति हुई। सन् १९४२ की क्रांति प्रारम्भ हुई और शिवनाथ फरार होकर मजदूरों को ध्वसकार्य के लिए प्रेरित करता रहा।

खन्ना भारत पहुँचकर कुछ दिन बम्बई मे नाम बदलकर कम्युनिस्ट पार्टी का कार्य सचालन करता रहा तदुपरान्त कानपुर पहुँच डाक्टर वर्मा के नाम से दवा की

दुकान खोलकर पार्टी का काम करने लगा। रूस के ऊपर जर्मन आक्रमण होने ही साम्यवादियों ने महायुद्ध को सज्ञा दी और सरकार ने भी पार्टी के ऊपर से प्रतिबंध उठा लिये। उन दिनों शिवनाथ की बहिन यमुना, राज की बहिन चन्दा व उसके पति कानपुर में ही थे। डाक्टर खन्ना यमुना से मिले और वहीं उनकी भेंट शिवनाथ से हुई। सैद्धान्तिक मतभेद होने पर भी दोनों मित्रों में पूर्ववत् स्नेह था। डाक्टर चन्दा के घर भी आते जाने लगा। दोनों एक दूसरे के प्रति आकर्षित हुए। एक ओर शिवनाथ युद्ध प्रयत्न में रोड़े अटकाने के लिए मिल मजदूरों को ध्वंस कार्यों के लिए प्रोत्साहित करता है दूसरी ओर खन्ना लोकयुद्ध की सफलता के लिए अपनी पार्टी के साथ कार्यरत है। शिवनाथ के भड़काने से मजदूर एक मिल में आग लगाना चाहते हैं और खन्ना व उसके साथी उन्हें रोकने पहुँचते है। दोनों दलों में मारपीट होती है और खन्ना बेतरह घायल हो जाता है। चन्दा को शिवनाथ का खन्ना के नाम एक पत्र मिला जिसमें सहानुभूति व्यक्त करते हुये चेतावनी दी गई थी कि २४ घन्टे के भीतर वह कानपुर छोड़ दे अन्यथा पुलिस को उसको यथार्थ परिचय दे दिया जायेगा।

उसकी चोट का समाचार पा चन्दा व्याकुल हो डाक्टर के घर पहुँची और खन्ना के अनुरोध से राज के पास रानीखेत चल पड़ी। चन्दा के द्वारा समाचार जान राज मूर्छित हो गई और मूर्छा भग होने पर उसने अपनी असमर्थता व्यक्त की। चन्दा खन्ना को लेकर चल पड़ी रास्ते में उसके पति राजाराम आते दिखाई पड़े। पास आते ही उन्होंने चन्दा को पीटना शुरू कर दिया। वह अचेत हो जाती है। खन्ना के पास पहुँचकर राजाराम कह उठा—'धूर्त धूर्त, देशद्रोही, बदमाश! दूसरों के घर आग लगाकर तमाशा देखने वाले बेशरम !'

राजाराम की आज्ञा से कुली खन्ना को डांडी से उठा पत्थरों के बीच समतल भूमि पर लिटा कर चल देते हैं। निराशा व अवसाद से वह उन्हें जाते देखता रहा। बीतते हुए क्षण के साथ उसकी जीवन शक्ति का ह्रास होता है और वह बड़बड़ाता है—'आद मैं देशद्रोही नहीं .... आद उनसे कहना .. हाँ साहस से . . .'

संक्षेप में यही 'देशद्रोही' का कथानक है जो भिन्न-भिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत परिच्छेदों में दिया गया है। उपन्यास का उद्देश्य कांग्रेस कार्यक्रम की अपेक्षा साम्यवादी दल के कार्यक्रम को ऊँचा दिखाना है। उपन्यासकार की दृष्टि में कांग्रेस पूँजीपतियों की संस्था है और उसके भीतर सगठित होकर वैधानिक उपायों द्वारा उसे समाजवादी शक्ति बना सकने का स्वप्न व्यर्थ है। श्रेणी संघर्ष की चेतना शोषित वर्ग में उतनी अधिक जागृत नहीं जितनी कि शोषक वर्ग और उनके सहायकों में हो रही है। कारण यह कि वे शिक्षित हैं और साधन संपन्न। कांग्रेस को जनमत से समाजवादी शक्ति बनाने के प्रयत्न कांग्रेस के विधान के अनुसार अवैधानिक बनते जा रहे हैं। जनमत पैदा करने

के साधन सब पूंजीपतियों के हाथ में है। वे शोषित जनता के 'हाय रोटी' कहने को सकीर्णता, स्वार्थ और श्रेणी हिंसा कहते हैं। और अपनी श्रेणी के अधिकार बढ़ाने के आन्दोलन को 'हाय देश' कह उसे त्याग बताते हैं। यदि कांग्रेस आन्दोलन में सहयोग दे पाने की शर्त ईश्वर में विश्वास होना हो सकती है तो फिर जनता को मूर्ख बनाये जा सकने की कोई सीमा नहीं।'

उपन्यासकार की साम्यवाद पर अटूट निष्ठा है और इस कृति के द्वारा भी उसने मार्क्सवाद का प्रचार किया है। त्रिभुवन सिंह के शब्दों में 'देशद्रोही के अन्दर' दादा कामरेड की भाँति अन्य भारतीय राजनैतिक दलों की छीछालेदर नहीं की गयी है, बल्कि लेखक का एकमात्र लक्ष्य भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का समर्थन करना है। वह साम्यवाद का प्रचार करना चाहता है तथा १९४२ ई० में किये गये देशद्रोह का कलंक अपनी औपन्यासिकता के द्वारा कम्युनिस्ट पार्टी के मस्तक से धोना चाहता है।'[1]

उपन्यास का कथानक सन् बयालीस की क्रांति से सम्बन्धित है और सामयिक समस्याओं के उद्घाटन द्वारा साम्यवादी दल की तत्कालीन रीतिनीति की प्राण प्रतिष्ठा का प्रयत्न किया गया है। कहा गया है कि 'प्रेमचन्द के उपन्यास जिस तरह गाँधीवादी युग के भारतीय जीवन को चित्रित करते हैं, यशपाल का प्रस्तुत उपन्यास उसी तरह उत्तर गाँधीवादी-युग की चेतना को व्यक्त करता है।'[2] डॉ० सुषमा धवन इस उपन्यास को राजनीतिक रोमांस या साम्यवाद का प्रचारवाहक नहीं मानती। उनके मतानुसार 'इसका मूल उद्देश्य समाजवादी मान्यताओं के आधार पर जीवन का विकास दिखाना है, अनेक नारियों के जीवन चित्रण द्वारा सामाजिक विकास के विविध स्तरों का उद्घाटन करना है जिससे नारी के शोषण तथा संघर्ष की वास्तविक परिस्थितियों का बोध हो जाता है।' इसमें संदेह नहीं कि देशद्रोही के उद्देश्य का एक गौण रूप यह भी है किन्तु उसका मुख्य प्रयोजन साम्यवाद का प्रचार करना ही है। द्वितीय महायुद्ध के परिणाम स्वरूप तथा सोवियत संघ के युद्ध में भाग लेने के कारण भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने एक ओर उसे जहाँ जनता का युद्ध निरूपित करने का प्रयास किया वहीं दूसरी ओर जनता ने उनके इस कृत्य को देशद्रोह बताया। डाक्टर खन्ना के प्रतीक के रूप में वे कम्युनिस्टों द्वारा उठाये गये उस राजनीतिक कदम को देशद्रोहिता के स्थान पर देशभक्ति के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। किन्तु खन्ना के निर्बल व्यक्तित्व के कारण वह पाठक की सहानुभूति ही प्राप्त कर सकता है, साम्यवाद के प्रति आकर्षित नहीं। गंगा प्रसाद पाण्डेय का यह मत उचित ही है कि 'काश कि डॉ० खन्ना को लेखक

---

१ त्रिभुवन सिंह—'हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद,' पृष्ठ २०६

२ सुषमा धवन,—'हिन्दी उपन्यास,' पृष्ठ २६६

ने कम्युनिस्ट बनाकर आदर्श के रूप में उपस्थित न किया होता तो देशद्रोही शरद के सामाजिक उपन्यासों के बीच में खप जाता और उसकी गुरुता बढ़ गई होती।'[1]

उपन्यास का नायक होने पर भी वह उपन्यास के प्रारम्भ से ही अप्रत्याशित घटनाओं के भवर जाल में पड़ जाता है और अन्त तक वह इसी भवर में चक्कर लगाता रहता है। वह जीवन पर्यन्त असफलताओं, विरोध और संघर्ष के बीच लेखक के हाथों का खिलौना मात्र प्रतीत होता है। लेखक की इच्छानुसार खन्ना प्रत्येक वातावरण में ढलता चला गया है। वातावरण को उसके चरित्र पर जो प्रतिक्रिया दिखाई गई वह अत्यन्त क्षीण है। कथोपकथन में समाजवाद का विवेचन अच्छा होते भी उसका आधार पात्र उसके विपरीत हो गया है और उसका पोषक न हो सका। वातावरण निर्माण में भी उसके व्यक्तित्व का कोई हाथ नहीं। इस प्रकार पात्र, घटना एवं परिस्थिति सभी में एक प्रकार की कृत्रिमता सी प्रतीत होती है।[2]

उपन्यास के अन्य राजनीतिक पात्र है—बद्री बाबू व शिवनाथ। 'समय का प्रवाह' प्रकरण में खन्ना के साथ शिवनाथ तथा बद्री बाबू के राजनैतिक कार्यक्रम का वर्णन है, *'त्याग की राह'* में *दिल्ली के राजनैतिक जीवन के बीच बद्री बाबू के* व्यंग्यात्मक चित्र हैं। 'अपने की चाह' प्रकरण में कानपुर के राजनीतिक कार्यक्रम के साथ शिवनाथ का चित्रण आता है।

बद्रीबाबू गांधीवादी आदर्शों के प्रतीक हैं। खन्ना के साथ उनका तुलनात्मक चित्रण प्रस्तुत करने और साम्यवादी नेता की तुलना में कांग्रेसी नेता को उपहासास्पद स्थिति में चित्रित करने की दृष्टि से उपन्यासकार ने बद्री बाबू को अपने व्यंग का लक्ष्य बनाया है। 'जिस रूप में उनका चित्रण किया है उससे वे और वह महान संस्था जिसका वे प्रतिनिधित्व करते है स्थान स्थान पर उपहासास्पद हो उठी हैं।[3] बद्रीबाबू सादगी की प्रतिमूर्ति है—सादा भोजन, साधारण वेशभूषा और व्यवहार भी सादा। मजदूरों का सा जीवन-यापन करते हुए भी समय बचाने के विचार से मोटर का प्रयोग करने में वे नहीं चूकते। 'बद्रीबाबू सेवाश्रम में ही रहते। अपनी आवश्यकताओं को उन्होंने कम कर दिया, मोटा खाना, मोटा पहनना और यथा सम्भव पैदल चलना। सेवाश्रम के काम के लिए उन्हें चांदनी चौक जाना पड़ता तो पैदल जाते। यह देख उनकी सुविधा और समय के विचार से सेठ भाटिया ने अपनी एक मोटर उनके व्यवहार के लिए दे दी।

मोटर और दूसरे यंत्रों से बद्री बाबू को प्रेम न था। जीवन की सादगी को

1. गंगाप्रसाद पाण्डेय—'आधुनिक कथा साहित्य,' पृष्ठ १४०
2. शिवनारायण श्रीवास्तव—'हिन्दी उपन्यास,' पृष्ठ ३३०
3. शिवनारायण श्रीवास्तव—'हिन्दी उपन्यास,' पृष्ठ ३३१

नष्ट कर, उसमे विषमता लाने वाली मशीनरी को भी वे अच्छा न समझते थे, परन्तु उनका समय जनता का समय था। कांग्रेस के दूसरे कार्यकर्त्ताओं के बहुत कुछ कहने-सहने पर इस समय का सदुपयोग करने के लिए उन्होंने मोटर का व्यवहार स्वीकार कर लिया था।

कांग्रेसी की हीनता दिखलाने के लिए ही उनका चरित्र विद्रूप कर दिया गया है। अधावस्था मे विधुर होने के बाद लम्बे अरसे तक एकाकी जीवन व्यतीत करने के बाद प्रौढावस्था मे विधवा राज से पत्नी सम्बन्ध बनाने मे भी उन्हें परहेज नहीं।

शिवनाथ समाजवादी दल का सदस्य है जिसने सन् बयालीस के विप्लव मे साम्यवादी दल का विरोध किया था और राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए विद्रोह किया था। शिवनाथ अपने विद्यार्थी जीवन मे आतंकवादी था। बम ले जाते हुए उसे कारागार हुआ और मुक्त होने पर समाजवादी दल का सक्रिय सदस्य बन गया। कांग्रेस मे उसकी निष्ठा नहीं है और वह उसका समयानुकूल उपहास करता है।

पार्टी कामरेड

राजनीतिक वातावरण से आच्छादित 'पार्टी कामरेड' यशपाल का चतुर्थ उपन्यास है जो सन् १९४६ मे प्रकाशित हुआ। 'पार्टी कामरेड' पदमलाल भावरिया नामक चरित्रहीन पूंजीपति को साम्यवादी कार्यकर्त्री गीता से प्रेम करने के कारण क्रमश परिवर्तित होने तथा अन्त में नाविक सैनिक विद्रोह मे सक्रिय भाग लेकर आत्मोत्सर्ग करते दिखाया गया है। उपन्यास लघुकाय है और इसमे पदमलाल भावरिया का चरित्र विकास और साम्यवादी चेतना का प्रस्फुटन दिखाया गया है। इसके साथ ही नाविक विद्रोह का प्रचड स्वरूप और साम्यवादी दृष्टि से उसकी असफलता का स्पष्टीकरण भी उपन्यास का प्रमुख प्रयोजन है। यशपाल के अन्य राजनीतिक उपन्यासो की भांति प्रस्तुत उपन्यास मे भी पदमलाल भावरिया व गीता के माध्यम से प्रेम प्रसग का रोमांटिक चित्रण है। फिर भी 'पार्टी कामरेड' यशपाल के उपन्यासो मे राजनीति की दृष्टि से अधिक सफल है यद्यपि इसमें भी गीता और भावरिया का प्रेम प्रसग जोड़ा गया है पर राजनीति ने रोमास को दबा दिया है।'[1] वस्तुत. साम्यवादी चेतना को उद्दीप्त करने के लिए ही लेखक ने साम्यवादी कार्यकर्त्री के प्रति प्रेम का सचार दिखाया है *किन्तु ऐसा करने मे वह कुछ चूक कर गया है। भावरिया का चारित्रिक विकास जिस* रूप मे चित्रित किया गया है उसके कारण उसके उत्सर्ग की महानता धूमिल हो गई है। एक समीक्षक के मत से 'लेखक यह नहीं दिखला पाया है कि भावरिया के हृदय

---

१. सुरेशचन्द तिवारी—'यशपाल और हिन्दी कथा साहित्य,' पृष्ठ १०३

मे सामाजिक न्याय की प्रेरणा आ गई या नहीं। वह अपने सामाजिक संस्कारों के कारण नहीं बल्कि गीता के प्रेम को प्राप्त करने के लिए बढ़ा था और अन्य प्रेमियों की भांति उसने भी अपने को प्रेम की वेदी पर बलि दे दी।'[1] यह सत्य है कि भावरिया का चारित्रिक विकास समुज्ज्वल नहीं है उसमे नायक की दुर्बलता ही उभर कर आई है धीरोदात्त स्वरूप नहीं। इसका मात्र कारण यही प्रतीत होता है कि यशपाल यथार्थवादी उपन्यासकार है और वे गुणों के साथ-साथ मानव को स्वाभाविक दुर्बलताओं और परिस्थितियों के प्रभाव के प्रति भी उपेक्षा भाव नहीं रखते।

भावरिया की तुलना मे गीता का चरित्र-चित्रण महत्वपूर्ण है। उसमे नायिका की चारित्रिक दृढ़ता और हृदय की कोमलता का सुमेल है। कालेज के छात्राजीवन मे ही उसमे राजनीति के प्रति अभिरुचि जाग्रत हो जाती है। हम पहले उसे काग्रेस की स्वयंसेविका के रूप मे तथा राजनीतिक जिज्ञासा और फलस्वरूप उसके उचित समाधान होने पर कम्युनिस्ट पार्टी की सक्रिय सदस्यों के रूप देखते हैं। साम्यवादी कार्यकर्ता के रूप मे वह सड़कों पर पार्टी का साहित्य और अखबार बेचती है, पार्टी के लिए घर-घर जाकर चंदा एकत्र करती है। दल के प्रति वह निष्ठावान है और दल को कार्य की आवश्यकता पड़ने पर अपना लाकेट तक देने मे संकोच नहीं करती। सदस्या के रूप मे उसकी (भारतीय नारी) लज्जा और संकोच का स्थान दृढ़ता व आत्मविश्वास ने लिया और पार्टी व पार्टी का कार्य ही उसके लिए सर्वस्व हो गया। इसीलिए कहा गया है कि 'गीता के चरित्र का विकास साम्यवादी दल के सदस्यों के विचार-विनिमय तथा व्यवहार के आधार पर निरूपित किया गया है।' अपने इन्हीं गुणों के कारण वह चरित्रहीन भावरिया को भी न केवल पार्टी का 'सैम्पथाइजर' बना लेती है वरन् नाविक आन्दोलन के अवसर पर उत्सर्ग करने मे प्रेरक सिद्ध होती है। इससे उपन्यास मे करुणा की भावना घनीभूत होती है और वैयक्तिक प्रेम के स्थान पर सामाजिक हित का पक्ष सबल होता है।

राजनीतिक पक्ष

लघुकाय होने पर भी 'पार्टी कामरेड' मे राजनीतिक सिद्धान्तों व राजनीतिक घटनाओं की विवेचना मिलती है। साम्यवादी दल की सजीव झांकियां प्रस्तुत कर उसके कार्य-पद्धति और सिद्धान्तौचित्य का विवरण स्थल-स्थल पर मिलता है। सब वह भी वैसे ही करता था, मास्सफोर्स, प्रोलिटेरिएट, पेट्रियोटिक ड्यूटी, सेल्फ डिटर्मिनेशन, ऐंटी इम्पिरियलिस्ट, आर्गेनाइज्ड-वर्किंग क्लास एड पेजेन्ट्री जैसे मजहर, श्रीनिवास रंगा

---

१ त्रिभुवन सिंह—'हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद,' पृष्ठ २०६

और यूनियन के दूसरे कामरेड[1]—' साम्यवादी दल मे नारी का स्थान, दल का दृढ अनुशासन, पार्टी के सचालनार्थ धन सग्रह की व्यवस्था के साधन पर यथोचित प्रकाश डाला गया है। पात्रों के चारित्रिक विकास के द्वारा इस तथ्य का उद्घाटन भी किया गया है कि कामरेडो का जीवन उनका स्वय का न होकर उनके सिद्धान्ता के लिए होता है और व्यक्तिगत जीवन मे ऐसे कार्य व व्यवहार के लिए स्वतत्र नहीं हैं जिसके कारण पार्टी के उद्देश्य या स्थिति पर विपरीत प्रभाव पडे। उनके कार्य व्यक्तिगत न होकर पार्टीगत होते हैं। पार्टी का सिद्धान्त व अनुशासन ही सर्वोपरि हैं। कामरेड गीता से कहता है 'तुम्हारा जीवन अपने लिए है या उद्देश्य के लिए ? तुम्हारे प्रत्येक व्यवहार का प्रभाव तुम्हारे उद्देश्य पर और पार्टी की स्थिति पर पडता है।' वह यह भी सूचित करता है कि पार्टी के लोग 'मेम्बरो की प्राइवेट लाइफ (व्यक्तिगत जीवन) थोरोली पार्टी की लाइन पर (पूर्णत पार्टी के अनुशासन म) चाहते हैं।'

कांग्रेस का उपहास

साम्यवाद के सिद्धान्तो के प्रचार के साथ कांग्रेस की आलोचना यशपाल के उपन्यासो की सामान्य विशेषता है। कांग्रेस व उसके सिद्धान्तो को नीचा दिखाने के लिए वे किसी कांग्रेसी पात्र का 'कैरिकेचर' (व्यग चित्र) प्रस्तुत करना नही भूलते।

'पार्टी कामरेड' मे कांग्रेस की आलोचना की गई है और कांग्रेस नेता भावरिया का व्यगचित्र खींचा गया है।

'कांग्रेस विदेशी माल का बायकाट करती है और विदेशी माल के व्यापार से कमाया रुपया लेती है। ये जो कांग्रेस के 'इलेक्शनफड' मे बम्बई अहमदाबाद, कानपुर से लाखो की रकम चढी हैं, यह ब्लैक-मार्केट की कमाई है या नहीं ? बङ्गाल का दुर्भिक्ष पैदा करने वाला का रुपया है या नही ? कांग्रेस ने 'बार' का बायकाट किया और 'बार' की सप्लाई करने वालो का बायकाट नही किया, क्योकि वहाँ से लाखो रुपया जो मिल रहा था। यह सब इम्मोरल-मनी' नहीं हुआ[1] ?' गीता मानती है कि उत्पादन और वितरण की असमानता ही साम्राज्यवाद का निर्माण करती है। 'भारतवर्ष इतना बडा देश है, यहाँ की जन सख्या इतनी अधिक है, फिर वह छोटे से देश इगलैण्ड के आधीन क्यो है ? सब पदार्थ और धन श्रम से ही पैदा होते हैं फिर समाज मे श्रम करने वाला की ही अवस्था सबसे बुरी क्यो है ? कोई एक पदार्थ तैयार करने की मजदूरी मजदूर को बहुत कम मिलती है और बाजार मे उस वस्तु का दाम काफी अधिक रहता है। यह अन्तर ही मालिक का मुनाफा और मजदूर का शोषण है। मुनाफा कमाने के लिए

१. यशपाल—'पार्टी कामरेड,' पृष्ठ २५

पूँजीपति व्यवसाय और मजदूरों पर अधिकार जमाता है और फिर व्यवसाय का क्षेत्र बढ़ाने के लिए दूसरे देशों पर अधिकार, यानी साम्राज्यवाद—।[१]

कांग्रेस नेता भावाजी का चित्र नेता बनने के प्रलोभन में चुनाव लड़ने वाले राजनीतिक उम्मीदवारों के नैतिक पतन को स्पष्ट करता है। सैनिक विद्रोह के समय जनता व्यंग से कहती है—'बड़े-बड़े स्वराज के लेक्चर देते रहे। अब जब मौका आया, तोप बन्दूक देखी तो काछ खोलने लगे ।'[२]

नाविक सैनिक विद्रोह

उपन्यास में वर्णित नाविक सैनिक विद्रोह ऐतिहासिक राजनीतिक घटना है। लेखक ने सैनिक विद्रोह के सम्बन्ध में कांग्रेस व साम्यवादी दल के विचारों को व्यक्त करते हुए यह प्रतिपादित करने की चेष्टा की है कि नाविक सैनिक विद्रोह केवल सैनिकों तक ही सीमित न होकर जन साधारण की वस्तु बन गई थी। उसके पीछे अत्याचार दमन और देश-स्वतन्त्रता की पवित्र भावना संयुक्त थी। कांग्रेस सैनिकों की इस कार्यवाही को उचित नहीं मानती थी। भावरिया समाचार पत्र में सरदार पटेल की यह अपील पढ़ कर आश्चर्य चकित रह जाता है—'जनता इस नाजुक परिस्थिति में सब प्रकार शांत रहे। हड़ताल आदि के द्वारा नगर में किसी प्रकार की अशांति न होनी चाहिए। जहाज़ी सिपाहियों ने नेताओं से सलाह लिये बिना सेना का अनुशासन भंग किया है। उनके इस काम में किसी प्रकार का सहयोग जनता को न देना चाहिए।' सरदार पटेल की अपील के अनुसार ही भावाजी हड़ताल न करने और सहयोग न देने का मुहिम चलाते है। सैनिक विद्रोह का समर्थन करने के कारण वे कम्युनिस्ट पार्टी की भर्त्सना करने से नहीं चलते। भावाजी भावरिया को समझाते है –'कल तक यही लोग तो अपने ऊपर गोली चलाते थे, क्यों ? और ऐसे समय यह उपद्रव खड़ा कर दिया इन लोगों ने। भड़काने वाले जो हैं उन्हे तो जानते हो हो ? सन् बयालीस में तो सरकार की बगल में जा छिपे थे। और क्या गांधी जी, सरदार पटेल और नेहरू जी से भी ज्यादा राजनीति समझते हैं यह लोग ? इस वक्त सरकार झुक रही है, समझौते की बात हो रही है, पर इन्हे तो देश का नुकसान जो करना है।'[३]

वे यह भी स्पष्ट करते हैं 'हिंसा-हत्या के काम अपने कांग्रेस के नहीं हैं। सरकार की अपनी फौज और सरकार के झगड़े में अपने को क्या ? अपने पेट के लिए वे लोग हड़ताल कर रहे हैं तो अपने को क्या?'

---

१. यशपाल—'पार्टी कामरेड,' पृष्ठ २२
२ यशपाल—'पार्टी कामरेड,' पृष्ठ १२५
३. यशपाल—'पार्टी कामरेड,' पृष्ठ १२४

कम्युनिस्ट पार्टी विद्रोहियो का समर्थन करती है। पार्टी की ओर से गीता हड़ताल के लिए लोगो से अपील करती है और कहती है—'हमारी नाराजी और विरोध अंग्रेज सरकार के जुल्म के खिलाफ है और हम विदेशी सरकार को चेतावनी देते हैं कि अपने शहीद होने वाले प्रत्येक नौजवान के खून का बदला खून से लेंगे।'[1] कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व मे हुई सफल हड़ताल और पुलिस के नृशंस व्यवहार का चित्रण भी सफलता से किया गया है।

सैनिक विद्रोह को लेखक ने नये विहान के रूप मे देखा—'जिस सैनिक शक्ति से कुचले जाकर भारतवासियो ने सदा विवशता और निर्बलता अनुभव की है वही सैनिक शक्ति देश की पुकार को लेकर आजादी के युद्ध क्षेत्र मे उतर रही थी।' यहाँ यह ज्ञातव्य है कि कांग्रेस और मुसलिम लीग दोनो ने इस नाविक-विद्रोह का समर्थन नहीं किया था। जनता मे अवश्य ही विद्रोहियो के प्रति सहानुभूति थी और कम्यूनिस्ट पार्टी ने इस अवसर का राजनीतिक लाभ उठाया था।

चुनाव चित्रण

बम्बई मे चुनाव की स्थिति का चित्रण कर कांग्रेस और कम्युनिस्ट पार्टी के चुनाव प्रचार और सिद्धान्तो की विस्तृत व्याख्या की गई है। एक ओर जहा 'कांग्रेस के नेता लीग से अधिक क्रोध प्रकट कर के कम्युनिस्ट पार्टी के प्रति क्योंकि कम्युनिस्ट लीग की पाकिस्तान की माग के सिद्धान्त का समर्थन १९४२ से कर रहे थे। कम्युनिस्टो को देशद्रोही, गद्दार और मुस्लिम लीग के पिट्ठू कहा जाता।'[2] अधिकाश अखबारो मे भी ऐसे ही समाचारो की बाढ़ रहती—'कम्युनिस्ट, मुस्लिम लीग और सरकार से पैसा लेकर देशद्रोह करते है, गोमास खाते हैं और अपनी पार्टी की लड़कियो को किराये पर देते है।'[3] इतना ही नही भावरिया राजनैतिक व्याख्यानो मे प० जवाहर लाल और सरदार पटेल के मुख से सुनता है कि 'कम्युनिस्ट अंग्रेजो से मिले हुये हैं और देश से गद्दारी कर रहे है। भावाजी भी समझाते हैं 'अब तक तो मुसलमान कांग्रेस के दुश्मन थे ही, अब इन लाल-झण्डा वाले कम्युनिस्टो को देखो। कम्युनिस्ट क्या कौम नष्ट है। अंग्रेजो से पैसा खाते है'[4], चुनाव को लेकर (जिसमे कामरेड डागे के खड़े होने का उल्लेख है) चुनाव प्रचार के टेक्नीक और फलस्वरूप आपसी दगे का चित्रण किया गया है।

'जनयुग' प्रेस पर, हुये हमले का विवरण भी है। चुनाव के अवसरो पर समा-

---

१ यशपाल—'पार्टी कामरेड,' पृष्ठ १२०

२ यशपाल—'पार्टी कामरेड,' पृष्ठ ३५

३ यशपाल—'पार्टी कामरेड,' पृष्ठ ७६

४. यशपाल—'पार्टी कामरेड' पृष्ठ ८६

चारपत्रों की भूमिका पर भी प्रकाश डाला गया है। गीता को उसके कम्युनिस्ट पार्टी के समर्थन के कारण समाचार पत्र किस निम्न स्तरीय प्रचार तक उतर आये इसका उदाहरण है।

समाचार था—'कम्युनिस्ट-सखी गीता के लिए गुंडों के दलों में मारपीट ! कम्युनिस्ट सखियां शृंगार करके मनचले जवानों को 'जनयुग' पढ़ाने निकलती है। इसके परिणाम में होने वाली घटनाओं का यह उदाहरण है। जनता ऐसे समाचार की उपेक्षा कब तक करेगी !'

इसके विरुद्ध कम्युनिस्ट पार्टी का मुख पत्र 'जनयुग' ऐसे समाचारों को मोटे-मोटे अक्षरों में छापना जिसमें विरोधी पक्षों द्वारा कम्युनिस्टों के प्रति दुर्व्यवहार की घटना होती। पिटने वाले या ज्यादती सहने वाले कामरेडों के चित्र छापे जाते। ...कामरेडों का विचार था कि गाली और मार खाना ही उनकी विजय में सहायक होगा। जनता की सहानुभूति स्वयं ही पीड़ितों की ओर हो जायगी।[1]

इस प्रकार हम यह स्पष्ट देखते है कि राजनीतिक दलों द्वारा राजनीतिक उत्तेजना उत्पन्न करने में समाचार-पत्रों को अमोघ अस्त्र के रूप में किस तरह प्रयुक्त किया जाता है।

मनुष्य के रूप (१९४९)

'मनुष्य के रूप' यशपाल का अर्ध-राजनीतिक उपन्यास है जिसमें 'राजनीति वैयक्तिक जीवन के सामने सिर झुका लेती है, और सम्पूर्ण उपन्यास स्त्री-पुरुषों के अनैतिक सम्बन्धों के आधार पर चलता है। स्त्री-पुरुष की समस्या के सामने विशाल राष्ट्रीय समस्याएं लुप्त हो जाती है।'[2] ब्रजरत्न दास का भी मत है कि 'इसमें यौन-समस्या तथा प्रह भाव का चित्रण है और इसमें यथार्थवाद का पूरा पुट है। राजनीतिक दृष्टिकोण भी है और कला-कौशल भी।'[3]

राजनीति जीवन का ही एक पक्ष है उससे पृथक रहनेवाली वस्तु नहीं अत यह आवश्यक नहीं है कि वह प्रत्येक बार जीवन को आच्छादित ही करे। मानव जीवन का अपना अस्तित्व अलग है और यह आवश्यक नहीं है कि वह राजनीति [illegible] 'मेरुमार' से ही सौन्दर्य की कृत्रिम वृद्धि करे। 'मनुष्य के रूप' का कथन या उसके पात्र राजनीति से बोझिल नहीं हैं पर राजनीति से पूर्णतः असम्पृक्त भी नहीं। इसका कथानक व पात्र

१. यशपाल — 'पार्टी कामरेड' पृष्ठ ८३
२ डॉ० गणेशन — 'हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन' पृष्ठ २१५
३. ब्रजरत्न दास — 'हिन्दी उपन्यास–साहित्य' पृष्ठ ३३६

आर्थिक कारणों से सचालित हैं और इस तरह लेखक की मूल प्रेरणा 'मार्क्स' के सिद्धान्त पर आधारित है जो यह मानता है कि मनुष्य के सारे कार्यकलापों का कारण अर्थ होता है। त्रिभुवन सिंह के इस मत से हम भी सहमत हैं कि 'मनुष्य के रूप' में परिस्थितियों के कारण परिवर्तित होने वाले मानव स्वरूप के मूल में आर्थिक-समस्या ही है।'[1] उपन्यास का कथानक राजनीतिक नहीं है किन्तु प्रासगिक रूप से राजनीतिक प्रसग का समावेश अवश्य मिलता है। कथा का केन्द्र न होकर भी सोशलिस्ट, कांग्रेस और कम्युनिस्ट पार्टी के प्रसग के साथ कम्युनिस्ट पार्टी के दफ्तर की कार्य विधि का सविस्तार वर्णन उपन्यास को अश-राजनीतिक स्वरूप प्रदान करता है। सभवत इसी कारण किसी नवोदित समीक्षक का कथन है कि 'कथा का केन्द्र बिन्दु तो सोभा ही है, मुख्य कथा सोभा की ही है जिसमें राजनीति का समावेश बौद्धिक आग्रह ही कहा जा सकता है।' राजनीति बौद्धिक चेतना का ही प्रतिफलन है और साहित्य में उसका प्रवेश बौद्धिक आग्रह के रूप में हो तो किसी को आश्चर्यचकित होने की आवश्यकता नहीं।

यशपाल जी मार्क्सवादी उपन्यासकार हैं यह निर्विवाद है। मार्क्स के सिद्धान्तों का प्रचार उनके साहित्य के प्रमुख उद्देश्यों में से है। जैसा कि पूर्व ही कहा जा चुका है प्रस्तुत उपन्यास मार्क्स के आर्थिक सिद्धान्तों के अनुरूप मनुष्य के बदलते हुये रूप का 'एलबम' है। उपन्यास के प्रमुख पात्र धनसिंह व पात्रा सोभा के परिवर्तित स्वभाव का मूल आधार उनकी आर्थिक असुविधायें हैं। आर्थिक परिस्थितियां मनुष्य के रूप को किस तरह बदलती रहती हैं सोभा इसका ज्वलन्त उदाहरण है। 'शरीर सुख की अभिलाषा ने सोभा को व्यभिचारिणी बनाया, जिससे उसे जीवन की अनेक घिनौनी गन्दी गलियों से गुजरना पड़ा है।' जिस सामाजिक व्यवस्था ने सोभा को इतने स्वरूप बदलने को बाध्य किया लेखक ने उसकी अच्छी बखिया उधेड़ दी। शिवनारायण श्रीवास्तव ने इसे 'वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के प्रति प्रच्छन्न विद्रोह' निरूपित किया है। उनका मत है कि सत्य पर आवरण डालकर मनुष्यों को पशुओं के स्तर पर लाने वाली पूंजीवादी सभ्यता के जर्जर अंगों के घिनौने स्वरूप का बड़ा ही यथातथ्य उद्घाटन किया गया है।'[2] यह यथातथ्य उद्घाटन साम्यवादी ढग पर है और यह समझाने का प्रयास किया गया है कि मनुष्य की वर्तमान विकृतियों का समाधान साम्यवाद के मार्ग से ही सम्भव है।

सोभा और मनोरमा के प्रेम-प्रसग उपन्यास की गम्भीरता को बहुत अंशों में

---

१. त्रिभुवन सिंह – 'हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद' पृष्ठ २०८
२. शिवनारायण श्रीवास्तव – 'हिन्दी उपन्यास' पृष्ठ ३३८

क्षीण बनाते हैं। किन्तु यहां यह द्रष्टव्य है कि 'सोभा' के माध्यम से उपन्यासकार ने मार्क्सवादी प्रभाव के अनुकूल प्रेम की द्वन्द्वात्मकता के प्रतिपादन की चेष्टा की है। वे नारी के स्वतन्त्र अस्तित्व को नहीं मानते हैं और इसी से उनके नारी पात्रों का पुरुष के प्रति प्रेम आश्रित का आश्रय के प्रति प्रेम का प्रतीक बन कर रह जाता है। वे यह मानते हैं कि जब तक स्त्री पुरुष के समान आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र नहीं हो जाती तब तक स्त्री-पुरुष की समानता का प्रश्न नहीं उठता। आर्थिक स्वतन्त्रता विहीन नारी सोभा की तरह जीवन की हर आवश्यकता पूर्ति के लिए आश्रय ढूंढ़ती है।

उपन्यास के पात्र कामरेड भूषण का कथन है-'वह (सोमा) क्या आदर्श को पूर्ण करने के लिए घर से निकली थी? घर में जीवन सम्भव न था, वह जीना चाहती थी, इसीलिए घर से निकली थी। प्रेम उसे घर से निकालने में सहायक हुआ। प्रेम केवल जीवन में सहायक वस्तु है। जीवन में अड़चन के रूप में प्रेम नहीं चल सकता। और सब चीजों की तरह जीवन में प्रेम की गति भी द्वन्द्वात्मक है। प्रेम जीवन की सफलता और सहायता के लिए है।—इसका धर्तसिंह से प्रेम कुछ परिस्थितियों का परिणाम है। यदि इसका पति जिन्दा होता तो शायद यह प्रेम हो ही नहीं सकता। प्रेम जीवन में शरीर की अनुभूति और आवश्यकता से पृथक् क्या वस्तु है।'

कथानक में उपरोक्त राजनीतिक विचार धारा के अतिरिक्त कतिपय तत्कालीन राजनीतिक घटनायें भी प्रासंगिक रूप से गुम्फित हैं। गुंडों पर उत्तेजना में प्राणघातक आक्रमण के उपरांत धर्मसिंह के फरार होकर भारतीय सेना एवं आजाद हिन्द सेना में सम्मिलित करा कर लेखक आजाद हिन्द सेना का राजनीतिक विवरण प्रस्तुत करने का अवसर निकाल लेता है। आजाद हिन्द सेना में कार्यरत रहकर वह बन्दी बनता है और भारत के स्वतन्त्र होने पर मुक्ति पाता है।

राजनीतिक दृष्टिकोण से सन् बयालीस के आन्दोलन पर भी यथेष्ठ प्रकाश डाला गया है और सन् बयालीस के आन्दोलन में महात्मा गांधी के प्रभाव को राजनीतिक दृष्टि से भ्रामक तथा अहितकार सिद्ध किया गया है।

'मनुष्य के रूप' घटना प्रधान उपन्यास हैं। घटना-प्रधान कथानक में घटनाओं का ही विशिष्ट महत्व रहता है तथा चरित्र चित्रण की प्रक्रिया शिथिल पड़ जाती है। 'मनुष्य के रूप' में घटनाओं और पात्रों का बाहुल्य है और मनुष्य के विभिन्न रूपों के दिग्दर्शन के लिए यह स्वाभाविक था। उपन्यास के पात्रों में कोई ऐतिहासिक राजनीतिक पात्र नहीं है फिर भी भूषण के माध्यम से लेखक ने साम्यवादी दृष्टिकोण को वाणी दी है। भूषण और मनोरमा की कथा गौण है और उसका उद्देश्य मध्यवर्गीय समाज में रूढ़िगत तथा नवीन मान्यताओं का तुलनात्मक अध्ययन करना है। कामरेड भूषण नवीन समाजवादी चेतना का प्रतीक है। वह मार्क्स के सिद्धान्तों के आधार पर प्रेम के द्वन्द्वात्मक

स्वरूप का स्पष्टीकरण अनेक स्थलों पर देता है। उसकी दृष्टि में 'और सब चीजों की तरह जीवन में भी प्रेम की गति भी द्वन्द्वात्मक है। प्रेम जीवन की सफलता और सहायता के लिए है। यदि प्रेम बिलकुल छिछला और थियला रहे तो वह असद्य वासना मात्र बन जाता है। जीवन में अड़चन के रूप में प्रेम चल नहीं सकता।'[1] लेखक का दृष्टिकोण समाजवादी है और भूषण उन विचारों को अभिव्यक्ति देने का एक सबल साधन है। भूषण को इसीलिए साम्यवादी दल के एक सदस्य के रूप में चित्रित किया गया है जिससे लेखक को अपने समाजवादी दृष्टिकोण के प्रतिपादन में सुविधा रहे। भूषण साम्यवादी विचारों का सबल ग्राहक है और लेखक 'भूषण के चरित्र के माध्यम से (वह) मानव के पतन का ही विश्लेषण नहीं करता, उसे उठाने का भी प्रयास करता है। जीवन की परिस्थितियों पर विजय पाने में ही भावी समाज के निर्माण की आशा की जा सकती है।'[2] उपन्यास का मुख्य पात्र है धनसिंह और नायिका है सोमा। नायक और नायिका का चारित्रिक विकास परिस्थितियों के संघर्षों के अनुसार ही विकास पाता है। धनसिंह सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधि है जिसे जीवन पर्यन्त संघर्षशील जीवन व्यतीत करना पड़ता है। यह उपयुक्त कथन है कि 'धनसिंह का जीवन उन जीवनों का प्रतिनिधि है जिनका अधिकांश संघर्षों जीवन का अस्तित्व बनाये रखने के लिए होता है सुख सन्तोष और शांति को जिनसे घोर घृणा रहती है।'[3]

साम्यवाद के द्वन्द्वात्मक सिद्धान्त के प्रतिपादन, धनसिंह के माध्यम से आजाद हिन्द फौज का विवरण, सन् ४२ के आन्दोलन, पुलिस के अत्याचार व कम्युनिस्ट पार्टी की कार्य प्रणाली के चित्रण के उपरान्त भी इसे राजनीतिक उपन्यास की श्रेणी में इसलिए परिगणित नहीं किया जा सकता क्योंकि विशाल सामाजिक पृष्ठभूमि में—सामाजिक विषमता से उत्पन्न घटनाओं से संचालित पात्रों के विवरणों में (क्रिया-कलापों में) वैयक्तिक सिद्धान्तों का आग्रह कम है। राजनीतिक प्रसंग छायामात्र है और इसीलिए इसे अंश राजनीतिक उपन्यासों की श्रेणी में रखा गया है। त्रिभुवन सिंह का मत भी है 'इस उपन्यास के अन्दर १९४२ के आन्दोलन में किए गए पुलिस के अत्याचारों, कामुक पुरुषों की असहाय स्त्रियों के प्रति कुचेष्टाओं तथा पूँजीपतियों की अनैतिकता आदि का सजीव चित्र खींचा गया है। किन्तु इस शुद्ध सामाजिक उपन्यास में भी यशपाल जी कम्युनिस्टों के प्रसंग को लाना भूले नहीं।'[4] इस राजनीतिक प्रसंग के कारण ही 'मनुष्य

---

१ यशपाल—'मनुष्य के रूप,' पृष्ठ ८६

२ सुषमा धवन—'हिन्दी उपन्यास,' पृष्ठ ३०२

३ कुमारी स्नेहलता शर्मा—'यशपाल के उपन्यास,' पृष्ठ ११४

४ त्रिभुवनसिंह—'हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद,' पृष्ठ २०८

के रूप' अनिमामाजिक न बन कर अशराजनीतिक स्वरूप ग्रहण कर लेता है। उपन्यास मे सामाजिक वातावरण को अधिक से अधिक बनाये रखने का प्रयास किया गया है। पात्रों की मानसिक स्थिति का सहज स्वाभाविक एव सगत विकास दिखाया गया है। आधुनिक समस्याओ को उठाया गया है, १९४० से १९४५ तक की राजनीतिक गतिविधि का परिचय दिया गया है और इन दृष्टियो से उपन्यास सफल बन पडा है। उपन्यास मे देशकाल और कथोपकथन भी यथार्थ है। युद्धोत्तरकालीन भारतीय नागरिक जीवन, युद्ध के समय सेना की भर्ती और उनका रहन-सहन, विभिन्न राजनीतिक दलों की गति विधियो का निरूपण कुशलता के साथ यथार्थ परिपार्श्व मे चित्रित किया गया है।

झूठा सच

यशपाल का नवीनतम उपन्यास 'झूठा-सच' प्रेमचन्द की यथार्थवादी परम्परा मे वे अभूतपूर्व विकास की कडी है। यह बृहत्काय उपन्यास दो भागो मे विभाजित है— 'वतन और देश' तथा 'देश का भविष्य'। 'झूठा-सच' हिन्दी के बृहत्काय उपन्यासो मे से एक है जिसका कथानक करीब १२५० पृष्ठों मे विस्तारित है। प्रगतिवादी दृष्टिकोण से यथार्थवादी सामाजिक उपन्यास मे राजनीतिक कथानक ही उपयुक्त हो सकता है। 'झूठा-सच' यद्यपि सभी सामाजिक यथार्थवादी उपन्यासो के लिए वैयक्तिक दृष्टिकोण से उपयुक्त हो सकता है किन्तु यहा लेखक ने केवल अनुमान या कल्पना पर ही नहीं वरन् द्वितीय महायुद्ध एव स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ देश के विभाजन से उत्पन्न आबादी परिवर्तन आदि की अनेक समस्याओ रूढिग्रस्त रीति-रिवाजों, धर्मान्धिता की ओट मे अमानवीय दुष्कृत्यो, नेताओं के राजनीतिक स्वार्थों तथा राजकीय अधिकारियो के भ्रष्टाचार, पुरुषार्थ के बल पर विस्थापितो का स्वय उप स्थापन आदि का झूठे कथानक (काल्पनिक पात्र) के सहारे यथार्थ घटनाओं का चित्रण किया है।

उपन्यास के समर्पण मे लेखक ने स्वय स्पष्ट किया है सच की कल्पना से रग कर उसी जन समुदाय को सौंप रहा हूँ जो सदा झूठ से ठगा जाकर भी सच के लिए अपनी निष्ठा और उसकी ओर बढने का साहस नहीं छोड़ता ।'[1]

प्रथम भाग मे स्वतन्त्रता व विभाजन से पूर्व के पंजाब का चित्र है दूसरे भाग मे स्वतन्त्रता के बाद के भारत का चित्र। प्रथम भाग मे युद्ध पश्चात भारतीय जनता के जीवन स्तर के साथ सन् १९४७ मे देश के स्वतन्त्र होने और उसके विभाजन की कथा सविस्तार कही गई है। कथा मे मुख्य रूप से उन पीडितो की कथा है जो विभाजन के समय हिन्दू मुस्लिम वैमनस्य के शिकार हुए। 'झूठा-सच' का चित्रफलक अत्यन्त व्यापक

१ यशपाल — 'झूठा-सच' पृष्ठ ३ (वतन और देश)

है और उपन्यासकार ने देश विभाजन के कारण उत्पन्न समस्याओ को केन्द्र बनाकर सन् १९४६ से १९५६ की अवधि का देशीय वातावरण प्रस्तुत किया है। हिन्दू मुस्लिम दगे से सम्बन्धित पाशविक अत्याचारो के चित्रणात्मक चित्रो से तात्कालीन साम्प्रदायिक स्वरूप का राजनीतिक आवरण हटाने का सफल प्रयास किया गया है। किन्तु पजाब उत्तर प्रदेश व दिल्ली म हुए इन दगो के इतने अधिक चित्र प्रस्तुत किये गये हैं कि उनकी पुनरावृत्ति तथा पात्रों की जमघट से उसका अपेक्षित प्रभाव नही पड़ता।

विभाजन के साथ ही साथ भारत के राजनीतिक विभाजन से उद्भूत विस्था पितों की साम्प्रदायिक समस्याओ को प्रधानता दी गई है राजनीतिक स्वार्थों को धर्मान्धता के सहारे सिद्ध करने मे मानवता की बलि किस प्रकार दी जाती है उसका आबादी परिवतन एक कदणतम चित्र है जिसम निरपराध जन साधारण कितनी यात नाओ का शिकार हुआ कितने अनैतिक बबर कृत्य घटित हुए जिनको स्मरण कर इतिहास कभी भी रोमाचित हो उठेगा। राजनीतिक भारत की इस दुखद घटना को यशपाल ने कलात्मक रूप दे कना जैसा लिखा गया इतिहास बना दिया है

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विभिन्न देशो मे धम का नशा पारम्परिक धर्मान्धता के कारण वस्तुत मानवता के उपकारक होने की अपेक्षा विघातक ही रहा है। प्रस्तुत उपन्यास म वर्णित भारत के विभाजन से उद्भूत विषम समस्याओ के मूल मे भी यही धर्मान्धता ही रही थी। इस दृष्टिकोण से आलोच्य उपन्यास का झूठे-सच का एक ऐति हासिक पहलू भी मान्य रहेगा। लेखक साम्यवादी दृष्टिकोण का प्रसिद्ध पोषक है। अतएव अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी भूमिका म वह मानव चेतना का आराधक है जिसमे अथ काम और धम के प्रति उसका साम्यवादी दशन निहित है। उसी म वह जाति धम से परे स्वस्थ विचारो वाले साम्यवादी युवकों के लोक सेवी चरित्र को जनता के सम्मुख उप स्थित करता चलता है।

पजाब काड के अनुरजित वणन के साथ यह वस्तुत सघर्षो म डूबे राजनितिक भारत की कथा है जिसका केंद्रीय सूत्र तारा पुरी डॉ० प्राणनाथ कनक काता कचन और ऊषा से सम्बद्ध हैं। इस उपन्यास मे पात्रो की सख्या बहुत है और ऐसा आभास मिलता है कि असख्य पात्रो की सृष्टि कर कथाकार अपनी क्षमता प्रदशन के लिए यत्नशील है। कतिपय ऐतिहासिक व्यक्तियो के नाम सम्मिलित करने के लोभ का सवरण भी लखक नहीं कर सका है और वे उपन्यास के पात्र के रूप मे सामने आये है। इस सदर्भ म लेखक ने देश का भविष्य की भूमिका मे स्पष्टीकरण देते हुये लिखा है— देश के साम यिक और राजनैतिक वातावरण को यथा सम्भव ऐतिहासिक यथाथ के रूप म चित्रित करने का यत्न किया गया है। उपन्यास के वातावरण को ऐतिहासिक यथार्थ का रूप

देने और विश्वसनीय बना सकने के लिए कुछ ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम भी आ गये है परन्तु उपन्यास मे वे ऐतिहासिक व्यक्ति नही, उपन्यास के पात्र हैं। कथानक मे कुछ ऐतिहासिक घटनाये अथवा प्रसग अवश्य हैं परन्तु सम्पूर्ण कथानक कल्पना के आधार पर उपन्यास है, इतिहास नही है।" वे यह सकेत देना भी नही भूलते कि" उपन्यास के सभी पात्र काल्पनिक पात्र है।"[1]

'झूठा-सच' मे यशपाल कांग्रेस मंडित राजनीति की जमकर आलोचना करते है। उनके पृष्ट पात्र महात्मा गांधी व प्रधान मन्त्री की आलोचना कर अपने को गौरवान्वित समझने का भ्रम पालने दीखते है। 'झूठा सच' का द्वितीय भाग 'देश का ऐसे कांग्रेसी नेता विश्वनाथ सूद के राजनीतिक उत्थान और पतन की कहानी है जो जनसेवा के मार्ग से उत्थान करता है और मार्गच्युत होने पर जनता द्वारा प्रजातांत्रिक तरीके से पदच्युत हो पतनशील होती है। लेखक ने इस पात्र को केन्द्र बिन्दु बना सन् १९४६ से-१९५६ की अवधि का राजनीतिक वातावरण अंकित किया है जो पजाब, उत्तरप्रदेश व केन्द्र की राजनीतिक स्थिति का 'ब्लू प्रिन्ट' कहा जा सकता है।

सूद जी लाहौर से वकालत पास है। विद्यार्थी जीवन से ही वे सामाजिक और सार्वजनिक आन्दोलनो मे भाग लेते हैं वे कांग्रेस के कर्मठ कार्यकर्ता है और १९२१ के आन्दोलन से ही वे खद्दर धारण कर लेते हैं। सन् १९२९ मे अग्रेजी सरकार के विरुद्ध सशस्त्र क्रांति करने वाले एक दल की पैरवी करने लाहौर जाते हैं यद्यपि कांग्रेस व गांधी जी 'सशस्त्र क्रांति के विरोधी' थे और उन्होने क्रांतिकारियों के कृत्यो की निन्दा की थी। जनता की सहानुभूति स्वाभावत क्रांतिकारियों की ओर थी अत सूद जी जनता की नजरो मे चढकर राजनीति क्षेत्र मे गहरे उतर गये। सन् १९३१ से ३४ तक वे कांग्रेस के प्रत्येक आन्दोलन मे सक्रिय भाग लेकर अपने जिले का नेतृत्व करते हैं और जेल जाते हैं।

राजनीतिक गतिविधियो मे भाग लेने के लिए वे परिवार के सदस्यों की अवहेलना करते है और जनसेवा का जोश रमाये हुए सूद जी वैवाहिक बन्धन मे भी अलग रहते हैं। परिवार सम्पन्न था और परिवार के लिए वे एक बोझ। अत पिता की मृत्योपरात भाइयो मे सम्पत्ति का बटवारा होता है और कुछ न लेकर वे जनता के बीच 'फकीर वकील' के रूप मे श्रद्धेय बने। सन् १९४६ मे पजाब विधान सभा के लिए वे सदस्य चुने जाते हैं और इस तरह उन्हे निस्वार्थ जन सेवा का सुफल प्राप्त होता है। इतना होने पर भी उनमे विशेष परिवर्तन नही होता। इन्हीं दिनो देश-विभाजन की समस्या सम्मुख आती है। जालन्धर मे विभाजन के समय की विकट स्थिति को कांग्रेस

१. यशपाल–'झूठा-सच', पृष्ठ–(. .) –देश का भविष्य

की ओर से सम्हालने का उत्तरदायित्व सूद जी पर आता है। शरणार्थियों के लिए केम्पों की और राशन वितरण की व्यवस्था का बोझ उन पर आता है। पूर्वी पंजाब में नया मन्त्रिमंडल बनाने की समस्या डाक्टर राधे बिहारी की गुटबाजी के साथ उभरती है। राजनीति में प्रचार का विशिष्ट महत्व है इस तथ्य से परिचित सूद जी कमाल प्रेस पर येन केन प्रकारेण अपना अधिकार जमा उसकी व्यवस्था का भार उपन्यास के मुख्य पात्र जयदेवपुरी को सौंपते हैं जो विभाजन के उपरांत निरीहावस्था में भटक रहा था। पुरी के सहयोग से 'नाजिर' का प्रकाशन प्रारम्भ होता है। सूद जी के राजनीतिक प्रभाव में वृद्धि होती है और संसदीय सचिव नियुक्त होते हैं।

राजनीति करवट लेती है और भीतर दलबंदी और मतभेदों के कारण सन् १९५१ के आरम्भ में मुख्य मंत्री के लिए शासन निबाहना कठिन हो जाता है। जनता कांग्रेस सत्ता और कांग्रेसी नेताओं से त्रस्त थी। नया आम चुनाव निकट था और सूद जी के लिए अधिक से अधिक समर्थक धारा सभा में लाने का प्रश्न मुख्य था। ये विजयी होते हैं और मंत्रीपद प्राप्त करते हैं। इस नवीन स्थिति में 'जर जन-जमीन' के मोह से मुक्त माने जाने वाले सूद का ढंग परिवर्तित होना है। वे अपने आपको विशिष्ट श्रेणी का जीव समझने लगते हैं। उनके आगे सरकारी अधिकारियों और सादगी तथा दरिद्र नारायण के प्रतिनिधि को भी अब सिर झुकाना अनिवार्य हो गया। उनके प्रति भक्ति दिखाने वाले और निबाहने वाले निहाल हो गये। सूद जी की कृपा प्राप्त व्यक्तियों को कानून और शासकीय अनुशासन का बंधन शिथिल हो गया। अब सूद जी ऐसी कितनी ही संस्थाओं के सूत्रधार थे जिनके कोषों में दो-ढाई करोड़ रुपये से अधिक जमा था यद्यपि कहने के लिए उन्होंने अपने लिये धन संचय नहीं किया था। इन्हीं कृत्यों से जनता में उनका विरोध बढ़ गया, आस्था नष्ट हो गई। परिणाम स्वरूप वे आम चुनाव में जनता की विरोधात्मक प्रतिक्रिया के रूप में सत्रह हजार वोट से पराजित हुए। इसी प्रसंग पर जाकर उपन्यास का अंत डाक्टर प्राणनाथ के इन शब्दों के साथ होता है—

"जनता निर्जीव नहीं है। जनता सदा मूक भी नहीं रहती। देश का भविष्य नेताओं और मंत्रियों की मुट्ठी में नहीं है, देश की जनता के ही हाथ में है।"

उपन्यास के राजनीतिक पक्ष की दृष्टि से डॉ० नाथ का उपर्युक्त कथन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और सूद जी का चरित्र उन कांग्रेसी नेताओं का प्रतीक है जो सत्ता प्राप्ति के उपरान्त अपने आदर्शों और सिद्धान्तों से डिग जाते हैं (वर्तमान राजनीतिक परिस्थिति ऐसी ही है) और स्वार्थ तथा सत्ता का घुन जिन्हें भीतर ही भीतर खोखला कर देता है।

कांग्रेसी नेता विश्वनाथ सूद को केन्द्र बिन्दु बनाकर कर जो कथा विस्तार पाती है वह वस्तुतः भारत की स्वातंत्र्योत्तर राजनीति की आलोचना है। इसके अन्तर्गत जिन प्रमुख तत्कालीन राजनीतिक प्रसंगों का समाहार किया गया है वे ये हैं—

(१) साम्प्रदायिक संघर्ष
(२) राजनीति और प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार
(३) राजनीतिक दलों की स्थिति और उनके क्रियाकलाप
(४) आम चुनाव
(५) काश्मीर पर हुआ आक्रमण
(६) गांधी हत्याकाण्ड
(७) योजना आयोग

इनके अतिरिक्त गांधी जी के आमरण अनशन के प्रकरण को लेकर काकोरी का न्विरोमी केस के क्रांतिकारियों के अनशन, नाविक क्रांति आदि का भी प्रासंगिक उल्लेख किया गया है जो ऐतिहासिक घटनाएं हैं।

सम्प्रदायिक संघर्ष

'झूठा-सच' के 'प्रथम भाग' 'वतन और देश' में भारत विभाजन के परिप्रेक्ष्य में हिन्दू मुस्लिम साम्प्रदायिक संघर्ष का चित्रण विस्तृत रूप से मिलता है। भारतीय राजनीति में सम्प्रदायिक स्थिति सदैव से सिर दर्द रही है और अंग्रेजी सरकार ने जान बूझ कर इसे तूल देकर अपना राजनीतिक अस्त्र बनाया था।

'झूठा सच' के प्रथम भाग में मूल रूप से विभाजन के पूर्व मुस्लिम लीग और कांग्रेस की नीतियों का तथा उसके विरुद्ध ब्रिटिश नीति की।आलोचना की गई है। हिन्दू छात्र द्वारा मुसलमान प्रोफेसर को पीटने की साधारण घटना को सम्प्रदाय के समाचार पत्र किस रूप से प्रस्तुत कर लोगों की धर्मान्धता को भड़काकर राजनीतिक रूप देते "है इसका एक सजीव चित्र प्रस्तुत किया गया है।[1] लीग और कांग्रेस की स्वतन्त्रता की मांग ने इस साम्प्रदायिक स्वरूप को जिस रूप में मुखर किया उसका तथा कम्युनिस्ट पार्टी के जातियों के आत्म निर्णय के अधिकार के सिद्धान्त पर आधारित सम्प्रदायिकता को रोकने के प्रयासों का विस्तृत ब्योरा दिया गया है। कम्युनिस्टों के आत्मनिर्णय के अधिकार के सिद्धान्त जयदेव के अनुसार था 'हिन्दुओं और मुसलमानों को दो पृथक जातियाँ मान कर देश का पाकिस्तान और हिन्दुस्तान में बँटवारा। कम्युनिस्ट जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार को ही संतोषजनक एकता का और देश को बँटवारे से बचाने का उपाय समझते थे।'[2]

---

१ यशपाल—'झूठा-सच,' पृष्ठ ५२-५३
२. यशपाल—'झूठा-सच,' पृष्ठ ४६

राजनीतिक वातावरण और व्याप्त भ्रष्टाचार के चित्र

'वतन और देश' मे पजाब के सामयिक राजनीतिक वातावरण का कांग्रेस, लीग और कम्युनिस्ट पार्टी की राजनीतिक गति विधियो का सविस्तार विवरण मिलता है।

प्रारम्भ मे ही हम दयालसिंह कालेज म स्टूडेन्ट फेडरेशन की गतिविधियो से परिचित होते हैं जहाँ युद्ध की अन्तरराष्ट्रीय दृष्टि से विवेचना की जाती थी। जर्मन और भारत के आक्रमण को फासिज्म का आक्रमण बताया जाता। भारत का हित रूस के नेतृत्व म अमेरिका और ब्रिटेन की विजय और फासिज्म (अर्थात् जर्मन और जापान) के पराजय मे बताया जाता था।[1] कम्युनिस्टो ने द्वितीय महायुद्ध को रूस के शामिल होने के कारण जनता का युद्ध घोषित किया था और इस रूप मे कांग्रेस का विरोध किया था। नाविक सैनिक क्रांति (फरवरी १९४६) का समर्थन भी कम्युनिस्टो ने किया था जब कि कांग्रेस की सहानुभूति इस क्रांति की ओर नही थी। जयदेव पुरी 'पैरोशर' म नाविक क्रांति की घटना पर टिप्पणी लिखता है और कांग्रेस और लीगी नताओ की सहानुभूति के अभाव के प्रति व्यंग करता है।[2] इसके साथ ही लेखक राजनीतिक दलो और ब्रिटिश मन्त्रिमन्डल के प्रतिनिधियो के बीच भारत को शासन के अधिकार देने के प्रश्न की सूचना देता है और बताता है 'प्रतिनिधि शिमले म लीग और कांग्रेस के नेताओ से परामर्श और मोलतोल कर रहे थे। पूरे देश की आँखें और कान उसी ओर लग हुए थे। देश का भविष्य लीग और कांग्रेस (मुसलमानो और हिन्दुओ) की प्रतिद्वन्द्विता के काटे पर तुला हुआ था।'[3]

लीग और कांग्रेस के हठ के कारण घटनायें साम्प्रदायिक रग ले रही थी और जिसके कारण पजाब के मुख्य मन्त्री सर खिजर की कम्युनिस्ट पार्टी की डावा-डोल स्थिति का विवरण देना भी लेखक नहीं भूलता। कामरेड ब्रिटिश प्रतिनिधि मडल को एक फरेब समझते है। उनके अनुसार "ब्रिटन के मन्त्रिमण्डल के प्रतिनिधि कांग्रेस और लीग दोनो को मिथ्या आशाएं दे कर, अपने वश मे रखने के लिए, शब्दों से सन्तुष्ट कर रहे हैं। यह कैसे हो सकता है कि कैबिनेट मिशन की योजना से लीग को पाकिस्तान मिल जाय और कांग्रेस को अखड हिन्दुस्तान भी मिल जाय।'[4] कांग्रेस और लीग का समझौता संभव न होने पर सम्प्रदायिक आग भडकती है और लेखक

१. यशपाल—'झूठा सच,' (वतन और देश) पृष्ठ २०
२ यशपाल—'झूठा सच,' पृष्ठ ४६
३ यशपाल—'झूठा सच,' पृष्ठ ५४
४ यशपाल—'झूठा सच,' पृष्ठ ५६

हिन्दू रक्षा कमेटी की कार्यकर्त्री ज्ञानदेवी के मुख से कलकत्ते में साम्प्रदायिक दंगे और और मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं पर किये गये अत्याचारों की कहानी सुनाता है।[1] ज्ञान देवी ही सूचित करती है कि बम्बई में मुस्लिम लीग ने १६ अगस्त (१९४६) से हिन्दुओं से लड़ाई छेड़ दी है। मर गये कहते हैं, हम पाकिस्तान बनायेंगे। हम आधा हिन्दुस्तान लेंगे। पंजाब पाकिस्तान में लेंगे।'[2] इस तरह देश के विभिन्न भागों में हुए हिन्दू-मुसलमान दंगे के समाचार (पाठक को) मिलते हैं और पंजाब में साम्प्रदायिक स्थिति विषम होती है। कम्युनिस्ट पार्टी और कामरेड इस स्थिति से दुःखित बताये जाते हैं। कामरेड असद कहता है—'हिन्दू और मुस्लिम मुहल्लों में जहर फैलाया जा रहा है। मुल्ला मसजिदों में रो-रो कर पैगम्बर के नाम से जिहाद के फतवे दे रहे हैं। हथियार इकट्ठे करने की योजनाएं बन रही हैं।'[3] शासन की असमर्थता डॉ० नाथ यों व्यक्त करते हैं 'खिजर इस समय कुछ नहीं कर सकता। उसकी कम्युनिस्ट पार्टी के कई लोग लीग में शामिल हो गये हैं। वह इस समय लीग पर दबाव डालेगा तो शेष मुसलमान मेम्बर भी उसका साथ छोड़ जायेंगे। उसकी मिनिस्ट्री खतरे में तो है ही।'[4] पैरोकार में भी जयदेव साम्प्रदायिक उत्तेजना पर टिप्पणी लिखता है। कम्युनिस्ट पार्टी इस उत्तेजना को शांत करना चाहती है और कैदे आजम जिन्ना और महात्मा गांधी जिन्दाबाद के नारे लगाती है और हके खुद इख्तयारी मिलने की आवाज उठाती है।[5] हिन्दु-मुस्लिम भाई-भाई के नारे बिना सुने रह जाते हैं और लीग का आन्दोलन दफा १४४ के विरोध में अहिंसात्मक सत्याग्रह आरम्भ करता है और फिरोज खां नून, इफ्तखारूद्दीन, गजनफर अली का सत्याग्रह करके जेल जाते हैं।[6] सर खिजर इस्तीफा देते हैं और गवर्नर प्रदेश की हुकूमत अपने हाथ में लेते हैं। इस्तीफा का कारण गवर्नर जैंकिन्स के अनुसार है क्योंकि एटली के १६ फरवरी के वक्तव्य में कहा गया है कि जून १९४८ में हिन्दुस्तान के जिस भाग में जो राजनीतिक दल अधिक सशक्त होगा, ब्रिटिश सरकार उसी को स्थानीय शासन सौंप देगी इसीलिये नये सिरे से मन्त्रि-मंडलों के निर्माण का अवसर दिया जाना चाहिए।[7] असेम्बली में बहुमत मुस्लिम लीग का था और केवल दो मन्त्री कांग्रेस के थे।

१ यशपाल—'झूठा सच,' (वतन और देश), पृष्ठ ६६-६७
२. यशपाल — झूठा-सच,' (वतन और देश), पृष्ठ ७०
३ यशपाल—'झूठा सच' (वतन और देश), पृष्ठ ७७
४. यशपाल—'झूठा सच,' (वतन और देश), पृष्ठ ७८
५ यशपाल—'झूठा-सच,' (वतन और देश), पृष्ठ ८१
६ यशपाल—'झूठा-सच,' (वतन और देश), पृष्ठ ८१
७ यशपाल—'झूठा सच,' (वतन और देश), पृष्ठ ९१३

लीग पार्टी के नेता खान ममदाट मन्त्रिमंडल बनाने में असमर्थ रहते है और गवर्नर उन्हे पार्टी के लीडर के नाते शासन की जिम्मेदारी सौंपने को तैयार नही होता। मास्टर तारासिंह का उल्लेख भी है जो मुस्लिम लीग की ललकार के मुकाबले मे तलवार खींच लेते है।[1] मामला तूल पकड़ता है और गवर्नर द्वारा कम्युनिस्ट मिनिस्ट्री की बरखास्तगी वैधानिक निर्देश कर आम सभाओं का आयोजन राजनीतिक दल करते हैं। कांग्रेस के मंच से मास्टर तारासिंह भी आग बरसाते है।[2] डाक्टर गोपीचन्द भार्गव भी भाषण देते है 'हम पाकिस्तान हर्गिज नहीं बनने देंगे। लीग ने शोरिश पैदा करके हमारी कम्युनिस्ट वजारत को खत्म किया है हम भी लीग की वजारत नही बनने देंगे। इस प्रश्न को लेकर हिन्दू-मुस्लिम दंगे होते है जिनका उल्लेख पूर्व ही किया जा चुका है। लीग का पाकिस्तान की माग का आदोलन और मास्टर तारासिंह के अधिनायकत्व मे एंटी पाकिस्तान लीग की हुंकार के कारण पंजाब मे बहुत दिनो तक मन्त्रिमंडल स्थापित न हो सका। कम्युनिस्ट पार्टी के रेलवे मजदूर यूनियन और स्टूडेंट फैडरेशन शांति स्थापना के लिए जगी आदोलन आरम्भ करते है और फिरकापरस्ती' का विरोध करते है।[3] पंजाब मे लीग, कांग्रेस और अकाली दल के संयुक्त मन्त्रिमंडल बन सकने की सम्भावना, जिन्ना साहब के निर्णय से समाप्त हो गई थी।[4] अन्त मे कांग्रेस विभाजन का सिद्धान्त स्वीकार करने को तैयार हो जाती है परन्तु पूरा पंजाब और बंगाल पाकिस्तान मे देने को तैयार नहीं। केवल वही भाग (प्रदेश) जहाँ मुस्लिम जन संख्या का आधिक्य है पाकिस्तान को दिये जा सकते है और इसी तरह जनसंख्या के आधार पर पश्चिमी पंजाब व पूर्वी बंगाल। यह निर्णय गांधी जी का न था। डॉ० प्रभुदयाल के शब्दों में 'यह तो पंडित नेहरू, सरदार पटेल और कांग्रेस वर्किंग कमेटी का फैसला है। यह तो नेहरू और पटेल का फैसला है।[5] लेखक कांग्रेस के सिद्धांतो पर कटाक्ष करते हुए उन परिस्थितियों की सम्यक विवेचना करता है जिनके कारण कांग्रेस को विभाजन का सिद्धान्त स्वीकार करने को बाध्य होना पड़ा।[6] इसी प्रसंग मे नेहरू व पटेल को वैदरकाक बता कर व्यंग किया जाता है।

---

१ यशपाल—'झूठा सच,' (वतन और देश), पृष्ठ ११५
२ यशपाल—'झूठा-सच,' (वतन और देश), पृष्ठ ११८
३ यशपाल—'झूठा-सच,' (वतन और देश), पृष्ठ १८५
४ यशपाल—'झूठा सच,' (वतन और देश), पृष्ठ १९३
५ यशपाल - 'झूठा-सच,' (वतन और देश), पृष्ठ २५३
६ यशपाल—'झूठा-सच', (वतन और देश), पृष्ठ २५४

जून के पहले सप्ताह में मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान की स्थापना के लिए बंगाल और पंजाब को हिन्दू बहुल और मुस्लिम बहुल भागों में बाँट देने की शर्त स्वीकार कर ली और सरकार ने २० जून की तारीख इसके लिए निश्चित की।[1] जिन्ना ने इस तब्दीलिये आबादी के प्रोग्राम से सम्प्रदायिकता एक बार फिर भड़क उठी। रेडक्लिफ कमेटी ने लाहौर के उत्तर और दक्षिण में हिन्दुस्तान-पाकिस्तान में बटवारे की सीमा निश्चित कर दी। हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता और पाकिस्तान की स्थापना के लिए १५ अगस्त १९४७ की तारीख निश्चित कर दी गई। कांग्रेस और लीग दोनों ने घोषणा कि अल्प सख्यकों को सभी नागरिक अधिकार समान रूप से दिये जायेंगे और उन्हें धार्मिक और सास्कृतिक आचार व्यवहार की पूर्ण स्वतन्त्रता रहेगी।[2] राष्ट्र को स्वतन्त्रता मिलती है और जिसका विवरण देना भी लेखक नहीं भूलता। नैनीताल में स्वाधीनता दिवस की तैयारी[3] और फिर हिस्की को चुस्कियों के साथ राष्ट्रीय पर्व का स्वागत[4] के चित्र के साथ वह रेडियो के माध्यम से डॉ० राजेन्द्र प्रसाद व प० जवाहरलाल नेहरू के स्वाधीनता दिवस विषयक भाषण सुनवाना भी लेखक नहीं भूलता।[5] आबादी परिवर्तन के साथ ही झूठा-सच का प्रथम भाग समाप्त होता है तथा द्वितीय भाग में स्वाधीनता प्राप्ति के उपरान्त विस्थापितों की समस्याओं तथा कांग्रेसी शासन में पनपते भ्रष्टाचार और आमचुनावों का चित्रण है।

भ्रष्टाचार

कांग्रेस शासन में व्याप्त भ्रष्टाचार के ऊपर यशपाल ने कठोर प्रहार किया है। वे विभिन्न क्षेत्रों में गहरे पैठकर भ्रष्टाचार को प्रसंगों के सामने लाकर उन पर व्यंग कर कांग्रेस की जमकर आलोचना करते हैं।

माथुर का कथन है 'शक्ति और अवसर हाथ में होने पर अनुचित लाभ न उठाने वाले मुझे तो केवल अपवाद रूप में दिखते हैं। मैं पूछता हूँ, शासन में चोटी से लेकर पाँव के अगूठे तक कौन अनुचित लाभ नहीं उठा रहा है? रिश्वत लेकर आदमी अपने बाल बच्चे और कुनबे को ही तो पालेगा? मुझे बता दो, शासन संभाले लोगों में से किसका कुनबा नहीं पल रहा है? सरकारी नौकर उदाहरण देख कर ही तो चलेंगे।'[6]

---

१ यशपाल—'झूठा-सच', (वतन और देश), पृष्ठ ३००
२ यशपाल—'झूठा-सच', (वतन और देश), पृष्ठ ३७६
३. यशपाल—'झूठा-सच', (वतन और देश), पृष्ठ ४३९
४. यशपाल—'झूठा-सच', (वतन और देश), पृष्ठ ४५५
५ यशपाल—'झूठा-सच', (वतन और देश), पृष्ठ ४५७
६ यशपाल—'झूठ-सच', पृष्ठ ६४४

भ्रष्टाचार का क्षेत्र असीम हो गया है और शासन के शीर्षस्थ नेतागण भी उससे अलिप्त नहीं। मुख्यमंत्री विश्वनाथ सूद योजना आयोग के पदाधिकारी डा० नाथ को अपने मनानुकूल परिवर्तन करने पर राष्ट्रीय खोज सस्था मे नियुक्त करने ऊँची तनख्वाह देने व समय आने पर वायस चासलर बनाने का आश्वासन देते है।[1]

योजनाओ को कार्यान्वित करने मे जिस मनमाने ढङ्ग से धन व्यय किया जा रहा है और जिसका अधिकाश अधिकारियो और ठेकेदारो की जेब मे समा रहा है जिसकी ओर भी उपन्यासकार ने ध्यान दिलाया है। वह व्यग करता है—'सरकारी रिपोर्टो मे उत्पादन बढ़ता है और बाजारो मे महगाई बढ़ती है। हम तो योजनाओ से कुछ बनता दिखाई नहीं देता। जनता का अरबो रुपया करोडपतियो और सरकारी अफसरो की जेबो मे चला जा रहा है। भाखडा नागल जाकर तमाशा देख लो। जनता के खर्च पर इतना सीमट खरीदा गया है कि भाखडा के पचास साठ मील चारो ओर सब मकान सीमट के बन गये है। सीमट की जगह रेत भरी जा रही है। चवन्नी की जगह रुपये का एस्टीमेट बनता है।'[2]

भ्रष्टाचार को दूर करने के लिए जो शासकीय घोषणायें की जाती है उस पर फब्ती कसी गई—'धाधली और रिश्वत की रोकथाम के लिए काफी शोर और पुकार थी परन्तु केवल सतह पर ! रिश्वत लेने वालो और देने वालो को भी लाभ था। हानि केवल सरकार या सार्वजनिक हित की थी।'[3] यही कारण है कि रतन रिश्वत देता था और रिश्वत लेने वालो का मौसी भी देता था।

भ्रष्टाचार को प्रोत्साहित करने मे राजनीतिक दलो का भी कम भाग नहीं। सोमराज चरित्रहीन युवक है और कुकृत्य मे जेल काट आया है। पर राज्य काग्रेस कमेटी अपना मुहर युक्त प्रमाणपत्र प्रदान कर उसे राजनीतिक पीडित व देश सेवा मे २ वर्ष जेल भुगतने वाला सेनानी घोषित कर देती है जिससे वह सहकारी ऋण प्राप्त कर सके।[4]

उपन्यासकार यह तथ्य प्रस्तुत करने मे भी नहीं हिचकता कि विधायक गण भी भ्रष्टाचार मे आकठ डूबे है। उपन्यास का पात्र नरोत्तम पूछता है—'ईमानदार है कौन ! क्या कानून बनाने वाले विधान सभा के मेम्बर ईमानदार है ? जब का पन्द्रह, बीस-पच्चीस हजार रुपया खर्च करके यह लोग देश सेवा करने के लिए

१ यशपाल—'झूठा सच', पृष्ठ ६४४

२ यशपाल—'झूठा सच', पृष्ठ ६६४

३ यशपाल—'झूठा सच,' पृष्ठ ६४३

४ यशपाल—'झूठा सच', पृष्ठ ६२२

चुनाव लड़ते है ?'[1] यह ऐसा प्रश्न है जिसका उत्तर अबूझ नहीं। आगे चलकर ही एक एम० एल० ए० का उदाहरण सामने आता है जो साढे तीन साल में दो मकान पक्के खड़े कर लेते है—साठ बीघे खेतो के मालिक बन जाते हैं। थानेदार से आठ आने का हिस्सा है। सरकार के यहाँ से सब कुछ करवा देने की एजेन्सी चला रहे हैं।[2]

प्रशासन का स्तर भी गिर गया है क्योंकि अधिकारियों व कर्मचारियों की योग्यता का मापदंड उनकी कर्तव्य निष्ठा व योग्यता न होकर चापलूसी हो गया है। इसका उदाहरण है उपन्यास के पात्र डाक्टर रावेलाल, जो मुख्यमन्त्री सूद जी की कृपा से असिस्टेंट सर्जन, असिस्टेंट प्रोफेसर हो जाते है। सरकारी खर्चे पर विदेश से स्पेशल कोर्स कर 'प्रोफेसर आफ मेडीसन' के लिए प्रयत्नशील है और मात्र इसीलिए सूद जी के एग्जिना के इलाज के लिए माह में दो बार नडीगढ जाते हैं।[3]

इस तरह हम देखते हैं कि लेखक ने सन् १९४६ से १९५६ के माध्यावधि के प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार के विभिन्न स्वरूपों को यथार्थ के परिपार्श्व में दिखलाने का सफल प्रयास किया है।

आम चुनाव का चित्रण

प्रजातान्त्रिक प्रणाली में आम चुनाव का स्थान उतना महत्वपूर्ण है जितना शरीर में रक्त का। आम चुनाव प्रजातन्त्र का मूलाधार है और यशपाल ने स्वाधीनतोपरान्त हुए आम चुनावों का प्रस्तुत उपन्यास में अध्ययन पूर्ण चित्रण किया है।

प्रथम आम चुनाव के अवसर पर हम दिल्ली में चुनाव की गतिविधियों से परिचित होते हैं। राजनीतिक दल चुनाव प्रचार में कांग्रेस को पूँजीपतियों की संस्था सिद्ध करने का प्रयत्न कर मतदाताओं का समर्थन प्राप्त करने की चेष्टा करते है। 'सोशलिस्ट और कम्युनिस्ट दोनों ही कांग्रेस को पूंजीपतियों की संस्था कहकर मजदूर-किसानों के शासन की माग के नारे लगा रहे थे। दोनो को शिकायत थी कि कांग्रेस चुनाव जीतने के लिए शासन शक्ति का प्रयोग कर रही है। विरोधी दल ने मांग की थी कि चुनाव के समय कांग्रेस सत्ता में न रहे पर कांग्रेस सरकार ने माँग मंजूर नहीं की थी।[4]

विरोधी राजनीतिक दलो में आपसी फूट थी और इस कारण कांग्रेस की स्थिति सुदृढ थी यह तथ्य देना भी लेखक नहीं भूलता—'सोशलिस्टों और कम्युनिस्टों का आपस

१. यशपाल—'झूठा-सच', पृष्ठ ६४५
२ यशपाल—'झूठा-सच', पृष्ठ ६४५
३. यशपाल—'झूठा-सच', पृष्ठ ६६१
४. यशपाल—'झूठा-सच', पृष्ठ ४९१

मे सबसे उत्कट विरोध था। दोनो जानते थे कि वे काग्रेस विरोधी लोगो को आपस मे बाटकर, दानो ही काग्रेस से हारेंगे पर वे आपस मे मिल न सकते थे।'[1]

चुनाव जीतने के लिए मतदाताओ को अपनी ओर आकर्षित करने मे प्रधान मत्री के चुनाव दौरे व सन्देश अमोघ अस्त्र के रूप मे माने जाते रहे हैं। उनके विवरण[2] के साथ उनकी कटु आलोचना भी उपन्यास मे की गई। ऐसे स्थलो पर जनता की प्रतिक्रिया के रूप मे लेखक अपने ही विचार व्यक्त करता है—'आज भी महात्मा गाधी की जय-पुकार पर काग्रेस के लिए वोट मागे जाते हैं परन्तु गाधी जी के सिद्धान्त और नीति, शासन मे या काग्रेस के व्यवहार मे कहाँ है? गाधी जी को तो केवल राजघाट मे समेट दिया गया है।'[3]

चुनाव तब कितना व्यय-साध्य हो गया है और उसके लिए काग्रेसी नेता सिद्धान्तो को ताक मे रखकर किस तरह चुनाव चदा वसूलते है, उदाहरण मुख्य मत्री सूद जी हैं। उनका कथन है 'प्रधान मत्री तो हवा मे रहते हैं। प्रधान मत्री लाखो आदमियो की भीड से एक साथ मिलते हैं। काम भीड से नही चलता। प्रधान मत्री भीड से चुनाव के लिए चन्दे की ही अपील करके देख लें? लाख की भीड से दस हजार भी नही मिलेगा। आगामी इलेक्शन के लिए एक-एक राज्य मे करोड-करोड का खर्च पडेगा। प्रधान मत्री इकट्ठा कर देंगे ये रकम? सोशलिस्टिक ढङ्ग एक बात है पर ढङ्ग व्यवहारिक तो होना चाहिए। अव्यवहारिक ढङ्ग हम लोग कैसे मन्जूर कर सकते हैं। जिम्मेवारी तो हमारी है। वे तो जनता आशीर्वाद देकर एक तरफ हो जावेंगे।'[4] उपर्युक्त कथन द्वारा लेखक चुनाव के व्यय साध्य होने के साथ काग्रेस की कथनी और करनी पर भी व्यग करता है।

चुनाव के अवसर पर किस तरह राजनीतिक दलो द्वारा साम्प्रदायिक विद्वेष भडकाया जाता है[5] किस तरह वोट की खरीदी की जाती है[6] और किस तरह प्रचार निम्न स्तरीय होता है[7] इसके विवरण भी लेखक ने दिये हैं।

काग्रेस को अधिक वोट प्राप्त होने का विश्लेषण भी मिलता है जो एकागी होने पर भी लेखक उर्वरा बुद्धि का द्योतक है—'पश्चिम से आकर बसे सिक्ख हिन्दू किसानो

१. यशपाल—'झूठा सच', पृष्ठ ४६२
२. यशपाल—'झूठा-सच', पृष्ठ ७०४
३. यशपाल 'झूठा-सच', पृष्ठ ७०५
४. यशपाल—'झूठा-सच', पृष्ठ ६६४
५ यशपाल—'झूठा सच,' पृष्ठ ४६४
६ यशपाल—'झूठा सच', पृष्ठ ४६५
७ यशपाल—'झूठा-सच', पृष्ठ ४६५

ने कांग्रेस को ही वोट दिये थे। उन्होंने वोट पुरी के नाम पर नहीं, कांग्रेस के चुनाव चिन्ह 'बैलों की जोड़ी' का चित्र देखकर दिये थे। साधारण किसान की धारणा थी, कांग्रेस और मुस्लिम लीग ने देश का राज बाट लिया था। पूर्वी पंजाब और शेष भारत कांग्रेस को मिल गया था। अब कांग्रेस ही राजा थी। भविष्य में धरती का लगान अंग्रेज सरकार को नहीं, कांग्रेस सरकार को ही देना होगा। कांग्रेस पार्टी और भारत सरकार के झण्डों का रंग एक ही था। झण्डों पर 'चक्र' और 'चर्खे' के भेद की सूक्ष्मता झण्डा पूरा खुला होने पर ही प्रकट होती है।'[1]

कांग्रेस की आलोचना

सम्पूर्ण उपन्यास में घटनाओं के अवसरानुसार कांग्रेस की कटु आलोचना की गई है। कांग्रेस शासन की गतिविधियों को विरोधी पक्ष की दृष्टि से देखा गया है अतः उसकी अच्छाइयों के स्थान पर बुराइयों का चित्रण किया गया है। साम्यवादी पात्र चड्ढा का कथन है, 'क्या अब कांग्रेस की डिक्टेटरशिप नहीं है? हड़ताल को गैर कानूनी करार देना क्या है? आर० एस० एस० को गैर कानूनी कर देना, सब कम्युनिस्टों को गिरफ्तार कर लेना, सन्देह मात्र पर गिरफ्तार कर लेना और प्रिवेंटिव डिटेंशन का कानून क्या है?'[2] स्पष्ट है कि जन सुरक्षात्मक बनाये गये कानूनों को वे मात्र डिक्टेटरशिप मानते हैं और पाठकों को स्वनिर्मित भ्रमजाल में लाकर सहानुभूति प्राप्त करना चाहते हैं।

माथुर भी आचार्य कृपलानी के शब्दों को उद्धृत कर कांग्रेसी प्रशासन की खिल्ली उड़ाता है और पुलिसराज की भर्त्सना करता है।[3] मर्सी भी कहती है—'पूंजीपतियों के हौसले बढ़ गये हैं कि अब तो हमारे चंदों से पलने वालों का राज है। बेचारे मजदूरों से हड़ताल का भी हक छीन लिया। कंट्रोल हटा दिये हैं कि पूंजीपति मन भर के कमायें और कांग्रेस को चंदा दें। लोगों को क्या मिला? गल्ला कपड़ा लड़ाई के जमाने में उतना महंगा नहीं था जितना अब है। गल्ला कपड़ा कम है तो तुम सबको हिस्से से दो। पूंजीपतियों को दाम क्यों बढ़ाने देते हो?'[4] इस तरह कांग्रेस को पूंजीवादियों का समर्थक सिद्ध करने का प्रयास किया गया है।

---

१ यशपाल—'झूठा-सच', पृष्ठ ४३६-३७
२ यशपाल—'झूठा सच', पृष्ठ ४६६
३ यशपाल—'झूठा-सच', पृष्ठ ३६८
४ यशपाल—'झूठा-सच', पृष्ठ ३६८

गाँधी जी के आमरण अनशन और प्रधानमंत्री के निवास—व्यवस्था[1] के ऊपर भी करारा व्यंग किया गया है। काग्रेसी नेताओ द्वारा मंत्रिपद प्राप्ति उपरान्त प्रदर्शित शान शौकत का चित्र भी उनके सिद्धान्त-च्युत स्वरूप को प्रस्तुत करता है। 'भारतीय मानव विज्ञान परिषद के उद्‌घाटन को लेकर प्रधान मन्त्री पर चोट की गई है। विस्थापितो के शिविर मे प्रधानमत्री की भेंट का जो चित्रण किया है वह भी उनकी प्रतिष्ठा के प्रतिकूल तथा साम्प्रदायी मुलम्मायुक्त अकन है।[2] काग्रेसी नीतियो को सरकारी कर्मचारियो पर किस तरह थोपा जाता है खद्दर की हुण्डियो की खरीद का निर्देश इसका उदाहरण है। बताया गया है कि सरकारी कर्मचारियो को खद्दर की हुण्डियो की खरीद के लिए प्रोत्साहित किया जाता है यद्यपि कर्मचारियो की नजर मे 'गांधी आश्रम और खद्दर तो सदा से पोलिटिकल रहे हैं। खद्दर पर हमारा विश्वास नहीं। अपना खद्दर जबरदस्ती पहनाते है। गांधी भडार का घाटा पब्लिक से टैक्स लेकर पूरा करते हैं। नेहरू को चर्खा कातने का शौक है तो दिन भर राजघाट पर जाकर काता करें, हमारे सिर खद्दर क्यो लादते है।'[3] इस तरह एक ओर जहाँ खद्दर का विरोध प्रदर्शित किया गया है वही दूसरी ओर नेहरू जी पर भी आक्षेप किया गया है।

यह भी बताया गया है कि काग्रेसी शासन मे सरकारी कर्मचारियो को इस तरह काग्रेसी कार्यक्रम की सफलता के लिये बलात् खीचा जाता है और यदि वे इनका विरोध करें तो उन्हे चक्कर मे लाते देर नही लगती। तारा और डा० नाथ (सरकारी उच्चाधिकारी) के विवाह को इसी बुनियाद पर 'पोलिटिकल साबोताज़' व 'पोलिटिकल ब्लेक मेल' बनाया जाता है।[4]

काल्पनिक काग्रेसी पात्रो की सृष्टि और उनका चरित्र चित्रण लेखक ने पाठको की दृष्टि मे हेय बनाने के लिए किया है। वे लेखक के पूर्व आग्रह से ग्रसित होने के साथ-साथ है उसके हाथो की कठपुतली मात्र।

गाँधी हत्याकाड का विवरण

'झूठा सच' मे गाँधी जी की राजनीतिक गतिविधियो के साथ गाँधी हत्याकाड के कई चित्र प्रस्तुत किये गये है। साम्प्रदायिकता को रोकने के लिये गांधी जी के प्रयास

---

१. यशपाल–'झूठा-सच,' पृष्ठ ६४२-४३
२. यशपाल–'झूठा-सच,' पृष्ठ १७४-७५
३. यशपाल–झूठा-सच,' पृष्ठ ४४५
४ यशपाल–झूठा सच,' पृष्ठ ७००-१

प्रार्थना सभाओं का आयोजन[1] गांधी जी के प्रयासो के विरुद्ध जन आक्रोश,[2] गांधी जी का आमरण अनशन और उससे उत्पन्न राजनीतिक गुत्थियां[3] और गांधी हत्याकाण्ड[4] का विस्तृत विवरण इस उपन्यास मे मिलता है।

गांधी जी ने १३ जनवरी १९४७ से जो आमरण अनशन किया था उसका कारण था भारत सरकार पर पाकिस्तान को ५५ करोड़ रूपये देने हेतु नैतिक प्रभाव डालना। साम्प्रदायिक एकता के लिए गांधी जी का यह तीसरा आमरण अनशन था। भारत सरकार और उसके कर्णधार पाकिस्तान को ५५ करोड़ रुपया देने के विपक्ष मे थे किन्तु गांधी जी के आमरण अनशन ने जो एक नई स्थिति उत्पन्न कर दी थी वह भयावह थी अत सरकार को झुकना पड़ा। होम सेक्रेटरी रावत के शब्दो मे यह 'दिस इज ए हिस्टोरिकल ब्लडर'[5] थी। वे यह तथ्य भी बतलाते है कि 'पटेल क्या, पूरी कैबिनेट इसके विरुद्ध थी। कैबिनेट इस विषय मे निर्णय करके घोषणा कर चुकी थी परन्तु नेहरू और राजेन्द्र बाबू गांधी जी के अनशन से दहल गये। दूसरे लोगो के पाँव भी उखड़ गये। पटेल अकेले रह गये।'[6] होम सेक्रेटरी रावत के ही शब्दो मे 'खुद पटेल नही बरस गये हैं। उन्हे मात स्वीकार कर लेनी पड़ी है इसलिए १५ तारीख को, पचपन करोड़ के बारे मे सरकारी विज्ञप्ति प्रकाशित होते ही वे १६ को सुबह ही काठियावाड़ चले गये। आशका है वे त्यागपत्र न दे दें।'[7]

गांधी जी के आमरण अनशन के प्रसग को लेकर लेखक उसकी तुलना मे काकोरी कान्सपिरेसी केस के क्रान्तिकारियो के अनशन का न केवल उल्लेख ही करता है अपितु स्वय क्रान्तिकारी होने के नाते उसकी श्रेष्ठता भी प्रतिपादित करता है।[8]

हाफिज जी के शब्दो मे वह गांधी जी के उपवास करने के तरीके पर भी व्यग करता है—'फाके से रहकर दूसरो को डराना जाहिल औरतो का तरीका है या गांधी ने यह तरीका पालिटिक्स मे चलाया है। जब उसके पास दलील नही होती तो वह फाके से रहकर डराता है।'

---

१ यशपाल—'झूठा-सच,' पृष्ठ ८६ व ८७
२ यशपाल—'झूठा-सच,' पृष्ठ ९२, ९३, ९४
३. यशपाल—'झूठा सच,' पृष्ठ १९४ व २०४
४. यशपाल—'झूठा-सच,' पृष्ठ २३१-३२
५ यशपाल—'झूठासच,' पृष्ठ २२१
६ यशपाल—'झूठा-सच,' पृष्ठ २१९
७ यशपाल—'झूठा सच,' पृष्ठ २१९
८ यशपाल—'झूठा-सच,' पृष्ठ २२२-२३

पाकिस्तान द्वारा किये गये काश्मीर पर आक्रमण का संक्षिप्त ऐतिहासिक निर्देश भी दिया गया है।[1]

पंचवर्षीय योजना की आलोचना

यशपाल का उपन्यास-साहित्य सोद्देश्य है और वाद विशेष के अनुयायी होने के कारण कांग्रेस उसके सिद्धान्तो और कार्यो की आलोचना करना उनके लिए सामान्य वस्तु है। कांग्रेस द्वारा राष्ट्र के विकास के लिए गठित योजना आयोग और उसके कार्यक्रम की अनेक स्थलो पर व्यंगोक्ति की गई है।[2] आर्थिक योजना को वे चुनाव जीतने का 'स्टंट' बताते हैं। उनके अनुसार 'कांग्रेसी सरकार जनता का विश्वास पाने के लिए चुनाव से एक वर्ष पूर्व सन् ५६ के आरम्भ मे ही अपनी दूसरी विशाल आर्थिक योजना लागू कर देना चाहती थी।[3] उपन्यास के साम्यवादी पात्र उद्योगो पर राष्ट्रीय नियन्त्रण की शासकीय नीति की भी आलोचना करते है।[4]

कम्युनिस्ट पार्टी की रीति नीति

कांग्रेस के प्रति जनता की आस्था का ह्रास और कम्यूनिस्टो के बढते हुए प्रभाव का दिग्दर्शन उपन्यास का उद्देश्य है। इसके लिए लेखक ने काल्पनिक कांग्रेसी व साम्यवादी पात्रो की सृष्टि की है। साम्यवादी पात्रो के माध्यम से कम्युनिस्ट पार्टी के सिद्धान्तो व सन् १९४६ से १९५६ तक की गतिविधियो का चित्रण किया गया है। विभाजन के समय साम्प्रदायिक संघर्षो मे कम्यूनिस्ट पार्टी द्वारा शांति स्थापित करने संबंधी कार्यो का विस्तृत विवरण दिया गया है और विभाजन के बाद से ५६ तक की भारतीय राजनीति मे पार्टी की भूमिका का स्पष्टीकरण दिया गया है।

झूठा सच(वतन और देश)के आरम्भ मे ही हम दयालसिंह कालेज की स्टूडन्ट फेडरेशन और उसकी राजनीति से परिचित होते है। स्टूडेन्ट फेडरेशन के कई सदस्य ही आगे चलकर साम्यवादी सिद्धान्तो का प्रचार करते हैं। राजनीतिक जिज्ञासा सदस्यो मे प्रारम्भ से ही है और 'पीपल्स-एज' के आधार पर वे राजनीतिक रियाज करते है। वे साम्प्रदायिक तनाव दूर करने के लिए जुलूस निकालते है, भाषण देते है और लीग व कांग्रेस को कोसते हैं। साम्यवादी होने के नाते धर्म व प्रेम के संबध मे इनकी अपनी धारणायें व मान्यतायें हैं और इसीकारण प्रद्युम्न जुबेदा से और तारा असद से अन्तर्जा-

१. यशपाल—'झूठा-सच,' पृष्ठ ६२-६३
२. यशपाल—'झूठा-सच,' पृष्ठ ६४६ व ७११
३ यशपाल—'झूठा-सच', पृष्ठ ६४२

तीय रोमान्स करती है पर यह रोमान्स भी वैवाहिक रूप धारण नही कर पाता क्योंकि समय सघर्ष का था और व्यक्तिगत जीवन का स्थान पार्टी के बाद। कामरेड असद साम्प्रदायिकता दूर करने का एक नया हल भी देते है–'अगर धर्म या सम्प्रदाय के विश्वासो की पृथकता के बावजूद हिन्दू मुसलमानो के सामाजिक सम्बन्ध होते रहें तो झगडा कितना कम हो जाये।'[1] साम्यवादी इन आदर्शो को नही मानते पर लेखक ने घटनाओ को मोड देकर ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी कि रोमान्स के बाद विवाह का प्रश्न ही नहीं आया। हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए साथी हीरासिह, प्रद्युम्न, असद आदि अनेक स्थलो पर भाषण देते हैं।[2] कम्युनिस्ट पार्टी का रेलवे यूनियन पर अच्छा प्रभाव है और पैंतालीस हजार सदस्य उसके अन्तर्गत हैं। यूनियन भी शाति आदोलन मे भाग लेती है। किन्तु साम्प्रदायिक अग्नि की ज्वाला और भड़क उठती है। काग्रेस विभाजन के सिद्धान्त को स्वीकार कर लेती है जिसका कामरेड सैद्धान्तिक विरोध करते है। हि
के निर्णय से साम्प्रदायिकता ओर पकड़ती है और लेखक उनका सविस्तार मार्मि
करता ▌। 'झूठा-सच' के प्रथम भाग मे कम्युनिस्टो का प्रसग दूसरे भाग की तुल
है। दूसरे भाग मे काग्रेसीसरकार स्थापित होने के बाद उनकी गतिविधियो
स्वाभाविक है। दूसरे भाग 'देश का भाग्य' मे साम्यवादी पात्र काग्रेस की
करते है, पार्टी की नीति पर चर्चा करते है, आम चुनावो मे भाग लेते हैं। म
कामरेडो का मुख्य केन्द्र है। वहां कामरेड 'जोशी की नीति स्ट्रेंग्थन नेहरूज
की सहायता करो), रणदिवे का सोशलिस्ट रेवोल्यूशन का नारा, बोर्जुआ
रेवोल्यूशन (राष्ट्रीय प्रजातात्रिक क्रांति), रेवोल्यूशनरी रोल आफ स्माल बोर्
रोल आफ वर्किंग क्लास इन डेमोक्रेटिक रेवोल्यूशन, डेम्जर आफ बोर्जुआ
पीपल्स डेमोक्रेटिक रेवोल्यूशन' पर चर्चा करते हैं।[3] चड्ढा नेशनल बोर्जुआ
से फ्युडिलिज्म और पूंजीवादी अधिनायकत्व को समाप्त करने की
करता था। वह जमीदारी प्रथा के उन्मूलन, खेती की भूमि और बडे उद्यो
करण के कार्यक्रम को प्राथमिकता देना चाहता था। काग्रेस सरकार
रजवाडो की सत्ता की समाप्ति उसकी दृष्टि मे प्रजातत्र की ओर सतोषजन

साम्यवादी दल को लेकर जो आपसी मतभेद है उनके ऊपर भी
के द्वारा प्रकाश डाला है। माथुर व तिवारी कम्युनिस्टो के समाजवादी स
करते थे परन्तु पार्टी की नीति पर उन्हे आपत्ति थी। वह भारतीय कम्यु

१ यशपाल–'झूठा-सच,' (वतन और देश), पृष्ठ ८६
२ यशपाल–'झूठा-सच,' (वतन और देश), पृष्ठ १२९
३. यशपाल–'झूठा-सच,' (देश का भविष्य), पृष्ठ ४३७

स्वतंत्र राष्ट्रीय सगठन नही, अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट सगठन का आनुषगिक अग ही मानते थे। उन्हे आपत्ति थी कि कम्युनिस्ट पार्टी की नीति अपनी राष्ट्रीय परिस्थितियो की चेतना से नही अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन की स्ट्रेटजी के आधार पर बनती है।[1] माथुर इस तथ्य की ओर से भी अपनी आंख नही मूंदता—'तुम लोगो की नीति सदा मन्यत्र के प्राप्त आदेशो के अनुसार चलती है। सब जानते हैं,तुम लोगो ने अपनी कलकत्ता काग्रेस की नीति 'फार लास्टिंग पीस एन्ड पीपल्स डमोक्रेसी' मे प्रकाशित लेख के आधार पर बदली है।[2]

माथुर यह भी कहता है कि 'तुम्हारी पार्टी का दृष्टिकोण कभी राष्ट्रीय नही रहा।' इसकी पुष्टि के लिए वह १९४२ की घटनाओ की विवेचना करता है।[3]

योजना लेखक ने उच्चाधिकारियो द्वारा तारा को मर्सी से सम्पर्क न रखने की चेतावनी नियन्त्रण यह उद्घाटित किया है कि शासकीय कर्मचारियो को साम्यवादियो या उनके किसी प्रकार सम्पर्क न रखने का निर्देश है।[4]

कम्युनिस्ट देश की स्वतन्त्रतोपरान्त कम्युनिस्ट पार्टी की स्थिति म जो प्रगति हुई है उसकी का चर्चा करना भी लेखक नही भूला। प्रथम चुनाव के बाद की स्थिति का विश्लेषण का दिग्दर्शन कहा गया है कि 'कुछ लोगो ने काग्रेस सरकार को गिरा देने के जो काल्पनिक पात्रो की सृ लिए थे वे कोहरे के बादलो की तरह उड गये थे। भारत के सभी राज्यो म व सन् १९४६ सरकारें कायम हो गई थी। सभी विधान सभा म काग्रेस का निर्णायक बहुमत समय साम्प्रदा ऐसी सरकार की आलोचना करने वालो की सख्या पूर्वापेक्षा बढ गई थी। का विस्तृत वि कम्युनिस्ट भी विधान सभा म पहुँच गये थे। लोक सभा म भी पाँच सौ राजनीति म पा लगभग कम्युनिस्ट सदस्य आ गये थे। अब कम्युनिस्ट पार्टी गैरकानूनी नही गई थी। कानूनन कम्युनिस्ट पार्टी की स्थिति दूसरी राजनैतिक पार्टियो के

झूठा १[5]

फेडरेशन और उ

ही आगे चलकर

मे प्रारम्भ से ही ल के उपन्यासो के अध्ययन से इस निष्कर्ष पर पहुँचना स्वाभाविक है कि वे साम्प्रदायिक सिद्धान्तो के अनुरूप कथानक और पात्रो की सृष्टि करते है। कथानक और काग्रेस को को

धारणायें व मा ल—'झूठा-सच,' (देश का भविष्य), पृष्ठ ४३७

१ यशपाल—ल—'झूठा-सच,' (देश का भविष्य), पृष्ठ ४४०

२ यशपाल ल—'झूठा-सच,' (देश का भविष्य), पृष्ठ ४४१

३ यशपाल ल—'झूठा सच,' (देश का भविष्य), पृष्ठ ४४३

४ यशपाल ल—'झूठा सच,' (देश का भविष्य), पृष्ठ ४९८

पात्र ऐतिहासिक न होने पर भी सामयिक राजनीतिक घटनाओ का समाहार वे इस कुशलता से करते है कि उपन्यास मे राजनीतिक वातावरण सम्पूर्ण रगीनी के साथ उभर आता है। इस रगीनी को वे रोमान्स के विविध प्रसंग संयुक्त कर और चटकदार तथा पाठको के लिए ग्राह्य बनाते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि केवल शुष्क राजनीतिक सिद्धान्त या घटनायें पाठक का समुचित मनोरंजन न कर सकेंगी। रोमान्स की सृष्टि भी मार्क्स के द्वन्द्वात्मक सिद्धान्त की पुष्टि की सहायिका के रूप मे होती है। वे मध्यवर्गीय नागरिक पात्रो को लेकर मार्क्स की अभिव्यक्ति देते हैं। उनके प्राय सभी प्रमुख पात्र सेक्स पीडित हैं, राजनीति का मोहिनी आवरण लपेटे हुए राजनीतिक रोमान्स की सृष्टि करते हैं। यह बात अलग है कि सेक्स के विभिन्न पहलुओ को उन्होने साम्यवादी दृष्टिकोण की कसौटी से कसा है। फिर भी हम इस सत्य से विमुख नही हो सकते कि रोमान्सो के जाल मे यशपाल के राजनीतिक उपन्यासो का स्वरूप स्वस्थ और प्रभावकारी नही बन पाता। फ्रायड के इसी प्रभाव के कारण उनका सामाजिक यथार्थवाद भी कुठित हुआ है। इतना होने पर भी हम इस कथन से पूर्ण सहमत हैं कि 'यशपाल आधुनिक नागरिक जीवन के चित्रकार हैं और भारत का सर्वहारा वर्ग प्रथम बार आपके पात्रो मे अपना विजयी स्वर उठाता है। मार्क्सवाद के वैज्ञानिक विचारदर्शन को उपन्यास कला मे ढालने का भी पहला सफल प्रयास यशपाल ने किया है।'[1]

अन्य उपन्यासकार और राजनीतिक उपन्यास

अचल

आलोच्यावधि के उपन्यासकारो मे अचल के 'चढती धूप', 'नई इमारत' और 'उल्का' मे राजनीतिक चेतना विशेष रूप से प्रस्फुटित हुई है। रामेश्वर शुक्ल 'अचल' मूलत कवि है और उनके कवि-मानस का रूप उनके उपन्यासो मे भी देखा जा सकता है। उनके राजनीतिक उपन्यासो मे प्रेमानुभूति या रूप-लालसा की आसक्ति उनके कवि-हृदय की दुर्बलता है। अंचल सोद्देश्य साहित्य की सार्थकता को मानकर उसके प्रति ईमानदार रहने की चेष्टा भी करते हैं। उनके कथनानुसार 'साहित्य को मानव समाज की क्रान्तिकारी आर्थिक और राजनीतिक उन्नति का सर्वश्रेष्ठ माध्यम और मन्त्र मानने का जो मेरा प्रगतिशील स्वप्न है उसके प्रति मैं अक्षर-अक्षर वाक्य-वाक्य तक ईमानदार हूँ।'[2] वे उपन्यास को बाह्य जन-जीवन के यथार्थो के अटूट पारस्परिक सपर्क के रूप मे

---

१. आलोचना, जनवरी १९५७, पृष्ठ ८८
२ अचल—'चढती धूप' पृष्ठ ३ (कुछ शब्द में)

देखते हैं। उनके शब्दो मे 'कलाकार का काम केवल चित्रण और उद्देश्यहीन चित्रण नही है। कलाकार इस बाहरी दुनिया मे जन जीवन का प्रवहमान चिन्ताधारा और कर्म योजना मे जो देखता, सुनता, सहता है—समभता-बूभता है, उनके वाछनीय रूप के प्रति प्रेम और अवाछनीय रूप के प्रति घृणा का सन्देश भी सुनाता है। यह सन्देश होता है समाजी विषमता और असगति के प्रति विद्रोह का – वर्गगत और जातिगत शोषण के विरुद्ध नव निर्माणात्मक प्रतिहिंसा का—इतिहास की नवयुग—प्रवर्तक शक्तियो के प्रकाश मे एक अधिक कल्याणकारी 'सब के सुख' और समृद्धि की विराट भावना पर आधारित अर्थनीति और समाज-व्यवस्था के बली आग्रह का। मनुष्य का सामाजिक अस्तित्व उसकी चेतना को निर्धारित करता है।'[1] वे यह भी मानते हैं कि 'पदार्थवादी यथार्थता के साथ आजीवन चलने वाला उसका यह सघर्ष क्रातिकारी होता है—विप्लव वृत्तियो और विद्रोह शिखाओ पर वह आगे बढता है क्योकि कलाकार को वर्तमान समाजी यथार्थता को जन्म देना है जो परिवर्तनशील समाज और राजतन्त्र की नई नई मागें पूरी करे, सर्वहारा-वर्ग के हितो के सरक्षण का भार वहन करे। इसके लिए आवश्यक है कि वैयक्तिक पूंजीवाद का अन्त हो और उसकी शक्तियो पर साहित्य और राजनीति दोनो मे अधिक से अधिक पैनी कठोर और आक्रमणात्मक चोट की जाय।'[2]

अचल ही हिन्दी के प्रथम राजनीतिक उपन्यासकार है जो अपनी मान्यताओ की स्पष्ट घोषणा के साथ उपन्यास जगत मे आए। 'चढती धूप', नई 'इमारत' और 'उल्का' अचल के क्रान्तिपूरक उपन्यास हैं जो रोमाटिक प्रेम और काव्यात्मक अभिव्यजना के कारण आलोचको मे मतिभ्रम की स्थिति उत्पन्न करते हैं। उनके सम्बन्ध मे कहा गया है कि 'अचल की क्रान्ति मूलत भौतिक नही, भावगत है, वैज्ञानिक नही रोमानी है। प्रकृति के बारे भी भावात्मक उद्गारो को व्यक्त करने के लिए हैं।'[3]

चढती धूप (१६४५)

'चढती धूप' अचल का प्रथम उपन्यास है 'जिसका घटनाकाल कांग्रेस के सन् १९३२ वाले आदोलन के बाद और विभिन्न प्रान्तो मे काग्रेस मन्त्रिमडल स्थापित होने के बीच का समय है—जब देश मे जोरो के साथ समाजवादी चेतना का उदय हो रहा था और काग्रेस के भीतर एक उग्र समाजवादी दल की स्थापना हो चुकी थी। देश मे

---

१. अंचल—'चढती धूप,' पृष्ठ ३ ('कुछ शब्द' में)
२ अचल—'चढती धूप,' पृष्ठ ४
३. सुषमा धवन—'हिन्दी उपन्यास,' पृष्ठ १३०

उस समय चारों ओर फैली निराशा और पराजय भावना के बीच साम्यवाद की लाल ज्योति ही भारतीय बालकों और युवकों के गिरते मनों को थामे थी—उन्हें नई प्रेरणा और चेतना प्रदान कर रही थी।[१] कहानी का नायक मोहन निम्न मध्यवर्ग का तरुण किशोर है जिसकी उगती हुई बौद्धिक चेतना और पीढ़ियों से चले आ रहे जीवन-व्यापी संस्कारों का पारस्परिक घात-प्रतिघात और संघर्ष कहानी का ढांचा है। अर्थाभाव के कारण विद्याध्ययन में बाधा आते देख वह श्रम का सम्बल अपनाने को आतुर है। वह मानता है कि यह तो जीवन की लड़ाई है। लड़ने वाले के पास सब हथियार हों यह जरूरी नहीं है। गौरव और महत्व तो उसी चरणों की धूल बनते हैं जो निहत्था, निस्सहाय, निःसम्बल, कठिनाइयों से जूझता है—जीवन की विषमताओं से भिड़ता है।[१]

छात्र जीवन में ही वह राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेता है। देवपुर में कानपुर के किसान सभा नेता वर्मा जी के आगमन पर वह समारोह की सफलता के लिए जी-तोड़ मेहनत करता है। वह किसानों की सभा में खुशहालपुर के जमींदार की लड़की के विवाह में बेगार न करने का निर्देश देता है। वह जमींदार को व्यर्थ तथा सरकार व जनता के बीच अनावश्यक कड़ी मानता है। उसके शब्दों में जमींदार के स्वार्थ अलग हैं।[१] किसानों के स्वार्थों का उनसे मौलिक संघर्ष है। वह ऐसे भविष्य का स्वप्न देखता है जिसमें स्टेट की सारी जमीन होगी—किसान का सीधा संबंध स्टेट से होगा। जमींदारी पूँजीवादी व्यवस्था का अत्यन्त विकृत रूप है। इसे जल्द से जल्द समाप्त होना है।[२] इसी परिवर्तन को लाने के लिए वह कुल्हड़ राजनीति में भाग लेने को ही जीवन का अंतिम ध्येय घोषित करता है और स्वयं को एक सजीव शक्ति का अंश सिद्ध करता है। वह कहता है 'मेरा मंदिर मेरा देश और समाज है।' वही अन्धकार ग्रस्त रहा तो दो-चार, दस-बीस घरों के टिमटिमाते चिरागों से फायदा ?[३] वह जीवन का लक्ष्य निर्धारित करता है औरों के साथ मिलकर नयी सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करना। उसे नर के द्वारा नर का, वर्ग के द्वारा वर्ग का, देश के द्वारा देश का शोषण गवारा नहीं। वह पुरानी व्यवस्था की ईंटों को तोड़ने में अपनी जान दे देगा। वह जानता है कि सामाजिक व्यवस्था के बदल जाने पर व्यक्ति और समाज का संघर्ष जो व्यक्तिवाद की जान है, नहीं रह जाता।[४] वह

---

१ अंचल—'चढ़ती धूप,' पृष्ठ १३
२ अंचल—'चढ़ती धूप,' पृष्ठ ४६
३ अंचल—'चढ़ती धूप,' पृष्ठ ४६
४ अंचल—'चढ़ती धूप,' पृष्ठ ६०

सांस्कृतिक संग्राम का सिपाही बन कर तब तक लड़ना चाहता है जब तक समाज की व्यवस्था की चाभी सबसे बड़ी जमात के हाथ में नहीं आती—समाज के धन का समाज में पैदा होने वाली वस्तुओं का बँटवारा जब तक सबसे बड़े वर्ग की हिताभिलाषा से नहीं होता। ममता से वह राष्ट्रीय स्थिति के बारे में कहता है, 'भयानक अँधियारा हमारे देश में छाया है। इतना विराट शोषण है—इतना सूक्ष्म प्रकाड भ्रमय है—ऐसी भयकर दासता है कि कहते नहीं बनता।'[1] इसी शोषण को समाप्त करने—उससे जूझने के ध्येय से वह अपनी प्रेमिका ममता को अपने साथ बधन-युक्त नहीं करना चाहता। वह कर्म-क्षेत्र को चुन कानपुर चला जाता है। ममता को धैर्य बधाते हुए वह कहता है—'समाज के सामने व्यक्तिगत सुख का मोह क्या है?' कानपुर में मजदूर नेता वर्मा जी के पास रहने पर उसका सम्पर्क वर्मा जी की बहिन तारा तथा अन्य साम्यवादी कार्यकर्ताओं से होता है। तारा साम्यवादी चेतना से अनुप्राणित पात्र है। जनता के काम से उसे अवकाश नहीं। 'दिन-दिन भर मिल मजदूरों की बस्तियों में घूम कर औरतों में बगावत फैलावेगी। बाहर रहेगी तो देहातों में व्याख्यान देती फिरेगी।'[2] साम्यवादी कार्यकर्ता हैं अरोड़ा जो मजदूर सभा के सयुक्त मत्री है, मोहिले जो रेलवे वर्कर यूनियन के प्रधानमन्त्री है, कामरेड सारस्वत जो प्रान्तीय असेम्बली के मेम्बर है और कामरेड रिजवी जो क्रांतिकारी कवि, लेखक और वर्कर यूनियन के प्रधान है। मोहन के साथ प्रथम परिचय में ही हम इन्हें साम्यवाद की व्याख्या करते व सामयिक राजनीतिक स्थिति पर चर्चारत देखते हैं। मजदूरों के बीच साम्यवादी दल की प्रतिष्ठा का ज्ञान हमे वर्मा के कथन से मिलता है जो कहते हैं—'यह तो हमारी लगन और कुर्बानी है जिसने हमें मजदूर किसानों में इतना प्रिय बना दिया है कि आज उस वर्ग में हमारा नेतृत्व है। कोई दूसरी राजनीतिक पार्टी इस सिलसिले में हमारा मुकाबला नहीं कर सकती।'

पार्टी के कार्य में महिलायें भी पीछे नहीं। तारा के यहाँ मोहन मजदूर सभा के प्रधान मन्त्री मेहरोत्रा की पत्नी और कम्युनिस्ट पार्टी की जनरल सेक्रेटरी श्रीमती प्रधान के सम्पर्क में भी आता है। यहीं मजदूरों और उनके परिवार के सदस्यों में क्रांतिकारी भावना विकसित करने के लिए 'ग्रुप क्लासेज' की योजना बनाई जाती है। मोहन मानता है कि 'क्रांति की इच्छा, लालसा, शक्ति जनजन के अदर मौजूद है। उसका उद्यम और धनत्व इन आयोजनों से होगा। वह यह भी मानता है कि 'इस प्रायोजन द्वारा यदि लोगों में एक बौद्धिक आग जलाई जा सके—मजदूरों में—उनकी स्त्रियों में—उनके बच्चों में प्रचड क्रांतिकारी ज्वाला धधक सके तो उसका लक्ष्य पूरा

१. अंचल—'चढ़ती धूप,' पृष्ठ ६३
२ अंचल—'चढ़ती धूप,' पृष्ठ ७७

हो जावेगा। जन वर्ग की अनन्त शक्ति को उन्मादक अभिव्यक्ति देना—इस विद्रोह शक्ति को पूर्णता तक पहुँचा देना हमारा ध्येय होना चाहिए।'[१] क्रांति की व्यक्तिवादी प्रवृत्ति की वह खिल्ली उड़ाता है।

पर्याप्त संख्या में प्रचार हेतु ग्रुप क्लासेज प्रारम्भ की जाती हैं और मजदूरों में राजनीतिक जागृति उत्पन्न होती है। आपत्तिजनक भाषण देने के आरोप में वर्मा जी को एक वर्ष का कारावास होता है और विषम आर्थिक स्थिति के कारण मोहन 'जागरण' में काम करने लगता है। तारा और मोहन विभिन्न विषयों पर चर्चा करते हैं और साम्यवादी विचार-धारा की पुष्टि करते हैं। उनका मत है कि 'ईश्वरवाद या धर्म यदि क्रान्ति का विरोध करते हैं और ऐताहशत्व के हिमायती हैं तो उन्हें नष्ट होना है। हमारे कल्याण पर ही वे पनप सकते हैं—हमारे शोषण, पतन और सर्वनाश पर नहीं।'[२] वे उस धर्म की सार्थकता मानते हैं 'जो यह विश्वास पैदा करे कि मनुष्य और उसके विचार समय की आर्थिक अवस्था में पलते हैं—आर्थिक अवस्था में परिवर्तन करके ही आध्यात्मिक उन्नति हो सकती है। उनकी दृष्टि में धर्म और ईश्वर दोनों साधन हैं—साध्य नहीं। साध्य है जीवन की पूर्णतम आध्यात्मिक उन्नति जो आर्थिक उन्नति पर आधारित है।' मोहन हिंसा और अहिंसा की तात्त्विक विवेचना भी करता है। उसकी दृष्टि में 'समाज की भयंकर समस्या और नारकीय विषमता का निपटारा युद्ध में है, शान्तिमय संघर्ष या समझौते में नहीं—पूँजीवादी स्वार्थों के विनाश में है—पारस्परिक मेल में नहीं। क्रान्ति में है—परिवर्तन में नहीं—कोटि-कोटि शोषित श्रमिकों की हुंकार में है—व्यक्तिवादी आत्म अभिव्यक्ति में नहीं—हिंसा में है—अहिंसा में नहीं।'[३] नारी समस्या पर भी साम्यवादी दृष्टि से विचार किया गया है।

इधर मिल मजदूरों की मजदूरी में कमी करने, मजदूरों को नौकरी से निकाले जाने और ग्रुप क्लासेज में न जाने का षड्यन्त्र होता है। श्यामाचरण के कथन से ज्ञात होता है कि 'मिलों में हलचल मची है—उथल-पुथल जारी है। मजदूरों की माँगें बढ़ती जाती हैं। मिल मालिकों और मजदूरों के बीच की खाई बढ़ती जाती है।'[४] मोहन ऐसी स्थिति में मजदूरों का समर्थन करता है। इधर तारा की चंचलता और अस्थिरता मोहन के लिए विचित्र परिस्थिति का निर्माण करती है और वह तारा का पर त्याग

---

१ अंचल—'चढ़ती धूप,' पृष्ठ ६६
२ अंचल – 'चढ़ती धूप,' पृष्ठ १२०
३. अंचल – 'चढ़ती धूप,' पृष्ठ १२१
४ अंचल – 'चढ़ती धूप,' पृष्ठ २१६

मजदूरों की बस्ती में आ जाता है। मिल-मालिकों के अत्याचारों के विरुद्ध हड़ताल की योजना बनती है और अनेक साम्यवादी नेता गिरफ्तार कर लिये जाते हैं। हड़ताल से श्रमजीवी वर्ग प्रबुद्ध और आन्दोलित हो उठता। मिल में 'लाक आउट' होता है और कम्युनिस्ट और कांग्रेस मजदूरों की सहायता हेतु प्रयत्न करते हैं। एक का रास्ता है हिंसा का और दूसरे का अहिंसा का हड़ताल के प्रसंग को विस्तार से चित्रित किया गया है। इसके अन्तर्गत हड़ताल के प्रारम्भ में मजदूरों की उत्साहपूर्ण मनोभावना और अन्त में घिरती हुई निराशा, हड़ताल के दौरान होने वाला सघन प्रचार कार्य और उसके तरीके, पूँजीपतियों की रीति-नीति, आमसभाओं का आयोजन और नौकरशाही के अत्याचारों के सजीव चित्र उरेहे गये हैं।

हड़ताल को लेकर गोलीकांड होता है जिसमें मोहन और उसके तीन साथी शहीद होते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपन्यास लेखक ने मोहन और तारा के चरित्रों को कथा का केन्द्र बिन्दु बना कर समाजवादी विचारधारा के प्रतिपादन का प्रयास किया है। इसमें उसे यथेष्ट सफलता प्राप्त न हो सकी है क्योंकि उपन्यास में ममता का चरित्र ही अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण हो गया जो समाज व कर्तव्य की बलिवेदी तक ही सीमाबद्ध है। ममता के चरित्र में आदर्शवाद का आग्रह है और वह प्रेम को जीवन का सबसे बड़ा वरदान मानती है। मनोवेगों के द्वारा ममता के चरित्र का विकास किया गया है और जो आकर्षक तथा सत्य के अधिक निकट है।

'चढ़ती धूप' में समाजवादी क्रांति की चेतना की प्रतिच्छाया प्रस्तुत करने हेतु कांग्रेस और उसके सिद्धान्तों को हीन बनाने का प्रयास किया गया है। कहा गया है कि 'गाँधीवाद महान विशृंखलित करने वाली शक्ति है। समय का प्रवाह-सन् इक्कीस के आन्दोलन से लेकर अब तक का इतिहास यह साबित कर चुका है। बाहरी तौर पर उसने एक प्रतिकूल क्रिया ही की है। धर्म, अंध श्रद्धा, सगडे विश्वास और अकल्पनीय भक्ति की भावना को उसने जगाया है जो अर्द्ध शिक्षित भारतीय जन मस्तिष्क के प्रधान चिन्ह हैं। मानता हूँ उसकी 'अपील' इन्सान को बेहोशकर देने वाली है उसमें बुद्धि की गाँठें टूट जाती हैं।'[1]

साम्यवादी दल की दृष्टि से कांग्रेस पूँजीपतियों की संस्था है क्योंकि पूँजीपतियों का उसे पूर्ण सहयोग है। इसी से एक साम्यवादी पात्र व्यंग्य करता है–'बिना पूँजीपतियों की सहायता के कोई राष्ट्रीय आन्दोलन कभी चल सका है? भले कम्युनिस्ट उन्हें मजदूरों का खून बेंच कर रुपया कमाने वाला कहते हों पर कांग्रेस के आन्दोलन में

१ अंचल–'चढ़ती धूप,' पृष्ठ ८३

अधिक से अधिक चंदा वे देते रहे है। उनका विरोध करना राष्ट्र की रीढ को कमजोर करना है।'[1] कम्युनिस्ट नेता पूंजीपतियों की इस प्रवृति को 'त्रिभुवन देशभक्त' कह कर उपहास करते हैं क्योंकि उनके मत से 'हर युग की सबसे क्रांतिकारी शक्तिजनता के मनोबल से फूटती है।'[2] कांग्रेस पूंजीपतियों से घनिष्ठ संबंध दिखलाकर जनता की दृष्टि मे हीन बताने के उद्देश्य से ही मिल-मालिक से कहलवाया गया है आप लोग (कांग्रेसी) त्याग और सेवा की मूर्ति है--जनता के सच्चे सेवक हैं-- मजदूरो को बहका कर अपना महत्व बढ़ाने वाले नहीं।'[3]

हिंसा अहिंसा पर साम्यवादी और गांधीवादी पात्रो द्वारा अनेक स्थलों पर विचार व्यक्त किये गये हैं और हिंसात्मक मार्ग की उपादेयता स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है। मोहन कहता है--'साम्यवादी होने के नाते मेरा विश्वास है कि क्रांति के लिये क्रांति आवश्यक है। क्रांति मे कम या ज्यादा हिंसा होती है। उस हिंसा से विचलित होकर हम अपने लक्ष्य को छोडेंगे नहीं। हम हिंसा का स्वागत नही करते पर उससे घबडाते नही। कायरता से हिंसा को ज्यादा तरजीह गांधीवाद भी देता है। मैं मानता हूँ समाज के मौजूदा राष्ट्रीय और वर्गिक संघर्ष बगैर हिंसा से नहीं निपटाये जा सकते।'[4] यही मोहन हड़ताल के समय कहता है--'हिंसा नही अहिंसा हमारी तलवार है। हम यहाँ मारने नही मरने आए है।'[5] मोहन के चरित्र को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि लेखक के सप्रयत्नों के बाद भी उसका हिंसा के प्रति झुकाव सैद्धान्तिक ही है आन्तरिक नहीं और जो उसके कथोपकथन मे यत्र-तत्र विरोधाभास ही उत्पन्न करता है। हड़ताल मे भाग लेने वाले मजदूरो का एक पक्ष कांग्रेस के सिद्धान्तो से प्रभावित है और 'अहिंसा को अपना हथियार मानने वाले कांग्रेस जनो के प्रभाव मे आगे और सगठित हुए मजदूर लाठियों की चोट खाकर भी अविचलित रहने का दृढ संकल्प से बैठ गये।'[6] इतना ही नही अपितु का० जयनाथ तो कहता है 'गुलाम देश मे हिंसा करना दमन और सरकारी अत्याचार को निमन्त्रण देना है। हम सत्याग्रह करेंगे और विजयी होंगे।'[7] संक्षेप में

---

१ अंचल--'चढ़ती धूप,' पृष्ठ २६६
२. अंचल--चढ़ती धूप,' पृष्ठ २६६
३. अंचल--'चढ़ती धूप,' पृष्ठ २६५
४ अंचल--'चढ़ती धूप,' पृष्ठ २२४
५ अंचल--'चढ़ती धूप,' पृष्ठ ३१०
६ अंचल--'चढ़ती धूप,' पृष्ठ ३१२
७ अंचल--'चढ़ती धूप,' पृष्ठ ३११

कहा जा सकता है कि साम्यवादी नेतृत्व में हुई मजदूर-हड़ताल गाँधीवाद के अहिंसात्मक स्वरूप से ही अधिक प्रभावित है।

हड़ताल के प्रसग में ही कांग्रेस का वर्ग-संघर्ष विरोधी सिद्धान्त भी एक स्थल पर प्रस्तुत किया गया है। इसमें स्पष्ट रूप से कहा गया है कि समाज में हर मनुष्य का स्थान-कर्तव्य और अधिकार जुदा-जुदा है। कांग्रेस जिस स्वराज्य के लिये लड रही है उसमें पूँजीवादी रहेंगे-मजदूर रहेंगे-देशी राजे और रियासतें प्रजा-जमींदार भी किसान भी। समाज सदैव कायदे से चलेगा। अपने कायदे से चलेगा। सम्पूर्ण समाज को चलाने की जिम्मेदारी सम्पूर्ण अर्थनीति को सचालित करने का भार एक वर्ग को नहीं सौंपा जा सकता।'

आतंकवादी प्रवृत्ति का विरोध

साम्यवाद से प्रभावित उपन्यास होने से व्यक्तिवादी क्रांति की निस्सारता पर भी लेखक ने विचार-व्यक्त किया है। वस्तुत व्यक्तिवादी क्रांति की असफलता के उपरात ही भारतीय राजनीति में मार्क्सवादी सामूहिक क्रांति की विचारधारा का उदय हुआ है। सामूहिक क्रांति के लिए वर्ग विशेष को बौद्धिक रूप से तैयार करना प्राथमिक आवश्यकता है। उपन्यास के नायक के शब्दों में ग्रुप क्लासेज के 'आयोजन द्वारा यदि लोगों में एक बौद्धिक आग जलाई जा सके-मजदूरों में उनकी स्त्रियों में-उनके बच्चों में प्रचंड क्रांतिकारी ज्वाला धधक सके तो उसका लक्ष्य पूरा हो जायगा। जन वर्ग की अन्त. शक्ति को उन्मादक अभिव्यक्ति देना-इस विद्रोह शक्ति को पूर्णता तक पहुँचा देना हमारा ध्येय होना चाहिये।'[1] यही सामूहिक क्रांति की पृष्ठभूमि है जो व्यक्तिवादी क्रांति भावना से पृथक है। मोहन की दृष्टि में क्रांति की व्यक्तिवादी प्रवृत्ति 'क्रांति का कारटून' है। वह 'अपने भीतर के खोखलेपन को ही कुरेदते रहने वाली—कृत्रिम योग्यता प्राप्त कर आन्तरिक शक्ति के स्रोतों से अपरिचित और जीवन के उर्ध्वगामी प्रवाहों से रहित उसकी गति व्यक्ति के अवसान के बाद समाप्त हो जाती है।' इसके विरुद्ध समाजवादी क्रांति 'समाज की भित्ति पर पनपती है। समाज की शक्ति के उद्योगों से उसे खाद्य और बल मिलता है। हमारे सामने यूरोप के सबसे बड़े देश रूस का ज्वलन्त उदाहरण है।'[2]

इस सामूहिक क्रांति का उद्देश्य है शोषक का अंत यानी मजदूरों का राज्य। नायक मोहन इस उद्देश्य को अभिव्यक्ति देता है—हमारा एक युद्ध—एक नारा—एक लक्ष्य है—जो मेहनत करते हैं उन्हीं का राज्य हो। हम राज्य चाहते हैं किसानों का

१ अचल—'चढती धूप,' पृष्ठ ६६
२ अचल—'चढती धूप,' पृष्ठ १००

जो भूमि के सच्चे स्वामी है। हम राज्य चाहते है मजदूरो का जो कारखानो और मिलो के सच्चे अधिकारी हैं। हमें शोषण का अन्त करना है। जब तक उसका अंत नही होता तब तक राजनीतिक शक्ति कोई अर्थ नही रखती।'[1]

आलोच्य उपन्यास की कथावस्तु के आधार पर उपन्यास का 'बढ़ती धूप' नामकरण अपने मे सार्थक है और राष्ट्र मे बढती हुई समाजवादी चेतना को व्यक्त करता है। 'समाजवादी चेतना की चढ़ती धूप का आभास तो मिलता है, किन्तु उसकी व्यंजना एवं विवेचना वैयक्तिक तथा बौद्धिक स्तर पर है।'[2] काव्य मे ऐसा ही प्रभाव सुमित्रानन्दन पंत की 'ग्राम्या' मे भी है जो तात्कालिक राजनीतिक वातावरण की सूचना से अधिक महत्व नही रखता। समाजवादी चेतना का यह स्वरूप जीवन्त होने से उपन्यास के पृष्ठों तक सीमाबद्ध रह गया है। समाजवादी आधार पर मानव सम्बन्धो को स्थापित करने को इच्छुक मोहन का स्वप्न मात्र स्वप्न रह जाता है। उसकी आदर्शवादिता ही उसके पथ का कटक है। आर्थिक कष्टो और विषम परिस्थितियो से संघर्ष करते हुए वह क्रांतिकारी अवश्य बन जाता है पर उस क्रांति को सामाजिक रूप कहां मिल पाता है? ममता के साथ उसका प्रेम और मिल की हड़ताल सामाजिक आवश्यकता के रूप मे चित्रित न हो सकी है। उसके कर्तृत्व से अधिक उसकी वाणी मुखरित हुई है जो उसकी आन्तरिक असमर्थता की ही सूचक है।

बयालीस की क्रांति और 'नई इमारत'

अचल का दूसरा उपन्यास 'नई इमारत' सन् बयालीस की अगस्त क्रांति को चित्रित करता है। सन् बयालिस के विवरणात्मक चित्रण के साथ ही साथ साम्प्रदायिक एकता और समाजवादी विचारधारा के प्रतिपादन का प्रयास भी किया है जिससे अनेक राजनीतिक समस्याएँ स्पष्ट रूप से उभर सकी हैं।' आदर्शवादिता के मोह के कारण काल्पनिकता अधिक और यथार्थता कम है और उसके कारण घटनाएँ आरोपित सी प्रतीत होती हैं।

महमूद और भारती के प्रणय-प्रसंग की कथा का केन्द्र-बिन्दु बना कर राजनीतिक घटनाओं, राजनीतिक विचारधाराओं और राजनीतिक समस्याओं को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। प्राक् स्वाधीनता युग की सबसे प्रमुख राजनीतिक समस्या थी हिन्दू-मुस्लिम एकता की जो स्वाधीनता के उपरांत भी हल न हो सकी है। लेखक ने इसका हल प्रस्तुत किया है महमूद और भारती तथा बनराज और शमीम के बीच प्रेम की उद्भावना करके। आगे चलकर ये पात्र बयालीस की क्रांति में सक्रिय भूमिका

१. अचल—'बढ़ती धूप,' पृष्ठ १२१
सुषमा धवन—'हिन्दी उपन्यास,' पृष्ठ १३१

अभिनीत करते हैं और कार्य तथा व्यवहार से समाजवादी दृष्टिकोण को अभिव्यक्ति देते हैं। उपन्यास के पूर्वार्द्ध में चित्रित राजनीतिक आन्दोलनों में अहिंसावादी और क्रांति पूरक दोनों भावनाओं को समुचित प्रतिनिधित्व दिया गया है। अगस्त क्रांति में ये दोनों भावनाएँ सही अर्थों में एक दूसरे की पूरक भी हो गई थी। उपन्यास का उद्देश्य इसी राजनीतिक आन्दोलन का विवरण प्रस्तुत कर समाजवादी चेतना को विस्तारित करने का प्रयत्न मात्र है। इसके लिए राजनीतिक वातावरण की सृष्टि अनेक उपकरणों के विवरण द्वारा की गई है।

भारती एक सम्पन्न राजपूत परिवार की युवती है और मुसलमान होने पर महमूद उसके परिवार का अभिन्न अंग रहा है। महमूद के निकट साहचर्य्य से भारती उससे प्रेम करने लगती है और विवाह करने का संकल्प लेती है। बलराज भारती का भाई है जो उसके संकल्प का समर्थन करता है। भारती के पिता रूढ़िवादी हैं और वे विजातीय के साथ (भले ही जिसे उन्होंने पुत्रवत पाला) अपनी पुत्री के प्रेम को सहन नहीं कर सकते। महमूद को ठाकुर साहब के अहसानों का अहसास है और वह भारती से मिलना छोड़ देता है। इधर भारती भी पुलिस कप्तान ■ विवाह का इन्कार कर पिता से विद्रोह करती है। वह पिता का घर त्याग कर समाज को भी चुनौती देती है। उसकी दृष्टि में प्रेम जीवन की समस्त योजना से बढ़कर है और वह जीवन में केवल एक बार होता है। भारती में भिखारीकता है और वह अपना रास्ता खुद बनाना चाहती है। राष्ट्र की राजनीतिक स्थिति सभी प्रमुख पात्रों को एक दूसरे से विलग कर देती है और राजनीतिक कार्यों में उनभाव रखती है। अगस्त क्रांति से उत्पन्न परिस्थिति में ये सभी प्रमुख पात्र एक स्थान पर आ मिलते हैं और पुलिस के साथ हुए संघर्ष में सक्रिय भाग लेते हैं। महमूद और भारती का मिलन होता है तथा बलराज तथा प्रतिमा अन्य साथियों के साथ मारे जाते हैं।

'नई इमारत' में स्वतन्त्रता-संग्राम के वातावरण में भारती-महमूद का प्रेम सामाजिक रूढ़ियों के विरोध में विद्रोही भावना को व्यक्त करते हुए जहाँ एक ओर में समाजवादी चेतना से प्रभावित है वहीं दूसरी ओर पर राजनीतिक वातावरण के अनुकूल है। शीला के शब्दों में 'भारती की शादी महमूद के साथ करके आप देश के सामने राष्ट्रीयता का पवित्र आदर्श रखेंगे। जो सुनेगा आपकी अखंड मानवता के सामने सम्मान और सम्भ्रम से नत हो जायगा।'[1]

महमूद भी उस धर्म की कटुतम आलोचना करता है जो इन्सान में भेद भाव उत्पन्न कर राष्ट्रीय एकता में घातक बनता है। उसके शब्दों में 'इन्सान में भेद भाव

---

१. अश्क—'नई इमारत,' पृष्ठ ८४

पैदा करने वाले धर्म का अब खात्मा होना चाहिए। गुजरे जमाने में उसने फायदा पहुँचाया होगा। अब वह मुर्दा हो चुका है। हमें उसे गाड़ देना चाहिए—थोड़े से आँसू बहा कर ही सही। तभी सच्चे, श्रेष्ठ और स्थिर मानव-मन को वह पावन स्पर्श मिलेगा जो मनुष्यता पर उसके खोये विश्वास को जागृत करे। वह महान राष्ट्रीय विश्वास जो सदियों से स्थान भ्रष्ट हो चुका है।'[1]

उपन्यास में आरम्भ एक घटना के द्वारा यह बताने का प्रयास भी किया गया है कि अंग्रेजी शासन किस भाँति साम्प्रदायिक भावना को प्रोत्साहित कर फूट का निर्माण करता था।'[2]

महमूद और भारती के प्रेम की मौलिक उद्‌भावना साम्प्रदायिक एकता के लक्ष्य को सामने रख कर की गई है। इस रूप में सामाजिक परम्परागत रूढ़ियों और राजनीतिक दासता का उन्मूलन उपन्यास के पात्रों की जीवन-प्रेरणा है।

राजनीतिक पक्ष

सन् बयालीस की क्रांति के विविध पहलुओं की विवेचना एवं चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में मिलता है। कांग्रेस को अहिंसा-राष्ट्रीय जीवन में जिस दृढ़ता से स्थान बनाये हुए थी उसका आभास महमूद के कथन से मिलता है। वह जानता है कि अहिंसा ही कांग्रेस की नीति रही है और रहेगी। जब तक गाँधी जी कांग्रेस के नेता हैं और कांग्रेस देश का नेतृत्व कर रही है तब तक हम हिंसा का मार्ग नहीं अपना सकते। शांति पूर्ण प्रदर्शन, अहिंसात्मक सत्याग्रह और सिविल नाफरमानी सदा हमारे हथियार रहे हैं और रहेंगे। हम इस मार्ग से विचलित नहीं हो सकते। लेकिन क्रिप्स प्रस्ताव के बाद से जनता के क्रोध का पारा बराबर चढ़ता जा रहा है। क्रोध से सारा देश मतवाला हो रहा है।[3]

कांग्रेस की प्रतिष्ठा और जनता में व्याप्त आक्रोश का उपयोग करने का अवसर क्रांतिकारियों को अगस्त-क्रांति के समय मिल जाता है। शहीद क्रांतिकारी की प्रेयसी प्रतिभा के शब्दों में 'कांग्रेस के प्रति लोगों की श्रद्धा बड़ी भारी शक्ति है। उसी शक्ति को इस्तेमाल करने का अवसर हमारे हाथ में आ रहा है।[4] वह क्रांतिकारी कार्य विधि के संबंध में सूचित करती है—'कार्यक्रम हमारा वही होगा जो कांग्रेस का निर्णय होगा। लेकिन हमें तय कर लेना है हम किन लाइनों पर अपने कार्यक्रम को व्यावहारिक रूप

---

१ अचल—'नई इमारत,' पृष्ठ २८
२ अचल—'नई इमारत,' पृष्ठ ३०
३. अचल—'नई इमारत,' पृष्ठ ६०
४ अचल—'नई इमारत,' पृष्ठ ६३

देंगे।'[1] वह क्रांतिकारी प्रवृत्तियों को गतिशील बनाती है और जिसके परिणाम स्वरूप अगस्त क्रांति में हिंसात्मक गतिविधियाँ सक्रिय हो अपना विकराल रूप प्रदर्शित करती हैं। कांग्रेस के नए नारे 'भारत छोड़ो' की जनता म प्रतिक्रिया क्रांतिपरक हो जाती है।

जनता की यही मनोभावना एक पात्र के द्वारा व्यक्त की गई है जो कहता है 'उनके जीवन-देवता गांधी की आज्ञा थी—करो या मरो। आँखो मे आजादी का नशा—दिमाग म स्वतंत्रता का ज्वार। जनता के लिए यह आन्दोलन नहीं वरन क्रांति थी। यह क्रांति एक दल या जाति की नही सारे देश की थी।[2]

प्रतिमा उपन्यास की एक प्रमुख पात्र है जिसकी उद्भावना कर क्रांतिकारियों के जीवन दर्शन की व्याख्या प्रस्तुत की गई है। अगस्त क्रांति मे हुई हिंसात्मक प्रवृति के स्पष्टीकरण के रूप म उसका चरित्र अत्यन्त महत्वपूर्ण बन पड़ा है। प्रतिमा के द्वारा ही हम उसके प्रेमी शहीद क्रांतिकारी का परिचय मिलता है।

अगस्त क्रांति मे कम्युनिस्टो की भूमिका

सन् बयालीस की क्रांति मे कम्युनिस्टो ने देश का साथ नही दिया था क्योंकि द्वितीय विश्वयुद्ध म मित्र राष्ट्रों के साथ रूस का गठबन्धन हो गया था और कम्युनिस्टो के लिए 'जनयुद्ध' बन गया था। उपन्यास का एक पात्र इस स्थिति का उद्घाटन करता है—'कम्युनिस्ट हमारा साथ नहीं दे रहे है। हम चाहते हैं सारी मिलें बन्द हो जायें। सारे कारखाने बन्द हो जायें। सम्पूर्ण यातायात रुक जाय। लेकिन ये लोग रूस के लड़ाई म आ जाने के कारण इस लड़ाई को लोक युद्ध कह रहे हैं। इस समय जन आन्दोलन के विरुद्ध हैं।'[3]

भारती उनके रवैये की कटु आलोचना करती है। इस चर्चा मे कम्युनिस्ट और समर्थकों को देशद्रोही प्रतिपादित किया गया है।[4] जयराज और लीला कम्युनिस्ट पात्र हैं जिनके माध्यम से साम्यवादी विचारो को वाणी देने का प्रयास किया गया है। दोनों पात्र अत्यन्त निर्बल हैं। भारती और बलराज उनके तथा उनके दल के कार्यों को हीन सिद्ध करने मे अपेक्षाकृत अधिक सफल रहे हैं।

बलराज की दृष्टि म कम्युनिस्ट पार्टी एक सोशल डमोक्रेटिक पार्टी रह गई है जिसके सामने कोई क्रांतिकारी प्रोग्राम नही है। जब देश सामूहिक आक्रमण की चेतना

१ अचल — 'नई इमारत,' पृष्ठ ९५
२ अचल — नई इमारत,' पृष्ठ १५०
३ अचल — 'नई इमारत' पृष्ठ ११५
४ अचल — 'नई इमारत', पृष्ठ १६५-६७

और राष्ट्र बेचैनी से तिलमिला रहा है तब सरकार के साथ बेशर्त सहयोग की बात करना कैसे एक उग्र दल को शोभा देता है।[1]

भारती की दृष्टि में तो कम्युनिस्ट पार्टी रूस की पिछलग्गू और 'पैशाचिक' है। वह राष्ट्रीय जागृति के संदर्भ में साम्यवादी दल की भूमिका का पर्दाफाश करते हुए कहती है—'जन साधारण के भीतर साम्राज्य विरोधिनी वृत्ति जागी है। उधर कम्युनिस्ट अंग्रेजों के पक्ष की नीति और नारा लेकर चल रहे हैं। भारतवर्ष में अंग्रेज-द्रोह को तज कर जो भी पार्टी अंग्रेज परस्ती सिखाती है वह जनता के हित में पैशाचिक है। पर कम्युनिस्टों को तो रूस की रक्षा करनी है। रूस विजयी हो—चाहे देश में लगी यह संग्राम की आग सदा के लिए बुझ जाय। अपने देश में साम्राज्यवाद की रीढ़ को तोड़कर हम बाहर की चिन्ता करें? कम्युनिस्टों की सबसे घातक नीति यह है कि वे देश के लड़ाकू तारुण्य को सरकार परस्ती सिखा रहे हैं। वर्ग के स्वार्थों को देश के सम्मिलित स्वार्थों से अधिक महत्व दे रहे हैं।'[2]

बलराज मार्क्सवादियों को व्यक्तिवादी होते देख क्षुब्ध है। वह कहता है—'मार्क्सवादी होना बुरा नहीं है। यह एक वैज्ञानिक जीवन-दर्शन है। पर साम्यवादी मुझे मार्क्सवाद नहीं, स्तालिनवादी नजर आते हैं।'

वस्तुत: अगस्त क्रांति में साम्यवादियों के असहयोग ने उन्हें जनता की दृष्टि में गिरा दिया था और मार्क्सवादी आन्दोलन को वर्षों पीछे धकेल दिया।

अन्य राजनीतिक विवरण

सन् १९४२ की क्रांति की सभी प्रमुख बातों का समावेश उपन्यास में मिलता है। घटनाएं काल्पनिक होने पर भी घटनाकाल को मूर्ति रूप देने का सफल प्रयत्न है। एक विज्ञ का यह कहना है कि उपन्यास का उद्देश्य सन् बयालीस के राजनीतिक आन्दोलन का विवरण मात्र देना है, उसकी पृष्ठभूमि में मानव-जीवन का चित्रण करना नहीं है। ध्येय स्वतन्त्रता और समाजवाद का उपदेश देना है। यही कारण है कि पात्रों का चरित्र-चित्रण उभरकर नहीं आता, राजनीतिक कोलाहल में डूब जाता है।

उपन्यास में जो अन्य राजनीतिक विवरण मिलते हैं, वे हैं—क्रिप्स योजना और उसकी असफलता, जिससे देश की आत्मा सोये शेर की तरह चौंककर सजीव हो

---

१. अंचल—'नई इमारत', पृष्ठ १७४

२. अंचल—'नई इमारत,' पृष्ठ १७५

गई[1] जापान के सहयोग से देश मुक्ति की योजना का विरोध[2] कांग्रेस द्वारा बम्बई अधिवेशन में पारित असहयोग प्रस्ताव और जनता की देश-व्यापी व्यापक प्रतिक्रिया।

इसके सिवाय कांग्रेस के उग्र समाजवादी दल की मनोभावनाओं का भी अंकन मिलता है जिसका प्रतीक है महमूद जो १९३० के असहयोग आन्दोलन से कांग्रेस का सिपाही है और तीन बार जेल काट आया है। उसके ही शब्दों में 'मैं सोशलिस्ट हूँ—समाजी व्यवस्था और पाबन्दियों पर विश्वास रखने वाला।'

राष्ट्रीय आन्दोलनों में घटित होने वाली बलात्कार की घटनाओं और उसके कारण प्रताडित नारी की सामाजिक राजनीतिक समस्या पर भी विचार व्यक्त किया गया है। प्रतिमा के शब्दों में इसका समाधान करते हुए कहा गया है—'मेरे शरीर को कोई अपवित्र कर दे पर मेरी आत्मा के निर्माल्य को मन की शुचिता को वह कैसे दूषित करेगा? फिर किस देश की नवयुवतियों को अपनी खोई आजादी पाने की चेष्टा में कभी-कभी अपने सतीत्व का अपहरण नहीं सहना पड़ता?'[3]

निष्कर्ष

सन् १९४२ की क्रांति की घटना के राजनीतिक वातावरण की पृष्ठभूमि में महमूद और प्रतिमा की समाजवादी चेतना को मुखरित करने का प्रयत्न प्रस्तुत उपन्यास में किया गया है। किन्तु उसके मूल में उनका रोमाण्टिक प्रेम और आदर्शवादिता ही प्रमुख हो उठी है। पात्रों के चरित्र व्यक्तिवादी आधारशिला पर विकसित हुए हैं और घटनाओं के रूप में जिन राजनीतिक घटनाओं का स्तम्भ-स्वरूप खड़ा किया गया है वे आरोपित होने से 'नई इमारत' के 'क्रैक्स' (दरार) बन गये हैं। 'नई इमारत' व्यक्तिवादी तथा समष्टिवादी विरोधी चिन्तन की ऐसी नींव पर खड़ी की गई है जिनके सम्बन्ध में निश्चयात्मक रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि वह कितनी बरसातों को सह सकेगी। 'चढ़ती धूप' की समाजवादी चेतना तो जैसे मध्यान्ह पर पहुँचने के पूर्व ही 'उल्का' सी चमक कर 'नई इमारत' के बरामदे में ही खो गई।

---

१ अंचल—'नई इमारत', पृष्ठ ८८-८९—'क्रिप्स योजना के सम्बन्ध में लेखक का मत है कि 'एक दर्द भरी रागिनी की तरह क्रिप्स-योजना मन्थर गति से आशा की वेदना फैलाती आई और एक नये संघर्ष आन्दोलन आरम्भ होने की सनसनी छोड़कर चली गई।'

२. अंचल—'नई इमारत', पृष्ठ ९६

३. अंचल—'नई इमारत', पृष्ठ १०

उल्का

अचल कृत 'उल्का' में ऐसे नारी-जीवन के अन्तर्द्वन्द्व का उद्घाटन है जो व्यक्तिवादी विचार-दर्शन से बोझिल होने से समाजवादी चेतना को भली-प्रकार मुखरित नहीं होने देती। राजनीतिक पृष्ठभूमि के अभाव में 'उल्का' का राजनीतिक स्वरूप स्पष्ट न हो सका है। उपन्यास का राजनीतिक रूप से केवल यही महत्व है कि इसमें भारतीय नारी के पीड़ित जीवन और आर्थिक रूप से निर्भर होकर चारित्रिक दृढ़ता का चित्रण किया गया है।

आत्मचरितात्मक शैली में लिखे गए इस उपन्यास की नायिका है मंजु-सामाजिक रूढ़ियों से ग्रस्त निम्न मध्यवर्गीय परिवार की सदस्या। उसका आराध्य है चाँद पर विवाह हो जाता है किशोर से, जो उसके लिए सर्वथा अनुपयुक्त है। चाँद और मंजु के मिलन की बाधायें हैं जातिभेद और आर्थिक विषमता। परिवार अथवा समाज के बन्धनों के कारण मंजु बाध्य है और चाँद विवशता में उसे विवाह की अनुमति दे देता है। कर्तव्य की बलिवेदी पर प्रेम का उत्सर्ग होता है और कुंठित प्रेम भैया-बहन के सम्बन्ध का रूप धारण कर लेता है। चाँद ही मंजु का पथ-प्रदर्शक है और व्यक्तित्व के महत्व का प्रतिपादन करता है। उसके अनुसार अन्याय को सहन करना पाप है। चाँद विदेश यात्रा पर चला जाता है।

इधर किशोर के साथ मंजु का वैवाहिक जीवन चरम असन्तोष का कारण बनता है। कामुक और असंस्कृत किशोर के जीवन का ध्येय शारीरिक वासनाओं की तृप्ति तक सीमित है। उसकी दृष्टि में पत्नी निजी सम्पत्ति से अधिक महत्व नहीं रखती और उसके व्यवहार से मंजु के हृदय में उत्कट घृणा उत्पन्न होती है। उसका कथन है —'नारी केवल शरीर नहीं—केवल स्थूल, क्षुधा और तृषा की गठरी नहीं। उसकी आत्मा में रहने के लिए भी कुछ चाहिए।'[1] किशोर सामन्ती वर्ग का प्रतीक है और उनके पिता की दृष्टि में अर्थ (धन) ही सर्वस्व है। अर्थसंचय उसमें अहम्मन्यता की भावना को जन्म देता है। ससुराल में मंजु का परिचय किशोर के भतीजा प्रकाश से होता है जो चाँद का मित्र और आयु में मंजु से बड़ा है। विदेश जाते समय चाँद मंजु को प्रकाश के सुपुर्द कर जाता है। प्रकाश में मानवीय गुणों का समावेश है। उसका दृष्टिकोण बुद्धिवादी है। वह मंजु को बताता है कि अधिकारों और जन्मसिद्ध सुविधाओं के लिए मनुष्य का धर्म है। मंजु का स्वाभिमान जागृत होता है और वह पति की स्वेच्छाचारिता का विरोध करती है। वह पति के घर का परित्याग कर मायके लौट आती है और अध्यापन कार्य अपना कर आत्म निर्भर हो नये जीवन का श्रीगणेश करती है। प्रकाश को लेकर उस पर दुश्चरित्रता का आरोप लगाया जाता है। सामाजिक कलंक

से क्षुब्ध मजु माता-पिता का घर छोड़ प्रकाश के साथ नागपुर आ जाती है। प्रकाश भीरु सिद्ध होता है पर उसके विद्रोही स्वरूप को देखकर उसका साथ देने को तैयार हो जाता है। नागपुर में जिस होटल में वे ठहरते है वही किशोर महरी की लड़की छबिया को लेकर पहुँचता है। मजु को प्रकाश के साथ देख किशोर उसके साथ दुर्व्यवहार करता है और किशोर और प्रकाश में मुठभेड़ होती है। किशोर की दुर्गति होती है और पति के लिए उसके हृदय में कोमल भावना उदित होती है। इस नाटकीय स्थिति में प्रकाश व मजु का प्रेम पाप-पुण्य की भावना से भाई-बहन के स्नेह में बदल जाता है।

'उल्का' में सामाजिक पक्ष ही अधिक उभरा है। इसके अन्तर्गत प्रेम की असफलता, असगत विवाह की विफलता, सामाजिक अन्यायो के प्रति नारी के विद्रोह और परिणामस्वरूप उसकी मुक्ति की समस्या को चित्रित किया गया है। बदलते हुए युग-मूल्यो पर सामाजिक रूढ़ियो का मूल्यांकन मजु के सशक्त चरित्र को लेकर प्रस्तुत किया गया है।

'उल्का' में द्वन्द्वात्मक जीवन का विश्लेषण मिलता है। मार्क्स एंजिल्स ने जिस द्वन्द्वात्मक दर्शन की स्थापना की है उसके अनुसार भौतिक और मानसिक जगत गतिशील है और परम्परा की अवरोधक शक्तियो से जूझते हुए अपना विकास करते हैं। 'उल्का' में मार्क्सीय दृष्टि से नारी जीवन की पराधीनता की समस्या का अध्ययन है। समाज मे अनाहत नारी किस प्रकार सघर्ष कर जीवन पथ पर आगे बढ़ सकती है उसका एक अश मजु के चरित्र में दिखलाया गया है। यद्यपि उपन्यास परिवर्तनशील समाज की प्रवणताओं को समेटने में असमर्थ ही है। यह ठीक ही कहा गया है कि 'मजु वास्तव में उल्का है, जो अपनी वेदना की ज्योति से नवचेतना का प्रकाश विकीर्ण करती है।'[1] वेदना के घनीभूत होने के कारण ही समाजिक यथार्थ समुचित रूप से उभर नही सका है। यद्यपि लेखक का उपन्यास के शीर्षक से कुछ वैसा ही विशिष्ट अभिप्राय था।

रांगेय राघव के उपन्यासों में राजनीतिक तत्व

नयी पीढ़ी के उपन्यासकारो मे रांगेय राघव एक सशक्त राजनीतिक उपन्यासकार थे। यशपाल, नागार्जुन, रामेश्वर शुक्ल 'अचल' के समान उनके सामाजिक उपन्यासो मे भी समाजवादी चेतना का प्रस्फुटन हुआ है। यथार्थ के धरातल पर समाजिक वैषम्य का चित्रण करने पर भी उनके उपन्यासो मे मानवीय मूल्यो का तिरस्कार नही मिलता है। कहा गया है कि 'रांगेय राघव के उपन्यासो मे यो राजनीतिक विचारो की प्रेरणा विद्यमान अवश्य है, और युगधर्म एव युग विचारणा को आत्मसात् कर लेने वाले

---

१ सुषमा धवन– हिन्दी उपन्यास,' पृष्ठ १३९

प्रत्येक जागरूक कलाकार में उसका अस्तित्व होता है, किन्तु उन्होंने सदा यह प्रयत्न किया है कि वे राजनीतिक प्रेरणाएँ उनके कलाकार को अभिभूत न कर लें।'[1] रांगेय राघव के समग्र उपन्यास-साहित्य के सम्बन्ध में सामान्यतः यह कथन ठीक हो सकता है, किन्तु राजनीतिक उपन्यासों के सम्बन्ध में इसे आंशिक सत्य ही माना जाना चाहिए। 'विषाद मठ,' 'हुजूर' और 'सीधा सादा रास्ता' में उनका राजनीतिक मतवाद ही अधिक प्रबल है। 'घरौंदे' में जो उनका प्रथम उपन्यास था, राजनीतिक सूत्र अवश्य सांकेतिक रूप में आए हैं।

'घरौंदे' की विशिष्टता उसके राजनीतिक पक्ष में नहीं अपितु कालेज के छात्र-वर्ग को लेकर उनके जीवन के विशद निरूपण में है।

'घरौंदे' का घटना काल द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भिक वर्षों याने १९४१ के पूर्व का है और जिसका उस समय तक भारतीय जन-जीवन पर प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं पड़ा था। वस्तुत यह समय राजनीतिक निष्क्रियता का युग था और राजनीतिक दलों का मार्ग द्विविधापूर्ण था।

'घरौंदे' में नियति, धर्म एवं समाज व्यवस्था के प्रति प्रच्छन्न व्यंग्य इसी प्रतिक्रिया का परिणाम समझना चाहिए।

इस उपन्यास का प्रमुख पात्र है भगवती, जिसे केन्द्र बिन्दु बनाकर उपन्यास में राजनीतिक 'टच' देने का प्रयास किया गया है। इसके लिए भगवती को लवंग से अपमानित बनाकर उसके द्वारा किसानों में विद्रोह भावना उत्पन्न करने की दिशा में सचेष्ट बताया गया है। किन्तु यह प्रसंग भी संक्षिप्त ही है अतः समाजवादी चेतना की पूर्णतया अभिव्यक्ति करने में असमर्थ है। लवंग के पिता जमींदार हैं और भगवती उनकी अवैध सन्तान है—इस घटना को कथा-वस्तु में बांधकर सामन्तवादी-पूँजीवादी व्यवस्था से निर्मित विषमताओं की जो व्यंजना मिलती है, वह पात्रों के पारस्परिक रक्त सम्बन्धों के कारण आदर्शवाद में पर्यवसित हो जाती है। पात्रों में इसी कारण सामाजिकता कम, वैयक्तिकता अधिक है। राजनीतिक उपन्यास की दृष्टि से 'घरौंदे' रांगेय राघव की एक शिथिल रचना है।

विषाद मठ

समाजवादी यथार्थ के चित्रण की दृष्टि से रांगेय राघव का 'विषाद मठ' बंगाल के दुर्भिक्ष की वास्तविकता में पूँजीपतियों के शोषण का घिनौना रूप प्रस्तुत करता है। लेखक के शब्दों में—'उपन्यास जनता का सच्चा इतिहास है। इसमें एक भी अत्युक्ति नहीं

१. महेन्द्र चतुर्वेदी—'हिन्दी उपन्यास,' एक सर्वेक्षण, पृष्ठ १५७

कहीं भी जबर्दस्ती अकाल की भीषणता को गढने के लिए कोई मन गढन्त कहानी नहीं।' दुर्भिक्ष के समय की राजनीतिक स्थिति उपन्यास मे खूब उभरी है। उपन्यास के 'परिचय' मे कहा गया है—'ईसा मसीह के एक हजार नौ सौ तैतालीसवें वर्ष मे जब इग्लैंड के राजा, भारत के सम्राट जार्ज छठे के हाथ मे स्वर्ण दंड था, भारत मे उनके प्रतिनिधि लार्ड वावेल थे, और प्रधान मंत्री थे सर नाजिमद्दीन, जब बर्बर जापानी फासिस्टवाद भारत पर अपनी डरावनी छाया डाल रहा था, जब ससार अपनी मुक्ति के लिए युद्ध कर रहा था, जब गांधी जेल मे थे, जब भारत के कर्णधार बदीगृह मे थे, कलकत्ते की विराट सड़कें सगम बनकर पड़ी थी, बङ्गाल के हर एक भाग से आ-आकर भूखे उन पर दम तोड रहे थे।'

इसी आधारभूमि पर बङ्गाल के दुर्भिक्ष का हृदय-द्रावक अकन 'विषाद मठ' मे मानवता की छटपटाहट के माध्यम से हुआ है। बङ्गाल के गाँव को उपन्यास का केन्द्र बनाकर दुर्भिक्ष की छाया मे सामाजिक अन्याय, आर्थिक विपन्नता एव मानवीय विषमता के कई श्यामल चित्र हैं जो बदलते हुए मानव मूल्यो और सामाजिक परिवर्तनो का परिचय दे रहे हैं। कई पात्रो को लेकर दुर्भिक्ष को विविध दृश्यो को समग्र रूप मे देकर पूँजीपतियो की स्वार्थपरता को चित्रित कर पूँजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध सामाजिक चेतना को प्रबुद्ध किया गया है। अरुण का कथन है—'भीख से गरीबी मिटती नहीं, उसकी अवधि वास्तव मे बढती है। बङ्गाल चावल नही चाहता, क्राति चाहता है। अगर नहीं कर सकता तो आजाद होने का उसे हक ही नहीं है। आजादी छीननी होगी और भूखे से बढ़कर कौन क्राति कर सकता है।'[1]

'विषाद मठ' मे दो गीतो के जो गद्य रूप दिये गये हैं वे क्रातिपरक हैं और साम्यवाद की भावना से अनुप्राणित हैं—'पूर्व के पिशाच ने बनो की गरज मे तुम्हारी कराहो को डुबाने का प्रयत्न किया है। ओ मीर जाफरो। गङ्गा की शपथ है कि साम्राज्यवाद के छक्के छूट गये हैं। फासिस्टवाद का गढ ठोकरो मे काप रहा है। इस खून का बदला लेना हिन्दुस्तान के मेहनतकश कभी भी नहीं भूलेंगे। आज देश शक्ति के लिए पुकार रहा है। नौकरशाही की बदइन्तजामी से त्रस्त बङ्गाल बुला रहा है।'[2] बुभुक्षितों को उस नये विहान के आने का विश्वास है जिससे क्राति के बाद वर्ग विहीन समाज की स्थापना होगी। लडकियो के गीत मे इसी भाव की अभिव्यक्ति है—'रोने के दिन सदा नही रहते। सिर धुन-धुन कर पछताने वाले। तेरे दुखो के ताप से चट्टानें

---

१. रांगेय राघव—'विषाद मठ', पृष्ठ ६३
२ रांगेय राघव—'विषाद मठ' १२३

पिघलने लगी हैं। स्वतन्त्रता, शांति और साम्य की दुदभी बजने वाली है। तूने अपना बागी सिर उठाया है, तेरे ऊपर खून से भीगा झन्डा है।'[१]

पूँजीपतियो द्वारा उत्पन्न दुर्भिक्ष ने मानव-मूल्यो को बदल दिया। लेखक के शब्दो मे—'वह कुछ भूखे भिखारी हैं जो जङ्गल मे घास और पेडो की छालें खाने के लिए इकट्ठी कर रहे हैं। उनका जीवन एक पाप ही है। पेट के लिए आदमी क्या नही करता? पहले मौत सताती थी, अब जिन्दगी सताती है।'[२]

उपन्यास मे मनुष्य सर्वत्र निराश्रय और निरुपाय है और पूँजीपतियो के स्वार्थों का साधन है। पेट की ज्वाला के सम्मुख नारी की नैतिकता के सारे सामाजिक बन्धन विश्रृंखल हो गये हैं। वह विवशता से नारीत्व का समर्पण करने को बाध्य है और इसी-लिए करुणा की पात्र है।

जापानी आक्रमण और भारत की राजनीतिक स्थिति

बगाल के दुर्भिक्ष के समय बङ्गाल मे प्रान्तीय शासन मुस्लिम लीग के हाथ मे था और जो अग्रेजो के सकेत पर कार्य करती थी। एक पात्र (चट्टोपाध्याय) कहता है—'जानते हो, मुस्लिम मन्त्री हैं सब। मीर जाफर, एकदम मीर जाफर। अग्रेजो से मिलकर चाल चली है। समझते हो न इसका मतलब? हिन्दुओ का सर्वनाश है। किसानो का सर्वनाश है। फौजें ले जायेंगी सब। सरकार का कुछ भरोसा है? वह अमेरिका भेजेगी, आस्ट्रेलिया भेजेगी और तब हम भूखे मरेंगे।'[३] उपन्यासकार स्पष्ट करना चाहता है कि लीग मन्त्रिमडल अग्रेजो के हाथों कठपुतली के समान था और हिन्दू जनता अपने को असुरक्षित अनुभव करती थी। वस्तुत, यह तथ्य बहुत अशो मे सही भी था।'[४] इस भीषण नरमेध को देखकर भी विभिन्न राजनीतिक दलों मे ऐक्य स्थापित न हो सका था और कांग्रेस स्थानीय नेतृत्व के अभाव मे विवश होकर रह गई। देश मे बयालीस की क्रांति ने करवट ली, किन्तु 'विषाद मठ' मे दो-एक स्थानों पर केवल प्रसगवश उल्लेख मिलता है।[५] इन्ही दिनो चटगाँव पर जापानी हमले का विवरण देना भी लेखक नही भूला। जापानी हमले के समय 'निरस्त्र जनता का कोप खुला पडा था जैसे खुले खेत पर तुषार बार बार हमला कर उठता है। अपनी सूखी हुई छातियो से टूटे-फूटे बच्चो को चिपका

१. रांगेय राघव—'विषाद मठ' पृष्ठ १६२
२. रांगेय राघव—'विषाद मठ' पृष्ठ १७
३. रांगेय राघव—'विषाद मठ,' पृष्ठ ३६
४ रांगेय राघव—'विषाद मठ,' पृष्ठ ६
५. रांगेय राघव—'विषाद मठ,' पृष्ठ १२-१३

पराधीनता के दिनों में थी। पराधीन भारत में पुलिस के अत्याचारों का विस्तृत वर्णन पुलिस कप्तान के नृशंस कार्यों द्वारा प्रस्तुत किया गया है।[1] पुलिस दारोगा के रूप में 'रिश्वत का आटा और दूध और ईंधन और झूठ, फरेब और मक्कारी सब मिलकर इन्सान की शक्ल में गुलामी के पट्टे पर दस्तखत करने आये थे।'[2] ऐसी थी पुलिस जिसका विवरण आज की पुलिस से तुलनात्मक अध्ययन को प्रेरणा दे सकता है। पुलिस कप्तान के बाद जैक पुराने रईस हरीप्रसाद के यहाँ आश्रय ले वहाँ की कामुकता एवं लोलुपता से परिचित होता है। जैक के लिये यह अप्रिय अनुभव था और वह एक मेहतर के घर और वहाँ से पूंजीवादी सेठ मटरूमल के यहाँ जा पहुँचता है। इस तरह वह जमींदारों की विलासता और उनके विकृत जीवन की झाँकी पाता है।

तत्कालिक राजनीतिक स्थिति

सामाजिक स्थिति के साथ तत्कालिक राजनीतिक घटनाओं के संबंध में भी जैक अपनी प्रतिक्रियाएँ बतलाता चलता है। चुनाव के सन्दर्भ में जनमत की भावना किस प्रकार की थी उसका विवरण यों है—'एक ओर कांग्रेसी खड़े हुए थे दूसरी तरफ जमींदार लोग थे। शहरों से स्वयंसेवक गाँवों में जाते। गाँव के लोग भी पहले से ही कांग्रेस को चाहते थे। नेता देश की आजादी की दुहाई देते। जमींदारों को कांग्रेसियों से नफरत थी। पर गाँववाले उन्हीं की सुनते। गाँव वालों ने डटकर जमींदारों का खाया था और उतनी ही कांग्रेस को वोट डाली थी।' स्पष्ट है कि जमींदारों का प्रभुत्व जागृत होने वाली जनता पर से उठता जा रहा था।

पूंजीपति वर्ग

इस परिवर्तन से पूंजीपति वर्ग अधिक चतुर और सतर्क हो गया था। अपने स्वार्थों की रक्षा के लिए वह दुहरी चाल चल रहा था। 'सेठ मटरूमल अंग्रेज सरकार को लड़ाई का चन्दा खूब देता था। और दूसरी तरफ कांग्रेस को भी खूब चन्दा देता था। दोनों घोड़ों पर इस सहूलियत से चढ़ता था कि पता ही न चलता था। इसका राज यह था कि अंग्रेजी घोड़े को दुलती बचाता था और कांग्रेसी घोड़े के मुँह में घास भरता था।'[3] सच तो यह है कि सामन्तवादी जमींदार तो टूट रहे थे और पूंजीवादी बनिये सामने आ रहे थे।

---

१ रांगेय राघव—'हुजूर,' पृष्ठ २४, २५, २६
२. रांगेय राघव—'हुजूर,' पृष्ठ १५
३ रांगेय राघव—'हुजूर,' पृष्ठ २९

स्वाधीनता प्राप्ति और कांग्रेस

समय बदलता है और उसके बारे मे जैक कहता है—'हिन्दुस्तान की राजनीति मे नये नये गुल खिल रहे थे। यहाँ तक कि एक दिन वह आजाद भी हो गया। साहब लोग आखिर वह छडी मार गये कि हिन्दुस्तान की धरती लाशो से ढक गई और नदियो मे लोहू बहने लगा।' देश विभाजन और स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद कांग्रेसियो के परिवर्तित रूप को जैक व्यग्य के साथ सामने लाता है—'मैंने नया हिन्द देखा। कांग्रेसियो ने बिलकुल अगरेजो का जामा पहन लिया। लुटमाइयो ने लूट कर छोडा, बडे-बडे गद्दियो पर बैठे, पुलिसवाले देशभक्त करार दिये गये। वामपन्थी जेलो मे पकड कर रख दिये गये, आजाद हिन्दुस्तान में लगातार दफा १४४ लगी रहने लगी, और महगाई बढती जा रही थी।'[1] इस तरह कांग्रेस का पतन दिखाना सोद्देश्य है और समाजवादी यथार्थवादी उपन्यासो की एक सामान्य प्रवृत्ति है।

प्रथम आम चुनाव को लेकर भी कांग्रेस की बखिया खोली गई है जो लेखक के पूर्वग्रह का परिणाम है—'कई जगह, कांग्रेस ने ऐसे बेईमानो को चुना था जिन पर चोर बजारी के मुकद्दमे तक चल चुके थे। कांग्रेस ने सरकारी दबाव बिना कहे भी इस्तेमाल कर लिया, क्योकि सरकारी अफसर खून के पुराने पिट्ठू थे। मिनिस्टरो ने सरकारी गाडियाँ चलवाई। इस कदर कांग्रेस ने रुपया खर्च किया कि पुराने जमीदार अपने हथकडे भूल गये।'[2] इस तरह स्वाधीनता मिलने पर भी जन-साधारण के जीवन मे कोई परिवर्तन नही आया। जो अग्रेज थे वही कांग्रेसी हैं। जैक व्यग्य से परिवर्तन को इस रूप मे देखता है—'पहले जो अग्रेजी जमाने में 'सेन्ट्रल प्रिजन' था, वह अब आजादी के बाद हिन्दी मे 'केन्द्रीय कारागार' हो गया था, और कुछ नही।'[3] कहने का तात्पर्य केवल यह है कि जीवन पहले भी कैद था और अब कैद है। और इसमे परिवर्तन तब तक नहीं होगा 'जब तक श्रम करने वाले को ही समाज मे उत्पादन के साधनों मे अधिकार नही मिलेगा, इन्सान और उसकी दुनिया निरन्तर ऐसे ही भटकती रहेगी।'[4] यही उपन्यास का सदेश है जो मार्क्सवादी विचारधारा का प्रतिपादन करता है।

सीधा सादा रास्ता

'सीधा सादा रास्ता' रांगेय राघव का वृहदाकार उपन्यास है जो भगवतीचरण

१. रांगेय राघव—'हुजूर,' पृष्ठ १०८
२ रांगेय राघव—'हुजूर,' पृष्ठ १०९
३ रांगेय राघव—'हुजूर,' पृष्ठ ११२
४ रांगेय राघव—'हुजूर,' पृष्ठ ११०

वर्मा के 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' का प्रत्युत्तर है। दोनों उपन्यास विषय और पात्रों के समान होने पर भी दो विभिन्न दृष्टिकोणों को व्यक्त करते हैं। 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' का रचना काल १९४६ है और 'सीधा सादा रास्ता' उसके नौ वर्ष पश्चात् की रचना है। 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' के समय स्वतन्त्रता का आन्दोलन चल रहा था और उसका भविष्य अनिश्चित था। किन्तु 'सीधा सादा रास्ता' स्वतन्त्र भारत की रचना है और उसका राजनीतिक पथ स्पष्ट है। अतः दोनों उपन्यासों के दृष्टिकोणों के वैभिन्न्य मे उनके रचनाकाल के महत्व को भी दृष्टिगत रखना आवश्यक है। 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' का रचनाकाल राष्ट्रीय आन्दोलन का संक्रान्तिकाल था और स्वाधीनता प्राप्ति के लिए छुटी राजनीतिक पार्टियाँ वस्तुतः एक अंधेरे मार्ग पर चल रही थी और उपन्यास मे ध्वनित निराशावादी स्वर उसी का प्रतिफलन माना जाना चाहिए।

उपन्यास के 'दो शब्द' में रांगेय राघव ने लिखा है—'प्रस्तुत उपन्यास अपने ढंग की नई चीज है। मैंने श्री भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' के आगे इसे लिखा है। मेरा उपन्यास अपने आप में स्वतन्त्र है। इसका केवल एक सम्बन्ध अपने पूर्ववर्ती उपन्यास से है कि मेरे पात्र, उनकी परिस्थितियाँ, सामाजिक व्यवहार, घर, भूगोल, सपत्ति सब वही है जो 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' मे है। कहानी अब आगे चलती है। इन पात्रों का अतीत टेढे मेढे रास्ते की कहानी है वह सब गुजर चुका है।'

'टेढ़े मेढ़े रास्ते' की कहानी 'सीधा सादा रास्ता' मे समाजवादी यथार्थवादी धरातल पर आकर समाजवादी चेतना को वाणी देती है। यही कारण है कि वर्मा जी का निराशावादी दृष्टिकोण 'सीधा सादा रास्ता' मे आस्थावादी हो जाता है। श्याम नाथ का कथन है—'दुनिया मे अभी इन्सानियत बाकी है। जिस दिन वह कहीं भी नहीं मिलेगी, उसी दिन हम एक दूसरे का गला घोटकर हत्या करने लगेंगे।'[1] 'सीधा सादा रास्ता' के पात्र कुठाग्रस्त न होकर समाजवादी चेतना से प्रस्फुटित हैं और प्रतिक्रियावादी तत्वों से संघर्ष करते हुए आगे बढ़ते हैं। इसीलिए एक आलोचक के अनुसार 'इसमे लेखक अधिक यथार्थ भूमि पर उतरा है और विचारों के संघर्ष को, भावों के उत्थान-पतन को अपेक्षाकृत अधिक सूक्ष्मता से आँकने का प्रयत्न किया है।

पात्रों के माध्यम से सामाजिक राजनीतिक स्थितियों का उद्घाटन किया गया है। राजा रामनाथ और नवाब साहब सेरा सामन्ती युग के अवशेष हैं और रामनाथ बीते युग का स्मरण कर मध्ययुगीन सामन्तशाही के जो रंग-बिरंगे चित्र उरेहते हैं वे वस्तुतः जमींदारों और नवाबों की निरंकुशता की गाथाएँ हैं। जमींदार और अंग्रेजी शासन का गठबन्धन था और अंग्रेजों के सामने दयनीय बन जाने वाले राजा और नवाब

---

१ रांगेय राघव—'सीधा सादा रास्ता,' पृष्ठ ४३०

रिआया के सम्मुख शेर बन कर जो अनाचार करते थे उसका विस्तृत मनोवैज्ञानिक चित्रण आलोच्य उपन्यास में मिलता है। इसके साथ ही राष्ट्रीय जागृति और उसके माध्यम से होने वाले युग परिवर्तन की कथा भी समानान्तर रूप से विकसित होती है। इस पृष्ठभूमि में कांग्रेस एवं साम्यवादी दलों की गतिविधियों एवं विचारधाराओं और तत्कालीन आन्दोलनों का चित्रण सहज ही हो सका है। किन्तु पूर्वग्रह के कारण लेखक का झुकाव मार्क्सवाद की ओर अधिक है। वासुदेव और ब्रह्मदत्त के लम्बे कथोपकथन क्रमशः गाँधीवाद और मार्क्सवाद के सिद्धान्तों का समर्थन मात्र है। ब्रह्मदत्त अपनी दलीलों से वासुदेव के तर्कों का खंडन करता है। इस मत प्रतिपादन में अनेक पृष्ठ रंगे पड़े हैं। ब्रह्मदत्त के लम्बे कथोपकथन के कुछ अंश देखिये—'मैं वर्ग के अनुसार व्यक्ति को देखता हूँ। मैं भौतिकवादी कल्याण को ही सबसे बड़ा समझता हूँ। मुझे उस दयालुता में श्रद्धा नहीं जिसकी सामर्थ्य शोषक पर टिकी है।'[1] 'जिसे आप परमार्थ का सत्य कह कर सीने से चिपटाये हुये हैं, हम उसके असाम्य को मिटाना चाहते हैं।'[2] 'शोषक के हथियारों से न डरो। यही मार्क्स ने कहा था, लेनिन ने कहा था, यदि हो सके तो जैसे ही अन्यथा अस्त्रों से शोषक को हटा दो। हर नये निर्माण के लिए एक ध्वंस की आवश्यकता है।'[3] कांग्रेस के नेतृत्व को वह तटस्थ दृष्टि से नहीं आंक सका है। गाँधीवादी दयानाथ और मार्कण्डेय के दिलों में गाँधीवाद के अहिंसा और हृदय परिवर्तन सिद्धान्तों के प्रति अविश्वास की भावना से उत्पन्न द्वन्द्व[4] इसी का परिणाम है। ब्रह्मदत्त साम्यवादी है और जब तक मार्क्सवाद के सिद्धान्तों की व्याख्या करता है—'सैकड़ों आदमी, अनेक पीढ़ियाँ। जनता को सदैव यातना। अतीत का भव्य गौरव, केवल शोषकों का गौरव। मैं देख रहा हूँ। मैं इस विराट धारा का बुदबुद हूँ। पर मुझ में समस्त महासागर की सत्ता है, मैं अलग नहीं हूँ। मैं एक नई दुनिया बनाने में लगा हूँ। मुझे इसका गर्व है। एक नई दुनिया···उसके लिए जीवन के कष्ट···इसलिए नहीं कि किसान मजदूर पर उनकी गरीबी देखकर मात्र एक भावनात्मक दया आ गई है वरन् इसलिए कि वह इतिहास की गति है, उसे कोई नहीं रोक सकता क्योंकि वही मनुष्य के सर्वश्रेष्ठ और पवित्रतम का विकास है, वही इस सड़ाँध को मिटानेवाली पानी की तेज धारा है, वही सत्य है, शोषितों का अधिकार है[5]

१. रांगेय राघव – 'सीधा सादा रास्ता' पृष्ठ २७५
२ रांगेय राघव – 'सीधा सादा रास्ता,' पृष्ठ २७६
३. रांगेय राघव – 'सीधा सादा रास्ता,' पृष्ठ २७७
४. रांगेय राघव – 'सीधा सादा रास्ता' पृष्ठ २५६-५७
५ रांगेय राघव – 'सीधा सादा रास्ता' पृष्ठ ३४८

वह वर्ग-विहीन समाज की दार्शनिक भूमिका को स्पष्ट करते समय अधिनायकवाद के सम्बन्ध में व्याप्त भ्रांति का निराकरण करता है—'डिक्टेटरशिप ! डिक्टेटरशिप दो तरह के होते हैं। एक व्यक्ति का स्वेच्छाचरण जो किसी शोषक वर्ग के स्वार्थ के लिए होता है, निरंकुश शासन। दूसरा समाज का पूर्ण अधिकारों से भरा वह शासन जो वर्गों को समाप्त करने में लगता है। यह दूसरा तरीका ही तो क्या हर्ज है ? वर्ग भेद को मिटाने वाली बातें मिट जायेंगी। यह सब उस वर्ग-हीन समाज की रचना की मंजिल पर पहुँचने वाला रास्ता है।'[1]

साम्यवादी पात्र के रूप में बहादत्त का चरित्र मंयत्त्त उभरा है और हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों में ऐसे दृढ़ पात्र नितान्त विरल हैं। राजनीतिक उठा-पटक के अनेक चित्र सजीव बन पड़े हैं। 'सीधा सादा रास्ता' में समाजवादी यथार्थवादी दृष्टिकोण से राष्ट्रीय वातावरण और आन्दोलन का चित्रण किया गया है अतः पात्रों के स्थान पर समाविष्ट घटनाओं और सिद्धान्तों को महत्त्व दिया गया है। डॉ० गणेशन का मत है कि रांगेय राघव ने जन-चेतना को पहचाना है। विदेशी शासन के विरुद्ध सम्पूर्ण जनता में और तथाकथित उच्च वर्गों के विरुद्ध निम्न स्तर के लोगों में जागृति आयी थी, उसको उन्होंने स्पष्ट दिखा दिया है। समाज की कुत्सित प्रवृत्तियों के और स्वार्थ लोलुप अवसरवादियों के निकृष्ट कर्मों के बीच में भी उनकी दृष्टि में मानवता की ज्योति देखी है।[2] किन्तु मानव के विकास का जो 'सीधा सादा रास्ता' सिद्ध किया गया है उसके बारे में उसी प्रकार से मतभेद हो सकता है जैसे 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' को लेकर प्रगतिवादियों का है।



१. रांगेय राघव — 'सीधा सादा रास्ता', पृष्ठ ३३४

२. डॉ० गणेशन — 'हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन', पृष्ठ २१३

अध्याय ९

राजनीतिक विषयक प्रासंगिक चर्चा समन्वित अद्यतन उपन्यास

> जैनेन्द्र के उपन्यासों में राजनीतिक तत्व—

जैनेन्द्र का राजनीतिक व्यक्तित्व

> जैनेन्द्र के उपन्यास

* सुनीता—गाँधीवाद की गूँज
* सुखदा—राजनीतिक वेशवाल, क्रान्तिकारियों की कार्यप्रणाली, अनुशासन, नारी सम्बन्धी भावना, क्रान्तिकारियों के क्रियाकलाप, साम्यवादी चेतना
* विवर्त—क्रान्तिपरक घटनाएं और असंगतियां, धन संग्रह के साधन, साम्यवादी-दृष्टिकोण, असंगति

> जैनेन्द्र के अंश-राजनीतिक उपन्यास—

* कल्याणी
* जयवर्धन

> इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास एवं भारतीय राजनीति

* संन्यासी
* निर्वासित
* मुक्तिपथ—राजनीतिक घटनाएँ, जन-श्रम भावना, अन्य राजनीतिक वातावरण
* जिप्सी

> 'अज्ञेय' कृत 'शेखर : एक जीवनी' का राजनीतिक स्वरूप

राजनीतिक प्रसंग, कालावधि निर्धारण, विचारधाराएँ, क्रान्तिकारी और नारी

> आलोच्यावधि के अन्य उपन्यास

* टेढ़े-मेढ़े रास्ते
* बंगाल के अकाल पर आधारित उपन्यास
* पुरुष और नारी तथा जागरण

> प्राक् स्वाधीनता युग के विवेचित उपन्यासों की उपलब्धियां

जैनेन्द्र के उपन्यासों में राजनीतिक तत्व

जैनेन्द्र का राजनीतिक व्यक्तित्व

उपन्यासकार जैनेन्द्र का भारतीय राजनीति से निकट का संबंध रहा है। जैनेन्द्र का जन्म सन् १९०५ में जिला अलीगढ़ के कौड़ियागंज में हुआ और सन् १९१८ में गुरुकुल से अलग होने पर उन्होंने पंजाब से मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। तदुपरान्त उच्च शिक्षा के लिए उन्होंने बनारस विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया और सन् १९२१ में असहयोग आन्दोलन में कालेज छोड़कर राजनीति में आ गए। प्रारम्भिक दिनों में लाला लाजपत राय के 'तिलक स्कूल ऑफ पॉलिटिक्स' में रहे। इन्हीं दिनों वे श्री माखनलाल चतुर्वेदी और श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान के सम्पर्क में आए और उन्हीं के साथ उन्होंने बिलासपुर में कांग्रेस के तत्वावधान में राष्ट्रीय कार्यों में भाग लिया। सन् १९२३ में भगवानदीन जी के आह्वान पर वे नागपुर के सुप्रसिद्ध भंडा सत्याग्रह में संवाददाता के रूप में भाग लेकर जेल गये पर सरकार के साथ सरदार पटेल के समझौते के कारण मुक्त कर दिये गये।

कांग्रेस के प्रति जैनेन्द्र की निष्ठा बढ़ती गयी और गांधी जी के सिद्धान्तों ने उन्हें अत्यधिक प्रभावित किया। गांधी जी के नेतृत्व में सन् १९३० में डांडी यात्रा के आन्दोलन में भाग लेकर वे पुन: जेल गये। कांग्रेस आन्दोलनों में दो-दो बार जेल यात्रा करने पर भी जैनेन्द्र सन् १९३० तक कांग्रेस के सदस्य नहीं थे। सन् १९३२ में श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति जैनेन्द्र की कांग्रेस निष्ठा से प्रभावित हो उन्हें आन्दोलन का 'डिक्टेटर' बना दिया। यहीं उनका सम्पर्क 'वार केबिनेट' के सदस्यों से हुआ। इसी वर्ष जैनेन्द्र को सत्याग्रह में पुनः गिरफ्तार कर लिया गया और उन्हें ७॥ माह की सजा हुई।

सन् १९३२ के आन्दोलन के उपरान्त जैनेन्द्र ने फिर राजनीतिक आन्दोलनों में भाग नहीं लिया। इसका कारण जैनेन्द्र अपने नेतृत्व की कमजोरी बताते हैं।[1] दो विशेष अवसरों पर उन्होंने प्राणरक्षा का भय अनुभव किया जो उनकी दृष्टि में सत्याग्रही की सबसे बड़ी कमजोरी है। इसी चिन्ता के कारण उन्होंने निश्चय किया कि भविष्य में वे राजनीतिक नेतृत्व नहीं करेंगे। इसी निश्चय के साथ जैनेन्द्र का राजनीतिक जीवन समाप्त हुआ।

---

१. रघुनाथ सरन झालानी—'जैनेन्द्र और उनके उपन्यास,' पृष्ठ ४

उनके राजनीतिक जीवन के बारह वर्षों में (सन् १९२० से १९६२) कांग्रेस और क्रांतिकारियों की गतिविधियाँ अत्यन्त सक्रिय थी और दोनों को उन्होंने निकट से देखा। कांग्रेस के कर्मठ सेनानी के रूप में जैनेन्द्र गाँधीयुग की देन हैं और गांधीवाद का उन्होंने गहन अध्ययन भी किया है।

राजनीति से बहुत वर्षों तक सम्बद्ध रहने और गाँधीवाद पर आस्था होते हुए भी जैनेन्द्र के उपन्यासों में राजनीतिक धरातल का अभाव आश्चर्य जनक है। इस संदर्भ में उनके ही शब्दों को उद्धृत करना उपयुक्त होगा—'मेरे ख्याल में उपन्यास में न व्यक्ति चाहिए, न टाइप। न नीति चाहिए, न राजनीति। न सुधार, न स्वराज्य। उसमें तो प्रेम की सघन व्यथा की माग ही हो सकती है। और वह प्रेम इस या उसमें नहीं है, बल्कि इस-उस की परस्परता ही में है।'

उपन्यास ही नहीं साहित्य की परिभाषा में भी वे कहते हैं—'मनुष्य के हृदय की वह अभिव्यक्ति जो इस आत्मैक्य की अनुभूति में लिपिबद्ध होती है, साहित्य है।' इस भाँति हम देखते हैं कि प्रेम और अहिंसा द्वारा ऐक्य का अनुभव कराना ही वे साहित्य का ध्येय मानते हैं। समाज की रीति-नीति को ध्वस्त करने में क्रांतिकारी साहित्य की सार्थकता को वे नहीं मानते।

किन्तु जैनेन्द्र के उपन्यासों की विवेचना में हम पाते हैं कि उनके उपन्यासों में गाँधीवाद का समावेश तो है ही क्रांतिकारी राजनीतिक वातावरण का घटाटोप भी कम नहीं। प्रेम, सत्य और परमात्मा के संबंध में उनके विचार गाँधी जी के विचारों की प्रतिच्छाया है।

उन्होंने व्यक्ति को मूलतः व्यक्ति मानकर उसकी मान्यताओं को अभिव्यक्ति दी है और इसी रूप में उनकी राजनीतिक चेतना को विस्तार मिला है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि सामयिक राजनीतिक घटनाओं या राजनीतिक उद्देश्यों के ध्येय से उपन्यासों की रचना नहीं करने पर भी उनके प्रमुख पात्रों के चरित्र चित्रण में गाँधीवादी जीवन दर्शन आरोपित है। इन पात्रों की सार्थकता के लिए क्रांतिकारी पात्रों की अवतारणा भी की गई है। यो अन्तः संघर्ष ही उनके साहित्य की मूल शक्ति है जो उनके अत्यधिक चिंतन के कारण उपन्यास के राजनीतिक स्वरूप को ढांके रहती है। एक समीक्षक का मत है 'जैनेन्द्र ने अपनी रचनाओं में राजनीति को केवल बौद्धिक रूप में ग्रहण किया है। उनके चरित्र राजनीतिक हलचलों से उतना प्रभावित नहीं होते जितना उनके विषय में सोचते हैं। उन पात्रों के आदर्श भी समय की परिस्थितियों द्वारा बोधित होने वाले आदर्श नहीं।'[1] उनके उपन्यासों में गाँधीवाद के आध्यात्मिक रूप एवं क्रांतिकारियों के क्रियाकलापों का विस्तृत चित्रण हुआ है।

१ आलोचना, अंक १३, पृष्ठ ४१

जैनेन्द्र के उपन्यासों को विषय-वस्तु की दृष्टि से दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

(१) राजनीतिक उपन्यास

(२) अंश-राजनीतिक उपन्यास

क्रांतिकारियों के क्रियाकलापों और उनकी रीति-नीति को अभिव्यक्त करने वाले 'सुखदा' व 'विवर्त' प्रथम श्रेणी में वर्गीकृत किये जा सकते हैं। 'सुनीता' और 'कल्याणी' में भी क्रांतिकारियों का संक्षिप्त उल्लेख मिलता है अतः उन्हें अंश राजनीतिक उपन्यासों की कोटि में रखा जा सकता है।

प्रेमचन्द हिन्दी के प्रथम राजनीतिक उपन्यासकार हैं जिन्होंने राजनीतिक चेतनाओं को युगधर्म के अनुरूप चित्रित कर मार्गदर्शन किया। डॉ० नगेन्द्र का यह कथन सत्य ही है कि हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचन्द व्यक्ति नहीं संस्था थे। उन्होंने अपने समय की सामाजिक और राजनीतिक चेतनाओं को युगधर्म के दृढ़ आधार पर समन्वित किया।[1] प्रेमचन्द के समय में ही जैनेन्द्र के 'सुनीता' का प्रकाशन हो गया था। प्रेमचन्द के उपन्यासों में राजनीतिक तत्व उभरे उसकी प्रेरणा उन्हें संभवतः बंकिमचन्द्र और रवीन्द्रनाथ टैगोर के उपन्यासों से मिली जबकि जैनेन्द्र शरत से प्रभावित हो व्यक्तिवादी उपन्यास के प्रणेता हुए। इसे प्रेमचन्द की बहिर्मुखी प्रवृत्ति का प्रतिगामी विरोध ही कहा जा सकता है।

सुनीता

यह जैनेन्द्र का प्रथम उपन्यास है जिसमें उनकी राजनीतिक दृष्टि का स्पष्ट आभास मिलता है। 'सुनीता' में हरिप्रसन्न नामक पात्र के मिस क्रांतिकारियों के क्रियाकलापों का परिचय प्रस्तुत किया गया है। इस उपन्यास का केन्द्र हरिप्रसन्न ही है जिसके चतुर्दिक समस्त घटनाएँ संग्रथित हैं। उपन्यास में उसके दो रूप चित्रित हैं—एक चित्रकार का तथा दूसरा क्रांतिकारी का। चित्रकार का स्वरूप तो उसके चित्रांकन से प्रकट भी किया गया है किन्तु उसके क्रांतिकारी रूप को विस्तार नहीं मिल सका है।

'सुनीता' की कथा संक्षिप्त और कथा के सूत्र अत्यल्प हैं। 'मुख्य पात्र केवल तीन हैं—सुनीता, श्रीकांत और हरिप्रसन्न। तीनों की संयुक्त कथा या विभिन्न समस्याओं को लेकर उत्पन्न अन्तर्द्वन्द्व से ही उपन्यास की कथा वस्तु का निर्माण हुआ है। अतएव इसे हम अन्तर्वृत्ति-निरूपक उपन्यास भी कह सकते हैं।

श्रीकान्त और हरिप्रसन्न कालेज में साथ रहे हैं, मित्र हैं। किन्तु इधर अनेक वर्षों से इनका मिलना नहीं हुआ है। कालेज में वह खूब चतुर, खूब कर्मण्य, खूब सप्राण

---

१. डॉ० नगेन्द्र—'विचार और विश्लेषण,' पृष्ठ १५०

और एकदम मनोवैज्ञानिक यह था।[1] सार्वजनिकता उसके स्वभाव में खूब थी। धर्म उसके लिए उपयोग की और कभी प्रयोग और विनोद की भी वस्तु थी। प्रारम्भ में ही हम उसे 'नई उमर में घूमी चढ़ कर चुक गये' युवकों की मृत्यु पर श्रद्धावान पाते हैं। श्रीकान्त भी अनुभव करता है कि 'हरिप्रसन्न मौत के विचार के साथ हल-मन बटाना चाह रहा है।' वह हेलमेल बढ़ाता है हम पाते हैं कि 'एक षड्यन्त्र का विस्फोट हुआ। हरी पकड़ा गया और दूर-दूर के लोग पकड़े गये। कुछ को फांसी हुई, बहुतों को जेल। दो साल की सज़ा हरी को हुई। फिर असहयोग और सत्याग्रह आया। हरिप्रसन्न उसमें झुका। जेल पर जेल वहाँ भी हुई।'[2] श्रीकान्त अब विवाहित है और वकालत कर रहा है। वह हरिप्रसन्न का स्मरण करता रहता है उसे देखने को आतुर है किन्तु हरिप्रसन्न का कोई पता नहीं चलता। अज्ञात कारणों से हरिप्रसन्न का श्रीकान्त के यहाँ ठहरना होता है। दिल्ली में हुई एक कान्फ्रेंस में भाग लेने वह आता है जहाँ श्रीकान्त उसे देखता है। वह आतंकवाद के पतनशील तथा पूँजीवाद के प्रगतिशील चरणों का अनुभव करता है। वह कहता है—'राजनीति में जो तूफान आया था, वह बीत गया। अब आवारापन सुरुचीय था। साहस का मूल्य था। ज्वार उतर जाने पर जो भाटा आया है, इसमें वस्तुओं का मूल्य बदल गया है। अब आदमी दुनियादारी में भारी-भरकम चाहिए और पैसे से पुष्ट चाहिए। तब राष्ट्र की राजनीति उसे पहचाने। यह पैसे की समस्या बड़ी पेचीदी हो गई है। अनुत्पादक चालाकियों से सोने का ढेर बन जाता है, उत्पादक ठोस मेहनत करने पर सादे के पैसा का भी भरोसा नहीं बनता।'[3] वह इस नतीजे पर पहुँचता है कि जीवन के लिए पैसा आवश्यक है और उसे श्रमिक के रूप में प्राप्त करना चाहता है। श्रीकान्त उसे घर ले जाता है जहाँ वह कुछ दिन ठहरता है। इस काल में वह श्रीकान्त की पत्नी सुनीता की ओर आकृष्ट होता है। श्रीकान्त और सुनीता हरिप्रसन्न को बाँधे रखने की चेष्टा करते हैं।

श्रीकान्त के यहाँ जिस प्रकार की आत्मीयता का हरिप्रसन्न को बोध होता है इसका उसे पूर्व ज्ञान न था। सुनीता के निकट सम्पर्क से वह नारी के नये स्वरूप को देखता है। हरिप्रसन्न दल की प्रेरणामयी नारी के रूप में सुनीता की कल्पना करता है। वह विचार करता है, 'यह सुनीता आज घर में है, गृहिणी है। वह रण की रण-देवी क्या न बने? पौरुष कहाँ से साहस लेता है? युवकों में कहाँ से स्फूर्ति भरनी होगी? वे कहाँ से मद पायेंगे? जीवन की स्पृहा उनमें कैसे जायगी? उसके लिए एक

1 जैनेन्द्र — 'सुनीता,' पृष्ठ ६
2 जैनेन्द्र — 'सुनीता,' पृष्ठ ८
3 जैनेन्द्र — 'सुनीता,' पृष्ठ २२

नारी की आवश्यकता है।'[1] नारी को वह माया के रूप में चाहते हैं। सुनीता भी एक रात के लिए दल के युवकों से 'रानीमाता' के रूप में मिलना स्वीकार कर लेती है। जिस रात को वे दल के स्थान की ओर रवाना होते हैं, उसी रात श्रीकांत लाहौर से लौटता है और घर को बन्द देखता है। उधर हरिप्रसन्न सुनीता को लेकर जङ्गल में पहुँचता है तो सुनीता के साहचर्य से उसे अपनी वासना की अभिव्यक्ति का अवसर मिलता है। सुनीता हरिमोहन की काम-प्रमुक्ति का आवरण हटाने के ध्येय से अपना निरावरण शरीर प्रस्तुत करती है और हरिप्रसन्न का मोह दूर हो जाता है। सुनीता पति को सब कुछ बता देती है और श्रीकांत प्रसन्न है कि उसने एक व्यक्ति की मानसिक ग्रंथि को खोलकर उसे समाज के उपयोगी अंग के रूप में प्रवर्तित किया।

गाँधीवाद की गूँज

'सुनीता' की कथा-वस्तु और क्रांतिकारी पात्र हरिप्रसन्न की यही संक्षिप्त कहानी है। हरिप्रसन्न क्रांतिकारी होते हुए भी न तो कोई ऐतिहासिक पात्र है और न क्रांतिकारियों के अन्य गुणों से ही युक्त व्यक्तित्व। कथावस्तु में क्रांतिकारियों की गतिविधियों का अंकन भी नगण्य सा है। हरिप्रसन्न या उसके दल की रीति-नीति से परिचित होने का लेखक अवकाश ही नहीं देता। दल के लिए रुपये की व्यवस्था हेतु प्रार्थना, क्रांतिकारियों का रिवाल्वर के प्रति जीवन संगिनी-सा प्रेम और पुलिस के खतरे की लाल रोशनी से सूचना इसमें अवश्य है पर वह भी अस्पष्ट।

ऐसी स्थिति में यह सहज प्रश्न उठता है कि फिर उपन्यासकार ने हरिप्रसन्न को क्रांतिकारी के रूप में ही चित्रित क्यों किया ? हरिप्रसन्न क्रांतिकारी के स्थान पर न होकर क्या कुछ और नहीं हो सकता था ? दूसरा प्रश्न उठता है कि रचनाकार का 'सुनीता' में क्या उद्देश्य है ? उस उद्देश्य की पूर्ति में हरिप्रसन्न का क्या योग है।

इन प्रश्नों का उत्तर जैनेन्द्र के गाँधीवाद जीवन दर्शन में ही निहित हैं। हरिप्रसन्न क्रांतिकारी है और इस रूप में हिंसात्मक कार्यवाहियों का समर्थक भी। श्रीकांत का सिद्धान्त है प्रेम और अहिंसा से जीवन का उन्नयन। इस तरह है वह गाँधीवादी चरित्र का मूर्तिमान आदर्श। 'सुखदा' दोनों के बीच 'साधन' है जिसके माध्यम से हरिप्रसन्न पराजित होता है और उसके सिद्धान्तों को हम तिरोहित होते देखते हैं। साधन नारी है इसीलिए जैनेन्द्र हरिप्रसन्न की काम-प्रमुक्ति की प्रवृत्ति का निरूपण करते हैं।

नारी को साधन रूप में प्रस्तुत करने के उनके ये कारण हो सकते हैं—

(१) क्रांतिकारियों द्वारा दल में नारी को स्थान देने के कारणों पर प्रकाश,

१. जैनेन्द्र — 'सुनीता,' पृष्ठ १३५-३६

(२) सविनय अवज्ञा आन्दोलनोपरान्त (सुनीता और कांत का विवाह १९३२ में होता है) नारी के बदलते हुए मूल्यों की व्याख्या। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नारी को पुरुष की समकक्ष सहयोगिनी के रूप में लाकर राष्ट्रोद्धार के आन्दोलनों में लाना राष्ट्रीय आन्दोलन की जो भूमिका रही है उसका चित्रण जैनेन्द्र को अभीष्ट रहा है।

'सुनीता' में सुनीता को लेकर ये दोनों पक्ष स्पष्ट होते हैं और तद्युगीन नारी का राजनीतिक क्षेत्र में प्रवेश करने का ज्ञान होता है। हरिप्रसन्न की पराजय हिंसा की पराजय है। इसीलिए हम इस तथ्य को स्वीकार कर सकते हैं कि इस उपन्यास की मूल समस्या है हिंसा और अहिंसा का साहित्यिक तथा व्यावहारिक संघर्ष, जिसमें अहिंसा की विजय और हिंसा की पराजय दिखाना लेखक का परम लक्ष्य है। अहिंसा की विजय की समस्या प्रेम के माध्यम से सामने रखी गई है, जिसके मूल में पति के प्रेम तथा प्रिय अथवा प्रेमी के प्रेम का संघर्ष है। इन दोनों प्रेमों के दो टूक निर्णय न लाकर उपन्यासकार ने अहिंसा की समस्या का साफ हल प्रस्तुत नहीं किया है।[1]

जैनेन्द्र की दार्शनिकता, जिसके आधार पर वे गाँधीवाद का आध्यात्मिक स्वरूप साहित्य में प्रस्तुत करना चाहते हैं, उनकी बुद्धिवादिता से बोझिल हो अस्पष्ट हो जाती है और राजनीतिक उपन्यास को भिन्न स्वरूप प्रदान करती है। इसी अस्पष्टता के कारण ही आलोचकों को उनके संबंध में भिन्न दृष्टिकोण बनाना पड़ता है। आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी की मान्यता इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है—'जैनेन्द्र की रचनाओं में जिन नारियों के दर्शन हमें होते हैं, वे गाँधी जी की नारी-कल्पना से नितांत भिन्न हैं। रचना के क्षेत्र में जैनेन्द्र न तो गाँधीवादी हैं और न आदर्शवादी हैं।'[2] और मेरे विचार से 'न मूलतः क्रांतिकारी ही।'

सुखदा

'सुखदा' में जैनेन्द्र ने क्रांति की कथा नाटकीय ढङ्ग से कही है। उपन्यास की नायिका सुखदा है जिसके पारिवारिक जीवन को केन्द्र बिन्दु बनाकर क्रांतिकारियों के विचारों व क्रिया-कलापों को प्रस्तुत किया गया है। इस उपन्यास में कथा रस के अतिरिक्त विवरण में सरसता की संयोजना मिलती है।

सुखदा बड़े घर की बेटी है किन्तु उसका विवाह हो जाता है डेढ सौ रुपया माहवार पाने वाले व्यक्ति से। यही आर्थिक वैषम्य पति-पत्नी के मनोमालिन्य का कारण होता है। एक दिन एक बीस वर्षीय युवक नौकरी की खोज में उसके यहाँ आता है।

---

१ आलोचना १३, पृष्ठ ११५-१६

२. आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी—'आधुनिक साहित्य', पृष्ठ २१९

उसने अपना नाम गंगासिंह बताया । कुछ दिन तक सेवक के रूप में काम करके एक दिन बिना किसी को बताये वह काम छोड़कर चला जाता है और तीसरे दिन सुखदा समाचार पत्र द्वारा उसके गिरफ्तार होने का समाचार पढ़ती है। गंगासिंह (यह नाम भी कल्पित था) और उसके तीन साथियों की गिरफ्तारी एक अनहोनी घटना में होती है। यह अनहोनी घटना क्या थी लेखक इसको अस्पष्ट रखता है। गंगासिंह क्रांतिकारी दल का सदस्य था इस तथ्य को लेखक ने सुखदा की संभावना[1] और बाद में घटना के बाद पति के कथन की पुष्टि से स्पष्ट किया है। इस तरह यह अनहोनी घटना क्रांतिकारी ही हो सकती है ऐसा पाठक को मानकर चलना पड़ता है। उन चार के बाद और बहुतों की भी गिरफ्तारी हुई। गंगासिंह और उनके साथियों की गिरफ्तारी को लेकर देश में एक बिजली सी दौड़ जाती है और सुखदा का झुकाव क्रांतिकारियों की ओर हो जाता है। पति के प्रति वितृष्ण होकर वह सार्वजनिक क्षेत्र में प्रवेश करती है जहाँ वह हरीश के सम्पर्क में आती है। हरीश एक क्रांतिकारी संगठन के प्रमुख हैं जो क्रांतिकारियों के माध्यम से राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए यत्नशील है। राजनीतिक शक्तियों का बिखराव तत्कालीन भारत की राजनीतिक स्थिति का ही परिणाम था। सुखदा के शब्दों में—'उस काल का राजनीतिक वातावरण अस्थिर था। सन् २० का आन्दोलन ठंडा पड़ गया था। कोई एक विचारधारा उस समय ऐसी नहीं थी जिसमें देश का प्राण केन्द्रित भाव से बहता कहा जा सके। कई विचार थे, कई दल और परस्पर की स्पर्धा एक-एक उन दलों के पास जीवित रहने के लिए काम था।'[2] युवा क्रांतिकारियों की गतिविधियों को वह हिंसा-अहिंसा की तुला पर नहीं तौलना चाहती।[3] उनकी कार्यवाहियों के प्रति उसका दृष्टिकोण सहानुभूतिक है वह तर्क की कसौटी पर उसे कसने को तत्पर नहीं। वह समय उभार का था, डांडी कूच होने में समय था और अधीर युवक कुछ न कुछ करने का प्रयत्न कर रहे थे।[4] कांग्रेस राष्ट्रीय संस्था थी लेकिन युवक उसको बिना बीच में लिए कुछ सीधा अपना उत्तरदायित्व भी समझने लगे थे।[5]

हरीश और उसके साथियों के सम्पर्क में आकर सुखदा का सार्वजनिक सम्पर्क बढ़ता है और वह क्रांतिकारी संघ की उपाध्यक्षा मनोनीत कर ली जाती है। पारिवारिक गृहस्थ जीवन की चिन्ताओं से अपने को मुक्त कर अपने अहं की तुष्टि के लिए वह

---

१ जैनेन्द्र कुमार—'सुखदा', पृष्ठ १६
२ जैनेन्द्र—'सुखदा', पृष्ठ २१
३. जैनेन्द्र—'सुखदा', पृष्ठ २१
४ जैनेन्द्र—'सुखदा' पृष्ठ २१
५ जैनेन्द्र—'सुखदा', पृष्ठ २१

क्रांतिकारियों के कार्यों में सहयोगिनी के रूप में अपने व्यक्तित्व का विस्तार करना चाहती है। उसके पति उसके कार्यों में (शायद हरीश के बालसखा होने के नाते भी) कोई रुकावट नहीं डालते। फिर भी पति का परिहास सुखदा को सह्य नहीं क्योंकि उसके अहं की अभिव्यक्ति प्रतिहिंसात्मक है।

मन में कर्तृत्व की योजनाएँ उदित होने के बाद वह हरीश के स्थान की ओर जाती है। यहाँ उसकी भेंट लाल से अत्यधिक नाटकीय ढंग से होती है। परिचय होने पर लाल उसे हरीश का परिचय पत्र देता है और सूचित करता है कि पुलिस को पता लग जाने के कारण हरीश अन्यत्र सुरक्षित स्थान में चले गये है। सुखदा लाल से प्रभावित हो हरीश को देने हेतु लायी धन राशि लाल को दे देती है। यहाँ उसकी अनुपस्थिति में सुखदा के पति श्रीकांत हरीश की आकस्मिक माँग पर सुखदा के स्वर्णाभूषण बैंक में धरोहर रखकर दो हजार रुपया प्रभात के हाथ हरीश को भिजवाते हैं। वे रुपये लाल के पास पहुँचते है और वह सारा रुपया सुखदा व कांत को लौटा देता है। कांत को आभास होता है कि सुखदा लाल के प्रति आकृष्ट हो रही है किन्तु वह सुखदा या लाल के प्रति प्रतिकार की भावना नहीं पाता।

लाल के प्रति दलवालों की धारणा अच्छी नहीं है। सुखदा के प्रति उसका झुकाव, सुखदा के आभूषणों व रुपयों के बिना दल की स्वीकृति पाये लौटाना व कार्यों के (सिद्धान्तों में भी) तरीके में मतवैभिन्य इसके कारण थे। अचानक ही लाल आपान जाने का निर्णय लेते हैं और सुखदा को एक घनिष्ट पत्र मिलते है जिसे पढ़कर वह अभिभूत हो जाती है।

इसके पश्चात् हरीश पुन कहानी में प्रवेश करते हैं। उनके सम्मुख लाल का प्रकरण प्रस्तुत होता है। उस पर सुखदा के प्रति आसक्ति के आरोप में मृत्यु दंड निश्चित होता है। लाल को दो दिन का समय दिया जाता है और हरीश का निर्णय होता है कि सुखदा लाल के साथ रहे और यदि उसके प्रेम के वशीभूत हो बचाना चाहे तो ठीक, नहीं तो उसका प्राणदंड निश्चित है। सुखदा लाल के प्रेम में विभोर हो उठती है पर वह उसे छोड़कर चला जाता है। इसी बीच हरीश दल भंग करने का निश्चय करते हैं। दल की इस बैठक में लाल और सुखदा पहुँच जाते हैं। दल भंग करने का कारण है पश्चिम से बढ़ता हुआ तूफान याने साम्यवाद और गांधी की आँधी। वे सुखदा व लाल दोनों को साथ रहने की अनुमति दे देते हैं। हरीश अपने को पुलिस के हाथों समर्पित कर देना चाहते हैं और अपने मित्र श्रीकांत को विवश करते हैं कि वह उन्हें पुलिस के हवाले करके उनकी गिरफ्तारी के लिए घोषित ५ हजार रु० का इनाम ले लें। श्रीकांत यंत्रचालित से ऐसा करके ५ हजार रुपये प्राप्त करते हैं। दल के लोगों को सन्देह होता है कि लाल ने हरीश को गिरफ्तार कराया है और प्रभात पता लगाकर

उस पर उस समय गोली चलाता है जब वह कोतवाली के पास आने वाले कोई 'खजाना' लूटेंगे। यह 'खजाना' और कुछ नहीं हरीश था। इस संघर्ष में केदार पुलिस की गोली से मारा जाता है। प्रभात को विश्वास है कि उसकी गोली लाल को लगी जरूर, पर वह भागता गया। सुखदा के मन में पति द्वारा हरीश को पकड़ाने का आघात लगता है और वह पति को छोड़कर माँ के पास रहने चली जाती है और फिर क्षयग्रस्त होकर अस्पताल का आश्रय लेती है जहाँ वह इन सब घटनाओं को डायरी के रूप में अंकित करती है।

'सुखदा' में राजनीति दृष्टि से यही कथानक है जो उपन्यास में यत्र-तत्र बिखराव के साथ क्रांतिकारियों के क्रियाकलापों पर प्रकाश डालता है। जैनेन्द्र जी व्यक्तिवादी उपन्यासकार हैं और इसीलिए आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों में 'जैनेन्द्र की साहित्य-सृष्टि व्यक्तिमुखी है।'[1] व्यक्तिवादी होने के कारण सामाजिक जीवन के व्यापक चित्रों का आग्रह उनमें नहीं मिलता। 'सुखदा' जैनेन्द्र की व्यक्तिमुखी नायिका है जिसके रहस्यवादी दार्शनिकता युक्त चित्रण से राजनीतिक वातावरण धूमिल हो उठा है। कथानक का विस्तार क्रांतिकारियों को लेकर—हरीश, लाल, प्रभात आदि को लेकर होने पर भी सुखदा व अन्य प्रमुख पात्रों के व्यक्तिवादी मनोविश्लेषणात्मक चित्रण से लेखक की स्वस्थ रचनात्मक राजनीतिक प्रवृत्ति और उसकी कथा का सहज विकास नहीं हो सका है। हम इस कथन से सहमत हैं कि 'सुखदा में क्रांति की कथा वर्णित हुई है, परन्तु यह सच है कि उसमें क्रांति का गौरव प्रकट नहीं हुआ है।'[2]

'सुखदा' आत्मचरितात्मक है और जिसकी नायिका सुखदा असहयोग आन्दोलन (१९२०) तथा डाडी कूच यात्रा (१९३२) के बीच के अपने जीवन की कहानी कहती है। इस अवधि में वह क्रांतिकारियों के निकट सम्पर्क में रहती है और उनके कार्यों में सुविधानुसार सहयोग देती है। उसके पति भी क्रांतिकारी दल से अप्रत्यक्ष रूप में सम्बद्ध थे। वस्तुत: 'सुखदा' में भी कहानी केवल निमित्त मात्र है। जैनेन्द्र के अन्य उपन्यासों की अपेक्षा इसमें घटनाएँ और कुतूहल की सृष्टि कुछ अधिक है। किन्तु इतना होने पर भी उनका मन घटनाओं के जाल में न पड़कर सुखदा के चरित्रोद्घाटन विशेषत: आत्म व्यथा में उलझ गया। नगेन्द्र जी के शब्दों में तो सुखदा का श्रेय अर्थ है अहं का उत्सर्ग। जीवन की सबसे बड़ी समस्या है अहं और सबसे सफल समाधान है उसका उत्सर्ग। इस उत्सर्ग की विधि है आत्मपीडन। सुखदा इसकी प्रतिमूर्ति है। समूचे उपन्यास में आत्म व्यथा की ही प्रेरणा है। सभी पात्र अपना निषेध करके ही प्राप्य की ओर बढ़ते हैं।[1] गृहस्थ कांत,

---

१. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी—'आधुनिक साहित्य,' पृष्ठ२१२

२. डॉ० सुषमा धवन—'हिन्दी उपन्यास,' पृष्ठ१८८

सन्यासी क्रांतिकारी हरिदा, समाजवादी क्रान्तिकारी लाल और डाकू केदार सभी के जीवन की साधना है अपने धन का समर्पण और जो गांधीवाद का प्रभाव है।

जिस उपर्युक्त काल का चित्रण उपन्यास में किया गया है वह अस्पष्ट रह गया है। लेखक राजनीति को केवल बौद्धिक रूप में ग्रहण करता है इसलिए वह विवरणात्मक दृश्य प्रस्तुत नहीं करता। उपन्यास में प्राप्त सूत्रों के आधार पर सन् १९२० से १९३२ के राजनीतिक वातावरण की कहानी कही गई है।

पात्र और राजनीति

उपन्यास के जितने भी पात्र हैं या तो वे क्रांतिकारी हैं या फिर क्रांतिकारियों से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सम्बद्ध है। हरीश, लाल, गंगा–सिंह, प्रभात, कोहली, केदार क्रांतिकारी के रूप में सामने आते हैं किन्तु उनका चारित्रिक विकास देखने में नहीं आता। ये पात्र अपना स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं रखते और निसत्व हैं। 'सुखदा' में नायिका के आत्मचरितात्मक अंकन से क्रांति की कथा सुर्ख बनाई जा सकती थी पर यहाँ भी लेखक क्रांति की जगह नारी समस्या को ही प्रमुखता दे बैठा। पात्र प्रधानतया चार है—सुखदा, उसके पति कान्त, क्रांतिकारी दल का नेता हरीश तथा दल का एक अन्य प्रमुख सदस्य लाल साहब। ये चारों ही वैयक्तिक विशेषताओं से सम्पन्न हैं।

हरीश का पूर्व परिचय हमें संकेत रूप में मिलता है। छुटपन से ही राष्ट्र के काम में है और जाने क्या-क्या मुसीबतें उठा चुका है।[1] वे क्रांति पर अडिग आस्था रखते हैं और बाइस बरस से इसके लिए कार्यशील हैं। लाल क्रांतिकारियों की कार्यपद्धति में परिवर्तन चाहता है क्योंकि वह पश्चिम से बढ़ते हुए साम्यवाद को देख रहा है। स्वयं हरीश गाँधी की आंधी (को) उससे छोटी चीज नहीं मानते। वे यह अनुभव करते हैं कि आनेवाला आन्दोलन व्यापक होगा और दल की वह नहीं राष्ट्र की चीज होगी। जनता के बढ़ते हुए महत्व को वह स्वीकार कर दल को विलीन कर जनता में खो जाने का आदेश देते हैं।[2] दल भंग कर वे पुलिस को आत्मसमर्पण कर देते हैं यह आत्मसमर्पण भी नाटकीय रूप से होता है। लाल और उसके साथी हरीश के इस नाटकीय रूप से अपरिचित हैं अतः कोतवाली के पास ही उसे छुड़ाने का यत्न करते हैं और पुलिस से हुए संघर्ष में एक क्रांतिकारी मारा जाता है। इस घटना के उपरांत दल के सदस्य सुरक्षा के लिए इधर उधर बिखर जाते हैं। पता नहीं चलता हरीश और लाल का बाद में क्या हुआ। उनके संबंध में जैनेन्द्र पाठकों के सामने एक प्रश्नवाचक चिन्ह ही छोड़ देते हैं।

---

१ डॉ० नगेन्द्र–'विचार और विवेचन,' पृष्ठ १५२

२ जैनेन्द्र–'सुखदा,' पृष्ठ ३४

लाल का प्रवेश कथा के मध्य में होता है। वह देशभक्त है, परायण है लेकिन मुक्त, स्वच्छन्द और स्त्रियों के प्रति विशेषोन्मुख। वह आदर्श की अपेक्षा कर्म पर अधिक जोर देता है। अर्थ और समाज के लिए वह साम्यवादी है। सुखदा के साथ उसका साक्षात्कार अत्यन्त ही नाटकीय ढंग से होता है और उतने ही नाटकीय ढंग से उसके साथ मैत्री भी। हरीदा और उसके विचारों का मतभेद हमें उस स्थल में देखने को मिलता है जब वह हरीदा द्वारा कात से मांगे दो हजार रुपये कात को लाकर लौटा जाता है। हरीदा जहाँ मित्रों और परिचितों से संघ के कार्यों के लिए रुपये मांगना अनुचित नहीं समझते वहीं लाल इसका विरोध करता है। उसका कथन है 'डकैती उन्हें गलत मालूम होती है, प्रार्थना मेरे लिए गलत है।'[1] वह रुपये की पूर्ति लखपती और करोड़पति के यहाँ से करना उचित मानता है। वह वैयक्तिक रूप से किये जाने वाले क्रांति कार्यों को भी उचित नहीं स्वीकारता और कहता है, 'अलग-अलग रहना क्रांतिवालों का गलत है। जन-जीवन के बीच जाने के मौके हमें अपनाने होंगे।'[2] वह स्त्री के उपयोग से अधिक सहयोग का कायल है। वह क्रान्तिकारियों की रीति-नीति सामाजिक बुनियाद पर चाहता है।

दल के सिद्धान्तों से पृथक अपनी मान्यताओं के कारण उसके प्राणों का भय उत्पन्न हो जाता है और वह जापान जाने की योजना बनाता है। दल के अनुशासन भंग करने के आरोप में उसे प्राणदण्ड का प्रावधान किया जाता है। वह हरीश को स्पष्टीकरण देता है और अपने राजनीतिक विचारों का (जो साम्यवाद से प्रभावित हैं) प्रतिपादन करता है। एक बैठक में हरीदा दल को भंग कर देते हैं—शायद लाल के तर्कों के कारण ही और उसे सुखदा के साथ रहने की अनुमति दे देते हैं। लाल को फिर हम हरीदा को छुड़ाने के प्रयत्न में देखते हैं जहाँ प्रभात उस पर गोली चलाता है। इसके साथ ही उपन्यास की समाप्ति हो जाती है।

'सुखदा' में हरीदा और लाल—दो क्रांतिकारी पात्र ही प्रमुख हैं। क्रांतिकारी होते हुए भी दोनों की अपनी-अपनी विचार धारायें हैं। हरीदा अन्त में जाकर जहाँ गाँधीवाद के प्रसार को देखते हैं वहाँ लाल प्रारम्भ से ही साम्यवाद से प्रभावित दिखता है। अर्थ और समाज के प्रति उसका दृष्टिकोण साम्यवादी है। दोनों पात्रों के कथोपकथन के द्वारा वह दोनों के विचारों को अभिव्यक्ति देता है।

'सुखदा' में वर्णित राजनीतिक देशकाल

'सुखदा' की कथावस्तु और उसके पात्रों के चरित्र चित्रण के अध्ययन के उप-

---

१. जैनेन्द्र—'सुखदा,' पृष्ठ १७७
२ जैनेन्द्र—'सुखदा,' पृष्ठ ७८

रान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँच जाते है कि सन् १९२० और १९३२ के बीच क्रांतिकारियो मे दो विचार धारायें कार्य कर रही थी–एक का प्रतीक है हरीश और दूसरे का लाल। आतंकवादी युग मे वर्ग बुद्धि का समावेश होने से समाजवाद का नारा बुलन्द होने लगा था।[1]

क्रांतिकारियो के आन्दोलन की तत्कालीन पृष्ठभूमि पर 'सुखदा' मे वर्णित हरीश और लाल की विचार धारा तत्कालीन युग के अनुरूप ही है। हरीश की प्रेरणा यदि प्राचीन ऋषियो के आदर्शों से उद्भूत है और गाँधीजी के राजनीतिक सिद्धान्तो की ओर उन्मुख है तो लाल की प्रेरणा रूस के साम्यवाद से। दोनो पात्रो के चारित्रिक विकास की विवेचना करते समय हम पूर्व मे ही इनका विस्तृत उल्लेख कर चुके हैं।

कांग्रेस के असहयोग आन्दोलन के बढते हुए प्रभाव के परिणाम स्वरूप क्रांतिकारियो की अवस्था वैयक्तिक आतंकवादी प्रयत्नो से अलग अलग हो सार्वजनिकता की ओर थी. इसका भी हमे 'सुखदा' मे स्पष्ट उल्लेख मिलता है। इसी आधार पर हरीश दल को भंग करता है।[2]

हरीश के उक्त अवसर पर व्यक्त कथन से राष्ट्र मे उभरते हुए गाँधीवादी और आते हुए साम्यवाद का स्पष्ट रूप मिलता है। गाँधीवाद का ही यह प्रभाव था कि हरीश पुलिस को आत्मसमर्पण के लिए तत्पर होता है। इतना ही नही अपितु 'कथानक के अधिकांश मे हिंसा के सूक्ष्म रूप अहम्मन्यता का सुखदा के व्याज से बारीक विवेचन करते हुए लेखक ने हिंसा के स्थूल पक्ष की ओर भी गौण रूप से ध्यान दिया है। इसीलिए उसने हरीश, लाल, प्रभातादि क्रांतिकारियो की उद्भावना की।'[3] स्पष्ट है कि लेखक देशकाल के अनुरूप हिंसा और अहिंसा की राजनीतिक व्याख्या (भले ही वह बौद्धिक हो) स अहिंसा का मार्ग प्रशस्त करता है। यह बात अलग है कि वे उन्हे आन्दोलनमय बना कर नही चले।

क्रांतिकारियो की कार्य-प्रणाली

सुखदा मे क्रांतिकारियो की कार्य प्रणालियो पर भी यथेष्ट प्रकाश डाला गया है। उनके अर्थ प्राप्ति के साधन, अनुशासन और संघ मे नारी का स्थान आदि विषयो पर विचार किया गया है जो इतिहास-सम्मत है। दल के कार्यों को संचालित करने के लिए धन की प्राप्ति किसी भी राजनीतिक दल की अनिवार्य आवश्यकता है। क्रांति-

१ मन्मथनाथ गुप्त—'भारतीय क्रांतिकारी आन्दोलन का इतिहास,' पृष्ठ २२९
२. जैनेन्द्र कुमार—'सुखदा,' पृष्ठ १७४
३. डॉ० रामरतन भटनागर—'जैनेन्द्र : साहित्य और समीक्षा,' पृष्ठ १७६-७७

कारी दल धन की प्राप्ति के लिये दो साधनों को अपनाता था—एक तो अपने समर्थकों से माग कर पूंजीपतियों के यहाँ डकैती डाल कर। हरीश पहले तरीके को उपयुक्त मानकर सुखदा और कांत से क्रमश तीन सौ और दो हजार रुपये प्राप्त करता है। लाल डकैतियों के द्वारा यह धन प्राप्त करना चाहता है।[1] मन्मथनाथ गुप्त ने अपने इतिहास में इन दोनों प्रकारों से धन-संग्रह का विवरण दिया है।[2] रूस के 'निहिलिस्ट' और आयरलैंड के क्रांतिकारी आर्थिक जरूरत पूरी करने के लिए डकैती डालते थे और भारतीय क्रांतिकारियों ने यह प्रेरणा वहीं से प्राप्त की थी।

क्रांतिकारियों की रीति-नीति : अनुशासन

क्रांतिकारियों में अनुशासन की कठोरता ऐतिहासिक सत्य है। दल में सम्मलित होने पर क्रांतिकारियों को प्रतिज्ञाएँ लेनी होती थी। इन नियमों का सख्ती से पालन किया जाता था और अनुशासन भंग की सजा प्राण दण्ड थी। बंगाल की अनुशीलन समिति का अनुशासन सबसे कड़ा था और सदस्यों को चार प्रकार की प्रतिज्ञाएँ लेनी पड़ती थीं। इनमें से प्रमुख थी—(१) मैं नेताओं का हुक्म बिना कुछ कहे मानूंगा। (२) मैं समिति का कोई भी अंतरंग मामला किसी से नहीं खोलूंगा, न उन पर व्यर्थ की बहस करूंगा। (३) परिचालक की आज्ञा पाने पर जहाँ भी जिस परिस्थिति में हूँ, फौरन लौट आऊंगा। (४) दल की भीतरी बातों को लेकर किसी से तर्क नहीं करूंगा और जो दल के सदस्य हैं उनसे भी बिना जरूरत नाम या परिचय भी न पूंछूंगा।[3]

'सुखदा' में हम क्रांतिकारियों को उपयुक्त प्रतिज्ञाओं के अनुरूप कार्य करते पाते हैं। प्रभात, लाल और केदार दल के प्रमुख हरीश के निर्देशानुसार ही कार्य करते हैं। हरीश का संदेश पाने पर लाल हवाई जहाज से मिलने पहुँचता है यद्यपि वह जापान के लिए रवाना हो रहा था। हरीश के आरोपों पर विचार करने के लिए जो गुप्त बैठक होती है उसमें हम देखते हैं कि लाल के प्रति असंतोष और अविश्वास होने पर भी अन्य सदस्य तर्क नहीं करते। दल के सदस्य एक दूसरे से अज्ञेय रहते हैं। प्रभात लाल के विषय में और सुखदा हरीश के विषय में विशेष कुछ बताने में असमर्थ रहते हैं। वे दल के विशेष निर्णय और जानकारियों से भी अनभिज्ञ रहते हैं। हरीश सुखदा को निवास परिवर्तन की सूचना नहीं देता और जब वह उससे मिलने जाती है तो उसके स्थान पर लाल से उसका साक्षात्कार होता है।

---

१. रघुनाथ सरन झालानी—'जैनेन्द्र और उनके उपन्यास,' पृष्ठ ८४
२. मन्मथनाथ गुप्त—'भारतीय क्रांतिकारी आन्दोलन का इतिहास,' पृष्ठ ५६-५७
३. मन्मथनाथ गुप्त—'भारतीय क्रांतिकारी आन्दोलन का इतिहास,' पृष्ठ २०२-३

क्रांतिकारी रीति-नीति और नारी

भगवानदास ने सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी आजाद के सम्बन्ध में लिखा है कि, पहले वह दल में स्त्रियों के प्रवेश के विरुद्ध थे और इसीलिए थे कि अनेक नेतृत्व के पूर्व यही परम्परा थी, परन्तु बाद में उनके ही नेतृत्व में स्त्रियों ने दल में काम किया और खूब अच्छी तरह काम किया। 'नारी नरक की खान' वाली मनोवृत्ति से नारी को एक सक्रिय क्रांतिकारिणी, समान सहयोगिनी के रूप में मानने के बीच की सभी मनोदशाएँ आजाद में समय-समय पर रही होंगी यह स्पष्ट है। अंतिम दिनों में आजाद बड़े उत्साह से दल की सभी सदस्यों को गोली चलाना, निशाना मारना आदि सिखाते थे, दल से सहानुभूति रखने वाले व्यक्तियों के घर की स्त्रियों को भी वह इसके लिए उत्साहित करते थे यह सब होते हुए भी इस बात के घोर शत्रु थे कि कोई दल का सदस्य स्त्रियों के प्रति अनुचित रूप से आकृष्ट हो, किसी प्रकार की यौन कमजोरी तो उनके लिए असह्य ही थी।'[1] हरीश के बारे में भी क्रांतिकारी के शब्द हैं 'दादा सब सह सकते हैं, चरित्र की चूक नहीं सह सकते।'[2]

'सुखदा' में जिस काल की कथा वर्णित है वह आजाद का ही युग था और उपर्युक्त कथन की सत्यता स्वयं सिद्ध है। बालसखा कांत की पत्नी सुखदा को दल के कार्यों के लिए प्रोत्साहित करने का श्रेय यदि हरीश को है तो सुखदा के प्रेम में विभोर लाल को दंडित करने का भी। क्रांतिकारी यशपाल को भी आजाद ने इसी आधार पर दंडित किया था कि वे दल की सदस्या प्रकाशवती के प्रति आकृष्ट थे और बाद में इसी आधार पर उन्होंने दल को भंग कर दिया था और दोनों को साथ रहने की अनुमति दे दी थी।

अन्य क्रिया-कलाप

'सुखदा' में क्रान्तिकारियों के सम्बन्ध में उपर्युक्त विशिष्टताओं के अतिरिक्त उनकी सतर्कता,[3] पत्र-व्यवहार या पहिचान के लिए विशेष कोड[4] भेष परिवर्तन आदि का संकेत भी मिलता है।

साम्यवादी चेतना

क्रांतिकारी लाल के लम्बे वक्तव्यों के द्वारा लेखक ने तद्‌युगीन साम्यवादी

---

१. मन्मथनाथ गुप्त–'भारतीय क्रांतिकारी आन्दोलन का इतिहास,' पृष्ठ ३०६-७
२. जैनेन्द्र कुमार–'सुखदा,' पृष्ठ १३८
३ जैनेन्द्र – 'सुखदा,' पृष्ठ ५३ व ५७
४. जैनेन्द्र – 'सुखदा,' पृष्ठ ५४ व १६८

चेतना को भी वाणी दी है। हरीश के सामने अपने आरोपों के सम्बन्ध में वह जो स्पष्टीकरण देता है उसमें अर्थनीति, नारी और सामाजिकता पर व्यक्त विचार उसकी साम्यवादी धारणाओं की पुष्टि मात्र हैं। वह समाज की सम्पन्नता सुदृढ़ आर्थिक आधार पर ही निर्भर मानता है। उसके शब्दों में 'आप पैसे को घुन समझते हैं, मैं भी एक तरह उसे मैल ही समझता हूँ। पर उन अनगिनत लोगों के आपसी नाना व्यापारों द्वारा बने हुए इस बड़े समाज के शरीर का वह लहू है। वह जीवन को जगाये रखता है। वह जहाँ सूखता है, वहाँ आदमी सूख जाता है। इसलिए आत्मनीति और धर्मनीति को बाद में देखा जायगा, अर्थनीति को पहले देखना होगा।'[1] उसका ही कथन है 'वह घोर साम्राज्यवाद है। पेट में वह पूँजीवाद है। हमको आर्थिक कार्यक्रम चाहिए। राजनीति पहला कदम है, असली काम आर्थिक है।'[2]

नारी को वह सहयोगिनी के रूप में मानता है और आन्दोलन में उनको पुरुष के समान उत्तरदायित्व देना चाहता है। स्त्री अलग और पुरुष अलग होकर नहीं चल सकते। वह हरिदा से भी कहता है—'दुनियाँ को मैं आधो आध बाँटकर देख सकता हूँ—पश्चिम में और पूरब में, स्त्री में और पुरुष में? दादा अगर हम इस दुनिया के बीच फाक करके चलेंगे, बचने की जिद रखेंगे, तो हम नहीं चल पायेंगे, डग भर भी नहीं चल पायेंगे।'[3]

वह हरिदा के आदर्शवाद के आगे पश्चिम से तूफान के आने की घोषणा करता है। यह तूफान साम्यवाद ही है जिसे गाँधीवादी जैनेन्द्र ने तूफान की संज्ञा से अस्पष्ट रखा है। इस तूफान की विशिष्टता की ओर वह ध्यान दिलाता है, 'उधर पश्चिम की तरफ से आ रहा है एक तूफान ! आप श्रेष्ठ को लेंगे, निकृष्ट को फेंक देंगे। वह उस फेंके हुए उच्छिष्ट को ही ध्वजा बनाकर उठा-बढ़ा चला आ रहा है। वह स्वप्नवाद नहीं है, ठेठ तनवाद और कर्मवाद है। आदर्श नहीं, एकदम वह व्यवहार है। उसमें *आत्मा की बात नहीं, आदमी की बात है। वहाँ स्त्री देवी नहीं है, और प्रजा नहीं है,* वह स्त्री है और साथिन है।'[4] साराश यह कि सर्वत्र यथार्थ सामाजिक जीवन में ही निष्ठा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जैनेन्द्र की 'सुखदा' क्रान्तिकारी दल से सहानुभूति रखने वाली एक सदस्या के आत्म-चरित्रात्मक उपन्यास के रूप में सन् १९२० से १९३२

१. जैनेन्द्र – 'सुखदा,' पृष्ठ १५५
२. जैनेन्द्र – 'सुखदा,' पृष्ठ ६६
३. जैनेन्द्र – 'सुखदा,' पृष्ठ १४६
४. जैनेन्द्र – 'सुखदा,' पृष्ठ १५४

के क्रान्तिपरक वातावरण और क्रान्तिकारियो की कथा ही है। इतना ही नहीं वरन् क्रान्तिकारी आन्दोलन के साथ साथ वह कांग्रेस और साम्यवाद के बढते हुए प्रभाव का चित्रण करता है। हिन्दी मे इसे प्रथम व्यक्तिवादी आत्मचरित्रात्मक राजनीतिक उपन्यास कहा जा सकता है जिसके सूत्र हमे 'सुनीता' मे मिलते है।

विवर्त

'सुखदा' के सदृश्य 'विवर्त' मे भी भारतीय क्रान्तिकारियो और क्रान्ति की कथा वर्णित है।

'विवर्त' की नायिका भुवनमोहिनी दिल्ली के एक धनी जज की पुत्री है और नायक जितेन अग्रेजी के एक पत्र के सम्पादकीय विभाग मे है। दोनों सहपाठी रहे है और मित्रता ने प्रेम का रूप धारण कर लिया है। भुवनमोहिनी का जितेन से प्रेम है और वह उससे विवाह करने को उत्सुक है, परन्तु अभाव ग्रस्त जितेन दोनों के बीच की आर्थिक स्थिति के वैषम्य को लेकर तर्क करता है। वह दोनो के सस्कारो मे मूलभूत अन्तर देखता है। इस वर्ग भेद की चेतना ही भुवनमोहिनी और जितेन के सम्बन्ध विच्छेद का कारण बनती है। जितेन नगर छोड़कर किसी अज्ञात स्थान पर चला जाता है और भुवनमोहिनी का विवाह इग्लैंड से लौटे बैरिस्टर नरेशचन्द्र से सम्पन्न हो जाता है।

भुवनमोहिनी के विवाह के चार वर्ष बाद जितेन एक क्रान्तिकारी के रूप मे पुन प्रकट होता है। सहाय के रूप मे वह भुवनमोहिनी के यहाँ आतिथ्य ग्रहण करता है। गत रात्रि उसने पजाब मेल गिराई है जिसमे तिरसठ मृत और दो सौ पन्द्रह आहत होते हैं। आत्म सुरक्षा की दृष्टि से वह बैरिस्टर नरेश के यहाँ आश्रय लेना श्रेयस्कर मानता है। ज्वर ग्रस्त होकर वह मोहिनी के यहाँ कई दिन आश्रय लेने के लिए बाध्य होता है। जितेन को पुन पाकर मोहिनी स्नेह और करुणा से अभिभूत हो उसकी परिचर्या और सेवासुश्रूषा मनोयोग से करती है।

मोहिनी और नरेश के ऐश्वर्य को देखकर जितेन की साम्यवादी विचार-धारा अभिव्यक्ति पाती है।[1] पुलिस को सदेह हो जाता है कि रेल उलटाने वाला असली आदमी शहर मे ही है। वड्डा एस० पी० को नरेश के यहाँ बीमार सहाय पर सन्देह है जिसे नरेश अपने साले साहब बताते हैं। मोहिनी के यहाँ रहते हुये भी जितेन का सम्पर्क दल के लोगो से बना रहता है। मोहिनी के ऐश्वर्य से वर्गभेद की चेतना पुन जागृत होने पर जितेन मोहिनी के आभूषणो की चोरी करके अपने डेरे पर पहुँच जाता

---

१ जैनेन्द्र — 'विवर्त,' पृष्ठ ६३

है। जितेन को हम डेरे पर विपिन के नये रूप में देखते हैं। यहाँ उसके सहायक हैं जो कोड के अनुसार शूर, वीर और धीर है और स्वयं विपिन का नाम है विप्पा। दल में एक स्त्री भी है तिन्नी। इन पात्रों के माध्यम से लेखक क्रान्तिकारियों की कार्यप्रणाली पर प्रकाश डालता है। जितेन या विप्पा मोहिनी से गहनों के बदले पचास हजार रुपये की माँग करता है, लेकिन मोहिनी यह स्वीकार नहीं करती। इस पर विप्पा के आदेश से दल के सदस्य उसका हरण कर लेते हैं और उसको धमकियाँ दी जाती हैं। इस स्थल पर आकर जितेन का हृदय-परिवर्तन होता है और वह साथियों की सुरक्षा तथा अनेक प्रकार की व्यवस्थाएँ करके पुलिस के सामने आत्मसमर्पण कर देता है। मोहिनी के कहने पर नरेश जितेन का मामला लड़ना चाहता है पर जितेन स्वयं अस्वीकार कर देता है। उसे फाँसी नहीं आजन्म कारावास होता है।

कथावस्तु के आधार पर 'विवर्त' की कहानी एक क्रांतिकारी के हृदय परिवर्तन की कहानी है। कहना न होगा कि 'हिंसावृत्ति का खंडन तथा अहिंसावृत्ति का उ[illegible]न व प्रतिपादन' ही इस उपन्यास का उद्देश्य है।

'सुनीता' 'सुखदा' के सदृश्य ही 'विवर्त' की कथावस्तु या पात्र ऐतिहासिक सत्य नहीं है। क्रांतिकारी पात्रों के माध्यम से लेखक क्रांतिकारियों के जीवन और कार्यों पर जो व्याख्या प्रस्तुत करता है वह अवश्य क्रांतिकारियों के अनुरूप हैं।

उपन्यास में वर्णित क्रांतिपरक घटनाएँ और असंगति

'विवर्त' में रेलगाड़ी उड़ाने का जो विवरण आया है उसे जैनेन्द्र ने २३ दिसम्बर १९२९ में वायसराय की रेलगाड़ी उड़ाने की घटना से प्रेरणारूप में ग्रहण किया है। 'विवर्त' की यह घटना काल्पनिक है और क्रांतिकारी आन्दोलन के इतिहास में ऐसा उल्लेख प्राप्त नहीं होता। इस घटना के साथ ही हमें नरेश के मन्त्री की पार्टी में भाग का उल्लेख मिलता है।

नरेश मोहिनी से दूरभाष पर हुई वार्ता में कहता है—

'वह पार्टी कौन विलायती है—अपने मन्त्री महाशय ही तो है।'

मोहनी कहती है—'क्या राजदूत न होंगे देश विदेश के ?'

नरेश का उत्तर है—'होंगे तो—'[1]

प्रश्न उठता है, तो क्या जिस क्रांतिकारी आन्दोलन की कथा उपन्यास में कही गई है वह स्वाधीनता प्राप्ति के बाद की है ? यदि नहीं तो पार्टी में राजदूतों के उपस्थित रहने का उल्लेख असंगत है ? कहना न होगा कि उपर्युक्त कथन लेखक की असावधानी का परिणाम है।

१ जैनेन्द्र—'विवर्त', पृष्ठ ४०

धन संग्रह के साधन

'सुखदा' की विवेचना में क्रांतिकारियों के धन-संग्रह के साधनों पर विचार किया जा चुका है। 'विवर्त' में जितेन मोहिनी से प्रार्थना कर धन की माँग करता है। मोहिनी के दो टूक उत्तर मिलने पर वह उसके आभूषणों को चुराता है। धन के लिए ही वह मोहिनी का अपहरण करता है और उसके घर पर डकैती डालने की धमकी भी देता है। इसके सिवाय क्रांतिकारी जाली सिक्के और नोट भी बनाते थे। सन् १९१० में ही जाली नोट तैयार करने का प्रयास हुआ। यह प्रयास बार-बार हुआ और कुछ सफलता भी मिली। श्रीगुह ने दिखलाया है कि सोनार गाँव में प्रबोधदास गुप्त ने लगभग दस-पन्द्रह हजार के जाली नोट चलाए। अन्त में वह पकड़े गये।[1] यह तरीका चला नहीं। 'विवर्त' में जितेन भी कहता है, 'मान लो रुपया हम बनाना शुरू करते हैं। ठप्पा लगा लेते हैं और सिक्का ढालने लगते हैं, जैसे पहले विचार था। बात सीधी है पर विचार छोड़ दिया। जानते हो क्यों? क्योंकि वह जाली होता है। क्योंकि मोहर सरकारी देते हैं, अपनी नहीं देते, इससे जाली होता है।'[2]

साम्यवादी दृष्टिकोण

क्रांतिकारी आन्दोलन के इतिहास के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि १९२१ के बाद के वर्षों में अनेक क्रांतिकारियों का बौद्धिक झुकाव साम्यवाद की ओर होने लगा था। वे स्वाधीनता के लिये सर्वहारा और आर्थिक नीति पर विचार करने लगे थे। 'सुखदा' में लाल और 'विवर्त' में जितेन साम्यवादी ढंग से सोचते हैं। जितेन श्रमिक वर्ग की सत्ता की कामना करता है—'सिक्के के हाथ नहीं, श्रम के हाथ सत्ता होनी चाहिए। श्रम सिक्का हो और सिक्का मिट्टी हो, तब है क्रांति।'[3] यह तो मानना ही पड़ेगा कि ऐसी संस्थाओं पर रूसी राजनीतिक क्रांति का देखादेखी प्रभाव नगण्य नहीं था।

वह गरीबों को शाह और अमीरों को चोर मानता है।[4]

'विवर्त' में क्रांतिकारियों की ईश्वर के प्रति अनास्था, छद्मनाम और गुप्त कोड की प्रथा, पुलिस के साथ होने वाली आँखमिचौनी, साहसिकता के एकाधिक उल्लेख

---

१. मन्मथनाथ गुप्त—'भारतीय क्रांतिकारी आन्दोलन का इतिहास,' पृष्ठ ५७
२. जैनेन्द्र—'विवर्त,' पृष्ठ १६३
३. जैनेन्द्र—'विवर्त,' पृष्ठ १६४
४. जैनेन्द्र—'विवर्त,' पृष्ठ २०७

मिलते हैं। जितेन का ड्राइवर बनकर एस० पी० चड्ढा व नरेश को छोड़ना और चड्ढा के साथ उसके घर पर रहना साहसिक और कौशलपूर्ण घटनाएँ हैं।

असगतियाँ

'विवर्त' मे कुछ असगतियाँ भी है जो सामान्य क्रांतिकारियो के जीवन से मेल नहीं खाती। परिचिता मोहिनी के यहाँ से आभूषणों की चोरी और तदुपरात उसका अपहरण, पुलिस कर्मचारी को छोड़ देना और जितेन का स्वयमेव पुलिस को आत्म समर्पण करना असामान्य घटनायें हैं। जितेन का आत्मसमर्पण कथावस्तु को शिथिल बनाता है क्योंकि यह घटना बिना करण कारण के अनायास होती है। गाँधीवादी दृष्टिकोण के अनुरूप उपन्यास की समाप्ति करने के उद्देश्य से ही इस घटना की सृष्टि की गई है। इसे हम एक क्रातिकारी के पतन के अतिरिक्त गाँधीवादी हृदय-परिवर्तन भी तो नहीं कह सकते। लेखक को उसकी भूमिका कुछ पहले से बनानी थी। मोहिनी मे हम इस परिवर्तन के प्रबल आग्रह को पाते है कि जितेन पुलिस को आत्म समर्पण कर दे पर जितेन पर यह आकाक्षा जब तक व्यक्त करे वह स्वय पुलिस को समर्पण कर देता है। ऐसी स्थिति मे 'विवर्त' मे वर्ग सघर्ष के रूप मे उपस्थित क्रांतिकारिता निष्प्रभ होकर रह जाती है।

जनेन्द्र के अन्य राजनीतिक उपन्यास

जैनेन्द्र के 'कल्याणी' और 'जयवर्द्धन' मे भी राजनीतिक चर्चा आशिक रूप से आई है।

कल्याणी

'कल्याणी' की कथा १९३५-३६ की कांग्रेस मिनिस्ट्री की पृष्ठभूमि लेकर चलती है और प्रान्त के प्रीमियर (जो कभी प्रान्त के प्रसिद्ध नेता थे) कल्याणी के इग्लैंड के कालेज दिवसो के मित्र हैं। कल्याणी मे कथानक सगठित है, कथात्मक तत्व भी काफी है किन्तु राजनीतिक सस्पर्श बहुत हल्का है। मुख्य कथा 'कल्याणी' की है किन्तु देवलालीकर और पाल की कथाएँ सग्रथित कर राजनीतिक 'टच' दिया है। पाल नाम के इग्लैंड के विद्यार्थी-जीवन के परिचित क्रांतिकारी को सरक्षण एव सहायता देने और पुलिस की चुनौती स्वीकार करने की कल्याणी की तत्परता दिखलाकर जैनेन्द्र उसके जीवन मे एक आदर्श पक्ष भी लाना चाहते है और इससे उन्हे कल्याणी की प्रगतिशीलता, उसके साहस, उसकी देश कल्याण की भावना और उच्च चरित्रात्मकता को प्रदर्शित करने का मौका मिल जाता है।

पाल के समान ही पुराना प्रेमी प्रीमियर बन कर दिल्ली जा रहा है और राय-साहब से मिलकर डॉ० असरानी दिल्ली में एक 'तपोवन' बनवा रहे है जिसका उद्घाटन प्रीमियर करेंगे। नई कोठी दिल्ली में ली गई है जहाँ प्रीमियर ठहरेंगे। इससे डेढ़-दो लाख फायदे व कान्ट्रैक्टों की व्यवस्था हो सकेगी।

प्रीमियर एक कल्पित राजनीतिक पात्र है जिसके चरित्र को आदर्श रूप से चित्रित करने का प्रयास किया गया है।

पाल की कहानी कल्याणी के चरित्र के द्वैध रूप को सामने रखकर उभारी गई है। कल्याणी में राष्ट्रीय जागरूकता और अपरिसीम राजनैतिक साहस का भी आरोप हो जाता है—जिससे उसका चरित्र विलक्षण और चमत्कारक बन जाये। कल्याणी में तीन प्रमुख चरित्र हैं—कल्याणी डॉ० असरानी और प्रीमियर। इसमें प्रीमियर परोक्ष में है और जब आते है तो समूचे और इतने तेजपुंज बनकर कि चकाचौंध पैदा कर देते है। परोक्ष रखकर कल्याणी के भीतर व्यथा संजोई गई है। उन्हें घात प्रतिघात के घेरे से बाहर रखा गया है। शिक्षित एवं सुसंस्कृत कल्याणी रूढ़िवादिता से परे स्वतंत्र जीवन व्यतीत करना चाहती है। डाक्टर असरानी रूढ़िवादी हैं और कल्याणी को आदर्श गृहिणी के रूप में देखना चाहते हैं। वे पत्नी के प्रति सदेहशील भी है और उस पर चरित्र-हीनता का आरोप लगाकर उसे पीटने से भी नहीं चूकते। डाक्टर के रूप में कल्याणी को वे आर्थिक सम्पन्नता का साधन बनाए रखना चाहते है। इसी कारण समस्या उठ खड़ी होती है गृहिणी और डाक्टरी, पत्नीत्व और निजत्व ये परस्पर कैसे निभें ? इसी समस्या को सुलझाने के लिए कल्याणी निजत्व की भावना को तिरोहित कर पति के सभी अत्याचारों को मूक भाव से सहन करती है। उसका विकास नहीं हो पाता और असंतोष और सन्ताप के बीच वह इहलीला समाप्त कर देती है।

वस्तुतः 'कल्याणी' युगानुरूप नारी की समस्या का एक पहलू है जो लेखक के प्रयत्नों के बावजूद भी अस्पष्ट रह गया है।

जयवर्द्धन

जैनेन्द्र के इस वृहदाकाय उपन्यास में जयवर्द्धन की कथा दो स्तरों पर चलती है जिसमें से एक नैतिक अथवा समष्टिगत है और दूसरा निजानन्द व्यक्तिगत। एक का सम्बन्ध जयवर्द्धन के मनोद्वन्द्व की समस्या से है और उसके माध्यम से जो विचार व्यक्त किया गया है उसके अनुसार राज के विकास का अंतिम चरण भले ही वह लोकतंत्र हो, या कल्याण राज या रामराज्य राष्ट्रीय राजनीति की भूमि पर अनेक स्वार्थों और दलों के बीच जयवर्द्धन की उभरती हुई स्थिति का चित्रण है और अन्त में यह इस निष्कर्ष

पर पहुँचता है कि यदि अपने अस्तित्व को बचाये रखना है तो राज का त्याग आवश्यक है। इसी तथ्य से परिचित हो वह मंत्रीपद से पृथक् हो जाता है।

जयवर्द्धन का आरम्भ दलीय स्वार्थों के संघर्ष से हुआ है और अन्त में वह घोर विरोध से श्रान्त होकर अहिंसक मार्ग अपना लेता है। इस तरह उपन्यास में जो समाधान प्रस्तुत किया गया है वह जयवर्द्धन के पद-त्याग में ही निहित है। अन्य राजनीतिक पात्रों के रूप में विरोधी दल के नेता हैं आचार्य जी, स्वामी चिदानन्द, नाथ, लिजा तथा इन्द्रमोहन।

आचार्य गाँधीवादी हैं, स्वामी चिदानन्द प्रतिक्रियावादी, नाथ और लिजा चिदानन्द के विरोधी अग्रगामी। इन्द्रमोहन हिंसाकर्मी और व्यक्तिवादी है। इस प्रकार जयवर्द्धन किसी भी दल में न रहकर सबकी समस्या है और उसे केन्द्र बनाकर ही पक्ष विपक्ष बन गये हैं। आचार्य जयवर्द्धन के प्रति विश्वस्त हैं अत उनका कोई विरोध नहीं है। स्वामी जी उन्हें अनैतिक मानते हैं और भारत के शीर्ष को धर्मी के रूप में किसी भी स्थिति में देखना नहीं चाहते। नाथ और लिजा इस प्रतिक्रियावाद के विरोधी हैं परन्तु शासनतन्त्र में वे लोकतन्त्र से आगे नहीं जाना चाहते। आतंकवादी होने पर भी इन्द्रमोहन जयवर्द्धन को दूर तक सहन कर सकते हैं। राजनीतिक दलों के इन महारथियों के कारण राजनीति में एक कूटचक्र की स्थापना हो जाती है जिसके चक्र में फँस कर जयवर्द्धन त्याग के लिए मजबूर हो जाते है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह नेहरू जी के मंत्रित्व काल की राजनीति का चित्रण है।

कथा की दूसरी और अपेक्षाकृत अधिक सशक्त भूमि व्यक्तिगत है जो जयवर्द्धन और इला के प्रेम-सम्बन्ध की वैधता अवैधता लेकर चलती है। एक विज्ञ आलोचक के शब्दों में 'वास्तव में राजनीतिक द्वन्द्वों के साथ-साथ और मूल में प्रेमचक्र ही है और सम्भवत काममूलक निरोध ही राजनीति-द्वन्द्व बन गया है।'

निष्कर्ष

जैनेन्द्र के उपन्यासों के अनुशीलन से यह तथ्य मिलता है कि व्यक्तिवादी दृष्टिकोण होने के कारण उनके लघुकाय उपन्यासों में आभ्यन्तरिक मनुष्य उनकी कथा का विषय है। वे बाह्य संघर्ष को छोड़कर अन्तः संघर्ष को प्रमुखता देते हैं और व्यक्तिगत रूपों में मनोवैज्ञानिक सन्निद्धि की ओर सचेष्ट रहते हैं। एक विज्ञ का कथन है कि जैनेन्द्र ने जीवन वास्तव की व्यापक पूर्ति की उपेक्षा की और मनोजगत के घात-प्रतिघातों के अंकन तक अपने को सीमित रखा। लघुत्व की विशेषता से मंडित सीमाबद्धता से उनमें सांकेतिकता का आग्रह अधिक है और जिसके कारण अनेक कथा-सूत्रों में बिखराव

अधिक है। उनके उपन्यासों का राजनीतिक स्वरूप इन्हीं कारणों से स्पष्ट उभर न सका है। 'सुनीता' 'सुखदा' और 'विवर्त' प्रत्येक में तीन प्रमुख पात्रों के बीच से कथा कही गई है और प्रत्येक त्रैत में एक पात्र क्रांतिकारी है। इतना होने पर भी 'सुनीता' के हरिप्रसन्न 'सुखदा' के लाल और 'विवर्त' के जितन का व्यक्तित्व पक्ष निर्बल है। सम्भावनाओं पर ही कथा-सूत्रों का निर्माण किया गया है और अन्त में जाकर क्रांतिकारी योजना का आभास मिलता है। इस दृष्टि से विवर्त अधिक सुगठित है और इस सुनीता और सुखदा की कड़ियों का विकास देखा जा सकता है।

जैनेन्द्र के उपन्यासों में क्रांतिकारी पात्र अपने गौरवपूर्ण व्यक्तित्व की रेखाओं से मंडित नहीं हैं। वे निराश या प्रताड़ित प्रेमी बन कर ही रह गए हैं। इसीलिए कहा गया है कि 'जैनेन्द्र ने स्पष्ट ही क्रांतिकारियों के साथ अन्याय किया है। उनके दुर्बल पक्ष को ही अधिक उभारा है। विवर्त में जितन जिस क्रांति की कल्पना करता है वह उसकी प्रेमिका भुवनमोहिनी की अमीरी के प्रति है। वह दुर्बल चरित्र है और प्रेम में दुर्बल होने के कारण ही आक्रोशवश क्रांतिकारी बनता है।

राजनीतिक दृष्टि से जैनेन्द्र गांधीवाद के हिमायती हैं और कला की दृष्टि से व्यक्तिवादी उपन्यासकार। गांधीवाद आन्दोलन यद्यपि समष्टि को लक्ष्य मान चलता, वहीं दूसरी ओर वैयक्तिकता के विस्तार का अधिकारी दल में पर्याप्त अवकाश मिलता है। सम्भवतः यही कारण है कि अपने दोनों उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जैनेन्द्र ने अपने उपन्यासों में क्रांतिकारी पात्रों को लिया है।

इलाचंद्र जोशी के उपन्यास एवं भारतीय राजनीति

मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार के रूप में ख्यातिप्राप्त इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास में सामाजिक यथार्थ का चित्रण भी अत्यन्त कुशलता के साथ हुआ है। जोशी जी का कथन है वर्तमान विश्व की व्यापक बाह्य समस्याओं का समाधान स्थायी रूप से तभी हो सकेगा जब उनकी भौतिक इतिहास-धारा को विश्व की अन्तरीण प्रगति-धारा की विराट पृष्ठभूमि से सम्बद्ध किया जाए। वे मार्क्सवादियों के इस सिद्धान्त को अपूर्ण मानते हैं जिसके अनुसार 'मनुष्य का मन बाह्य पदार्थ की प्रतिच्छाया मात्र है।' मार्क्सवाद उनकी दृष्टि में अपूर्ण दर्शन है क्योंकि वह केवल सामाजिक पदार्थ में सीमित रहकर महत्त्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक पक्ष से विमुख रह जाता है। वे मार्क्सवाद और फ्रायडवाद दोनों को एक दूसरे का पूरक मानते हैं और उनका कथन है कि 'एक ओर बाह्य जगत की गतिशीलता अन्तर्जगत का निर्माण करता है, दूसरी ओर अन्तर्जगत के वह संस्कार बाह्य जगत पर अज्ञात में अपना प्रभाव डालते जाते हैं। इसलिए एक महा

सत्य के इन दो चरम पहलुओं को समान भाव से अपनाने की परम आवश्यकता है। जब तक हमारे साहित्यिक और साहित्यालोचकगण अन्तर्जगत के दृष्टिकोण से बाह्य प्रगति को समझने का प्रयास नहीं करेंगे और उसी प्रकार बाह्य जगत के दृष्टिकोण से अन्तर्जीवन का ज्ञान प्राप्त नहीं करेंगे, तब तक साहित्य एकांगिता और अधकचरेपन के दोष से किसी प्रकार बच नहीं सकता।''[1] स्पष्ट है कि वे साहित्य में सामाजिक और मनोवैज्ञानिक दोनों पक्षों की समान प्रतिष्ठा चाहते हैं। वे प्रगतिशील लेखक हैं किन्तु उनका प्रगतिवाद मार्क्सवादी द्वन्द्वात्मक भौतिकतावाद न होकर समन्वयवादी प्रगतिवाद है जिसमें बाह्यिक बाह्य प्रगति तथा अन्तरीण प्रगति को समान-समन्वयात्मक रूप से अपनाया गया है। उनकी प्रारम्भिक कृतियाँ प्रायः सम्पूर्ण रूप से मनोवैज्ञानिक वस्तु पर गठित हैं किन्तु उनमें क्रमशः सामाजिक पक्ष का अधिकाधिक विकास होने पर राजनीतिक स्वरूप भी उभरता गया। वे मानते हैं कि 'पूँजीवाद तथा साम्राज्यवाद के विस्तार के पीछे भी मनोवैज्ञानिक कारण छिपे हुए हैं। मनुष्य के सामूहिक अवचेतन मन के भीतर दबी हुई कुछ विशेष प्रवृत्तियों का सामूहिक उभार इनके विकास का कारण है, यह बात बड़ी आसानी से सिद्ध की जा सकती है। इन सब बातों से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि केवल बाह्य जीवन की सामाजिक आर्थिक व्यवस्था और उसके परिणाम स्वरूप वर्ग-संघर्ष को ही बाहरी और भीतरी जीवन की एकमात्र परिचालिका शक्ति मानना और केवल उसी से संबंध रखने वाले तत्वों की खोज के पथ को 'प्रगतिशीलता' का एकमात्र पथ बनाना घोर भ्रममूलक है।'[2] यह ठीक उसी प्रकार है जैसे कि काव्य, संगीत आदि की परिचालक पृष्ठभूमि में फ्रायड कामकुंठा को महत्व देता है। हो सकता है कि सामूहिक रूप में कोई सामाजिक मनोवैज्ञानिक मूल प्रवृत्ति विशेष होती हो। किन्तु सच तो यह है कि समाज की समस्याएँ होती हैं और आर्थिक समस्या पर आधारित समाज के भरण-पोषण को लेकर जो यथार्थ समस्याएँ उत्पन्न होना संभव हैं उन्हीं पर समाजवादी धारा आधारित है। अतएव उसे मनोवैज्ञानिकता का जामा पहनाना चिन्तन नहीं प्रत्युत यथार्थ की थोथी कल्पना से उबरना है।

सन्यासी (१९४१)

प्रथम राजनीतिक उपन्यास 'सन्यासी' नंदकिशोर नामक व्यक्ति की आत्मकथा है जिसका राजनीतिक पक्ष केवल इतना ही है कि वह प्रेम में निरन्तर असफल हो सन्यासी हो जाता है और फिर नेतागिरी के चक्कर में पड़कर जेल चला जाता है। जेल

१ इलाचन्द्र जोशी—'विवेचना', पृष्ठ २२

२ इलाचन्द्र जोशी—'विवेचना,' पृष्ठ १६७-६८

से छूटने पर वह अपने को रिक्त पाता है। यदि उपन्यास में बलदेव और शांति जैसे पात्रों की सृष्टि न की गई होती तो उपन्यास नंदकिशोर के चरित्र की विकृति की कथा बनकर ही रह जाता।

शांति के साथ सम्बन्ध स्थापित कर नंदकिशोर जब उसे लेकर इलाहाबाद आता है उसका परिचय बलदेव से होता है। बलदेव ही उपन्यास का एकमात्र राजनीतिक पात्र है। उसके चरित्र में गांधीवादी धारा के विरोधी तत्वों का समावेश है। गांधी जी के मुस्कराते हुए चित्र को देखकर वह अपनी भावनाओं को व्यक्त किये बिना नहीं रहता। वह कहता है—'गांधी जी की इस मुस्कान में न सरलता है न भोलापन। इसमें केवल 'कैपिटेलिस्टों' की कृपा से परिपुष्ट एक आत्मतृप्त प्राणी के सुख और सन्तोषपूर्ण भाव की अभिव्यक्ति मैं पाता हूं।'[1] 'उनके चेहरे का एक्सप्रेशन देखते नहीं, एक भरपेट भोजन प्राप्त गवार की तरह हंस रहे हैं। दक्षिणी अफ्रीका में सच्ची लगन से, आत्मा की सच्ची अनुभूति से पीड़ितों और अपमानितों के हितार्थ अपने को अर्पित करने वाले त्यागी गांधी का अन्त न जाने कब हो चुका था। सच्चे गांधी को भूलकर दुनिया उनकी प्रेतात्मा को भज रही है।'[2] गांधी जी के प्रति उसकी घृणा इतनी उत्कट है कि उसके शब्दों में 'गांधी जी को साधारण 'ईडियट' नहीं, बल्कि मैकाले की भाषा में 'इम्सपायर्ड ईडियट' कहना बेहतर होगा।'[3] वह मानता है कि 'गांधीजी पूंजीवादियों के पिट्ठू हैं, इसीलिए उनके प्रति मेरे मन में तनिक भी श्रद्धा नहीं है। भारत की निर्धन और दलित जनता के प्रति उनकी आध्यात्मिक सहानुभूति अवश्य है, पर जहाँ सदियों से पीड़ित किसान और मजूर अपनी नोन तेल लकड़ी पर भी पूंजीपतियों का सर्वग्रासी हाथ पड़ते देख अपनी क्षीण शक्ति से उसका विरोध करने लगते हैं तो गांधी जी उनकी तरफ से कभी एक शब्द भी न कह कर पूंजीपतियों की पीठ ठोंकने लगते हैं। भावलोक में विचरण करके मानवता के 'ऐब्सट्रैक्ट' रूप के प्रति प्रेमभाव दिखा गद्गद् भाव प्रकट करके महात्मापन का यश लूट लेना आसान है।'[4]

मित्रों की गोष्ठी में भी वह प्रसंग निकाल कर खरी खोटी सुनाने से नहीं हिचकता। मित्रों से वह कहता है 'आपके महात्मा जी लंगोट धारण करके दरिद्रता के आत्मगत अनुभव का स्वांग भले ही रचें, पर उन्होंने अपने जीवन में कभी एक क्षण के

---

१ इलाचन्द्र जोशी—'सन्यासी,' पृष्ठ १६५
२. इलाचन्द्र जोशी—'सन्यासी,' पृष्ठ १६५ ६६
३ इलाचन्द्र जोशी—'संन्यासी,' पृष्ठ १६६
४ इलाचन्द्र जोशी—'सन्यासी,' पृष्ठ १६७

लिए भी दीनता के हाहाकार की प्राणघाती पीड़ा का अनुभव नहीं किया। यह बात किसी से छिपी नहीं है कि लँगोट धारण करने पर भी वह राजसी जीवन बिता रहे हैं।'[1] वह इसका दोषी गाँधी जी के समर्थकों को ही मानता है-'आप लोगों ने अपने महात्मा को अब व्यक्तिगत जीव नहीं रहने दिया। वह अब अपने व्यक्तिगत रूप में भी सार्वजनिक हो उठे हैं।'[2] वह गाँधी जी के तीसरे दर्जे की यात्रा पर भी व्यंग करने से नहीं चूकता।[3]

इसके ठीक विपरीत शांति है जो गाँधी जी की कट्टर भक्तिन है।[4] उसका कर्तृत्व भी गाँधीवादी है। उसके हृदय में पीड़ितों और अनाथों के प्रति समवेदना कोरी किताबी दुनिया से या राजनीतिक प्लेटफार्म पर दिए गए भाषण से प्राप्त फैशन की समवेदना नहीं है।'[5] इसी भावना के कारण वह बलदेव के प्रति सहानुभूति-दृष्टि से उसकी सहायता करती है। यों क्रांतिकारियों के प्रति उसके मन में आतंक का भाव है।

गाँधी जी के प्रति उसकी श्रद्धा-भावना महान है। उसके शब्दों में—'मेरे प्राणों के भीतर श्रद्धा का भाव जितना भी समा सकता है वह सबका सब अगर मैं महात्मा जी के चरणों पर उडेल दूँ तो भी मेरी आत्मा को पूरा सन्तोष नहीं हो सकता। मैं उन्हें मनुष्य के रूप में नहीं देखती हूँ। मैं तो उन्हें एक स्वर्गीय आदर्श की मूर्तिमान कल्पना समझती हूँ।'[6]

शांति के सम्पर्क में आकर बलदेव का हृदय-परिवर्तन होता है। वह गाँधी टोपी भी धारण कर लेता है और स्वीकार करता है कि 'गाँधीजी की बातों से किसी को कैसा ही असन्तोष क्यों न हो, पर मन में प्रत्येक समझदार व्यक्ति को यह मानना ही पड़ेगा कि वह सचमुच ही एक महान आत्मा है। मुझे तो यह विश्वास होने लगा है कि इस शख्स के पीछे कोई एक ऐसी जबर्दस्त दैवी शक्ति छिपी हुई है जो ईश्वर में तरंगित होने वाली अदृश्य बिजली की तरह सर्वत्र व्याप्त रहती है।'[7]

वह धीरे धीरे अज्ञात सर्वव्यापी शक्ति की सत्ता का भी बोध करने लगता है। किन्तु शांति के जाने के बाद ही हम पुनः उसे मनचले साम्यवादी रईसजादों द्वारा सचा-

१ इलाचन्द्र जोशी—'सन्यासी,' पृष्ठ १६६
२ इलाचन्द्र जोशी—'सन्यासी,' पृष्ठ १६६
३ इलाचन्द्र जोशी—'सन्यासी,' पृष्ठ १७१
४. इलाचन्द्र जोशी—'सन्यासी,' पृष्ठ १७६
५. इलाचन्द्र जोशी—'सन्यासी,' पृष्ठ १७६
६. इलाचन्द्र जोशी—'सन्यासी,' पृष्ठ १८७
७ इलाचन्द्र जोशी—'सन्यासी,' पृष्ठ १६६–२००

लित साप्ताहिक 'फ्यूचर वर्ल्ड' का सम्पादक पाते हैं। वह नये परिवर्तन की आकांक्षा करता है और कहता है—"एक ऐसे मनवाद का प्रचार करना चाहता हूँ, जो कोरा सिद्धान्तवाद या आदर्शवाद न रहकर जीवन की वास्तविकता से सम्बन्ध रखता हो, और जो रेडिकेलिज्म का पोषक होने पर भी इतनी सदियों के अनुभव से विकास प्राप्त कल्चर को न ठुकरा कर उसे युग की आवश्यकता के अनुसार नये रूप से नये प्रकाश में जनता के आगे रखने में समर्थ हो।"[1] वह रेडिकेलिज्म का अर्थ ट्रेन्स वल्यूल्यूएशन ऑफ आल वैल्यूज मानता है। वस्तुतः बलदेव एक भ्रमित राजनीतिक पात्र है और उपन्यास में उसका अपना कोई महत्व नहीं है।

'सन्यासी' तो नवकिशोर के चरित्र का ही मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है। बलदेव और शान्ति सामाजिक भावना से युक्त पात्र अवश्य हैं किन्तु इनके चरित्र उद्घाटित न हो सके हैं। संघर्षों से शिथिल बलदेव के चरित्र में गांधीवादी धारा के विरोधी तत्वों का कुछ समावेश अवश्य है पर वह आरोपित सा है। बलदेव तो कथा के विकास का एक सूत्र मात्र है।

निर्वासित

इलाचन्द्र जोशी के 'निर्वासित' उपन्यास में महीप नामक एक असफल प्रेमी कवि की कथा है जो उच्च परिवार की तीन बहनों से प्रणय व्यापार कर अन्त में असफल कवि ही रहता है। इसी पृष्ठभूमि में उसकी तथा तत्कालीन समाज की राजनीतिक गतिविधियाँ मुखरित होती हैं।

उपन्यास की कथा का आरम्भ उस समय से होता है जब द्वितीय महायुद्ध अपनी प्रारम्भिक अवस्था में था और उसकी छाया भारत में पूरी तरह से नहीं पड़ी थी। तब मध्यवर्गीय समाज के जीवन में रोमान्स की रंगीनी एकदम महक उठी थी। उपन्यास के अनेक पात्र—पुरुष और स्त्रियाँ, दोनों के जीवन में रोमान्स की इसी भावना का अंकन किया गया है।

उपन्यास की दूसरी स्थिति जब आती है तब एक ओर सन् बयालीस के अगस्त आन्दोलन का दमन-चक्रपूर्ण सघन वातावरण भारतीय आकाश को भाराक्रान्त किये हुए था और दूसरी ओर महायुद्ध की प्रतिक्रिया का परिपूर्ण प्रकोप पूरे प्रदेश से देश की जनता के ऊपर टूट पड़ा था। केवल पूँजीपति और जमींदार वर्ग को छोड़कर सभी वर्ग इन दो पाटों के बीच में बुरी तरह से पिसने लगे थे। मध्यवर्ग तो इसमें विशेष रूप से पीड़ित था। इस काल का सबसे बड़ा चमत्कार था नारी की मूल आत्मा का कायापलट।

---

१. इलाचन्द्र जोशी—'सन्यासी,' पृष्ठ ४२०

अगस्त आन्दोलन, युद्धजनित प्रभाव, बंगाल का अकाल आदि कारणों से एक ऐसी रासायनिक प्रतिक्रिया मध्यवर्गीय भारतीय नारी की अन्तरात्मा में हुई कि उसके भीतर युगों से दबी हुई प्रबल प्रतिहिंसात्मक शक्ति पूर्ण स्फूर्ति के साथ जाग उठी।

उपन्यास की अंतिम स्थिति तब आती है जब द्वितीय महायुद्ध तो समाप्त हो जाता है, किन्तु समाप्ति के साथ ही अणुबम के आविष्कार द्वारा तृतीय महायुद्ध के छायागमन की सूचना भी दे जाता है। एक ओर पूर्व युगों के राजनीतिक चक्रों की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न मनोवैज्ञानिक कारणों से भारतीय तरुणवर्ग हिंसावाद की ओर खिंचता चला जाता है। दूसरी ओर उसी वर्ग में से तीव्र अनुभूतिशील नवयुवकों का दल आगे आता है जो अहिंसा को ही विश्वविनाशी अणुबम के प्रतिरोध के लिए चरम अस्त्र मानता है।

उपन्यास का नायक महीप उपर्युक्त तीनों परिस्थितियों से होकर गुजरता है। इस संघर्षमय जीवन के बीच वह अनेक पात्रों और पात्रियों के सम्पर्क में आता है और युगानुरूप अनेक घटनाचक्रों का सामना करता है।

उपन्यास का प्रारम्भ एक राष्ट्रीय जलसे (संभवतः कांग्रेस अधिवेशन) में महीप और खन्ना परिवार की नीलिमा और प्रतिमा के मिलन से होता है। महीप इलाहाबाद में होने वाले इस राष्ट्रीय जलसे में नेताओं के भाषण सुनने और उसके परिपार्श्व में राष्ट्रीय समस्या के सम्बन्ध में मन में उठी नई विचारधारा को समझने आया है। अधिवेशन में उसे पूर्व परिचित नीलिमा और प्रतिमा राष्ट्रीय लहर के साथ खादी केस रिया साड़ियों को पहनाते दीख पड़ती हैं और वह यह सोचने को बाध्य होता है कि "यह फैशन का तकाजा है, जमाने की रफ्तार है या आन्तरिक प्रेरणा है।"[1] नीलिमा और प्रतिमा नारी-जागरण की प्रतीक हैं जो समय के साथ बदल रही हैं। समय का प्रभाव महीप पर भी पड़ा है और वह प्रेमविषयक कविताएँ लिखना छोड़ कर 'भू गर्भ की आग' और 'अनल और अनिल' जैसी जीवन संघर्ष की वास्तविकता से युक्त कविताओं की रचना करने लगा। वह प्रतिभासम्पन्न है पर राष्ट्रीय भावना और देश की तत्कालीन परिस्थिति के कारण आई० सी० एस० की परीक्षा में नहीं बैठता। वह कहता है कि किसी भी भारतीय के लिए आई० सी० एस० अफसर बनने की अपेक्षा बड़ा पाप दूसरा कोई नहीं हो सकता।[2] नीलिमा के कारण वह ठाकुर साहब से परिचित होता है और उसे धीरजसिंह और शारदा के माध्यम से ठाकुर साहब के जीवन की वास्तविकता का ज्ञान होता है। शारदा उपन्यास की एक मुख्य पात्र है जिसमें राजनीतिक चेतना कूट-

१ इलाचन्द्र जोशी—'निर्वासित', पृष्ठ ६

२ इलाचन्द्र जोशी—'निर्वासित', पृष्ठ १४

कूट कर भरी है। उसमे छुटपन से ही कम्युनिस्ट क्रान्ति के प्रति सैद्धान्तिक रूप से अभिरुचि रही है। महीप से चर्चा करते समय वह भारतीय राजनीति के परिप्रेक्ष मे साम्यवाद का विश्लेषण करती है। उसका मत है कि 'भारत मे मजदूरो और किसानो की क्रांति कभी मच नही पायेगी और न कभी मजदूर वर्ग का 'डिक्टेटरशिप' कायम होने पायेगा। यहाँ यदि कभी वास्तविक अर्थ मे किसी वर्ग की कोई क्रांति सफल होगी तो वह होगी उस वर्ग की जिसे मार्क्स ने अत्यन्त उपेक्षा बल्कि अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखा है। वह वर्ग है निम्न मध्यवर्ग—पेती बूर्जवाजी।'[1] उसके अनुसार मार्क्स का यह सिद्धान्त कि मजदूरो और किसानो की महाशक्ति के भीतर मध्यवर्ग को अपने को मिटा देना होगा—भावी क्रांति के सम्बन्ध मे कतई लागू न होगा। 'डिक्टेटरशिप आफ दि प्रोलेटेरियट' के नारे का कोई अर्थ तब न रह जायगा। तब जो नारा लागू होगा वह है 'डिक्टेटरशिप आफ दी पेती बूर्जवाजी', पर वास्तव मे यह नारा बुलन्द नही किया जायगा। 'जन साधारण का एकाधिपत्य' या इसी तरह का कोई नाम उस नयी शासन प्रणाली को दिया जायेगा।'[2] किन्तु इतना होने पर भी वह गाँधीवाद मे अटूट आस्था रखती है। सभवत उसकी मार्क्सवाद मे अनास्था व गाँधीवाद मे आस्था का कारण उसकी समझौतावादी धारणा ही है। वह मानती है कि इस देश की दासता की जजीरो को तोडने के लिए गाँधीवाद ही एकमात्र चरम अस्त्र है, जो बहुत कुछ सफल हो चुका है और आगे चलकर और अधिक सफल होगा।[3] शारदा के माध्यम से लेखक ने भारतीय राजनीति के भावी स्वरूप पर विस्तृत विचार प्रस्तुत किये है और उपन्यास को राजनीतिक दृष्टि से पुष्ट किया है। वह भारतीय नारी मे उत्पीडन की कथा कहकर सुदूर भविष्य की क्रांति मे नारी के महत्वपूर्ण योगदान की भविष्यवाणी कहती है।[4]

शारदा से राजनीतिक दीक्षा ले महीप क्रांतिकारियो के गुप्त सगठन मे सम्मिलित हो उसका सगठन करता है। महीप और उसके गुप्त सगठन को लेकर क्रांतिकारी सगठन की कार्यविधि से पाठक परिचित होता है। जैनेन्द्र के उपन्यासो की भाति ही यहाँ भी क्रांतिकारियो द्वारा सगठन के कार्यो को गुप्त रखने, सदस्यो द्वारा विशेष चिन्हो का उपयोग करने, जासूसो की नियुक्ति तथा कठोर चारित्रिक अनुशासन की पर्याप्त जानकारी मिलती है। परिस्थितिवश प्रतिभा भी इसी दल की सदस्या हो दल की एक बैठक मे भाग लेने के समय महीप से अत्यन्त नाटकीय ढग से मिलती है।

१ इलाचन्द्र जोशी—'निर्वासित', पृष्ठ १६१
२ इलाचन्द्र जोशी—'निर्वासित', पृष्ठ १६५
३ इलाचन्द्र जोशी—'निर्वासित', पृष्ठ १६६
४ इलाचन्द्र जोशी—'निर्वासित', पृष्ठ २०७

दल का सारा आदर्श हिंसा पर आधारित है। द्वितीय महायुद्ध समाप्त हो चुका है। महीप ने सगठित हिंसा के सिद्धान्त को इसलिए स्वीकार किया था क्योंकि तत्कालीन स्थिति में केवल हिंसक उपायों द्वारा ही भावी महाक्रांति की सफलता सभावित थी। रूस का और उस जैसे अन्य देशो का उदाहरण क्रांतिकारियों का आदर्श था।[1] किन्तु अणुबम के संहारक आविष्कार से महीप की हिंसावृत्ति की जड़ें मृत हो गईं। वह मानने लगा कि 'इस सर्वध्वंसी बम के बाद अब किसी भी हिंसक क्रान्ति की कोई सार्थकता नहीं रह गई।'[2] क्रांतिकारी दल की बैठक में वह इसी विषय पर अपने विचार व्यक्त करता है। वह हिंसा के स्थान पर अहिंसा की श्रेष्ठता प्रतिपादित करता है। वह कहता है—'अहिंसा परोधर्म।' विश्व के सच्चे कल्याण से प्रेरित होकर यह महावाणी एक बार भारतीय आकाश में गूंज उठी थी, आज के महानाशी युग में उसी को फिर से अपनाने की परम आवश्यकता आ पड़ी है। महात्मा गाँधी ने अहिंसात्मक युद्ध की जो आश्चर्य-जनक पद्धति खोज निकाली है उसे पूर्णतया अपनाना ही सच्ची वीरता का परिचायक है। महात्मा गांधी की अहिंसात्मक नीति ही ससार भर की राजनीतिक तथा आर्थिक बुराइयों से लड़ने के लिए एकमात्र उपयुक्त साधन है।'[3]

क्रान्तिकारी दल के सदस्य महीप की इस भावना को 'विशुद्ध कायरता' या 'नपुसक मनोवृत्ति' मानते हैं और गाँधीवाद की अहिंसा की खिल्ली उड़ाते हैं। प्रतिमा महीप के विचारों के विरोध में हिंसा का समर्थन कर नारी की भैरवी शक्ति का आह्वान करती है। महीप वैचारिक मतभेद के कारण दल से सम्बन्ध-विच्छेद कर लेता है।

इधर नीलिमा अपने पति डॉ० लक्ष्मीनारायण सिंह से अपमानित होकर लखनऊ आ जाती है। महीप नीलिमा को पुन व्यवस्थित जीवन आरम्भ करने की प्रेरणा देता है, परन्तु उसे सफलता नहीं मिलती। शारदा का पत्र पाकर वह उस स्थल पर पहुँचता है, जहाँ पर रात्रि को ठाकुर साहब के मकान में आग लगा दी जाती है। यहीं प्रतिमा और शारदा का विद्रोहात्मक रूप दिखलाई पड़ता है। महीप ठाकुर साहब की असहाया वस्था में सहायता करते समय घायल कर दिया जाता है और ठाकुर साहब के कहने पर पुलिस द्वारा दोषी ठहराकर जेल भेज दिया जाता है। कांग्रेसी मंत्रिमण्डल की स्थापना से कैदियों को रिहाई मिलती है, पर इसके पूर्व ही जेल में महीप की मृत्यु हो जाती है।

---

१ इलाचन्द्र जोशी—'निर्वासित', पृष्ठ ३३५
२ इलाचन्द्र जोशी—'निर्वासित', पृष्ठ ३३७
३ इलाचन्द्र जोशी—'निर्वासित', पृष्ठ २४२

राजनीतिक चेतना के कारण 'निर्वासित' इलाचन्द्र जोशी के पूर्ववर्ती उपन्यासो से भिन्न है। पूर्ववर्ती उपन्यासो के सदृश ही इसमे भी महीप के असाधारण व्यक्तित्व को लेकर उसके उद्घाटन के हेतु से कथा-योजना होने पर भी उपन्यास का आशय और कथानक राजनीतिक संसर्ग पाकर कुछ विशिष्ट बन गया है। महीप के अतिरिक्त शारदा देवी और प्रतिमा ऐसे पात्र हैं जो कथानक मे तत्वो की सृष्टि करते है। शारदा देवी का चरित्र विद्रोहाग्नि का पुंज है। महीप के शब्दो मे वह स्वय क्रातिकारिणी है और अपने जीवनव्यापी निर्वासनो से सबक सीखकर सक्रिय रूप से क्राति की मशाल जलाने के अवसर की प्रतिक्षा मे बैठी है।[1] क्रातिकारी विचारधारा के कारण ही वह प्रतिमा के साथ दल के निर्माण मे सहायक होती है और ठाकुर साहब के मकान मे आग लगाने मे सहयोगिनी होती है। प्रतिमा के चरित्र की विशेषता है उसकी निर्द्वन्द्वता। क्रातिकारी दल की सदस्या के रूप मे भी वह अत्यन्त प्रखर है। प्रतिहिंसा की भावना के कारण ही वह ठाकुर साहब के मकान मे आग लगा देती है। वस्तुत उसकी यह भावना शोषक के विनाश की प्रतीक है। वह कर्मण्य है और इसीलिए आकर्षक भी।

ठाकुर लक्ष्मीनारायण शोषक वर्ग के प्रतिनिधि पात्र है और अपने वर्ग के समस्त गुण विशेष से युक्त हैं। यह ठीक कहा गया है कि 'शोषक वर्ग की सम्पूर्ण प्रवृत्तियो का केन्द्रीकरण ठाकुर लक्ष्मीनारायण मे मिलता है।'[2] शारदा देवी, प्रतिमा आदि पात्र ठाकुर साहब के विनाश की योजना बनाकर नवीन सामाजिक व्यवस्था को दिशा-निर्देश देने का प्रयत्न करते हैं किन्तु उनका यह विद्रोह भाव समाज के रार्जनात्मक पक्ष के ही समर्थन मे है। शोषित वर्ग के पात्रो की सृष्टि कर सर्वहारा वर्ग की असतोषमय स्थिति को अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया गया है। शारदा देवी के विद्रोह मे शोषित और सर्वहारा का सघर्ष तत्कालीन राजनीतिक जागृति का सूचक है जो बाद मे अन्य समसामयिक उपन्यासकारो द्वारा ग्रहण किया गया।

इतना होने पर भी राजनीतिक विचार मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के कारण सकुचित हो उठे है। फिर भी इस तथ्य से इकार नहीं किया जा सकता कि 'मनोवैज्ञानिक तथ्य के समन्वय के साथ राजनीतिक विचारो का समावेश इस उपन्यास मे मिलता है जो अभी तक के व्यक्तिपरक उपन्यासो मे नहीं था।'[3]

---

१. इलाचन्द्र जोशी—'निर्वासित', पृष्ठ ३३१
२. बलभद्र तिवारी—'इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास,' पृष्ठ १२७
३ बलभद्र तिवारी—'इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास,' पृष्ठ १२६

मुक्तिपथ

'मुक्तिपथ' में अन्य उपन्यासों की अपेक्षा राजनीतिक पक्ष अधिक सुगठित है। उपन्यास का नायक है राजीव जो पुराना क्रांतिकारी है और स्वाधीन भारत में बेकार है। वह वर्तमान समाज व्यवस्था से विक्षुब्ध है और अशान्त भी। बेकारी की ऐसी स्थिति में वह उमाप्रसाद जी के यहाँ आश्रय लेता है। यहीं उसकी भेंट सुनन्दा से होती है जो बाल विधवा है और रिश्तेदार न होने पर भी पारिवारिक सहायता हेतु उनके यहाँ रहती है। सुनन्दा के सम्पर्क में आकर राजीव के हृदय में उसके लिए सहज स्नेह हो उठता है। उमाप्रसाद की पत्नी परम्परागत संस्कारों के कारण राजीव व सुनन्दा की घनिष्ठता को पापमय मानकर उसे ताने देते रहती है जिससे सुनन्दा के जीवन में अशांति उत्पन्न हो जाती है। उमाप्रसाद जी की लड़की है प्रमिला जो राजीव व सुनन्दा के स्नेह-सम्बन्ध से परिचित है। वह सुनन्दा को प्रेरणा देकर उसकी भावनाओं को सवारित करती है। इधर राजीव भी उसे नारी की जीवनदायिनी शक्ति से परिचित करा उसे विराट विश्व में अपने शक्ति सचरण के लिए प्रेरित करता है। प्रमिला के कारण दोनों एक साथ रहने लगते हैं और जीवन से संघर्ष करते हुए नव निर्माण संघ स्थापित करते हैं। क्रांतिकारी राजीव की आदर्श भावना लोप नहीं हुई है और इसी कारण वह नारी की उपेक्षा करने लगता है। अतृप्त कामनाओं से घुटी सुनन्दा संघ से पृथक हो जाती है और राजीव से कहती है आदर्श कितना ही उच्च क्यों न हो, मानव के अन्तर्गत की सुकुमार भावनाओं की उपेक्षा उचित नहीं।

राजनीतिक पृष्ठभूमि न होने पर भी प्रस्तुत उपन्यास में दो परस्पर विरोधी विचारधाराओं का स्पष्टीकरण मिलता है। राजीव के क्रांतिकारी जीवन का कर्तृत्व स्पष्ट न होने पर भी वह जैसा है प्रगतिवादी दृष्टिकोण के अनुरूप है। 'वह सामूहिक चेतना का प्रतीक है, जिसे उद्बुद्ध करने और साकार बनाने के लिए व्यक्तित्व को अपने निजी सुख दुःख की आहुति देनी पड़ती है। वह श्रम द्वारा मानव की मुक्ति के लिए प्रयत्नशील है। दूसरी ओर सुनन्दा व्यक्ति को समाज का केन्द्र बिन्दु मानती है। सामूहिक विकास एवं कल्याण के लिए वह व्यक्ति की स्वतन्त्र सत्ता को स्वीकार करती है। वह जीवन को श्रम और विश्राम का केन्द्र-स्थल मानती है।'

राजीव से जागृति का अमोघ सन्देश ले वह उमाप्रसाद जी के घर का परित्याग कर राजीव के साथ रहने आती है। वह राजीव की सहयोगिनी के रूप में कार्य करती है। किन्तु यहाँ भी उसे विश्राम नहीं मिलता। वह नारी स्वतन्त्रता के महत्व पर विचार करती है। राजीव के साथ लखनऊ के निकट शरणार्थी शिविर में 'मुक्ति निकेत' की स्थापना में सक्रिय सहयोग देती है। 'मुक्ति निकेत' ही मुक्तिपथ का प्रतीक है।

किन्तु ढाई वर्षों तक साथ रहने पर भी स्नेह सूत्र सुदृढ नहीं हो पाता और मुक्ति निवेश के जीवन को भ्रम समझ कर सुनन्दा उसे छोड़ मुक्तिपथ की खोज में आगे बढ़ती है। राजीव अपनी भूल को स्वीकार कर सुनन्दा को रोकने का प्रयत्न करता है पर असफल रहता है।

राजीव एक ऐसा स्वस्थ और प्रेरणायुक्त क्रान्तिकारी पात्र है जो राजनीतिक हिन्दी उपन्यास साहित्य में अत्यन्त विरल है। उसकी सक्रियता का आधार जनकल्याण की उत्कट भावना है जिसकी वह साधना करता है। वह सामूहिक श्रम का प्रतिनिधित्व करने वाला आदर्श पात्र है जो अपनी आदर्शवादिता में मोह ममता को भी स्थान नहीं देना चाहता। सुनन्दा से विच्छेद दिखाकर लेखक ने उसके कोरे आदर्शवाद पर आघात किया है। नायक और नायिका मानसिक स्वास्थ्य लाभ करने हुए समाज के विकास हेतु 'सम श्रम साधना' के आधार पर जिस निवेश की स्थापना करते हैं वह सर्वोदय की नीति के सन्निकट है। इसी कारण पात्रों की मनोवृत्ति समाज की बुराइयों की ओर न जाकर उसके विकास में लगती है। सामाजिक उत्कर्ष में नारी-स्वातन्त्र्य को समुचित स्थान देने की भावना भी सम्पूर्ण वातावरण में व्याप्त है।

राजनीतिक घटनाएं

राजीव क्रान्तिकारी रह चुका है अतः स्मृति द्वारा वह अपने क्रान्तिकारी जीवन की घटनाओं का स्मरण करता है। इस प्रसंग में जबलपुर के निकट क्रान्तिकारी राजीव और खुफिया पुलिस के संघर्ष का जो विस्तृत विवरण दिया गया है वह काल्पनिक ही प्रतीत होता है। अवास्तविक घटना होने पर भी क्रान्तिकारी जीवन की कार्यविधि से इसका साम्य है।

युवक राजीव लाला लाजपतराय की मृत्यु से प्रेरणा पाकर क्रान्तिकारी दल का सदस्य बनता है। (और भगतसिंह आदि क्रान्तिकारियों के लिए यह सत्य भी है।) 'उसके सामने एक निश्चित उद्देश्य और आदर्श था। दलित और पददलित देश माता की मर्मविदारक गुहार उसके मन से होकर उसकी अन्तरात्मा तक पहुँच चुकी थी। जबसे उसने सुना कि लाला लाजपतराय की मृत्यु में निरंकुश शासनाधिकारियों का कितना बड़ा हाथ है तब से वह और अधिक विचलित हो उठा।'[१] वह क्रान्तिकारी दल में शामिल हो जबलपुर शस्त्रागार पर धावा मारने की योजना में भाग लेता है। इस प्रसंग पर पुलिस के साथ मुठभेड़ होने पर वह जबलपुर से भाग निकलता है पर एक वर्ष बाद लाहौर में एक नये चक्कर में पकड़ा जाकर काले पानी की सजा पाता है।

---

१. इलाचन्द्र जोशी – 'मुक्तिपथ,' पृष्ठ, २२

लाला लाजपतराय की मृत्यु नवम्बर १९२८ को हुई थी। अतः यदि मान लिया जाय कि राजीव १९२९ में क्रान्तिकारी दल में आया तो जबलपुर शस्त्रागार लूटने की योजना १९२९ या १९३० में होना चाहिए। किन्तु इतिहास में ऐसी कोई घटना का उल्लेख नहीं मिलता। जबलपुर से राजीव को १९३० या १९३१ में लाहौर जाना चाहिये किन्तु १९३१ में लाहौर में भी ऐसी घटना नहीं हुई जिसमें किसी कैदी को आजन्म कारावास का दण्ड मिला हो। अतः दोनों घटनाएँ वास्तविक नहीं हैं और भ्रम उत्पन्न करती हैं। थोड़ी सी सतर्कता से लेखक इस असंगति को बचा सकता था। राजीव जेल से जब छूटकर आता है तब 'उसने युद्ध से ध्वस्त, अभावग्रस्त, सर्वव्यापी नैतिक पतन और भ्रष्टाचारिता के रोग के शिकार मानव जीवन का जो रूप देखा,'[1] वह युद्धजनित स्थिति का परिणाम था। इससे निष्कर्ष निकलता है कि राजीव १९४५ के निकट छूटा और छूटते वक्त उसकी आयु ३४ थी। इस तरह वह २० वर्ष की आयु में क्रान्तिकारी दल में प्रविष्ट हुआ था।

आतंकवादियों के लिए उसके हृदय में उच्च भावना है किन्तु इसके बावजूद भी समय के परिवर्तन के साथ वह यह स्वीकार करता है—मेरा पिछला जीवन झूठी साधना में ही बीता है। देश को अत्याचारी साम्राज्यवादी शक्ति से मुक्त करने का जो तरीका क्रांतिकारियों ने अपनी छिटपुट हिंसात्मक कार्यवाइयों द्वारा अपनाया था उसकी कोई उपयोगिता न तो व्यावहारिकता की दृष्टि से थी न आदर्श की दृष्टि से ही। आज देश जो स्वतन्त्र हुआ है यदि वह सचमुच में स्वतन्त्र हुआ है तो वह हमारे दल की क्रान्तिकारी कार्यवाइयों के फलस्वरूप नहीं, बल्कि दूसरे ही कारणों से। उन 'दूसरे' कारणों में एक तो निश्चय ही गांधी जी द्वारा जगाई गई व्यापक और संगठित राष्ट्रीय चेतना थी।'[2]

किन्तु वह यह भी मानता है कि तब तक इन हिंसात्मक कार्यवाइयों का अन्त नहीं होगा 'जब तक आज के संसार की अत्यन्त संकीर्ण रूप से भौतिक और भ्रष्टाचारी मनोवृत्ति में परिवर्तन नहीं होता, जब तक विश्व-समाज का कोई वर्ग अधिकाधिक अर्थ संचय के निरर्थक प्रलोभन के दलदल में स्वयं फँसते चले जाने और अपने साथ दूसरों को भी उस कभी अन्त न होने वाले दलदल में घसीटते रहने के चक्कर में पड़ा रहेगा', जब तक सम्मिलित राजनीतिक और आर्थिक कारणों की चक्की में जन साधारण को पिसते रहने के लिए बाध्य किया जायगा' और उसकी व्यापक मुक्ति के, सभी वर्गों के साथ उन्हें समान स्तर पर लाने के प्रयत्नों में रुकावटें आती रहेंगी, जब तक राष्ट्र अपने संकीर्ण स्वार्थों के लिए दूसरे राष्ट्रों को धपनराजी के चक्कर में डालने और धोखा देने

---

१ इलाचन्द्र जोशी — 'मुक्तिपथ,' पृष्ठ १०८

२. इलाचन्द्र जोशी—'मुक्तिपथ,' पृष्ठ ११०

मे ही राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय 'आदर्श' की महान पूर्ति समझेगा, तब तक ससार मे सामूहिक हिंसा के सगठित प्रयत्नो का अत हो जाना सभव नही है।'[1]

सर्वोदय समन्वित सामूहिक सम-श्रम भावना

मनुष्य की मुक्ति का पथ वह सम-श्रम भावना मे देखता है और प्रयोगात्मक रूप से 'मुक्ति निवेश' की स्थापना करता है। उसका मत है कि 'मानवीय विकास का स्वाभाविक रूप है सबकी समचेतना सबके सम-योग, सबके सम-उद्योग, सबके सम अधिकार और सबकी समशक्तियो के सम सामूहिक विकास द्वारा सम-कल्याण की चरमतम परिस्थिति की ओर सबको सम प्रगति।'[2]

यह उस सगठित श्रम-शक्ति से सभव है जो निर्माणात्मक ध्येय को लेकर चले।[3] इसके लिए वह अहिंसा को अनिवार्य मानता है। वह कहता है–'महात्मा गाँधी अहिंसात्मक असहयोग का जो अस्त्र हम दे गये हैं उसको व्यापक और विकसित रूप देने की आवश्यकता है।'

श्रम की महत्ता राजीव और सुनन्दा दोनो स्वीकार करते है। परन्तु सुनन्दा पार्थिव जीवन के साथ भाव-जीवन के विकास को आवश्यक निरूपित करती है। सुनन्दा को सामूहिक सम श्रम के आदर्श पर पूर्ण विश्वास तथा आतरिक श्रद्धा है। पर व्यक्ति का पूर्णतया समूह मे खप जाना उसे स्वीकार नही। इसीलिए वह राजीव से कहती है कि 'आप यदि कोई विश्व-योजना चाहते हैं जो सम-श्रम द्वारा सच्चे अर्थो मे सम कल्याण और स्थायी शाति की स्थापना मे सफल हो तो बाहर के पार्थिव जीवन के विकास के साथ भीतर के भाव-जीवन के विकास की ओर भी उतना ही सचेष्ट रहे।'[4] आप श्रम, केवल श्रम, और उसके द्वारा मुक्ति, केवल मुक्ति चाहते हैं। मैं जीवन मे श्रम भी चाहती हू और विश्राम भी, मुक्ति भी चाहती हू और बन्धन भी।'[5] इसीलिए सुनन्दा ने राजीव का साथ भी दिया था।

अन्य राजनीतिक वातावरण

उपन्यास मे एक अन्य पात्र है विजय जिसके चारित्रिक विकास को दिखाने के

---

१ इलाचन्द्र जोशी–'मुक्तिपथ,' पृष्ठ १११
२ इलाचन्द्र जोशी–'मुक्तिपथ' पृष्ठ २७६
३. इलाचन्द्र जोशी–'मुक्तिपथ' पृष्ठ २७८
४ इलाचन्द्र जोशी–'मुक्तिपथ' पृष्ठ ३२२
५ इलाचन्द्र जोशी–'मुक्तिपथ' पृष्ठ ३२३

प्रसग मे तात्कालिक राजनीतिक स्थितियों को स्पष्ट किया गया है। विजय 'स्वार्थी' के प्रति क्षिप्र, राजनीतिक एव अवसरवादी आधुनिक मनुष्य का प्रतिनिधि है।'[1] स्वतन्त्र भारत मे वह सेक्रेटेरियट में डिप्टी सेक्रेटरी है। सन् '३० के असहयोग आन्दोलन मे वह १४४ धारा तोडने के अपराध मे जब जेल गया तो सोलह-सत्रह वर्ष का था। वह कोई क्रांतिकारी कदम नही उठाता और भाड लेता है कि 'जेल जाने को गांधी जी ने राष्ट्रीय असन्तोष की भावना को व्यक्त करने का केवल एक प्रतीक माना था। हम लोग केवल उसी प्रतीक का प्रदर्शन कर रहे थे।'[2] सन् ३० मे विजय कालेज छोड कर सहज साध्य द्वार से जेल गया। एक माह की सजा भी वह 'बी क्लास' मे काट सार्टीफिकेट प्राप्त करता कांग्रेसी हो गया। तब से वह राजनीतिक चक्रो मे अपने विशेष ढग से भाग लेता रहा। आन्दोलन के शात होने पर वह पुन विद्याध्ययन कर अर्थशास्त्र मे डाक्टरेट लेता है और सन् ३७ मे कांग्रेस सरकार की स्थापना पर ऊँचे सरकारी पद पर नियुक्त हो जाता है। मन्त्रिमडल भग होने पर वह पुन बेकार हो गया किन्तु शासकीय पद पर रहते हुए उसने अच्छी रकम पैदा कर ली थी और उसे ऐसे व्यवसाय मे लगा दिया था जिसमे घाटा की सभावना ही न थी। बयालीस की क्रांति मे वह धर्मसकट मे पड गया। सरकार के कठोर दमन-चक्र को देख कर वह सेवा का नया रास्ता निकालता है—नजरबन्द क्रांतिकारियो के परिवार के सदस्यो की सहायता हेतु चन्दा करना। इसमे वह पकडा जाता है और 'ए क्लास' मे आलस्यमय जीवन व्यतीत करता है। दो माह मे ही वह छूट जाता है—एक ढग से माफी सी माग कर। युद्ध-समाप्ति पर कांग्रेसी नेताओ के छूटने पर पुन सामने आकर कांग्रेसी प्रचार मे जुट जाता है और स्वाधीन भारत मे उच्च स्थान प्राप्त कर लेता है।

इस तरह विजय के माध्यम से उन कांग्रेसी लोगों की मनोवृत्ति और कार्यविधि पर प्रकाश डाला गया है जो राजनीति को 'लक्ष्य की सिद्धि का साधन' मानते है।

विजय के चरित्र-चित्रण के विकास के सन्दर्भ मे सन् ३० के सत्याग्रह आन्दोलन का विवरण सक्षेप मे दिया गया है।[3]

उपन्यास मे स्वाधीन भारत मे बेकारी की समस्या और अग्रेज भक्त व्यक्तियो की स्थिति का भी पता चलता है। राजीव की मूल समस्या प्रारम्भ मे बेकारी की है। देशभक्त राजीव को कोई काम नही मिलता। दूसरे क्रांतिकारी बनर्जी को भी हम दयनीय स्थिति मे काम करते हुए पाते हैं। इसके विपरीत है उमाप्रसाद जो 'जो अग्रेजी

१　बलभद्र तिवारी—'इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास,' पृष्ठ १३८

२　इलाचन्द्र जोशी—'मुक्तिपथ,' पृष्ठ ७३

३.　इलाचन्द्र जोशी—'मुक्तिपथ,' पृष्ठ ८१

शासन-काल में एक उच्च अधिकारी रह चुके थे, और अब कांग्रेसी राज स्थापित होने पर भी अपने उसी उच्च बल्कि उच्चतर पद पर कायम थे।[1]

जिप्सी

इलाचन्द्र जोशी के 'जिप्सी' में समाज-कल्याण की भावना को लेकर जो राजनीतिक दृष्टिकोण उभरा है वह मार्क्सवाद और सर्वोदय का समन्वित रूप कहा जा सकता है। उपन्यास के पात्र क्रांति और नीति की भावना से संचालित हैं और सांस्कृतिक चेतना के महत्व को प्रस्थापित करते हैं।

'जिप्सी' में एक राजनीतिक कथा सूत्र का अभाव है। वस्तुतः इसमें तीन कथाएँ हैं और उन नायक के द्वारा उनमें एकसूत्रता लाने का प्रयास किया गया है। इसमें शोभना और धीरेन्द्र की कथा में राजनीतिक अंश है। यह कथा पक्ष कलकत्ता से सम्बद्ध है। जिप्सी पत्नी मनिया के गर्भवती होने पर नायक नृपेन्द्र रंजन उसे लेकर कलकत्ता पहुँचता है और वहाँ उसकी भेंट बाल्यसखा धीरेन्द्र से होती है। धीरेन्द्र और नृपेन्द्र कालेज में भी साथ साथ पढ़े हुए हैं। नृपेन्द्र को धीरेन्द्र घर ले जाता है और वह मनिया के साथ वहीं रहने लगता है। धीरेन्द्र एक राजनीतिक पात्र है और क्रांतिकारी दल और उसके कार्यों से सक्रिय रूप से सम्बद्ध है। वह पार्टी के कार्यों से कई दिनों तक घर के बाहर रहता है और नृपेन्द्र का उसकी पत्नी शोभना से सम्पर्क होता है। एक घटना में मनिया का चेहरा विकृत हो जाता है और वह एक बच्चे को जन्म देती है जिसका नाम मोहन रखा जाता है। मोहन की मृत्यु आठ महीने की अल्पायु में हो जाती है और मनिया धीरेन्द्र के क्रांतिकारी दल की सदस्या हो जाती है। शोभना और नृपेन्द्र हुगली में वायु-परिवर्तन को जाते हैं और शशांक बाबू से परिचित हो उनके सेवादल में शामिल हो जाते हैं। नृपेन्द्र सेवादल की मणिमाला अथवा मंजुला के प्रति आकर्षित होता है और सेवादल के कार्य समाप्त होने पर रोक लेता है। मंजुला के कहने पर वह सम्पत्ति का एक हिस्सा कन्हाई लाल को देने को प्रस्तुत हो जाता है। कन्हाई भी एक राजनीतिक पात्र है पर उसका चरित्र सक्रिय रूप में नहीं आकर पात्रों के माध्यम से ही चित्रित हुआ है। वह मार्क्सवादी दृष्टिकोण से प्रभावित पात्र है। नृपेन्द्र मंजुला के द्वारा कन्हाई लाल और उसके 'जन संस्कृति समन्वय केन्द्र' के सम्पर्क में आता है और उससे प्रभावित हो अपनी समस्त सम्पत्ति केन्द्र के नाम कर देता है। इसी समय उसे ज्ञात होता है कि मंजुला ही मनिया है जो फादर जेरेमिया के साथ अमरिका जाकर प्लास्टिक सर्जरी से रूप-परिवर्तन करवा आती है।

---

१. इलाचन्द्र जोशी—'मुक्तिपथ,' पृष्ठ १३

स्थूल रूप से हम कह सकते हैं कि नृपेन्द्र रंजन और मनिया की उद्भावना से सम्पत्ति और श्रम के संघर्ष का चित्रण ही उपन्यास का मूल ध्येय है। सम्पत्ति वर्ग-भेद का कारण अवश्य है किन्तु उसका अभाव उसके सन्निकट रहने पर ही होता है। मनिया कहती है—'तुम्हारे पास आने के पहले तक मैं समझती थी कि सुबह-शाम का खाना जुटाने के लिए गरीबों को जो परेशानी उठानी पड़ती है वह कोई दुःख की बात नहीं, बल्कि सुख की ही बात है, और अगर उस परेशानी में आदमी उलझा ही न रहे तो जीना ही दूभर हो जाए। मेरे मन में कोई खटका नहीं था, पैसे वालों से कोई डाह नहीं था। पर तुम्हारे पास आने के बाद ही मुझे पहली बार मालूम हुआ कि आराम क्या चीज है और यह भी मैंने जाना कि इसके पहले दिन मैं कैसे कष्ट में जिता रही थी।'[1] इस भावना के जाग्रत होने पर वह नृपेन्द्ररंजन के प्रति आश्वस्त नहीं हो पाती। कहा जा सकता है कि रंजन के मूल संस्कारों से अपने वर्गगत संस्कारों में विभेद की मानसिक सृष्टि कर मनिया हृदय से उसकी नहीं हो पाती। सामन्तवर्ग के पात्र होने पर भी नृपेन्द्र और वीरेन्द्र मानवतावादी हैं। इनमें वीरेन्द्र का व्यक्तित्व अधिक सबल है। वह जनता में आर्थिक और सांस्कृतिक प्रगति का समर्थक है। उस पर मार्क्सवाद का प्रभाव है, वह क्रांति के लिए क्रांति चाहता है और इसके लिए आत्मबलिदान तक कर देता है। जन्मना सामन्तवादी होने पर भी वह सर्वहारा के कल्याण के लिए जूझता है। मनिया श्रमिक वर्ग की है और धर्म की अन्ध परम्परा से ऊपर उठ कर जन कल्याण को ही अपना धर्म स्वीकार क्रांतिकारी दल की सदस्या हो परिवर्तित रूप में अपने पति नृपेन्द्र से अर्थ-प्राप्ति की सयोजना करती है। कर्मण्यता और जन-कल्याण उसके जीवन का ध्येय है।

संक्षेप में 'जिप्सी' में 'जन संस्कृति समुदाय' की स्थापना पर जोर दिया गया है जो मानव-समता पर आस्था रखता है। इसके लिए विभिन्न मत मतान्तरों की व्याख्या करते हुए सर्वोदय या लोक-कल्याण की भावना पर जोर दिया गया है जो प्रधान मार्क्सवाद से प्रभावित होते हुए भी भारतीय संस्कृति से अलग नहीं है। यह ठीक ही कहा गया है कि 'जोशी का जिप्सी उन उपन्यासों में से है जिन्हें वास्तव में नवीन युग की जागरूक चेतना का प्रतीक कहा जायगा। आज अणुबम की खोज और उसकी विनाशकारी लीला से मानवता त्राहि त्राहि कर उठी है। सारे संसार में भौतिकता का एक ऐसा आतंक छा गया है कि इधर बीसवीं शती में प्रत्येक व्यक्ति में केवल भय का भाव ही प्रमुख है। हर्ष की बात तो यह है कि बीसवीं शती के अधिकतर मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की भाँति चेतना के नाम पर मनोराज्य की एकांत तथा आबद्ध धारा में कराहती हुई नैतिक पतन की विवशतामयी पीड़ा के प्रदर्शन से यह उपन्यास मुक्त है।'[2]

---

१ इलाचन्द्र जोशी—'जिप्सी', पृष्ठ १०६

२ आलोचना, संख्या ११, पृष्ठ ६१

अज्ञेय कृत 'शेखर : एक जीवनी' का राजनीतिक स्वरूप

अज्ञेय का बहुचर्चित उपन्यास 'शेखर : एक जीवनी' अंशत: राजनीतिक उपन्यास है जिसमें एक नयी जीवन-दृष्टि और शैल्पिक गरिमा का सराहनीय समन्वय है। इसमें एक क्रांतिकारी के आत्मानुभूत जीवन तथ्यों का दो भागों में अंकन किया गया है। शेखर उपन्यास का नायक है। उसे मृत्युदण्ड की सजा हो चुकी है और जो मृत्यु की छाया में बैठा हुआ स्मृत्यालोक में अपने विगत जीवन का प्रत्यालोचन करता है। शेखर एक ऐसा क्रांतिकारी है जिसे अपने कृत्यों के लिए मृत्युदण्ड मिला किन्तु इतने पर भी उसका क्रांतिकारी स्वरूप अत्यन्त धूमिल है। प्रथम भाग में तो उसके क्रांतिपरक जीवन के कुछ बिम्ब ही उभर सके हैं और वे भी स्पष्ट नहीं जैसे 'आउट ऑफ फोकस'। प्रारम्भ में वह अपने बाल जीवन की छोटी छोटी घटनाओं का वर्णन करता है और उससे वस्तुओं के वास्तविक स्वरूप को जानने की तीव्र जिज्ञासा का ज्ञान होता है। लेखक ने बाल जीवन की घटनाओं के द्वारा बाल-मनोवृत्ति का अच्छा वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। इसी भाग में शेखर के स्कूली जीवन का रूप भी वर्णित है जिसमें वह अछूतों के प्रति होने वाले अत्याचारों से दुखित हो उनकी सेवा की ओर उन्मुख हो अछूत बच्चों के लिए रात्रि पाठशाला की आयोजना करता है, जहाँ उसकी मानवता के कोमल अंश के दर्शन होते हैं। प्रथम खंड में बाल्यकाल की प्रतिक्रियाएँ शेखर के व्यक्तित्व-निर्माण के बीज रूप में आई हैं। उसके बाल्यकाल की अनुभूति आगे चलकर विद्रोह-वृत्ति में परिणत हो जीवन के विविध धरातलों पर प्रस्फुटित होती है। भय उसके पास नहीं फटकता। वह कहता है—'डर डरने से होता है। संसार की सब भयानक वस्तुएँ हैं, केवल एक घास-फूस से भरा निर्जीव बाम, जिससे डरना मूर्खता है।[1] प्रेम ने मनुष्य को मनुष्य बनाया। भय ने उसे समाज का रूप दिया। अहंकार ने उसे राष्ट्र में संगठित कर दिया।[2]

प्रथम भाग में बाल्य जीवन की जीवन-रेखाओं के कारण राजनीतिक सम्पर्श कम है, किन्तु समसामयिक राजनीति से प्रभावित राष्ट्रीय जीवन की हलकी सी छाप पड़ ही गई है। प्रथम महायुद्धकालीन भारतीय स्थिति[3], पंजाब में दंगा-फसाद और परिणामस्वरूप गोलीकांड,[4] असहयोग आन्दोलन और आंग्ल शासन के अत्याचारों के अस्पष्ट संकेत यत्र-तत्र देखे जा सकते हैं। विदेशी मात्र के प्रति उसकी घृणा प्रबल है।[5]

---

१ अज्ञेय—'शेखर : एक जीवनी', पृष्ठ ५७
२ अज्ञेय—'शेखर : एक जीवनी', पृष्ठ ५८
३ अज्ञेय—'शेखर : एक जीवनी', पृष्ठ ८९
४ अज्ञेय—'शेखर : एक जीवनी', पृष्ठ ९२
५ अज्ञेय—'शेखर : एक जीवनी', पृष्ठ १३०

गाँधी के महान व्यक्तित्व से भी वह आकर्षित होता है। इसी प्रेरणा से वह एक नाटक लिखता है। इसका आरम्भ रहता है—'एक स्वाधीन, लोकतन्त्र भारत का विराट स्वप्न, जिसके राष्ट्रपति गाँधी है, और सिद्धि के लिए साधन है अनवरत कताई और बुनाई, विदेशी माल और मनुष्य का परित्याग और प्रत्येक अवसर पर दूसरा गाल आगे कर देना।' वह बाधाहीन भारत का चित्र देखते हैं।[1] 'गाँधी का बोल बाला ! दुश्मन का हो मुँह काला' जैसे नारे उसे आकर्षित करते हैं। और असहयोग आन्दोलन से प्रेरणा पा वह घर के विदेशी कपड़े में आग लगाने से नहीं चूकता।[2] नौकरशाही का दंभ उसे मर्माहत करता है और अंग्रेज बैरिस्टर की असम्यता के विरोध में वह आत्मगौरव मानता है।[3]

जीवन की सक्रिय अवस्था में शेखर कांग्रेस और क्रांतिकारी दोनों आन्दोलनों में भाग लेता है। उसमें युग की अनेक स्थितियों यथा जातिगत वैषम्य, हिंसा-अहिंसा, स्त्रियों की समाजगत स्थिति तथा अन्य सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों का सांकेतिक निरूपण अवश्य है पर वे जीवन्त नहीं हैं। सदाशिव और राघवन के साथ वह हिंसा अहिंसा पर विचार करता है। उसके मन में 'हिंसा वहाँ है जहाँ प्रेरणा हिंसा की है, जहाँ अनिष्ट करने की चेष्टा है। इष्ट के लिए की हुई हत्या हिंसा नहीं, बशर्ते कि वह दुष्ट व्यक्ति का नहीं, सृष्टि मात्र का है।'[4] इसीलिए गोराशाही का विरोध करने की दृष्टि से वह एक अंग्रेज सहपाठी को पीट देता है।[5]

'शेखर : एक जीवनी' के दूसरे भाग में अधिक व्यापकता है और इसीलिए तीव्रता भी प्रथम भाग से कम है। शेखर अब एम० ए० का छात्र है और राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन (सम्भवत १९३० में लाहौर अधिवेशन) में स्वयं सेवक के रूप में भाग लेता है। शिविर का जो विवरण उसने दिया है वह कांग्रेस संगठन के नेताओं के चरित्र और उनकी विचारधारा पर अच्छा प्रकाश डालता है। सी० आई० डी० इन्स्पेक्टर की गतिविधियाँ जब असह्य हो उठती हैं तो स्वयंसेवक उसे पीट देते हैं। यह मामला जब नेताओं के सामने आता है तो एक नेता कहते हैं—'दो आदमियों को ऐसे बेइज्जत करना और पीड़ा पहुँचाना हिंसा है। हमारी वालण्टियर सेना अहिंसक है।' प्रत्येक क्षेत्र के प्रत्येक कार्य में कांग्रेस समझौतावादी दृष्टिकोण से संचालित है। सेनापति का कथन

---

१ अज्ञेय—'शेखर : एक जीवनी', (प्रथम भाग), पृष्ठ १२२
२ अज्ञेय—'शेखर : एक जीवनी', (प्रथम भाग), पृष्ठ १२१
३ अज्ञेय—'शेखर : एक जीवनी', (प्रथम भाग), पृष्ठ १३०
४ अज्ञेय—'शेखर : एक जीवनी', (प्रथम भाग), पृष्ठ २१८
५ अज्ञेय—'शेखर : एक जीवनी', (प्रथम भाग), पृष्ठ २२२-२२३

है जिसे तरह तिलमिलाकर बरतना है। किसी को नाराज करने का क्या फायदा मतलब हो तो करना है ? शेखर को नेताओं की यह मनोवृत्ति छिछली लगती है। उसके शब्दों में "यदि ऐसे भी नेता होंगे तो और नेता पाकर हम क्या करेंगे ? रोज सुनने में आता है कि नेता नहीं है नेता नहीं हैं ऐसे नेताओं के बोझ से तो समाज कुचल हो जायेगा, उठेगा कैसे जो ऊपर से लादा जायेगा वह भार ही होगा, भार वाहक कैसे होगा ?[२]

तथाकथित नेताओं पर उसे ग्लानि होती है और जननायक की आवश्यकता और उसके अभाव का अनुभव होता है। वह कहता है—'मुक्ति स्वराज्य, स्वतन्त्रता - कितने सुन्दर शब्द! किन्तु कहाँ है इनके पनपने के लिए उर्वरा और खाद युक्त मिट्टी—जनता, कहाँ है वह मिट्टी में हो रासायनिक क्रियाओं से बनी हुई खाद—जनता का अपना जननायक।[३]

उसे ऐसे नेताओं के नेतृत्व से घृणा हो जाती है। सी० आई० डी० के साथ हुई मारपीट में दोषी पाँच अन्य स्वयंसेवकों के साथ बन्दी कर लिया जाता है। बन्दी के रूप में वह नारकीय जेल-जीवन को निकट से देखता है। जेल ने उसके सामने एक नई दुनिया ही खोल दी। उसका साथी है विद्याभूषण जो कहता है [illegible] हमें देश के आत्माभिमान की रक्षा के लिए एक ऐसा संगठन बनाना चाहिए जो सरकारी अफसरों और शासकों का दिमाग दुरुस्त रखे।[४] वह मानता है आत्महिंसा सबसे बड़ी हिंसा है, क्योंकि वह राष्ट्रीय अभिमान की राष्ट्र की रीढ़ तोड़ डालती है।' आदर्शों की रक्षा के लिए वह रोष को उचित मानता है। शेखर इस तथ्य से परिचित होता है कि 'अभिमान या अहंकार एक सामाजिक कर्तव्य भी हो सकता है।

जेल जीवन में वह विद्याभूषण और मदनसिंह सम्पर्क में आता है और हिंसा अहिंसा की नई व्याख्याओं से परिचित होता है। हिंसा [illegible] अहिंसा के ऊपर जो विचार विमर्श इन पात्रों के बीच होता है वह तद्युगीन राजनीतिक वातावरण और विचार धाराओं का प्रतिफलन है। शेखर के मत से हिंसा से कुछ नहीं हो सकता है। वह नकारात्मक है। वह निरा संहार है उसमें सृजन नहीं हो सकता। विद्याभूषण के अनुसार हिंसात्मक कार्य नश्वर के समान होने पर भी नगण्य ही नहीं, अपराध ही नहीं, पर अनिवार्य तो है [illegible] ? समाज के लिए की गई हिंसा के बाद भी सामाजिक नीति-सा

---

१ अज्ञेय-शेखर एक जीवनी, (द्वितीय भाग) पृष्ठ ३८
२ अज्ञेय-शेखर एक जीवनी (द्वितीय भाग), पृष्ठ ४८
३ अज्ञेय-शेखर एक जीवनी, (द्वितीय भाग), पृष्ठ ४८
४ अज्ञेय-शेखर एक जीवनी, (द्वितीय भाग), पृष्ठ ४३

होती है—चाहो तो मुख्य चीज उसी को समझ लो। उससे पहली आवश्यकता नहीं मिट जाती।[1] मदनसिंह कहता है—'अहिंसा क्या है? यह तो स्पष्ट है कि निष्क्रियता वह नहीं है। निष्क्रियता, कायरता, सबसे भीषण और घृणित प्रकार की हिंसा है। तब अहिंसा क्या है? अगर आत्मपीडन, आत्मबलिदान अहिंसा है तब हम इस परिणाम पर पहुँचते है कि 'अहिंसात्मक रक्तपात भी हो सकता है। इस बात को मान लेने पर फिर यह क्यों कहा जाय कि सब रक्तपात हिंसा है?'[2]

जेल मे ही शेखर मोहसिन से मिलता है जो बगावत फैलाने के जुर्म में एक साल की सजा पाकर आया है और पाँच माह काट चुका है। मोहसिन निर्भीक और दबंग है और इन्हीं गुणों के कारण यन्त्रणाएँ और सजाएँ पाता रहता है। इतना होने पर भी वह प्रसन्न रहता है। मोहसिन को दी जाने वाली यन्त्रणाएँ अंग्रेजी शासन के काले कारनामों की कहानी है किन्तु मोहसिन के क्रांतिकारी स्वरूप का प्रश्न भी लेखक ने उसी दृढ़ता से किया है।

जेल में शेखर बाबा मदनसिंह से क्रांतिपरक राष्ट्रीय घटनाओं की जानकारी पाता है। बाबा मदनसिंह उसे चटगाँव हत्याकांड 'की घटना का अस्पष्ट विवरण बताते है।[3]

जेल में दस महीने काट चुकने पर शेखर के मुकदमे का फैसला होता है और वह छूट जाता है। जेल से निकलने पर वह साहित्य-सर्जन करना चाहता है। शशि के द्वारा शेखर के साहित्य-सेवा के उद्देश्य से हम परिचित होते हैं। वह कहती है कि 'तो तुम्हारा लिखना एक उद्देश्य के लिए होगा—विनाश के लिए और पुनर्निर्माण के लिए। लेकिन शेखर, ऐसा लिखा हुआ सब अच्छा नहीं होता, सब साहित्य नहीं होता। वही साहित्य का मोह करोगे कि उद्देश्य का?'[4] और शेखर की मान्यता है कि 'क्रांति का सगठित पक्ष है तो एक महत्तर व्यक्ति पक्ष भी है। बिना सगठन के भी—बिना सगठन के ही—व्यक्ति अकेला भी बहुमुखी क्रांति के बीज बो सकता है और शायद जो अपनी अभिव्यक्ति के लिए साहित्य का मार्ग चुनता है, वह तो कर ही सकता है, क्योंकि वह पहले व्यक्ति है, पीछे किसी सगठन का सदस्य। उसका तो विशेष धर्म है बहुमुखी क्रांति के लिए भूमि जोतना और बोना, क्रांति बीज की सिंचाई और निराई करना।'[5]

---

१. अज्ञेय—'शेखर एक जीवनी,' (द्वितीय भाग) पृष्ठ ५७
२ अज्ञेय—'शेखर एक जीवनी,' (द्वितीय भाग) पृष्ठ ७४
३ अज्ञेय—शेखर एक जीवनी,' पृष्ठ ९५
४ अज्ञेय—'शेखर : एक जीवनी,' पृष्ठ ११४
५ अज्ञेय—'शेखर : एक जीवनी,' पृष्ठ ११६

वस्तुत शेखर एक जीवनी के इसी सिद्धान्त पर आधारित कृति होने के कारण राज नीति को उसमें वांछित स्थान प्राप्त नहीं हो सका है। हमारा समाज के प्रकाशन क सिलसिले म शेखर रामकृष्ण स परिचित क्रान्तिकारी दल से सम्बद्ध हो जाता है और तब क्रांतिकारियों की राजनीति का संक्षिप्त परिचय देने का संयोग निकल आता है।

दल के सम्पर्क म आकर शेखर ने पाया कि वह एक नये जीवन म प्रवेश कर रहा है।

दिनोंदिन शेखर गुप्त आन्दोलन के फैले हुए जाल म अधिकाधिक उलझता गया। वह दल की गतिविधियों से—उसके कार्यक्रमों से परिचित होता है। शशि भी उसके साथ भाग लेने लगी। उन दिनों (शायद १९३१ म) असहयोग आन्दोलन की तात्कालिक लहर उत्कर्ष पर थी और गुप्त दलों के लोग भी सब तरह की सभाओं म भाग लेने लग थ कि उनके सहारे अपने प्रभाव का वृत्त और अपने सहायकों की संख्या बढ़ा सकें।

दल के निर्देश पर शेखर दिल्ली चला जाता है और क्रांतिकारियों के जीवन पर उपन्यास लिखता है जिसमें कला गौण थी और विचारों का प्रचार उद्देश्य था। वह जीवन यापन और दूसरों की दृष्टि से स्वयं को बचाने की दृष्टि से पेंटर का कार्य प्रारम्भ करता है। यहां युक्तप्रान्त के क्रांतिकारी दादा से परिचय होता है जो सुरक्षा त्मक दृष्टि से दो चार दिन के लिए उसके पास रहते हैं। दादा और शेखर यमुना के पार रिवाल्वर व गोलियों को टेस्ट करते हैं। पुलिस के सक्रिय होने पर दादा चले जाते हैं इसी बीच शशि की मृत्यु हो जाती है। शेखर अकेला रह जाता है और फिर एक दिन दादा का पत्र पा लाहौर रवाना हो जाता है—कालापानी की सजा पाये हुए दल के साथियों को छुड़ाने म सहयोग देने के उद्देश्य म।

इस तरह शेखर क दूसरे भाग म युवक शेखर के कालेज-जीवन जेल-जीवन और शेखर शशि जीवन वर्णित है। कालेज जीवन की स्मृतियां सीमित हैं पर जेल-जीवन के विस्तार म जेल क समूचे वातावरण को सजीव रूप मिला है। जेल की यातना ने उसे अन्तर्दृष्टि दी।

राजनीतिक दृष्टि स शेखर एक जीवनी की यही कहानी है जिसम राजनीति आंशिक रूप से ही चित्रित हो सकी है। वस्तुत इसम कार्य-कारणसम्बद्ध पूर्व नियोजित कोई व्यवस्थित कथानक नहीं है। प्रथम खंड तो विशृंखल है दूसरे म कथा को अवश्य कुछ व्यवस्थित रूप मिला है। जीवन के प्रत्यवलोकन के लिए स्मृत्यालोक या पूर्व दीप्ति पद्धति की टेकनीक अपनाने से राजनीतिक जीवन की स्मृतियाँ अंश रूप म ही आ सकी हैं किन्तु बदलते हुए मानव-मूल्यों को कलात्मक अभिव्यंजना मिली है। इस प्रकार शेखर की कहानी (जीवनी) एक से प्रकार-व्यक्तित्व के विद्रोह की कहानी है जिसम तर्क और बुद्धि समन्वित जीवन की व्याख्या की गई है। इतना होने पर भी शेखर एक व्यक्तिवादी पात्र

है और समाज-व्यवस्था के प्रति उदासीन उसका अहं ही मुख्य है। वह शिक्षित मध्यवर्ग का प्रतीक है जो सामाजिक संघर्ष से ग्रस्त है। शेखर के अन्य सभी पात्र भी स्पष्ट रूप से नहीं उभर सके हैं क्योंकि वे उसके स्मृति-पट पर छायाचित्रों के रूप में ही आये हैं। सभी मुख्य पात्र व्यक्ति हैं, किसी वर्ग के प्रतिनिधि नहीं। कांग्रेस शिविर के स्वयंसेवक, जेल-जीवन के सम्पर्क में आये बाबा मदनसिंह, विद्याभूषण, मोहसिन और क्रान्तिकारी दल के सदस्यों आदि का उतना ही परिचय मिलता है जितना शेखर के जीवन को परिवर्तित करने के लिए आवश्यक था। पात्रों के चरित्रोद्घाटन के लिए उद्धरण शैली अपनाये जाने के कारण पात्रों का समुचित विकास सम्भव नहीं हो सका है।

एक महत्वपूर्ण क्रान्तिकारी होने पर भी शेखर का बाह्य स्वरूप भली-भाँति व्यक्त नहीं हो सका है। इसका एकमात्र कारण यही है कि उसके चरित्र की आधारभूत भावना उसका अतृप्त अहं-जन्य विद्रोह है। वह शक्ति का प्रतीक है इसीलिए क्रान्तिकारी है और क्रान्तिकारी है इसीलिए संघर्ष और पलायन की वृत्तियों से सचालित है। उपन्यासकार का शेखर के व्यक्ति-मानस के आन्तरिक संघर्ष का चित्रण ही अभीष्ट है, इसीलिए संघर्ष को जीवन की सामान्य गतिविधि से परे रखा गया है। 'शेखर : एक जीवनी' अपूर्ण है और उसके तीसरे भाग में शेखर की क्रान्तिकारी गतिविधियों के उद्घाटन की अनेक सम्भावनाएँ हैं।

आलोच्य उपन्यासों में तो शेखर के चरित्र का विकास मूलतः मनोवैज्ञानिक आधार पर हुआ है। मनुष्य जन्म से स्वतन्त्र होता है, उसकी प्रवृत्तियाँ स्वतन्त्र होती हैं—रूसो का यह जीवन-दर्शन पूँजीवादी संस्कृति का जीवन-दर्शन है। इस भ्रममूलक विश्वास के कारण ही शेखर का सामाजिक स्वरूप अस्पष्ट रह गया है। त्रिभुवनसिंह का यह कथन सत्य है कि 'शेखर की लम्बी जीवन-यात्रा में जो अनेक सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक चित्र आए हैं, वे लेखक को इसलिए लाने पड़े हैं कि उन्हीं चित्रों के बीच उसे शेखर के जीवन का विकास दिखलाना है। स्वतन्त्र रूप से तत्कालीन समसामयिक सामाजिक चित्रों को उतारना कभी भी इस उपन्यास लेखक को इष्ट नहीं।'[1] उपन्यास में पाश्चात्य विचारधाराओं और शैलियों की शैल्पिक गरिमा में राजनीतिक स्वरूप उभर नहीं सका है। व्यक्तिमन के ऊहापोह के चित्रण के कारण नई जीवन-दृष्टि तथा शिल्प प्रयोग से युक्त 'शेखर : एक जीवनी' प्रथम राजनीतिक उपन्यास की कोटि का बन कर रह गया है। यद्यपि 'विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों, छोटी बड़ी घटनाओं, दैनंदिन जीवन-व्यापारों के द्वारा आन्दोलित व्यक्तिमन को विभिन्न दिशावर्तिनी

---

1. त्रिभुवन सिंह—'हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद', पृष्ठ २२७

विचार उर्मियों के सूक्ष्मतम स्पन्दनों की कलात्मक अभिव्यंजना की यह बड़ी ही सजग सतर्क योजना है।[1]

'शेखर : एक जीवनी' में वर्णित राजनीतिक प्रसंग

'शेखर : एक जीवनी' स्रष्टा के इस जीवन-दर्शन पर आधारित कृति है कि मनुष्य जन्म से ही स्वतन्त्र होता है और उसकी मूल प्रवृत्तियाँ भी स्वतन्त्र होती हैं। वह बाह्य परिस्थितियों के प्रभाव को जीवन-परिवर्तन का कारण नहीं मानता। शेखर कहता है 'मैंने अनेक ऐसे व्यक्ति देखे हैं, जो कहते हैं और समझते हैं, कि किसी विशेष मानसिक प्रतिक्रिया ने उन्हें क्रांतिकारी बना दिया जैसे तिलक की अन्त्येष्टि ने या मार्शल ला के दृश्यों ने या जलियाँवाला ने मूल हड़ताल ने। वे मूढ़ बोलते हैं। या तो उन्होंने गहरी आत्म विवेचना नहीं की जिससे बाह्य कारणों के पीछे अपनी सच्ची विद्रोहेच्छा को देखें या फिर उनमें इच्छा है ही नहीं और वे विद्रोही ही नहीं हैं।'[2] वह आर्थिक कारणों को भी विद्रोह का आवश्यक उपादान नहीं मानता।[3]

वह क्रान्तिकारी जीवन के लिए जिन गुणों की आवश्यकता स्वीकार करता है वे हैं क्रान्ति की अन्तःशक्ति, व्यापक प्रेम और घृणा की क्षमता। उसके शब्दों में क्रांतिकारी के लिए क्रान्ति की अन्तःशक्ति के बाद सबसे महत्वपूर्ण वस्तु है क्रांतिकारिता की विद्रोह भावना के प्रति एक पूज्य भाव।[4] क्रांतिकारी की बनावट में एक विराट व्यापक प्रेम की सामर्थ्य तो आवश्यक है ही साथ ही उसमें एक और वस्तु नितान्त आवश्यक, अनिवार्य है—घृणा की क्षमता, एक कभी न मरने वाली, जला डालने वाली, घोरमारक, किन्तु मन होते हुए भी एक तटस्थ, सात्त्विक घृणा की क्षमता।[5]

इसी जीवन-दर्शन को आत्मसात कर के शेखर का यह उसका आत्मविश्वास बनता है।

फिर भी कांग्रेस और आतंकवादियों से सम्बन्धित विचारधाराओं और उनकी गतिविधियों से परिचित होने का अवसर यत्र-तत्र प्राप्त हो जाता है।

कालावधि निर्धारण

आतंकवादी क्रांतिकारी की जीवनी होने पर भी लेखक ने उसके काल का स्पष्ट

---

१ शिवनारायण श्रीवास्तव—'हिन्दी उपन्यास', पृष्ठ ३१०
२ अज्ञेय—'शेखर : एक जीवनी', (प्रथम भाग) पृष्ठ ३४
३ अज्ञेय—'शेखर : एक जीवनी', (प्रथम भाग), पृष्ठ ३६
४ अज्ञेय—'शेखर : एक जीवनी', (प्रथम भाग), पृष्ठ ३४
५ अज्ञेय—'शेखर : एक जीवनी', (प्रथम भाग), पृष्ठ ३५

उल्लेख कहीं नहीं किया है। अस्पष्ट संकेतों के आधार पर शेखर की जीवनी में वर्णित समयावधि सन् १९१० से १९३३ के बीच की मानी जा सकती है। ये अस्पष्ट संकेत शेखर की स्मृतियों के रूप में बिखरे हुए हैं और कालक्रमानुसार इस प्रकार हैं—

(१) बाल्यकाल की स्मृति के रूप में महायुद्ध का संकेत[1]—यहाँ महायुद्ध से लेखक का तात्पर्य प्रथम विश्व युद्ध से है जो १९१४ में हुआ था।

(२) पंजाब में दंगा-फसाद और गोलीकांड का संकेत[2]—यहाँ लेखक का संकेत जलियान वाला बाग हत्याकांड से है जो १९१९ में हुआ था।

(३) प्रथम असहयोग आन्दोलन की स्मृतियाँ[3]—यह असहयोग आन्दोलन सन् १९२१ में गांधी जी के नेतृत्व में हुआ था।

(४) लाहौर में कांग्रेस अधिवेशन में शेखर का स्वयंसेवक के रूप में भाग लेना और जेल जाना—लाहौर का कांग्रेस अधिवेशन १९३० में हुआ था।

(५) जेल में शेखर का मानववादी मोहसिन से परिचय और मोहसिन का बिस्मिल के शेर का गुनगुनाना—बिस्मिल को दिसम्बर १९२७ में फांसी हुई थी और यह गजल उन्होंने जेल में ही लिखी थी।[4]

(६) जेल में बाबा मदनसिंह द्वारा चटगाँव कांड की सूचना देना—चटगाँव शस्त्रागार कांड अप्रैल १९३० को हुआ था।

(७) असहयोग आन्दोलन की तात्कालिक लहर का उत्कर्ष पर होना और क्रांतिकारियों का उसमें सहयोग देकर अपने प्रभाव का वृत्त बढ़ना[5]—यहाँ १९३०-३१ के आन्दोलन का संकेत मिलता है।

इस दृष्टि से शेखर का घटनाकाल १९१० से १९३४ के मध्य का माना जा सकता है।

विचारधाराएँ

उपर्युक्त कालावधि में दो राजनीतिक विचारधाराएँ—गांधीवाद और समाजवाद प्रमुख थीं और दोनों का विवेचन उपन्यास में मिलता है, भले ही वह संकेतात्मक ही क्यों न हो। हिंसा-अहिंसा पर उपन्यास में अनेक पात्रों द्वारा विस्तार से विचार किया गया है। गांधी युग में यह स्वाभाविक है कि उपन्यास के पात्र हिंसा अहिंसा पर विस्तार

१ अज्ञेय—'शेखर : एक जीवनी,' पृष्ठ ८६
२ अज्ञेय—'शेखर : एक जीवनी,' पृष्ठ९२
३ अज्ञेय—'शेखर : एक जीवनी,' पृष्ठ१२१-२२
४ मन्मथनाथ गुप्त—'भारतीय क्रांतिकारी आन्दोलन का इतिहास,' पृष्ठ २४८
५ अज्ञेय—'शेखर : एक जीवनी,' पृष्ठ २०७

पर विचार करें। शेखर, शशि, बाबा मदनसिंह, शेखर के पिता, सभी पात्र इस विषय पर अपने-अपने विचार रखते हैं। शेखर के चारों ओर के वातावरण से जान पड़ता है कि हिंसा और अहिंसा के बीच रेखा खींचना सहज नहीं है[1]।

क्रांतिकारी और नारी

जैनेन्द्र के क्रांतिकारी पात्रों के समान शेखर भी नारी आकर्षण से भ्रमित है। उसके जीवन में भी अनेक स्त्रियाँ आती हैं पर अहं से संचालित विवेक-बुद्धि के कारण यौन प्रवृत्ति पर वह काबू रखता है। शेखर का विकास जिस रूप में किया गया है वह उसे सार्वजनिक दलीय क्रांति से परे रखता है। वस्तुतः अज्ञेय ने राजनीतिक दृष्टि से आतंकवादी और जीवन में व्यक्तिवादी शेखर की जीवनी के बिखरे हुए सूत्र को एकत्र करने के प्रयास में उसके व्यक्तित्व को एक नया स्वरूप ही दे दिया है।

इस संदर्भ में आचार्य वाजपेयी का मूल्यांकन सही प्रतीत होता है कि—'जीवनी की मूलभूत प्रेरणा क्रांतिकारी या विद्रोहात्मक है। क्रांति और विद्रोह किसके प्रति? जीवनी में क्रांति और विद्रोह स्वयं अपना लक्ष्य है। यह एक मनोवृत्ति ही नहीं एक स्वतंत्र जीवन-दर्शन है। विद्रोह किसी वस्तु या स्थिति के प्रति नहीं सम्पूर्ण वस्तुओं और सारी स्थितियों के प्रति। सृष्टि के प्रति, क्योंकि वह अधूरी और अपूर्ण है समाज के प्रति, क्योंकि वह संकीर्ण है और विकास का विघातक है। सभी संस्थाओं के प्रति, समस्त रीतियों के प्रति जीवन-मात्र के प्रति विद्रोह क्रांतिकारी की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। विद्रोह के पश्चात्? कुछ नहीं क्योंकि निर्माण भी विद्रोह ही है विद्रोह में ही निर्माण है। इसीलिए शेखर के विद्रोही व्यक्तित्व के प्रति लेखक को इतनी निष्ठा है। प्रकृति की अपूर्णता के विरुद्ध संघर्ष तथा समाज के बन्धनों के विरुद्ध संघर्ष—शेखर की क्रांतिकारी जीवनी की यही धारा है। इस विद्रोह का परिणाम अति भयानक है जो शेखर के चरित्र को अत्यधिक आसक्तिपूर्ण, व्यक्तिवादी और यातनामय ही नहीं बनाता, उसे एक असामाजिक, नृशंस और घातक व्यक्तित्व के रूप में भी उपस्थित करता है[2]।' इतना ही नहीं वरन् इसी कारण से उसका राजनीतिक स्वरूप भी धूमिल हो उठा है और शेखर के दूसरे भाग में शेखर और शशि की कथा ही उपन्यास का रूप धारण कर लेती है।

---

१ डॉ० सुषमा धवन—'हिन्दी उपन्यास,' पृष्ठ २४७

२ आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी—'आधुनिक साहित्य,' पृष्ठ १७५

आलोच्यावधि के अन्य प्रमुख उपन्यास

टेढ़े-मेढ़े रास्ते

प्राक् स्वाधीनता कालावधि का एक विशिष्ट राजनीतिक उपन्यास है भगवती-चरण वर्मा का 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' जिसमें युगीन राजनीतिक वातावरण का स्पष्ट निदर्शन है। प्रेमचन्द की परम्परा के अनुरूप यह उपन्यास चित्रणमूलक न होकर समस्या-मूलक तथा तर्कमण्डित है। 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' में सन् १९३० के सत्याग्रह आन्दोलन के सजीव वातावरण में एक राजनीतिक परिवार की विकलता की कथा प्रस्तुत की गई है। इसमें सामन्तशाही के प्रतीक हैं पंडित रामनाथ तिवारी, जो रूढ़िवादी हैं और नवीन विचारों को ग्रहण करने में असमर्थ हैं। वे समय के साथ न चल सकने के कारण प्रगतिशील विचारों का विरोध करते हैं। किन्तु राजनीतिक जागृति के कारण एक ऐसा वर्ग स्थापित हो रहा है जो नई विचारधाराओं को ग्रहण कर सामाजिक स्वरूप में परिवर्तन हेतु सचेष्ट है। राजनीतिक विचारधाराओं के कारण इस वर्ग के उपभेद हैं गाँधीवाद, समाजवाद और साम्यवाद। गाँधीवाद की धुरी है अहिंसात्मक क्रांति, जिसके ठीक विपरीत हैं साम्यवादी और आतंकवादी जिनकी आस्था हिंसात्मक प्रणाली पर है।

प० रामनाथ सामन्तशाही के समर्थक तथा पूँजीवादी विचारों के पोषक हैं। वे जमींदारी हैं और किसानों का शोषण अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानते हैं। इनके विपरीत विरोधी भावना का प्रतिनिधित्व करते हैं उनके तीनों लड़के, जो तीन अलग-अलग राजनीतिक दलों का नेतृत्व करते हैं। दयानाथ कांग्रेस में हैं, उमानाथ कम्युनिस्ट हैं और प्रभानाथ क्रांतिकारी के रूप में कार्यरत हैं। पिता और पुत्रों के मध्य इस वैचारिक वैभिन्न्य की कल्पना के द्वारा सबल और निर्बल का संघर्ष प्रस्तुत कर विभिन्न राजनीतिक विचार सरणि के अनुरूप आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक समस्याओं के समाधान की चेष्टा की गई है।

प० रामनाथ अवध के ताल्लुकेदार हैं, आनरेरी मजिस्ट्रेट हैं और चूंकि ये दोनों उपलब्धियाँ ब्रिटिश शासन की देन हैं वे उसके हितों के प्रबल प्रचारक और पोषक हैं। वे शक्ति में निष्ठा रखते हैं और किसी के आगे झुकना उनके स्वभाव के विपरीत है। वे अपने बड़े पुत्र दयानाथ का परित्याग कर देते हैं क्योंकि वह कांग्रेस का सक्रिय कार्यकर्ता हो गया है। मझला पुत्र उमानाथ कम्युनिस्ट है और उस पर शासन की क्रूर दृष्टि है। वह एक रात्रि को आकर पिता से दस हजार रुपये की माँग करता है किन्तु रामनाथ उसे झिड़क देते हैं। सबसे छोटे प्रभानाथ सबसे छोटे निकले और क्रांतिकारी के रूप में डाके तथा हत्या के आरोप में गिरफ्तार हुए। किन्तु

रामनाथ जेल में जाकर उसे समझाते हैं कि वह मुखबिर न बने। प्रभानाथ अपनी प्रेमिका वीणा से जो सहकारिणी भी है विष प्राप्त कर आत्महत्या कर लेते हैं।

उपन्यास लेखक ने इन चारप्रमुख पात्रों की सृष्टि कर राजनीतिक उपन्यास की रचना कर तत्कालीन राजनीतिक दलों और उनकी कार्यविधियों में परस्पर विरोध दिखाने का प्रयास किया है। इसीलिए कहा गया है कि 'उपन्यास म परिस्थिति सन् १९३० के राजनीतिक आन्दोलन से सम्बद्ध है। उस समय तीन विभिन्न वाद अथवा विचार-धाराएँ राष्ट्र के जीवन को प्रभावित कर रही थीं। इन वादों को बनाकर उपन्यासकार ने एक सामन्ती परिवार की राजनीतिक जीवन-गाथा की रचना की है।

विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओं से प्रभावित पात्रों का चित्रण तटस्थ दृष्टि-कोण से करने का प्रयास किया गया है। किसी भी राजनीतिक मार्ग का विशेष पक्ष न लेकर लेखक ने अपने को प्रचारक बनाने से बचाया है। यद्यपि सभी उनके लिए टेढ़े मेढ़े रास्ते हैं फिर भी उनकी युगानुकूल सहानुभूति गांधीवाद के प्रति ही है। साम्यवाद को वह कुछ अराष्ट्रीय मानता है। इसी कारण प्रगतिशील आलोचक शिवदानसिंह व डॉ० रामविलास शर्मा की कटु आलोचनाओं का भी उसे सामना करना पड़ा। शिवदानसिंह का कथन है—'टेढ़े मेढ़े रास्ते' म वर्मा जी ने राजनीतिक तथा सामाजिक पृष्ठ-भूमि का विशाल आडम्बर रचकर मनुष्य की देश भक्ति, मानव प्रेम तथा दूसरी उदात्त भावनाओं के मूल में स्वार्थपरता, अधमता और हिंसा की सत्ता ही सिद्ध करना चाहा है और प्रेम, न्याय और समता के आदर्शों की हीनता सिद्ध करने के लिए समस्त प्रगतिशील विचारधाराओं पर आक्रमण किया है और अंत म यह सिद्ध किया है कि मुक्ति का कोई मार्ग नहीं, सभी स्वार्थ सिद्धि के टेढ़े मेढ़े रास्ते हैं। वस्तुतः वर्मा जी इस उपन्यास म राष्ट्रीय जागरण की उदात्त परम्पराओं को ठुकरा कर सामन्तवर्ग की हिमायत की है, और वह भी गांधीवाद की आड़ लेकर।'[१]

डॉ० रामविलास शर्मा का मत भी बहुत कुछ ऐसा ही है। उनके मत के अनुसार 'यह एक गुलाम प्रेस की गुलाम-रचना है, जो हमारे स्वाधीनता आन्दोलन की तमाम परम्पराओं पर कीचड़ उछालती है।' इतना ही नहीं अपितु लेखक का उद्देश्य जीवन के प्रति विश्वास डिगाना है, सामाजिक परिवर्तन में आस्था का खंडन है, जन वादी क्रांति और वर्गहीन समाज की रचना की तरफ से मन फेर कर आदमी को दुश्मन के सामने लाचार और अपाहिज बना देना है।'[२]

लगता है प्रगतिशील आलोचक होने के नाते इन विद्वानों का आक्रोश केवल इसलिए है कि वर्मा जी ने उपन्यास में तात्कालिक युग की राजनीति का यथातथ्य

१ शिवदानसिंह चौहान—'हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष' पृष्ठ १६३

२. रांगेय राघव कृत 'सीधा सादा रास्ता' में संलग्न समीक्षा

चित्रण किया है प्रगतिवादी प्रचारक के सदृश साम्यवाद का समर्थन नहीं। किन्तु जिस काल का राजनीतिक चित्रण उपन्यास में किया गया है उस समय भारतीय राजनीति में साम्यवाद की स्थिति क्या थी, यह राजनीति का साधारण छात्र भी बता सकता है। फिर आश्चर्य है कि विद्वान आलोचक इस तथ्य को क्यों भूल गये। वस्तुतः वर्मा जी ने तत्कालीन राजनीतिक वातावरण व राजनीतिक विचारधाराओं का यथासम्भव यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करके यत्न किया है। वे किसी वाद के प्रचारक या मार्गदर्शक नहीं बने। स्पष्ट है कि आलोच्यकाल में मुक्ति का यदि एक सीधा-सादा रास्ता होता तो इतनी राजनीतिक उठा पटक की आवश्यकता ही क्या थी? और आज भी क्यों है? मुक्ति के टेढ़े-मेढ़े रास्ते में कौन सीधा है यह कौन बता सकता है? युग के साथ क्या ये रास्ते भी परिवर्तित नहीं हो जाते? इसी अनुभूति का अंश बख्शी जी के कथन में देखा जा सकता है—'उपन्यास पढ़कर हम एक दुःख का अनुभव करने लगते हैं और सोचने लगते हैं कि जीवन के लिए क्या कोई सीधा राजपथ भी है। एक ही परिस्थिति में रहकर तीन भाइयों ने अपने जीवन में भिन्न-भिन्न पथों को स्वीकार किया। तीनों ने अपने-अपने पथों में जीवन की गरिमा देखी। तीनों में विश्वास की इतनी दृढ़ता थी कि तीनों अपने पथ पर अटल रहे। पर क्या किसी ने जीवन की सच्ची गरिमा प्राप्त का? एक को अपना पथ छोड़ना पड़ा, दूसरे को अपना देश छोड़ना पड़ा और तीसरे को अपने प्राण छोड़ने पड़े। क्या यह उनकी विजय है या पराजय? परन्तु हम जीवन में सफलता कहेंगे किसे? सभी के पथ भिन्न भिन्न होते हैं। कौन अच्छा है या बुरा, इसका निर्णय कौन करेगा? यही तो जीवन के 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' हैं।'[1] जीवन के लिए कोई सर्वमान्य आदर्श, निर्धारित भी नहीं किया जा सकता।

'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' में वस्तुतः संघर्ष प्रबल और निर्बल के बीच है। साम्राज्यवादी शक्ति के विरुद्ध गुलामों का, पूँजीवादियों के विरुद्ध गरीब मजदूरों का, जमींदार के विरुद्ध शोषित किसानों का विरोध स्पष्ट है। इसके परिणामस्वरूप ही उपन्यास की मूल समस्या आर्थिक और राजनीतिक है। और सम सामयिक भारतीय राजनीतिक जीवन में क्रियाशील विभिन्न विचारधाराओं, उनके प्रेरणा-स्रोतों और उनकी कार्य-विधियों का कलात्मक विश्लेषण लेखक ने किया है। उपन्यास राजनीतिकसमस्या-प्रधान है और लेखक की तटस्थ दृष्टि और तार्किक शैली के कारण प्रत्येक पक्ष को विकसित होने का पर्याप्त अवसर मिलता है। वर्मा जी का स्वयं कहना है कि 'जो कुछ मैं लिखता हूँ, तर्क करने को नहीं लिखता। मैं तो अपने निर्णयों को पेश करता हूँ जिन पर अपने उन तर्कों द्वारा पहुँचा हूँ जो अनुभवों और अनुभूतियों पर अवलम्बित हैं।'

शृंखलाबद्ध कथा-वस्तु और घटनाओं को महत्व देने पर भी चरित्र की विशेष

१ पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी—'हिन्दी कथा साहित्य,' पृष्ठ१४८-४६

ताओं का उद्घाटन ही अधिक है। त्रिभुवनसिंह के मतानुसार 'जिन 'टिपिकल' चरित्रों का निर्माण वर्मा जी ने किया है वे बड़े ही सुन्दर और यथार्थ है। उपन्यास में पात्रों के चरित्रांकन में लेखक की लेखनी यथार्थ की कठोर भूमि पर चलती दिखाई देती है। इनके चरित्रों में यथार्थता है, कथावस्तु में नहीं।' [1]

प० रामनाथ तिवारी, दयानाथ, उमानाथ तथा प्रभानाथ प्रमुख राजनीतिक पात्र हैं। नारी पात्रों में वीणा का चरित्र उल्लेखनीय है। इन पात्रों के माध्यम से ही राजनीतिक वातावरण मुखरित हुआ है। चरित्रप्रधान होने के कारण ही आन्दोलनों का उल्लेख जरूर मिलता है किन्तु वे सजीव नहीं हैं।

प० रामनाथ तिवारी, अवध के एक ताल्लुकेदार हैं। वे सामन्तवाद के एक सशक्त प्रतीक हैं। उनका चरित्र चित्रण सजीव है—सन् १९३० के एक ताल्लुकेदार के सर्वथा अनुरूप। लेखक की इस सफलता को व्यंग्य में ही सही, डा० रामविलास शर्मा ने भी स्वीकार किया है—'उनकी लेखनी यदि किसी का चित्र आँकते हुए पुलकित हो उठती है, तो ताल्लुकेदार प० रामनाथ तिवारी का।' रामनाथ जी अपने वर्ग की समस्त अच्छाइयों और बुराइयों के अद्भुत मिश्रण हैं और यह सत्य ही कहा गया है कि 'सामन्ती औदार्य और दृढ़ता के साथ ही साथ परम्परागत पूर्वग्रहों का सम्प्रेषण कर रामनाथ तिवारी के चरित्र को जैसी सजीवता वर्मा जी ने दी है, उस वर्ग का वैसा सशक्त चरित्र हिन्दी उपन्यास में शायद ही कोई मिल सके।' [2]

दयानाथ कांग्रेसी पात्र है। जमींदार वर्ग का विरोधी और जनता के लिए लड़ने वाला। वह अवसर आने पर पिता का विरोध करने से भी पीछे नहीं हटता। उसके चरित्र में अहम्मन्यता का गुण पैतृक है और इसी कारण उसका व्यक्तित्व कठोरता और दर्प से युक्त है।

उमानाथ कम्युनिस्ट हैं और भारत के बाहर से अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवादी संगठन और आन्दोलन का प्रशिक्षण प्राप्त करके आता है। नये दृष्टिकोण से उनके लिए मातृभूमि 'जङ्गली देश' हो जाती है जो रूढ़िवादियों और जाहिलों से घिरी है। बुद्धजीवी वर्ग के प्रति भी उसका असंतोष गहरा है। उमानाथ के चरित्र में असंगति उसके वैयक्तिक कारणों से है। बुद्धिमान एवं विचारशील होने पर भी वह जर्मनी से लौटने पर भारतीय आदर्शों को ठुकरा देता है। वस्तुतः इस पात्र के माध्यम से भारत में विदेशी साम्यवाद की अनुपयुक्तता सिद्ध करने की चेष्टा की गई है। सम्भव है वर्मा जी को यह प्रेरणा एम० एन० राय के व्यक्तित्व और कार्य-पद्धति से मिली हो। वे राष्ट्रीयता-विरोधी साम्यवाद को वाञ्छनीय नहीं मानते। किन्तु विशुद्ध भारतीय रूप में साम्यवाद

१ त्रिभुवन सिंह—'हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद', पृष्ठ १२५

२. महेन्द्र चतुर्वेदी—'हिन्दी उपन्यास', एक सर्वेक्षण', पृष्ठ १३६

माने के वे विरोधी नहीं, भले ही समर्थक न हों। पश्चिमी सभ्यता जिसके कारण वे हिल्डा के साथ स्वच्छन्द हैं, उनके चरित्र के दौर्बल्य को व्यक्त करती है।

प्राणनाथ सरल और सीधा युवक है जो मानवता के विकृत स्वरूप से क्षुब्ध हो क्रांतिकारी दल में शामिल होता है। इस मानवीय संवेदना के कारण वह घायल साथी प्रभाकर को नहीं छोड़ता। पात्र प्रभाकर के माध्यम से हिंसक क्रांति की निस्सारता प्रकट की गई है।

इन्हीं पात्रों के संवादों द्वारा गांधीवादी, साम्यवादी तथा आतंकवादी सिद्धान्तों की विवेचना की गई है। राजनीतिक व्याख्या के कारण ही संवाद बड़े और बोझिल हैं। दयानाथ कांग्रेस की बैठक में कांग्रेस की राजनीतिक शक्ति व सत्याग्रह आन्दोलन का विवरण देता है। इसी प्रकार उमानाथ, कामरेड मारीसन तथा ब्रह्मदत्त के संवादों से साम्यवादी सिद्धान्तों को अभिव्यक्ति मिली है। क्रांतिकारियों की कार्य-पद्धति का ज्ञान क्रांतिकारियों की गुप्त बैठकों व वीणा द्वारा प्रभानाथ को विष पहुँचाने के प्रसंग से होता है। सभी पात्र तर्क अधिक करते हैं और तर्क से, तात्कालिक स्थिति के तथ्य से समन्वित करते हैं।

बंगाल के अकाल पर आधारित उपन्यास

आलोच्य काल में घटित बंगाल के अकाल की पृष्ठभूमि पर आधारित रांगेय राघव कृत 'विषाद मठ' और अमृतलाल नागर रचित 'महाकाल' में पूँजीवादी शोषण और समाजवादी चेतना की ओर इंगित किया गया है।

बंगाल के दुर्भिक्ष के समय की अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय राजनीतिक स्थिति के परिपार्श्व में 'विषाद मठ' की भूमिका में कहा गया है—'संसार में सिपाही उस समय आदर्शों के लिए लड़ रहे थे, पैसों के लिए कट रहे थे, साम्राज्यों का ध्वंस करने के लिए संसार हुंकार रहा था, कुचली मानवता पुकार रही थी, दूसरी ओर हाहाकारों पर अट्टहास गूँज उठते थे, किन्तु हिन्दुस्तान भूखा था, बंगाल भूखा था, मनुष्य भूखा था। जब भारत की शक्ति खंड-खंड होकर एक दूसरे से लड़ रही थी, जब फूट के बल पर साम्राज्यवाद का भीषण पाप पल रहा था, हिन्दुस्तान की जनता राहों पर कराह-कराह कर दम तोड़ रही थी। स्त्रियाँ अपने पुरुषों के शवों पर खड़ी होकर अपनी सन्तान और सतीत्व को खुले आम बेच रही थीं। पापों की सड़ांध से राष्ट्र का सिर फटने लगा था। मेहनत करके दूसरों को भरपेट खिलाने वाले आज भूखे मर रहे थे।'[1]

बंगाल के गाँव को उपन्यास का केन्द्र बनाकर दुर्भिक्ष की इसी विभीषिका का चित्रण 'विषाद मठ' में सजीव हो उठा है। सर्वग्रासी विषाद की गहन कालिमा उप-

[1] रांगेय राघव—'विषाद मठ', पृष्ठ ५६ (भूमिका से)

न्यास में व्याप्त है। जीवन निराश्रय और साधनहीन हो पूँजीवादी ठेकेदारों की दया पर आश्रित है पर पूँजीपति है कि ऐसी परिस्थिति में भी उनका शोषण-क्रम नहीं टूटता। अनेक पात्रों की सृष्टि कर विविध चित्रों को समग्र रूप में प्रस्तुत कर अकाल पीड़ितों के चित्रण द्वारा पूँजीवादी शोषण के विकृत स्वरूप का उद्घाटन कर समाजवादी चेतना की अभिव्यक्ति कर दी गई है।

दुर्भिक्ष की पृष्ठभूमि में समाज में व्याप्त उत्पीड़न और अन्याय पूँजीपतियों की हृदयहीनता का द्योतक है जो मानवीय गुणों और सामाजिक स्वरूप को ही विकृत बना देता है। यथार्थता के आग्रह के कारण ही 'विषाद मठ' के अन्दर लेखक ने अपने समस्त राजनैतिक पूर्वाग्रहों से ऊपर उठकर बंगाल की त्रस्त मानवता का रुला देने वाला चित्र उरेहा है।'[1]

अमृतलाल नागर के 'महाकाल' में भी बंगाल के दुर्भिक्ष का यथातथ्य चित्र अंकित है। 'महाकाल' में निरूपित मानव का निर्मम स्वार्थ, आर्तनाद, रोदन क्रन्दन हृदय को दहलाने वाला है। किन्तु कथा वस्तु मूलतः व्यक्तिगत स्वार्थ और सामाजिक कल्याण के द्वन्द्व को मतवादी प्रचार में पर्यवसित नहीं होने देती।

मास्टर पाचू गोपाल, जमींदार दयाल और बनिया मोनाई उपन्यास के प्रमुख पात्र हैं। दयाल सामन्ती संस्कृति का व मोनाई पूँजीवादी सभ्यता का प्रतीक है। पाचू गोपाल जीवन्त व्यक्तित्व है जो मूक द्रष्टा सा दुर्भिक्ष के हृदयविदारक दृश्यों को देखता है। स्थूल चरित्र रेखाओं से दयाल का चित्रण कर उसकी वर्गगत विशेषताओं को उभारने का प्रयत्न किया गया है। मोनाई के लिए दुर्भिक्ष दैवीय प्रकोप है जो उसके भाग्योदय का कारण बन गया है। वह पूँजीवादी पात्र है और स्वार्थ ही उसके लिए सर्वस्व है। इसका उत्तरदायी है समाज। वह कहता है–'खुदी के लिए सारी दुनिया तबाह हुई जा रही है। लेकिन यह खुदी है क्या? और क्यों है? अपने अस्तित्व की चेतना को मनुष्य सर्वव्यापी और सामूहिक रूप में क्या नहीं देखता? दुनिया से अलग रह कर मैं अपनी असलियत का अनुभव क्यों कर सकता हूँ। सम्मिलित रूप से, समाज की प्रत्येक क्रिया-प्रतिक्रिया का प्रभाव मुझ पर पड़ता है और मुझे चैतन्य बनाता है।'[2] नर-कंकालों को देखकर भी उसमें मानवीय करुणा का उद्रेक नहीं होता। लाशों को देखकर उसके मन में भावना आती है कि उन्हें मेडिकल कालेज में बेच दिया जाये। चोर बाजारी, नारी विक्रय, धोखा धड़ी सभी उसे ग्राह्य है। मोनाई का व्यंग-चित्र सजीव बन पड़ा है। दयाल का व्यक्तित्व टूटते हुए सामन्तवादी का रूप प्रस्तुत करता है। इसीलिए कहा

---

१ त्रिभुवन सिंह—'हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद', पृष्ठ २०६

२ अमृतलाल नागर–'महाकाल,' पृष्ठ १६३

गया है कि 'यह उपन्यास महाजन तथा जमींदार के स्वार्थ-चंगुल में कराहती कंकाल-शेष जनता का मार्मिक चित्रण है।'[१] किन्तु 'विषाद मठ' में जहाँ समाजवादी चेतना मुखरित हुई है वहाँ 'महाकाल' में सर्वोदयी भावना के अनुकूल वैयक्तिक तथा सामाजिक हितों का निदर्शन है जो अधिक स्वस्थ है। इसमें व्यक्ति को समाजोन्मुख दिखा कर घृणा के स्थान पर प्रेम के महत्त्व को प्रतिपादित किया गया है। मास्टर पाँचू गोपाल के पिता का कथन है—'घृणा की गति है कहाँ? विनाश ही में न? तुम्हारा यह अकाल क्या है? मनुष्य की घृणा ही न? यह महायुद्ध क्या है? कौन सा आदर्श है इसमें? सत्य एक असत्य के साथ सन्धि करके दूसरे असत्य का सर्वनाश करने के लिए युद्ध कर रहा है। मनुष्य इसे राजनीतिक कह कर अर्द्ध-सत्य का पोषण करता है। अर्द्ध सत्य अज्ञान का कारण है। ज्ञान प्रेम का मूल है और प्रेम की गति निर्माण तक, निर्माण तक।'[२]

घृणा के सबंध में व्यक्त सर्वोदय का ही संदेश है। यही उपन्यास का उद्देश्य है। 'विषाद मठ' के सदृश वर्गगत समाजवाद का संदेश नागर जी को स्वीकार नहीं। दुर्भिक्ष के कारण पाँचू के यहाँ भी हिंसक वृत्तियाँ उभरती हैं। उसका पुत्र ही अपनी पत्नी को वेश्यावृत्ति का जीवन अपनाने को बाध्य करता है और पाँचू को घर त्याग करना पड़ता है। मार्ग में असहायावस्था में नवजात शिशु को मृत माता के निकट रुदन करते देख वह संवेदनशील हो जाता है और उसमें साहस का संचार होता है। वह इस तथ्य से परिचित होता है कि जीवन अजेय है और उसे विकसित करने का मार्ग अहिंसा से संभव है। वह अपने घर में ही समग्र संसार को देखने की चाह से घर लौटने का निश्चय करता है। उसका अहं नष्ट हो जाता है और व्यक्तिगत स्वार्थ परे हो जाता है। दूसरे शब्दों में उसकी आहत आदर्शवादिता समष्टि-मंगल की भावना में परिसमाप्त होती है।

पुरुष और नारी

राजा राधिकारमण सिंह के 'पुरुष और नारी' उपन्यास में प्रेम की समस्या स्वतन्त्रता संग्राम की पृष्ठभूमि में चित्रित किया है, यही उसका राजनीतिक पक्ष है। इसके प्रधान पात्र हैं—पुरुष अजीत और नारी सुधा। अजीत का प्रण है कि 'जब तक देश आजाद नहीं होता तब तक मेरे लिए संसार का कोई व्यवहार नहीं—विवाह, व्यापार या रोजगार। आज से न मेरा कोई अपना स्वार्थ है न अपना परिवार। मैं तमाम तन-मन धन माता के चरणों पर निछावर करता हूँ।' वह भाभी के सामने जाता है जहाँ

१ शिवनारायण श्रीवास्तव—'हिन्दी उपन्यास,' पृष्ठ ३७१

२ अमृतलाल नागर—'महाकाल,' पृष्ठ २१७

उसकी भेंट भाभी की छोटी बहन सुधा से होती है। उसमे आकर्षित हो वे कई दिनों तक वहां ठहरते हैं। सुधा भी उनके प्रति अपना प्रेम छिपा नहीं पाती। किन्तु प्रण के कारण अजीत वहां से पलायन करके साबरमती आश्रम जा पहुँचते हैं। आश्रम से वापस लौटने पर उसे सुधा के बेमेल विवाह का पता चलता है। सुधा का पति सम्पन्न पर बूढा और दो बच्चों का बाप है। इस घटना से उद्विग्न हो अजीत अपने एक ग्राम मे, नदी-तट पर आश्रम स्थापित कर सारी सम्पत्ति आश्रम को अर्पित कर देता है।

दलीप, सुधीर तथा अन्य आश्रमवासियों के साथ वह सेवा, सुधार और संगठन कार्यों में सक्रिय भाग लेने लगता है। इधर सुधा वृद्ध शराबी पति से अलग हो रापत्नी पुत्र महीन के साथ कांग्रेस-आन्दोलन में भाग लेने लगती है। बाद में वह अजीत के आश्रम में आकर आश्रम की गृहस्थी का भार सम्हाल लेती है। इधर अजीत के त्याग और सेवा की सराहना होने लगी, लोकप्रियता बढी किन्तु साथ ही उसकी अतृप्त वासना भी मार्ग ढूंढने लगी। वह सुधा का सामीप्य पाने के लिए उसके निकट आने का प्रयास करता पर सुधा की सयम या विवशता का अनुभव करता है। अजीत का अतृप्त पुरुष शात न हो सका और शराब के नशे में उसने सुधा से कुचेष्टा की। सुधा ने विषपान कर लिया और अपनी अतिम घडियों में आत्महत्या का कारण भी स्पष्ट कर दिया। यह तो था सुधा का प्रेम का रहस्य।

कथा वस्तु में राष्ट्रीय आन्दोलन की अपेक्षा पुरुष और नारी के पारस्परिक आकर्षण का चित्रण ही अधिक है। यह सयोग ही है कि ये पात्र भारतीय राजनीति से भी सम्बद्ध हैं।

जागरण

'जागरण' मे कथानक की मौलिकता है और वह मौलिकता है महात्मा गाँधी द्वारा निर्देशित आधारों पर ग्राम सुधार की योजना। गांधीवाद की अहिंसा, कष्ट सहिष्णुता और आत्म शुद्धि के माध्यम से आत्मज्ञान के सिद्धान्तों का 'जागरण' के पात्रों मे समावेश अवश्य है पर केवल बाहरी तौर पर। लेखक द्वारा आरोपित होने के कारण पात्र सिद्धान्तो का निर्वाह स्वाभाविक रूप से नहीं कर सके और जिसके कारण मुख्य भाव अव्यक्त ही रह जाता है। राजनीतिक उपन्यास होने के कारण सम-सामयिक राजनीतिक समस्याओं तथा अस्पृश्यता सबधी वाद विवाद, राजकीय कर्मचारियों की नृशसता, महिला-जाग्रति, सत्याग्रह की उपादेयता आदि पर विचार व्यक्त अवश्य किये गये हैं किन्तु वे स्वाभाविक न होकर आरोपित से है। चमत्कारिक सयोग भी खूब जुटाये गये हैं जो कथानक की गति अपनी अस्वाभाविकता से शिथिल बनाते है। प्रचारात्मक दृष्टिकोण अधिक व्यापक है।

प्राक् स्वाधीनता-युग के अन्य राजनीतिक-उपन्यास है गुरुदत्त लिखित 'स्वाधीनता के पथ पर' और 'पथिक', यज्ञदत्त शर्मा कृत 'दो पहलू' तथा मन्मथनाथ गुप्त रचित 'मित्र'।

इस 'त्रयी' ने स्वातन्त्र्योत्तर काल मे अनेक राजनीतिक उपन्यासो की रचना की अत इन उपन्यासो की विस्तृत विवेचना आगामी परिच्छेद मे ही की गई है।

प्राक्-स्वाधीनता-युग के विवेचित उपन्यासों की उपलब्धियाँ

प्राक्-स्वाधीनता-युग मे जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी और अज्ञेय की 'त्रयी' ने उपन्यास क्षेत्र मे फ्रायड के मनोविज्ञान का प्रतिष्ठित किया। जैनेन्द्र के उपन्यास वैयक्तिक मनोवैश्लेषिक तथा जोशी व अज्ञेय के वैयक्तिक, मनोवैज्ञानिक, मनोवैश्लेषिक। यशपाल और अश्क के उपन्यास भी समाजवादी चेतना के वाहक होने पर फ्रायड के प्रभाव से मुक्त नही। फ्रायड के प्रभाव से प्रेमचन्दोत्तर-काल मे हिन्दी उपन्यास मे यौन वर्णनाओ और दमित वासनाओ का प्रकाशन प्रस्तुत किया जाने लगा। कथावस्तु मे समाज के स्थान पर व्यक्तिप्रधान हो गया और परिणामस्वरूप कथा की अवधि और सामग्री मे परिवर्तन हुआ। व्यक्ति का अध्ययन ही उद्देश्य हो जाने से समाज को पृष्ठभूमि के रूप मे प्रस्तुत किये जाने के कारण वातावरण का विस्तार भी नही हो सका। व्यक्तिवादी प्रवृत्ति ने बाह्य परिस्थितियो और घटनाओ को गौण माना और घटनाओ का पूर्वापर सम्बन्ध विच्छिन्न हो गया। स्वल्प कथानक मे पात्रो के भावो का विश्लेषण होने से राजनीतिक उपन्यास विकसित न हो सके।

राजनीतिक दृष्टि से मात्र आतकवादी ही व्यक्तिवादी कहे जा सकते है। यही कारण है कि जैनेन्द्र और अज्ञेय के उपन्यासो मे क्रान्तिकारी पात्रों की उद्भावना की गई है। जैनेन्द्र के उपन्यासो मे गाँधीवाद का आध्यात्मिक स्वरूप ही प्रकट होने का एक कारण उनकी वैयक्तिक, मनोवैज्ञानिक, मनोवैश्लेषिक प्रवृत्ति है। दार्शनिक जैनेन्द्र का अभीष्ट यही होने से उसका निर्वाह भी समुचित रूप से हो सका है। राजनीतिक उपन्यास का यह नवीन रूप अपने उद्देश्यो की प्राप्ति मे सफल नही कहा जा सकता। एक विज्ञ समालोचक ने सभवत इसीलिए लिखा है कि यदि जैनेन्द्र मे क्रातिकारिता कुछ अधिक होती तो वह उपन्यास के अत मे सामाजिक सीमाओ को स्वीकार नहीं करते और अपने पात्र-पात्रियो द्वारा उठाये हुए विद्रोह को अतिम सीमा तक ले जाते, किन्तु जैनेन्द्र भी एक प्रकार से सामाजिक क्षेत्र मे समझौते के ही प्रतीक है। वे मानते है कि आत्म-पीडन द्वारा समाज को सुधारा जा सकता है। इसके कारण ही उनके उपन्यासो मे पात्रो की अतिम स्थिति उनके सन्यासी रूप या दुखी रूप मे होने से जिस

कारुणिक भाव की सृष्टि होती है वह उपन्यास के राजनीतिक स्वरूप को उभरने नहीं देता।

'अचल' में भी व्यक्तिवादी प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं पर समाजवादी चेतना के साथ संयुक्त होने तथा वातावरण की व्यापकता के कारण उनमें राजनीतिक संस्पर्श अधिक है। यशपाल ने सामाजिक परिस्थितियों को ही अधिक उरेहा है, वातावरण और बाह्य घटनाओं को आनुपातिक रूप से ग्रहण किया है जिससे राजनीतिक ध्येय की पूर्ति में वे अधिक समर्थ सिद्ध हुए हैं।

प्राक्-स्वाधीनता-काल के उपन्यासकारों में शिल्प सम्बन्धी जो वैशिष्ट्य आया उसने राजनीतिक उपन्यासों में पूर्व दीप्ति, चेतना-प्रवाह और काल विपर्यय शैलियों को जन्म दिया। अनुभूति या घटना का आत्मनिष्ठ चित्रण होने से आत्म-चरितात्मक कथा-प्रणाली गतिशील हुई। शैली संवाद या वर्णनप्रधान न होकर विश्लेषण-प्रधान बनी। भाषा भी अनुचिन्तन के भार से गम्भीर व तत्समबहुला हुई। राजनीतिक पात्रों के बुद्धिजीवी होने के कारण कथोपकथनों में अंग्रेजी शब्दों और वाक्यों का प्रयोग भी बहुतायत से होने लगा। बौद्धिक और सैद्धान्तिक होने के कारण कथोपकथनों में अतिशयता का दोष व विचारशीलता का गुण प्रकट हुआ। बहुधा संवाद लम्बे और बोझिल हैं और नीरसता का उद्रेक करते हैं।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्राक्-स्वाधीनता-काल के राजनीतिक उपन्यासों में युग यथार्थ का अंकन विविध रूपों में उपन्यास-लेखक की अपनी आदर्शवादिता के साथ किया गया है। आलोच्य काल में आतंकवादी गतिविधियों की निस्सारता स्वयं-सिद्ध हो चुकी थी। कांग्रेस तो हिंसात्मक कार्यों को प्रारम्भ से ही अनुचित मानती थी इधर साम्यवादी भी वैयक्तिक हिंसा का विरोध करने लगे थे। जैनेन्द्र और अज्ञेय के उपन्यासों में जिन क्रांतिकारियों की गाथा प्रस्तुत की गई है वह उन्हें निर्बल ही सिद्ध करती है। फिर भी इन उपन्यासों के माध्यम से क्रांतिकारियों की रीति नीति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

रूस में साम्यवाद की सफलता से प्रभावित अन्य देशों में भी मार्क्सवाद का अध्ययन किया जाने लगा। भारत में यद्यपि उसका प्रभाव नगण्य ही रहा फिर भी अनेक उपन्यासकारों ने व्यापक रूप में समाज की चेतना को अभिव्यक्ति दी। यशपाल, अचल, रांगेय राघव, अमृतलाल नागर और मन्मथनाथ गुप्त ने आलोच्यावधि में प्रकाशित अपने उपन्यासों में समाज की असंगतियों, वर्ग-विषमता, पूँजीवाद के विघटन तथा नवीन सांस्कृतिक मूल्यों के स्थापन का प्रयास किया। इनके उपन्यासों में पुरानी बुर्जुआ संस्कृति पर जमकर आघात किया गया है। वर्मा जी का 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' इस काल का

सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपन्यास है जिसमें सामाजिक तथा राजनीतिक यथार्थवाद का सफल चित्रण उपलब्ध होता है।

सारांशत प्राक्-स्वाधीनता-युग के उपन्यासों में इन लेखकों ने गांधीवाद, मार्क्सवाद और आतंकवाद की सैद्धान्तिक विचारधारा के परिपार्श्व में राष्ट्रीय चेतना, राष्ट्रीय आन्दोलनों व उनसे प्रभावित राजनीतिक, आर्थिक एवं विभिन्न सामाजिक विषयों की चर्चा की है।

अध्याय ७

स्वातन्त्र्योत्तरकालीन हिन्दी के राजनीतिक उपन्यास

> राष्ट्रीय वातावरण पर आधारित प्रमुख उपन्यास

* धर्मपुत्र—राजनीतिक पात्र, राजनीतिक घटनाएँ, मान्यता-वक्तव्य
* भूले बिसरे चित्र—कांग्रेस कार्यक्रम, खिलाफत आन्दोलन, असहयोग आन्दोलन, आन्दोलन और व्यापारी स्वार्थ, चौरीचौरा काण्ड, अन्य राजनीतिक घटनाएँ, साम्प्रदायिकता, अछूतोद्धार
* बयालीस—राजनीतिक घटनाएँ, राष्ट्रीय घटनाएँ, हिन्दू-मुस्लिम समस्या, बयालीस का आन्दोलन, गांधीय सिद्धान्तों का प्रतिपादन, बयालीस की विशिष्टताएँ
* निशिकान्त
* कठपुतली
* ज्वालामुखी
* स्वाजीवा—राजनीतिक तत्व, ब्लैक मार्केट,
* स्वतन्त्र भारत

> स्वतन्त्रता-संग्राम की पृष्ठभूमि पर मन्मथनाथ गुप्त के उपन्यास

* जागरण
* रैन अँधेरी
* रंगमंच
* अपराजित
* प्रतिक्रिया—अछूत समस्या, १९३५ का चुनाव, रूस तक एवं पात्र
* सागर संगम
* अन्य उपन्यास

> यशदत्त के दो उपन्यास—'दो पहलू' और 'इन्सान'

(ख) स्वातन्त्र्योत्तर देशीय वातावरण से सम्बन्धित उपन्यास

* उदयास्त—कांग्रेस की आलोचना, साम्यवादी पात्र, अवसरवादी नेता, सम-सहयोग की सर्वोदयी भावना।
* बगुले के पंख—कांग्रेस की स्थिति, राजनीतिक गतिविधि और नारी

* भग्न मन्दिर—कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल, राजनीति और पत्रकारिता
* हाथी के दाँत
* बड़ी-बड़ी आँखें

> यज्ञदत्त के उपन्यासों में स्वातंत्र्योत्तर देशीय वातावरण

* निर्माण-पथ
* महल और मकान
* बदलती राहें
* अन्तिम चरण

> चीनी आक्रमण की पृष्ठभूमि पर आधारित उपन्यास

* विनाश के बादल
* देश नहीं भूलेगा

(ग) समाजवादी यथार्थवादी उपन्यास

* बीज—साम्यवादी पात्र, राजनीतिक घटनाएँ, अहिंसा का विरोध, आतंकवादियों का विरोध, कांग्रेसी नेताओं पर प्रहार, साम्यवादी दृष्टिकोण।
* उखड़े [illegible] लोग—साम्यवाद की झलक, गांधीवाद की आलोचना
* आदमी और सिक्के
* रात अँधेरी है
* लोहे के पंख
* ऊँची-नीची राहें
* भूख और तृप्ति
* सूखा पत्ता
* केलाबाड़ी
* नींव का पत्थर
* लहरें और कगार
* मनु की बेटियाँ
* मुक्तावली
* क्रान्तिकारी
* बुझते दीप

(घ) गुरुदत्त के उपन्यासों का राजनीतिक पक्ष—

गुरुदत्त के उपन्यास, गांधीयुगीन वातावरण पर आधारित उपन्यास, साम्यवाद विरोधी उपन्यासों की शृंखला।

राष्ट्रीय वातावरण पर आधारित प्रमुख उपन्यास

धर्मपुत्र

'धर्मपुत्र' में साम्प्रदायिक समस्या को उठाया गया है तथा द्वितीय महायुद्ध से स्वतंत्रता-प्राप्ति तक की कालावधि की राजनीति का संक्षिप्त विवरण दिया गया है।

उपन्यास में कथानक का विकास नाटकीय ढंग से हुआ है और प्रारम्भ से अन्त तक कुतूहल की सृष्टि करता है। परिस्थितिवश डाक्टर अमृतराय अपने पिता के मित्र नवाब मुश्ताक अहमद की पोती शहजादी हुस्न बानू के अवैध पुत्र को हिन्दू-संस्कृति में हिन्दू की भाँति पुत्रवत पालते हैं। डाक्टर ने बालक का नाम दिलीप रखा। डाक्टर विवाहित हैं और उनके दो पुत्र—सुशील और शिशिर तथा एक पुत्री करुणा है। दिलीप एम० ए० एल-एल० बी० कर संघ में भरती हो जाता है। जन्म से मुसलमान होने पर भी वह कट्टर पंथी हिन्दू है और मुसलमानों का घोर विरोधी है। डाक्टर साहब के पुत्र सुशील और शिशिर क्रमशः कम्युनिस्ट और कांग्रेसी हैं।

दिलीप के विवाह को लेकर समस्या उत्पन्न होती है। डाक्टर की पत्नी उसका विवाह बिरादरी में करना चाहती है। परन्तु डाक्टर की समस्या है 'मैं कैसे किसी हिन्दू लड़की को इस धर्म-संकट में डाल सकता हूँ। इतना बड़ा छल तो मैं बिरादरी के साथ कर नहीं सकता।'[1] किसी तरह दिलीप का विवाह राय राधाकृष्ण बैरिस्टर की पुत्री माया से इसलिए तय होता है क्योंकि बैरिस्टर परिवार बिरादरी के होते हुए भी बिरादरी से अलग है, बिरादरी को नहीं मानते। दिलीप इस विवाह सम्बन्ध को स्वीकार नहीं करता क्योंकि उसकी दृष्टि में 'विलायती साहेब लोग हैं। हिन्दू संस्कृति और हिन्दू धर्म के पाबन्द नहीं हैं।'[2]

इस प्रसंग पर वह जातीयता का राजनीतिक धरातल पर विवेचन करता है और अपने हिन्दुत्ववादी दृष्टिकोण का प्रतिपादन करता है।[3] इस विवाह के जाल से मुक्ति पाने के लिए वह कहता है—'जब तक मेरा देश स्वतंत्र न हो जाय हिन्दू-राष्ट्र का उत्थान न हो जाय तब तक ब्याह करके गुलाम संतान पैदा करने से क्या फायदा है। पहले हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान है। पीछे ब्याह-शादी।'[4] इसी बीच बैरिस्टर

१. आचार्य चतुरसेन—'धर्मपुत्र,' पृष्ठ ५६
२. आचार्य चतुरसेन—'धर्मपुत्र', पृष्ठ ६३
३. आचार्य चतुरसेन—'धर्मपुत्र,' पृष्ठ ६४
४. आचार्य चतुरसेन—'धर्मपुत्र,' पृष्ठ ६७

साहब अपनी पुत्री के साथ डाक्टर के यहाँ आते हैं। विवाह-सम्बन्ध तो स्थापित नहीं हो पाता किन्तु माया और दिलीप के मन में एक दूसरे के लिए प्रेम अवश्य उत्पन्न हो जाता है। इन्हीं दिनों विश्वमहायुद्ध छिड़ जाता है और इस स्थल पर लेखक को अन्तराष्ट्रीय राजनीतिक रंगमंच का विवरण प्रस्तुत करने का सुअवसर प्राप्त होता है।[1] लेखक बताता है कि सोवियत संघ जनवाद के कट्टर हिमायती उत्पन्न कर रहा था। वे राष्ट्रीयता को भयानक और घृणास्पद समझते थे। भारत में भी प्रत्येक शहर में साम्यवादी दल बनते जा रहे थे। राजनीतिक सरगर्मी बढ़ती जा रही थी। डाक्टर का घर अन्तर्राष्ट्रीय विचार-धाराओं का अखाड़ा बन जाता है और विभिन्न राजनीतिक पात्रों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय परिपार्श्व में युद्धकालीन भारतीय राजनीति पर विभिन्न विचार व्यक्त किये जाते हैं।[2]

कांग्रेस के नेतृत्व में अगस्त क्रांति होती है और नेहरू जी के भाषण से प्रभावित हो शिशिर आन्दोलन में भाग ले जेल जाता है। इस प्रसंग में बयालीस के आन्दोलन के समय पुलिस के नृशंस व्यवहार का चित्रण किया गया है। मित्र राष्ट्रों के साथ रूस के शामिल होने पर कम्युनिस्ट अंग्रेजों का समर्थन करते हैं और लेखक साम्यवादियों की इस नीति की आलोचना करता है। सुशील कम्युनिस्ट है और उसकी गतिविधियों के द्वारा कथानक आगे बढ़ता है।

दिलीप भी संघ के तत्वावधान में आयोजित विराट सभा में भाषण दे जेल जाता है और जेल-जीवन का सजीव चित्रण सामने आता है। दिलीप अपनी हिन्दुत्व-वादी विचारधारा का प्रचार करता है और तात्कालिक राजनीतिक परिस्थितियों के विश्लेषण से अगस्त क्रांति के कारणों पर प्रकाश पड़ता है। इसी प्रसंग में जवाहरलाल व सुभाषचन्द्र बोस के राजनीतिक व्यक्तित्व का तुलनात्मक अध्ययन भी सामने आता है। दिलीप और शिशिर जेल से मुक्त होते हैं—जेल से लौटने पर शिशिर जहाँ अधिक गम्भीर हो जाता है वहाँ दिलीप के स्वभाव में अधिक उग्रता आती है। पति की मृत्यु के उपरान्त हुस्न बानू भी दिलीप स्थित रंगमहल में आ जाती है। राजनीतिक परिस्थितियाँ उग्र होती हैं और भारत को स्वतन्त्रता देने की स्थिति का निर्माण होता है और जिसके साथ उभरता है देश-विभाजन का प्रश्न।[3] लेखक कथानक और कथोपकथन के संयुक्त प्रभाव से ३६ वें परिच्छेद में भारतीय राजनीति का विवरण प्रस्तुत करता है।

देश-विभाजन के प्रश्न से साम्प्रदायिकता उभरती है और दिलीप को 'डायरेक्ट

१ आचार्य चतुरसेन—'धर्मपुत्र', पृष्ठ ६६, ७० व ७१
२. आचार्य चतुरसेन—'धर्मपुत्र', पृष्ठ ११५-११७
३ आचार्य चतुरसेन—'धर्मपुत्र', पृष्ठ १६६-१७१

ऐक्शन' के षड्यन्त्र का पता चलता है। वह एक सार्वजनिक सभा में इस तथ्य का उद्घाटन करता है और अपने प्रयासो से मुसलमानो की योजना को मूर्त नहीं होने देता। साम्प्रदायिक दगे होते है और दिलीप साथियो के साथ रगमहल मे आग लगाने जाता है। डाक्टर को जब अरुणा के साथ उसे समझाने वहां पहुँचते हैं तब तक रगमहल मे आग लगा दी जाती है। हुस्नबानू, दिलीप, डाक्टर व अरुणा आग से घिर जाते है और रस्सी के सहारे मकान से निकलते हैं। अन्त मे दिलीप उतरता है पर रस्सी के जल जाने से गिरकर घायल हो जाता है। इस दुर्घटना की खबर पा माया भी आ जाती है। अरुणा दिलीप को वस्तु स्थिति से अवगत कराती है और वह बानू के पैरों पर गिर पड़ता है। डाक्टर परिवार को भावी परेशानियो से बचाने के उद्देश्य से दिलीप अपनी माँ हुस्न बानू के साथ वहीं से जाना चाहता है और तब माया भी साथ जाना चाहती है। दोनो का विवाह सम्पन्न होता है और इस सुखान्त रूप में उपन्यास का उपसहार होता है।

कथावस्तु मे दिलीप के चरित्र की उद्भावना कर इस बात की पुष्टि की गई है कि धार्मिक सिद्धान्तो की आड़ मे पनपने वाली साम्प्रदायिक वृत्ति मनुष्य का धर्म नहीं अपितु अपना विकार है।

राजनीतिक पात्र

'धर्मपुत्र' मे दिलीप, सुशील और शिशिर राजनीतिक पात्र हैं और तीन विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओ का प्रतिनिधित्व करते हैं। दिलीप उपन्यास का प्रमुख पात्र है। वह सघ का पदाधिकारी और हिन्दुत्ववादी विचारधारा का समर्थक है। उसका हिन्दुत्ववादी दृष्टिकोण उस समय छिन्न भिन्न हो जाता है जब वह इस तथ्य से परिचित होता है कि वह जन्मा मुसलमान है।

सुशील साम्यवादी पात्र है। अन्य भारतीय कम्युनिस्टो जैसी ही उसकी रूपरेखा—उच्च शिक्षाप्राप्त, मेधावी, दुबला-पतला, ज्योतिर्मय नेत्र, बड़ा हुआ मस्तक। बिखरे बाल, लापरवाही युक्त वेशभूषा। हिन्दी उपन्यासो मे कम्युनिस्ट पात्रो का प्राय यही रूप रग प्रस्तुत किया गया है। शोषित वर्ग की हिमायत करने के कारण 'उत्तेजना' उसका गुण है। अवसर मिलते ही वह शीघ्र आवेश मे आकर नाटकीय ढग से मेज पर घूँसा मारकर और जोर-जोर से चिल्लाकर अपने कम्युनिस्ट विचारो को प्रकट करता और मजदूरो के अतिरंजित चित्र खीच पूँजीपतियो की मिट्टी पलीत करता है।[1]

सुशील का अनुज शिशिर आदर्श कांग्रेसी है यद्यपि उसकी आयु महज २१ वर्ष

---

१ आचार्य चतुरसेन—'धर्मपुत्र,' पृष्ठ ७५

है। लेखक ने उस पर प्रच्छन्न व्यंग्य किया है—'कभी वह केवल नमक डालकर मोटी-मोटी रोटी खाता—कभी उबली तरकारी। स्वास्थ्य और संयम के नाम पर वह अपने पिता की राय से भी बढ़ कर गाँधी जी को ही प्रमाण मानता था।'

राजनीतिक पात्र होने पर भी सुशील और शिशिर का चरित्र पूर्णतया विकसित नहीं हो सका है।

राजनीतिक घटनाएँ

'धर्मपुत्र' में अनेक अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय घटनाओं का विवरण एवं संकेत मिलता है। मुख्य घटनाएँ ये है—

(अ) अन्तर्राष्ट्रीय

(१) जातीयता के मिस अंग्रेज, अमेरिकन और रूस का द्वितीय विश्व-महायुद्ध में राजनीतिक गठबन्धन,[१]

(२) द्वितीय महायुद्ध का विश्व-राजनीति पर प्रभाव,[२]

(३) विश्व महायुद्ध में यूरोपीय देशों की स्थिति व पूर्वीय देशों की बढ़ती राजनीतिक चेतना का उल्लेख[३]

(ब) राष्ट्रीय स्थिति

(१) राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की वृद्धिशील राजनीतिक गतिविधियाँ। दिलीप के भाषण से संघ की विचारधारा का प्रतिपादन किया गया है। वह कहता है—'अब एक जातीयता ही तो है—जिसके बल पर हम सब एक हो सकते हैं। संगठित होकर अपनी दासता के बन्धन काट सकते हैं।'[४] विभाजन के समय संघ के सक्रिय सहयोग का विवरण भी मिलता है।

(२) महायुद्ध के समय साम्यवादी दल के प्रसार और उनकी नीतियों का उद्घाटन महायुद्ध का समर्थन करने पर भारतीय साम्यवादी दल जनता की नजरों से गिर गया था और 'साम्यवादी होना अक्षम्य अपराध राजद्रोह जैसी वस्तु मानी जा रही थी।'[५]

---

१ आचार्य चतुरसेन—'धर्मपुत्र', पृष्ठ ६९

२. आचार्य चतुरसेन—'धर्मपुत्र', पृष्ठ ६९-७०

३. आचार्य चतुरसेन—'धर्मपुत्र', पृष्ठ ११५-१९

४ आचार्य चतुरसेन—'धर्मपुत्र', पृष्ठ ६४

५ आचार्य चतुरसेन—'धर्मपुत्र', पृष्ठ ७१

(३) बयालीस के आन्दोलन का सजीव चित्रण—'धर्मपुत्र' में बयालीस की क्रांति के अनेक तथ्य व चित्र समर्थित हैं।[१]

(४) जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचन्द्र बोस के राजनीतिक व्यक्तित्व और कार्य-पद्धति पर विचार द्वितीय महायुद्ध के समय भारतीय राजनीति के इन दो राज-नीतिज्ञों का तुलनात्मक अध्ययन और उनकी कार्य पद्धति पर प्रकाश डालने का प्रयास प्रस्तुत उपन्यास में किया गया है।[२]

राजनीतिक भाषण और वक्तव्य

राजनीतिक रूप से सामाग्री बनाने के ध्येय से उपन्यास में अनेक राजनीतिक भाषण और वक्तव्य मिलते हैं। दिलीप और शिशिर के भाषण क्रमशः हिन्दुत्ववादी और कांग्रेसी विचारधारा का पोषण करते हैं।[३]

उपन्यास में यथार्थवादी अंकन की दृष्टि से प्रमुख राजनीतिज्ञों के वक्तव्यों को भी उद्धृत किया गया है यथा—'भारत छोड़ो' प्रस्ताव के बाद नेहरू जी का पत्रकारों को दिया गया वक्तव्य,[४] गाँधी जी के 'करो या मरो' की घोषणा जो उन्होंने ७ अग-स्त को कांग्रेस कमेटी ने बम्बई अधिवेशन में की थी।[५] दिल्ली में नेहरू जी के भाषण का अंश[६] तथा सुभाष द्वारा गाँधी के नाम लिखे पत्र का अंश[७] भी उद्धृत किया गया है।

भूले बिसरे चित्र

भगवतीचरण वर्मा कृत 'भूले-बिसरे चित्र' पाँच खंडों में विभाजित बृहदाकार उपन्यास विषय और शिल्प दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। हिन्दी का यह प्रथम राज नीतिक उपन्यास है जिसमें सन् १८८५ से १९३० तक के भारतीय समाज के सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक जीवन का यथार्थ अंकन हुआ है। उपन्यास में मुंशी शिव-लाल एक ऐसे पर्यवेक्षक हैं जो अपने जीवन-काल में सामन्ती जीवन को टूटते, मध्यवर्ग

१. आचार्य चतुरसेन—'धर्मपुत्र', पृष्ठ ११६-१७
२. आचार्य चतुरसेन—'धर्मपुत्र', पृष्ठ १३५
३. आचार्य चतुरसेन—'धर्मपुत्र', पृष्ठ १२४ व ११६
४. आचार्य चतुरसेन—'धर्मपुत्र', पृ० १३८
५ आचार्य चतुरसेन—'धर्मपुत्र', पृष्ठ ११६-१७
६. आचार्य चतुरसेन—'धर्मपुत्र', पृष्ठ ११८
७ आचार्य चतुरसेन—'धर्मपुत्र', पृष्ठ १३८

को पनपते और अन्त में मध्यवर्गीय धारणाओं के ह्रास को मूक दर्शक की भाँति देखते हैं।

प्रथम दो खंडों में एक कायस्थ परिवार की कथा के माध्यम से सामन्तवादी प्रवृत्ति और नौकरशाही का विस्तृत विवरण सामाजिक परिवेष्ठन में दिया गया।

तृतीय खंड में दिल्ली दरबार का सजीव और यथार्थ विवरण दिया गया है। इसकी भारतीय प्रतिक्रिया सोमेश्वर दत्त में देखी जा सकती है जो कहता है–'अब हम पूर्ण रूप से गुलाम हो गये। इंगलैण्ड का बादशाह दिल्ली में अपना दरबार करने आ रहा है, हिन्दुस्तान के राजे-महराजे उसके सामने अपना सिर झुकाएँगे, उसको नजर देंगे, उसका आधिपत्य स्वीकार करेंगे।'[1]

अंग्रेज अधिकारी हिन्दुस्तानी कर्मचारियों से कितना निम्न व्यवहार करते थे इसका उदाहरण क्लीमेण्ट्स व मीर साहब हैं। क्लीमेण्ट उसे सुअर, पाजी, बदमाश, हरामजादे आदि उपाधियों से विभूषित करता है पर मीर साहब उसका विरोध न कर कहता है–'हुजूर की बात काटना सबसे बड़ी बेअदबी होगी।'[2] राजनीतिक दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि भारतीय कर्मचारियों में पराधीनता के युग में आत्म-सम्मान जैसी कोई वस्तु शेष ही नहीं रह गई थी।

जनता में राजनीतिक जाग्रति का अभाव था। आर्य समाज ऋषियों की परम्परा को पुनर्जीवित करने की दिशा में किन्तु भारतीय मुसलमान उसे उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे। नौकरशाही भी उसका विरोध करने में ही अपना कल्याण समझती थी। डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट मीर जाफर व्यंग्य कहते हैं–'ये धोती परशाद दुनिया फतह करेंगे ? मरने से पहले चींटी के पर निकलते हैं, ठीक उसी तरह हिन्दू धरम में यह आरिया समाज पैदा हुआ है।'[3] प्रारम्भिक राष्ट्रीय जाग्रति के रूप में आर्य समाज के कार्य-कलापों का आलोच्य उपन्यास में अनेक स्थलों पर परिचय मिलता है।

तृतीय खंड में हमें बंगाल की क्रान्तिकारी पार्टी के कार्यों की ओर भी इंगित किया गया है।[4] शासकीय कर्मचारियों व व्यापारियों की प्रवृत्ति[5] और पूँजीवाद के विस्तार का भी संकेत है। रिपुदमन के शब्दों में 'यह पूँजीवाद का युग है, यह बनियों की दुनिया है, सब कुछ बिकता है।'

---

१. भगवतीचरण वर्मा–'भूले बिसरे चित्र,' पृष्ठ २४५
२. भगवतीचरण वर्मा–'भूले बिसरे चित्र,' पृष्ठ २५३
३. भगवतीचरण वर्मा–'भूले बिसरे चित्र,' पृष्ठ २४७
४. भगवतीचरण वर्मा–'भूले बिसरे चित्र,' पृष्ठ २६६-७०
५. भगवतीचरण वर्मा–'भूले बिसरे चित्र', पृष्ठ ४१६

चौथे खंड में गांधीयुग की छाप स्पष्ट है। इसमें ज्ञानप्रकाश का प्रवेश होता है जो राजनीतिक पात्र है। ज्ञानप्रकाश जो सन् १९१२ में बैरिस्टर बनने के लिए इग्लैंड गया था, १९१९ में वहाँ से लौटकर इलाहाबाद में वकालत प्रारम्भ करता है। भारत में आने पर वह अमृतसर कांग्रेस अधिवेशन में भाग लेकर कांग्रेस का एक हिस्सा बन जाता है और अवसर आने पर बिना फीस लिए कांग्रेस की ओर से पैरवी करता है।

चौथे और पांचवें खंड में जिन राजनीतिक तथ्यों की ओर ध्यान दिलाया गया है वे इस प्रकार हैं—

कांग्रेस का कार्यक्रम

कांग्रेस राजनीतिक एवं रचनात्मक दोनों कार्यक्रमों के साथ आगे बढ़ रही थी। 'वह हिन्दुस्तान के लिए डोमीनियन स्टेट्स चाहती है ताकि हिन्दुस्तान वाले अपनी हालत सुधार सकें। वह केवल सुधारों की माँग करती है, लोगों को बगावत के लिए नहीं उकसाती कांग्रेस के सुधारों के लिए आन्दोलन बगावत नहीं।'[1]

यह प्रथम चरण था। दूसरे चरण में द्वितीय महायुद्ध के बाद स्वराज्य की प्रबल माँग की गई। अंग्रेज इस माँग के औचित्य को जिस रूप में देखते थे उसका आभास ग्रिफिथ के इस कथन से देखा जा सकता है।'[2]

मुसलमान डोमीनियन स्टेट्स के विरोध में थे क्योंकि इससे हिन्दुओं की सत्ता बढ़ जाने का भय था। डिप्टी अबुलहक के शब्दों में–'डोमीनियन स्टेट्स, स्वराज इनके माने है अंग्रेजों की सरपरस्ती में हिन्दू राज का कायम होना ठाकुर साहब।'[3] जब पढ़े-लिखे समझदारों की यह स्थिति थी तब साधारण मुसलिम जनता की भावना को सहज ही समझा जा सकता है।

खिलाफत आन्दोलन

जौनपुर को केन्द्र बनाकर खिलाफत आन्दोलन का अंकन किया गया है। मुसलमान सभा करते हैं तथा उसमें ब्रिटिश सरकार के खिलाफ विषवमन के साथ हिन्दुओं के खिलाफ भी अपनी भावना व्यक्त करते हैं। वास्तविकता भी यही थी कि तुर्की के खलीफा के प्रति देश के हिन्दुओं में एक प्रकार की उदासीनता ही थी।[4] गो ज्ञानप्रकाश को दूसरे शब्दों में कांग्रेस की खिलाफत आन्दोलन के प्रति सहानुभूति थी।

---

१ भगवतीचरण वर्मा–'भूले बिसरे चित्र,' पृष्ठ ४३७-३८
२. भगवतीचरण वर्मा–'भूले बिसरे चित्र पृष्ठ ४१४
३. भगवतीचरण वर्मा–'भूले बिसरे चित्र,' पृष्ठ ४३६
४ भगवतीचरण वर्मा–'भूले-बिसरे चित्र', पृष्ठ ४२२

असहयोग आन्दोलन

प्रथम असहयोग आन्दोलन (१९२१) के चित्रण के साथ विभिन्न वर्गों के अभिमत भी अंकित किए गये है, जिससे तात्कालिक घटना-काल अपनी सम्पूर्णता के साथ अभिव्यक्त हुआ है। अंग्रेजो को विश्वास था कि 'ब्रिटिश साम्राज्य शिक्षित और मध्यवर्ग के लोगो पर कायम है। जहाँ तक जमींदारो का प्रश्न है वे लोग हमेशा से राजाओ की गुलामी में रह कर तथा राजाओं की निरंकुशता में सहायक होकर अपढ़ और निरीह जनता पर शासन करते आए है, अत्याचार करते रहे है। ये जमींदार तो ब्रिटिश शासन का साथ देंगे, यह स्पष्ट है।'[1]

दूसरी ओर जनसाधारण की सामान्य भावना लाला शीतलप्रसाद के वक्तव्य में मिलती है—'हमें गाँधी जी का साथ देना चाहिए। अगर पूर्ण रूप से हमारा असहयोग सफल हो जाए तो ये दो लाख अंग्रेज दूसरे ही दिन जहाजों पर लद कर रवाना हो जाएँगे।'[2]

जौनपुर और कानपुर की पृष्ठभूमि में आन्दोलन के विभिन्न रूप और शासन के दमनात्मक कार्यो का जीवन्त चित्रण किया गया है। आन्दोलन के कारण हिन्दू-मुस्लिम एकता को बल मिला, इसके भी कई यथार्थ चित्र उरेहे गये है।

आन्दोलन और व्यापारी-स्वार्थ

असहयोग आन्दोलन में पूँजीपति व्यापारियों ने स्वदेशी आन्दोलन में दिल खोलकर मदद की। इसका कारण व्यापारियों का व्यापारिक स्वार्थ था। स्वदेशी आन्दोलन से विलायती माल का लोप होने के कारण देशी मिल-मालिकों के व्यापार में वृद्धि हुई और इसी स्वार्थ-सिद्धि के लिए वे कांग्रेस को आर्थिक सहयोग देने में पीछे न हुए। इसके लिए सर लक्ष्मीचन्द्र का उदाहरण लिया जा सकता है।

चौरीचौरा कांड

चौरीचौरा कांड के कारण आन्दोलन स्थगित होने पर देश में हुई प्रतिक्रिया देखिए—'कदम आगे उठाकर पीछे हटाना, इसमें हमारी पराजय है। जब विजय हमारे सामने है, तब हम पीछे हट रहे हैं।'[3] किन्तु ज्ञानप्रकाश यह भी मानता है कि 'यह आन्दोलन समाप्त हो गया, और इसमें हम पराजित हुए, ऐसा दिखता है। लेकिन

---

१ भगवतीचरण वर्मा—'भूले बिसरे चित्र,' पृष्ठ ४४४
२ भगवतीचरण वर्मा—'भूले-बिसरे चित्र,' पृष्ठ ४४५
३ भगवतीचरण वर्मा—'भूले-बिसरे चित्र,' पृष्ठ ५३५

जितनी चेतना हम प्राप्त हुई है, उसे संचित करके हम लोगों को भविष्य का कार्यक्रम बनाने का मौका मिलेगा। यह संघर्ष लम्बा चलेगा।'[१]

अन्य राजनीतिक घटनाओं का विवरण

उपर्युक्त घटनाओं के सिवाय साम्प्रदायिक दंगे साइमन कमीशन-बहिष्कार, सर्वदल सम्मेलन, लाहौर कांग्रेस नमक सत्याग्रह का विवरणात्मक चित्रण भी प्रस्तुत उपन्यास में मिलता है। इन घटनाओं के परिवेश में तात्कालिक राजनीतिक वातावरण मुखरित हुआ है। यह नये युग का संकेत था और ज्वालाप्रसाद और भीखू जिन्होंने युग देखा था, जिन्दगी के अनेक उतार चढ़ाव देखे थे, जिन्होंने, जिसके पास अनुभवों का भण्डार था, विवश थे, निरुत्तर थे। और दूर हजारों, लाखों, करोड़ों आदमी जीवन और गति से प्रेरित, नवीन उमंग और उल्लास लिये हुए एक नवीन दुनिया की रचना करने के लिए चले जा रहे थे।

साम्प्रदायिकता

हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक भावना का उपन्यास में जो विस्तृत चित्रण है वह युगानुरूप ही है। लेखक ने विभिन्न पात्रों के माध्यम से दोनों सम्प्रदायों की भावनाओं, अंग्रेजों की कूटनीतिक चाल और विद्वेष को दूर करने की कांग्रेसी भावना का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। मुलतान में साम्प्रदायिक संघर्ष से हिन्दू-मुस्लिम एकता को आघात पहुँचता है।'[२] वस्तुतः यह अंग्रेजों की ही एक चाल थी। ज्ञानप्रकाश का कथन है—'हिन्दू-मुस्लिम-समस्या को अंग्रेजों ने मुस्लिम लीग की स्थापना करके खड़ा कर दिया है।'[३] वह इस समस्या को काल्पनिक मानता है। इसके विरुद्ध गंगाप्रसाद और फरहतुल्ला जातीय आधार पर ही इसे देखते हैं।

फरहतुल्ला का कहना है-'हम दोनों का समाज अलग है हम लोगों की कल्चर अलग-अलग है। हिन्दू-समाज एक्सप्लाइटेशन की नींव पर कायम है। मुसलमानों के समाज की नींव यूनीवर्सल ब्रदरहुड पर कायम है। हम दोनों किस तरह आपस में मिल सकते हैं।'[४]

इन्हीं भावनाओं को लेकर साधारण घटनाएँ भी तूल पकड़कर साम्प्रदायिक रूप ग्रहण कर लेती हैं। मलका और बशीधर की नियुक्ति को लेकर जो साम्प्रदायिक रंग उभरता है उसकी तह में ऐसी भावनाएँ ही कार्यरत हैं।

---

१ भगवतीचरण वर्मा—'भूले बिसरे चित्र,' पृष्ठ ५४३
२ भगवतीचरण वर्मा—'भूले बिसरे चित्र,' पृष्ठ ५६५
३ भगवतीचरण वर्मा—'भूले बिसरे चित्र,' पृष्ठ ४२०
४ भगवतीचरण वर्मा—'भूले बिसरे चित्र,' पृष्ठ ५६१ ६२

अछूतोद्धार

गाँधीयुग के प्रथम दशक में हरिजनोद्धार कांग्रेस का एक प्रमुख लक्ष्य निर्धारित हो गया था, जिसके कारण अछूतों में एक नयी चेतना आई। किन्तु अछूतोद्धार को वांछित सफलता तब तक प्राप्त न हो सकी थी। इसके दो कारण थे–एक तो सवर्णों के सक्रिय सहयोग का अभाव और दूसरा अछूतों में भी जात-पाँत का गहरा भेद।

'भूले बिसरे चित्र' में गेंदालाल अछूतों का प्रतिनिधिक पात्र है। ज्ञानप्रकाश अछूतोद्धार के लिए प्रयत्नशील है। वह आन्दोलन में अछूतों का सहयोग राजनीतिक कारणों से भी लेना चाहता है। वह कहता है–'इस आन्दोलन में हमारे देश के अछूतों का कोई योग नहीं है और देश में अछूतों की कुल संख्या करीब ६ करोड़ है। इन लोगों का सहयोग हमें चाहिए ही।' किन्तु गेंदालाल आन्दोलन में किसी प्रकार का सहयोग देना नहीं चाहता, क्योंकि सामाजिक स्थितियों में वह अछूतों के प्रति कोई परिवर्तन नहीं पाता।

बयालीस

प्रतापनारायण श्रीवास्तव के 'बयालीस' में सन् बयालीस की क्रांति और गाँधीवाद के सिद्धान्तों का चित्रण किया गया है। उद्देश्य के अनुरूप उपन्यास का कथानक रमईपुर ग्राम को केन्द्र बनाकर राजनीतिक प्रभाव से प्रेरित साम्प्रदायिक विद्वेष से ग्राम की नष्ट होती एकता को स्थापित कर स्वाधीनता-आन्दोलन में गाँव के महत्वपूर्ण योगदान को अंकित करता है। साम्प्रदायिक एकता और विद्वेष को चित्रित करने के लिए हिन्दू-मुस्लिम पात्रों के साथ अंग्रेज पात्रों की उद्भावना की गई है।

राजनीतिक घटनाएँ

'बयालीस' के कथानक के माध्यम से लेखक ने अन्तर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय राजनीतिक घटनाओं को प्रस्तुत करने का भी प्रयास किया है।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक चित्रण के अन्तर्गत द्वितीय महायुद्ध के अवसर पर ब्रिटेन के जापान से पराजित होने, बरमा को उसके भाग्य पर छोड़ देने, भारतीयों द्वारा जापान से मिल कर स्वाधीन होने के प्रयास का विवरण प्रस्तुत कर अंग्रेजी साम्राज्यवाद की राजनीतिक स्थिति की ओर संकेत किया गया है। वस्तुतः ये अन्तर्राष्ट्रीय घटनाएँ राष्ट्रीय आन्दोलन के पूरक के रूप में ही आई है।

राष्ट्रीय घटनाएँ

राष्ट्रीय राजनीतिक घटनाओं में हिन्दू-मुस्लिम समस्या व बयालीस का आन्दोलन विस्तार से चित्रित किया गया है। इन्हीं आधार बनाकर ही गाँधीवाद के प्रमुख सिद्धान्तों

को भी वाणी प्रदान की गई है। बयालीस के आन्दोलन को लेकर अहिंसक और हिंसक क्रिया-कलापों का भी स्पष्टीकरण दिया गया है।

हिन्दू-मुस्लिम समस्या

रमईपुर ग्राम को केन्द्र बनाकर वहाँ साम्प्रदायिक एकता को नष्ट करने वाले प्रयत्नों की गाथा कही गई है। साम्प्रदायिक फूट उत्पन्न करने वाले तत्व अंग्रेजी शासन के गुर्गे दोनों सम्प्रदायों की धार्मिकता उभाड़कर मुहर्रम के अवसर पर साम्प्रदायिक दंगे की स्थिति उत्पन्न करने में सफल होते हैं। एक ओर अनवर मुसलमानों को और दूसरी ओर जागेश्वर हिन्दुओं को भड़काता है, पर दिवाकर का त्याग इस विषम स्थिति को टालने में समर्थ होता है। वह आहत होता है, पर पूरा गाँव एकजुट हो अंग्रेजों से लोहा लेने का संकल्प करता है। अनवर की धर्मान्धता दूर होती है और वह इस तथ्य से परिचित हो जाता है—'अंग्रेज हुक्काम के लिए हिन्दू और मुसलमान दोनों दुश्मन हैं, दोनों से एक सा खतरा है, इसलिए वे काँटे से काँटा निकाल रहे हैं। हिन्दुओं से मुसलमानों को लड़ाकर दोनों की ताकत जाया कर रहे हैं, मगर जब वे गाँव तबाह करते हैं, तब उसके सारे बाशिन्दों पर गोलियाँ चलाते हैं, वहाँ वे हिन्दू मुसलमान का लिहाज नहीं करते।'[१]

गुलाब भी जानती है कि यह साम्प्रदायिक विद्वेष अंग्रेजी शासन की देन है क्योंकि 'अंग्रेज हिन्दू मुसलमानों को लड़ाकर अपना राज्य जमाये रखना चाहते हैं।'[२] अलिया, रहीम और नसीम सभी साम्प्रदायिक विद्वेष को मानवता तथा राष्ट्रीय एकता के लिए अहितकर मानते हैं। रहीम भाव विह्वल हो एक प्रसंग पर कहता है — हिन्दू और मुसलमान, एक ही जिस्म के दो अंगों हैं, एक ही माँ के दो बेटे हैं। मुझे तो दोनों में कोई अन्तर नहीं दिखाई पड़ता है। हिन्दू अगर सूर्य को मानते हैं तो मुसलमान चाँद को, लेकिन चाँद और सूरज खुदा के दोनों नूर हैं।'[३]

अलिया के शब्दों में 'हिन्दू-मुसलमान धर्म अल्लाह की दोनों आँखें हैं—एक दाहिनी और एक बायीं।'[४] नसीम भी हिन्दू और मुस्लिम धर्म में कोई अंतर अनुभव नहीं करती।[५] इस प्रकार गाँधीवादी दृष्टिकोण से हिन्दू मुसलमान की एक विशिष्ट

---

१ प्रतापनारायण श्रीवास्तव—'बयालीस,' पृष्ठ २१७
२ प्रतापनारायण श्रीवास्तव—'बयालीस,' पृष्ठ १२
३ प्रतापनारायण श्रीवास्तव—'बयालीस,' पृष्ठ २१७
४ प्रतापनारायण श्रीवास्तव—'बयालीस,' पृष्ठ १५४
५ प्रतापनारायण श्रीवास्तव—'बयालीस,' पृष्ठ ११

भारतीय समस्या का समाधान करते हुए लेखक ने भारतीय राष्ट्रीयता के स्वरूप को अभिव्यक्ति दी है।

सन् बयालीस का आन्दोलन

साम्प्रदायिक एकता का ही प्रतिफल है कि रमईपुर के समस्त निवासी महात्मा गांधी के अहिंसात्मक आन्दोलन में भाग ले देश की स्वतन्त्रता के लिए बलि हो जाते हैं।

बयालीस की क्रांति के चित्रण में हिंसा और अहिंसा की विवेचना भी की गई है, क्योंकि आन्दोलन के समय दोनों प्रवृत्तियाँ सक्रिय हो गई थी।[1]

गाँधीय सिद्धान्तों का प्रतिष्ठान

'बयालीस' में गाँधीय सिद्धान्तों का प्रतिष्ठान भी मिलता है। मानवतावाद, अहिंसा, खद्दर, भ्रष्टाचार, अछूतोद्धार,[2] शराबबन्दी[3] पर गाँधीवादी दृष्टिकोण से विचार किया गया है।

मानवतावादी दृष्टिकोण नसीम के कथनों से उभरा है।

अहिंसावादी सैनिक और उसकी अहिंसा पर विचार व्यक्त करते हुए कहा गया है—'सैनिक का जीवन, मृत्यु के साथ निरन्तर खेलने वाले का जीवन है, और अहिंसक सैनिक के जीवन का ध्येय तो केवल मृत्यु को आलिंगन करना है। सत्य की वेदी पर आत्म-बलिदान करना वीरत्व की पराकाष्ठा है। कायरता में मृत्यु का भय होता है, इसलिए अहिंसा में कायरता नहीं है। अहिंसक सेनानी उत्सर्ग की भावना से प्रेरित होकर मृत्यु की ओर अग्रसर होता है, तथा अपने ध्येय की प्राप्ति में अपना जीवन तक उत्सर्ग करने के लिए लालायित रहता है। पशु-बल के प्रहार पर प्रहार सहता हुआ, प्रत्याक्रमण नहीं करता, क्योंकि प्रत्याक्रमण की भावना असत् है, तामस है।'[4]

चर्खा और खद्दर के समसामयिक प्रभाव को 'चर्खा-दंगल' के आयोजन में देखा जा सकता है। आन्दोलनकारियों द्वारा गाया गया गीत भी गाँधीवाद के प्रभाव से युक्त है—

'सत्य, अहिंसा की नावैगी, फिर-फिर लग हमारो आज'[5]

---

१ प्रतापनारायण श्रीवास्तव—'बयालीस,' पृष्ठ ११२
२ प्रतापनारायण श्रीवास्तव—'बयालीस,' पृष्ठ १६१
३ प्रतापनारायण श्रीवास्तव—'बयालीस,' पृष्ठ १५६
४ प्रतापनारायण श्रीवास्तव—'बयालीस,' पृष्ठ २१६
५ प्रतापनारायण श्रीवास्तव—'बयालीस,' पृष्ठ २०१

भ्रष्टाचार पर व्यंग्य

महायुद्धकालीन भ्रष्टाचार और घूसखोरी पर बड़े मार्मिक व्यंग्य किये गये हैं—'घूस का साम्राज्य तो सारे संसार में फैला हुआ है, किन्तु भारत में उसकी राजधानी स्थापित है।' यहाँ पर 'भगवान की भाँति घूस के भी सहस्र नाम हैं। सहस्रनाम के अतिरिक्त यह सहस्रमूर्ति भी है। कोई भी सरकारी कार्यालय नहीं है, जहाँ घूस का अधिकार न हो, भगवान की भाँति वह सर्वव्यापी भी है।'[1] वस्तुतः भारतीय राष्ट्रीय उन्नति के मार्ग में यह बाधा चीन और पाकिस्तान से भी भयंकर है।

'बयालीस' की विशिष्टताएँ

राजनीतिक उपन्यास होने के कारण 'बयालीस' में विवरणात्मक अंश, भाषण देने की प्रवृत्ति और व्याख्यात्मक कथोपकथन का बाहुल्य है। नसीम का मानवतावाद, नरेन्द्र की राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति का विवेचन करीम के अहिंसात्मक क्रान्ति आन्दोलन पर विचार और दिवाकर का साम्प्रदायिक एकता पर जोर भाषणों के माध्यम से व्यक्त हुआ है।

विवरणात्मक ढंग से मानव विकास की विवेचना माधुरी, राजसत्ता और अधिकारों की विवेचना दिवाकर व सामाजिक न्याय की व्याख्या शारदा द्वारा प्रस्तुत की गई है। उपन्यास की यह अपनी नवीन विशेषता है।

निशिकांत

विष्णुप्रभाकर का 'निशिकांत' भी गाँधीयुग का उपन्यास है, जिसमें सन् १९२० से १९३९ की अवधि का घटनाचक्र वर्णित है। पहले यही उपन्यास बृहत् रूप में 'ढलती रात' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था, जिसमें से बाद में २१९ पृष्ठ कम कर व्यर्थ विस्तार को हटा दिया गया है। इस सामाजिक राजनीतिक उपन्यास को जीवनी भी कहा जा सकता है। इसमें निशिकांत नामक मध्यवर्ग के एक व्यक्ति की कहानी है जो, देशभक्त, कथाकार, चरित्रवान, सुन्दर युवक है। परन्तु एक सरकारी कार्यालय में क्लर्क है। आर्य समाजी होने पर भी निशिकान्त हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति को अलग अलग मान कर भी हिन्दू मुस्लिम साम्प्रदायिक समस्या को आर्थिक व राष्ट्रीय दृष्टिकोण से देखता है। इस साम्प्रदायिक समस्या को ही उपन्यास का केन्द्रबिन्दु बनाया गया है। हिन्दू-मुस्लिम दंगों में उसकी प्रेमिका कमला का पति मोहनकृष्ण मारा जाता है और जीवन-यापन के लिए कमला अध्यापिका बन जाती है। निशिकांत का मित्र कुमार कांग्रेसी है, ऊपर से

---

१ प्रतापनारायण श्रीवास्तव—'बयालीस,' पृष्ठ १७१

आदर्शवादी और उदार पर भीतर से दुर्बल। कुमार व निशिकान्त के हृदय में कमला के लिए द्वन्द्व है, परन्तु निशिकांत में रुकावट कहीं नहीं दिखाई पड़ती, अलबत्ता कुमार के मन में कमजोरी अवश्य आती है। अन्त में कुमार अपनी पूर्व पत्नी को, जो परिस्थितिवश पतित हो जाती है, स्वीकार कर लेता है और भयानक मानसिक संघर्ष के पश्चात् कमला को निशिकांत भी स्वीकार कर लेता है। निशिकांत के राष्ट्रीय कार्यक्षेत्र में भाग लेने के कारण राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के प्रयत्नों की कहानी का समावेश स्वाभाविक रूप से हुआ है।

प्रारम्भ में उपन्यास की गति शिथिल है, पर कुमार व कमला का मानसिक संघर्ष पूरी सावधानी व सहृदयता से चित्रित किया गया है। लेखक ने जैनेन्द्र जी की सैद्धान्तिक शैली का अनुकरण किया है। हिन्दू-मुस्लिम समस्या को चित्रित करने के कारण सुरैया व हबीब जैसे मुस्लिम पात्रों को उपन्यास में पहले तो बहुत महत्व मिला, पर बाद में लेखक इन पात्रों के साथ समुचित न्याय न कर सका। निशिकांत, कमला और कुमार के त्रिकोण में उनका स्थान सम्भव भी नहीं था। उपन्यास में परिस्थितियों का चित्रण, क्लर्क वर्ग, विधवाओं की दशा, आर्य समाज की कार्य-विधि आदि का चित्रण भी कुशलता से किया गया है, पर लेखक की राजनीतिक चेतना भली भाँति प्रस्फुटित नहीं हो सकी है। हिन्दू मुस्लिम समस्या, बेकारी और जातिभेद की समस्याओं को राजनीतिक भावभूमि पर देखने का सफल प्रयास अवश्य है, पर प्रेम की समस्या (भले ही उसे भी गांधीवादी दृष्टिकोण से उठाया गया है) ही प्रमुख रूप से उठाई गई है।

कठपुतली

'कठपुतली' में मध्यवर्गीय जीवन के विभिन्न पक्षों के यथार्थवादी दृष्टि से मूल्यांकन के साथ राष्ट्र विभाजन की घटना का विस्तृत चित्रण मिलता है। भारत-विभाजन की घटना को आधार बनाकर हिन्दी में अनेक उपन्यासों की रचना की गई है। किन्तु कला और भाव पक्ष की कसौटी पर 'कठपुतली' ही उनमें सर्वश्रेष्ठ कहा जा सकता है। यह अपने ढंग का प्रथम उपन्यास है, जिसमें कलाकार का अनुभूतिशील हृदय स्पन्दित हुआ है। राष्ट्र के बँटवारे के परिणाम-स्वरूप सदियों से साथ-साथ व्यतीत होने वाला जन-जीवन विच्छिन्न हो जाता है और पाते पोते सारे रिश्ते एक झटके में ही टूट कर बिखर जाते हैं। राजनीतिक निर्णय मानव-जीवन को किस तरह विपन्न बना देता है, इसका 'कठपुतली' में अच्छा दिग्दर्शन हुआ है। उपन्यास का नायक है सुनील और नायिका है दीपाली। नाटककार के रूप में सुनील लाहौर में ख्याति अर्जित करता है और उसकी ड्रामापार्टी और उसके कलाकार जन-जीवन में एक विशिष्ट स्थान बना लेते हैं। इसी बीच साम्प्रदायिक संघर्ष होता है और सुनील विस्थापित के रूप में दिल्ली

पहुँचना है। उस नरमेध को देखकर उसका कलाकार इन बनते बिगडते चित्रो को निरीह दृष्टि से देखता है। भारत का विभाजन, स्वाधीनता की प्राप्ति और साम्प्रदायिक संघर्ष के मध्य सुनील खण्ड खण्ड हो जाता है और अपनी सर्जशक्तियों के विकास मे असमर्थ हो जाता है। सुनील कलाकार है और इस रूप मे व्यक्तित्व और सामाजिक जीवन का द्वन्द्व उसके हृदय को मथित करता है। उसका कलाकार कुठित हो जाता है और वह अपने को एक ऐसी निस्सहाय स्थिति मे पाता है, जिसमे कोई गति नही है। इस तरह राष्ट्र विभाजन की पृष्ठभूमि पर व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन को यथार्थ की भूमिका पर देखने का प्रयत्न किया गया है। किन्तु इतना होने पर भी यह कहा जा सकता है कि सामाजिक जीवन और पात्रो को सहानुभूति प्रदान करने पर भी सत्यार्थी जी मनुष्य के मनस्तत्त्व का अध्ययन भली भाँति नहीं कर सके हैं। एक समीक्षक के शब्दो मे 'वैयक्तिक जीवन और देशीय वातावरण का ऐसा सुन्दर समन्वय सत्यार्थी ने किया है कि दोनो एक दूसरे के कारण अधिक मार्मिक हो गये है। सुनील का कलात्मक हृदय हिन्दू-मुसलमानो के अत्याचारो की क्रूरता को समझने म सहायक है, तो उसका कलात्मक जीवन इस भयकर वातावरण मे अधिक सात्विक दिखाई पड़ता है।'[1]

ज्वालामुखी

राजनैतिकता की प्रवृत्ति को प्रधानता देने वाले उपन्यासो म 'ज्वालामुखी' एक विशिष्ट कृति है। इसमे बयालीस का आन्दोलन और वातावरण सजीव रूप मे चित्रित किया गया है। उपन्यास का नायक व्यक्तिगत महत्वाकाक्षा से मुक्त कर कर राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए अग्रेजी शासन मे लोहा लेता है। वस्तुत वह भारतीय चारित्र्य और सस्कृति का प्रतिनिधि है, जिसमे राष्ट्र की आत्मा अकन होती है। हम उसे गाँधी युग का प्रतिनिधिक पात्र भी कह सकते हैं, क्योकि कर्तव्य-निष्ठा और अनुशासन के साथ गाँधीवाद के सभी तत्वो का उसके जीवन मे अनुकरणीय समाहार हुआ है। वह उस स्फुलिंग के समान है, जो आसपास के वातावरण को प्रकाशित करने मे ही अपनी सार्थकता मानता है।

सामाजिक क्षेत्र म पारस्परिक स्पर्धा के प्रसग तो अनेक हैं, किन्तु प्रभाव-वृद्धि के लिए रचे षड्यन्त्रो का अभाव है। अभय एक सुदृढ पात्र है जो राष्ट्र हित के लिए मृत्यु के आलिंगन के लिए सन्नद्ध है। क्रातिकारियो के सघर्षपूर्ण जीवन मे व्यक्तित्व का विकास किस रूप मे होता है, अभय उसका उत्कृष्ट उदाहरण है। हमारा राष्ट्रीय आन्दोलन आदर्श की आधार-पीठिका पर अवलम्बित था और वह सत्य, अहिंसा और

१ डॉ० गणेशन—हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन, पृष्ठ २१७

शान्ति के रूप में इस उपन्यास में सुरक्षित है। कहा गया है कि जीवन की सच्ची अनुभूति के बिना आदर्शवाद प्रवचना में और यथार्थवाद विकृतिवाद में परिणत हो जाता है, किन्तु स्वानुभाव की प्रतीति उन्माद के प्रतीक रूप को मार्मिक बना देती है। गाँधीवाद के आदर्शों पर आधारित बयालीस की क्रान्ति का सफल चित्रण उपन्यास के नाम को सार्थक करता है।

'ज्वालामुखी' में प्रेम का स्वरूप भव्य और उदात्त रूप में प्रस्तुत किया गया है जो हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों में दुर्लभ है। पात्रों का चरित्र-चित्रण यथार्थ की भूमि पर होने के कारण जीवन्त और प्रेरणाप्रद है। कथानक आदर्शवादी दृष्टिकोण के अनुरूप गठित होने पर भी आरोपित नहीं लगता। प्रकाशकीय में यह सत्य ही कहा गया है कि 'ज्वालामुखी' में डमरू की डमडम की प्रतिध्वनि सुनायी देती है। मुरली का कोमल नाद नगाड़े के शंखनाद में परिवर्तित हो जाता है और हमारे सामने भारतीय आत्मा की मुक्ति पाने की छटपटाहट और तड़प शब्दों में साकार हो उठती है।

रूपाजीवा

वर्तमान युग के सम्बन्ध में प्रकाश डालने वाले उपन्यास 'रूपाजीवा' का घटना-काल द्वितीय महायुद्ध के ८-१ वर्ष पूर्व से प्रारम्भ होकर स्वाधीनता के बाद के युग तक का है। बस, घटना-काल को लेकर राजनीतिक परिस्थितियों से बदलते हुए मानव-मूल्यों का एक सजीव चित्र प्रस्तुत किया गया है। उत्तर प्रदेश के एक बनिया परिवार के पात्रों और घटना-काल की परिस्थिति के अनुसार घटनाओं की सृष्टि कर लेखक ने अपने विचारों को अभिव्यक्ति दी है।

द्वितीय महायुद्ध के समय जब राष्ट्रीय आन्दोलन जोर पकड़ रहा था, तब भी भारतीय पूँजीवादी अंग्रेजों के ही गीत गाते थे। गोरेमल एक ऐसे ही व्यवसायी हैं। वे कहते हैं "ये अंग्रेज और यह गांधी जी का सत्याग्रह, यूरोप में लड़ाई की तैयारी और यहाँ स्वराज्य की माँग, स्वदेशी आन्दोलन और विदेशी बहिष्कार, गाँधी जी के 'यग-इण्डिया' का पुकारना। हाय रे-हाय! घर की जिलैया बायन कूं नगारा! अरे ये अगरेज हैं, पीस कर पी लेंगे। झोंक देंगे लड़ाई में सारे हिन्दुस्तान को। फिर चौकड़ी भूल जायेंगी।"[1]

गोरेलाल व्यवसायी है और राजनीतिक दलों की बाढ़ को भी वह बिजनेस के नुक्ते से देखता है: "अपने मुल्क की तरफ देखो, यह कांग्रेस, उसमें यह गरम दल, यह नरम दल, गरम दल में भी यह क्रान्तिकारी, यह फार्वर्ड ब्लाक। और यह हिन्दू महासभा,

---

१. लक्ष्मीनारायण लाल : रूपाजीवा, पृष्ठ ३७

या हरिजन-सभा, यह डिप्रेस क्लास और इनका बाप जमींदार असोसिएशन और प्रिंस कमेटी। एक ओर आजादी की लड़ाई, सत्याग्रह, दूसरी ओर इलेक्शन और अंग्रेजों का यह सबसे भयानक हथियार मुस्लिम लीग एवं जिन्ना साहब। यह बिजनेस का नुक्ता है।"

'रूपाजीवा' का एक महत्वपूर्ण राजनीतिक पात्र है ईशरी। सरकार की दृष्टि में वह अत्यन्त खतरनाक है। वह बम्बई क्रांतिकारी दल का प्रमुख कार्यकर्ता है, जिसकी पार्टी ने अनुमानतः पिछले वर्ष फ्रान्टियर मेल से सरकारी खजाना लूटा था।[1]

यह ईशरी पार्टी को धन की आवश्यकता पर घर से धोका देकर बीस हजार रुपया ले जाता है। यही क्रांतिकारी ईशरी बाद में कुण्ठित हो शराब पीने लगता है। वह कहता है—"मैं स्वतन्त्रता संग्राम लड़ा हूँ, अब भोगूँगा उसे। मैंने त्याग किया है, अब मैं स्वतन्त्र हूँ, चाहे जो करूँ। मैं अमुक्त नहीं मरना चाहता।" स्वाधीन भारत में जिस जीवन का वह उपभोग करता है वह सामाजिक क्रान्ति और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का खोखलापन सिद्ध करता है। किसी समय में सिर पर जटा जैसे सूखे बिखरे बाल, साधुओं जैसी दाढ़ी खाकी पैंट पर कुरता, पर पाँव नंगे और कमर में दोनों ओर दो पिस्तौलें, रखकर क्रांति की अलख जगाने वाला ईशरी, जिस विवशता से अन्तिम जीवन व्यतीत करता है वह वर्तमान स्वार्थी राजनीति का कारुणिक प्रसंग है। और ईशरी के इस जीवन को देख सूरज इस निष्कर्ष पर पहुँचता है 'मुक्ति के प्रश्न में सबसे पहले व्यक्ति है। फिर समाज, फिर राष्ट्र और राष्ट्र से परे? और संग्राम?'[2] वह वर्तमान राजनीतिक दलों की कार्यविधि पर विचार करता है और जो तथ्य उसके हाथ लगता है, वह है—ये पार्टियाँ भाव क्षुधा जगाती हैं, परितृप्ति नहीं देतीं। हमारा जो कोमल है, शुभ है मानवीय है, उसका अपहरण कर लेती है और फिर उन्हीं को ढूँढने के लिए रास्ता बना देती है—ऐसा रास्ता जो महज चलने के लिए है, आगे बढ़ने के लिए नहीं।[3] बुआ का भी कथन है—"ऐसी क्रान्ति लाने में जब एक बार मनुष्य का सुन्दर और सत्य मर जायगा, तो उसे दुनियाँ की कोई शक्ति, कोई शासन कोई हस्ती पुनर्जीवित नहीं कर सकती।"[4]

---

१ लक्ष्मीनारायण लाल रूपाजीवा, पृष्ठ १५६
२ लक्ष्मीनारायण लाल रूपाजीवा, पृष्ठ २५२
३ लक्ष्मीनारायण लाल रूपाजीवा, पृष्ठ ३००
४. लक्ष्मीनारायण लाल रूपाजीवा, पृष्ठ ३६२

राजनीतिक तथ्य

उपन्यास में अनेक राजनीतिक तथ्यों का विवरण भी सांकेतिक रूप से दिया गया है। इनमें से प्रमुख हैं

(१) समसामयिक अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक स्थिति—'इटली ने अबीसिनिया पर आक्रमण कर दिया था, अब इटली की ताकत पश्चिम उत्तर की ओर बढ़ रही है—इधर मुसोलिनी, उधर हिटलर।'[1]

(२) महायुद्धकालीन राष्ट्रीय राजनीतिक स्थिति—इसके अन्तर्गत कांग्रेस के अहिंसक आन्दोलन, बढ़ती हुई साम्प्रदायिक भावना, बारफण्ड का बायकाट, काला बाजार की बढ़ती हुई घृणित प्रवृत्ति आदि का उल्लेख उपन्यास में यत्र-तत्र मिलता है।[2]

होली के अवसर पर जनता अपनी राष्ट्र-भक्ति लोकगीत के माध्यम से भी व्यक्त करती है

मोरे देसी चुनरिया हो राम,
सजन मोरे रंग विदेसी न डारियो
जा को गांधी बाबा बुन दयी
रंग दयो है जवाहरलाल।[3]

कांग्रेस वालंटियर्स द्वारा गाये गीत में भी राष्ट्र के ऊपर कुरबान होने की भावना अभिव्यंजित है। सन्तोष द्वारा सूरज को लिखे गये पत्र में गाजीपुर की राजनीतिक स्थिति से राष्ट्रीय आन्दोलन का विवरण प्रस्तुत किया गया है।[4] आन्दोलन को प्रोत्साहित करने में तात्कालिक पत्रकारिता ने जो योगदान दिया था, उसका चित्रण 'धूमकेतु' और 'सन्तदहन' से स्पष्ट किया गया है। बारफण्ड का बायकाट और छात्रों द्वारा कॉलेज बिल्डिंग पर तिरंगा फहराने का प्रयास और फलस्वरूप गोलीकाण्ड की घटना आन्दोलन के ही अंग हैं।

इतना ही नहीं, अपितु लेखक ने आन्दोलन के समय प्रचलित नारों को भी लेखनी-

---

१ लक्ष्मीनारायण लाल : रूपाजीवा, पृष्ठ १०६

२ लक्ष्मीनारायण लाल : रूपाजीवा, पृष्ठ २०४-२०५

३ लक्ष्मीनारायण लाल : रूपाजीवा, पृष्ठ ८७

४ लक्ष्मीनारायण लाल : रूपाजीवा पृष्ठ १४१-१४२

बद्ध कर दिया है—'बन्द दरवाजे तोड दो, अंग्रेजो भारत छोड दो' व 'अपने देश मे अपना राज! यही तिरंगा है सिरताज!'[1]

साम्प्रदायिक भावना के विस्तार को हिन्दुत्ववादी प्रा० दयाराम शास्त्री के भाषण मे देखा जा सकता है। साम्प्रदायिक भावना को उभाड़ने मे अंग्रेजो के हाथ होने का उल्लेख भी किया गया है।

ब्लेक मार्केट

युद्धकालीन भारत मे ब्लेक मार्केट की आलोचना के साथ उसमे लिप्त अवसरवादी कांग्रेसियो पर भी फबतियाँ कसी गई हैं। गाँधी आश्रम भी इससे अछूता नही है। रूपाजीवा मे युद्धकालीन राजनीतिक भारत की एक झाँकी अवश्य मिलती है।

स्वतन्त्र भारत

शुकदेव बिहारी मिश्र और प्रतापनारायण मिश्र का 'स्वतन्त्र भारत' बारह परिच्छेदो मे विभाजित उपन्यास है जो भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास की कथा को क्रमिक रूप से प्रस्तुत करता है। इसका आरम्भ गाधी जी के प्रथम असहयोग आन्दोलन के समय कॉलेज छाड़ने के निर्देश से होता है और इस प्रसग पर छात्रो मे उत्पन्न विभिन्न प्रतिक्रियाओ का अकन किया गया है।

नायक भारतभूषण निर्धन परिवार का होने पर भी उच्च शिक्षा प्राप्त करता है। उसके कॉलेज के सहपाठी हैं राजपुत्र शैलेन्द्र, अयोध्यादत्त और मथुरादत्त पा०। असहयोग आन्दोलन के समय अयोध्यादत्त और मथुरादत्त पा० कॉलेज छोड़कर राजनीति के क्षेत्र मे प्रवेश करते हैं। इच्छा होने पर भी भारत भूषण और शैलेन्द्र पारिवारिक एव सामाजिक कारणो से आन्दोलन से दूर रह शिक्षाभ्यास करते रहते हैं। नये रंगमच पर अयोध्यादत्त कांग्रेसी नेता बन जाते हैं, पर मथुरादत्त कांग्रेस की ओर से जेल जाने पर भी जेल से कम्युनिस्ट बनकर निकलते हैं। द्वितीय महायुद्ध के समय देश मे साम्यवाद की लहर आती है और जिसके प्रभाव को दिखलाने के लिए मिल हडताल की आयोजना उपन्यास मे की गई है। इसी प्रसग पर लेखक ने श्रमजीवियो के मनोभावो को अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया है। श्रमिको की सहायिका माधवी देवी भी परिस्थितियो का लाभ उठाकर मिल मालिक कपूरचन्द से विवाह सम्बन्ध स्थापित कर लेती है। यद्यपि इसके पूर्व सबको वे साम्यवादी दृष्टिकोण से ही देखती थीं। इतना ही नही, अपितु उसकी आड मे वे मथुरादत्त से शारीरिक सम्बन्ध भी बना चुकी हैं। माधवी के इस परिवर्तित रूप को देखकर मथुरादत्त आतंकवादी हो जाते हैं और पकडे जाने पर

---

१ लक्ष्मीनारायण लाल रूपाजीवा, पृष्ठ २१४

दस वर्ष की जेल काटते हैं। इस प्रसंग में लेखक कथानक को बंगाल की भूमि पर उतार देता है। यहाँ अरिंदम नामक आतंकवादी की बचकाना हरकतें देखने को मिलती हैं, जो उपन्यास को निम्नस्तरीय बनाती हैं। विवाहिता किन्तु कामपीड़ित युवती के चक्कर में पड़कर वह दल को छोड़ सियालकोट आकर कपूरचन्द के यहाँ कार्य करने लगता है।

पंचम अध्याय में उन कारणों का राजनीतिक विवरण है, जिसके फलस्वरूप राष्ट्र को स्वतंत्रता मिली और साम्प्रदायिक दंगे हुए। राष्ट्र के विभाजन के समय हुए नरमेध और स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद कश्मीर पर हुए आक्रमण को भी समेटने का प्रयत्न किया गया है। यद्यपि सन् १९२१ से काश्मीर आक्रमण तक की राजनीतिक घटनाओं को उपन्यास में समर्पित किया गया है, तथापि राजनीतिक उपन्यास के रूप में 'स्वतन्त्र भारत' एक राजनीतिज्ञ की भूमिका के बावजूद एक 'बचकाना प्रयास' बनकर रह गया है। राजनीतिक तत्वों और उपन्यास के स्वरूप, दोनों दृष्टियों से यह एक असफल रचना है। कथावस्तु का सम्यक् निर्वाह नहीं हो सका है तथा अस्वाभाविकताओं से परिपूर्ण होने के कारण वह पाठक के हृदय में विक्षोभ के भाव ही जाग्रत करती है। अनेक राजनीतिक तथ्य यथा द्वितीय महायुद्ध के समय आतंकवादी गतिविधियाँ आदि ऐतिहासिक नहीं कही जा सकती। भाषा-शैली की दृष्टि से भी उपन्यास निम्न कोटि का है।

स्वतन्त्रता-संग्राम की पृष्ठभूमि पर लिखित मन्मथनाथ गुप्त के राजनीतिक उपन्यास

व्यक्तित्व

हिन्दी के अहिन्दीभाषी उपन्यासकारों में मन्मथनाथ गुप्त का विशिष्ट स्थान है। उनका जन्म सन् १९०८ में एक मध्यवित्त बंगाली परिवार में हुआ था और वे हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासकारों की उस शृंखला से आबद्ध हैं, जिनका सक्रिय राजनीति से निकटतम सम्बन्ध रहा है। छात्रावस्था से ही उनमें उत्कट राष्ट्र प्रेम की भावना उत्पन्न हो गई थी और जिसके कारण वे कांग्रेस संचालित प्रथम असहयोग आन्दोलन में महज १३ वर्ष की आयु में ही भाग लेकर कृष्ण-भवन के अतिथि बने थे।

बनारसीदास चतुर्वेदी के शब्दों में मन्मथनाथ गुप्त 'अपने विषय के विशेषज्ञ ही नहीं, प्रत्यक्षदर्शी तथा भुक्तभोगी भी हैं। वे बीस बरस तक ब्रिटिश सरकार की जेलों के मेहमान रह चुके हैं और यदि काकोरी षड्यन्त्र के समय उनकी उम्र चार-पाँच बरस अधिक होती तो उनकी भी गणना बिस्मिल और अशफाक की तरह अमर शहीदों में हो गई होती।'[1] क्रान्तिकारियों के निकट सम्पर्क में रहने और उन्हें सहयोग देने के कारण

१ साप्ताहिक हिन्दुस्तान, दिनांक २० अक्टूबर, १९६०, पृष्ठ ४६

क्रान्तिकारियों के प्रति उनका आकर्षण और ममत्व स्वाभाविक है। वे स्वीकार करते हैं कि—"क्रांतिकारियों का स्मरण केवल एक कुतूहल की तृप्ति अथवा वीरपूजा मात्र नहीं है या पुराने ढंग की भाषा में कहा जाए तो पितृऋण, मातृऋण की तरह शहीद ऋण की अदायगी मात्र नहीं है, बल्कि इससे हमें सचमुच अनुप्रेरणा प्राप्त होती है। भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम की पृष्ठभूमि पर उनके द्वारा प्रस्तुत किया जाने वाला उपन्यास-सप्तक हिन्दी राजनीतिक उपन्यास-साहित्य में इसी दृष्टि से एक महत्वपूर्ण देन है।

इस विराट उपन्यास-माला के अन्तर्गत सन् १९२१ से लेकर १९४७ तक के भारत का चित्रण किया जा रहा है। 'सप्तक' के ६ उपन्यास प्रकाशित हो पाठकों के हाथों में पहुँच चुके हैं जो सन् १९२९ तक की राजनीतिक घटनाओं को प्रस्तुत करते हैं। इन उपन्यासों की तालिका इस प्रकार है —

१–जागरण	(सन् १९२१ की राजनीतिक स्थिति का चित्रण)
२–रैन अँधेरी	(सन् १९२२ से सन् १९२९ तक का चित्रण)
३–रंगमंच	(सन् १९३० ३१ के भारत का चित्रण)
४–अपराजित	(सन् १९३२-३३ के राजनीतिक भारत की गाथा)
५–*प्रतिक्रिया*	*(सन् १९३४ से १९३७ तक चित्रण)*
६–सागर-संगम	(सन् १९३८ ३९ की राजनीतिक गतिविधियों का चित्रण)

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन और राजनीतिक विचार धाराओं को अभिव्यक्ति देने वाले ये उपन्यास 'सप्तक' की कड़ी होने पर भी अपने में सम्पूर्ण हैं। यों सप्तक की समग्रता में आन्दोलन की विशाल पृष्ठभूमि गांधीयुग की राजनीतिक गंगा की अविरल धारा सी प्रवाहित हुई है।

जागरण

'जागरण' राष्ट्रीय-स्वाधीनता-संग्राम के विशाल चित्रफलक पर मन्मथनाथ गुप्त द्वारा लिखे जा रहे उपन्यास सप्तक की प्रथम कड़ी है, यद्यपि उसका प्रकाशन सप्तक के अन्य उपन्यासों के बाद हुआ है। *'जागरण'* गाँधी जी के नेतृत्व में राजनीतिक राष्ट्रीय चेतना से उद्‌भूत भारत का एक प्रेरणाप्रद चित्र है। लेखक ने उपन्यास की भूमिका में लिखा है . 'जिस काल पर इस उपन्यास का ताना-बाना प्रस्तुत किया गया है, वह हमारे आधुनिक इतिहास का एक अत्यन्त गौरवमय अध्याय है। यह वह समय है' जब महात्मा गाँधी भारतीय राजनीति के गगन में उदित हुए और एक ही छलांग में आकाश के सर्वोच्च बिन्दु पर पहुँच गए। उनके प्रकाश के आगे युग युग की कालिमा,

मानसिक आलस्य, असहायता की भावना, समष्टि के स्वार्थ के आगे व्यक्ति के स्वार्थ को प्रधानता देना, साम्प्रदायिकता, कायरता सब दूर हो गई। महात्मा गांधी ने उस युग में जिस प्रकार राजा से लेकर रंक तक सबके जीवन की काया-पलट कर दी, वह भी इसमें दिखाने की चेष्टा की गई है।' इस तरह 'जागरण' भारतीय जनता के जागरण के उस त्याग और तपस्यामय अध्याय की गाथा है जिसकी बागडोर महात्मा गांधी के हाथों थी। यही कारण है कि उपन्यास में राजेन्द्र नायक प्रतीत होते हुए भी वास्तविक नायक राष्ट्रीय आन्दोलन ही है। राजेन्द्र एक रायबहादुर का सुपुत्र होने पर भी किस प्रकार असहयोग आन्दोलन के प्रति आकर्षित हो गांधीवाद से प्रभावित होता है, जेल जाता है और जेल में क्रान्तिकारियों के सम्पर्क में आकर उनकी विचारधारा और कार्यक्रम से परिचित होता है। मूल कथा में इसका दिग्दर्शन है। गांधीवादी और क्रान्तिकारी पात्रों की उद्भावना कर दोनों की राजनीतिक विचारधारा और दलीय कार्य-प्रणाली को स्पष्ट करने का प्रयत्न भी किया गया है। यह बताने की विशेष चेष्टा की गई है कि विचारधारा में मौलिक भेद होने पर भी दोनों आन्दोलन के विराट समर्थ के अंग थे। किन्तु इस प्रसंग में लेखक ने गांधीवादी राजनीति की वर्तमान भूमिका को स्पष्ट नहीं किया है। युग की उपलब्धियों के सिवाय उसकी बलहीनता का निर्देश तात्कालिक अवसरवाद के रूपों, उच्च वर्ग की राष्ट्रीयता के स्वरूपों और अमन सभाइयों के शासकों से गठबन्धन के रूप में चित्रित हुआ है। मुख्य पात्र राजेन्द्र, श्यामा और आनन्दकुमार हैं। पात्रों और परिस्थितियों का पारस्परिक सम्बन्ध घनिष्ठ है, अतः कथा सुगठित है और चित्रण सजीव नहीं हो सका है। इसमें पात्रों की मानसिक स्थितियों का विश्लेषण उनके पूर्व प्रकाशित उपन्यासों की अपेक्षा अच्छा हुआ है।

रैन अँधेरी

'रैन अँधेरी' उपन्यास में गुप्त जी ने सन् १९२१ से १९३० के भारतीय राजनीतिक दशक का चित्र प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। स्वातन्त्र्य-आन्दोलन के अन्तर्गत इस काल की प्रमुख घटनाएँ हैं—सन् १९२१ का असहयोग आन्दोलन, चौरीचौरा काण्ड और सत्याग्रह आन्दोलन का आकस्मिक स्थगन, सन् १९१९ ऐक्ट के अनुसार कौंसिलों के चुनाव में कांग्रेस की प्रतिक्रिया और स्वराज्य पार्टी का उदय, साइमन कमीशन, सन् १९२९ में लाहौर कांग्रेस अधिवेशन में 'पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्ति' के लक्ष्य की घोषणा तथा सन् १९३० में हुआ 'गांधी-इरविन पैक्ट'। कांग्रेस के प्रयासों के साथ ही साथ मुक्तिदीप के परवाने क्रान्तिकारियों के विशेष सक्रिय चरण भी इन अहिंसात्मक आन्दोलनों के साथ चलते रहे। अस्तु, लेखक ने आलोच्य उपन्यास में इन सभी घटना क्रमों का औपन्यासिक गठन करने का गहन प्रयास किया है। ऐसा होने पर भी जहाँ

अहिंसात्मक आन्दोलनों का उल्लेख प्रासंगिक होकर आया है, वहाँ प्रमुखतः क्रांतिकारियों की गतिविधियों का विशेष महत्त्व मिल गया है।

सन् १९२१ के खिलाफत आन्दोलन में हिन्दू-मुस्लिम कन्धे से कन्धा मिलाकर ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध खड़े हुए थे। इस मध्यान्तर में दोनों में फूट डालने के ब्रिटिश साम्राज्यवाद के सारे प्रयत्न निष्फल रहे। किन्तु असहयोग आन्दोलन के स्थगन के उपरान्त अनेक व्यक्ति जो सक्रिय रूप से आन्दोलन में भाग ले चुके थे कुछ निराश और किंकर्तव्यविमूढ़ से हो गये। जहाँ गाँधी जी के एक वर्ष में स्वराज्य के नारे को लेकर हजारों व्यक्ति सोत्साह जेल-यात्री हुए थे वहाँ उनमें नेता द्वारा आन्दोलन-स्थगन से निराशा, अविश्वास और क्रोध की उत्पत्ति स्वाभाविक थी। उधर ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा मुसलमान और हिन्दुओं में धार्मिक एवं राजलोभ के आधार पर फूट डालने की साजिश भी सफल होने लगी। प्रस्तुत उपन्यास का समारम्भ कुछ ऐसे ही राजनीतिक वातावरण में होता है। प्रारम्भ में ही राजेन्द्र जैसे जेल-यात्री युवक की मनःदशा चित्रित करते हुए लेखक उन्हीं राजनीतिक परिस्थितियों का उद्घाटन करता है। दूसरी उठान में यह खान बहादुर इरादत हुसैन, खान साहिब मजर अली, स्मिथ आदि के द्वारा साम्प्रदायिक विरोधों को उभाड़ने के प्रयत्नों का उद्घाटन करता है। तदुपरान्त उपन्यास का क्रमिक रूप सामने आता है। अहिंसावादी आनन्दकुमार, राजेन्द्र आदि सत्याग्रही जेल जाने वाले पात्र हैं, कुणाल, अमिताभ, यूसुफ उर्फ महेन्द्र, अविनाश, श्यामा, रुक्मिणी आदि प्रमुख क्रान्तिकारी पात्र हैं, जिनके चतुर्दिक उपन्यास की समस्त क्रान्तिकारी घटनाएँ घूमती हैं। बीच-बीच में कांग्रेस द्वारा उठाये हुए विभिन्न चरणों का प्रसंग भी आता-जाता है। क्रान्तिकारी दलों का ही एकसूत्री कार्यक्रम उपन्यास में आदि से अन्त तक चलता है।

कथा-वस्तु के अनुसार रायबहादुर राजकिशोर के पुत्र राजेन्द्र और रायबहादुर वंशीधर की पुत्री श्यामा के पाणिग्रहण की चर्चा हुई थी, किन्तु एक अहिंसावादी तथा दूसरा क्रांतिकारी। फलतः पाणिग्रहण-सम्बन्ध सम्भव न हुआ। चतुर्थ प्रसंग में कुणाल, जो वस्तुतः चन्द्रशेखर आजाद की भूमिका पर कार्य करते हैं तथा अमिताभ दोनों ही काशी में दो कमरों का मकान लेकर 'कल्याणाश्रम' स्थापित कर रामकृष्ण मिशन के ब्रह्मचारी के रूप में रहते हैं। वहाँ पर जेल से लौटे हुए अविनाश और रामानन्द के द्वारा उन लोगों का परिचय श्यामा से होता है और श्यामा दल की सदस्या हो गई। इस प्रसंग में उपन्यासकार कुणाल और अमिताभ के पारस्परिक विचार-विनिमय द्वारा क्रान्तिकारियों के उद्देश्यों, सिद्धान्तों और कार्यप्रणाली का संक्षिप्त परिचय देना नहीं भूलता।

सन् १९२१ के असहयोग आन्दोलन के स्थगन के बाद गाँधी जी जेल चले गये, किन्तु दूसरी ओर देशबन्धु और मोतीलाल नेहरू ने स्वराज्य पार्टी बनायी, जो निर्वाचन द्वारा कौंसिलों में पहुँचना चाहती थी। उधर क्रांतिकारी दल भी अपने संगठन और कार्य में सक्रिय हुआ। जनता में अत्यन्त ही उत्साह था। आनन्दकुमार जैसे शान्तिप्रिय सत्याग्रही भी क्रांतिकारी दल से पूर्ण सहानुभूति रखते थे और यथासम्भव सहयोग भी देते थे। यहाँ तक कि दूकान का मुनीम त्रिलोचन भी क्रांतिकारी दल का सदस्य हो गया। वह दल में श्यामा को देख उसपर आसक्त हो जाता है और उसके आचार-व्यवहार से कुणाल, अविनाश, श्यामा आदि उससे घृणा करने लगे। फलतः वह पुलिस में मिल गया और क्रांतिकारी दल के लिए खतरा बन गया। ऐसी स्थिति में कुणाल जी दल के सदस्यों से सलाह कर कल्याणाश्रम को बन्द कर अन्यत्र चले गये। इसी बीच अविनाश से कुणाल जी की परिणीता रुक्मिणी से परिचय हुआ, जो कुणाल के पीछे छाया सी लगी थी। अविनाश ने उसे समझा बुझाकर श्यामा के साथ कर दिया। रात्रि में क्रांतिकारियों की गुप्त सभा हुई और दूसरे दिन कुणाल दशाश्वमेध एवं मणिकर्णिका घाट की ओर टहलने गये। अनायास ही एक खुफिया ने आकर उनका हाथ पकड़ा और थाने पर चलने के लिए विवश करने लगा। इसी बीच रुक्मिणी वहाँ पहुँच गई और उसके प्रयासों से कुणाल भाग निकले। इधर पुलिस ने रुक्मिणी को गिरफ्तार कर लिया और जिसे आनन्दकुमार व श्यामा ने किसी तरह छुड़ाया। पैसे की समस्या हल करने के लिए दल ने डकैती डालने का निश्चय किया और नियमक्रम के अनुसार अविनाश, अभिनाथ और अन्य साथी ट्रेन पर चल पड़े। दो स्टेशनों के बाद श्यामा भी बिस्तर में अस्त्र शस्त्र ले सदस्यों से आ मिली और डकैती के बाद पुनः सामान ले वापस हुई तथा अन्य व्यक्ति इधर-उधर तितर-बितर हो गए।

वर्ण्य वस्तु के आधार पर कहा जा सकता है कि इसमें गाँधीयुग के प्रथम दशक का राजनीतिक वृत्त चित्र प्रस्तुत किया गया है, किन्तु सामयिक इतिहास और कथा का समन्वय समुचित ढंग से न हो सका। राजनीतिक विवरण यथा प्रस्ताव आदि स्वाभाविक रूप से न आकर आरोपित से हैं और स्वयं लेखक इससे अनभिज्ञ नहीं। उपन्यास के 'दो शब्द' में उन्होंने स्वयं कहा है —'सम्भव है, बीच बीच में दो एक पृष्ठ जहाँ प्रस्तावों आदि का वर्णन किया गया है, उपन्यास की दृष्टि से इतना रोचक न जँचे।' ऐसे पृष्ठों को उलट देने का अनुरोध भी किया गया है। ऐसे ही अलगाव के कारण कहानी मँझधार में ही छूट गई है और सामयिक इतिहास के क्रमिक विकास में भी न्यूनता आई है। इतिहास के प्रति लेखक का अपना दृष्टिकोण है और जो 'ऐतिहासिक उपन्यास-रचना की मान्यता के विपरीत व्यक्तिकेन्द्रित हो गया है। कहा जा सकता है कि सारे तथ्य और घटनाएँ एक व्यक्ति की अनुगामिनी हो गयी हैं।

क्रांतिकारी गतिविधियों और क्रांतिकारियों के व्यक्तित्व-विकास पर ही विशेष ध्यान दिया गया है। तथ्य और घटनाओं के किंचित परिवर्तन से अनुदर्शन में अपेक्षता आ गयी है। विशिष्ट मतवाद को लेकर चलने के कारण कांग्रेसी पात्र राजेन्द्र का चरित्र नहीं उभर सका है। राजनीतिक उपन्यास तथ्यों की दृष्टि से ऐतिहासिक उपन्यास का अनुज है और उसका हर पात्र, अपने काल और परम्परा का प्रतिनिधित्व करता है। राजेन्द्र एक विचारधारा का प्रतीक है किन्तु क्रांतिकारियों के चरित्र को प्रभावी बनाने की एकांगी दृष्टि से उसका चरित्र छिछला और संकीर्ण हो गया है। यह सत्य है कि उस समय राजेन्द्र जैसे राजनीतिक पात्रों का अभाव न था, परन्तु राजनीतिक मूल्यांकन का आधार तटस्थता होना चाहिए। कुणाल क्रांतिकारी चरित्र के रूप में अप्रतिम है और उसकी क्रांतिकारी दृढ़ता और तीव्रता हमें आजाद का स्मरण दिलाती है। रुक्मिणी के प्रसंग से अलौकिक दृश्यों की रचना उपन्यास के मनोरंजन में वृद्धि भले ही करे, किन्तु विश्वसनीयता का भाव उत्पन्न नहीं करती। या क्रांतिकारी की पत्नी के रूप में उसका चरित्र आदर्श रूप में चित्रित होकर भी यथार्थ की भूमि से अपने को समेटे चलता है।

रणमंच

'रणमंच' का प्रतिपाद्य विषय डांडी मार्च (१९३०) तथा नमक सत्याग्रह से लेकर कराची कांग्रेस (१९३१) तक की घटनाओं का चित्रण करता है। इसके अतिरिक्त आतंकवादियों में समाजवाद के प्रति विस्तार पाने वाली भावना की ओर भी इंगित किया गया है। स्वयं लेखक के शब्दों में 'इतिहास लिखने का केवल यह उद्देश्य नहीं हो सकता कि अतीत के भूले बिसरे चित्र ज्यों के त्यों पेश कर दें, विशेषकर यदि इतिहास कला का माध्यम ग्रहण करे तो उसका सर्जनात्मक पहलू तभी साफल्यमंडित माना जायगा, जब उससे भविष्य के लिए भी इंगित उभरे।'[1] समाजवाद की भावना का चित्रण ही लेखक का एक राजनीतिक उद्देश्य है, उपन्यास के पात्र प्रेमचन्द्र के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ है। प्रेमचन्द्र अर्चना के सौन्दर्य से प्रलुब्ध होकर क्रांति की लपट में कूद पड़ता है। उसका कथन है 'क्रांतिकारी दल प्रेम का विरोधी नहीं है, बल्कि उसी में प्रेम को पूर्णता प्राप्त हो सकती है।'[2] वह प्रेम को ही सर्वाधिक क्रांतिकारी तत्व मानता है। उसकी दृष्टि में क्रांति तो सृष्टि के अवरुद्ध मार्ग खोलती है पर प्रेम तो स्वयं सृष्टि करता है। उसके अनुसार प्रेम माता है और क्रांति उसकी मिडवाइफ

१ मन्मथनाथ गुप्त : रणमंच, पृष्ठ ४
२ मन्मथनाथ गुप्त : रणमंच, पृष्ठ ८४

परिचारिका जो थोड़ी देर ही काम आती है।'[1] क्रांतिकारियों के दल में महिलाओं को सम्मिलित करने के सम्बन्ध में परस्पर मतभेद है।

हिन्दी उपन्यासों में अधिकतर क्रांतिकारी पात्र नारी-आकर्षण या प्रेम के दीवानों के रूप में चित्रित किये गये हैं। प्रेमचन्द भी एक ऐसा ही पात्र है, जिसके प्रसंग से प्रणय-लीला व वासना की उमेठन के चित्र अंकित कर क्रान्तिकारियों की प्रेम सम्बन्धी भावना के आवरण को उघाड़ने का प्रयत्न किया गया है। अर्चना से अनुप्राणित प्रेमचन्द उन आतंकवादियों का प्रतीक है, जो आतंकवाद की व्यर्थता को स्पष्ट देख समाजवाद को अपना लक्ष्य मानने लगे थे। समाजवादी ग्रन्थों के अध्ययन और मनन से वह सत्याग्रह आन्दोलन के समय इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि 'अब जन-आन्दोलन की जरूरत थी न कि कुछ खास चुने हुए लोगों की वीरता की। जन-आन्दोलन माने गाँधीवादी सत्याग्रह नहीं, बल्कि तीव्र वर्ग-संग्राम।'[2] समाजवाद के सैद्धान्तिक ग्रन्थ उस युग में सभी क्रान्तिकारी पढ़ने लगे थे और मार्क्सवाद के प्रभाव में आकर उनके हृदय में क्रान्तिकारी दल तोड़ने की भावना बलवती हुई थी। शहीद क्रान्तिकारी बिस्मिल ने १९२७ में लिखी अपनी आत्मकथा में इसका संकेत भी दिया है। उपन्यास में सम्भवतः इसी आधार पर अभिनाभ भी दल से पृथक् होते हैं और पाठक को बोल्शेविक दल के अभ्युदय का क्षीण परिचय मिलता है।[3] इसके साथ ही उन क्रान्तिकारियों की गतिविधियाँ भी समानान्तर रूप से चलती रहीं, जो आतंकवाद से अपनी आस्था न हटा सके थे। जीवानन्द, प्रणवकुमार व अर्चना आदि के क्रान्तिकारी प्रयास इसी विचारधारा के प्रतिफल हैं।

इस तरह प्रस्तुत उपन्यास में आतंकवादी दो विभिन्न विचारधाराओं में विभाजित होते दिखाये गये हैं। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि मार्क्सवादी विचारधारा भारतीय राजनीति में गाँधीवाद व आतंकवादी प्रवृत्ति की प्रतिक्रिया के रूप में प्रस्फुटित हुई। इसका ध्येय वर्ग शोषण का अन्त और जो वर्ग-संग्राम से ही सम्भव है। इस विचारधारा के कारण क्रान्तिकारियों में विघटन होने लगा और अनुशासन के बन्धन शिथिल पड़ गये। प्रेमचन्द का जेल से लिखा गया अन्तिम पत्र समाजवादी विचारों का ही पोषक है।[4]

आतंकवादी दल में होने वाले परिवर्तनों की इस लम्बी औपन्यासिक गाथा के साथ गाँधी जी के नेतृत्व में चलाये गये सन् १९३०-३१ के आन्दोलन की पृष्ठभूमि तथा

---

१ मन्मथनाथ गुप्त - रंगमंच, पृष्ठ ८४
२ मन्मथनाथ गुप्त - रंगमंच, पृष्ठ ९३
३ मन्मथनाथ गुप्त - रंगमंच, पृष्ठ ६५
४ मन्मथनाथ गुप्त - रंगमंच, पृष्ठ २७४

आन्दोलन से उत्पन्न भारतीय चेतना तथा सामाजिक क्रान्ति का चित्रण भी किया गया है। इसके अन्तर्गत नमक-सत्याग्रह, समझौते के प्रयत्न, गाँधी-इरविन पैक्ट को घटनाओं को सम्पादित किया गया है। धरसाना नमक गोदाम पर हमले की योजना (पृष्ठ ११९) तत्सम्बन्धी सूचना वायसराय को देने व गाँधी जी की गिरफ्तारी (पृष्ठ १२७), काशी, वडाला व कर्नाटक मे नमक-सत्याग्रह का उल्लेख व विवरण ऐतिहासिक है। इसी भाँति १८ अप्रैल को हुए चिटगाँव काण्ड भी क्रान्तिकारियों द्वारा आयोजित-संचालित सत्य घटना है। किन्तु हिंसात्मक एवं अहिंसात्मक प्रयत्नों की समानान्तर रूप से चलने वाली कथाओं मे प्रमुखता हिंसावादी क्रान्तिकारियो को ही दी गई है और उपन्यास का अधिकांश कलवर उनसे सम्बन्धित घटनाओं और विचारधाराओं का निरूपण करता है। क्रान्तिकारी प्रयत्नों के चित्रण तथा क्रान्तिकारियों के मनोविज्ञान के चित्रण स्वानुभूति के कारण सजीव है, किन्तु गाँधीवादी प्रयत्न मात्र स्केची सन्दर्भ बन गये है।

उपन्यास म ब्रिटिश सरकार की दमनात्मक कार्यवाहियों का भी विस्तृत चित्रण है, जो राष्ट्र भक्तों के जन-जीवन को लेकर यथार्थता की भूमि पर चित्रित किया गया है।

राजनीतिक असंगतियाँ

राजनीतिक उपन्यास के रूप मे उपन्यास केवल उपन्यास नहीं रहता, अपितु उसका सामयिक राजनीतिक पक्ष भी रहता है और जो ऐतिहासिक भाव भूमि को लेकर चलता है। इतिहास के सत्य की रक्षा के लिए घटनाकाल व घटनाक्रम आदि का सूत्र वास्तविकता लिये हुए होना चाहिए। कल्पना और यथार्थ का समन्वय राजनीतिक उपन्यास म ऐतिहासिकता को बिना आघात पहुँचाये किया जाना चाहिए अन्यथा अनेक असंगतियाँ उठ उभरती हैं। प्रस्तुत उपन्यास म अधिकांश घटनाएँ बनारस में घटित होती है और इसमे वर्णित-कल्पित राजनीतिक हत्याओं और फाँसियो का वर्णन युग का प्रतीक माना जा सकता है। पर कठिनाई यह है कि उस युग के जो ख्यातिप्राप्त क्रांतिकारी फाँसी पर चढ़े, उनका भी जिक्र इस उपन्यास मे है। इस तरह एक पक्ष के कल्पित और वास्तविक दोनो चित्र होने से भ्रम की जो स्थिति उत्पन्न होती है, वह ऐतिहासिक असंगति है। इस सन्दर्भ म दूसरा उदाहरण टैगर्ट की हत्या का है, जिसे काशी मे घटित होते बताया गया है। स्वय गुप्त जी लिखित क्रान्तिकारियो के इतिहास-ग्रन्थ मे टैगर्ट की हत्या का विवरण मिलता है, किन्तु उसके समय और स्थान मे अन्तर है। टैगर्ट के नाम सादृश्य से भ्रम उत्पन्न होता है और वह काल्पनिक पात्र नहीं रह जाता। नमक सत्याग्रह मे जो कुछ हुआ, उसका भी पूर्ण चित्र पाठक के सामने नहीं आता। इसे विस्तार सयम भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि ऐलोकेशी और तारा के झगड़े को वह बिना प्रसंग-विस्तार के अभुक्त काम लालसा को चित्रित करता है।

भी नही मिल सका। अन्यथा इस युगल की प्रणय-गाथा साम्प्रदायिक एकता के रूप मे प्रयुक्त की जा सकती थी।

अछूत समस्या

'अछूत समस्या' उपन्यास मे गाँधी जी के अछूतोद्धार आन्दोलन के प्रतिरोध मे दो समानान्तर लम्बे कथानक और चलते है। एक अछूतों का, जिसके प्रधान नायक माधव और मुरलीधर है और दूसरा सवर्णों का, जिसके प्रमुख सूत्रधार कट्टर सनातन-पंथी जयराम और प० लालनाथ हैं।

सवर्ण हिन्दुओं का आक्रोश यहाँ तक है कि वे गाँधी जी द्वारा अछूतों के मदिर-प्रवेश के उपदेश का विरोध ही नही करते, वरन् उनकी हत्या करने के उपाय भी रचते है। कथानक के मध्य मे हनुमान जी के मन्दिर पर अछूतों द्वारा सभा किये जाने के प्रसग मे सवर्णों और अछूतों मे सघर्ष की स्थिति का निर्माण होता है और क्रांतिवादी दल के सदस्य चन्पति समझौता कराने के प्रयास मे अछूतों द्वारा तिरस्कृत तथा सवर्णों द्वारा पीटे जाते है। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि गाँधी जी के अछूतोद्धार की सामयिक प्रतिक्रिया यह है कि जहाँ अछूतों और सवर्णों का गाँधी जी के प्रति असन्तोष है, वहीं परस्पर विद्वेष भी भयकर है।

सन् १९३५ का चुनाव

सन् १९३५ के ऐक्ट के अनुसार देश मे निर्वाचन की तैयारियाँ तथा चुनाव की पृष्ठभूमि मे लीग और कांग्रेस का विचारधाराओ की क्रमश मुहम्मद व आनन्दकुमार के माध्यम मे अभिव्यक्ति भी मिलती है। लीग से निम्नस्तरीय चुनाव-हथकण्डो की विस्तृत जानकारी दी गयी। अन्तत दिवाकर और अणिमा के वैवाहिक प्रसग के साथ कथानक की इति हो जाती है, जिसमे दिवाकर, आई० सी० एस० अपनी अंग्रेज प्रेमिका से तिरस्कृत होकर अणिमा के साथ विवाह का प्रस्ताव करता है, पर अणिमा विवाह के लिए आई० ए० एस० पद से त्यागपत्र देने को कहती है और दिवाकर असन्तुष्ट होकर चला जाता है।

कथानक एवं पात्र

आलोच्य उपन्यास की यही कथावस्तु है, जिसके सम्बन्ध मे स्वय लेखक ने कहा है - "यह वह युग था, जब साथ ही प्रतिक्रिया की शक्तियाँ फन उठाकर तैयार हो रही थीं। सभी क्षेत्रो मे प्रतिक्रियावाद का बोलबाला हो रहा था। यहाँ तक कि भूतपूर्व क्रान्तिकारी व्यक्तियों मे भी प्रतिक्रिया का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा था। वस्तुत,

शिशु आदि सबके जीवन में हम इसी प्रतिक्रिया को मूर्त देख सकते हैं।"[1] लेखक का यह कथन कि वर्तमान उपन्यास में तो क्रांतिकारी बिल्कुल आउट ऑफ फोकस है, सत्य नहीं है। यह बात अलग है कि क्रान्तिकारी इस उपन्यास में क्रान्तिकारी के रूप में चित्रित न हो कामुक के रूप में ही प्रस्तुत हुए हैं। यदि क्रांतिकारियों में राष्ट्रीय प्रतिक्रिया का यही प्रभाव पड़ा था और जिसका गुप्त जी ने निकट से अवलोकन भी किया होगा तो इसे राष्ट्रीय दुर्घटना ही मानना अधिक उपयुक्त होगा।

पात्रों और उनकी समस्याओं की विभिन्नता के कारण जो तत्कालीन राजनीतिक स्थिति के परिवेश में अपना समाहार पाती हैं, जिसके कारण कथानक में एकसूत्रता नहीं आ सकी है। कथानक बिखरा हुआ है और पात्रों का चारित्रिक विकास छुईमुई-सा है कभी म्लान तो कभी उत्फुल्लित। कथानक के संगठित न होने के कारण प्रधान नायक का अनुमान करना ही कठिन है। पात्रों की कथोपकथन-पद्धति अवसरानुकूल है, किन्तु वसुधा के पागलपन की 'ओव्हर ऐक्टिंग' जी उबाने वाली है। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भी किसी भी पात्र का चरित्र किसी विशिष्ट आदर्श का स्पष्ट संकेतक नहीं है। वह क्रांतिकारियों के राष्ट्रीय कार्य के रूप में स्पष्ट नहीं है और वे नाममात्र के क्रांतिकारी हैं और वैयक्तिक विकृतियों के शिकार हैं। क्रांतिकारियों की धर्मनिरपेक्षता का चित्रण भी स्त्रियों के यौन-सम्बन्धों से ही सिद्ध किया गया है। श्यामा और यूसुफ इसके उदाहरण हैं। पता नहीं, उनकी राष्ट्रीयता का मूल क्या इसी में निहित था? क्रान्तिकारी प्रतिक्रिया' का जो चित्रण किया गया है, उसमें राजनीति की अपेक्षा काम विज्ञान का पांडित्य अधिक उभरा है। अछूतों, सवर्णों एवं मुसलमानों की साम्प्रदायिक प्रतिक्रियाएँ अवश्य स्पष्ट होकर उपन्यास के शीर्षक की सार्थकता सिद्ध करती हैं।

सागर-संगम

'प्रतिक्रिया' के आगे की कथा 'सागर संगम' में वर्णित है जो स्वयं में एक सम्पूर्ण राजनीतिक उपन्यास है। इसमें सन् १९३८-३९ की राजनीतिक परिस्थिति और घटनाओं का अंकन है। लेखक के शब्दों में—स्वतन्त्रता का युग यानी १९२१ से लेकर १९४७ का युग, जिसे मैंने अपनी 'उपन्यास-माला' के लिए चुना है, वह सचमुच बहुत महत्वपूर्ण युग है, क्योंकि मुख्यतः इसी युग के दौरान हमारे पैरों में सैकड़ों वर्षों से परतन्त्रता की जो बेड़ियां पड़ी हुई थीं, वे भनभनाकर टूट गईं। इसमें कितने ही तत्वों ने काम किया। इनमें वे तत्व भी हैं जो बहुत पहले से काम करते आ रहे हैं। उन तत्वों,

---

१ 'प्रतिक्रिया' की भूमिका पृष्ठ ३

प्रतिन्तरंगों, लहरों, प्रति लहरों का उद्घाटन और ऐसा उद्घाटन कि भविष्य के लिए सकेत स्वन दिना आयाम के मिलते रहे, यह इस उपन्यास-माला का अन्यतम उद्देश्य है।' इसी उद्देश्य के अनुरूप उपन्यास का मूल प्रतिपाद्य १९३९ तक के भारतीय स्वतन्त्रता-आन्दोलन की अनेक घटनाओं का विशद वर्णन है, जो सामयिक अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं और परिस्थितियों के परिवेश में प्रस्तुत किये गये हैं। सन् १९३७ से लेकर १९३९ तक की संक्रान्ति वेला में भारतीय राष्ट्रीय संग्राम अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का एक मोहरा बन गया था। यह समय भारतीय आन्दोलन के विशिष्टीकरण का समय था। सन् १९२१ में 'अलीबन्धु' कांग्रेस के आन्दोलन में कंधे से कंधा भिड़ाये थे, वहाँ सन् १९३९ तक वही भारत-विभाजन की नीति पर दृढ़ हो गये। इसके सम्बन्ध में मूल कारणों पर दृष्टिपात करते हुए लेखक राष्ट्रीय भूमिका से आगे अन्तर्राष्ट्रीय भूमिका के प्रकाश में भी समस्या का नया दृष्टिकोण स्थापित करते हैं। उनके मत से जहाँ एक ओर हमारा यह राष्ट्रीय आन्दोलन अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी धारा से प्रभावित होकर आगे आया था, वहीं अनेक राष्ट्रीय न्यूनताओं से वह देश के विभाजन का भी सूत्रधार बना। उपन्यास की भूमिका में ही लेखक इस तथ्य की ओर भी इंगित करता है—'मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि जहाँ हिन्दुओं की यह गलती थी कि राष्ट्रीयता पर हिन्दू रंग जरूरत से ज्यादा बढ़ गया, वहीं भारतीय मुसलमानों में भी कुछ कमी थी। अन्तर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में जब मैंने इस प्रश्न को और विस्तार के साथ देखा तो ज्ञात हुआ कि समाजवादी रूस में भी यहूदियों और मुसलमानों को समाजवादी विचारधारा में लाने में अपेक्षाकृत अधिक दिक्कतों का सामना करना पड़ा।' इन्हीं तत्वों के कारण देश विभाजन का अवसर आया। अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के विवरण एवं विवेचना की सुविधा के लिए शिवशंकर और एलिस के प्रेम के विकास तथा उसके असफल अन्त की उद्भावना की गयी है।

उपन्यास में एक उद्देश्य यह भी स्पष्ट प्रतीत होता है कि क्रान्तिकारी दल बहुत कुछ राष्ट्रीय था, किन्तु उसमें भी प्रेम-चर्चा घर कर गयी थी। उसे नरम दलीय कांग्रेस का भी कोई सहयोग प्राप्त न था। इस काल में यूरोपीय युद्ध की विभीषिका में देश-विदेश के चित्त एवं भविष्य को अस्थिर कर दिया था। देश का कांग्रेसी राजनीतिक मंच भी नरम एवं गरम दल की समस्या में उलझा हुआ था। देशान्तर्गत सरकारी कर्मचारी वर्ग भारतीय जनता की तुलना में अपनी विशिष्टता के मद में चूर था। उसकी राजनीतिक विचारधारा संकुचित थी। वह शासन के परिवर्तन के सम्बन्ध में अनिश्चित विचार रखता था और अपने पद संरक्षण के लिए ही यत्नशील था। सामन्ती वर्ग तो प्रारम्भ से ही अपने को सामान्य समाज से सदैव ही भिन्न मानता रहा है।

अस्तु, इन्हीं उपर्युक्त अनेक प्रसंगों को लेकर 'सागर संगम' का कथानक बढ़

हुआ है, जिसमें राजनीतिक दृष्टिकोण ही प्रमुख है। काल्पनिक पात्रों और प्रेम प्रसंगों के बीच यहाँ-वहाँ तो ठेठ आन्दोलन की कहानी ही दुहरा दी गयी है, जो पाठकों को उसे उपन्यास से कुछ भिन्न समझने के लिए विवश कर देती है और समग्र पाठक की औत्सुक्यपूर्ण रुचि को गहरा आघात लगता है। रामलाल और हेमा की कथा की उद्भावना से अछूतोद्धार की समस्या को प्रस्तुत किया गया है।

उपन्यास का कथानक पत्नी के सम्बन्ध में महत्वाकांक्षी दिवाकर आई० ए० एस० और अरुणा के विवाह प्रस्ताव से प्रारम्भ होकर दिवाकर के अंग्रेज लड़की एलिस के विवाह प्रस्ताव के अन्त के साथ होता है। किन्तु उपन्यास के मुख्य पात्र के रूप में दिवाकर को मान्यता देना सन्देहास्पद लगता है। कारण कि कथानक में सहवर्ती अनेक पात्र इसी रूप में उभर आते हैं, जिनका अस्तित्व कथानक से पृथक् ही सम्बन्ध सूत्र स्थापित करते हुए प्रतीत होता है। उदाहरणार्थ मुश्ताक और सियामाबाई उर्फ रजिया का साम्प्रदायिक प्रसंग, राष्ट्रीय स्तर पर राजेन्द्र और राजा साहब, शिशु और पुरन्दर, अर्चना और धनंजय के क्षीण क्रान्तिकारी तत्व, शिशु सूर्यप्रकाश, पुरन्दर और वसुधा, जयराम और कृष्णगोपाल तथा कौमुदी के हिन्दुत्ववादी प्रसंग, माधव, केशव और हेमा के अछूत प्रसंग, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक क्षेत्र में दिवाकर एलिस और गार्डन के प्रसंग सभी अपने अपने रूप में पृथक् समान स्तरीय उभार लेते हैं। यह सब इस हेतु कि लेखक ने इन प्रसंगों के साथ उस अन्तर्द्वन्द्वपूर्ण काल की विभिन्न प्रवृत्तिमूलक समस्याओं को राजनैतिक स्तर पर उभारने की चेष्टा की है। इन पात्रों और प्रसंगों से गठित चित्र विशुद्ध राजनीतिक है। प्रमुख चित्र क्रान्तिवादी राष्ट्रीयता, हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता, अछूत समस्या, कांग्रेस की नरम एवं गरम दलीय नीतियों का संघर्ष, सरकारी कर्मचारी वर्ग की राष्ट्रीय चेतना की अवहेलना, साम्यवादी प्रगतिशीलता आदि हैं। साम्प्रदायिक विष ने क्रान्तिवादी राष्ट्रीय चेतना को अत्यधिक अहित किया, यही लेखक का मन्तव्य है, जो तत्कालीन राजनीति की देन है। वैसे इन अनेक समस्याओं का इस ढंग से समान स्तरीय अंकन चयन होने पर भी क्रान्तियुगीन वातावरण सजीवता के साथ चित्रित है।

अन्य उपन्यास

उपर्युक्त उपन्यास-सप्तक के उपन्यासों के अतिरिक्त मन्मथनाथ गुप्त के अनेक उपन्यासों में राजनीतिक अथवा अर्ध-राजनीतिक सन्दर्भ मिलता है। इनमें 'बलि का बकरा,' 'बहता पानी,' 'सुधार,' 'गृह-युद्ध,' 'तूफान के बादल,' 'जिद' आदि उल्लेखनीय हैं। 'बलि का बकरा,' और 'बहता पानी' की आधारभूमि लेखक का अपना क्रान्तिकारी जीवन है। कारावास में रचित 'सुधार' में राजनीतिक एवं सामाजिक इति

वृत्त में मानवीय वृत्तियों को अभिव्यक्ति मिली है। 'गृह-युद्ध' में साम्प्रदायिकता के साथ धर्मों की सकीर्ण भावना पर आघात किया गया है। 'तूफान के बादल' में उन कलुषित राजनीतिक स्थितियों पर व्यग्य-प्रहार है, जो भारत-विभाजन में कार्यरत थीं। जिन में बयालीस की क्रान्ति-झलक है, यद्यपि प्रेम-प्रसग ही इसमें प्रमुख हो गया है। सन् १९४२ की पृष्ठभूमि पर इसमें एक ऐसी नारी की कहानी वर्णित है, जो पुरुष को आत्मसमर्पण के चक्रव्यूह में फँसाकर उन्मत्त रहती है। ऐसा प्रतीत होता है कि उपन्यास के अधिकाश पात्र बयालीस की क्रान्ति में देश के कारण नहीं, बल्कि वासना के आकर्षण से ही आन्दोलन के अग बने। नारी के अन्तर का चित्रण यथार्थवादी धरातल पर चित्रित करने पर लेखक को अवश्य सफलता मिली है। किन्तु जहाँ तक राजनीतिक तत्व का प्रश्न है, वे पूर्वग्रह के कारण कला के साथ न्याय नहीं कर पाये हैं। इस लघुकाय उपन्यास में, जिसे एक लम्बी कहानी भी कहा जा सकता है, लेखक ने अपनी दृष्टि से गाँधीवाद, समाजवाद और आतकवाद की व्याख्या की है। यद्यपि इसमें वे किसी के प्रति क्रूर नहीं हुए हैं, किन्तु यह भी नहीं कहा जा सकता कि गुप्त जी ने राजनीतिकतटस्थता का परिचय दिया है। हाँ, लेखक की यह मान्यता कि बयालीस की क्रान्ति मुख्यत जनता का आन्दोलन है, सत्य के निकट है।

यशदत्त के दो उपन्यास

गुरुदत्त और मन्मथनाथ गुप्त के सदृश यशदत्त का भी राजनीति से निकट का सम्पर्क रहा है। सम्भवत यही कारण है कि अपने अधिकाश उपन्यासों में वे राजनीतिक तत्वों की उपेक्षा नहीं कर सके हैं। विषय प्रतिपादन की दृष्टि से उनके उपन्यासों में देश की बदलती हुई सामाजिक एव राष्ट्रीय परिस्थितियों का चित्रण मिलता है। यशदत्त भारतीय राजनीतिक आन्दोलन के एक सक्रिय सैनिक रहे हैं। वे सन् १९३० के नमक-सत्याग्रह और सन् १९४२ की क्रान्ति में जेल भी गये थे। अतएव यह कहना अनुचित नहीं होगा कि उन्हें राजनीतिक कार्यकर्ता के रूप में राष्ट्रीय जीवन के विविध रूपों को निकट से देखने और अध्ययन करने का सौभाग्य मिला है।

यशदत्त के दो दर्जन से अधिक उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें से 'दो पहलू,' 'इन्सान,' 'निर्माण-पथ,' 'अन्तिम चरण,' 'स्वप्न खिल उठा,' 'महल और मकान,' 'बदलती राहें' आदि उपन्यासों में राजनीतिक तत्व विशेष रूप से उभरे हैं। इनमें से प्रथम दो उपन्यासों में स्वाधीनतापूर्व, राष्ट्रीय वातावरण विशेष रूप से चित्रित हुआ है।

'दो पहलू' यशदत्त का प्रथम प्रकाशित उपन्यास है, जिसमें देश की १९३०-३१ की राजनीतिक समस्या—शान्ति या क्रान्ति को अभिव्यक्ति दी गई है। परस्पर विरोधिनी

इन विचारधाराओं को मानने वाले दो नायक एक दूसरे के प्रति सहयोग और सहानुभूति की भावना रख राष्ट्रीय गतिविधियों को स्चालित रखते हैं। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि युग के अनुरूप गांधीवादी और आतंकवादी प्रवृत्तियों का चित्रण करना ही उपन्यासकार का अभीष्ट है।

अपने दूसरे उपन्यास 'इन्सान' में लेखक ने भारतीय इतिहास की दुर्भाग्यपूर्ण घटना राष्ट्र विभाजन को तथा परिणामत होने वाले भयंकर उत्पात और नरमेध की पृष्ठभूमि पर उपन्यास का कथानक रचा है। इस दुखद घटना में भी उसने उज्ज्वल भविष्य के दर्शन कर वर्तमान जीवन की समस्याओं का निरूपण करते हुए मानवता का सदेश देने का प्रयास किया है।

मानवता के प्रति धर्मान्धता की आड में सन् १९४७ के साम्प्रदायिक सघर्षों में नाना प्रकार के जो अमानवीय कार्य हुए, उनका यह उपन्यास सजीव चित्र प्रस्तुत करता है। इनके साथ ही देश की विभिन्न राजनीतिक पार्टियों की कार्य प्रणाली की प्रसगानुकूल समीक्षा देना भी लेखक नहीं भूला है। इसका कलात्मक पक्ष शिथिल है तथा भारतीय राजनीतिक स्वरूप का चित्रण ही प्रमुख हो गया है। उपन्यास का आरम्भ हिन्दू मुस्लिम दंगे के वातावरण से किया गया है और उपन्यास में उसका आवेश और उद्वेग सर्वत्र छाया हुआ है। हिन्दी के प्राय उन सभी राजनीतिक उपन्यासों में, जिनमें राष्ट्र विभाजन की पृष्ठभूमि में पाशविक अत्याचारों को प्राधान्य मिला है, चौंकाने की प्रवृत्ति ही विशेष है। फलत मानवता के प्रति स्वस्थ सहानुभूति की दृष्टि के अभाव से वे सात्विक भाव उत्पन्न नहीं होते, जो साहित्य की समृद्धि प्रदान करते हैं। सच तो यह है कि पाशविक अत्याचारों को कला का रूप देना एक कठिन प्रक्रिया है और समर्थ साहित्यकार से ही सम्भव है। 'इन्सान' में संतुलन और तर्क दोनों का निर्वाह भली भाँति नहीं हो सका है। क्रोध और आवेश में निर्लज्ज नृशसता के ताण्डव की आलोचना इसी कारण प्रभावोत्पादक नहीं बन सकी है। राजनीतिक पार्टियों से परे मानव की जो अपनी सत्ता है उसको लेखक नहीं देख सकता। इस पर भी देश के निर्माण और पारस्परिक सहयोग एवं स्नेह के साथ राष्ट्रोत्थान और मानवता को प्रतिष्ठापित करने का जो सदेश इस उपन्यास में ध्वनित है, उसे सराहनीय ही कहा जायेगा।

राष्ट्रोत्थान का जो बीज 'इन्सान' में था, उसे हमें गुरुदत्त के 'निर्माण-पथ', 'महल और मकान' तथा 'बदलती राहें' आदि उपन्यासों में अकुरित होते देख सकते हैं। इन उपन्यासों में स्वाधीन भारत के निर्माण की दिशा का दिग्दर्शन है।

स्वातंत्र्योत्तर देशीय वातावरण से समन्वित उपन्यास

उदयास्त

'उदयास्त' में टूटते हुए सामन्तवाद का सजीव चित्रण अनुभवजन्य है। यह एक विचारप्रधान उपन्यास है, जिसमें लेखक ने पुराने जीवन के अवसान और नव जीवन के आनन्दमय स्वर्णिम प्रभात की कल्पना की है। लेखक की कल्पना के अनुसार इस नये प्रभात के उदय होते ही किसानों-मजदूरों का शोषण चक्र टूट जायेगा एवं समानता तथा सहकारिता के आधार पर एक नूतन समाज निर्मित होगा। ऐसे समाज की स्थापना पर ऊँच नीच, गरीब अमीर छूत-अछूत की असमानता तिरोहित होगी और मनुष्य सुखमय जीवन यापन कर सकेगा। इस विचार को उपन्यास का रूप देने के लिए देश में स्वतन्त्रता के पश्चात् स्वेच्छाचारी जमींदारों और पूँजीवादी मिल-मालिकों के जीवन में उत्पन्न होने वाली उथल पुथल से युक्त कथानक की रचना की गई है।

राजगढ़ रियासत के उत्तराधिकारी कुँवर सुरेशसिंह और उनकी पत्नी प्रमिला रानी उपन्यास के प्रमुख पात्र हैं। सुरेशसिंह नये विचार और उदार भावनाओं का सुशिक्षित तरुण है और उसका रुख कांग्रेस के प्रति सहानुभूतिपूर्ण है। रियासत में रहने के कारण वे किसानों और जमींदारों के संघर्ष से परिचित हैं ही, अपनी दिल्ली यात्रा के प्रसंग से वे नगर में पाये जाने वाले मजदूरों और पूंजीपतियों के वर्ग-संघर्ष से भी परिचित हो जाते हैं। शोषक वर्ग में जन्म लेने पर भी शिक्षा और आनन्दस्वामी के सत्संग के कारण उनमें शोषक की कठोरता का अभाव है। वह उदार हृदय का व्यक्ति है और बदलते हुए समय के अनुसार उनकी सहानुभूति शोषित किसानों और मजदूरों के साथ है। पिता की मृत्यु के उपरान्त वे राजगढ़ को युग के अनुरूप एक आदर्श ग्राम बनाते हैं और सहकारी फार्मों द्वारा कृषि कर्म को प्रोत्साहित करते हैं। इस तरह राजगढ़ का कायाकल्प होता है।[1]

लेखक ने अपने इस काल्पनिक आदर्श समाज का चित्र सहकारिता के आधार पर बसने वाले ग्रामीण जीवन के रूप में प्रस्तुत किया है। इस समाजवादी दृष्टि से ही वह पूँजीवाद और राष्ट्रवाद का विरोधी तथा अन्तर्राष्ट्रीयता, विश्व-सरकार और समानता का समर्थक है, जो पात्रों के सम्भाषणों में व्यक्त हुआ है। वह युद्ध और हिंसा के आधार पर पनपने वाले राष्ट्रवाद और साम्राज्यवाद को बीते युग का सत्य निरूपित करता है। उसके अनुसार 'निश्चय ही एक लोहे और लोहू से भरा युग बीत चुका।

1　आचार्य चतुरसेन - उदयास्त, पृष्ठ २२२

युद्ध का देवता मर गया साम्राज्यवाद का महल ढह गया और उसी के साथ पूंजी सत्ता और अहंकार भी खत्म हो गये।

स्वाधीनतोपरान्त भारतीय जनतन्त्र से उसे सन्तोष नहीं और उसकी आलोचना करता हुआ वह कहता है यह कैसा जनता का राज्य है ? यह कैसा जनतन्त्र है ? एक तरफ विश्व की जातियां नये मिशन भारत की ओर उन्मुख हो रहा हैं— दूसरी ओर भारत की एक धाम भ्रान्ति में मर रहे हैं और दूसरी जगह में लाल हो रही है। यह सब क्या है ?

उपन्यास में उपन्यासकार ने अछूतों राजाओं मजदूरों मिल-मालिकों शरणार्थियों किसानों गांव और शहर अमीर-गरीब ऊंच-नीच सभी की समस्याओं का सम्र चित्रण किया है आधुनिक युग की राजनीतिक सामाजिक आर्थिक और धार्मिक विषयों की विशद व्याख्या का प्रयत्न भी उसने किया है इतना ही नहीं अपितु देशीय समस्याओं के साथ-साथ लेखक अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति का अवलोकन करना भी नहीं भूलता। इस प्रसंग में हमें साम्यवाद पूंजीवाद प्रजातन्त्र विश्वसंघ पर अपने विचार व्यक्त करते हुए विश्व स्तर पर निर्मित राजनीतिक गुटों और दलबन्दियों की आलोचना आनन्द स्वामी के माध्यम से प्रकट करता है। वस्तुतः आनन्दस्वामी के वार्तालाप और व्याख्यान लेखक के ही विचार हैं और उपन्यास में राजनीतिक पक्ष का काम करते हैं।

इन्हीं राजनीतिक विचारों को अभिव्यक्ति देने के लिए अनेक राजनीतिक पात्रों की सृष्टि की गयी है। अधिकांश राजनीतिक पात्र कांग्रेसी हैं। इनमें से एक है ठाकुर राजनाथसिंह जो शिक्षित नवयुवक है और कुछ बागी करता है।

दूसरे कांग्रेसी हैं भगतू चमार जो कांग्रेस ने हरिजन आन्दोलन के पारस-पत्थर स्पर्श हो गये हैं भगतराय। बाइस बरस का निर्भय तरुण शरीर पर स्वच्छ खद्दर का कुर्ता और सिर पर गांधी टोपी। भगतराय कांग्रेस की देन है और उसका कमठ सदस्य है। मैट्रिक तक शिक्षा पायी है और टैकनिकल स्कूल में खराद का काम सीखकर मिस्त्री हो गया है। राजा साहब उससे पूर्ववत् बेगार लेना चाहते हैं पर वह इन्कार कर देता है। इतना ही नहीं अपितु वह राजा पर दुर्व्यवहार का मुकद्दमा भी दायर कर देता है। यह समय का परिवर्तन है जिसकी आलोचना करते हुए राजा साहब कहते हैं अब तो यह भटियारों का राज है। जो न हो जाय वही थोड़ा। वह तो अंग्रेजों के दम का जहूर था कि रईसों की कद्र होती थी। अब तो सब रियासतें ही धूल में मिल गईं न अली खानदान का कद्र न लियाकत की। बस जेल का सर्टिफिकेट चाहिए। जितनी बार जेल गये उतनी ही बार मिनिस्टर बन जाइए।[1]

---

१ आचार्य चतुरसेन उदयास्त पृष्ठ ६६

कांग्रेस की आलोचना

'उदयास्त' में कांग्रेसी शासन की अनेक स्थलों पर आलोचना की गयी है। उसे अवसरवादियों और स्वार्थियों का रंगमंच निरूपित करने में कोई कोर-कसर नहीं रखी गयी है। रेणुका के पति के शब्दों में "कांग्रेस के तो अब बदनामी ही के दिन हैं। पुरानी शान शौकत तो अब उसकी खत्म हो गई है। मैं तो मसलहतन उसका साथ दे रहा हूं, ऐसा न करूं तो मेरा सारा कारोबार ही ठप हो जाए।"[१]

कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल, उसके सदस्यों की शान शौकत तथा स्वार्थपरता की कटु आलोचना की गई है। राजा साहब एम०ए० फेल मुख्यमंत्री चौधरी की शैक्षणिक अयोग्यता, किन्तु राजनीतिक सांठ गांठ की तिकड़म की ओर इंगित करते हैं।[२] ये कांग्रेसी मिनिस्टर ऐयाशी में अंग्रेजों से कम नहीं। "बड़े-बड़े अंग्रेज अफसरों के बंगलों में खद्दर-धारी कांग्रेसी रहते हैं, पर गरीबों की पहुंच न सफेद चमड़ा वाले अंग्रेजों तक थी, न सफेद खद्दर पहनने वाले इन कांग्रेसियों तक।"[३] इतना ही नहीं अपितु उनकी विलास-प्रियता इतनी बढ़ गई है कि 'पेशाब करने को भी मोटरों में जाते हैं।'[४]

साम्यवादी पात्र

'उदयास्त' में वहीद, पद्मा व कैलास साम्यवादी पात्र हैं, जो साम्यवादी विचार-धारा को अभिव्यक्ति देते हैं। वहीद के रूप में लेखक ने साम्यवादी पात्र का 'कैरीकेचर' प्रस्तुत किया है। वह मटरगश्ती करता है और शाम को घर आकर खाकर सो रहता है। रोटियां उसे दस-बारह चाहिए। घर मां चलाती है, बाप बूढ़ा है। पर वहीद है कि 'घर पर एक लाल झण्डा लगाया हुआ है।' कभी-कभी वह ज़ोर-ज़ोर से 'मजदूरो! एक हो जाओ' के नारे लगाने लगता है, उसे इस बात की जरा भी परवाह नहीं कि कोई उसकी बात सुनने वाला भी है या नहीं।"[५] वह फतवे देता है "ये बुर्जुए हम मिहनतकशों का खून पीने से तब तक बाज न आएँगे, जब तक इनका खात्मा नहीं कर दिया जाता है। ये बुर्जुए हमेशा के बुजदिल हैं, अपनी कमजोरी छिपाकर दूसरों पर रुआब डालते हैं, लेकिन उनकी हालत उस तपेदिक के मरीज की जैसी है जो खून थूक

---

१ आचार्य चतुरसेन : उदयास्त, पृष्ठ १८२
२. आचार्य चतुरसेन : उदयास्त, पृष्ठ ६६
३ आचार्य चतुरसेन : उदयास्त, पृष्ठ १४७-१४८
४ आचार्य चतुरसेन : उदयास्त, पृष्ठ ७२
५ आचार्य चतुरसेन : उदयास्त, पृष्ठ २४-२५

रहा हो और दम तोड रहा हो।"[1] वह मेहनतकश मजदूरों की बढ़ती हुई ताकत का बयान भी करता है।

पर गाँव का सुनार उसकी सारी दलीलों पर इस एक वाक्य से ही पानी फेर देता है : 'अबे यहाँ दुनियाँ के मजदूर कहाँ हैं, क्यों चीख रहा है।'[2]

वहीद के विपरीत कैलाश में साम्यवादी कार्यकर्ता का रूप अधिक अच्छा उभरा है। वह होनहार किन्तु टाइपिस्ट का पुत्र होने के कारण अर्थाभाव से पीड़ित है। कम्युनिस्ट होने से उसे नौकरी से पृथक कर दिया जाता है। उसमें चारित्रिक दृढ़ता है पर उसका समुचित विकास दिखलाने में लेखक असफल रहा है। पद्मा धनी बाप की बेटी होने पर भी कैलाश की प्रेमिका है। आगे चलकर यह प्रणय विवाह में परिणत हो जाता है। पद्मा कैलाश के प्रभाव में आकर ही कम्युनिस्ट विचारधारा ग्रहण करती है, पार्टी का अखबार बेचती है और कैलाश की सहयोगिनी के रूप में आगे आती है।

अवसरवादी नेता

'उदयास्त' में अवसरवादी नेताओं का चित्रण भी मिलता है। पं० शिवशंकर शुक्ल व प्राणनाथ इसी श्रेणी के नेता हैं। 'शुक्ल' जी अवसरवादी कांग्रेसी हैं। कार्य सिद्धि के सामने न्याय-अन्याय, उचित-अनुचित का आप विचार नहीं करते हैं। कांग्रेस में बहुत सी कुर्बानियाँ करते आये थे। पर एम० एल० ए० होने पर धन्धा भी चलाते थे। वे राजा साहब से एक लाख रुपये कांग्रेस कमेटी के लिए व पाँच हजार स्वयं के लिए लेकर सेंगत् का टिकट राजा साहब को दिलवा देते हैं, जिससे वे निर्विरोध चुन लिये जाते हैं। "चाँदी का जूता कांग्रेस पर भी असर कर सकता है—जन-साधारण नहीं समझ सका।"[3]

समाजवादी दल की सदस्या रेणुका की पुत्री है। कामरेड पद्मा और पति हैं नगरसेठ। ये सभी स्वार्थवश राजनीति के दलदल में लिप्त हैं।[4]

सम सहयोग की सर्वोदयी भावना

कांग्रेसी, साम्यवादी और सोशलिस्ट पात्रों की सृष्टि समसामयिक राजनीतिक दलों और उनके कार्यकर्ताओं की स्थिति स्पष्ट करने हेतु की गयी है। किन्तु लेखक की राजनीतिक भावना इनमें से किसी से भी साम्य नहीं रखती। उसके विचारों का प्रति-

१ आचार्य चतुरसेन उदयास्त, पृष्ठ ४३
२ आचार्य चतुरसेन : उदयास्त, पृष्ठ ४६
३ आचार्य चतुरसेन उदयास्त, पृष्ठ २११
४ आचार्य चतुरसेन उदयास्त, पृष्ठ १३३

निर्दिष्ट करते हैं स्वामी जी। वस्तुतः स्वामी जी के रूप में लेखक का ही यह वक्तव्य है 'अब युद्ध, संघर्ष के दिन बीत जाना चाहिए। अब तो विश्व-एकता और पारस्परिक सहयोग का काल उपस्थित है। अब मनुष्य को स्वाधीन होने की नहीं, सबसे सहयोग करने की, एक संयुक्त विश्व-समाज बनाने की—जिसका आधार प्रेम और कर्तव्य हो—सोचनी चाहिए।'[1]

सम-सहयोग की यह भावना गाँधीवादी सर्वोदय सिद्धान्त पर आधारित है। स्वामी जी इसी को स्पष्ट करते हुए कहते हैं "गाँधी जी ने भारत को सीधी राह दिखा दी है। मनुष्य के प्रति मनुष्य का आत्मसमर्पण। कर्तव्य पर अधिकारों का बलिदान। भारत यदि इस पथ पर चलेगा तो वह विश्व का नेतृत्व करेगा। संसार के मानवों को अभयदान-जीवनदान देगा।" स्वामी जी इसी सम सहयोग के आकांक्षी हैं। उनका कथन है "मैं सबका सहयोग चाहता हूँ। मैं नहीं समझता कि सब लोग कभी बराबर हो सकेंगे। पैर पैर रहेंगे-सिर सिर रहेगा। पैर अपना काम करेंगे और सिर अपना—मैं केवल यह चाहता हूँ कि पैरों का सिर से सम-सहयोग रहे। पैरों को सिर पर बोझ ढोना असह्य न हो, और सिर पैर में एक काँटा चुभे तो भी उन्हें सावधान कर दे। इसी का नाम है सम सहयोग।"[2] और यदि "समाज का प्रत्येक व्यक्ति बिना शर्त दूसरे के प्रति आत्म-समर्पण कर दे तो यह सम-सहयोग आसानी से हो सकता है।"[3]

इसी विचार को केन्द्र बनाकर काल्पनिक कथावस्तु की रचना से उपन्यास में काल्पनिक आदर्श समाज का ताना-बाना बुना गया है।

बगुले के पंख

'उदयास्त' का मँगतू 'बगुले के पंख' में जुगनू के रूप में विकास पाता है। गाँधी जी के हरिजनोद्धार के कार्यक्रम ने मँगतू को भगतराम बनाया और राजनीतिक चेतना का समावेश किया। वह कांग्रेस टिकट पर एम०एल०ए० के उम्मीदवार के रूप में सामने आया, पर परिस्थितियों के कारण राजनीतिक स्वार्थपरता से उसे उम्मीदवारी से हटना पड़ा। 'बगुले के पंख' का नायक जुगनू मेहतर अधिक तिकड़मबाज है और परिस्थितियों के अनुकूल अपने को ढाल कर न केवल एम०पी० अपितु वाणिज्य मन्त्री तक बन जाता है। जुगनू के माध्यम से लेखक ने सामयिक राजनीतिक और अवसरवादी नेताओं पर कठोर व्यंग्य किया है।

---

१ आचार्य चतुरसेन : उदयास्त, पृष्ठ ७९
२ आचार्य चतुरसेन : उदयास्त, पृष्ठ ८०
३. आचार्य चतुरसेन : उदयास्त, पृष्ठ ८१

जनतंत्र की स्थापना हो जाने पर भी भारतीय शासनतंत्र में कोई परिवर्तन नहीं आया। 'अंग्रेजी राज चला गया। उसकी जगह कांग्रेसी राज की स्थापना हो गयी, पर परम्परा वही रही। योग्य क्लर्कों और अफसरों के सिर पर अंग्रेज की जगह कोई कांग्रेसी आ बैठा। अंग्रेज और कांग्रेसी में थोड़ा ही अन्तर है। अंग्रेज की चमड़ी गोरी और सूट काला था। कांग्रेसी की चमड़ी काली और शेरवानी बगुला पंख-सी सफेद खादी की है। अपने दफ्तर के सम्बन्ध में वह कुछ नहीं जानता पर इससे कोई काम रुकता नहीं है। सिर्फ उसे दस्तखत करने पड़ते हैं और यह काम वह कीमती फाउण्टेन पेन से कर लेता है। उसके दफ्तर का बड़ा बाबू जानता है कि वह गधा है।'[1]

इसका दोषी लेखक प्रजातन्त्र की शासन प्रणाली को ही मानता है, जो दलीय स्थिति के आधार पर सत्ता का निर्णायक तत्व बन जाती है। "गणतन्त्रों का एक भारी दोष यह है कि उनमें योग्यतम व्यक्ति को अधिकार नहीं मिलता। गुटों के प्रतिनिधि को अधिकार है। चाहे उसमें योग्यता हो या नहीं।"[2] दलीय स्थिति बनती है चुनाव से और चुनाव जीतने के लिए जो जोड़-तोड़ होती है, उसका सजीव चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में मिलता है।

जुगुनू भी चुनाव लड़ते हैं और भ्रष्ट आचार का सहारा ले विजयी होते हैं। दर्जनों बार का जेलयाफ्ता विद्यासागर, जिसके लिए कोई काम असाध्य न था, जुगुनू के चुनाव का संचालन करते हैं। इस प्रसंग में चुनाव में अपनाये जाने वाले घृणित कार्यों का पर्दाफाश किया गया है।[3] चुनाव में स्त्रियों के जुलूस की व्यवस्था व जातिवाद के प्रश्रय के अनेक रंगीन चित्र उकेरे गये हैं। जातिवाद को प्रोत्साहन देने के लिए जनसंघी तरीका देखिए—"बस दो-चार बात ध्यान में रखनी है, हिन्दू धर्म की जय हो, गोवध बन्द हो, पाकिस्तान मुर्दाबाद, काश्मीर हमारा है। बम जै गंगा जी की।"[4] उम्मीदवारों के चयन के समय भी कांग्रेस और जनसंघ दोनों जातिवाद की दृष्टि से ही सोचते हैं।[5]

कांग्रेस की स्थिति

स्वाधीनता के बाद कांग्रेस की दयनीय स्थिति, पारस्परिक दलबन्दी और उससे उत्पन्न अव्यवस्था का चित्रण विस्तृत रूप से मिलता है। प्रथम आम चुनाव के समय

१. आचार्य चतुरसेन : बगुले के पंख, पृष्ठ २५२
२. आचार्य चतुरसेन : बगुले के पंख, पृष्ठ २३६
३. आचार्य चतुरसेन : बगुले के पंख, पृष्ठ २१५
४. आचार्य चतुरसेन : बगुले के पंख, पृष्ठ १७७
५. आचार्य चतुरसेन : बगुले के पंख, पृष्ठ १७४

कांग्रेस की स्थितियाँ चित्रित की गयी है : 'कांग्रेस की सारी प्रतिष्ठा और सारी साख का दिवाला निकल चुका था। उसका तप और कष्ट से संचित धवल यश मैला और गंदा हो चुका था। खद्दर की पोशाक हास्यास्पद और ढोंग समझी जा रही थी।—अवसरवादी कांग्रेस में घुसकर ऊँची कुर्सियों पर जमते जा रहे थे। पुराने तपे हुए कर्मठ देशभक्त निराश और क्षुब्ध हो या तो अब सरकारी बेंचों का विरोध करते थे या अपनी अलग डफली, अलग राग अलाप रहे थे।'[1]

विरोधी राजनीतिक दल के रूप में कम्युनिस्ट पार्टी के बढ़ते हुए प्रभाव का संकेत देते हुए उसे बाधक निरूपित करता है—'सबसे बड़ी बाधा थी कम्युनिस्ट गुट की, जो प्रत्येक सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था को सोवियत दृष्टिकोण से देखता था। वह देश और सरकार के ऐसे किसी भी उचित-अनुचित कार्य का, जो कम्युनिस्ट क्रिया-कलापों के विपरीत हो, विरोध करता था, और यह गुट धीरे-धीरे देश की सबसे बड़ी राजनीतिक और आर्थिक बाधा बनता जा रहा था।''[2]

इस तरह वह भारतीय गणतन्त्र की स्थिति को असन्तोषपूर्ण मानता है और उसके शब्दों में इस भारतीय गणतन्त्र की दशा ठीक रेलगाड़ी के उस तीसरे दर्जे के डिब्बे के समान थी, जिसमें सुविधाएँ कम और असुविधाएँ अधिक थी।'

प्रशासन की लाल फीताशाही का एक कारण मन्त्रियों की अयोग्यता और नौकरशाही का बढ़ता हुआ प्रभाव है। यह अंग्रेजों की देन है। लेखक का मत है कि 'आजकल के मन्त्रालय मन्त्रियों की योग्यता पर नहीं चलते, अपने संगठन पर चलते हैं। वही बात जो हम कई बार कह चुके हैं, यहाँ फिर कहेंगे। घोड़ों पर गधा सवारी गाँठता है। अंग्रेज ही यह परम्परा छोड़ गये थे।'[3]

मन्त्रियों की अयोग्यता पर लेखक ने अनेक स्थलों पर तीक्ष्ण व्यंग्य किया है—"मिनिस्टर बनने के लिए ढीठता ही एकमात्र योग्यता है। जरा सी बेहयाई भी हो तो वह और खिल उठती है। क्योंकि वैसी हालत में मिनिस्टर हर मुश्किल काम के समय भी हँस सकता है। खासकर फोटो खिंचवाते वक्त तो जरूर—खिल—जरूर।''[4]

राजनीतिक गतिविधि और नारी

राष्ट्रीय आन्दोलनों ने भारतीय नारी-समाज को आन्दोलित किया और बड़ी संख्या में महिलाओं ने राजनीति के कर्मक्षेत्र में प्रवेश किया। प्रस्तुत उपन्यास में विमा

---

१ आचार्य चतुरसेन बगुले के पंख, पृष्ठ २३७
२ आचार्य चतुरसेन : बगुले के पंख पृष्ठ २३७
३ आचार्य चतुरसेन बगुले के पंख, पृष्ठ २५३
४ आचार्य चतुरसेन : बगुले के पंख, पृष्ठ २५३

और शक्तिभारती ऐसी ही महिलाओं की प्रतीक है। ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं के प्रवेश को उपयुक्त नहीं मानता। यही कारण है कि राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने वाली महिलाओं को वह व्यंग्य से, 'नई रोशनी की अधिष्ठात्री प्रभातफेरी भाषण चन्दा ग्रहण निपुणा, कांग्रेस पूता खद्दरधारिणी दिव्य देवियाँ' संबोधित करता है। स्त्रियों की स्वतन्त्रता पर अभिमत देते हुए वह कहता है 'बूढ़े ब्रह्मा ने गांधी का अवतार धारण कर उन्हें वरदान दिया कि वे अब स्वच्छन्द विचरण करें प्रभातफेरी करें, देश की धुन में हजारों नर नारियों के बीच गला फाड़ फाड़ कर चीखें चिल्लायें। जेल जायें फांसी चढ़ें, मरें किन्तु अमर रहें। पति पर से उनका असाध्य एकाधिकार हटा दिया गया। साक्षात् स्वामी कार्तिकेय ने नेहरू चाचा के रूप में जन्म लेकर उन्हें तलाक का वरदान दे दिया। अब वे अँधेरे ही भोर के तड़के प्रभात फेरी के नाम पर जहाँ जो चाहे जायें जो भी चाहे करें।[1] कहना न होगा कि आचार्य जी ने नारी-जागरण को उसके वास्तविक परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास नहीं किया। वे प्राचीन संस्कृति के दुराग्रह से ही ग्रस्त हैं। सम्भवतः यह उनका आर्य-समाजी प्रभाव हो, जो यूरोपियन नारी-स्वच्छन्दतावाद का विरोधी है।

अमरबेल

गाँधीवाद की पृष्ठभूमि पर अमरबेल जनपद-जीवन की विविध समस्याओं तथा सहकारिता, ग्राम शिक्षा, प्राचीन और नवीन का समन्वय, हरिजनोद्धार को वाणी देता है। इन समस्याओं के सम्बन्ध में लेखक ने तर्क वितर्क द्वारा सैद्धान्तिक पक्ष पर घटनाओं की व्यावहारिकता सिद्ध की है। इस प्रक्रिया में उनका दृष्टिकोण सर्वथा राष्ट्रीय और प्रगतिशील है। उपन्यास का नामकरण भी सोद्देश्य है। अमरबेल है शोषक का प्रतीक और लेखक के अनुसार अनीति से अर्थलाभ करने वाले व्यक्ति समाज में वैसे ही हैं जैसे हरे भरे पेड़ पर अमरबेल। इस कथन की उपयुक्तता सिद्ध करने के लिए ही जमींदार देशराज, प्रेयसी अंजना नाहरगढ़ के राजा बाघराज तथा डाकू कालो सिंह के अफीम के अवैध व्यापार तथा उनके पराभव की कहानी 'अमरबेल' की मुख्य कथा है। जमींदार देशराज के चरित्र चित्रण से जमींदारी उन्मूलन के उपरान्त जमींदारों द्वारा वैयक्तिक महत्वाकांक्षा का बदलता हुआ रूप प्रस्तुत किया गया है। वह किसानों पर अत्याचार भी करता है और सहकारी आन्दोलन में भाग ले सरकारी अधिकारियों पर प्रभाव डालने हेतु उसमें कुछ भूमि लगा देता है पर अधिक भूमि पर स्वतन्त्र खेती करता है। वह सुहाना की सहकारी समिति का प्रधान अवश्य हो जाता है, पर सहकारिता के प्रति उसके हृदय में स्थान नहीं।

१ आचार्य चतुरसेन बगुले के पंख, पृष्ठ २०६

देशराज के पुराने जमींदारी के रवैये के विरुद्ध गाँव के लोग सक्रिय आन्दोलन छेड़ते हैं, जिसमे प्रमुख हिस्सा लेता है टहल, जो वर्ग-संघर्ष तथा साम्यवादी धारा का पोषक है। उसके उग्र विचारों का ही यह प्रतिफल है कि ग्रामीण कई वर्गों मे विभक्त हो परस्पर लड़ने लगते हैं। टहल देशराज जैसे व्यक्ति से विक्षुब्ध है, क्योंकि वह पूँजीवादी है। टहल को मार्ग से हटाने के लिए देशराज डाकू कालीसिंह की सहायता से उसे और उसके साथियों पर आक्रमण करा मार डालने का षड्यन्त्र करता है, पर असफल रहता है। टहल मरणासन्न स्थिति मे सदर अस्पताल से आया जाता है, जहाँ ग्राम के डाक्टर सनेही की परिचर्या से स्वस्थ होता है। उसकी आत्मिक स्थिति मे भी परिवर्तन होता है और गाँधीवादी डाक्टर सनेही के कारण उसका हृदय परिवर्तन हो जाता है।

डाक्टर सनेही गाँधीवाद और समन्वयवाद के प्रतीक हैं और प्रेम और सहयोग से सामाजिक विकास का स्वप्न देखते हैं। वह सहकारी कार्यों मे पूर्ण सहयोग देते हैं। पूँजीवादी देशराज विघ्नकर्ता हैं, पर सनेही अपने आत्म-बल और आस्था से दृढ़ हैं। टहल के हृदय-परिवर्तन से उनकी आस्था को बल मिलता है और इस प्रसग से हिंसात्मक प्रवृत्ति पर अहिंसा विजयिनी होती है।

इधर देशराज और बाघराज मे सम्पत्ति को लेकर वैमनस्य होता है। कालीसिंह डाकू बाघराज के इशारे पर देशराज को लूटता है और देशराज पुलिस को सूचना दे बाघराज को पकड़वा देता है। इस पर कालीसिंह देशराज से बदला लेने का प्रण करता है। देशराज मे धन की आसक्ति होती है और वह ग्राम मे खेती करने लगता है और गाँव मे शान्ति और श्रीवृद्धि होती है। समय पा कालीसिंह टहल और देशराज के घर पर आक्रमण करता है। ग्रामीणों की तत्परता से डाकू-दल के कई सदस्य और स्वय कालीसिंह मारा जाता है। इस प्रसग मे वर्मा जी ने ग्राम-रक्षा का एक सशक्त चित्र प्रस्तुत किया है, जो वर्तमान डाकू-समस्या का ही निदान है।

'अमरबेल' मे गाँधीवादी भावना प्रधान है। उपन्यास की समस्या है 'अनीति से रुपया कमाने की धुन गाँवों तक मे व्यापक रूप से फैली है। साहूकारी, सेनी, रिश्वतें, सबमें। समाज में यह घुन की तरह लगी हुई है। जैसे हरे भरे पेड़ पर अमरबेल।' अतएव प्रगति, सुख, प्रेम, सतोष सभी वट वृक्ष सूख कर गिर रहे हैं। धन पूँजीवादी सत्ता का प्रतीक है और उपन्यास के पूँजीवादी पात्र देशराज, राजा बाघराज, ग्रामीण साहूकार, बनमाली सभी उसके पोषक है और अपनी कार्यविधि से शोषण, हिंसा और द्वेष का प्रसार करते हैं। इसके ठीक विपरीत है टहल, जो साम्यवाद को ही पूँजीवाद के विरुद्ध एक प्रभावकारी अस्त्र मानते हैं। इस तरह उपन्यास का एक छोर पूँजीवाद और दूसरा साम्यवाद है और जिसके बीच की कड़ी हैं, सनेही जी, जो व्यक्ति के महत्व को स्वीकार करके भी, सेवा, त्याग, हृदय-परिवर्तन पर आस्था रख राष्ट्र-अस्तित्व

म ही समस्या का समाधान पाते है। वस्तुत वे प्राचीन और नवीन, व्यक्ति और समाज विज्ञान और अध्यात्म के सघष के बीच समन्वयवादी के रूप मे उठ उभरते हैं।

वे सहकारी सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं– स्वतत्रता और समानता का समन्वय सहकारी सिद्धान्त कर सकता है। [1] और समाज की आर्थिक प्रगति का शासन वज्ञानिक योजनाएं करें और दोनो को प्राण शक्ति अध्यात्म दे तो समाज का निरन्तर कल्याण होता रहे।"[2] यहाँ पर लेखक ने मार्क्सवादी आर्थिक साम्य सिद्धान्त को गाँधीवादी सहयोगी आर्थिक सिद्धान्त के समीप लाकर समझौता उपस्थित किया है।

इन्हीं सिद्धान्तो के मनुसार उनका चरित्र विकासमान होता है। उनका विश्वास है त्याग और सेवा म और इन्हीं गुणो के वे स्वय प्रतीक बन जाते हैं। उनका कथन है अभय होने के लिए घृणा और ईर्ष्या का त्याग क्षोम मे कमी, ईश्वर मे विश्वास बहुत जरूरी है, हिम्मत के साथ कठिनाइयो का मुकाबला करना, उन पर खेल-कूद के जरिये हसना और मजिल का तरफ दृढता से बढे चले जाना ही जीवन है–इसी क्रिया के द्वारा भीतर वाली अमरबेल मुरझा जावेगी। [3] वे व्यक्ति के सुधार से ही समाज का सुधार सम्भव मानते है तथा जनतान्त्रिक पद्धति पर उनकी निष्ठा है।[4] वे योजना का स्वागत कर उसम अपना सहयाग दते हैं। वे सही अर्थों म गाधीवादी पात्र हैं।

दूसरा राजनीतिक पात्र है टहल प्रारम्भ में साम्यवादी और सनेही के सम्पर्क मे आने के बाद हृदय-परिवर्तन होने से समन्वयवादी। साम्यवादी के रूप मे वह अत्यन्त सक्रिय है। वह कहता है मैं अराजक नही, समूहवादी हूँ, रूढियो का सहार और वर्ग-सघर्ष मे विश्वास करने वाला पुनरुत्थानवादियो का घोर विरोधी हू। वह मानता है 'नया जीवन, नयी लहर, प्रगति, नया सवेग इस प्राचीन की श्रद्धा और पूजा के ढकोसलो की जकड मे ही तो रुंध रुंध जा रहे हैं।[5] वह श्रम को महत्व देता है और उसका विश्वास है 'समाज पर जो कूडा-कचरा, घास फूस छा गया है उसका साफ किये बिना समाज के नये अकुर और किसलय नहीं पनप सकेंगे। एक दूसरे के साथ सच्चा और प्यार से कसा हुआ गठबधन पुरानी गाँठो फाँसो और गुत्थियो के काट फेंकने के बिना

---

१ 'अमर बेल' की भूमिका से
२ 'वृन्दावन लाल वर्मा अमर बेल पृष्ठ ४६४
३ वृ दावनलाल वर्मा अमर बेल पृष्ठ ४४०
४ वृन्दावनलाल वर्मा अमर बेल पृष्ठ ४४९ ४५१
५ वृ दाबनलाल वर्मा अमर बेल, पृष्ठ ५२

न हो सकेगा।"[1] यहाँ साम्यवादी दर्शन की लेखक ने स्पष्ट व्याख्या की है। भले ही हम उसे गाँधीवादी विचार कहें। सच तो यह है कि गाँधी जी ने ईश्वर मे अटल विश्वास रखने की शिक्षा दी है, किन्तु उन्होंने ईश्वरवाद की ओट मे शोषण को कभी प्रश्रय देने का अभिप्राय नही व्यक्त किया है, जब कि मार्क्स ने ईश्वरवाद की ओट मे घोर जनशोषण से ऊब कर ही धर्म की करारी भर्त्सना की थी।

इस तरह हृदय परिवर्तन होने पर भी टहल प्रगतिशील, गतिशील पात्र है।

संक्षेप मे अमरबेल मे ग्रामीण समाज के उठते शोषकों और योजना व सहकारिता के माध्यम से पनपते हुए ग्राम्य-जीवन का चित्रण है। इसमे ही दूसरा प्रश्न हिंसा प्रयोग का निहित है। हिंसाविरोधी तत्वों का उन्मूलन कर अहिंसा प्रतिष्ठित की गयी है और निर्माण-कार्य मे अहिंसा के महत्व को प्रतिपादित किया गया है।

कलात्मक दृष्टि से भी 'अमरबेल' वर्तमान राजनीतिक विचारधारा का एक सफल उपन्यास है। कथानक पूर्णतया सुगठित मे वृत्त बनाकर चलता है, अन्य अन्य अधिकांश राजनीतिक उपन्यासों की शृंखलाहीनता इसमे नही मिलती। कथावस्तु अनेक समस्याओं को उठाती और उनका समाधान प्रस्तुत करते हुए आगे बढ़ती है और उसमे आवश्यक मोड़ और जिज्ञासा का स्रोत वर्तमान है। औत्सुक्य-निर्वाह भी है और अन्त सुखात्मक कर गाँधी जी के रामराज्य की भावना को यथार्थ की भूमि पर सपुष्ट किया गया है। कथानक स्वाभाविक रूप से अग्रसर होता है और राजनीति को समेटकर भी प्रचारात्मक नही लगता, क्योंकि यह जीवन के निकट अनुभव और अध्ययन पर आश्रित है।

भग्न मन्दिर

अनन्त गोपाल शेवडे का 'भग्न मन्दिर' स्वाधीनता के बाद के राजनीतिक वातावरण का यथार्थ की भूमिका पर किया गया चित्रण है। कांग्रेसी प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार ने जनता के मन्दिर को भग्न कर दिया है और सत्य पर असत्य का आवरण पड़ गया है।

'भग्न मन्दिर' इसी भावना को लेकर लिखा गया है। साप्ताहिक हिन्दुस्तान मे अपने उपन्यासों की चर्चा करते हुए शेवडे जी ने 'भग्न मन्दिर' की रचना पर प्रकाश डालते हुए कहा है 'मेरा नवीनतम उपन्यास 'भग्न मन्दिर' स्वातन्त्र्योत्तर भारत की पृष्ठभूमि पर लिखा गया राजनीतिक उपन्यास है, जिसमें 'ज्वालामुखी' का आदर्शवादी नायक राष्ट्रीय चारित्र के गर्वोन्नीण ह्रास को देखकर खिन्नता और विफलता के वातावरण

१ वृन्दावनलाल वर्मा 'अमर बेल' पृष्ठ ६१
२ वृन्दावनलाल वर्मा अमर बेल, पृष्ठ ३००

मे मानो पुनर्जन्म पाता है और पूछता है—'क्या यही खण्डित चित्र देखने के लिए, भारतीय स्वातन्त्र्य की भग्न मूर्ति देखने के लिए ही मुझे फाँसी पर चढाया गया था ?' पर वास्तव मे वह विफल एव निराश नही है, भारत के गौरवशाली भविष्य के बारे मे दृढ प्राणवान एव आश्वस्त है। हम क्या थे और क्या हो गये, कैसे सुन्दर और सुनहरे हमारे सपने थे, वे किस प्रकार टूट गये और क्या करने से हम फिर सही मार्ग पर जा सकते हैं, यही सब इस उपन्यास म है।'

'भग्न मन्दिर' में एक प्रदेश के ऐसे मुख्य मन्त्री के प्रशासन मे व्याप्त भ्रष्टाचार की कहानी चित्रित है, जो स्वतन्त्रता के पूर्व त्यागी, राष्ट्रभक्त और कर्मठ सेनानी थे, पर वही सत्ता प्राप्ति के उपरान्त भ्रष्टाचार के गर्त मे फँस जाते हैं।

जाशी जी का राज्य भ्रष्टाचार का केन्द्र बन जाता है। स्थिति ऐसी है कि 'नौकरशाही म अपने पराये का भेद चल रहा है। गुप बाजी और दलबन्दी चल रही है। ठेके, दुकानें, ऐजिन्सयाँ—ऐसा कोई धन्धा नहीं, जिसमें उनके रिश्तेदारों का साझा न हो। भले सरकारी अफसर उनसे दबते हैं, और चलतेपुर्जे अफसर उन्ही की खुशामद करके तथा अपनी दलाली देकर अपनी तरक्कियाँ करा लेते हैं।'[1]

काग्रेस मन्त्रिमण्डल

मन्त्रिमण्डल के सदस्यो के निम्न स्तरीय एव स्वार्थपूर्ण कृत्यो का विस्तृत चित्रण इस उपन्यास में मिलता है। जिन्होने केवल त्याग, मितव्ययिता, सादगी एव सरलता का जीवन देखा था, उनके हाथ म शासन की बागडोर आ गयी, उसके साथ ही साथ आराम और सुख भोग की सामग्री भी मिली। मुख्य मन्त्री महोदय के कमरे की साज-सज्जा देखकर धनजय को लगता है कि 'इतिहास के कई वर्ष उलट गये और मध्ययुगीन सामन्तशाही का नक्शा उसकी आँखो के सामने नाच उठा, मानो वह किसी मुगल सम्राट के दरबार म बैठा हुआ है।'

स्वय क नही, अपितु परिवार के लोगो के भी दिन फिरे। अपने लोगों को नौकरी या धन्धा दिलवाना नेताओ का एक प्रमुख कर्तव्य बन गया। ऐसे लोगो के लिए तो 'एम० ए० म थर्ड क्लास आया हो, तब भी उसे प्रोफेसरी मिल जाएगी और बाकी फर्स्ट क्लास पास या डाक्टरेट पाये हुए लोग भी मक्खी मारते बैठे रहेंगे, क्योकि उनको कोई पहुँच नही।' सचिवालय के ५०० हिन्दी टाइपराइटर की खरीद का आर्डर भी परिवार के ही व्यक्ति को दिया जाता है, जिससे बेचारे की रोजी रोटी चले।[2] वही

१ अनन्त गोपाल शेवडे, भग्न मन्दिर, पृष्ठ ८९
२ अनन्त गोपाल शेवडे : भग्न मन्दिर, पृष्ठ ९५

वान सरकारी मोटरों के इन्श्योरेन्स के बारे में, राजा-महाराजाओं के बीमे के बारे में, मेगनीज की खदानों के ठेकों के मामले में, शिक्षा या प्रचार विभाग की मोटर-बसें खरीदने में उनके आश्रित अपनी सेवाएं देते। फलतः 'उनके महासागर जैसे विशाल हृदय की जनराशि पर उनके मित्र और परिवार के लोग अपनी नौकाएं उतार कर जीवन-क्रीडा करने लगे। उनके लिए तो जैसे आसमान से स्वर्ग ही नीचे उतर आया।'

दूसरी ओर जनता पहले भी बेजबान थी, अब भी बेजबान है। उसके दुःख दर्द को सुनने-समझने वाला कोई नहीं, उस पर क्या बीत रही है, क्या गुजर रही है, उसकी कानोंकान खबर नहीं।[1] उपन्यास में इस तथ्य का चित्रण किया गया है कि सत्ता-हस्तान्तरण के बाद अधिकारों और सुविधाओं की, आराम और विलास की जो भयंकर बाढ़ आयी उसमें नेताओं के सारे संयम और आदर्श बह गये। मंत्रियों का ध्यान जन-हित से हटकर स्वार्थपूर्ति में लग गया।

उपन्यास के अधिकांश पात्र यथा मुख्यमंत्री पूरणचन्द्र जोशी, लोक-कर्म-विभाग के मंत्री मनमोहन बाबू, उनके डिप्टी सेक्रेटरी रघुनाथ सहाय और सहाय जी की पत्नी ताराभती, ठेकेदार हातिमभाई, जगपुरा के राजा साहब अधुना भ्रष्टाचार के पोषक हैं। आदर्श चरित्र हैं धनंजय और उनकी पत्नी गीता, सन देवा जी महाराज और भोला-नाथ वकील। सनदेवा जी महाराज के प्रसंग से आध्यात्मिक एवं अलौकिक भावों की उद्भावना की गयी है। धनंजय और गीता कर्तव्यनिष्ठ पात्र हैं, जो स्वार्थ और लोभ से परे समर्पपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। वे किसी भी स्थिति में स्वार्थ को आत्मसमर्पण नहीं करते।

राजनीति और पत्रकारिता

धनंजय कर्तव्यनिष्ठ पत्रकार है और उसको आधार बनाकर अधुना राजनीति में पत्रकारिता के महत्व और पत्रकारों के कर्तव्य पर विचार व्यक्त किये गये हैं।[2] 'भग्न मन्दिर' में पत्रकारिता का उज्ज्वल पक्ष 'युगान्तर' व 'कलुष पक्ष' जागरण व उसके सम्पादक की स्वार्थपूर्ण गतिविधियों में प्रकट किया गया है।

संक्षेप में उपन्यास की कथावस्तु सगठित है और इने गिने पात्रों के माध्यम से स्वतन्त्रता के उपरान्त सत्ता व प्रशासन में व्याप्त अनाचार व भ्रष्टाचार का सजीव चित्र प्रस्तुत किया गया है। अन्य राजनीतिक उपन्यासों के सदृश इसमें भी भाषणों और विवेचनात्मक विवरणों का समावेश है। पत्रात्मक पद्धति से कथा-विस्तार के लिए राज-

---

१ अनन्तगोपाल शेवड़े : भग्न मन्दिर, पृष्ठ १३३

२ अनन्तगोपाल शेवड़े : भग्न मन्दिर, पृष्ठ १९२-१९३

नीतिक-पत्र भी है यथा धनजय का मुख्य मत्री के नाम और कुमारी शर्मा का धनजय के नाम। घटनाएँ कम है और जो है वे सिद्ध करती है कि 'गन्दगी ऊपरी नेतृत्व की सतह से शुरू होती है, तो नीचे के स्तर पर, यानी पार्टी के छोटे छोटे नेताओ मे, सरकारी कर्मचारियो मे, तथा इन सब उल्टे-सीधे कामों की दलाली का पेशा बनाने वाले लोगो मे वह सौगुना विषाक्त होकर फैल जाती है।'[1] जो वर्तमान शासन मे पूर्णरूपेण सिद्ध होती है।

हाथी के दांत

अमृतराय कृत 'हाथी के दाँत' कांग्रेसी प्रशासन को व्यंग्यात्मक कथा है। यह ठाकुर परदुमनसिंह की कहानी है जो सन् ४७ के पूर्व ब्रिटिश शासन के समर्थक थे और स्वाधीनता के बाद कांग्रेस मे घुस कर एम० एल० ए० उपमत्री और मत्री पद हस्तगत कर स्वार्थसिद्ध करते है। उन्होने अनेक स्त्रियो को अपनी वासना का शिकार बनाया, अनेक कत्ल किये और जिनका रहस्य किसी से छिपा हुआ नही है। खद्दर गांधी टोपी और देश भक्ति का ढोंग केवल दिखाने के दाँत हैं, सभी जानते है कि इस कांग्रेसरूपी हाथी के खाने के दाँत और ही हैं।

परदुमन की कहानी इन्ही दिखावटी दाँतो का पर्दाफाश करती है। एक समीक्षक का अभिमत है : 'हाथीके दाँत' सामन्ती सभ्यता के प्रतीक ठाकुर साहब परदुमन सिंह का व्यंग्यचित्र है जिसमे बताया गया है कि जमींदार जागीरदारो की स्थिति मे स्वतन्त्रता के बाद कोई परिवर्तन नही आता है। ठाकुर साहब अग्रेजी राज्य मे पर्याप्त अन्याय करते थे। कांग्रेसी राज्य मे भी वे जनसेवक के रूप मे अत्याचार और व्यभिचार मे लिप्त दुहरा व्यक्तित्व रखते हैं।

उपन्यास के कथानक मे केन्द्रीय सूत्र का अभाव है। कांग्रेसी भारत का प्रभावोत्पादक चित्र प्रस्तुत करने के लिए अंकित अनेक व्यक्ति चित्रो से कथा मे पारस्परिक तारतम्य नही बैठ सका है। उपन्यास के अन्य प्रमुख पात्र है प० रामबिहारी चतुर्वेदी, स्वामी परमानन्द और आजाद जी, जिनके माध्यम से नेताओ की दुर्बलताओ और उनके विलास वैभव को चित्रित किया गया है। अपने उत्तरदायित्व से विमुख कांग्रेसी विधायकों को विधान-सभा मे विश्राम करते हुए चित्रित किया गया है तथा पुलिस के घोडो का विवरण शासन पर एक व्यग्य है।[2]

यह लघुकाय उपन्यास व्यंग्यात्मक शैली मे कांग्रेस शासन की कटु आलोचना

---

१. अनन्तगोपाल शेवड़े : भग्न मन्दिर, पृष्ठ १३३
२ अमृतराय : हाथी के दाँत, पृष्ठ ८५

है। इनके पात्र दृढ़ हैं और उनका अंकन सुस्पष्ट रेखाओं से हुआ है। हम कह सकते हैं कि 'बीज' में यदि राजनीतिक तत्वों की विविधता है और 'हाथी के दाँत' में व्यंग्य का तीव्रतम मर्म प्रहार।

बड़ी-बड़ी आँखें

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का 'बड़ी-बड़ी आँखें' उनके अन्य उपन्यासों से कुछ प्रवृत्तिगत भिन्नता रखता है। अश्क जी ने इसे अपना राजनीतिक उपन्यास घोषित करते हुए लिखा है—'उपन्यास को यदि हमारी दृष्टि से देखा जाय तो यह उतना सामाजिक नहीं जितना राजनीतिक है। चूंकि इसमें प्रत्यक्ष रूप से राजनीति की चर्चा बिल्कुल नहीं है, शायद इसीलिए लोगों का ध्यान इस ओर आकर्षित नहीं हुआ। जिस प्रकार जायसी के पद्मावत की काया प्रेमकाव्य की है, लेकिन आत्मा सूफी भक्ति भावना की, उसी प्रकार 'बड़ी बड़ी आँखें' के रोमानी कथानक में राजनीतिक भावना आत्मा के रूप में विद्यमान है। पूरे का पूरा देवनगर और उसकी व्यवस्था एक विशिष्ट सरकारी ढाँचे का प्रतीक है।'[1]

इस प्रतीक को समझाने का संकेत उपन्यास के अन्त में इस रूप में मिलता है—'देवनगर मुझे उस देश-सा लगा, जिसका प्रधान मंत्री उदाराशय, स्वप्नशील, भविष्य-द्रष्टा हो, पर जिसके सहकारी अवसरवादी चाटुकार और खुशामदी हों और जिसके दफ्तरों में भ्रष्टाचार और स्वजनपालन का दौरदौरा हो। उस प्रधान मंत्री की अच्छाई स्वप्नशीलता और भविष्यदर्शन के बावजूद उस देश का क्या बन सकता है? यदि वह एक सिरे से दूसरे देश तक सारे निजाम को नहीं बदल सकता तो उसे एक के बाद एक समझौता करना पड़ेगा। उसके सारे के सारे आदर्श धरे के धरे रह जायेंगे और देश रसातल में चला जाएगा।'[2]

उपन्यास के उपर्युक्त अंश के संदर्भ में आचार्य नरेन्द्रदेव के इस कथन को भी देखिए—'प्रधान मंत्री जी भी ब्रिटिश शासन की नौकरशाही व्यवस्था तथा अन्य कुरीतियों में बुरी तरह उलझ गये हैं। वह वर्तमान परिवर्तनशील जगत में प्रगतिशील विचार और कार्य की आवश्यकता का उपदेश देते हैं, किन्तु उनकी सरकार की नीति स्वयं द्विविधा और भोंडापूर्ण है और अगर वह यथास्थिति को कायम नहीं रखना तो समझौतावादी तो अवश्य है।'[3]

---

१. साप्ताहिक हिन्दुस्तान, दिनांक १६ अक्तूबर १९६०, पृष्ठ २१

२ उपेन्द्रनाथ 'अश्क' बड़ी-बड़ी आँखें, पृष्ठ २३५

३ जनवाणी, अंक जून १९४९

लगता है कि जैसे अश्क जी ने आचार्य जी की भावना को उपन्यास का ताना बाना बुना है।

प्रत्यक्ष रूप से राजनीतिक चर्चा न होने पर भी जो संकेत दिये गये हैं, उसके आधार पर कथानक की कालावधि १९२१ के बाद से द्वितीय महायुद्ध के बीच की है। इस सन्दर्भ में इन पंक्तियों को आधार बनाया जा सकता है—'मधवार साहब १९२१ के आन्दोलन में जो एक बार जल गये देवनगर जा पहुँचे।'[1] व 'युद्ध अभी शुरू ही हुआ था और कीमतें चढ़ी न थी।'[2] देवाजी ने भी अपने लेखों में तत्कालीन राजनीतिक हलचलों का जो उल्लेख किया है, वह भी विवेच्य काल की पुष्टि करती है।[3] इस दृष्टि से उपन्यास में असंगति दिखायी पड़ती है क्योंकि कथावस्तु में स्वीकृत तथ्य का तालमेल नहीं बैठता।

कथा का क्षेत्राधार देवनगर देवाजी जैसे स्वप्नादर्शी व्यक्ति के लौकिक आदर्शवादी दृष्टिकोण से निर्मित ऐसे समाज की कल्पना प्रस्तुत करता है जिसे सर्वोदय भावना के अनुकूल कहा जा सकता है।[4] किन्तु व्यावहारिकता में यह स्वरूप उभर नहीं पाता और सुख शान्ति की खोज में देवनगर गये संगीत जी वाणी के मन में सेक्स की भावना जाग्रत कर वहाँ से लौट आते हैं।

उपन्यास के प्रमुख पात्र हैं देवाजी, संगीत जी मधवार साहब और वाणी। इनमें से देवाजी और मधवार साहब का राजनीतिक से सम्पर्क रहा है और वे सर्वोदयी समाज की रचना को उत्सुक हैं। संगीत जी आदर्शवादी हैं पर राजनीति से उनका निकट का कोई सम्बन्ध नहीं। वाणी को लेकर संगीत जी और तीरथराम का प्रेम त्रिकोण निर्मित किया गया है। संगीत जी विधुर और वाणी 'आकर्षणहीन बारह तेरह साल की दुबली, बीमार-बीमार सी' वाणी संगीत को चाहती है और तीरथराम वाणी को और इनसे निर्मित होता है एक रोमानी वातावरण।

कथानक स्वल्प होने पर भी चरित्र चित्रण का विकास सम्यक् रूप से हुआ है। राजनीतिक तत्त्व अस्पष्ट है और जो है भी वे विरोधाभास के कारण उभर नहीं पाये। उपन्यास का दीर्घांश रोमानी है और राजनीतिक पक्ष को दुर्बल बनाता है। फिर भी प्रतीकात्मक राजनीतिक उपन्यास के रूप में यह हिन्दी उपन्यास साहित्य की एक नयी कड़ी है।

---

१ उपेन्द्रनाथ 'अश्क' बड़ी बड़ी आँखें, पृष्ठ ९२
२ उपेन्द्रनाथ, अश्क' बड़ी बड़ी आँखें, पृष्ठ १०५
३ उपेन्द्रनाथ अश्क' बड़ी-बड़ी आँखें पृष्ठ ६७
४ उपेन्द्रनाथ 'अश्क' बड़ी-बड़ी आँखें, पृष्ठ ८८

यज्ञदत्त के उपन्यासों में स्वातंत्र्योत्तर वातावरण

निर्माण-पथ

'निर्माण पथ' में स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय पृष्ठभूमि पर निर्माण की योजना प्रस्तुत कर देश में पूँजीपति तथा मजदूर दोनों वर्गों से एकजुट हो कार्य करने की अपेक्षा की गयी है। शोषक और शोषित के पारस्परिक सहयोग की कल्पना मार्क्सवाद के विरोध और गांधीवाद के निकट की वस्तु है। इसे हम वर्तमान में राष्ट्र में व्याप्त विध्वंसात्मक विरुद्ध प्रवृत्तियों के राष्ट्र को समुन्नत बनाने की आदर्श कल्पना भी कह सकते हैं। 'निर्माण-पथ' में उद्घाटित किया गया है कि यह समय पूंजी और श्रम के संघर्षों तथा समस्याओं में उलझने का नहीं है, अपितु उत्पादन और निर्माण का है।

महल और मकान

'महल और मकान' दो विभिन्न आर्थिक स्तरों के प्रतीक हैं और लेखक ने इसके माध्यम से सहकारिता के आधार पर राष्ट्र के निर्माण की जो कल्पना की है, वह नेहरू युग के ही अनुकूल है। देश के महल मिट जायें और सबके लिए एक एक मकान मिल सके, यह समाजवादी विचारणा ही उपन्यास की परिकल्पना है। इसमें देश के बड़े उद्योगों की तथा कुटीर उद्योग की विस्तृत चर्चा करते हुए कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहित करने का निर्देश दिया गया है, जो सहकारी प्रणाली का ही एक अंग है।

बदलती राहें

'बदलती राहें' भारतीय राजनीति के परिपार्श्व में बदलते हुए ग्रामीण जीवन का चित्रण है। उपन्यास की नायिका मिल्लो चमाइन है, जो सुशिक्षित हो (शील कुमारी के रूप में) चन्दनपुर ग्राम के योजनाबद्ध सामुदायिक विकास में दत्तचित्त होती है। इस युग-परिवर्तन के साथ जीवन की रूप रेखाएँ घिसट रही हैं, एक गाँव का चौधरी है और दूसरा गाँव का सेठ, और दोनों ही व्यक्ति अपने जीवन की बदलती हुई राहों पर 'कल और आज' का विश्लेषण करते हुए कथानक को विस्तार देते हैं। जमींदारी-उन्मूलन और उसका प्रभाव तथा ग्राम स्तर के सरकारी कर्मचारियों के अनाचार और काले कारनामे चित्र भी उपन्यास में संजोये गये हैं, जो परिस्थितियों के अनुरूप न होने के कारण प्रभावशाली नहीं हैं। पुलिस इन्सपेक्टर और पटवारी द्वारा मन्त्री के पिता और प्रेमिका को नाना प्रकार से तंग करना आज के युग में अस्वाभाविक ही कहा जायेगा।

उपन्यास गाँव की वर्तमान कृषि-समस्याओं से संबंधित है और उसी को केन्द्र बनाकर टूटती हुई रूढ़िवादिता और परिवर्तित मनोवृत्ति का चित्रण किया गया है। चौधरी रणधीरसिंह का पुत्र विजय कांग्रेस सरकार का मंत्री होकर लखनऊ में रहने लगा था। कांग्रेस में भाग लेने के कारण चौधरी ने विजय को सात वर्ष पूर्व घर से निष्कासित कर दिया था। विजय के मंत्री होने के बाद चौधरी उससे मिलते हैं और उसकी प्रेरणा से अपनी हवेली, फार्म आदि सिल्लो को ग्रामोत्थान हेतु प्रदान कर देते हैं। सिल्लो चमाइन होने पर भी विजय की प्रेमिका है। मंत्री बन जाने पर विजय गाँव आकर उससे विवाह हेतु चौधरी का आशीर्वाद चाहता है। चौधरी रूढ़िवादिता से अपने का पूर्णरूपेण अलग न कर सके हैं, अन्त एकान्त में उन्होंने आशीर्वाद दे गाँव छोड़ देते है। यह प्रसंग भी यथार्थ से परे महान् आदर्श की कल्पना का ही द्योतक है। इसी प्रकार मंत्री हो जाने पर भी विजय का अकेले सूटकेस लेकर गाँव में आना और करोड़पति मिल-मालिक मुन्नू लाला को, गाँव में उपहासास्पद स्थिति आज के यथार्थ से सर्वथा भिन्न होने के कारण उपन्यास को ही उपहासास्पद बनाती है। लेखक का यह कहना कि 'विजयकुमार उत्तरप्रदेश के मंत्रिमण्डल में निर्वाचित होकर जनसेवा के मैदान में उतर पड़े'[1] उचित नहीं है और उनके राजनीतिक सम्बन्धी अज्ञानता का ही परिचायक है। इस प्रकार की भूलें अन्यत्र भी द्रष्टव्य है - 'इसे आप अपने संसद के सदस्यों के बीच रखकर नन्दनपुर की प्रगति का सन्देश उन्हें सुना सकते हैं' या विजय का यह कहना—'आपका उपहार मेरे लिए वह अमूल्य निधि है कि जिस संसद में प्रस्तुत करके मैं मस्तक ऊँचा कर गर्व से यह कह सकूँगा' कहना न होगा कि उत्तर प्रदेश के मन्त्रि-मण्डल का सदस्य होने के नाते विजय का उपर्युक्त कथन असंगत है। सम्भवतः लेखक विधान सभा और संसद का अन्तर स्वाधीनता के इतने वर्षों बाद भी स्पष्ट रूप से नहीं समझ पाये हैं।

अन्तिम चरण

'अन्तिम चरण' में देश के विभिन्न राजनीतिक दलों की स्वार्थपरता पर व्यंग्य किया गया है। सम्भवतः इसीलिए देश की विभिन्न राजनीतिक दलों के प्रतीक पात्रों की उद्भावना इस उपन्यास में की गयी है। दिल्ली के एक वकील, उसकी पत्नी, स्वामी ज्ञानानन्द, स्वामी जी के शिष्य आनन्द तथा वेश्यापुत्री सरोज को हम उपन्यास के मुख्य पात्रों के रूप में देख सकते हैं। इसमें हिन्दूकोड बिल से उत्पन्न समस्या को कथानक का रूप देकर राजनीतिक दलों की वास्तविकता का भण्डाफोड़ किया है। लेखक ने यह

---

१ मन्मथनाथ गुप्त (?) . बदलती राहें, पृष्ठ २२

बनाने का प्रयास किया है कि सत्ता-प्राप्ति के स्वार्थ के वशीभूत होकर राजनीतिक दल अपने थोथे प्रचार से जनता को किस भाँति भ्रमित करते हैं। मन्त्री सदानन्द इसके उदाहरण हैं, जो स्वार्थसिद्धि के लिए हिन्दू कोड बिल का कभी विरोध और कभी समर्थन करते हैं। सत्तारूढ़ कांग्रेसियों की विलास प्रियता और स्वार्थान्धता का भी व्यंग्य-पूर्ण चित्रण किया गया है तथा रामराज्य परिषद् तथा जनसंघ जैसी पार्टियों की गति-विधियों को निकट से देखने का प्रयास है।

निष्कर्ष

यज्ञदत्त ने अपने उपन्यासों में यद्यपि आधुनिक समस्याओं को राजनीति के परिप्रेक्ष में हृदयंगम करने का प्रयास किया है, तथापि आदर्शवादिता के चक्कर में पड़कर वे उसमें पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं कर सके। उनके उपन्यासों में चरित्र चित्रण व कथोपकथन आदि सभी घटनाओं के अनुसार रूप ग्रहण करते हैं। अतः पात्र भी उपन्यासकार के हाथों कठपुतली बन स्वाभाविक विकास के अभाव में जीवन्त नहीं बन सके हैं। उनमें कथा कहने की प्रवृत्ति प्रबल है, किन्तु प्रभाव जगाने की भाव-प्रेषण का सर्वथा अभाव है। एक विज्ञ का कथन है कि सामग्री संजोने की क्षमता, उसमें निहित और घटनाओं के माध्यम से अन्तरंग मानव को उभारने और मानवीय सम्बन्धों की विशिष्टताएँ दर्शाने की प्रविधि, यथोचित त्याग और ग्रहण की अन्तर्दृष्टि, अनुभूति की तीव्रता प्रदान करने का कौशल, इनका उनके पास अभाव है।' सच तो यह है कि पूर्व निश्चित उद्देश्य को लेकर कथा कहने की प्रवृत्ति से चरित्र चित्रण प्रभावोत्पादक नहीं बन पाया है। शैली भी अनगढ़ है और भाषा में हिन्दी पर पंजाबीपन का प्रभाव है। सामायिक सामाजिक राजनीतिक समस्याओं से आराक्रान्त होने पर भी यज्ञदत्त के उपन्यास राजनीतिक विचारणा को पुष्ट करने में समर्थ नहीं कहे जा सकते। वे पाठकों का मनोरंजन कर सकते हैं, किन्तु उन पर कोई छाप नहीं छोड़ पाते।

चीनी आक्रमण की पृष्ठभूमि पर आधारित दो उपन्यास

विनाश के बादल

चीनी आक्रमण और राष्ट्रीय संकट के सन्दर्भ में रचित उपन्यासों में प्रताप-नारायण श्रीवास्तव का 'विनाश के बादल' अनेक असमर्थताओं के बावजूद चीनियों के अमानवीय और प्रवंचनापूर्ण कुचक्रों को उद्घाटित करने में सफल है। भावेशजन्य भावनाओं के कारण पात्रों व ऐतिहासिक तटस्थता का निर्वाह सम्यक् रूप से नहीं हो सका है। चीनी आक्रमण की महत्त्वपूर्ण राजनीतिक ऐतिहासिक घटना से सम्बद्ध होने पर

भी राष्ट्रीय चेतना और सामूहिक प्रयत्न का उद्घाटन समुचित रूप से न हो सका है। रहस्य और कुचक्रों की बोझिलता 'विनाश के बादल' को 'रक्तमण्ड' और 'सफेद शैतान' की श्रेणी में ला देती है। इन घटनाओं से सस्ती चान्द मनोरंजकता की उद्भावना अवश्य हुई है, किन्तु राजनीतिक वांछित प्रभाव का ह्रास हुआ है।

घटनाएँ, स्थितियाँ और पात्र अविश्वसनीय से हैं और किसी भी राजनीतिक उपन्यास की यह सबसे बड़ी असफलता है। प्रारम्भ में ही एक चीनी जासूस युवती का भारतीय सुन्दरी के रूप में सौन्दर्य प्रतियोगिता में भाग लेकर पुरस्कृत होना, विदेशी पात्रों का भारतीय नगरों का सूक्ष्म भौगोलिक ज्ञान और चीनी आक्रमणकारियों द्वारा स्वयं की नीतियों की आलोचना अस्वाभाविक है।

चीनी राजनीति और विचारधारा को लेकर अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के विविध पक्षों को छूने का प्रयास इस उपन्यास में मिलता है।

देश नहीं भूलेगा

उमाशंकर कृत 'देश नहीं भूलेगा' भी भारत पर चीनी आक्रमण और उसकी विस्तारवादी नीति का चित्रण करता है। उपन्यास का नायक अजय राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत है। मातृभूमि पर मर मिटने की तीव्र आकांक्षा के वशीभूत होकर वह अपनी प्रेमिका शोभा के प्रेम और उच्च शिक्षा को ठुकरा कर सेना में सैनिक अधिकारी होकर चीनी आक्रमणकारियों का मुकाबला करते हुए वीरगति प्राप्त करता है। जिस शोभा के प्रति वह कालेज में आकृष्ट हो गया था, वह कम्युनिस्ट निकली और जाग क्षेत्र में अपनी राष्ट्रद्रोही गतिविधियों के कारण अजय की गोली का निशाना बनती है। सामयिक होते हुए भी इस लघुकाय उपन्यास में राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का चित्रण सम्यक रूप से नहीं हो पाया है, यद्यपि राष्ट्र के गौरव की भावना अवश्य मुखरित है। शिल्प की दृष्टि से भी उपन्यास साधारण कोटि का है।

चीनी आक्रमण ने सारे राष्ट्र की राजनीतिक एवं राष्ट्रीय एकता को झकझोर दिया है और उपन्यासकारों से इस दिशा में विशेष अपेक्षा करना असंगत न होगा। एक प्रकार से चीनी आक्रमण ने नेहरू-युग को भयकर थपेड़ा देकर लगभग समाप्त ही कर दिया था, यदि वह उसी गति से कुछ काल तक सक्रिय रहता और जनता राष्ट्रीय एकता का परिचय न देती। ऐसे लेखकों ने राष्ट्र की अत्याधुनिक समस्याओं पर कलम उठाई है।

समाजवादी यथार्थवादी उपन्यास

बीज

प्रेमचन्द जी के सुपुत्र अमृतराय विचारों से साम्यवादी हैं और उनके उपन्यास 'बीज' में उभरती हुई प्रगतिशील चेतना उनकी साम्यवादी विचारधारा का ही परिणाम है। 'बीज' एक विशालकाय उपन्यास है। किन्तु उसमें सामाजिक विप्लव का विशाल रूप चित्रित नहीं हो सका है। 'बीज' का मुख्य आकर्षण सत्यवान और राजेश्वरी का वैयक्तिक जीवन है जिसे लेखक ने राजनीतिक संघर्ष से सम्बद्ध करने का प्रयास किया है। इस दुहरे कर्तृत्व के कारण ही उपन्यास में 'विचार और भावुकता का' अनमेल सम्बन्ध है। जहाँ लेखक परिस्थितियों और समस्याओं पर विचार प्रकट करते हैं, वहाँ केवल तर्क का आधार लेते हैं, उपन्यास के लिए अनिवार्य रागात्मिकता से वंचित हो जाते हैं और जहाँ भावुकता में खो जाते हैं, वहाँ तर्क बुद्धि शून्यवत हो जाती है।'[1]

आलोच्य उपन्यास में जीवन-चित्रण के दो स्तर मिलते हैं—एक है कथानक की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और दूसरा मध्यवर्गीय समाज के जीवन का पारिवारिक परिवेश। इन दोनों स्तरों के पारस्परिक सम्बन्धों के आधार पर कथानक का संगठन विस्तार पाता है और राजनीतिक धरातल को स्पर्श करता है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के अन्तर्गत द्वितीय महायुद्ध, सन् बयालीस की क्रान्ति, सोवियत प्रचार, बंगाल का दुर्भिक्ष, आजाद हिन्द फौज का मामला, छात्रों के जुलूस, स्वाधीनता दिवस, साम्यवादी कार्यकर्ताओं की जीवनपद्धति तथा मेहतरों की हड़ताल इत्यादि हैं। जनता के कष्टों का चित्रण पाठकों की न्यायबुद्धि को जाग्रत करने और समाजवादी जीवन के प्रति आस्था उत्पन्न करने की दृष्टि से किया गया है।

कथा का नायक है सत्यवान, जो बयालीस के आन्दोलन में एम० ए० की पढ़ाई छोड़ कर आन्दोलन में भाग ले जेल जाता है। जेल में उसकी घनिष्ठता वीरेन्द्र से होती है जो साम्यवादी है। उसके सम्पर्क में आकर सत्य का झुकाव भी साम्यवाद की ओर होता है। वीरेन्द्र के कारण उसे नयी आँखें मिलीं और वह उसे मुट्ठी तान कर 'लाल सलाम' कर बाहर निकला। साथी वीरेन्द्र और उसके द्वारा जेल में पढ़े गये साम्यवादी साहित्य ने 'जीवन का वह शुक्र की तरह चमकता हुआ ध्रुवतारा निश्चित कर दिया था, पर बाहर आकर सत्य पुनः राज और उषा के चक्कर में रोमान्टिक ही अधिक रहा। जेल से छूटने पर सत्य एम० ए० कर उषा से वैवाहिक सूत्र में आबद्ध होता है। उषा के साथ उसका प्रेम विवाह होता है। इस प्रसंग में राजेश्वरी के मित्र पुरुष और नारी में पार-

---

१　डॉ० गणेशन - हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन, पृष्ठ २१९

स्परिक सम्बन्धों की प्रगतिशील दृष्टिकोण से विवेचना की है। पारिवारिक जीवन के, प्रेम तथा विवाह के स्वरूप के, सास-बहू के संघर्ष के, टूटते हुए संयुक्त परिवार के तथा व्यक्तिवादी दृष्टिकोण के विकास तथा समाजवादी जीवन दर्शन की विजय के विविध चित्रों को प्रस्तुत कर समाजवादी चेतना की अभिव्यक्ति दी गई है। उषा सुशिक्षित पत्नी है, पर उसका दाम्पत्य जीवन आर्थिक संघर्षों से असन्तुष्ट है और वह उसकी मूक द्रष्टा है। कम्युनिस्ट होने के कारण सत्य को नौकरी नहीं मिलती और राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने के कारण वह पुन: नजरबन्द कर लिया जाता है। उषा ऐसी स्थिति में अध्यापिका होकर जीवनयापन का साधन जुटाती है और रोटी के संघर्ष से परिचित हो मेहतरों और मजदूरों के आन्दोलनों में भाग लेती है। मेहतरों की हड़ताल में हुए लाठी चार्ज में जिस समय वह घायल होती है, सत्य जेल से छूट कर उसके पास पहुँचता है और कहता है, 'उषा, तू नहीं जानती, तेरे इस घाव में हमारे नये जीवन के विराट अश्वत्थ का बीज छिपा हुआ है, हमारे नये सुख का बीज, नये प्रभात का बीज।'

यही 'बीज' की आधिकारिक कथा है जो वृक्ष का रूप लेती है। इस वृक्ष की एक शाखा—उपकथा—राजेश्वरी की अतृप्त वासना, सत्य और राजेश्वरी के आकर्षण प्रसंग, महेन्द्र और राजेश्वरी के सहवास, गर्भधारण और हत्या से सम्बन्धित है। राज की कथा मार्मिक ढंग से कही गयी है और उसके माध्यम से भारतीय नारी का एक ही रूप अंकित किया गया है।

इसी के साथ जमुना तथा विपिन का प्रसंग भी है, जिसका एकमात्र उद्देश्य नारी के शोषण का दिग्दर्शन कराना है।

इस तरह उपन्यास की मुख्य समस्या पुरुष और नारी के पारस्परिक सम्बन्ध की है और उसका समाधान समाजवादी ढंग से सत्य और उषा के दाम्पत्य जीवन के विकास में निहित है।

साम्यवादी पात्र

'बीज' में अधिकांश राजनीतिक पात्र साम्यवादी है। सत्यव्रत प्रारम्भ में कांग्रेसी रहता है, बाद में वीरेन्द्र के सम्पर्क में आकर साम्यवादी हो जाता है। वह देशभक्त है और 'देश के प्रति गहरा प्यार, अंग्रेजों से जबरदस्त नफरत, सादा जीवन, और देश के लिए कोई भी कुरबानी बड़ी नहीं है—ये चन्द बातें उसके चरित्र का अंग हो गयी थीं। यही उसकी राजनीति का ककहरा भी था।'[1] सत्य के बाल्यकाल के प्रसंग में नमक-सत्याग्रह और भगतसिंह के क्रांतिकारी कार्य और उनसे निर्मित राष्ट्रीय

1 अमृतराय बीज, पृष्ठ १४ १५

वातावरण का विवरण देना भी लेखक नहीं भूलता। सत्य के राजनीतिक व्यक्तित्व को बनाने में मामा का बड़ा हाथ है, जिन्हें अहिंसावादी नीति पर विश्वास न था। अहिंसा को वे 'डंडे खाने वाली राजनीति' मानते हैं।[1] बचपन के संस्कारों और सहज आकर्षण से वह आतंकवादियों के प्रति आकर्षित हो भगतसिंह को अपना जीवन-आदर्श मानता है।[2] किन्तु भगतसिंह के प्रति गहन श्रद्धा होने पर भी, बाद में वह अन्य साम्यवादियों की तरह व्यक्तिगत हिंसात्मक कार्यों को आजादी का सही रास्ता नहीं मानता। वह आतंकवाद उसकी दृष्टि में व्यक्तिवाद से अधिक महत्व नहीं रखता।

बयालीस की क्रांति में वह विद्याध्ययन छोड़कर सक्रिय आन्दोलन में भाग लेकर जेल जाता है। जेल में वीरेन्द्र के सम्पर्क में उसकी राजनीतिक विचारधारा में आमूल परिवर्तन होता है। वीरेन्द्र का चित्रण एक आदर्श कम्युनिस्ट पात्र के रूप में किया गया है और उसके व्यक्तित्व के सामने वाह्यरूप में कांग्रेसी, पर संस्कारों से आतंकवाद पर आस्था रखने वाला सत्य पराभूत हो जाता है। लेखक ने इस परिवर्तन को 'एक कमजोर विचारधारा का मजबूत विचारधारा की तरफ खिंचना' बताया है। सत्य के मन में कम्युनिस्टों के खिलाफ पल रहे सन्देह दूर हो जाते हैं और इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि गाँधी के कदम आजादी के जन-आन्दोलन के साथ विश्वासघात थे।[3] जेल से वह पक्का कम्युनिस्ट बनकर निकलता है, किन्तु साम्यवादी प्रणय का शिकार हो अपने राजनीतिक ध्येय से कटा-सा रहता है। 'बीज' में इस प्रणय का विस्तार कथानक के अधिकांश भाग को घेर लेता है और राजनीतिक वातावरण धूमिल पड़ जाता है।

सत्य के सिवाय वीरेन्द्र, अमूल्य, उषा, प्रमिला व पार्वती आदि भी साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित पात्र हैं। रूस का साहित्य, रूस की प्रदर्शनी, रूस की फिल्म सभी अमृतराय की दृष्टि में 'सर्वोत्कृष्ट' और ऐसा रामबाण है जो पात्रों को अपने प्रभाव के स्पर्शमात्र से साम्यवादी बना देती हैं। सत्य और उषा तथा वीरेन्द्र और प्रमिला का प्रणय मार्क्सवादी आधारशिला पर ही विकसित हुआ है। इन साम्यवादी पात्रों के माध्यम से कम्युनिस्टों के संघर्षपूर्ण अभावमय जीवन पर प्रकाश डाला गया है।

राजनीतिक घटनाएँ

'बीज' में जिन राजनीतिक घटनाओं पर प्रकाश डाला गया है, वे हैं—

१—नमक-सत्याग्रह

---

१. अमृतराय : बीज, पृष्ठ २०
२. अमृतराय : बीज, पृष्ठ २०
३. अमृतराय : बीज, पृष्ठ ५१

२—आतंकवादी गतिविधियाँ[1]
३—सन् '४० का व्यक्तिगत सत्याग्रह[2]
४—द्वितीय महायुद्ध और बयालीस की क्रान्ति[3]
५—बंगाल का दुर्भिक्ष
६—आजाद हिन्द फौज का मामला[4]
७—माउन्ट बैटन-योजना और उसकी जन-प्रतिक्रिया
८—स्वाधीनता
९—कम्युनिस्ट समर्थित हड़ताल

उपर्युक्त राजनीतिक घटनाओं का कथानक में आवश्यकतानुसार विवरण मिलता है, जो उपन्यास के राजनीतिक पक्ष को परिपुष्ट करता है।

अहिंसा का विरोध

उपन्यासकार ने 'बीज' की रचना साम्यवाद के समर्थन के एक विशिष्ट राजनीतिक उद्देश्य से की है। इस दृष्टिकोण के कारण ही अन्य सम-सामयिक राजनीतिक विचारधाराओं का खण्डन और साम्यवाद का प्रतिपादन भी करता चलता है।

सत्य के मामा कांग्रेसी रहे हैं, दो बार जेल काट आये हैं, पर उन्हें अहिंसावादी नीति पर विश्वास नहीं। उनका कथन है—"गाँधी के किये-धरे कुछ होगा नहीं...हाँ, हाँ गाँधी ने लोगों को जगाया' यह सब ठीक है मगर इससे ज्यादा उम्मीद बुड्ढे से न करो। आजादी की लड़ाई का मतलब है हथियारों की लड़ाई।"[5] वे अहिंसा को 'डंडे खानेवाली राजनीति' मानकर उसका उपहास करते हैं। सत्य मानता है: 'गाँधी ने देश को डंडा-गोली खाने की ही शिक्षा दी, डंडा-गोली चलाने की नहीं, जिसके बिना कोई देश आजाद नहीं हुआ करता।"[6] उसे गाँधी जी की 'साधन की पवित्रता' वाली बात बकवास मालूम होती है। वह मानता है कि इसी अहिंसा की भावना ने 'देश को किसी कदर निर्वीर्य भी बनाया है। वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि ऐसी अहिंसा आप अपने घर रखिए और शहद लगाकर चाटिए, मुल्क को उसकी कतई जरूरत

१. अमृतराय : बीज, पृष्ठ १४-१७
२ अमृतराय : बीज, पृष्ठ २२
३. अमृतराय : बीज, पृष्ठ ३०
४. अमृतराय : बीज, पृष्ठ २०७-२०९
५. अमृतराय : बीज, पृष्ठ १६
६. अमृतराय : बीज, पृष्ठ २१

नहीं ।[1] कहना न होगा कि वह साम्यवादी क्रान्ति के सम्मुख अहिंसा की व्यर्थता सिद्ध करना चाहता है। कांग्रेसी अहिंसा के साथ-साथ वह कांग्रेसी परिधान खद्दर पर भी कटुतम व्यंग्य करता है। साम्यवादी पात्रों की दृष्टि में तो वह 'अहिंसक भेड़ियों की पोशाक' व 'ब्लेक मार्केट का साइन बोर्ड' ही है।[2]

आतंकवादियों का विरोध

कांग्रेस के अहिंसात्मक सिद्धान्त के साथ-साथ आतंकवादियों के हिंसात्मक कार्यों की भी आलोचना की गई है, क्योंकि वह सामूहिक हिंसा को प्रोत्साहित न कर व्यक्ति-वाद तक सीमित है। फिर भी प्रसंग निकाल कर भगतसिंह, बिस्मिल और अशफाक-उल्ला आदि क्रांतिकारियों के सम्बन्ध में ऐतिहासिक तथ्य प्रस्तुत किये गये हैं।

कांग्रेसी नेताओं पर प्रहार

कम्युनिस्ट अमृतराय कांग्रेसी नेताओं पर व्यंग्य करने से नहीं चूकते। सन् ४० के व्यक्तिगत सत्याग्रह के प्रसंग को लेकर सत्याग्रहियों पर व्यंग्य किया गया है—"उन कांग्रेसी नेताओं का भी ध्यान आये बिना नहीं रहता, जो मजिस्ट्रेट को टेलीफोन करके कि मैं घर पर ही हूं, आप आकर मुझे गिरफ्तार कर लीजिए और मजे में जयमाल पहन कर, पान चबाते, साथ पुलिस की वैन वर्ना अफसर मजिस्ट्रेट की निजी कार में बैठकर कृष्ण मन्दिर का रास्ता लेते थे।"[3]

जेल में भी कांग्रेसी नेताओं का जीवन कम्युनिस्ट नेताओं की तुलना में गर्हित चित्रित किया गया है। अस्थिर चित्रित किया गया है। सत्य, प्रफुल्ल बाबू और महावीर बाबू आदि मिलते ही कम्युनिस्ट विचारधारा के समर्थक हो जाते हैं। सोवियत प्रदर्शनी का उद्घाटन करते हुए महावीर बाबू कांग्रेसी होने पर भी रूस के गीत गाते हैं और कहते हैं 'रूस आज के इतिहास का सबसे ज्योतिष्क सत्य है, पंडित नेहरू के शब्दों में, इस अंधेरी दुनियाँ की अकेली उम्मीद।[4]

कांग्रेसियों की ही नहीं, अपितु आजाद हिन्द फौज और सुभाष बाबू की भी आलोचना 'बीज' में मिलती है।[5]

---

१ अमृतराय : बीज, पृष्ठ ५३
२ अमृतराय : बीज, पृष्ठ २३-२४
३ अमृतराय : बीज, पृष्ठ २१
४ अमृतराय : बीज, पृष्ठ १२७
५ अमृतराय : बीज, पृष्ठ २०६

साम्यवादी दृष्टिकोण

'बीज' में साम्यवाद का प्रचार करने के ध्येय से उसके सिद्धान्तों और कम्युनिस्टों के उज्ज्वल स्वरूप को उभारने का प्रयास किया गया है। रूसी साहित्य का उल्लेख मिलता है, जिसके अध्ययन से सत्य अपने व्यक्तित्व का विकास करता है। वह मार्क्सवाद-लेलिनवाद की इतिहास और विज्ञान की मोटी-मोटी पुस्तकें पढ़ता है। उसकी दृष्टि में शोलोखोव और इलिया ऐरेन बुर्ग के उपन्यास विश्व-साहित्य में अप्रतिम हैं। रजनी पामदत्त का 'राष्ट्रीय आन्दोलन का संक्षिप्त इतिहास' उसे राजनीतिक दृष्टि देता है और मार्क्स और एंगेल्स का 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' उसकी भ्रान्तियों का निराकरण करता है। वह समझने लगता है कि बयालीस की क्रांति 'सामूहिक आत्महत्या' है और कम्युनिस्टों के उससे पृथक् रहने के औचित्य को वह स्वीकार कर लेता है। इस प्रसंग में वीरेन्द्र और सत्य के विचार-विमर्श की ध्वनि साकार—यह प्रतिपादित करने की चेष्टा की गई है कि बयालीस की क्रांति में भारतीय साम्यवादियों ने सहयोग न देकर किसी प्रकार का देशद्रोह नहीं किया।[१] रूस की प्रगति भी लेखक ने कई जगह गाये हैं और उनकी राजनीतिक मान्यता के ही अनुरूप हैं।

अपने समग्र रूप में 'बीज' युद्धकालीन भारत की राजनीतिक सामाजिक जीवन की गाथा है, जो मध्यवर्गीय जीवन को अभिव्यक्ति देती है।

उखड़े हुए लोग

राजेन्द्र यादव के 'उखड़े हुए लोग' में समाजवादी यथार्थवाद की अभिव्यक्ति मिलती है। एक विशिष्ट राजनीतिक दृष्टिकोण से युद्धोत्तरकालीन स्त्री-पुरुष के बिगड़ने-बदलने-बनते सम्बन्धों के चित्रण के साथ आलोच्य उपन्यास में ह्रासशील तथा विकासशील मान्यताओं का प्रगतिवादी दृष्टिकोण से निरीक्षण तथा परीक्षण किया गया है।

नायक शरद और नायिका जया नये पथ के अन्वेषी हैं। नायक और नायिका के संवाद से उपन्यास का प्रारम्भ होता है, जो सम्मिलित जीवन यापन पर विचार करते-करते विवाह-सूत्र में आबद्ध हो जाते हैं। शरद की दृष्टि में विवाह एक व्यक्तिगत समस्या है और उसका रूढ़िगत पिटता रूप व्यक्ति-मानस के अनुकूल नहीं, अपितु बाधक है। अधुना विवाह एक समझौता है और इसके सिवाय कुछ हो नहीं सकता और इसी दृष्टिकोण के अनुरूप शरद और जया को भागना पड़ता है। इस सन्दर्भ में शरद देशबन्धु एम० पी० की शरण लेते हैं। देशबन्धु अथवा नेता भैया पूँजीपति, समाजसेवी, उदार तथा सन्त माने जाते हैं, किन्तु वस्तुतः उनका जीवन पूँजीवादी व्यक्तित्व से बोझिल

१.- अमृतराय : बीज, पृष्ठ ४५-४६

है। वे कांग्रेसी हैं और उनके जीवन की कालिमा का चित्रण कर कांग्रेस और उसके सिद्धान्तों की निस्सारता पर विचार किया गया है।

देशबन्धु के चरित्र के विभिन्न पक्षों को उद्घाटित कर लेखक ने समसामयिक जीवन में अनीति, छल-कपट तथा यौन कुंठा को विस्तारपूर्वक अंकित कर निजी प्रगतिशील दृष्टि का परिचय दिया है। देशबन्धु जी के यहाँ शरद की भेंट सूरज जी से होती है जो देशबन्धु द्वारा संचालित 'बिगुल' के सम्पादक हैं। सूरज जी क्रांतिकारी रह चुके हैं और प्रेयसी चन्दा के स्नेह से वंचित होकर निष्क्रिय तथा सनकी हो गये हैं। शरद और जया के साहसिक अभियान से वे प्रेरणा प्राप्त करते हैं और इस तरह शरद तथा जया के पारस्परिक सम्बन्ध को आदर्श स्वीकार किया गया है।

इसके विपरीत देशबन्धु तथा मायादेवी का सम्बन्ध छल तथा कपट पर आधारित है। विवाहित होने हुए भी नेता भैया अन्य नारी के प्रेम-सूत्र में आबद्ध है। मायादेवी की कथा सूरज के शब्दों में देशबन्धु की नीचता की कथा है। मायादेवी देशबन्धु पर मोहित होकर पति की हत्या का कारण बनी और पति की सम्पत्ति प्रेमी को अर्पित की। तदुपरान्त देशबन्धु की नारी के प्रति मानसिक दुर्बलताओं का ज्ञान होने पर वह स्वयं हर नये पुरुष पर डोरी डालने लगी। मायादेवी की पुत्री है पद्मा और 'स्वदेश महल' का वातावरण उसे विक्षिप्त करता है। वह किसी को चाहती है और आजीवन उसे चाहने का संकल्प लिये है। देशबन्धु एक दिन मद-विभोर हो उस पर नजर डालते हैं और इस स्थिति में वह खिड़की से कूदकर आत्मघात कर लेती है। इस घटना से जया भयभीत हो शरद के साथ स्वदेश महल से प्रस्थान कर देती है।

सम्पूर्ण उपन्यास सात दिन की अवधि तक सीमित है और इस सीमित समय में ही लेखक ने अनेक पात्रों का यथातथ्य जीवन कुशलता के साथ चित्रित कर दिया है। पात्र सजीव हैं और मध्यवर्ग में उखड़े हुए लोगों के अभावों को अभिव्यक्ति देते हैं, यद्यपि उनके चित्रण में अन्य प्रगतिवादी कलाकारों का पूर्वग्रह नहीं है।

देशबन्धु के चरित्र चित्रण में लेखक ने समस्त शक्ति का उपयोग किया है। उसकी मानवता, समाज सेवा तथा कपट का सूक्ष्म विश्लेषण कर उनके देशप्रेम के मुखौटे को अलग कर दिया है। नारी के उत्पीड़न और देशभक्त पूँजीपतियों की संस्कृति का यथार्थवादी चित्रण उपन्यास में मिलता है। डॉ० रामविलास शर्मा का अभिमत है कि 'पूँजीवादी सम्कृति का निवारण करने की कला में देशबन्धु का चित्रण 'गोदान' के राय साहब के पदचिन्हों पर चला है। देशबन्धु स्वाधीन भारत के सफल देशभक्त हैं। उनका चरित्र राय साहब से ज्यादा पेचीदा—कुछ-कुछ 'प्रेमाश्रय' के ज्ञानशंकर-सा है। लेखक ने छोटी-छोटी घटनाओं को जोड़कर बड़े सहज भाव से देशबन्धु के चरित्र की आन्तरिक वास्तविकता तक पाठक को पहुँचा दिया है। उपन्यास के अध्याय 'बातें'

बातें !! बातें !!!' में शिष्ट, धनी, शिक्षित किन्तु दूसरों के परिश्रम पर जीने वाले वर्ग की बातों की झड़ी लगी दी गयी है। इस वर्ग के विभिन्न स्तरों की संस्कृति कितनी असंस्कृत, उसकी शिष्टता कितनी अशिष्ट और समाज के लिए वह कितनी घातक है, इसका रोचक और जीवन्त चित्र आंका गया है।'[१] देशबन्धु सामन्ती सम्बन्धों के पोषक के रूप में चित्रित पूँजीवादी व्यक्तित्व है, जो देशभक्ति की आड़ में जनता को गुमराह करने का भरसक प्रयत्न करता है। उनके साथ ही शासक वर्ग भी न्याय और शान्ति-व्यवस्था के नाम पर पूँजीवादी हितों की रक्षा करना अपना कर्तव्य समझता है। यह पूँजीवादी वर्ग कला और कलाकारों का उपयोग भी निजी स्वार्थों के लिए करना चाहता है और उपन्यास के नायक जी और सूरज इसके उदाहरण हैं। 'जहाँ भी इस परिस्थिति के विरोध में कोई उठ खड़ा होता है, या उसके विरुद्ध मुँह खोलता है, उसे कम्युनिस्ट कहकर दबाने की कोशिश की जाती है। इस परिस्थिति को बदलने का सही रास्ता जन-साधारण की एकता और अपने अधिकारों के लिए उसका संघर्ष है। इसकी ओर राजेन्द्र यादव ने 'उखड़े हुए लोग' में संकेत किया है,'[२] जो शायद उनकी दृष्टि में वर्तमान शासन की ओर संकेत है।

सत्या मिल के मजदूरों की हड़ताल का चित्रण, देशबन्धु के भाषण की विफलता और सूरज में समाजवादी चेतना का विस्तार सोद्देश्य है और कथानक को सुगठित बनाता है। सूरज का उपन्यास में एक विशिष्ट व्यक्तित्व है। लेखक की सोद्देश्य दृष्टि इसी पात्र के माध्यम से विस्तृत हुई है। प्रवीन की असकल्पनाएँ और देशबन्धु के व्यवहार उसे आस्थाहीन बना देते हैं। सूरज का जीवन अनेक पक्षीय है। वह साहसहीन होते हुए भी मजदूरों की हड़ताल से साहस का संचय कर मजदूरों का साथ देता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि सभी प्रमुख पात्र बहुपक्षीय तथा विकासशील हैं।

साम्यवाद की झलक

उपन्यास में पूँजीवादी पात्र जहाँ साम्यवाद की आलोचना करते हैं, वहीं लेखक की विचारधारा से संचालित पात्र और घटनाएँ साम्यवाद का समर्थन करती हैं।

देशबन्धु साम्यवाद की विवेचना गीता के आधार पर करते हुए कहते हैं — 'कुत्ता हाथी, ब्राह्मण, चाण्डाल सभी में एक ही आत्मा को समझो। आप सोचिए तो सही, है ऐसा कम्युनिज्म आपके रशा में कहीं ? इससे ज्यादा उदार व्याख्या कम्युनिज्म की

१. डॉ० रामविलास शर्मा - वसुधा (मासिक) में प्रकाशित लेख—'हिन्दी उपन्यास : नयी दिशा' से।

२. डॉ० रामविलास शर्मा : वसुधा (मासिक) प्रकाशित लेख—
'हिन्दी उपन्यास - नयी दिशा' से।

और क्या हो सकती है ? कहाँ है आपके रूस और चीन में साम्यवाद जिसने श्वान और द्विज सबके भीतर एक ही आत्मा की प्रतिष्ठा करके आन्तरिक और सार्वभौमिक सत्य की व्याख्या की गयी हो।'[१]

भारतीय कम्युनिस्टों की 'रूस-भक्ति' के ऊपर भी व्यंग किया गया है—'उनका बस चले तो स्तालिन की फोटो का तावीज गले में लटका लें। मार मोर कम्युनल देन थवर मोहम्मडन्स...मेरी समझ में नहीं आता, कैसे लोग अपने दिमागों को ताक पर रख कर इतने जड़ हो जाते हैं कि वहाँ की हर उल्टी-सीधी बात का समर्थन करने लगते हैं।...हमारे हिन्दुस्तानी कम्युनिस्टों में यही खराबी है—वे डाग्मेटिक बहुत हैं। हर बात में रूस और चीन की तरफ भागते हैं।'[२] स्पष्टतः जो गीता का उपदेश द्विज और शूद्र का वर्ग-भेद सिवाय भारत के और कहीं उनमें है ही नहीं। रहा मनुष्य और कुत्ते का भेद भारत में सर्वाधिक है। विदेशों में तो उसे गोद में भी लेकर चलने की प्रथा है। पता नहीं, पूंजीपति पात्र गीता को कम्युनिज्म की शिक्षा क्यों मानते हैं और उसकी वास्तविक त्याग की शिक्षा को क्यों भुला देते हैं।

साम्यवादियों के सम्बन्ध में सारे विरोधी वक्तव्य देशबन्धु के द्वारा दिलवाये गये हैं, जिनका स्वयं का चरित्र अत्यन्त निम्न श्रेणी का है। अतएव सारे कथन सतही बनकर रह गये हैं।

इसके विरुद्ध हड़ताल के समय मजदूरों का चरचा और उनकी स्थिति के सम्बन्ध में प्रकट विचार मार्क्सवादी विचारधारा को पुष्ट करते हैं। मजदूरों की स्थिति के सन्दर्भ में कहा गया कथन पूंजीवादी सभ्यता को उसकी वास्तविकता में ला देता है: 'जिन्दा रहोगे तो तुम्हारा खून मिलों में निचोड़ा जायेगा—तुम बायलरों में जल-जल कर मरोगे, और वैसे मरने से इकार कर दोगे तो नतीजा सामने है। अब तक यह लहर के दूध के धुन बंगे पहले रात्रस तुम्हारी-हमारी छातियों पर है—हमारी किस्मत यही है।'[३] और इसीलिए मजदूरों की मांग है। 'हमें भीख नहीं चाहिए, जो कुछ हम मांग रहे हैं, वह हमारा अधिकार है।'[४] मार्क्सवादी सिद्धान्त के अनुसार उपन्यास का आधार शोषण की प्रवृत्ति के विरुद्ध क्रांति का आह्वान है। इस विचारधारा का प्रतिपादन किया गया है कि प्रजातन्त्र असफल है और देश को सच्चा साम्यवाद चाहिए। सम्भवतः उनके विचार से समाजवादी प्रजातन्त्र पूंजीवाद का नकली आवरण है।

---

१. राजेन्द्र यादव : उखड़े हुए लोग, पृष्ठ १०८
२. राजेन्द्र यादव : उखड़े हुए लोग, पृष्ठ ८६
३. राजेन्द्र यादव : उखड़े हुए लोग, पृष्ठ २७१
४. राजेन्द्र यादव : उखड़े हुए लोग, पृष्ठ २६५

गाँधीवाद की आलोचना

इसीलिए उपन्यास में कांग्रेसियों, कांग्रेस, राष्ट्रीय आन्दोलन और गांधी जी के बारे में अनेक प्रसंगों पर आलोचना की गई है। कांग्रेसी देशबन्धु का तो चरित्र चित्रण ही व्यंग्यात्मक पद्धति में किया गया है और उसे 'कैरिकेचर' की श्रेणी में रखा जा सकता है। राष्ट्रीय आन्दोलन और गांधी जी के बारे में जो फतवे दिये गये हैं वे किसी ऐसे व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं, जिसका स्वाधीनता-संघर्ष से कुछ भी सम्बन्ध रहा हो।

मार्क्सवादी दृष्टिकोण के कारण हिंसक क्रांति के प्रति लेखक को ऐसा मोह है कि राष्ट्रीय आन्दोलन में सन् ४२ और उसके पूर्व के क्रांतिकारियों के अतिरिक्त, और कोई उन्हें श्रद्धा के योग्य नहीं लगता। गांधी की ऐतिहासिक विकृति और ट्राटस्की को अनावश्यक रूप से तर्कहीन कोसना मार्क्सवादी प्रचार ही है। इसीलिए एक समीक्षक के शब्दों में यादव जी ने मार्क्सवाद को भी एक बचकाना सिद्धान्त बना डाला है। सरदार पटेल की मृत्यु के समाचार प्राप्त होने पर देशबन्धु के यहाँ स्वागत-समारोह का स्थगित न होना[1] और कांग्रेस मन्त्रियों के व्यवहार[2] के चित्रण से कांग्रेसियों पर छींटे कसे गये हैं। इसी के कारण मजदूर भी लहरशाही और कांग्रेसी राज मुर्दाबाद के नारे लगाते हैं।[3]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि उपन्यास में मार्क्स के ऐतिहासिक भौतिकवाद की भी चर्चा है, गांधी की अहिंसा पर फतवे हैं और स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद कांग्रेसी नेतृत्व के अध:पतन के कारणों की खोज है और इस तरह उसे राजनीतिक स्वरूप दिया गया है। और सार्वकालिक सत्य नहीं हो सकती। एक विचारप्रणाली के अवसान और दूसरे के निर्माण के बीच एक संक्रमणकालीन परिस्थिति होती है। इसी आधार पर श्रीवास्तव जी ने सन् १९२८ से १९५२ की कालावधि को पृष्ठभूमि के रूप में ग्रहण किया है।

उपन्यास के नायक मंगरुआ चमार का प्रारम्भिक जीवन गाँव में व्यतीत हुआ। यह १९२८ से १९४५ की कालावधि थी। इस दरमियान वह वर्ग-समाज और जाति-समाज के दोहरे शोषण का शिकार हुआ। उसने देखा 'दादा ने खून देकर ठाकुर का खेत बनाया था, आज खून के बिना दादा का बेटा अस्पताल में मर गया। दादा ने ठाकुर के खेत के लिए अपनी जान दे दी थी, मगर ठाकुर के बेटे के लिए दो-चार पैसे न दिये।' यह सामन्ती शोषण या दास-प्रथा के जीवन का मार्मिक प्रसंग है।

---

१ राजेन्द्र यादव उखड़े हुए लोग, पृष्ठ ३४२

२ राजेन्द्र यादव उखड़े हुए लोग, पृष्ठ ३१०

३. राजेन्द्र यादव - उखड़े हुए लोग, पृष्ठ २७२

ग्राम का जीवन त्याग मँगरुआ मजदूर बनता है और उसके जीवन में एक नया मोड़ आता है। यह कालावधि १९४५ से १९५१ की है, जब समाजवादी चेतना विस्तारोन्मुख थी। औद्योगिक मजदूर के रूप में मगरुआ के नेतृत्व के बीज अंकुरित हुए और वह कांग्रेस और सोशलिस्ट पार्टी के सम्पर्क में आया। वह राजनीतिक क्षेत्र में प्रवेश कर पूँजीवादी प्रभाव और राजनीति के खोखलेपन को निकट से देखता और समझता है। वह अनुभूति करता है कि 'दुनिया में चाहे जो आदमी हो, अगर वह प्रारब्धवादी है तो मैं उससे नफरत करता हूं। और किस्मत की चक्की में अपने को पीसना मैं मूर्खता के सिवाय और कुछ नहीं समझता।'

उसके जीवन का तीसरा अध्याय रिक्शाचालक से शुरू में हुआ और जीवन की इस मंजिल पर वह कम्युनिस्टों के सम्पर्क में आया। भारतीय कम्युनिस्टों की कथनी-करनी में भी वह जीवन-आसमान का अन्तर पाकर इस नतीजे पर पहुँचता है कि 'लेकिन इनका यह अर्थ नहीं कि मैं वर्तमान या भविष्य में घोर निराशा के सपने देख रहा हूं। लेकिन हर पार्टी में अच्छे-बुरे लोग हैं। मजदूरों को आज जो भी सुविधाएँ मिली हैं, पार्टियों के संगठन और संघर्ष के ही फल हैं। राजनीति को वर्तमान जीवन से अलग करके कहाँ रहोगे ? अपनी-अपनी खूबियों के लिए हर पार्टी के आदर्श को अपनाना चाहिए।'

'आदमी और सिक्के' और 'रात अँधेरी है'

महेन्द्रनाथ के 'आदमी और सिक्के' तथा 'रात अँधेरी है' में सामन्तवादी और पूँजीवादी संस्कृतियों के टूटने तथा समाजवादी संस्कृति के विकास की पृष्ठभूमि में मानव-संघर्ष को चित्रित करने का प्रयास है। 'आदमी और सिक्के' का नायक राज जीवन के सुनहले सपने संजोने वाला तीस वर्षीय युवक है, जो बेकारी की स्थिति में जीवन को चारों ओर से अवरुद्ध पाता है। वह इस पूँजीवादी तथ्य से परिचित होता है कि वर्तमान युग में धन ही सर्वस्व है और उसी तुला पर जीवन का मूल्य निर्धारण होता है। आशा आकांक्षाओं के बिना उसके जीवन में निपट नीरसता का उद्रेक होता है। फिर भी उसका धैर्य समूल नष्ट नहीं हुआ है। इसी अवसर पर उसका मित्र नीरथ उसके जीवन में प्रवेश करता है। नीरथ धन की महत्ता से परिचित ही नहीं, अपितु उसके उपार्जन के हुनर भी जानता है। धनिक नीरथ हमीदा के प्रेम में विह्वल हो आत्महत्या कर लेता है। इधर राज है, जो धनाभाव के कारण शीला से विवाह नहीं कर पाता। यह पूँजीवादी समाज की ही जीवन-पद्धति का परिणाम है। इस अधकार में रमेश का व्यक्तित्व ज्योति सा प्रकाशित होता है। रमेश साम्यवादी पात्र है और वैयक्तिक समस्याओं का समाधान समाजवादी व्यवस्था को देखता है। राज को उसके जीवन से प्रेरणा

मिलती है। किन्तु रमेश के अस्पष्ट चारित्रिक विकास के कारण समाजवादी चेतना संकेतात्मक बनकर ही रह गयी है। उसमे औपन्यासिक तत्वों का सम्यक् निर्वाह भी नही हो सका है।

रात अँधेरी है

महेन्द्रनाथ के दूसरे उपन्यास 'रात अंधेरी है' म भी पूँजीवादी सम्यता की विकृति का यथार्थ चित्रण हुआ है। उपन्यास का नायक एक सामन्तवादी पात्र है, जो बदलते हुए जमाने के साथ पूँजीवादी समाज म अपना स्थान बनाने मे स्वय टूट जाता है। कथानक के द्वारा उपन्यासकार ने सामन्तवादी तथा पूँजीवादी प्रवृत्तियो के दोषो को उघार कर रख दिया है। दोनो जीवन पद्धतियो को मानव के प्रतिकूल निरूपित करते हुए नारायण क व्यक्तित्व से समाजवादी चेतना को ही मानव कल्याण का सही मार्ग बताने का प्रयास किया है।

जगदीश जीविका की खोज मे औद्योगिक नगरी बम्बई पहुँचता है और पूँजीवादी सभ्यता के बीभत्स स्वरूप को निकट स देखता है।

लोहे के पख

हिमाशु श्रीवास्तव के 'लोहे के पख म सर्वहारा वग के एक व्यक्ति की आत्म कथा से पूरे राष्ट्र के जीवन का साधारणीकरण किया गया है। कथा-क्षेत्र सीमित होने पर भी सन् १९२८ से १९५३ की कालावधि को यथार्थवादी सामाजिक पृष्ठभूमि पर चित्रित करता है।

उपन्यास का नायक है मंगरुआ चमार, जो अपनी सघर्षपूर्ण मार्मिक आत्मकथा लेखक को स्वय सुनाता है। वस्तुत यह गाथा अकेले मंगरुआ की ही नही, अपितु उसे चार पुश्त की है और जिसके माध्यम से तीन दशक के सक्रमणकालीन भारतीय जीवन को अभिव्यक्ति दी गयी है।

अपने प्रारम्भिक जीवन म (सन् १९२८ से १९४५ तक) मंगरुआ अपने दादा और बाप की शोषित अवस्था का निकट से अध्ययन करता है। मँगरू का दादा सामन्त वाद से दबा निरीह किन्तु स्वामिभक्त नौकर है। वह भूखे रहकर भी मालिक के गोहरॉव मे जीवनार्पण की भावना रखता है। वह अपने जमींदार बच्चा बाबू के खेत को दूसरे के हाथो मे जाते नही देख सकता किन्तु शोषक वर्ग की नजर मे उसकी स्वामिभक्ति का कोई मूल्य नही है। मंगरुआ बताता है दादा ने खून देकर ठाकुर का खेत बचाया था, आज खून के बिना दादा का बेटा अस्पताल म मर गया। दादा ने ठाकुर के खेत के लिए अपनी जान दे दी थी, मगर ठाकुर ने दादा क बेटे क लिए दो

चार पैसे न दिये ।' यह सामन्ती शोषण या दास-प्रथा के जीवन का मार्मिक प्रसंग है। बच्चा बाबू उस शोषक वर्ग के प्रतीक हैं, जो शक्ति के बल पर शोषण करना दैवीय अधिकार मानते हैं। शोषित यदि अपने अधिकारों की भूले भटके मांग कर बैठे तो उसे जमींदारी जुल्म का शिकार होना पड़े। और जुल्म की यह प्रक्रिया गुप्तांग में मिर्चा भरने तक विस्तृत है। जमींदारी आतंक के कारण मजदूर अपने को असहाय पाते और उसके इशारे पर चलना ही अपना धर्म समझ चुप रह जाते। वे मार खाते, बेगार करते और भूखे पेट रह जाते। मरणासन्न बाप को छोड़ कर मंगरुआ को बेगार में जुटना पड़ा। उपन्यास का पूर्वार्द्ध खेतिहर मजदूर के जीवन की दीनता और विवशता का विशद चित्रण प्रस्तुत करता है।

उपन्यास का उत्तरार्द्ध मिल-मजदूर के संघर्ष से भरा पूरा है। ग्राम का जीवन त्याग कर मंगरुआ शहर आता है और यहाँ मिल मजदूर के रूप में उसके जीवन का नया अध्याय प्रारम्भ होता है। यह कालावधि देश की स्वतन्त्रता से दो एक साल पूर्व से १९५१ तक की है, जब समाजवादी चेतना विस्तारोन्मुख थी। राष्ट्रीय आन्दोलन हुआ, देश को स्वतन्त्रता मिली पर यह सब होने पर भी जन साधारण के जीवन में किसी प्रकार की खुशहाली न आयी। जमींदारी टूटती है पर बड़े लोगों का आधिपत्य तब भी कायम रहता है। बच्चा बाबू जमींदार के स्थान पर एम० एल० ए० हो जाते हैं। शोषण कायम रहता है, उसके तरीके में परिवर्तन अवश्य हो जाता है। राजनीतिक चेतना का प्रसार होता है और मंगरुआ क्रमशः कांग्रेस और सोशलिस्ट पार्टी के सम्पर्क में आकर राजनीति को पूँजीवादी प्रभाव में घुटता हुआ पाता है। इस प्रसंग मिल मालिकों में शोषण-वृत्ति और मजदूरों की आर्थिक कठिनाइयों से टूटते हुए संगठन का चित्रण किया गया है। मंगरुआ अपने स्वानुभव से कहता है 'दुनिया में चाहे जो आदमी हो, अगर वह प्रारब्धवादी है तो मैं उससे नफरत करता हूं। और किस्मत की चक्की में अपने को पीसना मैं मूर्खता के सिवाय कुछ नहीं समझता।' लेखक ने संकेत किया है कि मजदूर-संगठन के द्वारा मजदूरों की आर्थिक स्थिति में सुधार संभव है। किन्तु यह तब ही संभव है, जब संगठन राजनीतिज्ञों की स्वार्थपूर्ण गतिविधियों से मुक्त हो। जन-कल्याण ही राजनीतिक दलों का एकमात्र ध्येय होना चाहिए। रिक्शाचालक के रूप में मंगरुआ कम्युनिस्टों के सम्पर्क में आता है और इन राजनीतिक दलों की कथनी और करनी में अन्तर देखकर इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि "राजनैतिक पार्टियाँ सभी बेईमानी करती हैं, ये जनता को धोखा देने के लिए ही हैं।" यह वक्तव्य वस्तुतः अनास्थामूलक न होकर उपन्यासकार की विवेकपूर्ण तटस्थ दृष्टि का परिचायक है। वह इस तथ्य की ओर इंगित करता है कि राजनीतिक दल स्वार्थ का परित्याग कर अपने वास्तविक कर्तव्य का पालन करें। यही कारण है कि मंगरुआ में बहुनायाया गया है

कि 'लेकिन इनका यह अर्थ नहीं कि मैं वर्तमान या भविष्य में घोर निराशा के सपने देख रहा हूँ। मजदूरों को आज जो भी सुविधाएं मिली है, पार्टियों के संगठन और संघर्ष के ही फल है। राजनीति को वर्तमान जीवन से अलग करके कहाँ रहोगे।'

ऊँची-नीची राहें

सरस्वतीसरन 'कैफ' नयी पीढी के उपन्यासकार है, जो समाजवादी चेतना से युक्त कथावस्तु से अपने उपन्यासों को समृद्ध बनाने की दिशा में सचेष्ट है।

'ऊँची-नीची राहें' साम्यवादी कार्यकर्ताओं के जीवन को व्यक्त करने वाली एक सशक्त कृति है। उपन्यास का प्रमुख पात्र है रमानाथ, जो विषम परिस्थितियों से जूझते हुए अपना मार्ग बनाने के लिए उत्सुक है। त्रिभुवन सिंह के मत से 'ऊँची-नीची राह' एक साम्यवादी कार्यकर्ता के प्रतीक 'रमानाथ' के जीवन-दर्शन, उसकी मान्यताओं, उसके आचार विचार, रहन-सहन एवं उसके व्यक्तित्व का वास्तविक चित्र है।'[1]

हिन्दी के उपन्यासों में चित्रित अन्य क्रांतिकारी-साम्यवादी व्यक्ति की तरह रामनाथ भी जो ऊँची-नीची राहें देखते है, वे रोमान्स के चतुर्दिक फैली हैं। मन्मथनाथ गुप्त के समान 'कैफ' भी काम विज्ञान के जाल में बुरी तरह फँसे दिखलायी पड़ते हैं। हिन्दी के उपन्यासकारों में यह भावना न जाने कैसे आ गयी है कि बिना रति क्रिया-प्रदर्शन के यथार्थ का निर्वाह पूर्ण नहीं होता। समाजवादी जीवन दर्शन से मंडित उपन्यासों में तो मार्क्सवादी सेक्स सम्बन्धी स्वच्छन्दता को अभिव्यक्त करने के लिए ऐसा चित्रण 'रामबाण' नुस्खा हो गया है। सुषमा का नग्न रोमान्स मन्मथनाथ गुप्त की वसुधा की याद दिला देता है। सच तो यह है कि यथार्थ के नाम पर चित्रित यह बीभत्सता भारतीय संस्कृति के विरोध में जाकर साम्यवाद का मार्ग अवरुद्ध करती है।

भूख और तृप्ति

'कैफ' के दूसरे उपन्यास 'भूख और तृप्ति' का कथानक उन अनेक प्रासंगिक घटनाओं से सग्रथित है, जो १९२० से स्वाधीनता-प्राप्ति तक की घटनाएँ प्रस्तुत करता है। किन्तु इतना होने पर भी उसका कार्य क्षेत्र उन्नाव से कानपुर तक केवल १३ मील लम्बा है। इस क्षेत्र को लेकर नमक-सत्याग्रह, साम्प्रदायिक संघर्ष और लीग की घातक नीति, साम्यवादियों की राजनीतिक भूमिका, देश विभाजन और विस्थापित समस्या को

---

१ त्रिभुवन सिंह, हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृष्ठ ४६५

प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास में श्याममनोहर, प्रियम्वदा, प्रकाश और डाली आदि पात्रों के सबल व्यक्तित्व के माध्यम से घटनाओं को सजीव बनाने में लेखक को पर्याप्त सफलता मिली है। पात्रों का चित्रण मनोवैज्ञानिक ढंग से किया गया है। कहा गया है कि बीसवीं सदी के प्रारम्भ में जिस तरह के बंगला सामाजिक उपन्यास लिखे जाते थे, उसी शैली का यह 'भूख और तृप्ति' है। सन्यासी के प्रवचन, प्रार्थना गीतों, श्लोकों के उद्धरण एवं कथानक पर धार्मिक वातावरण की गहरी छाप से उपन्यास का राजनीतिक स्वरूप लड़खड़ा सा गया है।

सूखा पत्ता :

अमरकांत लिखित 'सूखा पत्ता' भी निर्दोष रचना नहीं है। लेखक ने उपन्यास की कथा को खंडों में बाँटा है, किन्तु वस्तुतः इसकी कथा तीन खंडों में विभाजित है। पहले खंड में कृष्ण के बाल्यकाल और प्रारम्भिक शिक्षाभ्यास की, दूसरे खंड में किशोरावस्था की और तीसरे में उर्मिला नामक विजातीय युवती के साथ प्रेम की कथा वर्णित है। दूसरे खंड में किशोरावस्था में वह सहपाठियों के साथ उभरती हुई राजनीतिक चेतना के प्रभावान्तर्गत विभिन्न साहसिक कार्य करता है। इसका प्रेरणास्रोत स्पष्टतः शरद बाबू का श्रीकांत है। उपन्यास का किशोर नायक कृष्णकुमार दसवीं जमात में पढ़ते हुए क्रांतिकारी दल की स्थापना करता है और साहस-सचय की इच्छा से अपने साथी दानेश्वर के साथ सर्दियों की एक रात गंगा तट पर श्मशान में बिताता है।

कृष्ण बलियानिवासी है और उसका जीवन आवारगी के वातावरण में विकसित होता है। शरीर की दुर्बलता के कारण उसे अपनी स्थापना के लिए हीन भावना से संघर्ष करते हुए क्षति-पूर्तिजन्य आदर्शों से प्रेरित होकर साहसिक क्रियाएँ करनी पड़ती हैं। इस प्रक्रिया में उसका आदर्श है मनमोहन, जो शरीर शक्ति, सौष्ठव और विद्याध्ययन सभी में तेज है। इसी काल खंड में उसके कुछ मित्र मनोहर, दीनानाथ-दीनेश्वर और कृपाशंकर उभरकर सामने आते हैं, जो अपने चरित्र, आचरण और स्वभाव से नायक के चरित्र को निर्धारित तथा गतिशील करते हैं।

कथानक कृष्ण मनमोहन के रूप में अपने सहित आदर्श की क्रांतिकारियों की त्याग-पूर्ण कहानियाँ सुनकर पुनर्रचना की चेष्टा करता है। नायक 'हीरो' बनने की कोशिश में वह सब करता है जो आतंकवादी क्रांतिकारियों ने किया था। सेठ के बोरों की चोरी, खूनी आजाद पार्टी की रचना, छिट-पुट पर तथाकथित राजनीतिक क्रियाएँ, इनका सविस्तार विवरण मिलता है। किशोर नायक कृष्ण की प्रतिक्रियाएँ बालकोचित हैं। परिणामतः उक्त क्रांतिकारी दल का चित्रण ऐसा प्रतीत होता है मानो क्रांतिकारी दल को उपहासास्पद बनाने की दृष्टि से किया गया है। डोक्टर से मित्रता स्थापित कर

क्लोरोफार्म चुराना, क्रांति के नाम पर बोरियों की चोरी पाठक को प्रभावित नहीं करती, इतना ही नहीं, अपितु क्रांति के नाम पर खुराफात करने के बाद कृष्णकुमार को जब एक व्यक्ति लघु वक्तव्य द्वारा समाजवाद से परिचित कराता है तो उसे तत्वज्ञान हो जाता है और स्वयं उसे अपने कार्य हास्यास्पद लगने लगते हैं। यह प्रक्रिया अस्वाभाविक है।

समाजवाद से परिचित होने पर भी वह उर्मिला के साथ प्रेम में दुर्बलता दिखलाता है और समाज की जातीय व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह नहीं कर पाता। यह भी राजनीतिक उपन्यास की दृष्टि से उपन्यास का शिथिल पक्ष है और क्रांतिपरक उपन्यास की कुंठित। विजातीय उर्मिला को प्यार करने पर भी वह उसे प्राप्त नहीं कर सकता और उसका तथाकथित आदर्शमुखी व्यक्तित्व उसे धोखा देता है। वह उर्मिला की दृढ़ता के बावजूद उसे माँ-बाप के निर्देशानुसार विवाह करने की राय दे स्वयं इस तथाकथित त्याग से निराशा के गर्त में गिर जाता है। कथा यहीं समाप्त हो जाती है पर, इसके बाद भी कृपाशंकर शोषक से उपसंहार दिया गया है, जिसमें लेखक नायक को सूखे पत्ते के समान रूमानी आदर्शों की हवा में उड़ता चित्रित कर कृपाशंकर को आदर्श रूप में प्रस्तुत करता है। बताया गया है कि कृपाशंकर अपना हक में टोला नहीं और कम्युनिस्ट पार्टी का सदस्य होकर राजनीति के अखाड़े में डटा रहता है।

प्रस्तुत उपन्यास में कथा प्रवृत्ति एवं वातावरण का कुशल चित्रण होने पर भी राजनीतिक विवरण का संयोजन ठीक रूप से नहीं हो सका है। राजनीतिक पात्र के रूप में कृष्णकुमार और कृपाशंकर दोनों सनकी हैं।

केलाबाड़ी

समाजवादी चेतना का कलात्मक अंकन नित्यानंद वात्स्यायन के लघुकाय उपन्यास 'केलाबाड़ी' में मिलता है। आलोच्य उपन्यास में मजदूरों की बस्ती केलाबाड़ी के चित्रण में समाजवादी दृष्टिकोण को प्रमुखता मिली है। इसमें मजदूर-बस्ती निम्नतर भारतीय जीवन के प्रतीक के रूप में आयी है और उसे केन्द्र बिन्दु बनाकर कलाली, मछली की दुकान, हलवाई और पान-बीड़ी दुकान के यथार्थ विवरण के साथ मजदूर की बस्ती के जीवन को संचालित करने वाले पात्रों का चरित्रांकन है।

उपन्यास का नायक है मसवा, जो केलाबाड़ी में अपनी बहिन इजोरिया को ढूंढने आया है। इजोरिया विधवा है और देवर के अत्याचार से त्रस्त हो घर से भाग कर केलाबाड़ी की चटकल में काम करती है। मसवा केलाबाड़ी के जीवन को निकट से देखता है और यहाँ की अश्लीलता और बीभत्सता और निर्धन जीवन को देखकर विस्मित होता है। मजदूर बस्ती का सहज स्वाभाविक चित्रण किया गया है। मजदूर बस्ती में आकर इजोरिया का जीवन परिवर्तित हो गया है और लेखक ने यह बताने

का प्रयास किया है कि केलाबाडी में आकर मनुष्य में पशुत्व का समावेश क्यों और कैसे हो जाता है। यहाँ के नारकीय जीवन में पड़कर मनुष्य की सद्वृत्तियाँ विलुप्त हो जाती है। विषम आर्थिक परिस्थिति जीवन-धारक तत्वों को विनष्ट कर मनुष्य को निर्जीव बना देती हैं और मानसिक विक्षिप्तता और यौन विकृतियाँ उभर कर आती है।

भसवा और काली में मैत्रीभाव के चित्रण से कथानक और वातावरण की कालिमा को कम किया गया है। साथ ही मजदूरों का सगठन तथा उसकी हडताल की उद्भावना से समाजवादी चेतना का सकेत प्रस्तुत किया गया है। मार्क्सवादी सिद्धान्तों को प्रच्छन्न रूप से उपस्थित करने के कारण उपन्यास प्रचारात्मक होने से तो बचा ही है इसका कलात्मक रूप भी निखरा हुआ है। इजोरिया की मृत्यु का मार्मिक चित्रण और भसवा व काली का केलाबाडी परित्याग कर अज्ञात नियति की ओर बढ़ना समाजवादी चेतना के साहस एव विश्वास की आस्था को सूचित करता है और इस आस्था का ही सदेश है 'नाव का लग्गा टूट जाने पर नाव बहती रहती है, डूब नहीं जाती।'[1]

नींव का पत्थर

मजदूर आन्दोलन के आधार पर मजदूरों का पक्ष लेकर साम्यवादी वर्गवाद को इस उपन्यास में अभिव्यक्ति दी गई है। सघर्ष के सन्दर्भ में विशिष्ट राजनीतिक दल एव उसकी नीति-रीति पर प्रकाश डाला गया है।

लहरें और कगार

बच्चन सिंह के 'लहरें और कगार' में जमींदारी उन्मूलन के उपरांत हुई धाँधलियों का वर्णन मिलता है। इस लघुकाय उपन्यास में लेखक ने इस तथ्य की ओर ध्यानाकर्षित किया है कि जमींदारी उन्मूलन के बाद भी जमींदारों का वर्चस्व कायम है और वे ग्राम के प्रशासन पर छाये हुए है। पात्रों की सख्या स्वल्प है जो उपन्यास के आकार को देखते हुए उचित है। इतना होने पर भी इने-गिने पात्रों के माध्यमसे स्वाधीनतोपरांत भारतीय ग्राम और ग्राम-पचायतें जीवन्त हो गई हैं।

मनु की बेटियाँ

छेदीलाल गुप्त के उपन्यास 'मनु की बेटियाँ' की कथा अत्यन्त सक्षिप्त है। यदि मूल कथा को सुगठित रूप से प्रस्तुत किया जाता तो यह एक लम्बी कथा ही रह

---

१ निरपामन्द वात्स्यायन, केलाबाडी, पृष्ठ ६०

जाती। कथानक का गठन ऐतिहासिक भौतिकवाद को प्रमाणित करने की मार्क्सवादी दृष्टिकोण का प्रतिफल है।

किन्तु राजनीतिक ज्ञान के अधकचरेपन के कारण अनेक असंगतियाँ रह गई है। लेखक मानते है कि ऐतिहासिक भौतिकवाद के आधार पर परिवार की उत्पत्ति हुई, जो भ्रामक है स्त्री-पुरुष का सम्पर्क तो प्रकृत होता है उसमे किसी वाद का स्थान ही कहाँ! ऐतिहासिक भौतिकवाद के पूर्वग्रह के कारण ही कलकत्ता के बड़ा बाजार और लोटा-डोरी लेकर आने और शोषण द्वारा धनार्जन करने वाले मारवाड़ी सेठो, जान कारनाक की जमीदारी और बगाल के दुर्भिक्ष के चित्र प्रस्तुत कर समाजवादी यथार्थ को वाणी देते हैं।

उपन्यास के पात्र निर्जीव से है और रचना का शिल्प राजनीति के पूर्वग्रह से बंधकर छिन्न-भिन्न हो गया है। भाषा भी नारेबाजी म पड़कर अस्वाभाविक हो उठी है 'मध्यवर्ग बराबर से ससार मे जलील रहा है,' 'यदि आग की लपट है, क्रांति की लपट, जन क्रांति की लपट है।' आदि।

मुक्तावती

बलभद्र ठाकुरकृत 'मुक्तावती' मे मणिपुर के १९२५-२६ से १९३५ तक के जनसघर्ष का चित्रण अवश्य है, किन्तु वह प्रेम-कथा के बोझिल कलेवर म दीप्तिहीन हो गया है। जन सघर्ष का प्रारम्भिक रूप 'श्राद्धकर' के विरुद्ध होने के कारण सकुचित है। प्रकाशकीय वक्तव्य के अनुसार लेखक 'परम उदार मार्क्सवादी हैं।' लेखक के शब्दो म सम्भवत इसीलिए 'गांधीवाद और मार्क्सवाद के सह अस्तित्व और समन्वय की बात भी उपन्यास म सोद्देश्य कही गई है।' वस्तुत यह प्रसग जेल के बन्दियो तक सीमित है और उपन्यास का अग नहीं है। उपन्यास म जिस अकाल की बात कही गई है, उसका प्रभाव भी केवल ब्राह्मण और मैतेई लोगो तक ही है। कथावस्तु मणिपुर से सम्बन्धित है, किन्तु मणिपुर की आचलिकता और उसके सामाजिक तथा राजनैतिक परिवर्तन का चित्र स्पष्ट नहीं है। अन्य राजनीतिक उपन्यासो के समान ही 'मुक्तावती' के पात्र भी लम्बे-लम्बे भाषण देने म मुक्त है। दूसरे शब्दो मे वे उद्देश्यपूर्ण किन्तु निर्जीव हैं।

क्रांतिकारी

क्रांतिकारी जीवन को आधार बनाकर रचित उपन्यास 'क्रांतिकारी' मे भी सेक्स का स्थूल चित्रण है। उपन्यासकार जयन्त वाचस्पति के इस उपन्यास मे नीना और उसका दोस्त, जो इस कहानी को बयान करता है, क्रांतिकारी दल से सम्बद्ध है। एक कार्य के सन्दर्भ मे ये दोनो गुरुदेव के पास जाते हैं, जो अपनी रामकहानी इन्हे

सुनाते हैं। ये गुरुदेव सारे क्रान्तिकारियों के सर्वप्रथम नेता हैं, किन्तु उनके क्रांति सम्बन्धी कार्यों के बारे में सम्पूर्ण उपन्यास में कहीं कुछ नहीं मिलता। उपन्यास की एक अन्य पात्र गार्गी है, जो क्रांतिकारी रमाकांत की पत्नी है। रमाकान्त विलायत में रहता है। प्रकाश गुरुदेव की पत्नी है और गार्गी व गुरुदेव के सम्बन्ध को स्त्री-प्रकृतिवश संदेह की दृष्टि से देखती है। इस तरह कथानक गार्गी, गुरुदेव और प्रकाश की मनोभावनाओं का ही चित्रण करता है और सही अर्थों में उपन्यास का वास्तविक क्रांति से कोई सम्बन्ध नहीं है। केवल पारिवारिक सम्बन्धों की चर्चा में बँधकर उपन्यास का राजनीतिक क्रांतिकारी चित्र धुँधला है। क्रांतिकारी पात्र लेने पर भी राजनीतिक भावनाएँ सम्भवत: है ही नहीं।

बुझते दीप

दयाशंकर मिश्र के 'बुझते दीप' में बुझते हुए साम्यवादी व्यक्तित्व का चित्रण है। आलोच्य उपन्यास का केन्द्र-बिन्दु एक कम्युनिस्ट है और समस्त घटनाएँ उसी के चतुर्दिक घूमती हैं। जैनेन्द्र के क्रांतिकारी हरिप्रसन्न के सदृश ही सुधीबाबू भी क्रांतिकारी और कलाकार दोनों हैं। हरि प्रसन्न के समान ही इनकी प्रेरणा का स्रोत भी स्त्रियाँ ही हैं। वह यूरोप भी घूमा है, सुशिक्षित है और मजदूरों में रहकर काम करता है। एक मिल-मालिक की लड़की लिली उसकी ओर आकर्षित होती है। दूसरी है नीलिमा जो सुधी बाबू की प्रेमिका है और उनके लिए अपने जीवन को उत्सर्ग कर देती है। लिली के पिता मिल-मालिक रामनाथ जी ने एक भिखारिन को उसके शिशुसहित शरण दी और उनका शोषकस्वरूप उक्त भिखारिन के साथ अवैध सम्बन्ध के रूप में उभर कर सामने आया। लिली की माँ इस आघात को सह न सकी और उन्होंने जीवन त्याग दिया। भिखारिन सारी सम्पदा की मालकिन हुई, किन्तु विधिवत विवाह न होने से जब उसका पुत्र यूरोप से लौटा तो उसने एक ओर सुधी बाबू को और दूसरी ओर रामनाथ को मरवाने का षड्यन्त्र रचा। सुधी बाबू ने अपनी कुशलता से सभी बाधाओं पर विजय पायी और रामनाथ द्वारा मिल के मालिक बना दिये गये।

एक अन्य प्रमुख पात्र हैं रामनाथ के पिता, जो पुत्र द्वारा भिखारिन को रख लेने पर रुष्ट होते हैं और जिसे लेखक रामनाथ की भतीजी राजलक्ष्मी को एक गुंडे द्वारा शरीर बेचने पर मजबूर करने के कारण कश्मीर की यात्रा पर भेज देता है। वह वहाँ से तब आता है, जब भिखारिन को रामनाथ घर से निकाल देता है।

संक्षेप में उपन्यास का यही कथानक है जो राजनीतिक दृष्टि से अनेक असंगतियाँ लिये हुए है। कथानक और पात्रों के चरित्र-चित्रण से लेखक राजनीतिक प्रभाव को स्थापित नहीं कर सका है और इसका प्रमुख कारण शायद लेखक में शिल्प का

प्रभाव है। सुधी बाबू के रूप में कम्युनिस्टों पर जो आक्षेप किया गया है, वह न्यायसंगत नहीं कहा जा सकता। विचारधारा में बल होने पर भी एक भी पात्र यथार्थ की कसौटी पर खरा नहीं है।

गुरुदत्त के उपन्यासों का राजनीतिक पक्ष

स्वातन्त्र्योत्तर उपन्यासकारों में गुरुदत्त ही एकमात्र ऐसे लेखक हैं, जिन्होंने प्राचीन भारतीय संस्कृति और हिन्दुत्व राष्ट्रीयता को मूल आधार बनाकर करीब ७० उपन्यासों की रचना कर एक नया कीर्तिमान स्थापित किया है। उनके उपन्यासों में प्रेमचन्द पूर्व युग के उन उपन्यासकारों का परिष्कृत एवं कलात्मक स्वरूप उद्घाटित हुआ है, जो प्राचीन संस्कृति एवं आर्यसमाज के विचारों से प्रभावित थे।

गुरुदत्त का जन्म १८९४ ई० में लाहौर के एक मध्यवित्त परिवार में हुआ था। यह युग आर्य समाज के सामाजिक उत्कर्ष का था और वह एक आन्दोलन ही नहीं, अपितु हिन्दू जनता का धर्म भी बन गया था। गुरुदत्त की शिक्षा-दीक्षा आर्य समाज से प्रभावित वातावरण में हुई और विज्ञान की उच्च शिक्षा एवं शासकीय महाविद्यालय के प्राध्यापक पद की प्राप्ति के उपरान्त भी वे हिन्दुत्व की प्रतीक प्रशस्त शिखा और भारतीय वेश भूषा का परित्याग न कर सके। उनकी राष्ट्र-प्रेम की भावना के पीछे भी प्राचीन भारतीय संस्कृति प्रेम का उत्कट रूप दिखलाई पड़ता है। राजनीति के क्षेत्र में वे प्रारम्भ में क्रांतिकारी दल से सम्बद्ध रहे, किन्तु शीघ्र ही उन्हें यह आभास हो गया कि उपर्युक्त संस्थाएँ उनकी विचारधारा के अनुकूल नहीं हैं। फलतः उन्होंने उनसे अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया और हिन्दू महासभा के सक्रिय सदस्य हो गये।

यह ज्ञातव्य है कि असहयोग आन्दोलन के समय उन्होंने गाँधी जी की पुकार पर प्राध्यापक पद से त्याग-पत्र दे चार वर्ष तक कांग्रेस द्वारा स्थापित नेशनल स्कूल के मुख्याध्यापक पद को ग्रहण कर अपनी सेवाएँ अर्पित की थीं। इन दिनों राष्ट्रीय कांग्रेस के अहिंसात्मक आन्दोलन के साथ-साथ क्रांतिकारियों के क्रिया-कलाप भी जनता अनुप्रेरित कर रहे थे। गुरुदत्त भी १९२४-२५ ई० में रूस के बोल्शेविक विचारधारा और विशृंखल जीवन व्यतीत करनेवाले क्रांतिकारियों के निकट सम्पर्क में आये। यहाँ भी वे क्रांतिकारियों के महान देश प्रेम एवं आत्म बलिदान की भावना के बावजूद उनकी विदेशीय विचारधारा के साथ समरस न हो सके और पृथक हो गये। तदुपरांत वे करीब सात वर्षों तक राजनीति से दूर रहकर भारतीय राजनीति का अध्ययन करते रहे। हिन्दू महासभा की स्थापना के बाद उनका ध्यान उसके सिद्धांतों की ओर आकर्षित हुआ, जो वस्तुतः उनकी विचारधारा के अधिक समीप था। इन्हीं दिनों साहित्य-सर्जन के प्रति भी उनका अनुराग जाग्रत हुआ और सामयिक राजनीति की आधार-पीठिका

पर उन्होंने १९४२ में 'स्वाधीनता के पथ पर' तथा १९४३ में 'पथिक' उपन्यासों की रचना की। इन उपन्यासों के माध्यम से उन्होंने जनता को आगाह किया कि मुस्लिम लीग के प्रति पुरुषता का परिचय देकर देश के विघटन का आयोजन किया जा रहा है। इस दृष्टिकोण को लेकर भी गुरुदत्त कांग्रेस के स्पष्ट विरोध में प्रस्तुत नहीं हुए, सम्भवतः इसलिए कि तत्कालीन परिस्थितियों में कांग्रेस के अतिरिक्त ऐसा कोई राजनीतिक दल नहीं था, जिसे नेतृत्व की बागडोर सौंपी जा सके।

गुरुदत्त के व्यक्तित्व के इस विकास को देखते हुए हम इस निष्कर्ष पर जा पहुँचते हैं कि आर्य समाज के प्रभाव के कारण उनमें प्राचीन भारतीय संस्कारों और वातावरण के लिए गहरी आसक्ति और आस्था है। वस्तुतः वे आर्यसमाज और साम्प्रदायिक भावना (हिन्दुत्व राष्ट्रीयता) की साहित्यिक देन हैं। किन्तु इसके साथ ही उनकी रुचि अत्यन्त व्यापक है। भारतवर्ष के धर्म, दर्शन, साहित्य और इतिहास का उन्होंने गहन अध्ययन किया है, जो उनके दृष्टिकोण को पुष्ट करने के सिवाय वैविध्यपूर्ण बनाता है। यह बात अलग है कि उनकी कृतियों में प्रौढ विचारक का जो रूप देखने को मिलता है, वह तब भी हिन्दू राष्ट्रीयता से आप्लावित है। यही उनका अंतिम ध्येय है और सम्भवतः इसी के लिए उन्होंने साहित्य को अपना अस्त्र बनाया है। श्री एस० आर० गोयल का मत है कि 'राजनीति के महासागर का मन्थन करके किसी अल्प स्थायी सत्ता अथवा उपाधि की उपलब्धि ने उनको कभी आकर्षित नहीं किया। वह अपने राजनैतिक कर्तव्य का पालन करते हुये भी अनवरत साहित्यसर्जन में लीन रहते हैं। उनका दृढ़ विश्वास है कि जो राजनीति विवेक तथा विचार द्वारा पुष्ट नहीं होती, वह अन्ततोगत्वा प्राणहीन हो जाती है और उसके द्वारा कल्याण सम्भव नहीं। गुरुदत्त जी मानते हैं कि राजनीति बृहत्तर मानव जीवन का एक पक्ष मात्र है, सर्वस्व नहीं। मानव जीवन का सत्य अध्यात्म साधना, सौन्दर्य-उपासना तथा धर्माचरण में निहित है। अतएव जो राजनीति अध्यात्म-दर्शन, सौंदर्य, संस्कार तथा अचल धर्म-निष्ठा द्वारा ओतप्रोत नहीं होती, वह मानव-जीवन के साथ खिलवाड़ से अधिक कुछ नहीं। राजनीतिक आशा निराशा, सफलता-असफलता के परे भी जीवन का एक चरम ध्येय है।'[1] किन्तु हम विनय पूर्वक कहना चाहेंगे कि स्वयं गुरुदत्त जी जीवन के इस तथाकथित ध्येय को अपने उपन्यासों में मूर्त रूप देने में असमर्थ रहे हैं। प्राचीन भारतीय संस्कृति के कोड़ से वर्तमान राजनीति को सम्मिलित करने के कारण साम्प्रदायिक विचारों की सृष्टि से आगे नहीं बढ़ सके हैं। हिन्दुत्व पर उनकी आस्था है और उसी को केन्द्र बिन्दु मानकर वे प्राचीन और अर्वाचीन का समन्वय करना चाहते हैं, जो प्रायः

---

१. साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ११ दिसम्बर, १९६० पृष्ठ ४२

आधुनिक वैज्ञानिक युग के अनुकूल नहीं पड़ता। हिन्दू को ही वे यहाँ का राष्ट्रीय मानते हैं, उनके लिए हिन्दू कोई सम्प्रदाय, पथ आदि नहीं। प्रत्युत इस भारत भू को जो मातृभूमि और पुण्यभूमि मानकर तद्नुसार इसकी प्रगति के लिए प्रयत्नशील रहता है वही हिन्दू है।[1] समझ में नहीं आता कि इस 'हिन्दू' के लिए ही वे क्यों व्यग्र हैं। वे मुसलमानों को इस राष्ट्रीय भूमिका पर (भले ही वे अपने मत को ऐतिहासिक तथ्यों से सिद्ध भी करने का प्रयास करें) नहीं देख सके हैं और यही कारण है कि उनके उपन्यासों के मुस्लिम पात्र अराष्ट्रीय हो चित्रित हो सके हैं। वे हिन्दुत्व के समर्थक हैं और इसी कसौटी पर उनके उपन्यास कर्तव्य प्रेरक और सोद्देश्य हैं।

उनकी राजनीतिक विचारधारा को समझ लेने पर उनके उपन्यासों का अध्ययन सहज हो जाता है। सच तो यह है कि उनके उपन्यासों में कहीं उलझन है भी नहीं। वे कहते हैं 'उपन्यास लिखने में एक उद्देश्य तो मेरे सामने प्रारम्भ से ही विद्यमान था। उपन्यास रसमय होना चाहिए। उपन्यास में एक अन्य वस्तु होनी अत्यावश्यक होती है। वह है कथा में एक ऐसी शक्ति की प्रतीति, जिससे पाठक के मन में कथा के विषय में और अधिक जानने की उत्सुकता उत्पन्न होती रहे। वे भी मानते हैं कि उपन्यासों को केवल कलामय ही नहीं, अपितु भावमय भी होना चाहिए। उपन्यास में वे राजनीतिक सिद्धान्तों की विवेचना कोमलतम भाषा में और विचारों का प्रकटीकरण युक्ति-युक्त ढंग से चाहते हैं। इसका यह अर्थ कदापि न लिया जाय कि वे 'कला को कला के लिए' मानते हैं। कला उनके लिए जीवन को समझाने का एक साधन है। अतः यह कहा जा सकता है कि उनकी दृष्टि में 'कला जीवन के लिए' है—मनोरंजन एवं मार्ग-दर्शन दोनों ही के लिए।

गुरुदत्त के उपन्यास

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, गुरुदत्त के उपन्यासों की शृंखला अत्यन्त लम्बी है। जिस द्रुत गति से उन्होंने उपन्यासों की रचना की है, वह अन्य उपन्यासकारों के लिए एक स्पृहा की वस्तु है। विगत दो दशकों में वे करीब ७० उपन्यास लिख चुके हैं और इसमें राजनीतिक उपन्यास भी कम नहीं। स्थल संकोच के कारण सभी उपन्यासों की विवेचना सम्भव नहीं है। यह आवश्यक भी नहीं है, क्योंकि गुरुदत्त जी की मूल राजनीतिक प्रवृत्तियाँ विभिन्न कथानकों में प्रस्तुत की जाने पर भी समान हैं।

उनके राजनीतिक उपन्यासों को मुख्यतया दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है

---

१. आज का साहित्य, वर्ष १, अंक ४, पृष्ठ २

१—गांधी युग की पृष्ठभूमि पर आधारित
२—साम्यवादी आलोचना से अनुप्रेरित

गांधी युग की पृष्ठभूमि अर्थात राष्ट्रीय आन्दोलनों के वातावरण पर रचित उपन्यासों में सामयिक राजनीतिक घटनाओं के अंकन के साथ कांग्रेस की आलोचना की गई है। कांग्रेस के हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के सिद्धांत को लेकर लेखक जहाँ एक ओर कांग्रेस की आलोचना का प्रसंग निकाल लेता है, वहीं दूसरी ओर मुसलमानों को अराष्ट्रीय सिद्ध करते हुए उनके कृत्यों का अपनी विचारधारा की तुला पर तौलता चलता है। लेखक के ये बाँट ऐसे हैं, जिन पर वे कभी ठीक ठीक नहीं तुल पाते और वजन में सर्वदा कम बैठते हैं।

यही स्थिति साम्यवादियों और उनके राजनीतिक सिद्धांतों के साथ भी है। मार्क्सवाद और उनके मूलभूत तत्वों के साथ लेखक की स्थिति ठीक कुत्ता-बिल्ली जैसी है। अनेक उपन्यास गुरुदत्त ने मार्क्सवाद के सिद्धांतों को आधारहीन निरूपित करने के लिए ही लिखे है।

किन्तु दोनों वर्गों के उपन्यासों में उनकी दृष्टि प्राचीन भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल स्वरूप को प्रदर्शित करने और हिन्दुत्व राष्ट्रीयता के प्रतिष्ठापन की दिशा में एकनिष्ठ रही है। यहाँ हम उनके दोनों प्रकार के कुछ राजनीतिक उपन्यासों, उनमें निहित राजनीतिक तत्वों और उनके कलात्मक पक्ष पर संक्षेप में चर्चा करेंगे।

गाँधीयुगीन वातावरण पर आधारित उपन्यास

गांधी-युग को लेकर लिखे गये उपन्यासों में 'स्वाधीनता के पथ पर', 'पथिक', 'स्वराज्यदान', 'विश्वासघात' और 'देश की हत्या' उल्लेख योग्य हैं। ये उपन्यास राष्ट्रीय आन्दोलन की एक या एक से अधिक राजनीतिक घटना या समस्याओं को लेकर चलते हैं। 'जमाना बदल गया' की पृष्ठभूमि इनसे कहीं अधिक व्यापक है। यह वृहदाकार उपन्यास तीन खण्डों में है और सन् अट्ठारह सौ सत्तावन से स्वाधीनतोत्तर राजनीतिक स्थिति तक का ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत करता है। प्रथम खंड में १८५७ से १९०७ तक के राजनीतिक, धार्मिक तथा सामाजिक परिवर्तनों को दिखाने के कारण उपन्यास का कलेवर बढ़ गया है। भारतीय राजनीति का विकास तत्कालीन धार्मिक और सामाजिक परिवर्तनों के फलस्वरूप हुआ है, अतः धार्मिक एवं सामाजिक परिवर्तनों की विशद विवेचना स्वाभाविक ही कही जायगी। द्वितीय भाग में बंग भंग के उपरान्त अर्थात् १९०७ से १९२७ तक की पृष्ठभूमि ग्रहण की गई है और बदलते हुए युग की [illegible] की गई है।

'स्वाधीनता के पथ पर' गुरुदत्त का प्रथम उपन्यास है, जिसमें १९३० ई० के

सत्याग्रह आन्दोलन और तत्कालीन वातावरण को चित्रित किया गया है । सन् १९२१ के असहयोग आन्दोलन की असफलता ने क्रांतिकारी दलों की गतिविधियों को प्रोत्साहित किया और अहिंसक आन्दोलन के सम्मुख एक प्रश्नचिन्ह लग गया । आलोच्य उपन्यास की कथावस्तु इसी युगानुरूप सत्याग्रह-आन्दोलन तथा आतंकवादी हिंसात्मक प्रवृत्तियों के बीच के संघर्ष पर आधारित है । उपन्यास के मुख्य पात्र मधुसूदन और पूर्णिमा साम्यिक राजनीति से सम्बद्ध हैं । किन्तु उनके पारस्परिक रोमांस के अति विस्तार के कारण उनकी राजनीतिक गतिविधियाँ सीमाबद्ध होकर रह गई हैं । वस्तुतः नायक और नायिका के प्रेम और उसके मार्ग में आने वाली बाधाओं के द्वारा निर्मित कथानक के अन्तर्गत राजनीतिक प्रसंगों को सग्रथित कर राष्ट्रीय वातावरण को अभिव्यक्ति दी गई है । इस उपन्यास में गुरुदत्त शरद के 'पथ के दावेदार' से प्रभावित प्रतीत होते हैं ।

'पथिक' में हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष की समस्या का अंकन किया गया है । बीसवीं शताब्दी के प्रथमार्द्ध में भारतवासी एक ओर जहाँ स्वतन्त्रता के लिए अंग्रेज शासकों से जूझते रहे, वहाँ हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष एक समस्या बनकर कार्य की गति को अवरुद्ध करता रहा । इसमें १९३५ से १९४० तक की राजनीतिक एवं सामाजिक घटनाओं को प्रस्तुत किया गया है ।

इन दो उपन्यासों की रचना के उपरांत गुरुदत्त की राजनीतिक विचारधारा में परिवर्तन परिलक्षित होता है और वे कांग्रेस की नीतियों के कटु आलोचक के रूप में सामने आते हैं । इसका कारण बतलाते हुए उन्होंने लिखा है : 'गाँधी जी की मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति के परिणाम का एक धुँधला सा आभास तो १९४१ में ही होने लगा था । पंडित जवाहरलाल जी की विदेश नीति के दुष्परिणामों की झलक १९५०–५१ में होने लगी थी । देश में, राज्य-व्यवस्थान में पंचशील की अभिलाषा का मिथ्यात्व १९५३ में ही समझ में आने लगा था, देश का झुकाव समाजवाद और कम्युनिज्म की ओर तो श्री नेहरू जी की 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' पढ़ने पर ही दिखलाई देने लगा था । पंचवर्षीय योजनाओं के विषय में संशय तो १९५२ में ही होने लगे थे । इन सबको प्रकट करने और पाठकों के सामने रखने की आवश्यकता हुई तो बिना विचार किये, कि लोग क्या कहेंगे, लिख दिया ।

'स्वराज्य-दान,' 'विश्वासघात,' 'देश की हत्या,' 'दासता के नये रूप,' 'न्यायाधिकरण,' जमाना बदल गया, आदि उपन्यासों में उपर्युक्त धारणाओं के अनुरूप ही गांधीवाद या कांग्रेस के सिद्धान्तों पर प्रबल प्रहार किया गया है । 'स्वराज्य-दान' में १९४२ से १९४७ तक का राजनीतिक भारत चित्रित है । यह राष्ट्रीय आन्दोलन के संघर्ष का युग था और जनता स्वाधीनता-प्राप्ति के लिए व्यग्र हो रही थी । लेखक ने अपने

भारतवर्ष जैसे सभ्य देश के लोगों में अपने देश को स्वतन्त्र करने की इच्छा उत्पन्न न होना असम्भव थी। इस प्रलयकारी महायुद्ध के कारण फैली नर-रक्त की गन्ध में यदि भारतवर्ष में सशस्त्र क्रांति का विचार हुआ और उसकी योजना बनायी गयी तो विस्मय करने की क्या बात है ! स्पष्ट है कि सशस्त्र क्रांति से लेखक का अभिप्राय बयालीस की क्रांति के हिंसात्मक पक्ष, आजाद हिन्द फौज और नाविक-विद्रोह से है। इस तरह वह बयालीस की क्रांति का श्रेय द्वितीय महायुद्ध से उत्पन्न परिस्थितियों को देता है, कांग्रेस के अहिंसक आन्दोलन को नहीं। वह स्पष्ट करता है कि हिंसा से हिंसा उत्पन्न होती है और बयालीस की क्रांति और आई० एन० ए० का सगठन परिस्थिति जन्य था। यह एक ऐसा युग था, जब भारतवर्ष का प्रत्येक स्त्री पुरुष वातावरण की प्रेरणा से, किस-किस प्रकार से भी हो, स्वतन्त्र होने के सपने देखता, योजनाएँ बनाता और फिर फल पाने की आशा का सुख स्वादन करता था। 'स्वराज्य-दान' का कथानक ऐसे ही स्वप्नों और साहसिक आयोजनों से विस्तार पाता है और काल्पनिक उड़ान के कारण कहीं-कहीं अस्वाभाविक भी हो जाता है।

'विश्वासघात' में सन् १९४६ के हिन्दु-मुस्लिम दंगे के एक सम्प्रदाय विशेष के संयम-रहित आचरण एवं कार्यों का विस्तृत चित्रण किया गया है। वस्तुतः यह लेखक के पूर्वाग्रह के अनुरूप ही है और सम्प्रदायविशेष को उसके कुत्सित रूप में प्रस्तुत करना है।

'देश की हत्या' का मूल आधार भी हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष है। उपन्यास का कथानक राष्ट्र विभाजन की पृष्ठभूमि पर गाँधीवाद और कांग्रेस की नीतियों का खुलकर विरोध करता है। लेखक की मान्यता है कि गांधी जी की हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य स्थापित करने की विधि दूषित थी और उक्त लक्ष्य के विरोध में थी। विभाजन के प्रश्न को लेकर हुए साम्प्रदायिक दंगे इसी नीति के दुखद परिणाम थे। इसी विचार को लेकर आलोच्य उपन्यास का जो ताना-बाना बुना गया है, वह सामयिक घटनाओं के साथ समन्वित है।

उपन्यास की प्रमुख राजनीतिक घटनाएँ

'देश की हत्या' में जिन प्रमुख राजनीतिक तथ्यों का समावेश किया गया है, वे ये हैं :

१—राष्ट्र विभाजन के समय पंजाब एवं बंगाल प्रदेशों की राजनीतिक स्थिति की पृष्ठभूमि में कांग्रेस की मुस्लिम-तुष्टीकरण की नीति और लीग के नेतृत्व में मुसलमानों के संगठित षड्यन्त्र एवं अत्याचारों का विशद चित्रण मिलता है। लाहौर और कलकत्ता में मुस्लिम लीग द्वारा आयोजित 'डायरेक्ट ऐक्शन' की कथाएँ इसी के अन्तर्गत आती

है। पंजाब के संयुक्त मंत्रिमंडल की दयनीय स्थिति के जो चित्र उरेहे गये हैं वे ऐतिहासिक यथार्थ के निकट हैं।

२—मुस्लिम साम्प्रदायिकता का व्यापक अंकन करते समय हिन्दुओं के हिंसात्मक कार्यों को प्रतिरोधात्मक निरूपित किया गया है। मुस्लिम साम्प्रदायिकता का उदाहरण मौलवी के इस कथन में निहित है

आप लोगों को काफिरों की लूटी हुई धन दौलत और उनसे छीनी हुई औरतें हलाल हैं। इस हिन्दुस्तान में हमारे बुजुर्गों ने इस्लाम का परचम गाड़ा था। उन्होंने सात सौ साल तक इस जमीं पर इस्लाम का डंका बजाया था। अब फिर मौका आ गया है। खुदा के फजल से हिन्दुस्तान के एक छोटे से हिस्से में फिर इस्लामी हुकूमत कायम होने जा रही है। इसके लिए जरूरी है कि कुफ्र न रहे। ऐसा करने में गाजियों और शहीदों, दोनों को बहिश्त मिलेगा।[1] मुसलमानों की धर्मान्धता के बारे में कर्मसिंह का कथन है—जब तक इस्लाम के साथ टक्कर नहीं है तब तक ही ये मुसलमान तुम्हारे मित्र हैं। इस्लाम के लिए ये अपने सगे बाप का खून कर देंगे।[2]

इन दंगों में हिन्दुओं ने भी खुल कर भाग लिया। किन्तु उनके इन हिंसात्मक कार्यों को लेखक ने प्रतिरोधात्मक कृत्य के रूप में ही देखा है। चेतनानन्द का स्पष्टीकरण इस सन्दर्भ में इस प्रकार है—'यहां से मुसलमानों को निकालते हुए उनकी हत्या की गयी है।' मैं दोनों में भारी अन्तर समझता हूँ। एक केवल राजनीतिक बात है दूसरी साम्प्रदायिक। एक में उन लोगों को निकालने का प्रयास है जो इस देश के हितैषी नहीं माने जाते, दूसरे में अपनी इच्छा से देश छोड़कर जाते हुओं की हत्या है। यह देश की रक्षा के हित नहीं यह तो केवल नृशंसता का सूचक है।[3] संभव है कि अधिकांश पाठक इस दलील को स्वीकार भी कर लें, किन्तु इस पर भी यह कलाकार में तटस्थ दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने में असमर्थ ही मानी जायगी।

३—राष्ट्रीय स्वयंसेवक की रीति नीति एवं प्रेरणादायक कार्यों का विवरण, जो लेखक के दृष्टिकोण का परिचायक है।

४—विस्थापितों की असहायावस्था एवं उनकी समस्याओं का अंकन।

५—कश्मीर पर पाकिस्तान के सहयोग से हुआ आक्रमण।

६—गाँधी हत्या-कांड और सरकार द्वारा आर० एस० एस० के विरुद्ध की गयी दमनात्मक कार्यवाहियों का चित्रण। राष्ट्रपिता की हत्या के प्रसंग को जिस पृष्ठ

---

१ गुरुदत्त देश की हत्या, पृष्ठ १७८

२ गुरुदत्त, देश की हत्या, पृष्ठ १३१

३ गुरुदत्त देश की हत्या, पृष्ठ २७२ ७३

भूमि मे निर्मित किया गया है, वह लेखक के विकार को व्यक्त करता है । गाँधी-हत्या-काड को गाँधी जी की मुस्लिम-तुष्टीकरण की नीति और उसमे उत्पन्न विक्षोभ के रूप मे परिस्थितिजन्य बनाया है । हत्याकांड को लेखक ने अपनी सहानुभूति दी है, जो आश्चर्यजनक एव दुखद दोनो है । गाँधी जी की हत्या को आतुर भैया जी को यह जान कर दु ख होता है कि किसी दूसरे व्यक्ति ने गाँधी जी की हत्या कर दी और वह एक महान पदवी से वचित रह गया ।[1] इतना ही नहीं, अपितु वह हत्यारे को गुरु अर्जुन देव, गुरु तेगबहादुर आदि महापुरुषो की श्रेणी मे परिगणित करता है, जो धर्म और न्याय के लिए बलिदान हुए ।[2] एक ओर वह हत्याकाड को औचित्यपूर्ण सिद्ध करने का प्रयास करता है तो दूसरी ओर सघ के विरुद्ध उठाये गये शासन के कदमो को काग्रेसी एव कम्युनिस्टो का षड्यन्त्र बतलाता है ।'[3]

७—काग्रेसी नीति एव प्रशासन की कटु आलोचना अनेक स्थलो पर मिलती है । वह गाँधीवाद की अहिंसा पर व्यग्य करता है 'गगाराम (काग्रेसी) ने जब सुना कि हिन्दुओ ने मुसलमानो का गाँव जला डाला है तो भय के मारे उन्हें अनिद्रा रोग हो गया । एक सप्ताह तो उन्होंने झपकी नही ली और फलस्वरूप पागल हो गये ।'[4] गुरुदत्त का झुकाव हिन्दू सस्कृति के प्रति इतना घनीभूत है कि वे उसके मार्ग मे आड़े आने वाले प्रत्येक अवरोध की भर्त्सना करने से नही चूकते । काग्रेस के सुधारवादी कार्यों को युगानुकूल होने पर भी वे इसीलिए स्वीकार नहीं कर सके हैं ।

साम्यवादविरोधी उपन्यासों की शृङ्खला

काग्रेस के साथ ही साथ गुरुदत्त मार्क्सवाद के भी कट्टर विरोधी हैं । श्री गोविन्द सहाय को सन् १९५७ मे दिये गये एक 'इन्टरव्यू' मे उन्होने कहा था ' कम्युनिज्म ने आजकल मेरे दिमाग में बडी खलबली मचा रखी है । उसके बाह्य रूप को मैंने 'विलोम गति' मे लिया है, परन्तु अब उसके सैद्धांतिक पक्ष को लूँगा । मैं उसकी तीनो बातो का विरोधी हूँ । वर्ग-सघर्ष मै अनिवार्य नही मानता । दूसरे आकस्मिक क्रांति मे भी आस्था नही । क्रमिक विकास मेरे विचार से सृष्टि का स्वाभाविक नियम है । तीसरी बात स्टेट कैपिटलिज्म की है । मैं व्यक्ति के प्रयास को अधिक अच्छा मानता हूँ ।' सच तो यह है कि मार्क्सवादी हिन्दुत्ववादी राष्ट्रीय विचारधारा के सर्वथा प्रतिकूल बैठता

---

१ गुरुदत्त, देश की हत्या, पृष्ठ ३३१
२. गुरुदत्त, देश की हत्या, पृष्ठ ३३२
३. गुरुदत्त, देश की हत्या, पृष्ठ ३३३
४ गुरुदत्त, देश की हत्या, पृष्ठ १८२ १८३

है और उसका विरोधी है। भारत को समाजवादी मार्ग पर अग्रसर होते देख गुरुदत्त का ध्यान इस ओर जाना स्वाभाविक ही है। समाजवादी यथार्थ के उपन्यासों की प्रतिक्रिया के रूप में ही उनके मार्क्सवादविरोधी उपन्यासों को ग्रहण किया जाना चाहिए। अपने इन उपन्यासों में उन्होंने साम्यवाद के सैद्धान्तिक पक्ष का खण्डन और प्राचीन भारतीय संस्कृति का प्रतिपादन अपना उद्देश्य बनाया है। 'विलोम गति,' 'छलना,' 'बीती बात,' 'भगवान' आदि अनेक उपन्यासों में उनका साम्यवादविरोधी स्वरूप उभरा है।

गुरुदत्त के 'बीती बात' में भारत में कम्युनिज्म-प्रवेश की कथा वर्णित है। सन् १९२४ में भारत में साम्यवादी दल की स्थापना हुई थी और द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ तक वह गैरकानूनी करार दी गई। सन् १९२४ से १९३८ तक की आधारपीठिका पर इस लघुकाय उपन्यास का ढांचा आधारित है। कहा जाता है कि अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार के कारण कम्युनिज्म के प्रसार को गति मिली। इसके साथ ही रूस ने कम्युनिज्म के प्रचार हेतु भारी आर्थिक सहायता दी जिससे धनलोलुप स्वार्थी व्यक्ति उसके पोषक बने। भौतिकवाद की भीत्ति पर खड़े राजनीतिक दलों और आन्दोलनों ने उसे मार्ग दिया। सन् १९२ के पश्चात् स्थापित एवं भौतिकवाद पर विश्वास करने वाले क्रांतिकारी दल भी मार्क्सवाद के अनुयायी बन गये। इन परिस्थितियों को उपन्यास में एक विशिष्ट रूप देकर प्रस्तुत किया गया है।

कथावस्तु सन् १९२१ के खिलाफत आन्दोलन के समय से प्रारम्भ होती है। मुनव्वर नामक एक मुस्लिम युवक आन्दोलन के समय से प्रारम्भ होती है। मुनव्वर नामक एक मुस्लिम युवक आन्दोलन के समय मौलवियों द्वारा फैलाई गई साम्प्रदायिक भावना से आपूरित हो एक काफिले के साथ हिजरत को रवाना होता है। गन्तव्य पर पहुँचने के पूर्व ही काफिला पठानों द्वारा राह ही में लूट लिया जाता है। इस नवीन परिस्थिति में पड़कर वह रूस चला जाता है और कम्युनिज्म का पाठ पढ़कर १९२५ ई० में लाहौर लौट आता है। रूस से मिलने वाली आर्थिक सहायता से वह मार्क्सवाद के प्रचार के लिए प्रयत्नशील होता है और विभिन्न राजनीतिक विचारधारा के समर्थकों के सम्पर्क में आकर उनको प्रभावित करने का प्रयास करता है। हिन्दुत्व राष्ट्रीयता के समर्थक उसके चंगुल से बच निकलते हैं, पर क्रांतिकारी दल अन्ततोगत्वा मार्क्सवादी विचारधारा को अपना लेता है।

उपन्यास में विवेच्य घटना-काल को लेकर असहयोग आन्दोलन की असफलता कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना और कार्यविधि तथा आतंकवादियों की विचारधारा के परिवर्तन पर प्रकाश डाला गया है। लेखक ने प्रसंगानुकूल तीनों के कार्यों की आलोचना भी की है और प्राचीन भारतीय संस्कृति का राग अलापा है।

असहयोग आन्दोलन की असफलता और प्रतिक्रिया डॉ० मसीन के माध्यम से व्यक्त की गई है। कहा गया है

उड़ गया घास फूस भी नभ में आंधी संग।
बगुले भी नेता भये देखो गांधी सग॥

असहयोग आन्दोलन का परिणाम डॉ० मसीन के शब्दों में देखिए 'उस आन्दोलन से दो बातें आयी हुई हैं। सर्वसाधारण में जागति हुई, परन्तु वे सर्वसाधारण उन नेताओं के अधीन हो गए हैं जो लालसाओं से भरे हुए हैं और लालसाओं में भी स्त्री की लालसा अति प्रधान होती है।' सामयिक राजनीति स्वार्थसिद्धि का साधन बन गयी थी, 'एक ओर तो रूसी एजेन्ट दाना चुग रहे हैं, दूसरी ओर क्रांतिकारी दल के लोग पेट भरने का यत्न कर रहे हैं। साथ ही कांग्रेस के लोग भी इसमें से अपना आहार पाना चाहते हैं। 'वस्तुतः यह निराशा की प्रतिक्रिया का युग था। क्रांतिकारी पात्र के शब्द हैं. 'हमारी पार्टी को सबसे अधिक धक्का दिया है गांधी ने। उन्होंने एक ऐसा वातावरण उत्पन्न कर दिया है, जिससे लोगों की यह धारणा बनने लगी है कि शांतिमय उपायों से देश स्वतन्त्र हो सकता है।'

संक्षेप में सभी के रास्ते टेढ़े-मेढ़े थे और इस अंधकार में भी आर्य समाज ही प्रकाश-स्तम्भ था, जिसके प्रतिनिधि पात्र सुन्दरदास हैं। सुन्दरदास आर्य समाज के राजनीतिक स्वरूप को स्पष्ट करते हैं—'पंजाब में राजनीति का जन्मदाता आर्य समाज ही है, जो विचारों से किसी भी विदेशी राज्य को पसन्द नहीं करती, जो मजहबी जमायत और पोलिटिकल दोनों है। आर्य समाज धर्म और राजनीति को एक दूसरे के पूरक मानता है।

'बीती बात' में नारी के प्रेम प्रसंग को उठाकर तद् विषयक साम्यवादी प्रेम को भारतीय विचारधारा के सम्मुख निम्न स्तर का तथा स्वच्छन्दतावादी निरूपित किया गया है।

मार्क्सवादी सिद्धांतों पर बहुमुखी प्रहार 'छलना' में किया गया है। गुरुदत्त जी मानते हैं कि कम्युनिज्म एक आर्थिक व्यवस्था ही नहीं, प्रत्युत सर्वव्यापक जीवन-मीमांसा है, जो भौतिकवाद की आधारशिला पर टिकी है। इसी दृष्टिकोण को लेकर आलोच्य उपन्यास में आर्थिक दृष्टिकोण की ऐतिहासिक व्याख्या, वर्गयुद्ध का सिद्धान्त और मूल्य-मीमांसा तथा प्राप्ति के उपाय के रूप में सामूहिक हिंसात्मक क्रांति को कम्युनिस्टों में उत्पत्ति और उनसे उत्पन्न परिस्थितियों का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। कथानक का उद्देश्य मार्क्स के सिद्धान्तों को अयुक्तिसंगत सिद्ध करना है। जैसा कि हम

पहले हम कह चुके है कि गुरुदत्त की विचारधारा हिन्दू महासभा एव पूँजीवादी सिद्धातो पर आधारित है। अतभौमिक मानवता का विवेकपूर्ण विस्तृत दृष्टिकोण न अपना कर लेखक ने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इतिहास के आर्थिक दृष्टिकोण से विश्लेषण एव नवीन साम्यवादी अर्थ-व्यवस्था के आधार पर समाजवादी नवीन गठन को पूर्णतया अव्यावहारिक माना है। अतएव आलोच्य उपन्यास मे उसने अपनी प्रतिक्रियाओ को वैयक्तिक निष्ठा के सहारे प्रचारात्मक रूप दिया है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पूँजीवादी अर्थतत्र जिस साम्यवादी अर्थतत्र को चुनौती देकर भी परास्त करने म असमर्थ रहा उसी को औपन्यासिकता के माध्यम से लेखक ने चुनौती दी है। साथ ही सस्कृति एव वैयक्तिक स्वतत्रता को कम्युनिज्म के अन्तर्गत दलित होने की मान्यता स्थापित की है। लेखक के तर्कों का साराश कुछ इस प्रकार है—

१— धनी लोग अपनी बुद्धि एव अध्यवसाय से धनी हुए है।

२—धनियो के द्वारा शोषण नही, वरन उदार धनियो के द्वारा गरीबो की पोषकता होती है।

३ —साम्यवाद पर आस्था रखने वाले युवा-युवती आचरणहीन नास्तिक एव कृतघ्न हो जाते है। पति-पत्नी परस्पर एक दूसरे के प्रति उत्तरदायित्वविहीन होकर पारिवारिक जीवन को दु खी बना देते है।

४ कम्युनिस्ट देशो मे नागरिको का जीवन यत्रवत एव तानाशाही शिकजा मे फँसा हुआ है। उनमे आत्मनिर्णय का अधिकार नही है।

५—रूस जैसे देश म भी वर्ग है, शोषण है और बलवानो का राज्य है। प्रमुख रूप स उपर्युक्त तर्कों के आधार पर ही समस्त कहानी गढी गई है।

लेखक ने उपन्यास को उपन्यासो के ५ भागो के आधार पर पाँच खण्डो मे सगठित किया है। प्रथम उन्मेष धनीराम के व्यापारिक उन्मेष से सम्बन्धित है, द्वितीय मे साम्यवादी विचारधारा के प्रतीक सतराम के चरित्र को अकित किया गया है तृतीय म लता के चारित्रिक गुणो का अकन है, जो परम्परागत सामाजिक बन्धनो की अवहेलना के पक्ष मे नही है। चतुर्थ उन्मेष मे धनीराम के पुत्र राम और फ्लोरा की प्रणय कथा है और अतिम मे कचन के साम्यवादी सिद्धातो से विरत होने की कथा है।

'भग्नाश' मे भी भारतीय सस्कृति की आड लेकर समाजवादी विचारधारा के प्रति आक्रोश व्यक्त किया गया है। समाजवादी विचारधारा मे मानव के आध्यात्मिक एव नैतिक पतन की कुछ अधिक सभावना व्यक्त की जाती है। इसी दृष्टिकोण को लेकर दो प्रकार के पात्रो की उद्भावना की गई है। एक वे जो प्राचीन भारतीय सस्कृति को आधार बनाकर चलते हैं और दूसरे वे समाजवादी जीवन-दर्शन से प्रभावित

हैं। इन पात्रों को लेकर ही नैतिकता और अनैतिकता का व्यापार चलता दिखाई पड़ता है।

उपन्यास का प्रारंभ हरिशरणानन्द और उनकी पत्नी निपुणा के 'परिवार निरोध' सम्बन्धित संवाद से होता है। इस प्रसंग में परिवार नियोजन की हेय विधियों के प्रति नारी का आक्रोश देखने को मिलता है। उनकी पुत्री सुबाला को लेकर कथा-सूत्र का विकास होता है। सुबाला के पति दाताराम पत्नी से पृथक होने पर भी उसकी सम्पत्ति को प्राप्त करना चाहता है। हरिशरणानन्द के दो पुत्र हैं—समर्थ और सानन्द समर्थ ठेकेदार हैं और अनैतिक कार्यों के द्वारा उसने पर्याप्त धन अर्जित कर लिया है। वर्तमान युग के ठेकेदारों का उसे प्रतिनिधि कहा जाए तो कुछ अनुचित न होगा। उसके ठीक विपरीत सानन्द का चरित्र है। उपन्यास ने प्राचीन कालीन ब्राह्मणवृत्ति को सानन्द के चरित्र द्वारा उभारने का प्रयत्न किया है सानन्द नौकरी को शूद्रवृत्ति मानता है। अतः जीवन-यापन के लिए पत्रकारिता को अपनाता है। सानन्द की पत्नी सुनीता एक वरिष्ठ उच्च शासकीय अधिकारी की पुत्री है। विवाह के उपरान्त वह प्रारम्भ में पति के साथ समरस होने में कठिनाई अनुभव करती है, किन्तु आगे चलकर वह भारतीय नारी के अनुरूप पति की अनुगामिनी हो जाती है। उसके पिता डॉ० माथुर आज के सरकारी अधिकारियों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो धन-लिप्सा और स्वार्थ में आकण्ठ डूबे हुए हैं।

यदि सम्पूर्ण उपन्यास में हम दो व्यक्तियों को केन्द्र मान लें तो अनुचित न होगा। एक ओर नैतिकता के परिवेश में सानन्द है तो दूसरी ओर अनैतिकता के वातावरण में मुखरित होता हुआ समर्थ का चरित्र है। मुख्य रूप से समाज का निर्माण इन्हीं दो परिवेशों में होता है। आज के युग में एक ओर समाजवाद का फूलता फलता रूप है, जिसमें लेखक के अनुसार समस्त प्रकार की बुराइयाँ अपना घर बनाये हैं। दूसरी ओर प्राचीन संस्कृति का झलकता रूप है, जिसमें मानव के उच्चतम व्यक्तित्व का विकास दृष्टिगोचर होता है। समर्थ और सानन्द इन्हीं दो पात्रों के चारों ओर उपन्यास के समस्त पात्र चक्कर लगाते हुए दिखलाई पड़ते हैं। कुछ तो समर्थ का साथ देते हैं और कुछ सानन्द का। प्रथमतः सानन्द चारों ओर से उपेक्षित प्रतीत होता है, परन्तु अन्ततः उसकी सत्य-निष्ठा सभी को प्रभावित करती ही रहती है। इस रूप में प्राचीन भारतीय संस्कृति समाजवाद पर विजयिनी होती है। इस कथानक को जिस घटना-क्रम में अन्तर्गत लिया गया है, वह १९४२ ई० से १९६० के बीच का है और जिसको लेकर सामयिक राष्ट्रीय परिस्थितियों का दिग्दर्शन भी सहज रूप से संभव हो सका है।

गुरुदत्त के राजनीतिक उपन्यासों के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हिन्दुत्ववादी राष्ट्रीयता को आधार बनाकर वे या तो गाँधीवाद का खंडन करते हैं या फिर

साम्यवाद के सिद्धातो को खोखला सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। इस प्रक्रिया मे वे हिन्दू महासभा और जनसघ के राजनीतिक आदर्शों अधिक से अधिक निकट रहने का पाठकों से आग्रह व्यक्त करते हैं। प्रचारात्मक होने पर भी गुरुदत्त के उपन्यासो मे कथानक का क्रमबद्ध विकास, विचार-सौष्ठव, भावो का घात-प्रतिघात, चरित्र चित्रण की निपुणता और भाषा का प्रसगोचित प्रवाह मिलता है। उनके मुख्य पात्र निश्चित आदर्शों से सचालित होने के कारण पाठक को मोहित करते हैं। शायद इसलिए भी, क्योंकि इस वैज्ञानिक युग मे भी भारतीय आदर्शों के प्रति जनमानस मे विशेष परिवर्तन नही आ सका है।

अध्याय ८

हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में राजनीति

> आंचलिकता का आग्रह एवं राजनीतिक तत्व
> समाजवादी यथार्थवादी आंचलिक उपन्यासकार एवं उपन्यास
> नागार्जुन—व्यक्तित्व एवं राजनीतिक आस्था

उपन्यास—रतिनाथ की चाची
बलचनमा
नयी पौध
बाबा बटेसरनाथ
वरुण के बेटे
उग्रतारा

> समाजवादी चेतना से युक्त भैरवप्रसाद गुप्त के उपन्यास

मशाल
गंगा मैया
सत्ती मैया का चौरा

> सर्वोदयी भावना से समन्वित आंचलिक उपन्यास

दुखमोचन
बूंद और समुद्र

> राष्ट्रीय वातावरण पर आधारित आंचलिक उपन्यास

मैला आंचल
परती-परिकथा
हीरक जयन्ती
अनबुझी प्यास

आंचलिकता का आग्रह एवं राजनीतिक तत्व

स्वातंत्र्योत्तर युग के हिन्दी राजनीतिक उपन्यासो मे आचलिकता का आग्रह भी मिलता है, जो उसे सामान्य राजनीतिक उपन्यासो से कुछ विशिष्ट बना देता है। इस नव्यतम प्रवृत्ति का विकास उस राजनीतिक धरातल पर हुआ है, जिसने लोकतन्त्र की चेतना को प्रस्फुटित किया। सभवत इसलिए कहा गया है कि 'आज के सक्रान्ति काल मे यह चेतना (क्षेत्रीय) की) स्वभावत अत्यन्त प्रखर है। फलत इन अनेक तत्वो के सहयोग से गाधी-युग के अवसान, राष्ट्रीयता के आशिक क्षय, प्रान्तीय और आचलिक भावना के उदय तथा लोकतन्त्र की स्थापना के कारण उपन्यास मे नये प्राण का स्पन्दन हुआ और वही स्पन्दन आचलिकता के रूप मे प्रस्फुटित हुआ।'[1] आचलिक उपन्यासो के अन्य अनेक राष्ट्रीय, आचलिक, सामाजिक एव राजनीतिक पक्षो पर आलोचनात्मक दृष्टिकोण व्यक्त करने से पूर्व अचल' शब्द पर कुछ विशेष विचार कर लेना अनुचित न होगा। प्रत्येक राष्ट्र मे कुछ विशेष क्षेत्र अपनी अनेक सामाजिक एव सास्कृतिक विशेषताएँ रखते हैं। कुछ स्थानविशेषो के साथ प्राय देश के इतिहास का भी विशेष सम्बन्ध जुडा रहता है। अतएव ऐसी एक विशिष्ट सास्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक एव आर्थिक दृष्टियो से विशिष्ट इकाई मे बँधे हुए, अपनी निजी चेतना को पृथक मुखर करने वाले भू भाग या क्षेत्र अचल' नाम से अभिहित होते है। उन प्रदेशो के निवासियो का रहन सहन, भाषा, आचार विचार, प्रथाएँ, प्रकृति, व्यवसाय, प्रसिद्ध घटनाएँ और जीवन के विशिष्ट प्रतिमान उनके पृथक निजत्व की घोषणा करते है। ऐसे क्षेत्रो या अचलो की सीमा मे बँधकर जो उपन्यास राजनीति की चर्चा करते हैं, वे राजनीतिक आँचलिक उपन्यास कहलाते है।

इस श्रेणी के उपन्यासो मे राजनीतिक तत्व आचलिक जीवन, प्रकृति, इतिहास और भाषा की अनेक प्रवृत्तियो को लेकर चलता है। उपन्यासकार की महत्वपूर्ण क्षेत्रीय सवेदना आँचलिक उपन्यासो के कलात्मक यथार्थवादी शिल्प मे वहाँ (क्षेत्रविशेष) के अनछुए मार्मिक सौन्दर्य और उसकी परम्परा मे जुडी हुई अनेक घटनाओ, वहाँ के जीवन आदर्शो का सहज स्वाभाविक, अद्भुत चित्रण करती है, क्योकि आचलिक उपन्यासकार प्राय अपने अचलविशेष को ही अपनी कृति मे रूपायित करते है। इस प्रकार उनकी सवेदना मातृभूमि के विशेष ममत्व से आवेष्टित एव अनुभूत होती है और वहाँ कल्पना जैसी वस्तु की अपेक्षा अकृत्रिम यथार्थ ही उपन्यास की कथावस्तु बनता है।

१ महेन्द्र चतुर्वेदी, हिन्दी उपन्यास - एक सर्वेक्षण, पृष्ठ १६२

अतएव ऐसे उपन्यासों की क्षेत्रीय मौलिकता उन्हें क्षेत्रीय एवं देशीय अथवा राष्ट्रीय लोकप्रियता का विशिष्ट उपहार देती है। शायद इसीलिए श्री विजयेन्द्र स्नातक ने लिखा है? 'इस आंचलिकता को राष्ट्रीय तत्व के रूप में ग्रहण किया जाये, तो कहना न होगा कि आंचलिक उपन्यास राष्ट्रीय भावना के उपन्यास हैं। उनके द्वारा विशाल देश के अनेक भू खंडों की चेतना का बोध होता है और समग्र रूप से एक व्यापक राष्ट्रीय भावना खड़ी होती है। खंड खंड से मिलकर ही अखंडता बनती है। खंड का ज्ञान करने के बाद ही समस्त खंडों में अखंडता की कल्पना की जा सकेगी।'[1]

आंचलिक उपन्यास अंचलविशेष का भौगोलिक, ऐतिहासिक एवं सामाजिक ज्ञान कराते हुए शेष ध्यान देश का विशेष रूप से अपनी ओर आकर्षित करते हैं। देशान्तर्गत विभिन्न क्षेत्रीय अथवा जनपदीय भावनाओं का स्पष्टीकरण हो जाने से देश के राष्ट्रीय जीवन के विकास में उनका उपयोग संभव हो जाता है। वस्तुतः यह लोकतन्त्र की भावना के अनुकूल ही है। यह ठीक ही कहा गया है कि 'आंचलिक उपन्यास की आत्मा मूलतः लोकतन्त्रात्मक होती है और इस दृष्टि से वह वर्तमान युग के अत्यधिक अनुरूप है। उसके मूल में यह विश्वास निहित होता है कि साधारण स्त्री पुरुष भी साहित्य में निरूपण के योग्य हैं।'[2]

विकास क्रम के विचार से वैसे तो आंचलिक उपन्यास स्वतन्त्र विधा के रूप में भारतीय प्रजातन्त्र की स्थापना के साथ ही प्रकाश में आये हैं, किन्तु आलोचकों के विचार से उपन्यासों में आंचलिक तत्व प्रेमचन्द युग में उपलब्ध थे। प्रेमचन्द की अनेक कहानियाँ और उपन्यास आदि किसी विशेष अंचल का नाम होता तो उनके आंचलिक बन जाने में कोई संदेह न रह जाता। राजनीतिक दृष्टि से परे निरालाकृत 'बिल्लेसुर बकरिहा' उनके बैसवाड़े के जीवन की एक झाँकी है। किन्तु उन लेखकों की दृष्टि तात्कालिक राष्ट्रीय अंचल तक प्रसरित थी, अतएव आंचलिकता विकास का तब अवसर भी नहीं था। उस समय व्यापक राष्ट्रीय समस्याओं, राष्ट्रभाषा के सर्वमान्य रूप आदि के विचार से प्रान्तीयता, आंचलिकता अथवा क्षेत्रीय बोलियों का प्रश्रय देना राष्ट्रीय हित में नहीं था। प्रेमचन्द का कथा-साहित्य व्यक्ति के स्थान पर समाज का सामूहिक मूल्यांकन करता है, उसमें समूह का ही एकीकृत विशाल व्यक्तित्व है, जब कि आंचलिक विधा समग्र राष्ट्रीय सामूहिक व्यक्तित्व के विपरीत अंश सामूहिक व्यक्तित्व मूल्यांकित करती है, जो स्थानीय परम्पराओं, घटनाओं, प्राकृतिक दशाओं एवं जीवन

---

१ साप्ताहिक हिन्दुस्तान, अंक १५-३-१९६४, पृष्ठ २१

२ महेन्द्र चतुर्वेदी, हिन्दी उपन्यास : एक सर्वेक्षण, पृष्ठ १९५

के प्रतिमानो से बनता है और जिसमे अतीत से लेकर भविष्य तक के लिए सारी दृष्टि उसी क्षेत्रविशेष पर ही जमी रहती है।

आंचलिक उपन्यासो मे स्थानीय या क्षेत्रीय बोली का विशेष प्रयोग उन्हे उपन्यास की राष्ट्रीय भाषा-शैली से पृथक करता है। देशज शब्दो को आंचलिक उपन्यास प्रचुर प्रश्रय देते हैं, साथ ही बहुधा सामान्य बोलचाल के शब्दों को विकृत करने और अशुद्ध लिखने मे भी नहीं चूकते। पशु-पक्षियों आदि की बोलियो के ध्वन्यात्मक शब्दो का भी बाहुल्य रहता है। इस प्रकार आंचलिक उपन्यासो का अनगढ सौन्दर्य उनकी विशिष्ट अभिव्यंजन शैली की ओर निर्देश करता है। आंचलिक उपन्यासो की इस भाषा प्रयोगीय भिन्नता के अपने गुण-दोष हैं।

जहाँ आंचलिक बोली ऐसे उपन्यासो के सास्कृतिक एव स्वाभाविक आंचलिकता के गुण को प्रत्यक्ष करती है, वहाँ उसका आतिशय्य अन्य प्रदेशीय हिन्दीभाषियो के लिए दुरूहता का दुर्गुण भी बन जाता है। केवल खड़ी बोली से परिचित व्यक्तियों के लिए तो और भी एक जटिल समस्या हो जाती है। देशज शब्दो के प्रयोगो का बाहुल्य तो बहुधा उपन्यास को क्षेत्रविशेष के व्यक्तियो तक सीमित कर देता है। यह कहना अनुचित न होगा कि उनकी एक क्षेत्रीय चेतना शेष मानवता के उपयोग की उतनी नहीं रह जाती। इस सकीर्णता से मुक्त होकर आंचलिक उपन्यासो की आंचलिकता अपने क्षेत्र से उठकर विशाल वसुधा और मानवता का परिचय देकर उसके सहयोग एव समवेदना की यात्रा हो जाती है।

आंचलिक उपन्यासो मे समाजवादी चेतना नागार्जुन व भैरवप्रसाद गुप्त के उपन्यासो की विशिष्टता है। फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आँचल' और 'परती परिकथा,' अमृतलाल नागर का 'बूँद और समुद्र' तथा दुर्गाशकर मेहता का 'अनबुझी प्यास' ने भी आंचलिकता के परिवेश मे राजनीतिक तत्वो को प्रश्रय दिया है। इन उपन्यासो का अध्ययन आगे प्रस्तुत किया जा रहा है।

समाजवादी यथार्थवादी आंचलिक उपन्यास

नागार्जुन के राजनीतिक उपन्यास व्यक्तित्व

यशपाल के सदृश नागार्जुन के भी समस्त आंचलिक उपन्यास राजनीतिक उपन्यास की श्रेणी मे विन्यस्त किये जा सकते हैं। साम्यवादी दल के कर्मठ कार्यकर्ता होने के कारण नागार्जुन अपने राजनीतिक विचारों मे साम्यवादी हैं, किन्तु यशपाल के समान उनके उपन्यास मार्क्सवादी सिद्धान्त से उतने बोझिल नहीं हैं।

नागार्जुन, जिनका वास्तविक नाम वैद्यनाथ मिश्र है, उत्तर बिहार के दरभगा

जिले के तैरानी ग्राम के निवासी है। उनका जन्म एक सामान्य परिवार मे हुआ और चार वर्ष की अल्पायु मे उन्हें मातृ-वियोग सहन करना पडा। गरीबी के कारण उन्हे सस्कृत का अध्ययन करना पडा और पराश्रमोजी छात्र के रूप मे उन्होने काशी और कलकत्ते के राजकीय सस्कृत कॉलेजो से स्नातक की उपाधि अर्जित की।

सस्कृत के अध्ययन ने उन्हे सस्कृत मे लिखने की प्रेरणा दी। लेखन-कार्य मे अभिरुचि होने के कारण उन्होने प्राकृत, मैथिली, पालि और अन्तत. हिन्दी मे अबाध गति से लिखा। उनमे राहुल जी की घुमक्कडी प्रवृत्ति है और इसी सन्दर्भ मे वे बौद्ध होकर १८ माह का सिहल प्रवास कर आये हैं। सिहल मे ही उन्होने पालि का अध्ययन किया और सस्कृत का अध्यापन। वैद्यनाथ मिश्र से भिक्षु नागार्जुन भी वे वही बने।

सिहल-प्रवास से लौटने पर वे बिहार की वामपन्थी राजनीति मे स्वामी सहजानन्द के सहयोगी बने और पटना को उन्होने अपना कर्मक्षेत्र बनाया। वामपथी राजनीतिक गतिविधियो म भाग लने के परिणामस्वरूप उन्हें दो वर्ष का कारावास भुगतना पडा और वहां से मुक्त होने पर उन्होने भिक्षुवेश त्याग कर पुन गृहस्थ क्षेत्र मे प्रवेश किया। उनके बारे मे परिचय देते हुए कहा गया है ' 'दस कट्ठा जमीन के स्वत्वाधिकारी, कम्युनिस्टो की विशाल बिरादरी के स्वजन आत्मीय। बीच बीच मे जेल जाते रहने के शौकीन।' राजनीति से सक्रिय रूप से सम्बद्ध नागार्जुन साहित्य के राजनीतिक महत्व को मानते है। उनके कथनानुसार 'शोषक और तानाशाही शक्तियो के खिलाफ जनमत तैयार करना मेरा पहला काम हो जाता है। सघर्ष के लिए जो प्रतीक मुखरित होते हैं, उन्हे उभारता हूं, ताकि रग-रग मे माहौल पैदा हो जाय।' साम्यवादी होने के कारण वे वर्ग सघर्ष पर आस्था रखते है और सर्वहारा जनता ही उनकी आराध्य हो जाती है। वे मानते हैं कि 'असली प्रतिशत (जनता या किसान) हमारे इष्ट देवता है, जो जीवन के आसपास फैली हुई है। मैं भी उन्हीं के साथ जुडा हुआ हूं। समाज के घटना प्रवाह से विच्छिन्न नहीं हू। पात्रों के साथ मुस्कराता हूँ, उनसे बात करता हूँ। मैं ऐसे वर्ग को प्रतिनिधि नहीं चुनता, जिसमे मैं नहीं हूं।'

नागार्जुन के इस सक्षिप्त परिचय और विचारधारा मे यह स्पष्ट हो जाता है कि शोषित वर्ग के सदस्य के रूप मे उन्होने गरीबी के अभिशाप को केवल निकट से ही नहीं देखा, अपितु भुक्तभोगी रहे है। यही कारण है कि आर्थिक वैषम्य के स्वनुभाव ने उन्हें वामपन्थी राजनीति की ओर आकर्षित किया और इस प्रकार सन् १९३८ से उनका राजनीति से सम्बन्ध बना हुआ है।

समाजवादी यथार्थ का यह अनुभव जन्य विवरण उनके सम्पूर्ण उपन्यासों मे कलात्मक ढग से चित्रित है। नागार्जुन के प्रकाशित हिन्दी उपन्यासो की तालिका निम्नानुसार है 'रतिनाथ की चाची' (१९४८) 'बलचनमा' (१९५२), 'नयी पौध' (१९५३),

बाबा बटेसरनाथ' (१९५४), 'दुखमोचन' (१९५७), वरुण' के बेटे' १९६०), 'हीरक जयन्ती' और 'उग्रतारा' (१९६३)।

उपर्युक्त उपन्यासों के अध्ययन से कहा जा सकता है कि नागार्जुन ने मिथिला भूमि के जन-जीवन को आधार बनाकर नवीन समाजवादी चेतना को सशक्त अभिव्यक्ति दी है। मार्क्सवादी सिद्धान्तों को समुचित स्थान देते हुए भी उन्होंने कला को सिद्धान्तों के प्रचार से बचाने का कलात्मक प्रयत्न किया है। वे नयी पीढ़ी के सजग उपन्यासकार हैं, जिन्होंने उपन्यासों में जीवन-वास्तव का विशद विवेचन प्रस्तुत किया है। उनके उपन्यासों में मुख्यतया चार प्रवृत्तियों का समावेश है—

१—जीवन की व्यापकता और सम्पूर्णता का प्रतिनिधित्व
२—जनवादी तत्वों में आस्था
३—यथार्थवाद की सामाजिक आधार पर स्थापना
४—अप्रयासात्मक नूतन शिल्पाग्रह

रतिनाथ की चाची

'रतिनाथ की चाची' (१९४८) नागार्जुन का प्रथम उपन्यास है, जिसमें ग्राम्य जीवन के आधार पर एक मैथिल विधवा के दुर्भाग्य की कथा वर्णित है। ग्राम्य जीवन को मिथिला भूमि तक सीमित रखकर आंचलिकता की उद्भावना की गयी है और 'इस धरती एवं इसके निवासियों से निकट परिचय तथा इनसे आन्तरिक लगाव के बल पर लेखक अपनी कृति को जीवन्त बनाकर उसमें समाजवादी चेतना का सचार करता है।'[1] सुषमा धवन का यह कथन आंशिक रूप से ही सत्य माना जा सकता है, क्योंकि जिस समाजवादी चेतना की ओर लेखक ध्यानाकर्षित करना चाहता है, वह पूर्णतः स्पष्ट नहीं हो सकी है।

यह एक सरलकथानक उपन्यास है। कथावस्तु एक कुलीन ब्राह्मणी की दुःखमय गाथा है। वह गुणवती निर्धन विधवा है जिसका पुत्र उमानाथ कहीं बाहर शिक्षा प्राप्त कर रहा था और पुत्री प्रतिमा विवाहित जीवन व्यतीत कर रही थी। घर में उसके जीवन का एकमात्र सहारा उसके विधुर देवर जयनाथ का पुत्र रतिनाथ था। जयनाथ दरिद्र और क्रोधी पिता है और उसका शिकार होता है रतिनाथ, जो अपने दुःखों का अन्त चाची की स्नेहिल छाया में पाता है। वासनान्ध हो जयनाथ एक रात्रि अपनी विधवा भाभी के साथ बलात्कार कर बैठते हैं जिससे उसे गर्भ रह जाता है। रतिनाथ की चाची गौरी का गाँव वाले सामाजिक बहिष्कार करते हैं और वह अपमानित हो अपनी माँ से घर चली जाती है। माँ के प्रयत्न से एक चमाइन उसका गर्भपात कराती है और

१ डॉ॰सुषमा धवन : हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ ३०३

वह पुनः अपने घर लौट आती है। इतना होने पर भी वह जीवनपर्यन्त गाँव की स्त्रियों और कुटुम्बियों के तिरस्कार के बीच जीती है और अन्त में दुःखों से त्रस्त मलेरिया से पीड़ित हो मृत्यु का आलिंगन करती है। अंतिम समय में रतिनाथ ही अपनी चाची की दाह-क्रिया करता है।

जैसा कि पूर्व ही कहा जा चुका है, कथावस्तु सरल और सीधी है। किसी प्रकार का उसमें उलझाव नहीं। इस कथावस्तु के माध्यम से लेखक ने मैथिल ब्राह्मणों के सामाजिक आचार-विचारों, विधवा-समस्या, अनमेल विवाह और छुआछूत की अनेकमुखी समस्याओं को स्पर्श किया है।

रतिनाथ की चाची गौरी के चरित्र-चित्रण से विधवा की यथार्थपरक समस्याओं को लेकर समाज के अन्तर्विरोध को वाणी देने का प्रयास किया गया है। उसकी आर्थिक, सामाजिक तथा भावात्मक स्थिति समाज की जड़ परिस्थिति पर व्यंग है। गौरी का स्वाभिमानी संघर्षशील जीवन और मृत्यु के सन्निकट पहुँचकर भी उसका समाजवादी दृष्टिकोण और परिणामस्वरूप रूस की विजय की कामना ही ऐसे प्रसंग हैं, जो उपन्यास को समाजवादी चेतना के निकट लाते हैं। उपन्यास का एक अन्य पात्र ताराचरण भी इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है, क्योंकि वह समाजवादी चेतना का ही प्रतीक है, सामाजिक विकृतियों के चित्र भी इसी भावना से उकेरे गये हैं। इतना होते पर भी गौरी के समाजवादी दृष्टिकोण को अपनाने का प्रसंग अस्वाभाविक और मनचाहा सा ही है।

बलचनमा

नागार्जुन का दूसरा उपन्यास 'बलचनमा' है, जिसका कथानक सामंती जमींदारी प्रथा में पिसते हुए ग्रामीण मजदूर किसानों का प्रतिनिधित्व करता है। आलोच्य उपन्यास आत्मकथात्मक है और इसका नायक बलचनमा स्वयं अपनी जीवन-कथा कहता है। उपन्यास का घटनास्थल है दरभंगा और कालावधि है सन् १९३७ के पूर्व का समय। नायक है बलचनमा, जो एक गरीब ग्वाले का पुत्र है। उसी के चतुर्दिक कथा से सम्बन्धित घटनाएँ उपन्यास में घूमती हैं। जीवन के अभावों का जीवन्त प्रतीक बलचनमा सर्वहारा वर्ग का मजदूर बालक था, जिसकी केवल १० बिस्वा जमीन थी। परिवार में माँ, दादी और छोटी बहिन थी। मूलतः परिवार-पोषण का सहारा मजदूरी ही थी।

आरंभ कथानक उपन्यास में उपन्यासकार को अपनी ओर से कुछ कहने की गुंजाइश नहीं रहती। इस प्रकार के उपन्यासों में नायक आपबीती यथार्थ बातों का वर्णन करता है, ऐसी बातें या घटनाएँ, जो सहृदय जनों को संवेदित कर सकें। ऐसी मार्मिक घटनाओं का निरूपण लेखक की विशिष्ट कसौटी होती है। अन्य व्यक्तियों के विषय में नायक उतना ही कहता है, जितना साधारण मनुष्य जीवन में दूसरे व्यक्तियों के बारे में जानते हैं।

बलचनमा अपने मालिक (जमींदार) के द्वारा बाँध कर अपने पिता के मारे जाने की घटना को अपने जीवन की प्रथम घटना के रूप में वर्णित करता है। उस पर अपराध लगाया गया था कि उसने मालिक के बाग से कहीं एक कच्ची अमिया तोड़ ली थी। उसकी दादी उसके पिता को छुड़ाने के लिए मालिक के सामने गिड़गिड़ा रही थी, बलचनमा, उसकी माँ तथा बहन भयातुर रो रहे थे। यहाँ लेखक प्रारम्भ में ही जमींदारों के द्वारा जनता पर किये गये अत्याचारों का चित्रण प्रस्तुत करता है और क्रमश उनके शोषण, अनाचार और अत्याचार के वर्णन के सहारे कथानक को गतिशील बनाता है। लेखक ने कथाक्रम में कांग्रेस तथा समाजवादी दलों में भी उन्हीं जमींदारों के पारिवारिक जनों को ही घुसा हुआ बताया है, जो वस्तुत जनता के सही प्रतिनिधि नहीं हैं, प्रत्युत अपने ही वर्ग का हित-साधन करते हैं।

बलचनमा का पिता चौथइया के ज्वर में मर गया। मालिक से कुछ लेकर, कुछ इधर-उधर से जैसे तैसे उसका क्रियाकर्म हुआ। दादी और माँ के प्रयासों से बलचनमा छोटे मालिक की भैंस चराने के लिए रूखे सूखे खाने, फटे पुराने कपड़े और दो आना महीने पर नौकर हो जाता है। भैंस चराने के अतिरिक्त उसे प्रतिक्षण अन्य अनेक कार्य भी करने पड़ते हैं। चौधरी लोगों का यह घराना भरा पूरा था। उनके पास बहुत सम्पत्ति थी। किसी चीज का अभाव न था। छोटी मलिकाइन भी किसी बड़े घराने की थी। वह बलचनमा को बहुत गालियाँ देती थीं और अत्यन्त ही सड़ा-गला जूठा खाना। इतने पर भी वह सन्तोष पूर्वक अपना कार्य करता था। बड़े मालिक के चरवाहे सबूरी मण्डल से उसकी मित्रता हो गयी थी। पिता के मरने पर मझले मालिक ने बलचनमा की माँ को बारह रुपये कर्ज दिए थे और सादे कागज पर अँगूठे का निशान ले लिया था। किन्तु उनका सूद ही पूरा न हो पाता था। मूल तो ज्यों का त्यों था ही। अतएव मालिक ने बलचनमा का १० दिनवारी खेत अपने में मिला लिया। इसी प्रकार से अन्य कर्जदारों का कर्ज चुकता किया जाता था।

दरभंगा जिले में धान की खेती विशेष होती है। अतएव धान रोपने के दिनों में इन मजदूरों को मालिकों से कुछ पेट भरने को मिल जाता था। किन्तु अन्य अवसरों पर बीमारी के पथ्य के लिए भी उनसे एक सेर चावल मिलना कठिन होता था। सर्वहारा वर्ग के जीवन की इन छोटी-छोटी बातों के चित्रण से उपन्यास में सहज स्वाभाविकता का निर्वाह किया गया है। कथानक के प्रारम्भिक अंश में जमींदारों के निरंकुश व्यवहार तथा उत्पीड़न में रह कर बलचनमा की हीन परिस्थितियों का चित्रण किया गया है। उसके जीवन का दूसरा अध्याय फूल बाबू के सान्निध्य में प्रारम्भ होता है। फूल बाबू छोटी मलिकाइन के भतीजे थे और पटना में पढ़ते थे। छुट्टी में घर आने पर वे बलचनमा को साथ ले गये। फूल बाबू गाँधी जी के नमक-सत्याग्रह में सम्मिलित

हो गिरफ़्तार हो जाते हैं और फूल बाबू के साथी महेन बलचनमा को अपने यहाँ ले जाते हैं। फूल बाबू फागुन में छूट गये। अब वे पूरे गाँधीवादी बन गये और कॉलेज छोड़ कर देश-सेवा करने लगे थे। बलचनमा भी अपने गाँव चला आता है।

इधर गाँव में बलचनमा की बहिन रेवती जवान हो चुकी थी। एक दिन छोटे मालिक की नजर उस पर खराब हो गई। पर रेवती किसी तरह हाथ छुड़ाकर भाग आयी। मालिक ने इसके लिए उसकी माँ को बहुत मारा पीटा। छोटे मालिक ने बलचनमा की, जो दंगल देखने गया था, पुलिस में चोरी की रिपोर्ट कर दी। बलचनमा को जब यह पता चला तो फूल बाबू से सहायता प्राप्त करने की आशा में लहरिया सराय आश्रम पहुँचा। वहाँ फूल बाबू को साक्षात् गाँधी महात्मा की मूर्ति बने देख उसकी श्रद्धा बढ़ जाती है। बलचनमा ने अपनी करुण कथा सुनायी पर फूल बाबू ने उसकी मदद करना स्वीकार न किया। आश्रम के व्यवस्थापक राधा बाबू उसे आश्रम में वालेंटियर रख लेते हैं और वहाँ वह सेवा-कार्य करने लगता है। आश्रम में रहने के कारण वह कांग्रेसी आश्रम की कार्यविधि से भली भाँति परिचित होता है। राधा बाबू ने एक खत बड़े मालिक के लड़के के नाम भेजा और दूसरा दरोगा के नाम। फलतः बलचनमा का मुकदमा खत्म हो गया। बलचनमा राधा बाबू से ५०) लेकर गौना कराने की उमंग में घर आया। धान की फसल अच्छी हुई थी। मेहनत मजूरी से कुछ पैसा भी इकट्ठा हो गया था। गौना होकर बलचनमा की स्त्री सुगनी घर आयी और रेवती का गौना हो गया। मेहनत-मजूरी करते हुए बलचनमा के तीन साल कट गये। बीच में एक बार बाढ़ आयी, भूचाल आया और लोग बेसहारा हो गये। सीतामढ़ी और मुंगेर जिलों में जगह-जगह बालू और पानी पड़ गया। पक्के मकानों की बस्तियाँ ढेर हो गयीं। लोगों का बड़ा नुकसान हुआ। सरकार और कांग्रेस की ओर से लाखों रुपये तकावी के रूप में बाँटे गये। फूल बाबू बलचनमा के गाँव में तकावी बाँटने वाले थे। उन्होंने मालिकों के यहाँ और धमनटोली में चक्कर लगाया था। किन्तु गरीबों मजदूरों की टोली में नहीं। साथ ही रुपये लिखे अधिक गये और बाँटे कम गये। सरकारी और गैर सरकारी मदद के नाम पर अधिकारियों और नेताओं ने खूब खाया। बलचनमा को फूल बाबू पर अश्रद्धा हो गयी। राधा बाबू सोशलिस्ट हो गये थे। बलचनमा को बटाई पर बहुत से खेत मिल गये और वह परिश्रम से कमाई करने लगा। इसी बीच जमींदारों की बेदखली से बचने का किसान-आन्दोलन चला। बलचनमा ने इसमें सक्रिय भाग लिया। वह किसानों की अधिकार-रक्षा के लिए बिना किसी भय के जी-जान से जुट गया और एक रात जमींदार के आदमियों ने उस पर घातक प्रहार किया। यहीं आकर कथानक का अन्त हो जाता है।

इस प्रकार यह उपन्यास एक ईमानदार भारतीय किसान की गौरव-गाथा है, जो

साधनहीन होने पर जीवन संघर्ष से भागता नहीं, वरन् अपने अधिकारों को प्राप्त करने की चेतना से अनुप्राणित हो निरन्तर आगे बढ़ने की दिशा में यत्नशील रहता है। बलचनमा ऐसा ही किसान है जिसके माध्यम से 'लेखक का उद्देश्य बलचनमा के जीवन संघर्ष के चित्रण द्वारा उस समाजवादी चेतना की ओर निर्देश करना है जो साधनहीन एवं स्वाधिकारवंचित किसान के अंतर में अन्याय तथा अत्याचार के प्रति विद्रोह की भावना को जन्म दे रही है।'[1] यह नयी समाजवादी चेतना का ही प्रतिफल है कि बलचनमा परिस्थितियों से पराजित न होकर उनको अपने अनुकूल बनाने के लिए संघर्षशील है।

प्रस्तुत उपन्यास ग्राम्य जीवन के उन दिनों का स्मारक है, जब विदेशी शासन और स्वदेशी जमींदारों के शासन में जनता की दुर्दशा हो रही थी। प्रेमचन्द का 'गोदान' यदि अपने युग के किसान का जीता-जागता चित्र है तो 'बलचनमा' भी उसी परम्परा की स्मृति ताजी करता है। हम तो यहाँ तक कह सकते हैं कि राजनीतिक चेतना का सबल योग पाकर 'बलचनमा' का किसान 'गोदान' के होरी से कहीं अधिक उद्यमशील और सतेज है। उपन्यास के प्रारम्भ में ही बलचनमा के पिता की मारपीट का प्रथम दृश्य ही जमींदारों की नृशंसता का प्राथमिक परिचय देता है। शेष उपन्यास जमींदारी प्रथा के अन्तर्गत अनेक प्रकार के अत्याचारों के शिकार निरीह किसानों के त्रस्त जीवन का चित्रण करता है। ब्रिटिश शासन तो जमींदारों के पक्ष में था ही, देश की राष्ट्रीय संस्था कांग्रेस में भी ऐसे लोग प्रविष्ट हो गये थे जो किसानों का अहित साधन करते रहे। उपन्यासकार ने फूल बाबू जैसे पात्र का चरित्र इसी रूप में उभारा है। किन्तु इसके विपरीत राधा बाबू जैसे उदार व्यक्ति भी कांग्रेस में थे। रूसी क्रान्ति के पश्चात् लेनिन ने रूसी मजदूर वर्ग और किसानों को आगाह किया था कि कभी भी ऐसे व्यक्ति को किसी उत्तरदायित्वपूर्ण पद पर न जाने देना, जिसके माँ-बाप आदि जमींदार, साहूकार या जारशाही के नौकर रहे हों। यदि वे इन पदों पर पहुँच गये तो अपनी पुरानी प्रवृत्तियों को उभार कर जनता का ही सही शासन न स्थापित होने देंगे। भारतीय स्वतंत्रता के उपरान्त देश में व्याप्त मंहगाई, भ्रष्टाचार का मूल कुछ ऐसा ही है। लेखक का सम्भवतः परोक्ष संकेत यही है। एक स्थान पर लेखक ने स्पष्ट लिखा है कि तब अंग्रेज लूटते थे और अब काले अंग्रेज, शहरों के पूँजीपति आदि। जनता के *शोषण के क्रम में विशेषण वृद्धि हुई, कमी नहीं।*

आत्मकथात्मक वाद सापेक्ष उपन्यास होने से राजनीतिक राष्ट्रीय गतिविधियों को व्यापक विस्तार देने की गुंजाइश थी ही नहीं, फिर भी कई स्थानों में जनसामान्य

---

1 डा० सुषमा धवन हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ ३०४-३०५

के समझने योग्य कांग्रेस पार्टी और सोशलिस्ट पार्टी के उद्देश्यों की भी लेखक ने व्याख्या की है। किन्तु स्पष्टतया दोनों के दर्शन से उसका लगाव नहीं है। लेखक का दृष्टिकोण साम्यवादी है और बलचनमा को विभिन्न परिस्थितियों में प्रस्तुत कर उसने अपनी पूर्व ग्रहग्रसित दृष्टि से जमींदारों एवं राजनीतिक नेताओं के स्वभाव, संस्कार तथा स्वार्थों को चित्रित किया है।

कांग्रेस और उसके कार्यक्रमों पर भी लेखक की दृष्टि व्यंग्यात्मक रही है, जो चित्रण को एकांगी बनाती है। नमक-सत्याग्रह के सम्बन्ध में बलचनमा की मनोभावना देखिए—

'मगर भैया, मेरी समझ में कुछ नहीं आया। बार-बार मैं यही सोचता कि बाबू को जब जेहल ही जाना था, तो मुझे भी साथ ले जाते। यह जो दस दस, पाँच-पाँच आदमी कुर्ता, धोती, टोपी पहन कर गले में माला डाले चढउआ बकरे की तरह नमक बनाने जाते थे, सो मुझे बाबू लोगों का एक खिलवाड़ ही लगता था। ऐसे भी कहीं किसी को सुराज मिला है ?'[1]

महेन बाबू की माँ की प्रतिक्रिया भी बहुत कुछ ऐसी ही है। वे कहती हैं, 'फूल बाबू को यह क्या सनक सवार हुई ? गाँधी ने अपने घर के लड़कों को बिगाड़ने का ठेका ले लिया है क्या ? पढ़ाई लिखाई छोड़कर कॉलेज के लड़के अब क्या नमक ही बनाया करेंगे ?'[2]

कांग्रेस आन्दोलन के प्रति सेठ-साहूकारों की सहानुभूति अपने स्वार्थों को लेकर थी जिसकी व्याख्या बलचनमा करता है।[3]

सुराजी नेताओं के खान-पान, रहन-सहन और व्यवहार का चित्रण भी मिलता है। जेल से लौटने पर फूल बाबू बिलकुल बदल गये थे। 'सुबह शाम गाँधी जी का भजन गाते थे। जेल ही से गीता की एक छोटी पोथी ले आये थे। इधर अगले ही दिन एक चरखा खरीद लाये। और भैया, वही चरखा जा छोटे बच्चे मे बन्द रहता। खाना पीना भी उनका बदल गया था। मसाला-मिरचाई कुछ नहीं। तरकारी उबाल कर खाते थे। एक दिन गेहूँ भीगने दिये कटोरे में। मैं तो समझ ही नहीं सका कि इनका क्या होगा। अगले दिन छाँक कर गेहूँ को उन्होंने भीगे अँगोछे पर फैला दिया। अगली सुबह गेहूँ के दानों में जब अकुर निकल निकल आये तब फूल बाबू ने एक-एक कर उन्हें खाया। कभी उबाले हुए आलू, प्याज और गुड़ पर

१ नागार्जुन : बलचनमा, पृष्ठ ६०
२ नागार्जुन : बलचनमा, पृष्ठ ६०
३ नागार्जुन : बलचनमा, पृष्ठ ६२

ही रह जाते। मुझ तो भैया अन्देशा हो गया कि बाबू का मिजाज सनक गया है।[1] बरहमपुरा स्थित कांग्रेस आश्रम और सुराजी लोगो का विस्तृत चित्रण भी सहृदयता से नहीं किया गया है। मौका पाकर लेखक फबतियाँ कसने से यहाँ भी नहीं चूका। बलचनमा कहता है—'महतमा जी का हुकुम नहीं था कि सोराजी आसरम में किसी को नौकर चाकर के तौर पर रखें। फिर भी आसरम में हम चार जने थे, जो नौकर ही थे। कहने को भोलटियर कह लो, सेवक कह लो, लेकिन थे तो हम नौकर ही।[2] राधे बाबू के खुले हाथ का विवरण यों दिया गया है—'राधा बाबू राजा खानदान के थे। पढाई करते समय स्टेट का पैसा फूँकते रहे और अब पबलिक का। चन्दा आसरम मे काफी आता था। कोई उनसे हिसाब लेने वाला नहीं था। जैसी मरजी आयी, वैसे खरच किया।'[3] सोराजी लोगो का व्यग्यात्मक चित्र खींचने मे लेखक ने विशेष रस लिया है।[4] सोराजी बाबुओं में से सैकडे में नब्बे ऐसे ही मिल हैं, जिनको 'जी सरकार' कहलाने में बडा निम्मन (अच्छा) बुझाता है। न कहो तो गुर्रा-गुर्रा कर ताकते रहेंगे। इन सोराजी लोगो के व्यवहार से बलचनमा 'कांग्रेस के बारे में सोचने लगा कि स्वराज मिलने पर बाबू भैया लोग आपस में ही दही-मछली बाँट लेंगे, जो लोग आज मालिक बने बैठे हैं आगे भी तर माल वही उडावेंगे। हम लोगो के हिस्से मीठी ही सीठी पडेगी।'[5] कांग्रेस के प्रथम मन्त्रिमण्डल निर्माण के पूर्व का संकेत भी उपन्यास में मिलता है।

कांग्रेस के भीतर समाजवादी विचारधारा को लेकर बनने वाले दल का सकेत मिलता है और दलों की विचारधारा से वैभिन्न्य का भी।[6] इन्हीं सोशलिस्टो के नेतृत्व में किसान-सग्राम को चित्रित किया गया है। बाँस की खिराठी पर हँसिया हथौडा वाला झडा फहरा उठता है। रोजी रोटी की लडाई के बहादुर सिपाही जात पाँत को छोड आपस में कामरेड हो जाते हैं। कामरेड अर्थात् लडाई का साथी। शानदार मीटिंग और आगभरे लम्बे भाषण होते हैं। नारे लगते हैं — कमानेवाला खायेगा, इसके चलते जो कुछ हो। जमीन किसकी — बोते-बोये उसकी।

नायक बलचनमा एक शाश्वत पात्र है, जो अत्याचार की निर्मम परिस्थितियों से

१ नागार्जुन बलचनमा, पृष्ठ ६६
२ नागार्जुन बलचनमा, पृष्ठ १०८
३ नागार्जुन बलचनमा, पृष्ठ १०६
४ नागार्जुन बलचनमा, पृष्ठ ११८ ११६
५ नागार्जुन बलचनमा, पृष्ठ १६३
६ नागार्जुन बलचनमा, पृष्ठ १६२ १६३

गुजरता हुआ अन्त में स्वयं किसानों की स्वत्व रक्षा के आन्दोलन का सक्रिय अंग बन जाता है। उसके निरूपणों में व्यंग का गहरा पुट है। उसकी चेतना प्रारम्भ से ही प्रखर है और जीवन की विषमताओं के मूल कारणों को समझने में वह समर्थ है। उसमें विद्रोह की अनावृत चिनगारी है, जो शोषकों को भस्मीभूत करने को आकुल है। वह भाग्यवादी नहीं और न ईश्वरेच्छा को अन्तिम सत्य मानता है। कर्म ही उसका मंत्र है और उसी की वह साधना करता है।

अनेक दृष्टियों से 'बलचनमा' हिन्दी का एक विशिष्ट राजनीतिक उपन्यास कहा जा सकता है। कलात्मक दृष्टि से इसमें भाषा-शैली और यथार्थवादी चित्रण-शैली का नूतन प्रयोग मिलता है। दरभगा और उसके निकटस्थ जनपदीय अंचल में बोले जाने वाले शब्दों के प्रयोग से यथार्थ की अनुभूति होना स्वाभाविक है। बलचनमा के क्रमिक विकास को दिखलाने की दृष्टि से उसके घर, गाँव और वहाँ के निवासियों का तथा घटना-प्रवास के प्रसंग से नगर-जीवन और सुराजी आश्रम का ब्योरेवार विवरण वर्ण्य वस्तु को प्रभावी बनाता है। इसमें भी व्यक्तियों के रूप, आकार, शील-स्वभाव, विचार-व्यवहार को स्वाभाविकता में यथार्थ की सृष्टि की गयी है। आत्मकथात्मक शैली में जैनेन्द्र और अज्ञेय ने भी अनेक राजनीतिक उपन्यासों की रचना की है पर उनका राजनीतिक मन्तव्य 'बलचनमा' सा नहीं निखर सका है। बलचनमा के अभाव और उसके आधार पर शोषितों की समस्याओं के आर्थिक पक्ष पर समाजवादी दृष्टिकोण से विचार प्रस्तुत करने में नागार्जुन को पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है। इसमें एक ओर सुखी सम्पन्न वर्ग है तो दूसरी ओर दुखी और विवश सर्वहारा वर्ग और दोनों की जीवन दशाओं के 'कन्ट्रास्ट' (वैषम्य) और शोषक द्वारा शोषित के उत्पीड़न के चित्र इस तरह आते हैं कि जीवन के प्रति नितांत भौतिक दृष्टिकोण उभड़ कर रह जाता है।

नयी पौध

'नयी पौध' में नागार्जुन ने अनमेल विवाह की समस्या को नवीन ढंग से प्रस्तुत किया है। अनमेल विवाह भारतीय समाज की परम्परागत समस्या रही है और आज भी उसका सर्वथा लोप नहीं हो सका है। इस सामाजिक समस्या को राजनीतिक दृष्टि से देखने का प्रयत्न किया गया है। 'रतिनाथ की चाची' में विधवा-जीवन की गाथा कह चुकने के बाद यह स्वाभाविक ही था कि नागार्जुन उक्त जीवन के एक मूलभूत कारण अनमेल विवाह पर भी विचार करते। 'रतिनाथ की चाची' के समान 'नयी पौध' का कथानक भी साधारण किन्तु सुगठित है। विषय वस्तु नवीन न होने पर भी उसके निर्वहण का ढंग मौलिक है।

कथा मिथिला के सौराठ के मेले से प्रारम्भ होती है, जहां विवाहेच्छु वर एकत्र होते हैं और कन्याओं के अभिभावकों द्वारा उनका चुनाव किया जाता है। बिसेसरी के नाना खोखाई झा भी सौरठ के मेले में निशविहीन नातिन के लिए वर के चुनाव हेतु जाते हैं और एक साठ वर्षीय बूढ़े को तय करते हैं। खोखाई झा का पेशा पंडिताई है और उनकी दृष्टि में विवाह एक सौदा है। इसी धनलोलुपता में वे अपनी छह कन्याओं को अपात्रों के हाथ बेच 'कन्यादान' से उऋण हो चुके हैं। बिसेसरी का भी वे इसी तरीके से हाथ पीला करना चाहते हैं। वह चौदह वर्षीया सुन्दरी है पर खोखाई झा उसे ९०० रुपये में चतुरानन चौधरी को पत्नी रूप में सौंप देने को तैयार हैं। चौधरी साठ पार कर चुके हैं और तीन विवाह कर ५ बच्चों के महाभाग पिता बन चुके हैं।

इस विषम विवाह का विरोध गांव के प्रगतिशील नवयुवक करते हैं और वृद्ध वर महोदय निराश हो वापस लौट जाते हैं। अनमेल विवाह स्थगित हो जाता है, किन्तु बिसेसरी की विवाह-समस्या और जटिल हो जाती है। प्रगतिशील युवकों का नेता दिगम्बर वाचस्पति इस दिशा में प्रयत्न कर अपने एक बाल्यमित्र के साथ बिसेसरी का विवाह-सम्बन्ध निश्चित कर बिना किसी आडम्बर के विवाह सम्पन्न करा देता है। वाचस्पति राजनीतिक पात्र है और सोशलिस्ट दल का सदस्य है। उसका जीवन जन-आन्दोलन को अर्पित है और उसी में वह अपनी सार्थकता देखता है। इस विवाह से परम्परागत रूढ़िवादिता का अन्त होता है और नयी पौध की विजय होती है।

इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जिस कथानक को लिया गया है, उसका विकास स्वाभाविक गति से हुआ है। मैथिल ब्राह्मण के पारिवारिक जीवन से सम्बद्ध कथानक होने से लेखक को उनके परम्परागत पारिवारिक जीवन व वैवाहिक कुरीतियों के उद्घाटन का सहज स्वाभाविक संयोग मिल जाता है। भली भांति परिचित मैथिल जीवन और गांव की सीमित पृष्ठभूमि लेकर उन्होंने प्राचीन और नवीन विचारों के संघर्ष को अभिव्यक्ति देकर उनके खंडन मंडन के द्वारा ही समस्याओं का निर्देश प्रस्तुत किया है। यथार्थ जीवन चित्रण की दृष्टि से कृति उत्कृष्ट बन पड़ी है और उसमें वैयक्तिक तथा सामाजिक विकृतियों के प्रति प्रच्छन्न व्यंग निहित है। उद्देश्य की दृष्टि से भी उपन्यास सफल है और इसमें समाजवादी नवीन सामूहिक चेतना वर्ण्य वस्तु के साथ ऐसी ही एकाकार हो गयी, जैसे संगम में गंगा और यमुना।

इसीलिए एक विज्ञ समीक्षक का यह कथन सर्वथा उचित है कि 'यह रचना अपनी सभी पहली खामियों से वंचित है। न तो इसमें कहीं भद्दापन है और न किसी प्रकार के राजनीतिक या सैद्धान्तिक विचारों का अन्ध मोह ही है। कवि, लेखक और कलाकार को जिस प्रकार क्षुद्र संकीर्णताओं से ऊपर उठकर जीवन में मुक्त-हृदय होकर

प्रवेश करके उसकी रसानुभूति करना चाहिए, वैसी दृष्टि नागार्जुन के इस नये उपन्यास में है।'[1]

बाबा बटेसरनाथ

नागार्जुन के 'बाबा बटेसरनाथ' में समाजवादी यथार्थ कथा-शिल्प सम्बन्धी नूतन प्रयोग के समन्वित रूप में प्रस्तुत हुआ है। इसमें लेखक ने नये रूप-शिल्प की उद्भावना से एक पुराने वटवृक्ष के मुख से रूपउली गाँव के उत्थान पतन, सामाजिक, राजनीतिक स्थितियों का अंकन किया है। मौजा रूपउली के इस वटवृक्ष का आरोपण जैकिसुन के परदादा ने किया था और अपनी घनी छाया के कारण यह गाँव के सभी वर्ग के व्यक्तियों का विश्रामस्थल सा बन गया था। कांग्रेसी शासन के स्थापित होने के बाद जमींदारी उन्मूलन के समय दुलाई पाठक और जैनरायन झा ने राजा बहादुर से बरगदवाली यह जमीन और पुरानी पोखर बन्दोबस्त में ले ली। गाँव वालों के हृदय में इस घटना से रोष की उद्भावना होती है। जैकिसुन को जमीन और वटवृक्ष के हस्तान्तरण से दुख होता है क्योंकि वह वृक्ष उसके परदादा की निशानी थी। दिन भर का थकित जैकिसुन इसी दुःख में वटवृक्ष के नीचे सो जाता है। रात को तारागणों की घनी झुरमुटों से बरगद का मानव रूप प्रकट हुआ और उसने जैकिसुन को अपने जन्म एवं विकास की कहानी के माध्यम से रूपउली गाँव के सौ वर्ष का इतिहास सुनाया।

उपन्यास में वर्णित यह गाथा बड़ी आत्मीयता के साथ कही गयी है और जिससे रूपउली गाँव अपने सामाजिक एवं प्राकृतिक परिवेश में प्रत्यक्ष हो उठा है। बटेसर बाबा ने भूचाल, बाढ़ से प्रभावित गाँव का, देवी-देवताओं के प्रति लोगों की अन्ध श्रद्धा, पशुबलि प्रथा, पचायतों का सूक्ष्म निरीक्षित आँखोंदेखा वर्णन किया। इस तरह बटेसर बाबा से गाँव की चार पीढ़ियों के इतिहास का पूर्वार्द्ध जानकर जैकिसुन में कर्म की प्रेरणा जाग्रत होती है। उसका मानसिक विकास होता है। सामूहिक शक्ति के प्रति वह आशावान होता है, क्योंकि बाबा उसे नूतन दृष्टि देते हैं - "झींगुर एक तुच्छ कीड़ा होता है। सैकड़ों-हजारों की तादाद में जब ये एक स्वर होकर आवाज करने लगते हैं तो एक अजीब समाँ बँध जाता है। झींगुरों की वह प्रचण्ड झंकार कई-कई पहर तक चलती रहती है। सामूहिक स्वर की इस प्रकार महिमा के आगे मेरा मस्तक सदैव नत होता रहा है और होता रहेगा।'[2]

जैकिसुन के स्वप्न की कथा, जो उपन्यास की आधिकारिक कथा है, रात बीतते

---

१ आलोचना, अंक १३, पृष्ठ २११
२ नागार्जुन : बाबा बटेसरनाथ, पृष्ठ ११

तक चलती है । तदनन्तर वह और उसका साथी जागकर काम में लग जाते हैं। किसानों का संगठन बरगद की ममता को लेकर आरम्भ होता है । प्रगतिशील युवक जीवनाथ भी जैकिसुन के साथ आकर किसान-आन्दोलन में भाग लेता है और कर्मठता से नेता बन जाता है । एक अन्य पात्र है दयानाथ, जिसकी आस्था यद्यपि कांग्रेस में है, किन्तु वह भी किसानों के साथ आ मिलता है । संघर्ष तूल पकड़ता है । नीलाम्बर मुजफ्फरपुर में इनकमटैक्स आफीसर है । वह अपने प्रभाव से जिले के अधिकारियों को किसानों के विरोध में अपनी ओर मिला लेता है। कांग्रेसी भी किसानों से कन्नी काटते हैं और 'कांग्रेसियों का स्वार्थी रुख देखकर जोटू का दिल उनकी ओर से कटने लगा ।' किसानों के विरुद्ध षड्यन्त्र रचे जाते हैं । और बेगुनाह अन्याय का शिकार होते हैं । पाठक के षड्यन्त्र से डेढ़ सौ रुपये में गूँगे की हत्या कर दी जाती है और जो पाँच व्यक्ति गिरफ्तार किये जाते हैं, उनमें जैकिसुन और जीवनाथ भी हैं । जनवादी नौजवान संघ के जिला कमेटी के प्रेसिडेन्ट श्यामसुन्दर वकील किसानों की सहायता करते हैं । किसानों का एक संयुक्त मोर्चा बनाने पर जोर दिया गया है, जो शोषकों का प्रतिरोध करे । जोटू के नेतृत्व में गाँव वाले मोर्चा बनाते हैं और धन एकत्र करते हैं । अपनी समस्याओं के हल करने की योजना वे स्वयं बनाते हैं ।

इस प्रकार साम्यवाद के प्रतिपादन के लिए ही उपन्यास में किसानों के व्यापक संघर्ष की कल्पना की गयी है, जो राजनीतिक उद्देश्य को स्पष्ट करती है । इसके लिए जो कथानक चुना गया है, उसमें शिल्पगत प्रयोगात्मकता का वैशिष्ट्य और राजनीतिक उद्देश्य दोनों हैं । उपन्यास का अन्त भी साम्यवादी नारा 'स्वाधीनता ! शान्ति ! प्रगति !' के साथ होता है ।

बटवृक्ष की कहानी वास्तव में देहाती जीवन के क्रमिक ऐतिहासिक विकास की कहानी है । बाबा बटेसरनाथ जैकिसुन को विघ्न बाधाओं से जूझते हुए अपना मार्ग प्रशस्त करने का मन्त्र दे उसमें सामूहिक चेतना का स्पन्दन भरता है । वह अपनी कहानी के मिस भूमिजीवी तथा श्रमजीवी जनता के जीवन की शोषण कथा सुना उसे अन्याय का विरोध करने और नवीन व्यवस्था स्थापित करने की प्रेरणा देता है । वस्तुतः बटेसर बाबा लेखक की मान्यताओं का ही प्रतिनिधित्व करते हैं और ये मान्यताएँ मार्क्सवादी चिन्तन का परिणाम हैं । डॉ० सुषमा धवन के शब्दों में 'नागार्जुन का स्पष्ट शब्दावली में समाजवादी विचारों का प्रचार प्रसार करना इस रचना को कला की दृष्टि से हीन चाहे बना देता है, परन्तु उनका यह प्रयास मार्क्सवादी चिन्तन के गहरे प्रभाव का परिणाम है ।'[1]

---

१. डॉ० सुषमा धवन : हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ ३०६

'बाबा बटेसरनाथ' राजनीतिक उपन्यास है और उसकी समीक्षा उसके विशिष्ट तत्वों के आधार पर ही की जानी चाहिए। हिन्दी के समीक्षक पूर्वग्रह से जो समीक्षाएँ करते है, वे इसीलिए एकांगी होती है। जो उपन्यास मे राजनीतिक सस्पर्श का चटकीला स्वरूप स्वीकार नहीं करते, वे ही यह कह सकते हैं कि लेखक की नग्न रूप मे राजनीतिक पक्षधरता उसकी कला को कुठित कर देती है। सकेत और व्यजना का महत्व उपन्यास मे क्षीण पड जाता है।[1] राजनीतिक उपन्यास मे देखना यह चाहिए कि लेखक जिस राजनीतिक उपन्यास में देखना यह चाहिए कि लेखक जिस राजनीतिक उद्देश्य को प्रकट करना चाहता है वह स्पष्ट हुआ है अथवा नही ? और उसे अभिव्यक्ति देने मे कथानक और चरित्र उद्देश्य के स्पष्टीकरण में कहाँ तक साथ देते है ? अपने समग्र रूप मे उपन्यास ने यथार्थवादिता का कहाँ तक निर्वाह किया है ? इस कसौटी पर नागार्जुन का आलोच्य उपन्यास खरा उतरता है।

यथार्थवाद की आधारशिला पर प्रस्तुत कृति का मूल्यांकन करते हुए त्रिभुवन सिंह ने लिखा है : 'जहाँ तक कथा की स्वाभाविकता का प्रश्न है, बात समझ मे नही आती कि नागार्जुन जी ऐसे अपने को यथार्थवादी लेखक कहने वाले किस प्रकार भूत प्रेत के चक्कर मे पड गये। ऐसा लगता है कि उन्होंने भारतीयों की स्वाभाविक दुर्बलता 'भूतों के विश्वास' से नाजायज फायदा उठाना चाहा है'।[2]

भारतीय अशिक्षित ग्रामीण यदि भूत प्रेत पर अडिग विश्वास करते हैं और उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कोई यथार्थवादी लेखक उसका चित्रण कर देता है तो वह यथार्थ का ही अकन करता है। यह एक सीधी-सी बात है। प्राचीन वटवृक्ष पर ब्रजदेव के निवास का विश्वास ही भारतीय ग्रामीणो का यथार्थ है और उस यथार्थ की रक्षा स्वप्न की कल्पना से लेखक ने की है। त्रिभुवन सिंह भारतीयों के इस विश्वास को तो मान्यता देते हैं कि वटवृक्ष शांति तथा शरण का प्रतीक है, पर उनके दूसरे विश्वासों को भुला देते हैं। उनके ही शब्दों मे—'कला की दृष्टि से, वटवृक्ष जो असख्य भारतीयों के विश्वास और शान्ति तथा शरण का प्रतीक है, इसका चुनाव उपन्यासकार की मार्मिक एवं अत्यन्त सूक्ष्मता की परख का द्योतक है।'[3]

राजनीतिक तथ्य

आलोच्य उपन्यास की कथावस्तु कल्पना प्रसूत होने पर भी मेउस अनेक साम-

---

१ आलोचना, अक १५, पृष्ठ ८२

२. त्रिभुवन सिंह : हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृष्ठ २१९

३. त्रिभुवन सिंह - उपन्यास और यथार्थवाद, पृष्ठ २११

यिक राजनीतिक तत्व समाविष्ट है। इसके अन्तर्गत विदेशी राज्य की स्वार्थपरता, जमींदारों की स्वेच्छाचारिता एवं निरंकुशता, विभिन्न राजनीतिक आन्दोलनों, कांग्रेसी शासन की स्थिति और जमींदारी-उन्मूलन की घटनाएँ आती हैं। लेखक ने जमींदारी उन्मूलन के पश्चात् की समस्त परिस्थितियाँ स्वयं देखी हैं और उन्हें चित्रित किया है। जमींदारी-उन्मूलन होने के समय जमींदारों ने परती, चरागाह तथा सार्वजनिक उपयोग के वृक्षों और पोखरों को बेचकर किस प्रकार रुपया बनाया, यह किसी से छिपा नहीं है। लेखक ने इनका सूक्ष्म चित्रण किया है। इन्हें प्रसंगों को लेकर उसने वर्तमान शासन व्यवस्था के प्रति अनास्था तथा समाजवादी व्यवस्था के प्रति आस्था का भाव व्यक्त किया है।

वरुण के बेटे

लघुकाय उपन्यास 'वरुण के बेटे' में नागार्जुन ने मिथिला के मछुओं और उनके जीवन संघर्ष का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है। उनके सामाजिक जीवन का अंकन करते समय राजनीतिक हलचलों का सन्निवेश कर साम्यवादी विचारों की अभिव्यक्ति की गयी है।

कथानक के अनुसार तीस पैंतीस परिवार वाले मछुओं की बस्ती है। मलाही-गोंढ़ियारी और जीवनाधार है गरोखर। गरोखर और उसमें पश्चिम कोस भर का इलाका बेगुरा के मैथिल जमींदारों के अधिकार में था। कभी वे खानदानी शासक थे पर अब जमींदारी-उन्मूलन कानून के मुताबिक रैयतों से जमीन का लगान या मालगुजारी वसूल तहसील करने के हकों से मौकूफ हो चुके थे। भू स्वामियों को कानून ने खुली छूट दे दी जिसके फलस्वरूप वे पोखरों और चरागाहों को चुपके-चुपके बेचने लगे। मलाही गोंढ़ियारी के मछुआ इन कृत्यों के विरोध का संकल्प करते हैं। मोहन कहता है 'यह पानी सदा से हमारा है, किसी भी हालत में हम इसे छोड़ नहीं सकते। पानी और माटी न कभी बिके हैं, न कभी बिकेंगे। गरोखर का पानी मामूली पानी नहीं, यह तो हमारे शरीर का लहू है। जिन्दगी का निचोड़ है।'[1]

गरोखर के नये खरीददार हैं सुगधरा के जमींदार, जो गढ़पोखर को नये सिरे से बन्दोबस्ती दे ज्यादा रकम बटोरना चाहते थे। मछुए इसका विरोध करते हैं और दफा १४४ के सम्मन मिलने से उनमें चेतना आती है। मछुओं के सहयोगी हैं मोहन माँझी—एक कर्मठ साम्यवादी नेता। मछुओं के दुःख-सुख के साथी। वे मछुओं से किसान सभा के सदस्य बनने की सलाह देते हैं। वे कहते हैं 'गढ़पोखर आपके हाथों से न निकले,

१ नागार्जुन वरुण के बेटे

इसके लिए हमें एक जुट होकर कोशिश करनी होगी। इस संघर्ष में निसार महाजन नहीं, किसान सभा जैसी जुझारू जमात ही आपकी सहायता कर सकती है।'[2] निसार महाजन कांग्रेस-समर्थित है और गढ़पोखरवाले जमींदार उनके नेता फूलबाबू प्रसाद सौंधी को मिला लेते हैं। अधिकारियों के सहयोग से वे गढ़पोखर पर अधिकार पाने का यत्न करते हैं। अवसरवादी प्रगतिशील विचार के ये और मोहन से मिल कर वे गढ़पोखर की दलबन्दी का पक्ष छोड़कर मछुओं का समर्थन करते हैं।

इसी बीच बाढ़ आती और बाढ़-पीड़ितों के लिए एक सेवा-शिविर प्रारम्भ किया गया। मोहन के साथ माधुरी भी कैम्प में जुट गयी। माधुरी जो कभी नगर की सेविका थी, ससुराल के अत्याचारों से तंग हो गाँव लौट आयी थी। बाढ़-पीड़ित वर्षा से बचने के लिए रेलवे स्टेशन पर खड़े खाली डिब्बों में शरण लेते हैं। डिब्बों को खाली करने के प्रश्न को लेकर संघर्ष की स्थिति निर्मित होती है। बाढ़-पीड़ित हटने को तैयार नहीं होते और मोहन के प्रयत्नों से कलेक्टर के आदेश से उनकी जीत होती है।

इधर गढ़पोखर के मामले में देवुरा के जमींदारों ने फूट पैदा कर दी और गणा माहली के असर से मछुओं में दो दल हो गये। बाढ़-पीड़ितों का काम समाप्त हो गया था और इस नयी स्थिति का सामना करने के लिए मछुआ संघ बना-संघ वाले गाँव के सत्तर मेम्बरों का संगठन। मोहन गढ़पोखर के अपने सनातन अधिकारों की मान्यता के प्रश्न को देश की आम मेहनतकश जनता की सामान्य जद्दोजहद से संयुक्त कर देता है। इधर प्रगति-विचारी का स्थानान्तरण करवा दिया जाता है क्योंकि वह ईमानदार और सत्य का समर्थक है। जनपद के जमींदारों ने पुनः दफा १४४ लागू करवा दी और पोखर की मछलियाँ निकालने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। किन्तु मछुए भला कहाँ मानते! मछुओं पर लूट और गैरकानूनी कार्रवाइयों का अभियोग लगाया गया। जाँच के लिए एक डिप्टी मजिस्ट्रेट आते हैं, पर उस गाँव के लोग बाहर थे। दो-चार व्यक्ति और मधुरी मिलते हैं, जो कोई आश्वासन नहीं देते। मधुरी की प्रेरणा से गाँव के लोग उसके साथ ही पुलिसवैन में स्वयं बैठ जाते हैं—अपने को स्वेच्छा से गिरफ्तार करा देते हैं। नारे लगते हैं...'मछुआ संघ जिन्दाबाद...हम भी लड़ाई जीतेंगे।'

राजनीतिक पात्र

उपन्यास का प्रमुख राजनीतिक पात्र है मोहन माँझी। साम्यवादी ग्रामीण कार्यकर्ता। राष्ट्रीय स्वाधीनता-संग्राम का एक अदना सा सिपाही, जो स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व तीन बार कांग्रेस के अनुयायी के रूप में कारावास भुगत चुका है। स्वाधीनता के बाद

२. नागार्जुन : वरुण के बेटे, पृष्ठ २१

कांग्रेस के कार्यों में अरुचि होने पर अब वह है हँसिया-हथौड़ा मार्का लाल झण्डे वाली किसान-सभा का थाना सभापति और गाँवों में 'नेता जी' के रूप में लोकप्रिय। नेता जी की वेश-भूषा और रहन-सहन ठेठ देहाती है 'आधी बाँहों की कोकटी कमीज! मामूली सूता की मटमैली धोती। खादी थैला बाँह से लटक रहा था। पैरों के नाखून बड़े-बड़े और बेकाबू। चेहरा गोल, पेशानी चौड़ी। लाल-लाल छोटी आँखों में काली पुतलियाँ सुन नाच रही थीं।'[1] मछुओं के साथ उनके संघर्ष में सहयोगी बन कर उसका चरित्र विकसित हुआ है।

राजनीतिक महिला चरित्र के रूप में मधुरी का चरित्रांकन पूर्णतया नहीं उभर सका है। उपन्यास के पूर्वार्द्ध में मंगल और मधुरी का निर्मल प्रणय प्रसंग के महत्वपूर्ण होने से मधुरी का प्रेमिल स्वरूप ही सामने आया है। परिस्थितिवश मंगल और मधुरी का विवाह अन्यत्र हो जाता है और मधुरी की सात्विक प्रेम भावना का परिचय हम उसके इस कथन में मिलता है 'देखो मंगल, धूल मिट्टी के बचपने खेल हम काफी खेल चुके। सयाने समझ कर माँ-बाप और सास-ससुर ने तुम पर जो जिम्मेदारी सौंपी है, उससे जी चुराना कायरता होगी। तुम्हें अपनी घरवाली के प्रति वफादार होना है, मुझे अपने घरवाले के प्रति। गाँव-गवई के हम सीधे-सादे लोग ठहरे। हमारा प्रेम-नगर समाज में अलग या इसके बाहर नहीं आबाद हुआ। मैं तुम्हारा घर बर्बाद नहीं करना चाहती मंगल, मैं नहीं चाहती कि एक औरत की सिंदूर-माँग पर अपने अंध स्वार्थ की कालिख पोतती हूँ।'[2]

मधुरी ससुराल में प्रताड़ित हो उससे नाता तोड़ सेवा भाव की प्रबल भावना से सामाजिक राजनीतिक जीवन में प्रवेश करती है और मछुआ संघ में संघर्ष की प्रमुख पात्र बन जाती है। डिप्टी मजिस्ट्रेट कहते है—'मोहन माँझी ने आखिर तुम्हें भी कम्युनिज्म का पाठ पढ़ा ही दिया। अच्छा तो है राजनीति ही तो एक चीज थी, जिसे गाँवों की हमारी बहू बेटियों ने अपने पास फटकने नहीं दिया था लेकिन तुमको देखता हूँ प्लीज एक्सक्यूज मी और साहब ने गोल्ड फ्लेक सिगरेट निकाला।'[3]

मधुरी का चारित्रिक विकास संकेतात्मक ढंग से अभिव्यक्त किन्तु अपने में सम्पूर्ण हुआ है। राजनीतिक उपन्यासों में मधुरी जैसे नारी पात्र अत्यन्त विरल हैं।

---

१ नागार्जुन वरुण के बेटे, पृष्ठ ३०

२ नागार्जुन : वरुण के बेटे, पृष्ठ ४६

३ नागार्जुन . वरुण के बेटे, पृष्ठ ११२

राजनीतिक तथ्य

'वरुण के बेटे' में निम्नलिखित राजनीतिक तथ्य मिलते हैं—

(१) जमींदारी-उन्मूलन और उसकी प्रतिक्रियाएँ।

(२) कोसी प्रोजेक्ट और योजनान्तर्गत व्याप्त भ्रष्टाचार।[1]

(३) कांग्रेसी नेताओं और दिखावटी श्रमदानियों पर व्यंग।

कोसी प्रोजेक्ट को लेकर श्रमदान का ढोंग रचने वालों का अच्छा चित्र खींचा गया है। एक स्थल पर कहा गया है "खाते-पीते परिवारों के शौकिया श्रमदानी सज्जनों की शान ही और थी। उनकी सुविधा के सभी साधन कोसी किनारे जुट गये थे। कैमरावालों की भरमार थी, हाँ, पास-पड़ोस के परिचित कांग्रेसी नेताओं की सिफारिश से व पटना या दिल्ली से आये हुए किसी ऊँचे पदाधिकारी के साथ भीड़ में खड़े हो जाते और फोटो खिंच जाती। इन लोगों का श्रमदान क्या था, बैठे-ठाले का अच्छा-खासा मनोरंजन था।"[2]

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने अत्यन्त ही मौलिक उद्‌भावना की है। आज तक किसानों, मजदूरों, मिल मालिकों आदि की अनेक समस्याओं का चित्रण तो अनेक उपन्यासकारों ने किया है, किन्तु मछुओं की जिन्दगी, जिसे एक प्रकार से हम स्वाधीन जिन्दगी कह सकते हैं, अपने जलाशय के अधिकार के संरक्षण हेतु प्रथम बार कटिबद्ध दिखाया गया है। लेखक की वर्ग संघर्षीय भूमिका किसान-मजदूरों से उठकर आदिवासी जिन्दगी तक बिखर जाती है।

कृति का शीर्षक 'वरुण के बेटे' अत्यन्त ही मौलिक, आकर्षक एवं सार्थक है। जहाँ जलजीवी जातियाँ अपने सामान्य जीवन के साथ हमारे सम्मुख आ खड़ी होती हैं, वहीं जलाधिकार के अर्थ में वरुण के बेटे जल के स्वामी वरुण देवता का आभिजात्य भी लेकर अपनी सत्ता की प्रत्यक्ष घोषणा करते हैं। सचमुच जीविका का अधिकार सर्वहारा वर्ग की अपनी समस्या है। लेखक ने अपनी वर्ग संघर्षीय भावना को असामाजिक सामाजिक तत्वों तक विस्तृत कर दी है।

उग्रतारा

उग्रतारा नागार्जुन का नवीनतम उपन्यास है, जिसमें वैधव्य जीवन और नारी की विवशता का चित्रण है। यह एक विधवा नारी की संघर्षभरी कहानी है, जो विषम परिस्थितियों से जूझती हुई अन्त में अपने उद्देश्य में सिद्धि प्राप्त कर लेती है।

---

१. नागार्जुन वरुण के बेटे, पृष्ठ १५

२. नागार्जुन : वरुण के बेटे, पृष्ठ ३५-३६

उगनी गांव की एक ऐसी ही बालिका है, जो विवाह के बाद ही विधवा हो जाती है। नर्मदेश्वर की पत्नी, जिसे वह भाभी कहती है, उसमें नवीन चेतना का संचार करती है और वह कामेश्वर को तैयार करती है कि वह उससे सम्बन्ध स्थापित कर एक नवयौवना का उद्धार करे। इसी बीच गांव के प्रतिक्रियावादी तत्वों द्वारा दोनों के विरुद्ध कार्यवाही कर दी जाती है और दोनों जेल पहुँच जाते हैं। उगी जेल से निकलती है और एक अजीब स्थिति में जेल के सिपाही भभीखन सिंह की घरवाली बन जाती है। उगी इस बेदमी की जिन्दगी को एक अनावश्यक बोझ की तरह होती है, पर उसका अन्तःकरण उसे स्वीकार नहीं करता। वह भभीखन सिंह को पितृवत् ही मानती है।

भभीखनसिंह ने भंग पिलाकर उसके साथ बलात्कार किया और गर्भवती हो गयी। फिर भी समय पाकर वह अपने पूर्व प्रेमी कामेश्वर के साथ भाग आयी। यहाँ आकर उगी ने जो पत्र भभीखनसिंह को दिया, वह उसके चरित्र को निखार देता है।

इस लघुकाय उपन्यास में पात्रों की संख्या कम होने पर भी पात्रों का वर्णन अपने आपमें परिपूर्ण है।

समाजवादी चेतना से आपूरित यह उपन्यास समाज की समस्याओं और जटिलताओं पर प्रकाश डालता है। उगनी इस चेतना का प्रतीक है और 'रतिनाथ की चाची' गौरी का स्फूर्तिदायक नूतन रूप है। विधवा गौरी ने चमाइन से पेट हल्का करवा लिया था, किन्तु उगी अपने पेट जाये के साथ उस व्यक्ति का साथ छोड़ देती है, जिसे उसने मन से कभी पति स्वीकार नहीं किया।

निष्कर्ष

नागार्जुन के राजनीतिक उपन्यासों की अनेक विशिष्टताएँ हैं। वे राजनीतिक आंचलिक उपन्यास की दृष्टि से अप्रतिम हैं। राजनीति से प्रभावित लोक-जीवन की झाँकी को वहीं की बोली-बानी के माध्यम से कलात्मक सज्जा प्रदान करने में उन्हें पर्याप्त सफलता मिली है। उनके उपन्यासों में मिथिला के ग्रामों, वहाँ के निवासियों की मन-स्थिति, प्राचीन रूढ़ियों, जमींदार किसान-संघर्ष और नयी राजनीतिक चेतना के साथ प्राकृतिक चित्रण का अंकन कुशलता से हुआ है। उन्होंने जहाँ सामंती जीवन-विधि एवं पूँजीवादी हथकंडों पर प्रहार किया है, वहाँ कांग्रेस, समाजवादी तथा अन्य राजनीतिक दलों के नेताओं की वैयक्तिक दुर्बलताओं का चित्रण भी किया है। ऐसा करते समय समाज के प्रति, व्यक्ति के संकुचित स्वार्थों के प्रति उनकी दृष्टि व्यंग्यात्मक रही है। यही कारण है कि उनके उपन्यासों में सामाजिक राजनीतिक स्थिति के जीवन्त चित्र मिलते हैं।

आकार की दृष्टि से नागार्जुन के उपन्यास जैनेन्द्र के उपन्यासों के समान लघु-

वाय हैं। किन्तु जैनेन्द्र की अपेक्षा इनके उपन्यासों में राजनीतिक तत्व अधिक मुखरित हुए हैं। उनमें वर्तमान की वास्तविकता को वाणीबद्ध करने का आग्रह है। वस्तु-विधान की दृष्टि से उनकी अभिरुचि आभिजात्य से सामान्य के प्रति है, जो उनके उपन्यासों को वादसापेक्ष समाजवादी श्रेणी में विन्यस्त करती है। जैनेन्द्र में आभिजात्य का विरोध नहीं है पर नागार्जुन इसी उपन्यास के आभिजात्य, उपासना की विरोधक प्रवृत्ति से प्रभावित हैं। प्रेमचन्द के समान नागार्जुन ने संघर्षशील ग्रामीण जनता को अभिव्यक्ति दी है। किन्तु विशिष्ट राजनीतिक मतवाद के प्रभाव में वे प्रेमचन्द जैसी सहानुभूति नहीं प्रदान कर सके हैं। यह सत्य ही कहा गया है कि 'नागार्जुन में प्रेमचन्द से बढ़कर अध्ययन की गहराई है, लेकिन उतनी सहानुभूति नहीं है, जितनी प्रेमचन्द में है।'[1] प्रेमचन्द की अपेक्षा नागार्जुन के उपन्यासों का गठन दृढ़ है और विषय विविधता की दृष्टि से विषयानुसार विस्तार कर संतुलन का प्रयत्न किया गया है। मार्मिक प्रसंगों को नाटक के दृश्य के समान प्रस्तुत करने के साथ-साथ प्रसंगों को परस्पर सम्बद्ध करने का सूत्र बनाकर कथानक को शृङ्खलाबद्ध करने से कथा की एकसूत्रता नहीं टूटती और वाञ्छित प्रभाव की सृष्टि होती है। नागार्जुन ने निम्नवर्गीय जनता को आर्थिक-सामाजिक संघर्षों में जूझते देखा है और सार्वजनिक जीवन की विकृतियों का यथार्थपरक अंकन साम्यवादी दर्शन की आधारशिला पर किया है। मार्क्सवादी दृष्टि होने पर भी सौम्यतासहित समस्याओं के हल की ओर भी उन्होंने ध्यान दिया है। 'नयी पौध' में ढलती पीढ़ी समाज के अनुमोदन की आड़ में असंगत विवाह का षड्यन्त्र रचती है, पर नयी पीढ़ी के प्रगतिशील तरुण उसका—याने सामाजिक परम्परा का विरोध कर बिसेसरी का विवाह योग्य वर से कर देते हैं।

इतना होने पर भी सामाजिक दुराचारों के विधान करते समय वे पूर्णतया निरपेक्ष नहीं रह सके हैं और किसी भी राजनीतिक उपन्यासकार के लिए यह आवश्यक भी नहीं है। उन्होंने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए आवश्यकतानुसार प्रत्यक्ष आलोचना की है। 'रतिनाथ की चाची' और 'बलचनमा' में ऐसे प्रसंग यद्यपि कम हैं, किन्तु अनेक स्थलों पर लेखक का आलोचनात्मक व्यक्तित्व उभर ही गया है। यथार्थवादिता के समुचित निर्वाह के लिए ऐसा करना आवश्यक भी था। राजनीतिक यथार्थ के चित्रण के कारण उनके उपन्यासों में बौद्धिकता का अंश अपेक्षाकृत अधिक है। 'बलचनमा' में तर्क की प्रबलता का एकमात्र कारण यही है। उनके उपन्यासों में राजनीतिक मन्तव्यों के उद्घोष बड़ी संख्या में प्राप्त हैं और इसीलिए राजनीतिक उपन्यासों की प्रवृत्ति से अपरिचित समीक्षक के अनुसार 'बड़ी समृद्ध सामग्री लेकर भी नागार्जुन अपने मतवादों के कारण ऐसे

१. डॉ० गणेशन . हिन्दी उपन्यास-साहित्य का अध्ययन, पृष्ठ ८३

चरित्रों तथा स्थितियों की सर्जना नहीं कर पाये, जो पाठक के मन को अभिभूत कर लें। वरन् कहीं कहीं उनके निरूपण आर्थिक, राजनीतिक एवं समाजशास्त्रीय विश्लेषण के धरातल पर उतर आये हैं।'[1] 'उग्रतारा' में नागार्जुन ने उपन्यास लेखन की नयी तकनीक अपनायी है। मनोविश्लेषणवादियों की भाँति किसी विशेष प्रसंग या समस्या को लेकर पात्रों के व्यक्तिगत अन्तर्द्वन्द्वों का चित्रण भी अपनी यथार्थवादी शैली में पर्यवसित कर लिया है। इसे हम मनोवैज्ञानिक चित्रण की विशिष्ट यथार्थवादी शैली कह सकते हैं। लेखक ने ऐसे मनोवैज्ञानिक व्यक्तिगत चित्रणों को कोष्ठकबद्ध कर दिया है।

समाजवादी चेतना से युक्त भैरवप्रसाद गुप्त के उपन्यास

नयी पीढ़ी के उपन्यासकारों में नागार्जुन, भैरवप्रसाद गुप्त और अमृतराय के उपन्यासों में अधुना समाज व्यवस्था की पृष्ठभूमि में आर्थिक एवं राजनीतिक संघटन की कथा अभिव्यंजित है। इन 'नयी' के उपन्यासों में सामाजिक विसंगतियों की व्यंजना समाजवादी चिन्तन से युक्त है और इसीलिए इनके प्राय: समस्त राजनीतिक उपन्यास वाद-सापेक्ष हैं। तीनों केवल उपन्यासकार ही नहीं, अपितु उनका साम्यवादी दल से भी निकट का सम्पर्क रहा है और तीनों ने ही प्रगतिशील साहित्य को नई दिशा दी है। संख्या की दृष्टि से सर्वाधिक उपन्यास नागार्जुन ने लिखे हैं, किन्तु पृष्ठों की दृष्टि से भैरवप्रसाद गुप्त ने।

मशाल

'मशाल' गुप्त जी का प्रथम राजनीतिक उपन्यास है, जिसका नायक नरेन ग्राम्य जीवन का प्रतीक है। नरेन का विकसनशील चरित्र गाँव की सीमित परिधि में संघर्षशील हो अग्रसर होता है। अल्पायु में ही पिता की मृत्यु हो जाने के कारण वह अपनी माँ के साथ चाचा के यहाँ पोषित होता है। उसके चाचा रूढ़िवादी हैं और वे नरेन को भी रूढ़िगत परम्परा के अनुसार परिचालित करना चाहते हैं। इस पारिवारिक स्थिति से नरेन के जीवन में विद्रोह-भावना प्रस्फुटित होती है और विषम आर्थिक परिस्थिति उसे अर्थोपार्जन के लिए घर छोड़ने को बाध्य करती है। नरेन माँ की ममता और मुँह-बोली सकीना भाभी के निश्छल स्नेह के बंधनों को झटक कर सेना में भरती होता है। यह द्वितीय महायुद्ध का समय था और बदलती हुई राजनीतिक परिस्थितियों के चक्र में पड़कर वह आज़ाद हिन्द सेना का सिपाही बनकर कालान्तर में गाँव वापस होता है।

---

१ महेन्द्र चतुर्वेदी : हिन्दी उपन्यास : एक सर्वेक्षण, पृष्ठ २०८

लौटने पर वह गाँव और परिवार को उजड़ा हुआ पाता है। माँ की मृत्यु हो जाती है और भाभी नृशंस अत्याचारियों के हाथों में पड़ कर जाने कहाँ पहुँच जाती है। इस अप्रत्याशित आघात से कुण्ठित नरेन परिस्थितियोंवश मजदूरों के बीच आ पहुँचता है और उसके निराश जीवन में समाजवादी चेतना का उद्भव होता है। शोषित साथियों के बीच वह अपने अभावों को भूलकर संघर्ष में जुट जाता है। उनके बीच कार्य करके वह श्रम की गरिमा और शक्ति की अनुभूति से जहाँ एक ओर साहस का सचय करता है, वहीं दूसरी ओर श्रमिक वर्ग की सच्ची मानवता से अभिभूत भी होता है। इस प्रसंग में गुप्त जी ने मजदूरों के जीवन में आर्थिक विपन्नता, साहस सगठन-शक्ति, पारस्परिक सहयोग और व्यापक सहानुभूति के जो चित्र संजोये हैं, वे प्रभावोत्पादक एवं सजीव हैं। उपन्यास के सभी प्रमुख राजनीतिक पात्र साम्यवादी हैं। मजूर की दृष्टि में श्रम की राह ही जिन्दगी की राह है। मजूर इस तथ्य से अवगत होता है, 'हमने यह दुनियाँ बनायी है। दुनियाँ की हर चीज हमारी ताकत से बनी है। दुनियाँ की हर चीज हमारी है। लेकिन दुनियाँ के चन्द सरमायादारों ने इन चीजों पर अपना नाजायज हक जमा रखा है, हमें बेवकूफ बना कर। वे हमसे गुलामों की तरह काम करते हैं और हमारी मिहनत की कमाई पर गुलछर्रे उड़ाते हैं।'[1] लेखक का यह कथन मार्क्सवादी मूल्य के सिद्धान्त से प्रतिध्वनित है। साम्यवाद से प्रभावित ऐसे भाव एवं विचार अनेक स्थलों पर मिलते हैं। ये सारे नरेन की चेतना को नूतन पथ दिखलाते हैं। इधर सयोगवश नरेन का मिलन सकीना से हो जाता है। लेखक ने सकीना को केन्द्र बनाकर जो कहानी प्रस्तुत की है, वह सामाजिक विषमता के प्रति विद्रोह और तीव्र घृणा की भावना सचारित करती है। साहब का प्रसंग भी सामाजिक विषमता के पक्ष का उद्घाटन करता है।

इस तरह कथानक की मूल भावना साम्यवादी चेतना की अभिव्यक्ति देनी है और इसके लिए श्रमिक वर्ग के संघर्ष का विस्तृत चित्रण किया गया है, जो कानपुर के ऐतिहासिक मजदूर आन्दोलन की प्रतिच्छाया है। 'मशाल' की भूमिका में कहा भी गया है—"मजदूरों के इस संयुक्त मोर्चे की आवाज कानपुर के मजदूर-आन्दोलन के इतिहास में सदा अमर रहेगी। आठ मजदूर शहीद और सत्तर घायल मजदूरों के लाल खून से कानपुर के मजदूरों ने जो जगी एकता और क्रान्तिकारी संयुक्त मोर्चे की मशाल जलायी है, वह कभी न बुझेगी। उसकी लाल रोशनी धीरे-धीरे सारे हिन्दुस्तान में फैल जायगी और जनता के सभी शोषित वर्गों को भी इन्कलाबी रास्ता दिखायेगी।' यहाँ रूसी साम्यवादी दल की प्रगतिशील रूपरेखा का स्पष्ट प्रभाव है। उपन्यास में यही इन्कलाबी रास्ता दिखाने का प्रयत्न किया गया है और परिणामतः मजदूर सभाओं व हड़तालों

---

१. भैरवप्रसाद गुप्त : मशाल, पृष्ठ १०८

के चित्र अंकित किये गये है, जो लेखक की बौद्धिक सहानुभूति के ही परिचायक है। विषय और अभिव्यक्ति की दृष्टि से यह समाजवादी यथार्थ का उपन्यास है और श्रमिक वर्ग की बढती हुई शक्ति को अभिव्यक्ति देता है। उद्देश्य की दृष्टि से घटनाओ और पात्रों का चयन श्रमिक मजदूर वर्ग से किया गया है, तथापि द्वितीय महायुद्धकालीन भारतीय जीवन को लेकर मध्यवर्गीय समाज की सामाजिक आर्थिक जिन्दगी पर प्रकाश डाला गया है।

उपन्यास मे राजनीतिक उद्देश्य ही प्रमुख है और उसी के अनुरूप शैली, शिल्प और चरित्रांकन किया गया है। राजनीतिक नीरसता को भाभी के प्रसग की उद्भावना से सरस बनाने की चेष्टा भी की गयी है और इससे उपन्यास मे स्निग्धता भी आयी है।

गगा मैया।

अपने द्वितीय उपन्यास *'गगा मैया'* मे भैरवप्रसाद ने उत्तर भारत के कृषक-जीवन और जीवन-सघर्षो का प्रगतिवादी दृष्टिकोण से अकन किया है। इसमे ब्यौरेवार सश्लिष्ट चित्रो से बलिया जिले का एक गाँव सजीव हो उठा है।

सघर्षशील जीवन को चित्रित करने के लिए इस लघुकाय उपन्यास का आरम्भ नवयुवक किसानो के शारीरिक बल-प्रदर्शन से होता है। उनका कुश्ती लड़ना, प्रति-द्वन्दियों से स्पर्धा आदि आरम्भ मे जहाँ शारीरिक बल का परिचय देते हैं, वहाँ बाद मे मानसिक शक्ति को पुष्ट करते हुए उन्हे सघर्ष की प्रेरणा देते है। गोपी और मटरू के दो परिवारो के जीवन-व्यापारो के चित्रण से कथानक का विस्तार होता है। मटरू का जीवन उपन्यास का केन्द्र है। नायक के रूप मे मटरू परिस्थितियो से पराजित न हो निरन्तर सघर्ष करता रहता है। उनका आत्मविश्वास, साहस, दृढ निश्चय, शोषण के प्रति विद्रोह—समाजवादी यथार्थ के धरातल पर चित्रित हुआ है और उपन्यासकार ने मटरू के माध्यम से अपने विचारो को अभिव्यक्ति दी है।

कथावस्तु के अनुसार गोपी का संयुक्त परिवार कृषि से जीवन यापन करता है। कठोर परिश्रम के बाद भी दु:ख से छुटकारा नहीं होता। परिस्थितियोवश गोपी के बडे भाई मानिक की मृत्यु, पत्नी की मृत्यु, उसकी जेलयात्रा और परिणाम स्वरूप विधवा भाभी और असहाय माता-पिता के कष्टमय जीवन की अभिशप्त रूपरेखा है।

जेल मे गोपी का परिचय मटरू से होता है और कालान्तर मे घनिष्ठ प्रेम मे परिवर्तित हो जाता है। मटरू सच्चा और धर्मी किसान है। वह अपने कृत्यो से धरती और गगा मैया का सच्चा सपूत सिद्ध होता है। उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व पददलित तथा आपद्ग्रस्त लोगो के प्रति सहानुभूति से सन्दिग्ध है। उसकी विरोधिनी प्रवृति को कुचलने के लिए जमींदार पुलिस अधिकारियो के सहयोग से उसे शोषण का शिकार बनाना

चाहता है। जमींदार की नजर उसकी उस भूमि पर है, जिसे उसने कठोर परिश्रम से उर्वरा बनाया है। उसका सम्पूर्ण जीवन गंगा की धरती पर आश्रित है। वह मानता है कि गंगा मैया के उत्पादन पर सबका समान अधिकार है, उसकी जय किसान की विजय है। श्रम पर उसकी आस्था है और अन्त में एकान्त जीवन व्यतीत कर वह तृप्ति करता है और जमींदार के षड्यन्त्र व पुलिस के अत्याचार के सम्मुख भी अस्तित्व को बनाये रखता है। कहा गया है कि मटरू गंगी का चिरमित्र रहा है, जो सामूहिक किसानों की जीवन का आधार बनाकर जमींदारों के अत्याचार के विरुद्ध सम्पूर्ण शक्ति से लड़ता है और विधवा नारी का पुनर्विवाह सम्पन्न कर सामाजिक मर्यादावादियों के प्रति अपने विद्रोह भाव का परिचय देता है।"[1]

मटरू धरती का लाल है और गंगा मैया का आंचल एक क्षण को भी नहीं छोड़ता, जैसे शिशु माँ का। वह मानता है कि 'गंगा मैया की छोड़ी जमीन पर जमींदार का क्या हक पहुँचता है कि वह उस पर मनमानी और लगान ले? जिसको जोतना-बोना हो, वह खुशी से आवे और उसी की तरह जांगर गारत करके जोते-बोवे।'[2] उस की स्पष्ट मान्यता है कि 'अगर हम लोग मनमाने रहें और जमींदारों का मुँह न ताक कर खुद ही इस धरती पर अपना अधिकार जमा लें तो ये जमींदार हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। गंगा मैया पर कोई उनका बपौती हक नहीं है।'[3] इस पर भी यदि जमींदार अपनी हरकतों से बाज नहीं आवे और शोषण का चक्र समाप्त नहीं करते तो उसका नारा है, 'जमींदारों ने अगर हमारे खेत उजाड़ी तो मैं उनकी आँखें फोड़ दूँगा।'[4] मटरू का दृढ़ संकल्प और उसके अनुरूप गंगा के विकराल किन्तु मनोहारी रूप का चित्रण उपन्यासकार की सूझ-बूझ का परिचायक है। जीवन-संघर्ष में जूझता मटरू इस निष्कर्ष पर पहुँचता है—'अपना एक मोर्चा बनाकर इस अन्याय का मुकाबिला करना ही पड़ेगा।'[5]

विधवा भाभी की करुण-कथा से मटरू व गोपी के भीषण जीवन में सरसता का संचार किया गया है। विधवा नारी का जीवन सजल एवं सूक्ष्म रेखाओं द्वारा अंकित है। भाभी का चरित्र चित्रण राजनीतिक नीरसता को दूर करता है। उसमें दुःख को सहन करने की अपार शक्ति है, अन्तर वह अपनी वेदना के साथ ही एकाकार

१. डॉ० सुषमा धवन : हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ ३११
२ भैरवप्रसाद गुप्त : गंगा मैया, पृष्ठ २८
३ भैरवप्रसाद गुप्त : गंगा मैया, पृष्ठ २९
४. भैरवप्रसाद गुप्त : गंगा मैया, पृष्ठ [illegible]
५. भैरवप्रसाद गुप्त : गंगा मैया, पृष्ठ ४३

हो गयी है। किन्तु गोपी सोचता है—'क्या यह ऐसे ही अपना जीवन बिता देगी ? क्या यह सचमुच उसे ही जीवन बिता देने देगा ? दुनिया के हर भाग में पतझड़ आता है, फिर बसन्त आता है। क्या भाभी के जीवन में एक बार पतझड़ आकर सदा बना रहेगा ? क्या फिर उसमें कभी बसन्त न आयेगा ? क्या फिर एक बार उजड़ा कभी बसन्त लाया ही नहीं जा सकता ?'[1] गोपी की रागात्मक भावना को कलात्मक ढंग से चित्रित किया गया है। लड़का गोपी और भाभी के विवाह का उल्लेख करता है—'क्या तू चाहता है मैं हूँ विधवा ? सारी दुनिया के सामने मुझपर उँगली उठाने कुछ लेकर खड़ा होगा।' गोपी के माता-पिता रूढ़िवादी हैं और 'रीति रिवाज और संस्कार की बूढ़ी जान से पीछे पड़ते हैं। उस घर की मर्यादा, इज्जत आबरू का ठिकाना है वैसे ही निबाहना रहते हैं, जैसा घर कब्र को ढँकता।'[2] भाभी के प्रस्ताव का विरोध करते हैं और साथ ही बिल्कुल ही भाभी दुखित हो, दुःख से पुनः आत्महत्या का प्रयास करती है। समाज ऐसा मानता है कि यह सड़क की सीढ़ी पर पहुँच जाती है, जो इस प्रकार सामाजिक गोपी के साथ उसका विवाह कर समाज का विरोध करता है। इस तरह गुप्त जी का उपन्यास साहस, निर्भयता और सामाजिकता का सन्देश देता है। गोपी का यह साहसी विवाह सदा के शब्दों में 'पुरानी रूढ़ियों और सारे विधवाओं का झगड़ा है।'[3]

इस लघुकाय उपन्यास में सुगठित कथानक का सूत्र स्वयं गंगा मैया की लीला है, जिसकी भी जीत है। इस आशय का स्वर पुस्तक के शब्दों से ध्वनित है, 'तुम्हारे साथी अपने खून की आखिरी बूँद तक उसकी रक्षा करेंगे। जिस तरह गुजरा जमाना फिर वापस नहीं आता, उसी तरह जमींदारों के उनके पैर वहाँ फिर कभी न जम पायेंगे। हमारा जोर दिन पर दिन बढ़ता जा रहा है।'[4] इस तरह गंगा मैया उपन्यास में नवीन उद्बोधन की प्रतीति है, जिसके आधार पर समाजवादी चेतना और उसके माध्यम से बदलने वाली सामन्ती प्रथा की भाँति प्रस्तुत करना ही उपन्यास का मूल उद्देश्य है, जो उपन्यास को यथार्थ-सापेक्ष बनाता है।

सती मैया का चौरा

भैरवप्रसाद गुप्त ने इस बृहदाकार उपन्यास में वर्ण्य वस्तु सामाजिक धरातल से

---

1. भैरवप्रसाद गुप्त : गंगा मैया, पृष्ठ ९०
2. भैरवप्रसाद गुप्त : गंगा मैया, पृष्ठ ९९
3. भैरवप्रसाद गुप्त : गंगा मैया, पृष्ठ १४१
4. भैरवप्रसाद गुप्त : गंगा मैया, पृष्ठ १५७

उठकर राजनीति के धरातल पर पर्यवसित होती है और अपनी समग्रता से सामाजिक चेतना को अभिव्यक्ति देती है। वस्तुत उपन्यास चार खण्डों में विभाजित है और सारी कथा उपन्यास के नायक मन्ने के चतुर्दिक घूमती है। मन्ने उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जिले के पिपरी गाँव के मुस्लिम जमींदार का पुत्र है। जीवन के क्रमिक विकास के साथ उसके जीवन में तरह तरह के व्यक्ति आते हैं और अपनी छाप छोड़ विलीन हो जाते हैं। उसके बाल्य जीवन का साथी मुन्नी ही एक ऐसा चरित्र है, जो अन्त तक उसके साथ रहता है, पर उन दोनों के जीवन का अन्त क्या है, इसका उत्तर उपन्यासकार ने नहीं दिया है। शायद इसलिए कि यह समकालीन समाज का चित्रण है और उसका भविष्य स्वयं मे अनिश्चित है।

इस बृहदकाय उपन्यास में अनेक पात्रों और अनेक घटनाओं का चित्रण किया गया है। प्रमुख पुरुष पात्र हैं मन्ने के अब्बा, जिन्हें मियाँ के नाम से पुकारा जाता रहा है, मन्ने का घनिष्ठ मित्र मुन्नी, मन्ने के अब्बा के दोस्त बाबू साहब, पट्टीदार जुब्बनी मियाँ, चौकीदार चन्नन, नौकर बिलरा, जमुनचाव नूर, मीर साहब, मुंशी जी, रहमान जुलाहा, जिल्ले मियाँ, मौलाना, राधे बाबू, कैलाश, जमेसर, रामसागर, समरनाथ, भिखरिया, हीराभगत, अवधेश, त्रिलोकी राम इत्यादि। महिला पात्रों में मन्ने के जीवन में आने वाली चार स्त्रियाँ हैं– चमार की लड़की कौलसिया, जिसका मुकदमा उसके बाप ने लड़ा और मरने पर उसकी शादी का भार मन्ने पर छोड़ गये। मन्ने एम० ए० प्रथम वर्ष में कलकत्ता में बीमार पड़ उसके यहाँ रहा। कौलसिया की आर्थिक स्थिति कैसी भी रही हो, वह मन्ने को दो बीस बीसी रुपया जोड़कर मन्ने को अब्बा के मकबरा बनाने के लिए देती है।

दूसरी महिला है—उसकी पत्नी जो मन्ने के लिए अपने जेवर बेचने को तैयार थी। मोटा-भोटा ■ खाने की आदत होने पर भी हर स्थिति में गाँव में मन्ने के साथ रहने को तत्पर। मन्ने के कारण 'मशहूर की सूरत देखकर डर लगता। अच्छी भली लड़की की क्या हालत हो गयी थी। बाल बिखेरे, चेहरा सूखा, आँखों में वहशत, कपड़े बोगोदा, हरदम किसी को नोच खाने के लिए तैयार, हर वक्त बड़बड़ाहट, लड़ाई, गाली, बद्दुआ, रोना, चीखना, बाल नोचना, छाती कूटना, दीवार से सर टकराना।'

और मशहूर की इस स्थिति का कारण थी मन्ने के जीवन में प्रवेश करने वाली तीसरी स्त्री आयशा—मशहूर की छोटी बहिन। आयशा ने मन्ने को दीवाना बना दिया और उसके माँ बाप भी उसके साथ थे कि उसकी शादी मन्ने के साथ हो जाये और वे जिम्मेदारी से छूटें। अन्त यह नहीं हुआ और आयशा एक वृद्ध हाजिज के गले मढ़ दी गयी।

मशहूर ने सौगन्ध खायी थी कि यह आग (सौतिया डाह) मारी जिन्दगी बुझने

वाली नहीं है और इसी मे जलकर वह राख होगी और इसी में जला कर वह मन्ने को भी राख बनायेगी। किन्तु इस विद्रोही नारी का विद्रोह शक्ति प्राप्त न कर सका और घटनाक्रम निराशाजन्य ही रहता है।

चौथी स्त्री है गाँव की बसमतिया, निम्न वर्ग की प्रतीक। उसका चरित्र एक मिसाल है। मन्ने के संसर्ग से वह गर्भवती हो जाती है और जब मन्ने उससे पिंड छुड़ाना चाहता है। वह कहती है 'कबहू हमारी बारी, कबहू तुम्हारी बारी, चलो भाई पारा पारी! है न! कभी आप मेरे पीछे पड़े थे अब हम आपको सता रहे हैं सच बताओ, मियाँ, अब हम मे कोड़ा पड गया है न?' मन्ने के ज़ोर देनेपर न तो वह गर्भपात कराती है और न समाज के आगे झुकती है। कैलसिया व बसमतिया मे जहाँ समाजवादी चेतना का पक्ष है, वहीं दूसरी ओर महमूद व मायशा सामाजिक बन्धनों से ग्रस्त रूढ़िवादी नारी हैं और शायद इसीलिए जीवन मे दुःखी है। उपन्यास में चित्रित इन नारी-पात्रों मे जिन सामाजिक-नैतिक प्रश्नों को उठाया है, लेखक उनका समाधान प्रस्तुत नही कर सका है। वस्तुतः सभी स्त्री पात्र सामाजिक दुर्बलताओं से ऊपर उठ सकीं और विद्रोह की अपेक्षा समझौता के ही मार्ग को अपनाती है।

उपन्यास के अनेक चरित्र तो 'टाइप' मात्र है, जिन्हे नाम देकर साँचे म ढाल दिया गया है। मानव नामक कोई वस्तु उनको छू नहीं गयी। उपन्यास का नायक मन्ने एक दुर्बल चरित्र है। जीवन मे उसने जो संघर्ष किये, वे आरोपित है। उसके व्यक्तित्व का जो विकास चित्रित भी है, उसके लिए 'फ्लैशबैक' तथा आत्म निरीक्षणात्मक पद्धति का अवलम्ब लिया गया है।

पात्रो के साथ ही घटनाओं के आधिक्य ने कथानक को शिथिल बनाया है, क्यो कि वे मुख्य कथा के साथ सम्बधित नही हो सकी है। उपन्यास को राजनीतिक दृष्टि से पुष्ट करने के लिए उपकथा की जो सृष्टि की गयी है, उससे उपन्यास का आकार ही बढा है, राजनीतिक प्रभाव नहीं। मुन्शी जी द्वारा वर्णित गाँव के प्राचीन इतिहास का प्रसंग इसी के अन्तर्गत आता है, यद्यपि उसके द्वारा ऐतिहासिक विकास स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

मुन्नी उपन्यास का प्रमुख राजनीतिक पात्र है और करीब तीन चौथाई स्थान घेरने के बाद उपन्यास मुन्नी के इस कथन के साथ राजनीतिक धरातल पर प्रवेश करता है—

"दो बार सत्याग्रह करके जेल गये। तीसरी बार बयालीस म पकड लिये गये और पाँच साल की सजा हो गयी।—अब की जेल मे खूब जम कर पढ़ाई हुई है। तीन पुराने क्रांतिकारी भी हमारी जेल मे थे। और अब मैं कम्युनिस्ट होकर जेल से निकला हूँ।" कम्युनिस्ट हो जाने के कारण वह बयालीस की क्रांति म पाँच साल की

सजा काटने पर भी बयालीस की क्रांति को क्रांति नहीं मानता—"कांग्रेस का इस समय मंत्रिमण्डल . कल देश स्वतन्त्र होता है, तो कांग्रेस की हुकूमत होगी, लेकिन कम्युनिस्ट अभी इनको कितनी गालियाँ मिल रही हैं, इन्हें बयालीस का गद्दार कहा जाता है, 'भारत छोड़ो' आन्दोलन की पीठ में छुरा भोंकने वाला कहा जाता है। क्या ये मुट्ठी भर कम्युनिस्ट इन 'क्रांतिकारियों' के साथ होते, तो यह क्रांति सफल हो जाती? झूठी बात है? न तो यह कोई क्रांति थी, न इसके पीछे कोई क्रांतिकारी संगठन था, न इसे सफल होना था। यह तो सिर्फ एक गुस्से का उबाल था।"[1] वह तर्क करता है—"फिर अगर यह कांग्रेसचालित क्रांतिकारी आन्दोलन था, तो गांधी जी ने इस क्रांतिकारी आन्दोलन की जिम्मेदारी से अपने को बरी करने की क्यों घोषणा की और इसके सारे परिणामों का उत्तरदायित्व सरकार पर ही क्यों मढ़ दिया?"[2] और फिर जेल से छूटते ही नेहरू ने इस आन्दोलन की सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर ओढ़ ली? और तो और ये सुभाष बोस भी नेता जी हो गये।"[3] आजाद हिन्द फौज लेकर वे भारत से अंग्रेज को खदेड़ने के लिए चले थे। क्या अजब बात है कि जिन्होंने गलती की, वे देश के सिर-मौर बन हुए हैं, और जिन्होंने सही नीति बरती, उन्हें गद्दार कहा जाता है।"[4] मुन्नी का यह मानसिक परिवर्तन साम्यवादी दल की रीति नीति के अनुरूप ही है और मन्ने भी उसकी दलीलों से प्रभावित हो 'कम्युनिज्म' की कल्पना करने लगते हैं—'मुन्नी यदा-चित् कम्युनिस्ट पार्टी की सही नीति को समझ कर ही उसमें शामिल हुआ है, वर्ना वह जेल तो एक कांग्रेसी की हैसियत से गया था। जाने कितने राजनीतिक कैदी मुन्नी की तरह कम्युनिस्ट होकर जेल से निकले होंगे। . हमारे देश में कम्युनिज्म आ जाये तो कितना अच्छा हो।'[5]

मुन्नी के बयालीस के आन्दोलन को क्रांति मानने पर भी देश स्वतन्त्र होता है। राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए कांग्रेस के प्रयासों की कोई चर्चा न कर लेखक साम्प्रदायिक दंगों तथा देश विभाजन के चित्रों को प्रस्तुत करता है, क्योंकि इसी आधार पर वह कांग्रेस और उसके कर्णधारों की आलोचना मुक्तकंठ से कर सकता था। मन्ने राष्ट्र-विभाजन को जिस रूप में देखता है, वह उसके इस कथन से स्पष्ट है "और सच ही देखते देखते ही पाकिस्तान एक तथ्य बन गया। गांधी जी का विरोध था जो बयान आया

१ भैरवप्रसाद गुप्त सत्ती मैया का चौरा, पृष्ठ ५२२
२. भैरवप्रसाद गुप्त : सत्ती मैया का चौरा, पृष्ठ ५२४
३ भैरवप्रसाद गुप्त : सत्ती मैया का चौरा, पृष्ठ ५२६
४ भैरवप्रसाद गुप्त : सत्ती मैया का चौरा, पृष्ठ ५२७
५. भैरवप्रसाद गुप्त सत्ती मैया का चौरा, पृष्ठ ५२८

उसमे जैसे कोई शक्ति न थी, यह पता लगते देर न लगी। ...नेहरू, पटेल और राजेन्द्र बाबू से भिड़ने की शक्ति उनमे न थी। देश के सबसे बड़े नेता, राष्ट्रपिता तथा सत्य और अहिंसा के अवतार गांधी जी अचानक अपने शिष्यो के समक्ष ही इतने निःशक्त, विवश और निष्क्रिय हो जायेंगे, यह कौन जानता था ?"

स्वाधीन भारत मे कांग्रेस और उनके कार्यों की आलोचना ही उपन्यास का ध्येय बन जाता है। जमींदारी-उन्मूलन और परिणामस्वरूप गठित पंचायती राज की कल्पना मन्ने की दृष्टि मे या है—'मेरे देखने मे तो गाँवो मे कांग्रेस को संगठित करने और उसकी शक्ति बढाने की यह योजना है। इतने बेकार हुए कांग्रेस के ग्रामीण कार्यकर्त्ताओ को भी कोई काम चाहिए कि नही ? किसी गैर कांग्रेसी पंचायत को (वे) किसी भी हालत मे चलने न देंगे।'[1] मुन्नी भी मानता है कि कांग्रेस का नेतृत्व जनता को आगे नही लाता—"सन् १९४२ व १९४७-४८ मे कांग्रेस जनता के पीछे-पीछे रही है, जनता के आवेशो से चालित रही है, उसने जनता को ऐसे खतरनाक मोड़ो पर कोई नेतृत्व नही दिया। जनता के पीछे पीछे चलने वाला नेतृत्व जनता को कभी भी आगे नही ले जा सकता। सभी अवसरवादी लोग अब कांग्रेस मे शामिल हो जाएँगे।'[2]

जलेसर भी कहता है—'यह कांग्रेसियो की कौम बड़ी बद हो गयी है। हुकूमत की बू आ गयी है इन लोगन मे।' इसी कारण जनता की स्थिति मे कोई परिवर्तन नही आता, जिसकी ओर मुन्नी ध्यान आकर्षित कराता है—'जमींदार न रहे तो अब स्थानीय कांग्रेसी नेताओ ने उनकी जगह ले ली है, और किसानो पर वे उन्ही की तरह हुकूमत करते है।—ग्राम जनता पहले की तरह उनकी चक्की मे पिसी जा रही है। और कमाल की बात यह है कि जिस साम्प्रदायिकता की समस्या को हल करने के लिए देश का बंटवारा किया गया, वह अपनी जगह पर कायम है।' और इसके लिए 'इलाज केवल एक है और वह है जनता मे वर्ग चेतना पैदा करना, जनता की मुक्ति की लड़ाई को वर्ग संघर्ष के स्तर पर ले आना।'[3] कांग्रेसी सत्ता के विरुद्ध यह वर्ग संघर्ष भी रूस और चीन के उदाहरण और तरीको से लाया जा सकता है। मुन्नी के शब्दो मे—'भारत मे इन्सानो की शक्ति सोयी पड़ी है और इसे जगाने के लिए रूसी और चीनी नेताओ की तरह के आदमियो की जरूरत है। हमारे यहाँ के सफेदपोश नेताओ और अफसरो को प्रलय तक इसकी समझ न आएगी।[4]

---

१ भैरवप्रसाद गुप्त : सत्ती मैया का चौरा, पृष्ठ ५४७
२. भैरवप्रसाद गुप्त : सत्ती मैया का चौरा, पृष्ठ ५५१
३ भैरवप्रसाद गुप्त : सत्ती मैया का चौरा, पृष्ठ ५६४
४ भैरवप्रसाद गुप्त : सत्ती मैया का चौरा, पृष्ठ ६०१

उपन्यास मे वर्णित राजनीतिक दलो की स्थिति

उपन्यास मे काग्रेस, कम्युनिस्ट पार्टी, जनसघ और लीग की राजनीतिक रीति-नीति का खण्डन अथवा मण्डन किया गया है। इसे व्यक्त करने के लिए प्राय कथोपकथन का माध्यम अपनाया गया है, जो कथानक को विस्तार देने के साथ साथ राजनीतिक स्थिति पर अपनी मान्यता के अनुसार प्रकाश डाल कर कथा को आगे बढाता है।

काग्रेस की अनेक स्थलो पर कटु आलोचना की गयी है, जिसका उल्लेख वर्ण्य वस्तु की विवेचना के समय किया ही जा चुका है। काग्रेस-शासन द्वारा सचालित योजनान्तर्गत निर्माण-कार्यों को भी असफलता के रूप मे चित्रित किया गया है। कहा गया है कि 'काग्रेस सरकार चीख चीख कर राष्ट्र निर्माण मे भाग लेने के लिए, आगे बढ कर काम करने के लिए, लोगो को पुकार रही है और ये काग्रेसी राष्ट्र-निर्माण के हर काम मे पुद अडगा लगाते है, कोई कुछ करने के लिए आगे बढता है, तो उसकी टाँग पकड कर पीछे खीचने लगते है, कोई कुछ करता है, तो उसका सारा श्रेय स्वय हडप लेना चाहते है। बीज मिलता है, लेकिन वह खेत मे न जाकर स्वार्थियो के पेट मे जाता है। सभापति के घर पर रेडियो बजता है, रोज पचायत कार्यक्रम चलता है, लेकिन कोई सुनने सुनाने वाला नही। गली के नुक्कडो पर कदीलें गाड दी गयी हैं, लेकिन उनमे से किसी मे आज तक रोशनी नही हुई। अखबार और न जाने कितना साहित्य आता है, लेकिन उसे पढने-पढाने वाला कोई नही। पचायत सेक्रेटरी बटोर कर बनिये के यहाँ बेच आता है।'[1]

स्वाधीनता के उपरान्त साम्प्रदायिक विद्वेष के शमन करने मे गाँधी जी ने जो कार्य किये, वे अलोकप्रिय हुए, इसका भी उल्लेख किया गया है। स्वय काग्रेस और उसके नेताओ ने उनकी अवहेलना की।[2] इसी साम्प्रदायिक आधार पर हत्या हुई, जिसके विवरण के साथ इसका दोष सरदार पटेल व काग्रेसी नेताओ पर डाला गया है।[3]

वस्तुत साम्प्रदायिकता का चित्रण ही उपन्यास की मूल समस्या कही जा सकती है। साम्प्रदायिकता की समस्या को लेकर अनेक राजनीतिक उपन्यासो की सृष्टि हिन्दी मे की गयी है, किन्तु हम त्रिभुवन सिंह जी के शब्दो मे कह सकते हैं कि आलोच्य उपन्यास उस परिदृश्य से पृथक है, क्योकि इसमे आस्थाओ और सस्थापनाओ की विशिष्टता है।

---

१ भैरवप्रसाद गुप्त . सती मैया का चौरा, पृष्ठ ६२४
२. भैरवप्रसाद गुप्त सती मैया का चौरा, पृष्ठ ५४६
३. भैरवप्रसाद गुप्त सती मैया का चौरा, पृष्ठ ५५०-५५१

जनसघ एव मुस्लिम लीग

साम्प्रदायिक स्थिति पर विचार करते समय लेखक ने हिन्दुत्ववादी जनसघ और मुस्लिमपरस्त लीग पर भी छोटे कसे हैं। सत्ती मैया के चौरे को साम्प्रदायिक प्रश्न बना कर यह बताने का प्रयत्न किया गया है कि चोरी छिपे कांग्रेसी भी जनसघी स्वयसेवको की सहायता मुसलमानो के विरुद्ध लेते हैं और भीतर से साम्प्रदायिक भावना को पोषित करते हैं।[१] मन्ने कहता है मुंह म राम बगल म छुरी। देश-विभाजन का सारा दाय म जिना और मुस्लिम लीग पर थोपते हैं लेकिन अपना दामन नहीं देखते। यह नहीं सोचते कि जिन को किसने पैदा किया ? लीग को किसने जन्म दिया।[२] सचमुच अनेक कांग्रेसी नेता गांधी जी के अनुयायी होते हुए भी अपनी धार्मिक साम्प्रदायिकता से बहुत ऊपर नही उठ सके थे।

साम्यवाद

अन्य राजनीतिक दलो की आलोचना कर (जो सोद्देश्य किन्तु एकागी है) सारी समस्याओ का समाधान साम्यवाद म बताने का प्रयास किया गया है। मुन्नी साम्यवाद के प्रचारक है और साम्यवाद का ज्ञान उन्ह जीवनानुभव स नहा, यूथ लीग स्टडी सर्किल, एगिल्स, मार्क्स, लेनिन और स्तालिन के साहित्य से होता है। वह इस तथ्य को पाता है 'जगल क्या है यह अधकार क्या है, और मैं क्या यहाँ घिर गया हू। मुझ मालूम हुआ कि यह जगल बहुत बडा है, यह अन्धकार चारो ओर फैला हुआ है और यहाँ लाखो करोडो लोग मेरी ही तरह घिरे हुए है।

इन लाखो-करोडो को, जो अलग अलग घिरे हुए हैं और जो यह समझ हुए हैं कि वे अकेले हैं अगर यह महसास हो जाय कि वे लाखो-करोडो हैं, जिनकी स्थिति एक है, जिनका मार्ग, मुक्तिमार्ग एक है लक्ष्य एक है और ये अपना हाथ बढाकर एक दूसरे का हाथ थाम लें और आगे बढें तो यह जगल साफ हो सकता है, यह अन्धकार दूर हो सकता है, यह परिस्थिति बदली जा सकती है।[३]

इसी परिस्थिति को बदलने के लिए मुन्नी प्रेस के मजदूरो की तरक्की के लिए वैसी ही हडताल आयोजित करता है जैसी अमृत राय ने 'बीज' म की है। वह गांव की प्रगति के लिए अपनाये गय हिंसात्मक कार्यों को भी अनुचित नही मानता।[४]

---

१ भैरवप्रसाद गुप्त सत्ती मैया का चौरा, पृष्ठ ६५१

२ भैरवप्रसाद गुप्त सत्ती मैया का चौरा, पृष्ठ ६६४

३ भैरवप्रस द गुप्त सत्ती मैया का चौरा, पृष्ठ १३३ १३४

४ भैरवप्रसाद गुप्त सत्ती मैया का चौरा, पृष्ठ ६०४

समाजवादी यथार्थ के धरातल पर लेखक मन्ने व उसकी छोटी बहिन की शादी का आयोजन कर रूढ़िग्रस्त सामाजिक प्रथा का साहस के साथ विरोध कर समाजवादी चेतना को अभिव्यक्ति दे सामाजिक असंगतियों पर व्यंग्य करता है। इस भावभूमि पर उन आवरणों को सफलता के साथ वहाँ उघाड़ा गया है, जहाँ दो स्वार्थ टकराते हैं, चाहे वे सामन्ती जमींदारों, पूंजीपति महाजनों, जनसंघी हिन्दुओं, लीगी मुस्लिमों, प्रवसरवादी राष्ट्रवादियों के हों। किन्तु कथानक के दीर्घ होने के कारण उसका राजनीतिक समाहार समुचित ढंग से नहीं हो सका है। इसीलिए कहा जा सकता है कि इस मिश्रित राजनीतिक उपन्यास में सामाजिक पक्ष प्रबल है, राजनीतिक पक्ष सोद्देश्य होने के कारण दुर्बल, क्योंकि प्रथम घटनाओं का अनुभवजनित परिणाम है और दूसरा विचारों की दलील मात्र।

सम्भवतः इसी कारण कहा गया है कि 'सत्ती मैया का चौरा' एक ओर तो राजनीतिक पार्टियों का विचित्र इतिहास है, दूसरी ओर दो पीढ़ियों के बीच का संघर्ष। परम्परा और पीढ़ियों के संघर्ष की अभिव्यक्ति वही लेखक कर सकता है, *जिसकी चेतना में पीढ़ीगत बोध हो। टी० एस० इलियट के अनुसार यह पीढ़ीगत बोध* ही किसी लेखक की महानता की कसौटी होता है। 'सत्ती मैया का चौरा' में इसका अभाव है।[1]

सर्वोदयी भावना से समन्वित आंचलिक उपन्यास

दुखमोचन

आकाशवाणी के लखनऊ-प्रयाग केन्द्रों से प्रसारित नागार्जुन के इस उपन्यास में भारत के विपन्न ग्रामों की नवोदित चेतना को अभिव्यक्ति मिली है। 'दुखमोचन' में रमना कोइली नामक ग्राम की समस्याओं और कर्तव्य-पथ पर आरूढ़ जनता का निर्माणकारी चित्र अंकित है। उपन्यास का मुख्य पात्र है दुखमोचन, जो वस्तुओं के वास्तविक मूल्यों को भली भाँति पहचान कर गाँव की उन्नति का स्वप्न संजोता है। वह आशा व्यक्त करता है - 'आगे हम बाँध तैयार करेंगे, पोखरों की मरम्मत करेंगे, कुओं की खोदाई होगी, गाँव की तरक्की के दसों काम होंगे। एकजुट होकर हमें सब करना है।' आलोच्य कृति को यदि चाहें तो पुनर्निर्माण का उपन्यास भी कहा जा सकता है।

इस लघुकाय उपन्यास में बारह छोटे छोटे अध्याय और पन्द्रह पात्र हैं। प्रमुख पात्र है दुखमोचन, शेष अन्य पात्र आवश्यकतानुसार अपनी झलक दिखाकर दूर हट जाते हैं। दो-चार पात्रों को छोड़कर शेष का चारित्रिक विकास न तो हुआ है और न उसकी

---

१. डॉ० त्रिभुवन सिंह : हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृष्ठ ४७०

आवश्यकता ही थी। कथा का केन्द्र बिन्दु दुखमोचन है और समस्त घटनाएँ उसी के चतुर्दिक घूमती हैं। वह सच्चा जनसेवक है और सेवा के मार्ग पर चल निःस्वार्थ-भाव से सबकी सहायता को तत्पर रहता है।

नागार्जुन के इस उपन्यास में सर्वोदयी भावना का अंकन हुआ है। सर्वोदयी मानते हैं कि शस्त्र शक्ति, राज्य-शक्ति और धन शक्ति में जिन लोगों का विश्वास था, वे सबके सब अब दूसरी किसी मानवीय शक्ति की खोज में हैं, क्योंकि अब मानवीय मूल्यों की स्थापना करनी है।[१] दुखमोचन इसी मानवीय शक्ति का प्रतीक है। वह सर्वोदय के इस सिद्धान्त को मानता है कि सब लोग जियें और एक-दूसरे के साथ-साथ जियें।[२] व्यवहार का आदर्श की तरफ बढ़ना प्रगति है।[३] दुखमोचन इस तथ्य से परिचित है। वह अल्पसंख्यकों का मसीहा है, क्योंकि 'सर्वोदय में व्यापकता का स्थान है। सबका उदय चाहिए।[४] सर्वोदयी मानते हैं कि 'अद्वैत हमारा आदर्श है। समन्वय हमारी नीति है। समन्वय साधन है और अद्वैत साध्य है।'[५] इसी समन्वय के लिए दुखमोचन प्रयत्नशील है और विरोध का निराकरण करता है। उसका यह परिहार ही उसकी अहिंसक क्रांति का उद्देश्य है। विनोबा के शब्दों में यही 'साम्ययोग' है। दुखमोचन मानव कृत विषमता का निराकरण करने और प्राकृतिक विषमता की उग्रता को घटाने की दिशा में यत्नशील है। वह 'जिलाने के लिए जियो' के सर्वोदयी सिद्धान्त से प्रभावित है। उसका परम मूल्य जीवन है। जीवन को सम्पन्न बनाना है। सबके जीवन को सम्पन्न बनाना है।[६] द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद संघर्ष को मनुष्य का स्वभाव मानता है, किन्तु साम्यवादी नागार्जुन का दुखमोचन संघर्ष के निराकरण का प्रयत्न करता है, उसे प्रोत्साहित नहीं करता और यह सर्वोदयी भावना के ही अनुकूल है। जो संघर्ष उभरे भी है, उन्हें विनोबा के शब्दों में 'मिलाप' ही कहा जा सकता है। सर्वोदय समाजनिरपेक्ष, शाश्वत और व्यापक मूल्यों की स्थापना करना चाहता है और बाधक मूल्यों का निराकरण करना चाहता है।[७] 'दुखमोचन' के सद्पात्र इस भावना से परिचालित हैं कि 'सृष्टि के साथ तादात्म्य की भावना जो मनुष्य में होती है, वह अत्यन्त मंगलकारी है,

१ दादा धर्माधिकारी : सर्वोदय दर्शन, पृष्ठ २१
२ दादा धर्माधिकारी : सर्वोदय दर्शन, पृष्ठ २३
३ दादा धर्माधिकारी : सर्वोदय दर्शन, पृष्ठ २५
४ दादा धर्माधिकारी : सर्वोदय दर्शन, पृष्ठ २७
५ दादा धर्माधिकारी : सर्वोदय दर्शन, पृष्ठ २९
६. दादा धर्माधिकारी : सर्वोदय दर्शन, पृष्ठ ३९
७ दादा धर्माधिकारी : सर्वोदय दर्शन, पृष्ठ ४३

सांस्कृतिक है। जीवन का विकास इसी भावना से होता है।' रूस के विचारकों का कथन है कि The problem of Russia is cultural—याने मनुष्य को धन निष्ठा से मानव निष्ठा की तरफ कैसे मोड़ा जाय। सर्वोदय इस भेद का निराकरण संघर्ष से नहीं, सख्य भावना से मानता है। कम्युनिस्ट मानते हैं कि मनुष्य स्वभावतः *सत्-प्रवृत्त है। सर्वोदयी इसे आस्तिकता कहते हैं। कम्युनिस्ट मानते है कि असत् प्रवृत्ति* परिस्थितिजन्य है। परिस्थिति के निराकरण के बाद मानव की सद् प्रवृत्ति उसका स्वभाव हो है। वस्तुतः साम्यवाद का प्रसारात्मक या प्रचारात्मक दृष्टिकोण चाहे जो कुछ हो, किन्तु उसका भी अन्तिम लक्ष्य शांत और सुव्यवस्थित समाज-रचना की नयी भूमिका पर प्रतिष्ठित है। सर्वोदय भी उसी लक्ष्य से परिचालित है। दुखमोचन में भी उन्हीं अकल्याणकारी सामाजिक परिस्थितियों के निराकरण का प्रयास है।

दुखमोचन सवाद के निकट और विवाद से परे है और प्रेम पर उसकी दृढ़ आस्था है यही उसका आधारभूत तत्व है, जो सर्वोदय के अभेद की सीढ़ी है। स्वार्थों के संघर्ष का निराकरण वह प्रेम से करना चाहता है, जिसे सर्वोदयी पारमार्थिक (समस्या) के रूप में देखते है। कुत्ते के लिए मामी की छटपटाहट और उनके प्रति दुखमोचन की संवेदना आध्यात्मिक है। यही एकता में आनन्द और विषमता में विरोध या दुःख की स्थिति है। सर्वोदय की आध्यात्मिक के आस्तिक की परिभाषा में कहा गया है। 'कोई भी व्यक्ति, भले ही वह आत्मा को और ब्रह्म को न मानता हो, यदि दूसरे के दुःख से दुःखी होता है, दूसरे के सुख से सुखी होता है और विषमता को सह नहीं *सकता, तो वह 'आस्तिक' है, क्योंकि वह विषमता का निराकरण और समता की* स्थापना करना चाहता है।'[1] सर्वोदयी विषमता के निराकरण को मानते हैं कि 'अपने दैव का निर्माता और अपनी नियति का नियन्ता मनुष्य है।'[2] टेमरा डुहुआ का पुनर्निर्माण इस *सिद्धांत को मूर्त रूप देना है। यह साम्यवादियों की ऐतिहासिक नियति* या सृष्टि नियम से किंचित भिन्न है। दुखमोचन में क्रांति का जो रूप है, वह भी सर्वोदयी 'जनतांत्रिक क्रांति' के निकट है—इसमें हिंसात्मक पक्ष निर्बल है। इसे साम्यवाद की अन्तर्राष्ट्रीय क्रांति का अनुसरण भी कहा जा सकता है, जिससे सर्वोदय मतभेद नहीं रखता। इसमें संघर्ष नहीं, सहयोग पर आस्था है। इसी सहयोगात्मक प्रतिकार को सत्याग्रह कहा गया है। 'सत्याग्रह की प्रक्रिया सहयोगात्मक प्रतिकार की प्रक्रिया है।'[3] जो गुणात्मक परिवर्तन चाहते है यह (द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद) की भी प्रवृत्ति है, पर

---

१ दादा धर्माधिकारी सर्वोदय दर्शन पृष्ठ १०४

२ दादा धर्माधिकारी, सर्वोदय दर्शन, पृष्ठ १०५

३ दादा धर्माधिकारी सर्वोदय दर्शन, पृष्ठ ११८

परिवर्तन बुद्धिपूर्वक हो, यह सर्वोदयी भावना है, जो 'हृदय-परिवर्तन' से सम्भव है। लेनिन का कथन है कि 'मेरी योजना मे एक ही समाजवादी वस्तु है, उसका नाम है सबोटनिक। सबोटनिक का अर्थ है, प्रति शनिवार को नागरिकों द्वारा स्वेच्छा से श्रम-दान। इसी मे से आगे चलकर काम की प्रेरणा का सवाल हल होने वाला है। नागरिको मे स्वय प्रेरणा और स्वय कर्तृत्व दोनो इसी मे से जाग्रत होने वाले हैं।

दुखमोचन मे श्रम कर्तव्य के रूप मे आया है। सर्वोदयी मानते है 'श्रम भी प्रति-मूल्य के लिए नहीं होगा। श्रम हमारा कर्तव्य होगा और श्रम का फल सारे समाज का होगा। गाँधी ने इसे शरीर-श्रम का व्रत कहा।'[१] दुखमोचन म वेणीमाधव श्रमदान को श्रमयज्ञ मानता है और यज्ञ की सफलता 'सभी लोग दिलचस्पी' लें, तभी है, ऐसा स्वीकारता है।[२] दरिद्रता को अपरिग्रह मे बदलने की मनोवृत्ति हरखू की माँ के अनाज वापस करने के प्रसग से सम्मुख आयी है।

सामाजिक क्षेत्र मे अहिंसा व्यक्त होती है—दूसरे का सुख अपना सुख मानने से, दूसरे का दु ख अपना दु ख मानने से, आर्थिक क्षेत्र मे उत्पादन और सहयोगी उत्पादन के रूप मे सहउत्पादन और समवितरण, राजनीतिक क्षेत्र मे अहिंसा लोकनीति के रूप मे जिसका मूल तत्व है, नागरिको का परस्पर विश्वास और परस्पर स्नेह। जिलाने के लिए जियो—यह सहजीवन।

हम दूसरे के जीवन म सहायक बनना है, बाधक नही, यही सर्वोदयी 'अस्तेय' है। इसमे दूसरे की वस्तु की प्राप्ति की आकांक्षा का लोप रहता है। दुखमोचन इसी भावना से तेल व साबुन नही रखना चाहता। उसमे अपरिग्रह की वृत्ति कूट कूट कर भरी है। अपरिग्रह की वृति का अर्थ है कि अपनी जरूरत की चीज भी जो मैं रखता हूँ, वह अपने स्वामित्व के लिए नहीं। दुखमोचन द्वारा दाहक्रिया हेतु उपयोगी लकड़ी दे देने की घटना अपरिग्रह वृत्ति ही है। इतना ही नही, उस शरीर के प्रति भी मोह नही उसे शरीर के प्रति भी मोह नहीं, जो असग्रह का विचार है। शरीर के विषय मे वह तटस्थ व निराग्रही है।

इस प्रकार नागार्जुन के साम्यवादी विचारो का बहुत कुछ उग्रतापूर्ण वातावरण इस उपन्यास म सर्वोदयी धरातल पर आकर शमित हो जाता है।

बूँद और समुद्र

'बूँद और समुद्र अपने बृहदाकार रूप मे समाज की यथार्थता का एक सफल उपन्यास है, जो अपने क्रोड मे आचलिकता और राजनीतिक गूँज, दोनो को साथ लेकर

१. दादा धर्माधिकारी : सर्वोदय दर्शन, पृष्ठ १४०
२ नागार्जुन : दुखमोचन, पृष्ठ ११६

चला है। उपन्यास का नामकरण सोद्देश्य है और इसमें बूंद और समुद्र क्रमश व्यक्ति और समाज के प्रतीक हैं। लेखक इन दोनो मे समन्वय की शाश्वत समस्या को इन शब्दो में व्यक्त करता है "हर बूंद का महत्व है, क्योंकि वही तो अनन्त सागर है, एक बूंद भी व्यर्थ क्यो जाय ! उसका सदुपयोग करो।' यह एक महत्वपूर्ण समस्या है कि "कैसे हो यह सदुपयोग ? कैसे यह बूंद अपने आपको महासागर अनुभव करे ? इस विशाल जनसागर मे वह नितान्त अकेली है। . हर व्यक्ति आम तौर पर इसी तरह अपनी बहुत छोटी छोटी सीमाओं में रहता हुआ एक दूसरे से अलग है। बूंद मगर बूंद से शिकायत रखता है तो वह उससे कहीं अलगाव भी अवश्य रखती है। तब यह सागर कैसा है, जिसमे हर बूंद अलग है ? व्यक्ति यदि इतना ही अलग है तो समाज बंधना क्यो-कर है। समाज मे कुलीन और आबरूदार कहाने वाले सत्तर पचहत्तर फीसदी लोग इसी तरह उन स्थापनाओं को प्रतिक्षण अपने व्यवहार मे तोड़ते रहते हैं, जिन्हें समाज ने आदर्श माना है। यह विरोधाभास इतना अधिक मानव मे आया क्योकर ? इस विरोधाभास को लेकर मानव का सामूहिक जीवन चल ही कैसे सकता है ? बूंद-बूंद का उपयोग हो, कैसे हो ?"'[१]

लेखक केवल समस्या प्रस्तुत करके नहीं रह जाता, वह उसका समाधान भी करता है "मनुष्य का आत्मविश्वास जागना चाहिए, उसके जीवन मे आस्था जागनी चाहिए। मनुष्य को दूसरे के सुख दुख मे अपना सुख-दुख मानना चाहिए। विचारो मे भेद हो सकता है, विचारो के भेद से स्वस्थ द्वन्द्व होता है और उससे उत्तरोत्तर उसका समन्वयात्मक विकास भी। पर शर्त यह है कि सुख दुख मे व्यक्ति का व्यक्ति से अटूट सम्बन्ध बना रहे—जैसे बूंद से बूंद जुड़ी रहती है—लहरो से लहरें। लहरो से समुद्र बनता है—इस तरह बूंद बूंद मे समुद्र समाया है।"[२]

व्यष्टि और समष्टि के समन्वय की समस्या को लेकर ही विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओं को अभिव्यक्ति मिली है। राजनीतिक विचारधारा के आधार पर राम-जी बाबा को विशिष्ट पात्र माना जा सकता है, जो उपन्यास के प्रमुख पात्र—महिपाल, सज्जन और वनकन्या को गांधीवादी सर्वोदयी राजनीतिक भावधारा से अनुप्राणित करता है।

यह सत्य ही कहा गया है कि 'सज्जन के जीवन मे बाबा रामजी, जो सन्त विनोबा की सामूहिक चेतना और व्यक्तिवादी दृष्टिकोण को आत्मसात् किये हुए हैं, उल्का की भाँति आते हैं और उसके जीवन को धीरे-धीरे नये साँचे में ढालते हैं। बाबा

१. अमृतलाल नागर : बूंद और समुद्र, पृष्ठ ३८८-३८६

२ अमृतलाल नागर बूंद और समुद्र, पृष्ठ ६०६

की सेवा पर बल देते हैं। उनका विश्वास है कि कर्म की कुशलता ही योग है। एकान्त साधना से ही जीवन के गूढ़ रहस्यों की सिद्धि होती है। वह सज्जन से आग्रह करते हैं कि विज्ञानी यदि नाश को सिद्ध करता है तो तुम निर्माण को सिद्ध करो। जिसकी चेतना विराट होगी, उसकी विजय होगी। बुद्ध से चेतना का रहस्य सुनता है। बाबा जी सज्जन कन्या को विनोबा के भूमिदान तथा सम्पत्ति दान का उपदेश देते हैं और उनका समस्त वैभव लेना चाहते हैं। सामाजिक विषमताओं के निवारण का यह व्यक्ति-वादी समाधान है।[1]

इस तरह स्पष्ट है कि महिपाल, सज्जन, वनकन्या आदि पात्रों की व्यक्तिवादिता के विरोध में ही रामजी बाबा के चरित्र की उद्भावना की गयी है, जो व्यक्ति और समाज के सामञ्जस्यवादी (सर्वोदयी) भावना से प्रेरित हैं। उनका दृष्टिकोण अहिंसावादी तत्वों से निर्मित है, जो निश्चय ही गांधीवादी विचारधारा का परिणाम है। वे मानते हैं कि सच्चा समाजवादी वही है, जो दूसरों के लिए जिये—जियें और जीने दे। महेन्द्र चतुर्वेदी का यह मूल्यांकन ठीक ही है कि 'बाबा का दृष्टिकोण अहिंसावादी तत्वों से निर्मित है, जिसमें गांधी जी के मानवतावाद के दर्शन होते हैं। महिपाल के बन्धु तथा बाबा राम जी के सैद्धान्तिक वक्तव्यों से लेखक का यह उद्देश्य ध्वनित होता है कि व्यक्ति को अपनी संकीर्ण सीमाओं से ऊपर उठकर सामूहिक चेतना को आत्मसात् करने का प्रयत्न करना चाहिए। व्यक्ति की निजी सत्ता तथा समाज के साथ उसका अविच्छिन्न सम्बन्ध दोनों की रक्षा लेखक का अभी अभीष्ट है।'[2] वस्तुतः यही उपन्यास में गांधीवाद की स्थापना का मूल कारण है।

सर्वोदय की छाप

'बूंद और समुद्र' में वर्गवाद के विरोध में सर्वोदय की—सर्वोदय समाज की स्थापना पर जो बल दिया गया है, उस पर गांधी जी और आचार्य विनोबा भावे की राजनीतिक मान्यताओं की गहरी छाप है। बाबा राम जी तो जैसे विनोबा जी की ही प्रतिमूर्ति हैं, जो अपना सर्वस्व समर्पित कर सर्वोदयी समाज की स्थापना के प्रयत्न में एकनिष्ठ होकर जुटे हुए हैं। सज्जन और वनकन्या को भूदान तथा सम्पत्ति-दान के लिए प्रोत्साहित करते हुए बाबा रामजी वस्तुतः विनोबा ही हैं। उनके उपदेशों का ही यह प्रभाव है कि सज्जन आठ लाख की सम्पत्ति में से तीन लाख दान में दे देता है। वे कार्य में राजनीतिक प्रतिस्पर्धा भी नहीं चाहते 'जो काम करेगा, वह पैसा भी पायेगा। निर्धन व्यक्ति को धन मिलना चाहिए। शहर और गांव, दोनों ही इस दृष्टि से भूखे हैं। इस

१. डॉ० सुषमा धवन : हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ ७२
२. महेन्द्र चतुर्वेदी : हिन्दी उपन्यास : एक सर्वेक्षण, पृष्ठ १५४

दोनो को ही एक आर्थिक स्तर पर क्रमश ले आइए। इन तीन सालो मे आप यदि कुटीर-उद्योग बढा कर नगर के पूरुषो को महाजिन्दो को फांसी और बेईमानियो से बचा सकें तथा स्त्रियो को अपनी आर्थिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए महिलाश्रम जैसी सस्थाओ से बचाने के साथ-साथ उनका नैतिक स्तर ऊंचा कर सकें तो बहुत बडा काम हो जायगा रामजी। एक बार सगठित होकर आप जैसी हवा बहाय देंगे वैसा ही समाज पर प्रभाव पडेगा—खरा समाजवादी वही है, जो दूसरो के लिए जियें—जियें और जीने देव।'[१]

पूँजीवादी दृष्टिकोण और कला

पूँजीपति कला को भी अपने स्वार्थ की दृष्टि से ही देखते है, अत कला अपने वास्तविक स्वरूप मे नही आ पाती। कला को राजनीति की तराजू पर तौलने का उदाहरण उपन्यास मे चित्रित वह चित्र-प्रदर्शनी है, जहाँ 'पचास तस्वीरें एक ही दीवार के पक्खे पर ऊपर से नीचे तक टाँग दी गयी थी। मूर्तियो का महत्व लाला लोगो की समझ मे अधिक नही आया था, फिर भी एक मेज पर उन्हें भी रख दिया गया था। कमरे मे सबसे अधिक ध्यान आकृष्ट करने वाली एक ही चीज थी—राजा साहब की महफिल मे फाटक पर बिजली के बल्बो की भारत-माता, जिनके हाथ के तिरगे झण्डे मे घूमता हुआ चक्र बल रहा था।' यह है पूँजीपतियो के हाथो मे कला की दुर्दशा। 'ऐसा लगता था, मानो बिजली का तिरगा झण्डा दिखलाने के लिए ही इतनी कलाकृतियो को गुलाम बना कर उस कमरे मे कैद किया गया है।—तिरगे का उपयोग इस समय खिलाडी के रूप मे हो रहा था। इसकी आड मे चार धनी-चोरी कला को अपना गुलाम—गुलाम दर गुलाम बना रहे थे।' कहना न होगा कि वर्तमान समय मे ऐसे अवसर आये दिन दिखलायी पडते हैं। कला को भी वे अरखरोद बाँदी समझने लगे है।

बूंद और समुद्र की अन्य विशिष्टताएँ

डॉ० रामविलास शर्मा के शब्दो मे 'बूंद और समुद्र' अमृतलाल नागर का नया और महान उपन्यास है—महान्, आकार की दृष्टि से और विषय-वस्तु की दृष्टि से भी।' इसमे सन्देह नही कि 'बूंद और समुद्र' मे अनेक विशिष्टताएँ समाहित हैं, जो उसे इस दशक के शीर्ष उपन्यासो की पक्ति मे स्थान दिलवाने मे समर्थ हैं।

इसे आंचलिक उपन्यास के अन्तर्गत रखते हुए हम इसे आंचलिक उपन्यासो के प्रचलित अर्थ से कुछ भिन्न पाते हैं, क्योंकि इसमे नागरीय अचल का चित्रण है। हिन्दी

---

१ अमृतलाल नागर . बूंद और समुद्र, पृष्ठ ५६६-५६७

में ऐसे उपन्यासों का अत्यधिक अभाव है, जिसमें विशिष्ट नागरीय जीवन का चित्रण हो। प्रस्तुत उपन्यास इस अभाव की पूर्ति करता है। इसमें नागर जी ने लखनऊ और उसमें भी विशेष रूप से चौक के गली कूचों के जीवन का विविध दृष्टिकोणों से सजीव चित्रण किया है। एक समीक्षक का कथन है: 'यह मुहल्ला एक बूंद की तरह है, जिस में समुद्र की तरह विशाल भारतीय जीवन के दर्शन होते हैं।—उपन्यास के नाम की यही सार्थकता है, एक मुहल्ले के चित्र में लेखक ने भारतीय समाज के बहुत से रूपों के दर्शन करा दिये हैं।— पात्रों की संख्या, उनकी विविधता, अनुकरण अथवा प्रतिध्वनि की सजीवता के विचार से अमृतलाल नागर हमें ऐसे बोलते-जागते और कोलाहलमय संसार में ला खड़ा करते हैं जिसकी समृद्धि की तुलना बालज़ाक की रचनाओं से ही हो सकती है।'[1]

भाषा शैली की दृष्टि से भी आलोच्य उपन्यास अपने ढंग का एक बेजोड़ उदाहरण है। डॉ० रामविलास शर्मा का मत है—'अमृतलाल नागर द्वारा किया हुआ एक मुहल्ले का यह लिंग्विस्टिक सर्वे' भाषाविज्ञान की सामग्री का अद्भुत पिटारा है। अभी तक किसी भी देशी-विदेशी भाषा में एक नगर की इतनी बोली-ठोलियों का निदर्शन करनेवाला उपन्यास मेरे देखने में नहीं आया। इन शैलियों में भाषाओं और समाज का इतिहास बोलता है।'[2] पात्रानुसार भाषा का प्रयोग किया गया है, जिसका राजनीतिक उपन्यासों में प्रायः अभाव रहता है। लखनऊ के पुलिस कान्स्टेबिल की बोली बानी देखिए—'कोतवाली को बेरलेस कर दिया हुजूर! मिरजा जी अटेन्ड कर रहे थे हुजूर, तौन उन्होंने मिसेज बिया कि अस्पताल की गाडी भिजवाते हैं हुजूर।' इस तरह की बीसों भाषा शैलियाँ इस उपन्यास में देखी जा सकती हैं। हास्य-व्यंग भी है और 'केवल शुद्ध हास्य नहीं, विनोद, मनोरंजन, वक्रोक्ति, व्यंग, सभी कुछ—उसकी निष्पत्ति सौ फी सदी इस बोली ठोली और शैली पर निर्भर है। लोकगीत भी हैं और रूढ़िवादी भाषा-प्रयोग भी, जैसे—'रांड बहुत पेट लिये घूमती है। ऐसे ही कटकर गिर पड़ेगा।' अथवा 'हरामजादी, तूने मेरी इज्जत खाक में मिला दी।'

वर्तमान राजनीतिक अवस्था

लेखक ने वर्तमान भारतीय राजनीतिक स्थिति का चित्रण सज्जन के आत्म-मंथन द्वारा प्रस्तुत किया है - "जिस देश का इतिहास इतना महिमामय है—वह देश, जड़ता और गन्दगी में रहना पसन्द करते हुए आज की भयंकर अवगति के रूप में आत्म-

---

१ आलोचना, अंक २०, अक्टूबर, १९५६, पृष्ठ ८३

२. आलोचना, अंक २०, अक्टूबर, १९५६, पृष्ठ ८३

हत्या क्यों कर रहा है। महिपाल और भारत अपने ज्ञान और अज्ञान को लेकर एक समान हैं। सैकड़ो सदियों के रहन-सहन, रीतिबर्ताव और मान्यताओं को, जो आज भौतिक विज्ञान के युग मे एकदम अनुपयुक्त सिद्ध होती हैं, हमारा समाज अन्धनिष्ठा के साथ अपनाये हुए है।—हमारे समाज मे आत्मविश्वास ही नही रहा।—राजनीति जिस रूप मे आज प्रचलित है, वह तनिक भी प्रगतिशील नही है। राजनीति केवल दांव पेचो का अखाड़ा है। जन-जीवन अन्धविश्वास और भ्रान्तियों से जकड़ा हुआ है।'[1] यही कारण है कि सज्जन को किसी भी राजनीतिक पार्टी मे आस्था नहीं है। 'सब अधिकांश मे एक-से-एक बढ़कर बेईमान, क्षुद्र आकांक्षाओं वाले, जालसाज, दम्भी और मगरूरों द्वारा अनुशासित हैं, आदर्श और सिद्धांत तो महज शिकार खेलने के लिए आड़ की टट्टियाँ है। इनका आपसी संघर्ष अधिकतर व्यक्तिगत है।' कहना न होगा कि सज्जन की यह मान्यता वर्तमान भारतीय दलों की गतिविधियों के सर्वथा अनुकूल है।

राष्ट्रीय वातावरण पर आधारित आंचलिक उपन्यास

रेणु के आंचलिक उपन्यासों का राजनीतिक स्वर

हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों मे फणीश्वरनाथ 'रेणु' की 'मैला आंचल' और 'परती परिकथा' अत्यन्त महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं। रिपोर्ताज शैली मे लिखे गये इन बृहद उपन्यासो ने आंचलिकता को स्थायी एवं कलात्मक स्वरूप दिया है।

'मैला आंचल' मे अंचल विशेष के ग्रामीण जीवन के विभिन्न आर्थिक स्तरों का उद्घाटन किया गया है। एक विज्ञ का मत है कि 'मैला आंचल' की सबसे अद्भुत विशेषता यही है कि उसमे मिथिला के निरन्तर बदलते हुए आज के एक गाँव की आत्मा की गाथा है और यह गाँव सर्वथा विशिष्ट होकर भी केवल मिथिला का ही नहीं, जैसे उत्तर भारत का प्रत्येक गाँव है, जो सदियों से सोते सोते अब जाग कर अँगड़ाई ले रहा है। पिछले महायुद्ध और उसके बाद की घटनाओं ने, विशेषकर स्वतन्त्रता प्राप्ति ने, जैसे हमारे देश को बहुत गहराई तक झकझोर दिया है, उसमे ऐसी उथल-पुथल मचा दी है कि जीवन के अनगिनती नये-नये पर्त उखड़ कर सामने आ गये हैं और नित नयी गति से निरन्तर आते जा रहे हैं। इस गति के कारण होने वाले सजही परिवर्तनों का चित्र हिन्दी की और भी कई रचनाओं मे मिलता है, पर 'मैला आंचल' मे उसके फल-

---

१. अमृतलाल नागर : बूँद और समुद्र, पृष्ठ ६०४-६०५

स्वरूप देहातों की आत्मा में होने वाले आलोडन और विक्षोभ की झाँकी है।[1] किन्तु हम यह कहने के लिए बाध्य है कि इस आलोडन और विक्षोभ की पृष्ठभूमि गाँव की कुरुपता का दर्शन कर उपन्यास के नामकरण को ही सार्थक करती है। मेरीगंज गाँव को उपन्यास का केन्द्र बना कर पूर्णिया अचल के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं मानसिक जीवन का सामूहिक चित्रण किया गया है। इस चित्रण में यद्यपि लेखक किसी मतवाद को लेकर नहीं चला है किन्तु युगधर्म के अनुसार बदलते हुए गाँव की गाथा कहने में वह सामयिक राजनीति के प्रभाव से मुक्त नहीं हो सका है। यही कारण है कि उपन्यास में यह तथ्य स्पष्ट रूप में उभर कर सामने आया है कि समसामयिक 'ग्रामीण राजनीति मध्य वर्ग द्वारा सचालित है और इस मध्य वर्ग में अन्तरग विभाजन है। एक ओर मध्यवर्गीय किसान है तो दूसरी ओर सामन्तीय मनोवृत्तियों के साँचे में ढले हुए खेतिहर जमींदार हैं—ये एक दूसरे के पोषक नहीं, परस्पर सघर्षरत हैं और यह सघर्ष केवल आर्थिक सामाजिक स्तर पर नहीं चलता, अनुभूति और विचारों के धरातल पर भी चलता है।'[2]

'मैला आँचल' की कथावस्तु सुसगठित तथा शृखलाबद्ध नहीं है। वस्तुत. यह मेरीगज से सम्बन्धित विभक्त वर्गों और जाति के व्यक्तियों की कहानी है, जो शिथिल घटनाओं के अघात में विस्तार पाती है। इस प्रक्रिया में उपन्यासकार ने पात्रों और उनकी समस्याओं को यथार्थ के निकट रखने का सयत्न प्रयास किया है। शिल्प की दृष्टि से यह उपन्यास प्रयोग की विशिष्ट कोटि में रखा जा सकता है। यह नायक विहीन तथा आचलिक वैविध्य का विवरणात्मक उपन्यास है, जो सीमाबद्ध होते हुए भी समाज के यथार्थ का अध्ययन प्रस्तुत करता है। डॉ० गणेशन का यह मत उचित है कि 'मैला आँचल' में कथानक माध्यम मात्र है, मनोविज्ञान साधन मात्र है। इनके आधार पर वे जिस लोक का निर्माण करते हैं, उसमें वास्तविक जीवन है। आधुनिक रूसी उपन्यासों का-सा निरपेक्ष अध्ययन इनमें उपलब्ध है।'[3]

उपन्यास का प्रारम्भ मेरीगज में मलेरिया सेन्टर के खुलने से होता है और जो वहाँ के ग्रामीण जीवन में चर्चा का विषय हो जाता है। गाँव में जातिगत आधार पर तीन दल हैं—एक कायस्थों का, दूसरा राजपूतों का और तीसरा यादवों का। ये परस्पर लड़ते-झगड़ते है और इन्हें लड़ाने का कार्य ब्राह्मणों का है, क्योंकि वे अल्प मत में है। यादव टोली का बालदेव सुराजी है और वह उपन्यास का प्रमुख राजनीतिक पात्र है जिसका

---

१ कल्पना, अक फरवरी, ५६

२ महेन्द्र चतुर्वेदी : हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण, पृष्ठ २११

३. डॉ० गणेशन : हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन, पृष्ठ ८३

चारित्रिक विकास उपन्यास में समुचित रूप से दिखाया गया है। यों उपन्यास में राजनीतिक प्रतिध्वनि उठाने वाले अन्य पात्र भी हैं। बावनदास गाँधीवादी है और राष्ट्र के प्रमुख नेताओं—महात्मा गाँधी, पंडित नेहरू, राजेन्द्र बाबू सभी से वह परिचित है। वह गाँधीवाद के उपवास पर आस्था रखता है और आत्मा की शुद्धि तथा पाप के प्रायश्चित्त के लिए उपवास करता है। गाँधी हत्याकांड के समय वह दुःख से मूर्छित हो जाता है और तात्कालिक राजनीति से विक्षुब्ध हो भारत-पाक-सीमा पर गाड़ी के नीचे आकर मर जाता है। बावनदास का यह देहावसान मानवीय भावनाओं को व्यंजित करता है और देश विभाजन के प्रसंग को लेकर हमारी संवेदना उस समय और भी बढ़ जाती है, जब उसके शव को दोनों देश स्वीकार नहीं करते हैं। सचमुच ही उसका जीवन उन पद-लोलुप अवसरवादी नेताओं से भिन्न है, जो गाँधी के दिखावटी अनुयायी बनकर सत्ता को हथियाने में आगे रहते हैं। दूसरा कांग्रेसी पात्र बालदेव है, गाँधी जी के सिद्धान्तों को वह ग्रहण करने पर भी स्वार्थ से बहुत ऊपर नहीं उठ पाता। गाँधी जी के पात्रों को छिपा लेने में उसके चरित्र की दुर्बलता स्पष्ट रूप से सामने आ जाती है। इस प्रसंग में वह बावनदास को लिखे गये पत्रों से काल्पनिक मन्त्रीपद के आकांक्षी के रूप में प्रस्तुत होता है। लक्ष्मी के साथ उसके सम्बन्ध में भी उसका मानवीय दौर्बल्य अंकित है।

कालीचरन समाजवादी चेतना से अनुप्राणित पात्र है और पुलिस के आतंक से त्रस्त हो डाकू बन जाने को बाधित हो जाता है। एक अन्य पात्र चिनगारी के सम्पादक हैं, जो लक्ष्मी के सान्निध्य से प्रभावित हो मार्क्सवाद का दर्शन उसमें ही पा जाते हैं। वे उस पर मुक्त छन्द की रचना करते हैं

> ओ महान सतगुरु की सेविका
> गायिका पवित्र धर्मग्रन्थ की
> ओ महान मार्क्स के दर्शन की दर्शिका
> सुदर्शने, प्रियदर्शिनी,
> तुम स्वयं द्वन्द्वयुक्त भौतिकवाद की सिन्थिसिस हो।

गाँधी-हत्याकाण्ड की सामयिक राजनीति को चित्रित करते समय 'रेणु' जी जनसंघ की गतिविधियों को भी नहीं भूला है। संघ के काली टोपी वाले सयोजक हिन्दुत्वादी राष्ट्रीयता का प्रचार करते हुए यहाँ भी मिल जाते हैं।

राजनीतिक स्थिति का चित्रण

राजनीतिक पात्रों की सृष्टि कर लेखक बयालीस की क्रान्ति से गाँधी हत्याकाण्ड तक की राजनीतिक स्थिति को चित्रित करता है। इस कालावधि में ग्रामीण जीवन में

राजनीतिक चेतना का विस्तार किस ढंग से हुआ, यह 'मैला आंचल' में देखा जा सकता है। कहा गया है कि गाँव में रोज नये से नया सेन्टर खुल रहा है—मलेरिया सेन्टर, काली टोपी सेन्टर, लाल झन्डा सेन्टर और अन्त में चरखा सेन्टर। मलेरिया सेन्टर से कम महत्व उस चर्खा सेन्टर का नहीं है, जिसकी संचालिका मंगला देवी है। स्थूल रूप से कहा जा सकता है कि सन् १९४२ से प्रारम्भ होने वाला दशक ही उपन्यास का नायक है, क्योंकि उसी आधार पीठिका पर अंचलविशेष की सामाजिक राजनीतिक जाग्रति अंकित हुई है। स्वाधीन भारत की राजनीतिक पार्टियों और उनकी दुर्बलताओं को यथार्थ भूमि पर तटस्थ दृष्टि से देखकर मानवतावादी दृष्टिकोण का प्रतिष्ठापन किया गया है। यही कारण है कि उपन्यास में राजनीतिक दलों का विवेचन कर व्यंग्य किया गया है। चर्खा सेन्टर की मंगला देवी तथा सोशलिस्ट पार्टी के कालीचरन के पारस्परिक सम्बन्ध को लेकर नेताओं पर किये गये व्यंग्य इसका प्रमाण है।

मानवतावादी दृष्टिकोण

उपन्यास में राजनीतिक आन्दोलनों के साथ लेखक जिस मूल समस्या की ओर ध्यानाकर्षित कराना चाहता है, वह यह है . 'लेबोरेटरी'! ..विशाल प्रयोगशाला। ऊँची चहारदीवारियों में बन्द प्रयोग शाला। साम्राज्य लोभी शासकों की संगीनों के साये में वैज्ञानिकों के दल खोज कर रहे हैं, प्रयोग कर रहे है। मारात्मक, विध्वसक और सर्वनाशा शक्तियों के सम्मिश्रण से एक ऐसे बम की रचना हो रही है, जो सारी पृथ्वी को हवा के रूप में परिणत कर देगा। ऐटम 'ब्रेक' कर रहा है। मकड़ी के जाले की तरह। चारों ओर एक महा अन्धकार! सब वाष्प! प्रकृति पुरुष अन्ड-पिन्ड! मिट्टी और मनुष्य के शुभचिन्तकों की छोटी-सी टोली अँधेरे में टटोल रही है। अँधेरे में वे आपस में टकराते हैं। वेदान्त भौतिकवाद सापेक्षवाद...मानवतावाद। हिंसा से जर्जर प्रकृति रो रही है। व्याध के तीर से जख्मी हिरण शावक सी मानवता को पनाह कहाँ मिले ?'[१] और इसका समाधान है गाँधीवाद में—उसके प्रेम और अहिंसा की साधना में। इसीलिए कहा गया है: 'यह अँधेरा नहीं रहेगा। मानवता के पुजारियों की सम्मिलित वाणी गूँजती है, पवित्र वाणी! उन्हें प्रकाश मिल गया है। प्रेम और अहिंसा की साधना सफल हो चुकी है। फिर कैसा भय? विधाता की सृष्टि में मानव ही सबसे बढ़कर शक्तिशाली है।'[२] डॉक्टर प्रशान्तकुमार और उसकी सहचरी ममता के चरित्र का अंकन इसी दृष्टि से हुआ है। डॉक्टर का यह कथन गाँधीवाद के सिद्धान्तों के ही अनुकूल है "ममता! मैं फिर काम शुरू करूँगा। यहीं, इसी गाँव में

१ फणीश्वरनाथ 'रेणु': मैला आँचल, पृष्ठ ४२४
२. फणीश्वरनाथ 'रेणु': मैला आँचल, पृष्ठ ४२४

मैं प्यार की खेती करना चाहता हूँ। आँसू से भीगी हुई धरती पर प्यार के पौधे लह लहायेंगे। मैं साधना करूँगा। ग्रामवासिनी भारतमाता के मैले आँचल तले।'"[1] इस प्रकार इस निष्कर्ष पर पहुँचना असंगत न होगा कि किसी वादविशेष का प्रचारात्मक स्वर न होने पर उपन्यासकार गाँधीवाद को ही मानव-कल्याण का पथ मानता है। सुषमा धवन के इस कथन से हम सहमत नहीं हो सकते कि "रेणु ने गाँधीवाद एवं साम्यवाद दोनों से प्रेरणा ग्रहण की है और गाँधीवाद तथा साम्यवाद मानवता के विरोधी नहीं है।"[2] वस्तुतः उनकी भ्रान्ति का कारण राजनीतिक ज्ञान का अधकचरापन ही कहा जा सकता है। सत्य तो यह है कि किसी भी राजनीतिक सिद्धान्त का प्रणेता मानवता का विरोधी नहीं होता, किन्तु उसकी कार्य-पद्धति ही उसकी प्राप्ति का मार्ग निर्धारित करती है। मानव-कल्याण ही राजनीति की आधारशिला होता है। अतः इस आधार पर दो राजनीतिक सिद्धान्तों में सादृश्य निरूपित करना युक्तिसंगत नहीं। 'मैला आँचल' में *मानवतावाद की जो स्थापना प्रेम और अहिंसा से करने की बात कही गयी है, वह* विशुद्ध गाँधीवादी भावना ही है। यही कारण है कि उपन्यास में जमींदार द्वारा किसानों में भूमि-वितरण के आदर्शवादी ढंग से समस्या को हल करने का प्रयत्न किया गया है। यह भी हृदय-परिवर्तन का उदाहरण है, जिसे गाँधीवाद में प्रमुख स्थान प्राप्त है। 'मैला आँचल' में जमींदारों, उनके पुत्रों, अधिकारी वर्ग और अवसरवादियों पर व्यंग्य में यथार्थवादियों की आलोचना के आक्रोश का अभाव भी इसी प्रवृत्ति का परिचायक है। जो जन-संघर्ष चित्रित हुआ है, उसकी सफलता पूँजीपति की प्रसन्नता पर निर्भर है, जो साम्यवाद के प्रतिकूल है, जिसके कारण उपन्यास में निराशा का घनीभूत कुहरा छाया हुआ है। मूल कथा की परिणति में लीन होने वाली इस उपकथा में तहसीलदार विश्वनाथ और संथालों के संघर्ष की कहानी कही गयी है। जन आन्दोलन के संघर्ष का फल हम उस समय देख पाते हैं, जब डॉ० प्रशान्त जेल से छूटते हैं और विश्वनाथ प्रसन्नता से विभोर हो संथालों को भूमि वितरण कर आन्दोलन को खतम कर देते हैं।

अराष्ट्रीय तत्वों की झलक

राजनीतिक दृष्टिकोण से उपन्यास की एक प्रमुख दुर्बलता ऐसे प्रसंगों का उल्लेख है जो राष्ट्रीय एकता के बाधक सिद्ध होते हैं। इसके अन्तर्गत हम साम्प्रदायिक जातिवाद की राष्ट्र विरोधी प्रवृत्ति के चित्रण को ले सकते हैं। मेरीगंज की तीन पार्टी जातिगत आधार पर निर्मित है और उनकी जातिवाद का एक स्वरूप देखिए—

---

१ फणीश्वरनाथ 'रेणु', मैला आँचल, पृष्ठ ४२५

२ डॉ० सुषमा धवन हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ ८६

"राजपूतों को ब्राह्मण टोलों के पण्डितों ने समझाया—जब-जब धर्म की हानि हुई है, राजपूतों ने ही उसकी रक्षा की है। घोर कलिकाल उपस्थित है। राजपूत अपनी वीरता से धर्म बचा लें। लेकिन बात बढ़ी नहीं। न जाने कैसे वह धर्मयुद्ध रुक गया। ब्राह्मण टोली के बूढ़े ज्योतिषी जी आज भी कहते हैं—यह राजपूतों के चुप रहने का फल है कि आज चारों ओर हर जाति के लोग गले में जनेऊ लटकाये फिर रहे हैं। भूमिफोड़ क्षत्री तो कभी नहीं सुना था— — शिव हो ! शिव हो !"

"अब गाँव में तीन प्रमुख दल हैं—कायस्थ, राजपूत, यादव। ब्राह्मण लोग अभी भी तृतीय शक्ति हैं। गाँव के अन्य जाति के लोग सुविधानुसार इन्हीं तीनों में बँटे हुए हैं। ब्राह्मणों की संख्या कम है, इसलिए वे हमेशा तीसरी शक्ति का कर्तव्य पूरा करते हैं।"

उपर्युक्त कथन ब्राह्मणविरोधी विचारों को उभाड़ सकते हैं और राष्ट्रीय भावनात्मक एकता के विघातक सिद्ध हो सकते हैं। गाँधीवादी बालदेव के मुख से भी कहलवाया गया है—'वह अपने गाँव में रहेगा, अपने समाज में, अपनी जाति में रहेगा। ...जाति बहुत बड़ी चीज है। जाति की बात ऐसी है कि सब बड़े बड़े लीडर अपनी-अपनी जाति की पार्टी में हैं। यह तो राजनीति है।'[1] कायस्थों पर व्यंग्य करते हुए जोतखी जी कहते हैं—'अकेले यादवों की बात रहती तो कोई बात नहीं थी, इसमें कायस्थ समाया हुआ है। मरा हुआ कायस्थ भी बिसाता है।'

समझ में नहीं आता, 'रेणु' जी ने राष्ट्रीय एकता के विघातक तत्त्वों को आंचलिक परिवेश में (जो स्वयं खण्डित राष्ट्रीय एकता का प्रतीक है) किस उद्देश्य से स्थान दिया है।

इसी प्रकार मादक द्रव्यों के पक्ष में प्रचार भी गाँधी जी के कार्यक्रम के विरोध में विहित हुआ है। उपन्यास में यौन-सम्बन्धों की प्रधानता से जो अशिव तत्त्व प्रतिष्ठित हुए हैं, वह भी राजनीतिक पक्ष को कमजोर बनाता है। ऐसे कुरुचिपूर्ण तत्त्व किसी सुपरिणति के साथ सम्बद्ध भी नहीं।

परती : परिकथा

रेणु के दूसरे बहुचर्चित आंचलिक उपन्यास 'परती परिकथा' को हम स्थूल रूप से पुनर्निर्माण का उपन्यास भी कह सकते हैं। 'मैला आँचल' के समान ही प्रस्तुत उपन्यास में भी राजनीतिक स्वर आंचलिकता में ही खोकर रह गये हैं। इसमें परानपुर नामक गाँव को आधार बनाकर सन् १९५५ के आसपास के वर्षों में हो रहे विकास-

---

१. फणीश्वरनाथ 'रेणु' - मैला आँचल, पृष्ठ ३६६

कार्यों के यथार्थ परिवेश में संक्रमणयुगीन भारतीय ग्रामों और उनकी समस्याओं को देखने का प्रयास है। परानपुर तीन ओर से परती जमीन से घिरा है और राजनीतिक कुचक्रों में विक्षुब्ध जितेन गाँव लौटकर धूसर, वीरान, अन्तर को योजनाबद्ध ढंग से बदलने का प्रयास करता है। इसी प्रसंग में लेखक विभिन्न ग्राम सुधार एवं विकास-योजनाएँ, जमींदारी उन्मूलन, लैन्ड सर्वे आपरेशन, कोसी योजना आदि सामयिक घटनाओं से परिचित कराता चलता है।

जितेन के पिता जमींदार होने के कारण सामन्तवाद के आधार स्तम्भ थे और उनके समय की परिस्थिति का चित्रण कर सामन्तवादी अनाचार और अत्याचार का विस्तृत चित्रण किया गया है। जितेन जब गाँव वापस लौटता है तब जमींदारी उन्मूलन योजना कार्यान्वित होती है और उसके परिणामस्वरूप जमींदार और किसान सभी दूसरों की जमीन हड़पने का दौर-दौरा प्रारम्भ होता है, जिससे ग्राम का वातावरण अशान्त हो उठता है। इस अवसर का लाभ उठाने के ध्येय से राजनीतिक दल क्रियाशील हैं और अनेक ग्रामनेता विभिन्न स्वार्थों से प्रेरित हो जनता के नेतृत्व का दावा करते हैं।

इसके साथ ही योजनाओं के प्रति ग्रामीणों की उपेक्षा, किसानों और भूमिहीनों के पारस्परिक विरोध, राजनीतिक पार्टियों के दाँव-पेंच के अनेक रंग बिरंगे चित्र लेखक की रिपोर्ताज शैली में सजीव हो उठते हैं। ये राजनीतिक हलचलें आर्थिक, सामाजिक एवं नैतिक समस्याओं के अंग रूप में हैं, अतः अपना विशिष्ट स्थान नहीं बना सकी हैं।

सच तो यह है कि 'परती परिकथा' में कथा तथा नायक को विशेष महत्व मिला ही नहीं है। जितेन्द्र और ताजमनी उल्लेखनीय पात्र होने पर भी नायक और नायिका की कोटि में नहीं रखे जा सकते। जितेन्द्र में निर्माणकारी तत्व सक्रिय हैं और उसकी कल्पना का ग्राम 'पंचचक्र' में देखा जा सकता है। नागरी तथा ग्रामीण जीवन को निकट से देखने पर वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि 'प्रतिबन्धन के खोये हुए सूत्र को खोज कर निकालना होगा। नहीं तो इस सार्वभौम रिक्तता से मुक्ति की कोई आशा नहीं।' इसीलिए वह गाँव में विषम परिस्थितियों के बीच यह भूले हुए सांस्कृतिक आयोजनों को पुनरुज्जीवित करने का प्रयास करता है और उसकी वास्तविक सिद्धि 'पंचचक्र' में निर्देशित है।

अन्तर्जातीय विवाह बनाम राजनीति

हरिजन शिक्षिका मलारी तथा भूमिहर सुवंशलाल में प्रणय-व्यापार सामाजिक विद्रोह का प्रतीक होते हुए भी समय की पुकार का एक अंग है। इस स्वच्छन्द प्रेम को समयानुसार बनाने की दृष्टि से ही कांग्रेसी मन्त्री द्वारा घोषणा करायी गयी है कि हरि-जन बाला से जो सवर्ण जातीय युवक वैवाहिक सम्बन्ध करेगा, उसे भारतीय छात्रवृत्ति

प्रदान की जावेगी। वस्तुतः यह कांग्रेस के हरिजनोद्धार का ही एक सक्रिय एवं सामयिक उदाहरण है।

'रेणु' के उपन्यासों की विशिष्टताएँ

'रेणु' के आंचलिक उपन्यासों में बोध प्रवाह शैली में ग्रामीण सामाजिक जीवन का जो यथार्थ एवं निरपेक्ष चित्रण मिलता है, वह हिन्दी उपन्यास साहित्य में अतुलनीय है। ग्रामविशेष के माध्यम से भारतीय ग्रामों का उनके निवासियों की सत् और असत् प्रवृत्तियों का ऐसा सूक्ष्म अंकन अन्य उपन्यास में अभी देखने को नहीं मिलता। यथार्थवादी ढंग से चित्रण होने पर भी इन उपन्यासों में आलोचक की कटुता का अभाव है। इस रूप में 'रेणु' अन्य समाजवादी यथार्थवादी उपन्यासकारों से अलग प्रतीत होते हैं। उनके उपन्यासों में ध्वनित आशावाद और मानवतावाद जीवन के द्वन्द्वात्मक रूप के अनुकूल है, जो सामूहिक जीवन और उसकी शक्ति को प्रतिबिम्बित करती है। ये पाठकों में वैचारिक तनाव उत्पन्न करने में सक्षम हैं और इसका कारण उपन्यासकार का अपना विशिष्ट गुण है। उनकी औपन्यासिक कला में यथार्थता की अनुकृति का प्रयत्न है और हास्य-व्यंग्यगर्भित शैली में अनेक राजनीतिक प्रसंग एवं पात्र सजीव हो उठे हैं। किन्तु इस पर भी इस तथ्य से भी आँखें नहीं मूँदी जा सकती कि इन उपन्यासों में बहुत कुछ नया होते हुए भी क्रमबद्ध कथानक और अन्तर्बाह्य द्वन्द्वों से विकसित व्यक्तित्व का अभाव है और सम्भवतः इसका मूलकारण आंचलिकता के प्रति लेखक का पूर्वग्रह ही है।

हीरक जयन्ती

नागार्जुनकृत 'हीरक जयन्ती' में कांग्रेस प्रशासन और प्रशासकीय दल के नेताओं की दुर्बलताओं और व्याप्त भ्रष्टाचार के एक पहलू व्यक्तिपूजा और उसको साधन बनाकर अपनी स्वार्थसिद्धि की कहानी व्यंग्यात्मक ढंग से वर्णित है।

उपन्यास के विवरणात्मक कथानक में एक प्रदेश (सांकेतिक रूप से बिहार) के मुख्य मन्त्री बाबू नरान नारायण सिंह की हीरक जयन्ती (जो ७५ वर्ष के स्थान पर ७१ वर्ष की आयु में ही मना ली जाती है) मनाने और उक्त अवसर पर उसको अभिनन्दन ग्रन्थ तथा इकहत्तर हजार रुपयों की थैली भेंट करने के आयोजन की तथा-कथा चित्रित है। इस मुख्य प्रसंग को केन्द्र बिन्दु बनाकर उपन्यासकार ने हीरक जयन्ती के आयोजन की तैयारियों तथा समारोह समिति के सदस्यों के जीवन का कच्चा चिट्ठा प्रस्तुत कर कथावस्तु का ताना-बाना बुना है और कांग्रेसियों पर व्यंग्य कसे हैं।

कथानक के अनुसार केन्द्रीय सरकार के एक मिनिस्टिर को अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करने का आयोजन कलकत्ते के पूँजीपति करते हैं। उस समारोह से प्रेरणा ले मृगांक

जो अपने प्रदेश के मिनिस्टर बाबू नरपतनारायण सिंह की हीरक जयन्ती मनाने तथा अभिनन्दन ग्रन्थ प्रदान करने की योजना बनाते है। इसे मूर्त रूप देने के प्रयास के सन्दर्भ मे समारोह-समिति के गठन, समिति के पन्द्रह सदस्यों के कलुषित जीवन के उद्घाटन, समिति की बैठको और चन्दा एकत्र करने की कार्य-विधियो तथा समारोह के व्यंग्य-पूर्ण विवरणो का समावेश कर जयन्ती वाली रात्रि को मन्त्री महोदय की पुत्री मृदुला के अपने प्रेमी के साथ भाग जाने की घटना को कथा से उपन्यास की परिसमाप्ति होती है।

'हीरक जयन्ती' का कथानक विस्तार के अभाव मे विवरण मात्र बनकर रह गया है। कथानक मे 'रिपोर्टिंग' की छाप है और उपन्यास मर्म को छू सकने मे असमर्थ है। पात्रो का चरित्र कथा के स्वाभाविक घात-प्रतिघात से विकसित न होकर लेखक द्वारा वर्णित होने के कारण प्रभावहीन है। उपन्यास मे कथा स्वल्प है और जो है भी, वह सगठन तथा परस्पर सम्बद्धता के अभाव मे विवरणात्मक अशो के बाहुल्य से बोझिल है।

एक समीक्षक ने ठीक ही लिखा है कि कोई स्थिति, कोई घटना, कोई व्यक्ति और व्यक्ति का कार्य समाज पर अपने व्यापक अच्छे बुरे प्रभाव के सन्दर्भ मे ही अच्छा बुरा होता है और प्राणी पर उसकी वांछित सचेतन प्रतिक्रिया तभी होती है, जब प्राणी पर पडने वाले प्रभावो के सन्दर्भ मे उन सबका चित्रण हो। इस सहज गुण का इस उपन्यास मे नितान्त अभाव है। यही कारण है कि मागार्जुन शासक वर्ग की यशोलिप्सा और उसकी आड मे होने वाले भ्रष्टाचार की विडम्बना के मर्म तथा उसके समाज एव प्रगति-विरोधी रूप का पर्दाफाश कर सकने मे असमर्थ रहो हो सके है।[1] अस्तु, भविष्य मे इस सम्बन्ध मे उनसे एक स्वतन्त्र औपन्यासिक कृति की अपेक्षित माँग की जा सकती है।

अनबुझी प्यास

दुर्गाशंकर मेहता कृत बुदेलखण्डी ग्रामीण जीवन पर आधारित 'अनबुझी प्यास' मे भी राजनीतिक सस्पर्श मिलता है। यद्यपि यह उपन्यास का मुख्य प्रतिपाद्य नहीं है। भूमिका-लेखक प० द्वारकाप्रसाद मिश्र के शब्दो मे सन् १९२०-२१ तथा १९३०-३१ के राष्ट्रीय आन्दोलन ने हमारे देहातो के स्थिर एव शांत जीवन मे भी प्रवाह और चेतना ला दी थी। उनकी झलक भी इस उपन्यास मे हमे अच्छी तरह दिखायी देती है। राष्ट्रीय सघर्षों का तथा ग्रामीण जीवन पर पडने वाली प्रतिक्रियाओ का चित्रण भी

---

१ आलोचना, अक २८, अक्टूबर, १९६३

यथार्थ हुआ है, जो हमें हिन्दी उपन्यास-सम्राट् प्रेमचन्द जी का स्मरण दिलाता है।' 'अनबुझी प्यास' में राजनीतिक भाव गहरा नहीं है, तथापि किसानों के बीच फैलती चेतना का आभास अवश्य मिलता है। राष्ट्रीय आंदोलनों के परिणामस्वरूप किसानों में जो राजनीतिक चेतना आयी थी, उसका पता हमें पात्रों के कथोपकथन में मिलता है—

रामभाऊ—किसान अपनी किस्मत जरूर फेर सकता है। ३५ करोड़ में से वे २६ करोड़ हैं। वजाओ तो सही, इन २६ करोड़ का आठवाँ भाग भी यदि सिर ऊँचा कर दे तो किसकी ताकत है कि उसे दबा सके? किसकी सामर्थ्य है कि उसका सामना कर सके? यह नागराज जब तक सोता है तभी तक खैर समझो। जिस दिन वह जागेगा, इस देश की छोर से छोर तक हिला देगा। रूस के किसान और मजदूरों ने वहाँ का राज उलट दिया। ऐसा ही होगा। जैसा वहाँ आज उनका राज है, इस देश में भी एक दिन वैसा ही होगा। सारी दुनियाँ में किसानों और मजदूरों का राज हो के रहेगा।'[1] और भवानी भी मानता है 'जो रूस में हुआ क्या एक दिन यहाँ न हो सकेगा? लगभग उतना ही बड़ा देश है बल्कि आबादी में यह बड़ा है। किसानों की हालत भी वैसी ही खराब है। परन्तु यह बात नहीं है। इन्हें अपनी शक्ति का भान नहीं है। महात्मा जी ने कानों में मन्त्र तो फूँका है, पर वह अभी तक पूरी तरह जैसा नहीं है।'[2] सच्चे भारतीय समाजवादी दृष्टिकोण की परख हम लेखक में यहीं मिलती है।

राजनीतिक स्थिति और घटनाओं का चित्रण

'अनबुझी प्यास' में सन् १९२१ के असहयोग आन्दोलन के विभिन्न तथ्यों का संकेत भी मिलता है। राष्ट्रीय शालाएँ प्रारम्भ होने, कांग्रेस के मेम्बर बनाने के अभियान, कांग्रेसियों की गतिविधियों का अंकन इसी के अन्तर्गत हुआ है। कांग्रेसियों की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है 'छोटे-छोटे गाँवों में सिर छिपाने की जगह नहीं मिलती, खासकर रैयतवारी मौजों में तो वहाँ का पटेल, जो अपने को एक तरह का सरकारी दर्जन मानता, कांग्रेस वाले को घर में पैर न रखने देता था। तब वे किसी गरीब किसान की गोशाला को निरखकर आतिथ्य स्वीकार कर लिया करते। उनके पीछे पुलिस लगी रहती।'[3]

कांग्रेस की तत्कालीन गतिविधियों का उनकी सभाओं का विवरण भी मिलता है।[4] राजनीतिक चेतना का प्रसार कस्बों तक में हो गया था—कांग्रेसियों का देख एक

१ दुर्गाशंकर मेहता अनबुझी प्यास, पृष्ठ ६३
२ दुर्गाशंकर मेहता अनबुझी प्यास, पृष्ठ ६४
३ दुर्गाशंकर मेहता अनबुझी प्यास, पृष्ठ १२२
४ दुर्गाशंकर मेहता अनबुझी प्यास, पृष्ठ १२३

बच्चा पूछता है—'काय बऊ जे गादीबारे आये।' तो दूसरा कहता है—'हट ! छुलाज वाले आयें।'[1]

कांग्रेसी वस्तुत गांधी टोपी और खद्दर के कपडे से ही पहचान लिये जाते थे। वे इसीलिए 'सफेद कपडे की नकली गांधी टोपी लगाते थे। उन दिनों खादी न मिलने के कारण किसी भी सफेद कपडे की किश्तीनुमा टोपी को लोग गांधी टोपी कहते।'[2]

रमपुरा ग्राम की कहानी के माध्यम से नमक-सत्याग्रह का विवरण दिया गया है। मानेगांव मे जगल सत्याग्रह का जो चित्रण किया गया है, वह भी सजीव और प्रभावोत्पादक है।[3]

नौकरशाही की स्थिति

उपन्यास मे समसामयिक नौकरशाही की गतिविधियो का उल्लेख भी अनेक प्रसगो पर आया है। गांधी जी के सरकारी पद-त्याग का आह्वान करने पर जो स्थिति थी, उसके बारे मे कहा गया है 'छोटे नौकरो मे तो भी कुछ पैंदी रही आती है, पर बडो की तो घिसघिसाकर बिलकुल गोल हो जाती है। गांधी महात्मा की पुकार पर कितने कितने छोटे नौकरो ने नौकरियां छोड दी थी ! स्कूल मास्टरो ने, पुलिस के सिपाहियो ने, दफ्तरो के बाबुओ ने सभी जात के छोटे नौकरो मे से बहुता ने छोड दी।'[4]

इतना होने पर भी नौकरशाही का अत्याचार कम न हुआ। पुलिस के अन्याय[5] और जेल-जीवन[6] की यातनाएँ बढी और जिनका उपन्यास मे अकन किया गया है।

अवसरवादी कांग्रेसी

नौकरशाही की आलोचना के साथ-साथ लेखक और कांग्रेसी मत्री श्री दुर्गाशकर मेहता ने अवसरवादी कांग्रेसियो की स्वार्थपरता का पर्दाफाश कर अपने निष्पक्ष, ईमानदार साहित्यिक व्यक्तित्व का परिचय दिया है।

---

१. दुर्गाशकर मेहता अनबुझी प्यास, पृष्ठ १२४
२ दुर्गाशकर मेहता अनबुझी प्यास, पृष्ठ १२४
३ दुर्गाशकर मेहता अनबुझी प्यास, पृष्ठ २३१-३५
४ दुर्गाशकर मेहता अनबुझी प्यास, पृष्ठ ८०
५ दुर्गाशकर मेहता अनबुझी प्यास, पृष्ठ ३६६-६७
६ दुर्गाशकर मेहता अनबुझी प्यास, पृष्ठ ३६२-६५

पुलिस कान्स्टेबिल तिवारी बाबा रिपुदमनसिंह से बतलाता है : 'जब से सौराज का हल्ला उठा है, वह भी (ऊपरी आमदनी) भी जाती रही, रसद बिगार सब एकदम बन्द हो गया . सो भी महराज हम गरीबों ही का—बड़े लोग अभी पाते चले जाते हैं—उनकी चांदी जैसी की तैसी गलती रहती है—हम छुटभैयों को दबाते हैं—पर अफसरों का मजीजी वे ही लोग किये जाते हैं, जो बड़े-बड़े लेक्चर बघारते हैं। प्लेटफार्म पर खड़े हो, तो ऐसा बकते हैं, जानो एक फूंक म राज लौटा देंगे —पर घर में जाके दरोगा लोगों के संग हँसते बोलते हैं बैठते-उठते हैं—खूब छनती है—खुशामद-बरामद करते हैं—और तो और बाबा जी ! मैंने आंखों देखा है, गांधी टोपी वाले खुद उनकी मुट्ठी गरम करते हैं—दलाली भी करते हैं।'[1]

उपन्यास का एक कांग्रेसी पात्र है 'देशसेवक', छापेखाने का मालिक नवल किशोर वर्मा। खद्दर पहनते हैं, एक बार जेल भी हो आये हैं। इतना होने पर भी वे 'किसानों का बिगुल' नामक परचा नहीं छापते। उनका कथन है : देश प्रेम के लिए आदमी जहल जा सकता है, जरूरत हो तो फाँसी के तख्ते पर चढ़ सकता है, पर खुद अपने हाथों अपने बाल बच्चों को जहर नहीं दे सकता—अपनी जायदाद नहीं लुटा सकता।'[2]

कांग्रेसी पात्र

गांधी युग का उपन्यास होने के कारण 'भनवुझी प्यास' में कांग्रेसी पात्रों की उद्भावना स्वाभाविक है। सीताराम वकील, भवानी, ब्रजभूषण और धीरजसिंह जैसे पात्र कांग्रेस के नेतृत्व में हुए राष्ट्रीय आन्दोलनों की ही देन है। सीताराम वकील यद्यपि सक्रिय कांग्रेसी नहीं है, किन्तु उनके अनुयायी तो है ही। वे नेम से खादी पहनते, मेम्बर बनते और कांग्रेस कमेटी को अपनी आमदनी के एक निश्चित भाग को प्रतिमाह भेंट किया करते। उन्होंने कुछ वकीलों से सम मिलकर एक सभा बनायी, जो गरीबों को मुफ्त सलाह देती और सफाई सच्ची होने पर बिना फीस पैरवी करती।[3] वे पक्के सिद्धान्तवादी है।

ब्रजभूषण एक ऐसे पात्र है, जो सोचते थे 'वर्ष बीतते बीतते स्वराज्य मिल जायगा। गांधी जी ने कह ही दिया है फिर क्या है, इस देश में सोना बरसने लग

---

१ दुर्गाशंकर मेहता . भनवुझी प्यास, पृष्ठ १९६-१९७
२ दुर्गाशंकर मेहता भनवुझी प्यास, पृष्ठ ४८१
३ दुर्गाशंकर मेहता भनवुझी प्यास, पृष्ठ ११०

जायेगा।'[1] गाँवों का स्वराज्य मिलने पर दो दिनों में ठीक कर लेंगे। पर बरस बीता, दूसरा बीतने आया। भगत जी की कांग्रेसी देखो और रचनात्मक काम के बहाने गाँव सुधारने हेतु गाँव में बस गये। वे मानने लगे कि 'राष्ट्र-निर्माण तभी हो सकता है, जब बुनियाद पक्की डाली जाय। कच्ची नींव की इमारत चदरोजा हुआ करती है। हमें तो स्थायी और मजबूत काम करना है। देश की बुनियाद कहो अथवा उसका पाया कहो, उसके सात लाख गाँव हैं।'[2] इसी को आधार बनाकर वे झण्डा सत्याग्रह में भाग नहीं लेते और 'सहकारी खेती' को प्रोत्साहित करने के लिए 'भाई-बन्दी सभा' कायम करते हैं। ब्रजभूषण का चरित्र भी सीताराम वकील के सदृश ही अविकसित रह गया है।

भवानी का व्यक्तित्व भी कांग्रेसी पात्र के रूप में उभरा है। भवानी को कांग्रेस का चवन्नी सदस्य बनकर अनुभव होता है: 'मैं उस महासभा का मेम्बर हूँ, जिसकी धाक आज यह अंग्रेजी राज्य भी मानता है, जिसका नाम देश-विदेश में फैला हुआ है, जिसकी सत्ता को लगभग सभी हिन्दू तो मानते ही हैं, बड़े-बड़े मुसलमान मुखिये और विख्यात मौलवी भी मानते हैं।'[3] अपने भाई की चिन्ता का वह व्यक्त करते हुए कहता है 'भाई कांग्रेस के नाम से डरता है, कि जो कांग्रेस में भरती होता है, अगर उसमें टिका रहे तो एक न एक दिन जहल गये बिना न रहेगा। उसका एक पाव जहल ही में रहा आता है।'[4] इतना होने पर भी भाई के प्रति पूर्ण श्रद्धा के साथ वह आन्दोलनों में सक्रिय भाग लेता है। वह किसानों को संगठित करता है और 'किसानों का बिगुल' नामक परचा बाँटते हुए पकड़ा जाता है। उसे कैद साल की सजा होती है और वह खतरनाक माना जाने के कारण अलग गुनाहखाने में रखा जाता है।

धीरजसिंह का क्षणिक राजनीतिक जीवन 'जङ्गल सत्याग्रह' के माध्यम से व्यक्त हुआ है। गोविन्द के शब्दों में 'महात्मा जी ने यहाँ मिट्टी के पुतलों में भी जान फूंक दी है। देखने नहीं थे धीरज कितना सीधा था, बोलने में सकुचता था, उसी को आज देखो तो ताज्जुब होता है- कितना कर्मठ हो गया है।'[5] धीरज का उपन्यास में जितना व्यक्तित्व उभरा है, अच्छा बन पड़ा है।

गांधीवाद और लेखक

उपन्यासकार स्वयं गांधीवादी राजनीतिक रहे हैं, अतः उपन्यास में प्रसंगानुसार

---

१ दुर्गाशंकर मेहता : अनबुझी प्यास, पृष्ठ १२४

२ दुर्गाशंकर मेहता : अनबुझी प्यास, पृष्ठ १२६

३ दुर्गाशंकर मेहता : अनबुझी प्यास, पृष्ठ २७५

४ दुर्गाशंकर मेहता : अनबुझी प्यास, पृष्ठ २५७

५ दुर्गाशंकर मेहता : अनबुझी प्यास पृष्ठ २४८

गाँधीवादी तत्वों की विवेचना उन्होंने पात्रों के माध्यम से की है। अहिंसा, सत्याग्रह, साध्य के अनुरूप साधन की पवित्रता, सहकारी खेती आदि विषयों पर लेखक ने अपने विचार व्यक्त किये हैं।

भवानी और गोविन्द की वार्ता के द्वारा अहिंसा पर जो विचार व्यक्त किये गये हैं, वे वस्तुतः गाँधी जी के ही कथन हैं। यथा–'निश्शस्त्र देश सरकार की संगठित निरंकुशता का सामना हिंसा से कभी नहीं कर सकता।' 'सच्ची अहिंसा अबला नहीं की अहिंसा है–कायर कमजोर तो शक्तिहीनता के कारण भी अहिंसक बन सकता है–सच्ची अहिंसा वह है कि कमर में तलवार कसे हुए भी हम केवल इसलिए सिर झुका दें, क्योंकि हमारे मन में बदले की भावना मर चुकी है।'[1]

व्रजभूषण सत्याग्रह की महत्ता पर विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं–'तोप तलवार के सहारे कितने दिन कोई राज चल सकता है अंग्रेजी राज की तह के नीचे भले ही पाशविक संहारकारिणी शक्ति जाग रही हो, परन्तु रोजमर्रा का राजकर्म तो चाँदी की चमकीली गोलियों और निरी पोली धाक के जरिये होता है। सत्याग्रह उसी धाक के नष्ट करने की दवा है।'[2]

व्रजभूषण साध्य के अनुरूप साधन की पवित्रता पर बल देते हुए गाँधी जी के कथन को उद्धृत करते हैं—'महात्मा गाँधी ने बारम्बार चेतावनी दी है, उन्होंने सैकड़ों बार कहा है कि अंग्रेजी कहावत है कि ध्येय की प्राप्ति के लिए कैसे भी उपायों का प्रयोग किया जा सकता है, सर्वथा मिथ्या है। होना यह चाहिए कि साधन के अनुरूप ही साधन भी पवित्र हो, शुद्ध उद्देश्य के उपकरण भी वैसे ही शुद्ध हों—मिथ्या साधनों के प्रयोगों के प्रयोग से साध्य के कलुषित हो जाने का भय है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि उपन्यासकार ने विविध प्रसंगों पर गाँधीवाद के सिद्धान्तों को पुष्ट करने का अवसर निकाल लिया है।

ooo

---

१ दुर्गाशंकर मेहता : अनबुझी प्यास, पृष्ठ २३८

२. दुर्गाशंकर मेहता : अनबुझी प्यास, पृष्ठ २७०

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों की प्रवृत्तियां एवं कला-पक्ष

> राजनीतिक उपन्यासों का शिल्प-वैशिष्ट्य

> कथानक में राजनीतिक संस्पर्श

यथार्थता के प्रति आग्रह
वर्ण्य विषय
वाद निरपेक्ष
वाद-सापेक्ष

> कथा-वस्तु के अभिव्यक्ति के ढंग

> वस्तु-विधान की विभिन्न पद्धतियाँ

विवरण-शैली
राजनीतिक पात्र
दृश्य विधान-शैली
मनोरमिक उपन्यास
गठन-शैथिल्य
विषयाधिक्य एवं कारण

> चरित्र-चित्रण की दृष्टि से

एकांगी व समतलीय पात्र
शोषक और शोषित पात्र
पात्रों के भेदोपभेद
ध्येय-चरित्र
पात्र-चयन, संख्या और परिधि
पात्र ऐतिहासिक नहीं, कल्पित

> कथोपकथन की दृष्टि से

कथोपकथन और कथानक का विस्तार
पात्रों की व्याख्या
उद्देश्य का स्पष्टीकरण
वातावरण की सृष्टि

> वातावरण की दृष्टि से

मुख्य प्रभाव की अभिव्यक्ति

वातावरण और आंचलिकता

> उद्देश्य

> शैलीगत वैशिष्ट्य—भाषा, पात्रानुकूल भाषा, प्रादेशिक बोली और यथार्थ

राजनीतिक उपन्यासों का शिल्प-वैशिष्ट्य

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासो के विवेचनोपरान्त उनके तत्व एव रूप-विधान का अध्ययन तात्विक दृष्टि से आवश्यक है। ज्ञान और विज्ञान की प्रगति के परिणाम-स्वरूप समय समय पर अनेक महामनीषियो के सैद्धान्तिक विचारो से प्रभाव ग्रहण करते हुए औपन्यासिक तत्वो की स्थिति मे भी दृष्टि-विस्तार होता रहा है। फ्रायड और मार्क्स के सिद्धान्तो ने जीवन की व्याख्या के नये दृष्टिकोण प्रस्तुत किये जिससे उद्देश्य को उपन्यास में निर्दिष्ट स्थान मिला। मार्क्स ने व्यक्ति के आन्तरिक यथार्थ की अपेक्षा सामाजिक यथार्थ जीवन-दृष्टि को महत्व दिया। राजनीतिक क्षेत्र मे सामन्तवाद के पराभव एव श्रमिक शक्ति के विकास से सामान्य व्यक्ति का महत्व बढा और उपन्यास भी इस परिवर्तित स्थिति मे साधारण जन-जीवन के 'एलबम' के रूप मे सामने आया। इस नये रूप मे वह परिवर्तित युग की नयी अभिव्यक्ति का वाहक बना। डॉ० सत्येन्द्र के शब्दो मे . 'उपन्यास नये युग को नयी अभिव्यक्ति का नया रूप है। साहित्य के रूपो के उद्भव के सम्बन्ध मे यह एक अखण्ड सत्य है कि वे व्यक्ति और युग के शाश्वत और सामयिक रसायन का परिणाम होते हैं।'[1]

जीवन को उसी रूप मे जैसा कि वह है, चित्रित करने की प्रवृत्ति से यथार्थोन्मुखता उपन्यास की सामान्य विशेषता हुई। वस्तुत यह राजनीतिक परिस्थितियो से उत्पन्न प्रतिक्रिया है, जिसने जीवन को नयी दृष्टि दी। जैसा कि पूर्व ही कहा जा चुका है, सामन्तवाद के पराभव से उत्पन्न राजनीतिक स्थिति ने मनुष्य और समाज के पारस्परिक सम्बन्ध को स्पष्ट किया और सामान्य जन महत्ता प्राप्त कर विचार एव प्रेरणा का स्रोत बना। इसी राजनीतिक चेतना के कारण हिन्दी उपन्यास मे आभिजात्य भाव का लोप हुआ और वर्ण्य वस्तु मे राजनीतिक प्रभाव परिलक्षित हुआ। इस परिवर्तन को सामाजिक यथार्थवादी दृष्टिकोण का प्रतिफलन भी कहा जा सकता है।

वर्ण्य वस्तु मे राजनीति-संस्पर्श

जहाँ तक कथावस्तु का प्रश्न है, राजनीतिक उपन्यास मे उसके विन्यास का विशिष्ट महत्व है। इस कोटि के उपन्यास मे लेखक राजनीतिक घटनाओ या राजनीतिक विचारधारा को आधार मानकर कथावस्तु की रचना करता है। इस प्रक्रिया मे राजनीतिक परिपार्श्व की बडी अपेक्षा रहती है और सामाजिक, आर्थिक और वातावरण मे

---

1 डा० सत्येन्द्र साहित्य सदेश (मासिक), अक जुलाई-अगस्त, १९५६, पृष्ठ ५६

निर्मित कथानक ही विस्तार पाता है। प्रेमचन्द से पूर्व तक हिन्दी उपन्यास में राजनीति की चर्चा उपेक्षित दृष्टि से देखी जाती रही। यह कहना अन्यथा न होगा कि तब तक उपन्यास मनोरंजन के अतिरिक्त समाज, व्यक्ति, राजनीति और जीवन की यथार्थता से दूर था। राष्ट्रीय आन्दोलनों से उत्पन्न राष्ट्रीय चेतना को प्रेमचन्द ने युग निर्धारक शक्ति के रूप में ग्रहण किया और हिन्दी उपन्यास को मानव-कल्याण की भूमिका पर प्रतिष्ठित किया। वे मानते थे कि राजनीति समय को गढ़ती है—युग का निर्धारण करती है। अतः उपन्यास जब बाह्य परिस्थितियों से जूझते जीवन की व्याख्या करता है, तब वह राजनीति से अपने को पृथक् नहीं रख सकता, क्योंकि राजनीति सदैव से समाज के सुख दुःख का निर्धारण करने वाली शक्ति रही है। यही कारण है कि प्रेमचन्द के अधिकांश उपन्यास राजनीति प्रभावित समाज की यथार्थ समस्याओं के जीवन्त प्रतीक हैं। नागार्जुन और यशपाल के राजनीतिक उपन्यासों के बारे में भी यही कहा जा सकता है।

भारतीय राजनीति का विकास सामाजिक सुधारवाद के मार्ग से प्रशस्त होने के कारण साहित्य में भी वह उसी ढंग से आया है। हिन्दी उपन्यास में सामाजिक परिपार्श्व में ही राजनीति का प्रभाव परिलक्षित होता है। इसी कारण कहा गया है कि 'सामाजिक और राजनीतिक भावनाओं का परस्पर इस भाँति सम्मिश्रण हो गया कि जिस प्रकार शुद्ध सामाजिक उपन्यास नहीं है, उसी प्रकार शुद्ध राजनीतिक उपन्यास नहीं के बराबर है।'[1] वस्तुतः यह हिन्दी राजनीतिक उपन्यास की उपलब्धि है, जो भारतीय राजनीति के अनुकूल है। इस रूप में सामाजिक कथांश राजनीति का ही पूरक है।

यथार्थता के प्रति आग्रह

उपन्यास साहित्य के अध्ययन से यह तथ्य स्पष्ट रूप से सामने आता है कि उपन्यास की रचना में उपन्यास लेखक स्वतन्त्रता का आग्रह कर उसे मनमाना रूप देता आया है। प्राचीन लेखक मनोरंजनात्मक दृष्टिकोण से उपन्यास को प्रायः अलौकिक, कल्पनात्मक वैचित्र्य की भूमि पर ही प्रतिष्ठित करता रहा है। किन्तु राजनीतिक उपन्यास में उपन्यासकार पूर्णतः स्वच्छन्द नहीं रह सकता। राजनीति और समाज तथा व्यक्ति और उनकी समस्याएँ यथार्थ वस्तुएँ हैं। फलतः इनको अपनाते हुए उपन्यास यथार्थ की भूमिका से पृथक् नहीं हो सकता। यथार्थ की अपनी सीमाएँ होती हैं और उन सीमाओं का वह अतिक्रमण नहीं कर सकता। यदि वह अपने प्रतिपाद्य के प्रति न्याय करने में असमर्थ रहा तो उसके हाथ केवल असफलता ही आयगी। वास्तविकता को वह उपन्यास से परे नहीं कर सकता। इसी वास्तविकता के साथ ही राजनीतिक उपन्यासों

---

१ श्रीनारायण अग्निहोत्री हिन्दी उपन्यास साहित्य का शास्त्रीय विवेचन, पृष्ठ २८६

में औपन्यासिक तत्व अपनी सत्ता निर्मित करते हैं। विशिष्ट दृष्टिकोण के कारण ही राजनीतिक उपन्यासों में कथावस्तु, चरित्र चित्रण, कथोपकथन, देश काल आदि सभी तत्व किंचित परिवर्तित रूप में मिलते हैं। वर्ण्य विषय के सैकट्य में रहकर ही उसकी कला की सार्थकता है। हिन्दी के प्राय सभी राजनीतिक उपन्यासों में वर्ण्य वस्तु का चित्रण यथार्थता की भूमिका पर हुआ है। प्रेमचन्द के राजनीतिक उपन्यासों में भी आदर्श की गूंज होते हुए भी यथार्थ का समुचित निर्वाह हुआ है। उनके उपन्यासों में आदर्श की जो छाप अंकित है, वह भी गाँधीवादी आदर्शवादिता का प्रतिफल है, जिसे समीक्षकों ने 'आदर्शोन्मुख यथार्थ' की संज्ञा दी है।

वर्ण्य विषय

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों में वर्ण्य वस्तु दो रूपों में आयी है–एक तो वाद निरपेक्ष और दूसरी वादसापेक्ष। यों कुछ उपन्यासों में इसका मिश्रित रूप भी मिलता है।

वादनिरपेक्ष उपन्यास

वादनिरपेक्ष उपन्यास समसामयिक प्रचलित राजनीतिक सिद्धान्तों से विशेष आबद्ध न होकर भी समाज की समसामयिक परिस्थितियों का आकलन करते हुए अपनी स्वतन्त्र स्थिति नहीं खोते तथापि वे उन अनेक सामाजिक घटनाओं को लेते हुए वाद-सापेक्ष उपन्यासों के क्रम से बहुत दूर नहीं होते। अतएव इतना तो अवश्य होता है कि वाद निरपेक्ष राजनीतिक उपन्यास राजनीतिक घटनाओं पर आधारित रहते हैं और घटनाप्रधान होते हैं। ये ऐतिहासिक उपन्यास के निकट होते हैं और युग की राजनीतिक घटनाओं और वातावरण को यथातथ्य रूप में प्रस्तुत करते हैं। इनके लिए आवश्यक है कि उपन्यासकार को सामयिक राजनीति और सम्पूर्ण वातावरण की जानकारी हो। वाद निरपेक्ष उपन्यास का ध्येय किसी राजनीतिक विचारधारा का प्रचार नहीं होता। वह तो मात्र राजनीतिक घटनाओं और उनसे प्रभावित क्षेत्रों का तटस्थ चित्रण करता है। अनन्तगोपाल शेवडे के 'ज्वालामुखी' और प्रतापनारायण श्रीवास्तव के 'बयालीस' में अगस्त-क्रान्ति का चित्रण इसी विधि से किया गया है। रांगेय राघव के 'विषाद मठ' और अमृतलाल नागर के 'महाकाल' को भी इसी कोटि में रखा जा सकता है। इस प्रकार के वादनिरपेक्ष उपन्यास का कथानक घटना प्रधान होगा, जो एक सूत्र में पिरोयी विभिन्न राजनीतिक घटनाओं की माला के रूप में होता है। यह ऐसा सामयिक आख्यान होता है, जिसमें एक ही कथानक के अन्तर्गत यथार्थ जीवन के निरूपण करने वाले पात्रों का सामयिक घटनाओं की भूमिका पर चित्रण होता है।

वाद सापेक्ष उपन्यास

वाद-सापेक्ष उपन्यास सोद्देश्य होते है और निश्चित आदर्शों को लकर चलते है। इस प्रकार के उपन्यासो मे लेखक उपन्यासकार के साथ-साथ राजनीतिक नेता के रूप मे सम्मुख आता है। वह मान्य राजनीतिक आदर्शों का निर्देश करता है और उसका मुख्य ध्येय होता है समाज को विशिष्ट राजनीतिक दृष्टिकोण के अनुरूप बदलने की प्रेरणा देना। ऐसे उपन्यास प्राय लेखक की मान्यता की सीमा मे ही होते है।

हिन्दी के वाद सापेक्ष राजनीतिक उपन्यासो को मुख्यत निम्नलिखित श्रेणियो म वर्गीकृत किया जा सकता है —

(१) गाँधीवाद से अनुप्राणित उपन्यास —प्रेमचन्द के 'प्रेमाश्रम', 'कर्मभूमि' व रगभूमि', अनन्तगोपाल शेवडे का 'ज्वालामुखी,' प्रतापनारायण श्रीवास्तव का 'बयालीस'।

(२) साम्यवाद समाजवाद से अनुप्राणित उपन्यास—यशपाल व नागार्जुन के प्राय समस्त उपन्यास, राजेन्द्र यादव का 'उखडे हुए लोग,' नित्यानद वात्स्यायन का 'केलावाडी' अमरकांत का 'सूखा पत्ता,' अमृतराय व भैरवप्रसाद गुप्त के के प्राय सभी उपन्यास।

(३) सर्वोदयी भावना के उपन्यास अमृतलाल नागर का 'बूँद और समुद्र' और नागार्जुन का 'दुखमोचन।'

(४) सम्प्रदायवाद से प्रेरित उपन्यास—गुरुदत्त के प्राय सभी राजनीतिक उपन्यास सम्प्रदायवाद से बाभिल है।

हिन्दी क राजनीतिक उपन्यास —चाहे वे वादनिरपेक्ष हो या वाद-सापेक्ष अनुभवजन्य कथावस्तु को लेकर ही चले हैं। अधिकाशत इन उपन्यासो म कल्पना का उपयोग आकर्षण-वृद्धि के लिए किया गया है और अतिशयता से बचने का प्रयास है। ऐतिहासिक यथार्थता को ग्रहण करने के प्रति इन उपन्यासकारो का पूर्ण आग्रह रहा है। प्रेमचन्द, रेणु, नागार्जुन, मन्मथनाथ गुप्त गुरुदत्त और अचल, सभी ने अपने राजनीतिक उपन्यासो मे वास्तविकता को कथावस्तु के माध्यम से ही उभारा है। यह युगविशेष का अध्ययन करके उसके किसी खण्ड के वास्तविक वातावरण की चित्रण की सफल कृति हैं। इनमे कथावस्तु के सयोजक तत्वो के सुमेल से वाछित राजनीतिक प्रभाव द्रष्टव्य है।

मिश्रित उपन्यास

हिन्दी मे ऐसे राजनीतिक उपन्यासो की सख्या भी कम नहीं है, जिनमे राजनीतिक

विचारधारा और राजनीतिक घटनाओं का सम्मिश्रण है। किन्तु इन मिश्रित उपन्यासों में वर्णित घटनाएं मुख्यतः विशिष्ट राजनीतिक विचारधारा को पुष्ट करने के उद्देश्य से ही सर्जित की गयी हैं।

कथावस्तु के अभिव्यक्ति के ढंग

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों ने कथावस्तु की अभिव्यक्ति के लिए विभिन्न शैलियों का अनुसरण किया है। इनमें अधिकांशतः विवरणात्मक शैली में मिलते हैं। इनमें उपन्यासकार इतिहासज्ञ की भाँति पूरे विवरण प्रस्तुत करता चलता है तथा महाकाव्य के प्रणेता की भाँति पात्रों के नाटकीय कथोपकथन के माध्यम से घटनाओं को अग्रसर करने और स्वयं को उद्घाटित करने का अवसर देता है। प्रेमचन्द के समस्त राजनीतिक उपन्यास, देवेन्द्र सत्यार्थी का 'कठपुतली,' विष्णु प्रभाकर का 'निशिकान्त,' भगवतीचरण वर्मा का 'टेढ़े मेढ़े रास्ते,' अमृतराय का 'बीज,' भैरवप्रसाद गुप्त का 'सती मैया का चौरा,' रांगेय राघव का 'सीधे-सादे रास्ते' इत्यादि उपन्यास इसी शैली में लिखे गये हैं।

जैनेन्द्र का 'सुखदा,' अज्ञेय का 'शेखर: एक जीवनी,' नागार्जुन का 'बलचनमा' और रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' का 'उल्का' आत्मकथात्मक शैली में लिखे गये राजनीतिक उपन्यासों के उदाहरण हैं। इन उपन्यासों में पात्र आत्मकथा के माध्यम से घटना-विस्तार करते हैं। घटनाओं और पात्र को सजीव बनाने की दृष्टि से इन उपन्यासों में पूर्वदीप्ति पद्धति का प्रयोग भी मिलता है।

रेणु ने 'परती परिकथा' में चेतना-प्रवाह-पद्धति को अपनाकर चरित्रों के अन्तर्मन की थाह लेने की चेष्टा की है। इस रूप में उपन्यास इन्द्रियग्राह्य यथार्थ को अधिक गम्भीरता से ग्रहण करने को प्रेरित करता है।

हिन्दी उपन्यास-साहित्य में प्रणाली के रूप में छिन्नदलकमल और कदलीपात विलोम शैली के उदाहरण भी मिलते हैं। छिन्नदल कमल के रूप में लेखक देश विदेश की असम्बद्ध घटनाओं को कथानक का ढाँचा देता है और उद्देश्य विभिन्न क्षेत्रीय व्यक्तियों के जीवन की साधारण घटनाओं को लेकर कतिपय जीवन-स्वरूप उपस्थित कर देता है। यशपाल का 'देशद्रोही' उपन्यास ही इस शैली का एकमात्र उदाहरण है।

[illegible] कदलीपात विलोम के रूप में लेखक घटनाओं को ऐतिहासिक कालानुक्रम में प्रस्तुत न करके उन्हें [illegible] कालानुक्रम दे देता है। जैनेन्द्र के प्रथम राजनीतिक उपन्यास 'कल्याणी' में [illegible] मिलता है।

पत्रात्मक [illegible] शैली पद्धति में हिन्दी का एक भी राजनीतिक उपन्यास नहीं लिखा गया।

राजनीतिक उपन्यास के विवरणात्मक स्वरूप के कारण महाकाव्यात्मक रूप ही अधिक उपयुक्त सिद्ध हुआ। आत्मकथात्मक रूप में भी इसे आंशिक सफलता मिली है और 'बलचनमा' इसका उदाहरण है।

वस्तु-विधान की पद्धतियाँ

आधुनिक औद्योगिक युग की छाया में राजनीतिक वर्ण्य वस्तु के कारण आधुनिक हिन्दी उपन्यास में एक नया मोड़ आया। यह परिवर्तन केवल वस्तु में नहीं, अपितु वस्तु-विधान में हुआ। सच तो यह है कि आधुनिक राजनीति और समाज के यथार्थ से परे किसी उपन्यास का सर्जन ही असम्भव हो रहा है, वही आधुनिक उपन्यास की यथार्थ आधुनिकता है। यद्यपि उसकी अभिव्यंजनात्मक पद्धतियों की अनेक श्रेणियाँ वर्गीकृत हुई हैं। राजनीतिक उपन्यासकार इस तथ्य से परिचित प्रतीत होते हैं कि केवल घटनाओं को एकत्र करने से ही कोई उपन्यास नहीं रचा जा सकता। पर्सी लब्बक का मत है कि *उपन्यास घटनाओं की शृङ्खला मात्र नहीं है। वह एक सम्पूर्ण चित्र या आलेख है,* जिसमें रूप, प्रवचन एवं समानुविधान भी आवश्यक होता है। राजनीतिक उपन्यास में वस्तु विधान का विशिष्ट महत्व है, क्योंकि उसकी कुशलता से ही घटनाओं, पात्रों और वातावरण का उद्देश्य की पूर्ति के लिए निर्वाह किया जा सकता है। राजनीतिक उद्देश्य को लेकर राजनीतिक उपन्यास की रचना करते समय लेखक नेता की तरह नाना विधि से पाठकों को प्रभावित करने की चेष्टा में रहता है। सम्भवतः यही कारण है कि राजनीतिक उपन्यासों में विभिन्न वस्तु विधान की पद्धतियाँ ग्रहण की गयी हैं। हिन्दी में पनोरमिक, सरितोपम एवं चेतना प्रवाह उपन्यासों की रचना का प्रयास राजनीतिक उपन्यासों की देन है। विवरण शैली में दृश्य-विधान भी राजनीतिक उपन्यासों में ही उभरा है।

विवरण-शैली

विषय विकास की दृष्टि से अधिकांश उपन्यासकारों ने राजनीतिक उपन्यास की रचना में विवरण शैली को ग्रहण किया है। हिन्दी के प्रथम राजनीतिक उपन्यासकार प्रेमचन्द ने मुख्यतः विवरण शैली में उपन्यासों की रचना की है और आज भी अधिकांश राजनीतिक उपन्यास वस्तु विधान की इसी शैली में लिखे जा रहे हैं। राजनीतिक समस्याओं को लेकर चलने एवं उनके उद्घाटन की सफलता के लिए यह सर्वाधिक प्रचलित शैली हो गयी है। प्रतापनारायण श्रीवास्तव, राधिकारमण प्रसाद सिंह, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' मन्मथनाथ गुप्त, गुरुदत्त, यज्ञदत्त इत्यादि अनेक उपन्यासकारों ने राजनीतिक उपन्यासों की रचना इसी पद्धति में की है। प्रेमचन्द ने विवरण शैली में दृश्य

विधान और चरित्र-चित्रण मे विश्लेषण-शैली की सयोजना कर कलात्मक वृद्धि की है। जैनेन्द्र के उपन्यास राजनीतिक वर्ण्य वस्तु की दृष्टि से शिथिल हैं, क्योकि वे दृश्यात्मक या व्याख्यात्मक शैली मे हैं। अज्ञेय और इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास अशत राजनीतिक है। जोशी जी के 'सन्यासी' और 'निर्वासित' मे दृश्य-विधान अपनाया गया है, किन्तु राजनीतिक पात्रो के तार्किक स्वरूप के कारण वह असतुलित हो गया है। 'शेखर . एक जीवनी' मे विवरण की मनोभाव-व्यंजक शक्ति की एक झलक अवश्य मिलती है, किन्तु लेखक ने जिन प्रवृत्तियों का विवरण प्रस्तुत किया है, वे मनोग्रन्थियाँ निहित हैं और राजनीतिक पक्ष को स्पष्ट करने मे असमर्थ सिद्ध हुई है। अज्ञेय के 'शेखर' एव इलाचन्द्र जोशी के 'मुक्ति-पथ' मे वातावरण को धुंधला बनाकर पात्रो के अन्तर्जगत् को उभारने के प्रयास से राजनीतिक तत्व कुण्ठित हुए हैं। जैनेन्द्र, जोशी, अज्ञेय और मन्मथनाथ गुप्त के उपन्यासो मे राजनीतिक सस्पर्श फ्रायड के मनोविज्ञान के प्रभाव के कारण हल्का पड गया है। क्रातिकारी पात्रो की अवतारणा करने पर उनके उपन्यासो मे क्राति की लालिमा का अभाव है। इनके उपन्यासो मे व्यक्ति की कहानी प्रमुख होने के कारण क्रान्तिकारी पात्रो का चयन तो उपयुक्त हुआ, किन्तु उनको वैयक्तिकता यौन समस्या या वैयक्तिक कुठा तक सीमित रखने से राजनीतिक स्वरूप धूमिल हो गया। इन उपन्यासो के आधार पर भारतीय क्रातिकारियो की गणना कामुक व्यक्तियो मे ही की जा सकती है। अमर शहीद भगतसिंह, सुखदेव और आजाद की परम्परा के वे दावेदार कदापि नही कहे जा सकते। इस दृष्टि से इन राजनीतिक उपन्यासो ने हिन्दी के राजनीतिक उपन्यास का अहित ही किया है। या यो कहें कि देश और राष्ट्र-पूजा के मतवाले वीर युवको को लाछित करके उन्हे निम्न स्तर पर उतार कर क्राति की पवित्रता को लाछित किया है, जो देश की नैतिकता एव त्याग की भावना के सर्वथा विपरीत है।

विवरण-शैली का निखरा हुआ रूप आचार्य चतुरसेन के राजनीतिक उपन्यासो मे मिलता है। 'बगुले के पख' और 'उदयास्त' मे चरित्र और वातावरण को मूर्त रूप देने मे वे अत्यधिक सफल रहे है। राजनीतिक पात्रो के बाह्य रूपो, चेष्टाओ और कार्य-विधियो का वे सूक्ष्म विवरण देते हुए वातावरण के साथ साथ पात्रो को मुखरित करते हैं।

राजनीतिक उपन्यासो मे पात्र और दृश्य के सामजस्य का प्रयास भी किया गया है। नागार्जुन के 'रतिनाथ की चाची' व 'बाबा बटेसरनाथ,' देवेन्द्र सत्यार्थी के 'कठ-पुतली' और विष्णु प्रभाकर के 'निमिकांत' मे सूक्ष्म निरीक्षण के साथ विवरण द्वारा पात्रो और दृश्यो के साथ सामजस्य देखने को मिलता है। रांगेय राघव, यशदत्त व नागार्जुन आदि ने मार्मिक प्रसगो को नाटकीय दृश्य के रूप मे प्रस्तुत कर कथानक को विवरण के द्वारा सम्बद्ध किया है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि राजनीतिक उपन्यासो म विवरण शैली के प्रति विशेष आग्रह के साथ उसे विविध पद्धतियों स परिमार्जित करने का प्रयत्न भी *किया गया है।*

पात्रो के आधार से

राजनीतिक धारणाओ और तदनुरूप जीवन-पद्धति के आधार पर भी वर्ण्य वस्तु म पात्रो का एक विशिष्ट रूप दिखलायी पडता है। इसके आधार पर पात्रो को निम्नानुसार वर्गीकृत किया जा सकता है—

१—गाँधीवादी
२—समाजवादी
३—साम्यवादी
४—हिन्दुत्ववादी
५—आतकवादी

गाधीवादी पात्र गाँधीय जीवन-दर्शन तथा समाजवादी पात्र मार्क्सीय जीवन-दर्शन के अनुरूप अपने व्यक्तित्व को मडित करते है या यह कहा जा सकता ह कि उनकी (राजनीतिक) गतिविधियाँ वाद विवाद से सचालित होती हैं। हिन्दुत्ववादी पात्र हिन्दू महासभा व जनसघ आदि दलो की मान्यताम्रो के प्रतिरूप होते है और राष्ट्रवादी भावना का व्यक्त करते है। समान विचारधारा के आधार पर व्यक्तित्व ग्रहण क कारण ये प्राय समान रूप होते है। इन पात्रों को उदाहरणस्वरूप देखा जा सकता है-–

गाँधीवादी पात्र— निशिकान्त' का कुमार, अमरबेल' का डॉ० सनेही बया लीस' का दिवाकर, 'रगभूमि का सूरदास, 'रैन अँधेरी' के आनन्दकुमार आदि।

समाजवादी साम्यवादी पात्र—'सती मैया का चौरा का मभी, केलावाडी' का भरावा, 'बलचनमा' का बलचनमा, 'वरुण के बेटे' का मोहन माँझी 'गगा मैया' का मटरू, 'दादा कामरेड' का दादा व हरीश, टेढे मेढे रास्ते' का उमानाथ आदि।

साम्प्रदायवादी पात्र —'धर्मपुत्र' का दिलीप।

आतकवादी पात्र —

इस प्रकार राजनीतिक सिद्धातो के आधार पर वर्गीकृत करने पर भी ये स्थिर व विकसनशील पात्र के ही रूप हैं और वर्ण्य वस्तु के परिवेश म राजनीतिक मान्यताम्रो का मुखौटा लगाकर सामने आते है।

दृश्य-विधान शैली

विवरण शैली के अतिरिक्त दृश्य विधान शैली को भी राजनीतिक उपन्यासो म

स्थान मिला है। दृश्यात्मक उपन्यास में कथावस्तु के मार्मिक प्रसंगों को मूर्त दृश्य के रूप में प्रस्तुत कर भाव और रूप को सतुलित रखने का प्रयास किया जाता है।

विवरण शैली के सदृश दृश्य विधान-शैली का प्रयोग भी सर्वप्रथम प्रेमचन्द ने ही किया। हिन्दी के प्रथम राजनीतिक उपन्यास 'प्रेमाश्रम' में उन्होंने विवरणात्मक दृश्य दिये, जो बाद में 'रंगभूमि,' 'गबन' और 'गोदान' में अधिक कुशल सयोजना के साथ चित्रित हुए। दृश्य विधान शैली का उत्कृष्ट रूप रेणु के 'मैला आँचल' व 'परती : परिकथा' में दृश्य तत्कालीन सामाजिक-राजनीतिक धरातल का ज्ञान कराते हैं। 'शेखर एक जीवनी' (भाग १) व भगवतीचरण वर्मा के 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' में भी दृश्य-पद्धति का उपयोग किया गया है।

यशपाल के 'दादा कामरेड' व 'मनुष्य के रूप,' जैनेन्द्र के 'सुखदा' व 'विवर्त,' प्रतापनारायण श्रीवास्तव के 'विकास,' 'विसर्जन' व 'बयालीस' में दृश्यों और विवरण का सतुलित सयोग मिलता है। हिन्दी के अधिकांश राजनीतिक उपन्यास इसी पद्धति पर विकसित हुए हैं। राजनीतिक उपन्यासों में कथा-वस्तु और राजनीतिक व्याख्या के महत्व की दृष्टिगत रख विवरण और दृश्य विधान-शैली का संतुलित सयोग ही उसे पुष्ट कर सकता है, यह कहना प्रसंगत न होगा।

दृश्यात्मक शैली में घटनाएँ हैं। जिस प्रकार स्नायुमण्डल के बिना हम शरीर रचना की कल्पना नहीं कर सकते, उसी प्रकार घटनाओं के जाल के बिना उपन्यास के ताने-बाने की रचना नहीं हो सकती। राजनीतिक उपन्यासों में घटनाओं की गति में प्रवाह होता है और प्रवाह, दोनों का सम्यक् योग स्वाभाविकता प्रदान करता है। राजनीतिक उपन्यास में घटनाएँ स्मृति प्रधान होती हैं। स्मृति घटनाओं की अटूट शृङ्खला में विस्तार पाती है। घटनाएँ स्मृति में जन्म पाती हैं और स्मृति में लय हो जाती हैं। किन्तु *सयोजन क्रम में विस्मृति का महत्व स्मृति से कम नहीं। जैनेन्द्र के उपन्यास* इसके अच्छे उदाहरण हैं।

पनोरमिक उपन्यास

पहले ही कहा जा चुका है कि हिन्दी उपन्यास में राजनीतिक तत्वों के कारण वस्तु विधान की नूतन पद्धतियों को अपनाने की अपनाने का प्रयास किया गया है। राजनीतिक परिपार्श्व में समाज के विभिन्न रूपों का जब व्यापक चित्रण आवश्यक समझा जाने लगा और उसके विशद विवेचन का प्रश्न सम्मुख आया तो विस्तृत पटभूमि अनेक पात्रों की रंगस्थली बनी। वातावरण की विस्तृति में, कथानक के गठन में परिवर्तन आया और इस रूप में हिन्दी में पनोरमिक उपन्यास ने अपना मार्ग बनाया। 'प्रेमाश्रम,' 'रंगभूमि,' कायाकल्प' और 'कर्मभूमि' में प्रेमचन्द ने जो वातावरण चित्रित किया है, वह पनोरमिक जैसा है, किन्तु 'गोदान' में वह पनोरमिक ही हो गया। हिन्दी

के अधिकांश राजनीतिक उपन्यास इसी पनोरमिक प्रवृत्ति के कारण ही बृहद्काय है भले ही वे पनोरमिक उपन्यास की विशिष्टता को सम्यक् रूप से ग्रहण न कर सके हों। भगवतीचरण वर्मा का 'भूले बिसरे चित्र' और यशपाल का 'झूठा-सच' कथासहित पनोरमिक उपन्यास के उत्कृष्ट उदाहरण है। रेणु का 'मैला आँचल' कथा-रति पनोरमिक के अन्तर्गत रखा जा सकता है, जिसमे स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व और बाद के बिहार के जन जीवन का चित्रण विशाल चित्रपटी मे हुआ है। इसी भाँति उनके दूसरे उपन्यास 'परती परिकथा' मे पुनर्निर्माण-काल की जीवन-गाथा सीमित क्षेत्र और विषय को लेकर वर्णित है। इसमे राजनीतिक चेतना का स्पष्ट विकास पनोरमिक शैली मे चित्रित है।

गठन वैशिष्ट्य

राजनीतिक उपन्यास म सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक समस्याओं को बृहदाकार रूप मे चित्रित करने के कारण प्राय सुगठित कथा का अभाव परिलक्षित होता है। उदाहरणार्थ प्रेमचन्द के उपन्यासों में अनेक स्वतन्त्र अस्तित्व रखने वाली कथाएँ एक ही म ग्रथित है और यह कहना कठिन हो जाता है कि मूल कथा कौन सी है। यह बात पृथक् है कि अनेक कथाएँ होने पर भी सम्बन्ध-सूत्र की स्थापना से विशृंखलता दृष्टिगोचर नही होती। अधिकाश उपन्यासो म एक से अधिक कथानक प्रयुक्त हुए है, जो आधारमूलक कथासूत्र से आबद्ध हो गठन को दृढ बनाते हैं।

सच तो यह है कि उपन्यास की सफलता का एक उपादान है उसकी गठन। सुगठित उपन्यास म कथावस्तु क्रमश विस्तृत होती है। हिन्दी के अधिकाश राजनीतिक उपन्यासो के सम्बन्ध मे प्राय यह आरोप लगाया जाता है कि उनकी गठन में शैथिल्य रहता है। वस्तुत यह शैथिल्य विषय के विस्तार एवं व्याख्यात्मक प्रवृत्ति के कारण होता है और ये राजनीतिक उपन्यास के विशेष गुण हैं। इस रूप म देखा जाय तो यह शैथिल्य बृहदाकार उपन्यासो की प्रवृत्ति ही है, दुर्बलता नहीं। लघुकाय उपन्यास मे विषय का विस्तार सीमित होने के कारण गठन की दृढता भी देखने को मिलती है।

गठन की दृढता के चार मुख्य उपादान माने जाते हैं—धारावाहिक कथानक, नायक का आधिपत्य, मूल समस्या और मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तो का विवेचन। इनमे से अंतिम उपादान राजनीतिक उपन्यास म बाधक सिद्ध हुआ है। जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी और अज्ञेय के उपन्यासो का राजनीतिक स्वरूप इसी तत्व के आधिक्य से कुठित हुआ है।

धारावाहिक कथा—अधिकाश लघुकाय उपन्यासो मे कथानक ही गठन की दृढता का आधार है। नागार्जुन, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, अनन्तगोपाल शेवडे, चतुरसेन आदि के राजनीतिक उपन्यास कथानक की गठन की दृढता के उदाहरण हैं।

जीवनीप्रधान—'सन्यासी,' 'निर्वासित,' 'शेखर : एक जीवनी,' 'कठपुतली' और 'बलचनमा' में जीवनी के माध्यम से दृढता का समावेश हुआ है। जीवनीप्रधान राजनीतिक उपन्यासों में वे उपन्यास ही अत्यधिक सफल कहे जायेंगे, जो राजनीतिक चेतना से उद्भूत जीवन का अंकन करें। सामाजिक यथार्थ की आधारभूमि पर रचित नागार्जुन का 'बलचनमा' और अचल का 'उल्का' इस श्रेणी के सफल उपन्यास हैं। अन्य उपन्यास जीवनी की भूल भुलैयों में ही खो जाते हैं और प्रमुख पात्र की जीवनी मात्र 'मोमिस'-सी रह जाती है। इस प्रसंग में 'शेखर' का उल्लेख करना असंगत न होगा।

मूल समस्या—राजनीतिक समस्या से गठन में दृढता राजनीतिक उपन्यासों की विशिष्टता है। किन्तु जहाँ मूल समस्या राजनीति की परिधि से दूर भागती है, वहाँ उपन्यास में गठन की दृढता भले आ जाये, पर राजनीतिक पक्ष को पक्षाघात हुए बिना नहीं रहता। 'अचल' के 'बढती धूप' व 'उल्का' की समस्याएँ विशिष्ट राजनीतिक विचार धारा से पोषित होने के कारण गठन की दृढता और राजनीतिक मूल्य, दोनों की रक्षा करती हैं। इसके विपरीत जैनेन्द्र के 'सुखदा' की समस्या राजनीतिक परिधि से दूर होने के कारण उतनी प्रभावोत्पादक नहीं बन पडी।

शिथिल गठन

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, राजनीतिक उपन्यासों में गठन का शैथिल्य उसकी दुर्बलता नहीं, अपितु लेखक की क्षमता, आदर्श एवं प्रवृत्तिविशेष का प्रतिफलन होता है। राजनीतिक उपन्यास में विषय-विस्तार, व्याख्यात्मक प्रवृत्ति और वातावरण पर विशेष आग्रह उपन्यास की गठन को शिथिल बनाते हैं। रांगेय राघव के 'विषाद मठ' व 'घरौंदे' प्रतापनारायण श्रीवास्तव के 'बयालीस' और 'विनाश के बादल,' 'अश्क' के 'बडी-बडी आँखें' में जो शैथिल्य है, वह वातावरण को प्रमुखता देने तथा व्याख्यात्मक प्रवृत्ति के कारण है। प्रेमचन्द के 'प्रेमाश्रम,' 'कर्मभूमि' और 'रंगभूमि' में भी थोडा शैथिल्य आया है जिसका कारण विषय-विस्तार राजनीतिक व्याख्या का आग्रह है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने ठीक ही लिखा है—"छोटी-छोटी घटनाओं को लेकर लम्बे लम्बे अध्याय लिखे गये हैं, जिससे कथावस्तु आवश्यकता से अधिक लम्बी हो गयी है। समस्त मुख्य घटनाओं को लेकर प्रस्तुत आकार से आधे में सारा उपन्यास लिखा जा सकता था।"[1] कहा जा सकता है कि राजनीतिक उपन्यास में राजनीतिक उद्देश्य की स्पष्टता के लिए यह विस्तार कभी-कभी अनिवार्य हो जाता है।

---

१. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : प्रेमचन्द : साहित्यिक विवेचन, पृष्ठ ७०

विषयाधिक्य और उसके कारण

पाठकों पर इच्छित प्रभाव डालना और उन्हें एक विशिष्ट ध्येय की ओर उन्मुख करना राजनीतिक उपन्यासकार की विषय-निबिड़ता-संयोजन-कला पर निर्भर करता है। जब चित्रीकरण की विस्तृति की तुलना में विषय सीमित हो तो विषयाल्पत्व और अभिव्यंजन कम हो तो विषयाधिक्य होता है। हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों में विषयाधिक्य दुर्बलता नहीं, विषय विस्तार की उपलब्धि है। राजनीतिक उपन्यासों में उद्दिष्ट प्रभावहेतु घटनाओं पर अधिकाधिक ध्यान देने की विशेष प्रवृत्ति रहती है। इस प्रवृत्ति से विषय-बाहुल्य की स्थिति निर्मित होती है, जो सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक दशाओं को अभिव्यक्ति देती है। इस समस्त प्रक्रिया से विषयाधिक्य होता है। प्रेमचन्द के 'रंगभूमि,' 'कायाकल्प,' 'कर्मभूमि' में घटनाओं पर विशेष ध्यान देने के कारण विषयाधिक्य राजनीतिक स्पष्टीकरण में सहायक है। किन्तु इलाचन्द्र जोशी के 'सन्यासी' और 'निर्वासित' में जो विषयाधिक्य है, वह राजनीतिक पक्ष को दुर्बल बनाता है।

विषयैक्य की कमी से भी प्रभाव विच्छिन्न होता है और विषय के विविध अंशों की असम्बद्धता स्पष्ट रूप से सामने आ जाती है। जोशी जी के 'निर्वासित' और विष्णु-प्रभाकर के 'निशिकान्त' में यह विषयैक्यहीनता देखी जा सकती है। विषयैक्यहीनता से पुनरुक्ति दोष भी आता है, पर पुनरुक्ति राजनीतिक पक्ष को सबल बनाती है। यशपाल के 'झूठा सच' में भी पुनरुक्ति इसी उद्देश्य के निमित्त आयी है।

इतना होने पर भी राजनीतिक उपन्यास विषय-निबिड़ता की दृष्टि से संतुलित हैं। यशपाल, अंचल, अमृतराय, नागार्जुन, भगवतीचरण वर्मा इत्यादि उपन्यासकारों ने विषय के अनुसार ही विस्तार किया है। जैनेन्द्र इसके अपवाद हैं और उनके 'सुनीता', 'सुखदा' और 'विवर्त' में विषयाल्पत्व है।

चरित्र-चित्रण

जिस भाँति राजनीति का विषय मानव जीवन है, उसी भाँति उपन्यास का मुख्य विषय भी मानव-जीवन ही है। मानव-जीवन का अर्थ है मनुष्य का सामाजिक जीवन, जिसकी यथार्थ समस्याओं का अंकन किसी पात्रविशेष के माध्यम से सर्वसाधारण को परिचित कराना वर्तमान उपन्यास की अभिव्यक्तिविशेष है। हेनरी जेम्स ने सत्य ही लिखा है कि उपन्यास के अस्तित्व का एकमात्र कारण यह है कि वह जीवन के चित्रण का प्रयास करता है।[1] राजनीतिक उपन्यास में राजनीतिक वर्ण्य वस्तु के साथ-साथ भली प्रकार से चित्रित पात्रों का होना भी अनिवार्य है। ये पात्र राजनीतिक परिपार्श्व में

---

१. हेनरी जेम्स : दि आर्ट ऑफ फ़िक्शन, पृष्ठ ३१६

यथार्थ जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाला होना चाहिए, क्योंकि उनके चरित्र-चित्रण के बिना उपन्यास राजनीतिक इतिहास भले ही हो, उपन्यास नहीं हो सकता। राजनीतिक उपन्यास में चरित्र चित्रण सामाजिक तथा वैयक्तिक अन्तःसत्ता की व्याख्या कर उसे सर्वसामान्य के लिए प्रभावोत्पादक बनाना है। चरित्र-चित्रण के इसी महत्व से प्रभावित होकर प्रेमचन्द ने लिखा है "भावी उपन्यास जीवन-चरित्र होगा, चाहे किसी [illegible] व्यक्ति का हो, या छोटे आदमी का। उसकी छुटाई-बड़ाई का फैसला उन कठिनाइयों से किया जायगा, जिन पर उसने विजय पायी।"[1] अपूर्ण 'मंगल-सूत्र' में वे शायद इसी रूप को साकार करना चाहते थे। वेब्स्टर के शब्दों में कहें तो—"उपन्यास एक ऐसा कल्पित, विशालकाय तथा गद्यमय आख्यान है, जिसमें एक ही कथानक के अन्तर्गत यथार्थ जीवन के निरूपण का प्रयास करने वाले पात्रों और उनके क्रियाकलापों का चित्रण हो।"[2] वस्तुतः उपन्यास अपने आपमें एक ऐसी इकाई है, जो कथानक और चरित्र-चित्रण के माध्यम से ही वांछित प्रभाव की सृष्टि करती है। पात्रों के चरित्र चित्रण का स्थान राजनीतिक उपन्यासों में समस्याओं के साथ संयुक्त रहता है। इसमें पात्र पूर्ण स्वतन्त्रता का उपभोग नहीं कर सकते, क्योंकि वे राजनीतिक घटनाओं या विचारधारा के अन्तर्गत अपना विकास करते हैं। इस प्रक्रिया में कभी-कभी वे इतने दब जाते हैं कि उनका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व तक संकट में पड़ जाता है और वे उपन्यासकार के हाथ में कठपुतली से रह जाते हैं।

राजनीतिक उपन्यास में चरित्र चित्रण में लेखक से अत्यधिक सावधानी अपेक्षित है। उसे अपने विचारों के प्रचार के लिए पात्रों को अस्वाभाविक या कृत्रिम बनने से बचाने हेतु सचेष्ट रहना चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि उनके जीवन के आधार पर ही लेखक अपने राजनीतिक विचारों को स्थापित करे। जीवन की स्वाभाविक गति से ही विचारों, आदर्शों और मान्यताओं का जन्म होना चाहिए। पात्रों की सृष्टि सिद्धान्त के अनुसार करने पर अस्वाभाविकता आती है। इस दृष्टि से विचार करने पर हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों में चरित्र चित्रण की उपलब्धि और अभाव दोनों मिलते हैं।

एकांगी व समतलीय पात्र

राजनीतिक उपन्यास में अधिकांश पात्र तथ्य के प्रतिपादन या सिद्धान्त की व्याख्या करने के कारण एकांगी या समतलीय पात्र की श्रेणी में आते हैं। हिन्दी के प्रारम्भिक सुधारवादी उपन्यासों में भी यही प्रवृत्ति देखने में आती है और उसी का

१ प्रेमचन्द : कुछ विचार (भाग १), पृष्ठ ५६

२ वेब्स्टर न्यू इण्टरनेशनल डिक्शनरी ऑफ इंग्लिश लेंग्वेज, पृष्ठ १६७०

विकसित रूप राजनीतिक उपन्यासों में दिखलायी पड़ता है। निश्चित सिद्धान्तों के अनुरूप गढ़ जाने के कारण ये पात्र 'टाइप' अधिक हैं और उनकी गतिविधियाँ सीमाबद्ध हैं। समाज से निकट होने के कारण ये समाज चित्रक के उपकरण के रूप में समाज के यथार्थ स्वरूप को उद्घाटित करते हैं। प्रेमचन्द के पात्रों के सम्बन्ध में कहा गया है कि वे 'वर्गगत' जातिगत या प्रतीकात्मक होते हैं। जमींदार, किसान आदि में अपने वर्ग या साधारण विशेषताओं का आरोप रहता है। आधुनिक व्यक्ति—चित्रण—प्रणाली से वे दूर हैं।'[1] आचार्य वाजपेयी ने प्रेमचन्द के पात्रों की जिस अभावग्रस्त विशेषता की ओर इंगित किया है, वह वस्तुतः राजनीतिक उपन्यास की उपलब्धि है। प्रेमचन्द जानते थे कि जिस विशिष्ट उद्देश्य से उन्हें समाज का चित्रण करना है, उसकी प्राप्ति व्यक्ति-चित्रण प्रणाली से सम्भव नहीं। जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी और अज्ञेय के उपन्यास राजनीतिक दृष्टि से इसीलिए शिथिल हैं, क्योंकि उनके पात्र वैयक्तिक विशेषताओं एवं मनोवृत्तियों से मण्डित हैं। 'मुक्तिपथ' का राजीव और 'शेखर एक जीवनी' का शेखर वैयक्तिक मनोवृत्तियों के कारण ही सबल राजनीतिक व्यक्तित्व नहीं बन सके जब कि प्रेमचन्द, यशपाल, नागार्जुन और अचल के पात्र एकांगी और असाधारण होते हुए भी सबल और प्रभावशाली हैं। वे सामाजिक व्यक्तित्व के गुण से युक्त हैं और उनका बिम्बग्रहण अधिक सुसाध्य है। इसी सहजता के कारण पाठक का उनसे तादात्म्य शीघ्रता से हो जाता है। चरित्र चित्रण की यह पद्धति राजनीतिक उपन्यास की प्रवृत्ति है। मार्क्स तथा एंगेल्स के शब्दों में हिन्दी राजनीतिक उपन्यासकार भी यह दावा कर सकते हैं कि 'हम यथार्थ जीवित मनुष्यों से आरम्भ करते हैं, और उनके यथार्थ जीवन व्यापार के आधार पर ही उस जीवन-व्यापार के भावात्मक (आदर्शात्मक) प्रतिबिम्बों तथा प्रतिध्वनियों को सिद्ध करते हैं।'[2]

शोषक और शोषित पात्र

राजनीतिक वर्ण्य वस्तु के कारण उपन्यासों में सामाजिक और राजनीतिक जीवन की गतिविधियों के केन्द्रीकरण के कारण नायक का महत्व घटा और वह सामाजिक शक्तियों से संचालित हो गया और आभिजात्य वर्ग के स्थान में सामान्य जन को नायक का स्थान मिला। 'दादा कामरेड' का दादा, 'निशिकांत' का निशिकांत और 'रतिनाथ की चाची' का रतिनाथ यद्यपि उपन्यास के नायक हैं, किन्तु कथा-संचालन में इनका योगदान नगण्य है।

---

१. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : आधुनिक साहित्य, पृष्ठ १६४
२. मार्क्स एण्ड एंगेल्स : लिटरेचर एण्ड आर्ट, पृष्ठ ११

राजनीतिक उपन्यासों ने नायकों को सामाजिक व्यक्तित्व प्रदान किया और ये राजनीतिक परिस्थितियों के अनुरूप ही अपना व्यक्तित्व सँवारते हैं। यह सामाजिक यथार्थवाद का प्रतिफलन है। 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते,' 'सीधा-सादा रास्ता' और 'विषाद-मठ' आदि में नायक के व्यक्तित्व का विकास नहीं दीख पड़ता। 'विषाद मठ' में यदि जनता ही पात्र बनकर उपस्थित हुई है तो 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' और 'सीधा सादा रास्ता' आदि घटनाओं के द्वारा राष्ट्रीय वातावरण को मुखरित करते हैं। फणीश्वरनाथ 'रेणु' के 'मैला आंचल' और 'परती परिकथा' में भी नायकों का व्यक्तित्व नहीं, अपितु जीवन ही जीवन्त हुआ है।

नायक का ह्रास होने के साथ राजनीतिक उपन्यासों की दूसरी विशेषता शोषक और शोषित का यथार्थपरक चित्रण है, जो हिन्दी के अधिकांश उपन्यासों में मिलता है। इसका प्रारम्भ प्रेमचन्द के उपन्यासों से होता है। उनके 'प्रेमाश्रम,' 'रंगभूमि,' 'गोदान' आदि में शोषित किसानों और मजदूरों की कहानी के लिए मनोहर, बलराज, बिलासी, सूरदास, भैरो, होरी, गोबर जैसे अनेक पात्रों की अवतारणा की गयी है। नागार्जुन और भैरवप्रसाद गुप्त के उपन्यासों में शोषित किसानों के अनेक कारुणिक दृश्य देखे जा सकते हैं। शोषित के चित्रण के साथ क्रूर शोषक के कुटिल कृत्यों और अत्याचारों का उद्घाटन भी किया गया है। शोषित और शोषक के इस चित्रण के उपरान्त ही समाजवादी उपन्यासों का मार्ग प्रशस्त हुआ, ऐसा कहना अनुपयुक्त न होगा। 'प्रेमाश्रम' में शोषितों के प्रति सहानुभूति रखने वाला पात्र क्रमशः धूमिल हो 'बलचनमा' व 'गंगा मैया' में नयी राजनीतिक चेतना से परिपुष्ट हो अपना बन कूलने लगता है।

शोषित पात्र के रूप में भारतीय नारी का चित्रण राजनीतिक उपन्यास की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। जब राजनीतिक अधिकारों की मांग ने सामाजिक व्यवस्था द्वारा उत्पन्न नारी की निरुपाय-असहाय स्थिति को निन्दनीय करार दिया और उन शोषकों की भर्त्सना कर विरोध किया' जो उसकी निरीहावस्था का अनुचित लाभ उठाते हैं। आधुनिक भारतीय नारी का जो संघर्षशील चित्रण हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों में मिलता है, वह राजनीतिक आन्दोलनों की नारी की ही प्रतिच्छाया है। नारी का क्षेत्र परिवार से बढ़ कर राजनीतिक भूमिका तक विस्तृत हुआ और यशपाल, नागार्जुन, अमृतराय, अचल, राजेन्द्र यादव के नारी पात्र इसके उदाहरणस्वरूप लिये जा सकते हैं, जो समाजवादी चेतना से संचालित हैं। प्रेमचन्द के नारी पात्र समसामयिक राष्ट्रीय आन्दोलन की देन हैं और गाँधीवादी आदर्शवादिता से समन्वित हैं। देवड़े के 'ज्वालामुखी' के नारी पात्र भी इसी श्रेणी के हैं।

पात्रों के भेदोपभेद

साधारणतः पात्रों को प्रधान और गौण पात्र में वर्गीकृत किया जाता है। प्रधान पात्र कथानक से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित रहता है और गौण पात्र साधन के रूप मे प्रधान पात्रों के चरित्र को उरेहते हैं, कथानक को गति देते हैं और वातावरण के निर्माण या परिवर्तन में योग देते है। पात्रों की विशेषता के आधार पर उनके तीन प्रकार माने जा सकते हैं—स्थिर पात्र, विकसनशील पात्र और व्यक्तिचित्र।

स्थिर पात्र वे होते है, जो निकट के वातावरण से अप्रभावित रहते हैं और उनके चरित्र में कोई परिवर्तन नहीं होता। ये 'टाइप' होते है और किसी वर्ग के प्रतिनिधिक पात्र के रूप में चित्रित होते है, वे अपने वर्ग की प्रमुख विशेषताओं से युक्त रहते हैं, पर कथानक के साथ उनका विकास नहीं होता। इसके ठीक विपरीत हैं विकसनशील पात्र, जो अपने परिपार्श्व से प्रभावित हो अपने चारित्रिक विकास के साथ कथानक का विस्तार करते है। हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासो में दोनो प्रकार के पात्रों को समुचित स्थान मिला है।

समाजवादी—यथार्थ की भूमिका का निर्वाह करने वाले उपन्यासो में ऐसे चरित्रों की नियोजना मिलती है, जो एक साथ ही टाइप तथा व्यक्ति, दोनो हैं। चरित्र-चित्रण की यह प्रवृत्ति मार्क्स तथा एंगेल्स के सिद्धान्तों के ही अनुरूप है, जो मानते थे कि "किसी व्यक्तित्व की विशेषता केवल इसी बात से नहीं प्रकट होती कि वह क्या करता है, बल्कि इससे भी प्रकट होती है कि वह कार्य कैसे करता है।"[1] समाजवादी उपन्यासो में पात्रों का अपना व्यक्तित्व उनकी गतिविधियो से तो उभरता ही है, साथ ही उसकी गतिविधियाँ जिस लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास करती है, उनके द्वारा वह उसके वर्ग के साथ समन्वित करती है। ऐसे उपन्यासो के नायक या चाहें तो कहें प्रमुख पात्र 'अति-मानव' न होकर जन-साधारण का या सर्वसामान्य का प्रतिनिधि होता है, जो नयी समाज रचना के लिए संघर्ष करते हुए आगे बढता है। उसकी शक्ति और प्रेरणा जनसमुदाय में निहित है और जनता के लिए उठाये गये संघर्षों में इनकी जो चरित्रगत विशेषताएँ उभरती हैं, वे उसे 'पाजिटिव हीरो' बना देती है। इसे समाजवादी यथार्थ का आधार-भूत तत्व भी माना जा सकता है।

नागार्जुन के 'रतिनाथ की चाची,' 'बलचनमा,' 'नई पौध' के पात्र अपने अपने वर्ग के प्रतिनिधि है, साथ ही उनके जो व्यक्तित्व हैं, प्रेमचन्द के पात्रो के व्यक्तित्वो के समान हैं। इन सबका सामाजिक अथवा वैयक्तिक रूप समस्याओं के विश्लेषण के आवश्यकतानुसार विकसित हुआ है।

---

१. राल्फ फाक्स, उपन्यास और लोक जीवन, (अनु० नागर), पृष्ठ १०४

व्यंग-चरित्र

स्थिर पात्रों का ही एक भेद व्यंग-चरित्र या 'कैरिकेचर' है, जो चरित्र को उसके अतिरंजित रूप में प्रस्तुत कर व्यंग्य की उद्भावना करता है। राजनीति में व्यंग का अपना एक महत्व है—दूसरे राजनीतिक दलों, व्यक्तित्वों और राजनीतिक सिद्धान्तों को निम्नस्तरीय निरूपित करने के लिए व्यंग एक अचूक रामबाण है। राजनीतिक उपन्यासों में व्यंग-चरित्रों की उद्भावना इसी उद्देश्य से की गयी है। 'बगुले के पंख' में जुगनू और 'उखड़े हुए लोग' में देशबन्धु के 'कैरिकेचर' अपने ढंग के हैं। 'भग्न मन्दिर' में कांग्रेसी मंत्रियों के चित्र व्यंग्यपूर्ण हैं।

पात्र-चयन, संख्या और परिधि

राजनीतिक उपन्यासों में चित्रपटी की व्यापकता, विषय-विस्तार और अनुभूति की तीव्रता के कारण पात्रचयन की विशालता मिलती है। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक धरातलों को स्पर्श करने की प्रवृत्ति के कारण राजनीतिक उपन्यास क्षेत्र-विस्तृति के कारण विभिन्न क्षेत्रों के व्यक्तियों की जीवन व्याख्या को प्रस्तुत करता है जिसके कारण पात्र बाहुल्य एक विशिष्टता हो जाती है। प्रेमचन्द, भगवतीचरण वर्मा, यशपाल, गुरुदत्त, रेणु के वृहत्काय उपन्यासों में पात्र बाहुल्य का मूल कारण यही है। कलात्मक दृष्टि से पात्र बाहुल्य को उपन्यास का दोष माना जाता है क्योंकि इसके कारण पात्रों का सम्यक् विकास चित्रित करना सम्भव नहीं हो पाता। किन्तु राजनीतिक उपन्यासों में पात्र-बाहुल्य एक विशेष गुण है। यह कहना भी उचित प्रतीत नहीं होता कि पात्र-बाहुल्य से चरित्र का अपेक्षित विकास नहीं दिखलाया जा सकता। उदाहरणार्थ यशपाल के (हिन्दी के सर्वाधिक पृष्ठवाले उपन्यास) 'झूठा सच' को लिया जा सकता है, जिसमें दर्जन से अधिक पात्रों का विकास सहज स्वाभाविक गति से हुआ है। वस्तुतः यह लेखक के चरित्र-चित्रण-सामर्थ्य पर निर्भर करता है और यदि वह सतर्क रहे तो चुनाव-क्षेत्र की व्यापकता, पात्रों की विविधता और अनुभूति की विविधता और अनुभूति की गहनता की मणिमाला पिरोकर उपन्यास के कलात्मक सौष्ठव को बनाये रख सकता है।

पात्र ऐतिहासिक नहीं, कल्पित

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों के पात्र अधिकांशतः ऐतिहासिक न होकर कल्पित हैं। उन्होंने वस्तु-जगत् के व्यक्तियों से केवल उतनी सामग्री ही ग्रहण की है, जितनी वह कल्पना के साथ संयोजित कर सके। वह किसी राजनीतिक व्यक्ति से उसका आकार लेता है, किसी से उसका प्रकार, किसी को क्रिया लेता है और किसी की प्रति-

क्रिया, किसी का भाव लेता है, किसी का विकार और सब मिलाकर एक विशिष्ट राजनीतिक 'टाइप' के रूप में प्रस्तुत होता है। ऐतिहासिक व्यक्तित्व को चित्रित न करने का एक कारण कानूनी बंधन से बचाव करना तो है ही साथ साथ रेखा प्रति रेखा यथातथ्य चित्रण से मुक्ति पाना भी है। पात्रों की गोपनीयता उपन्यास में सहज रूप से व्यक्त की जा सकती है, पर ऐतिहासिक पात्रों से गुप्त जीवन की गाथा बहुवर्णित होने पर भी उपन्यास का अंग नहीं बन सकती। औपन्यासिक पात्र के रूप में आकर ही ऐतिहासिक पात्र अज्ञेय नहीं रहते। साथ ही कल्पना के तत्व के साथ कथा (व पात्र अपने वास्तविक जीवन से) अधिक रोचक बन जाती है। यही कारण है कि राजनीतिक उपन्यासों में सामयिक पृष्ठभूमि के ऐतिहासिक पात्रों को कल्पित रूप में प्रस्तुत कर प्रायः वास्तविकता का भ्रम उत्पन्न करने की चेष्टा मिलती है। राजनीतिक उपन्यासकार विलियम बैरेट के ही अनुयायी हैं, जो यह मानता है कि 'श्रेष्ठ उपन्यास किसी कल्पित व्यक्ति की जीवनी होता है और जब जीवनी पूरी हो चुकती है, वह व्यक्ति कल्पित नहीं रहता, बल्कि अपने स्रष्टा की भाँति यथार्थ बन जाता है।'[1] फोस्टर का भी मत है कि कृति का पात्र सत्य है, यदि उपन्यासकार उसका पूर्ण ज्ञाता है। यह आवश्यक नहीं है कि उपन्यासकार उन सभी बातों को बताये जो उसके बारे में जानता है। किन्तु उसे पात्र को अप्रकट रखकर भी पाठकों को अपनी जानकारी के संकेत से प्रतीति करा देना होगा, जिससे वे पात्र पहेली बन कर न रह जायें।[2] राल्फ फाक्स तो मानते हैं कि 'यह जरूरी नहीं है कि प्रत्येक क्रांतिकारियों या मजदूर वर्ग के जीवन तक का चित्रण होना ही होगा फिर भी यह मानना पड़ेगा कि अन्ततोगत्वा इस तरह के उपन्यासों का भविष्य उनकी इस क्षमता पर निर्भर है कि वे एक प्रतिनिधि के रूप में और एक व्यक्तिगत मानव के रूप में क्रांतिकारी का कलापूर्ण चित्र देने में सफल होते हैं या नहीं।'[3]

अन्य विशिष्टताएँ

राजनीतिक उपन्यासों के पात्रों के नामकरण, आकृति, वेश भूषा, नख शिख वर्णन और जीवन पद्धति में विशिष्टता दिखलायी देती है। राजनीतिक उपन्यासों में पात्रों के नामकरण से सम्पूर्ण चरित्र विकास या उनके मान्य राजनीतिक सिद्धान्तों के अनुसार संकेत देने का प्रयास किया गया है। उदाहरणार्थ—

---

१ विलियम ई० बैरेट, दि लिविंग कैरेक्टर, पृष्ठ १२०

२ फॉस्टर आस्पेक्ट्स ऑफ नावल पृष्ठ ६१

३ राल्फ फाक्स, उपन्यास और लोक जीवन (अनु० नागर), पृष्ठ १०९

गांधीवादी पात्र—'प्रेमाश्रम' का प्रेमशंकर, 'कर्मभूमि' का अमरकान्त, 'ज्वालामुखी' का अभयकुमार।

समाजवादी पात्र—'सुखदा' का लाल, 'चढ़ती धूप' की तारा, 'उखड़े हुए लोग' का सूरज, 'बन्दनमा', 'सन्यासी' का बलदेव, 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' का दयानाथ आदि।

सामन्तवादी पात्र—'अमरबेल' का देशराज व राजा बाघराज, 'रंगभूमि' के महेन्द्र कुमार सिंह, 'कायाकल्प' के ठाकुर विशालसिंह।

पूँजीवादी पात्र—'रूपाजीवा' का गोरेमल, 'उखड़े हुए लोग' का देशबन्धु, 'कर्मभूमि' का धनीराम।

विपरीत राजनीतिक आचरण का चित्रण करते समय व्यंग्यात्मक नामकरण भी किया गया है। यथा—'हीरक जयन्ती' का नरपत नारायण सिंह, 'झूठा सच' का विश्वनाथ सूद व 'उखड़े हुए लोग' का देशबन्धु। नामकरण के सदृश ही आकृति और वेश भूषा के आधार पर भी राजनीतिक व्यक्तित्व के गुणावगुण को सांकेतिक प्रणाली से व्यक्त कर उसके चरित्रांकन का प्रयास भी मिलता है। 'सन्यासी' का बलदेव। आदि पात्रों में वेश भूषा के परिवर्तन से पात्र की मनोदशा में होने वाले परिवर्तनों को दिखलाने की चेष्टा भी की गयी है।

कथोपकथन

राजनीतिक उपन्यासों में लेखक और पात्रविशेष के उद्देश्यों का, सामयिक घटनाओं का मनोनीत उद्घाटन कथोपकथन के माध्यम से ही सम्भव है। कथोपकथन उपन्यास का एक महत्वपूर्ण तत्व है, जो कथा का विकास करता है तथा पात्रों के चरित्र चित्रण में सहायक होता है। राजनीतिक उपन्यासों में कथोपकथन का समावेश *निम्नलिखित उद्देश्यों को लेकर किया गया है—*

(क) कथानक का विस्तार करना।
(ख) पात्रों की व्याख्या करना।
(ग) उद्देश्य को स्पष्ट करना।

कथानक का विस्तार करना

राजनीतिक उपन्यासों में वर्णित घटनाओं या दृश्यों में सजीवता की दृष्टि से कथोपकथन का उपयोग प्राय सभी उपन्यासकारों ने किया है। इनके नियोजित सगठन से कथानक का विकास करना राजनीतिक उपन्यासकारों की एक सामान्य प्रवृत्ति रही है, 'ज्वालामुखी' में अभय और विजया के विवाह सम्पन्न होने के उपरांत ठाकुर जी की अर्चना के समय नीराजन के गिरने और उसकी ज्योति बुझने के साधारण प्रसग को

लेकर पारम्परिक सामयिक घटनाओं व राजनीतिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालने हेतु कथोपकथन की मौलिक एवं स्वाभाविक उद्भावना की है। विजया नीराजन बुझने को अपशकुन मान भावी अनिष्ट की कल्पना करती है। इस पर अभय कहता है—'इस अपशकुन में नयी बात ही कौन सी है? आज तो सारे विश्व में ही अपशकुन की विभीषिका धधक उठी है। सारा संसार युद्ध की विकराल ज्वालाओं से ग्रस्त है, मनुष्य का संहार कर रहा है। सिंहासन उलट रहे हैं। नक्शे बदल रहे हैं। मानवता नष्ट हो रही है। ऐसे सर्वव्यापी भयंकर और महान अपशकुन के सामने और क्या अनिष्ट हो सकता है?'[1] यहीं से कहानी अपना वांछित मार्ग पकड़ लेती है और स्वाभाविक रूप से बयालीस की क्रांति की आधार-पीठिका पर आ जाती है। गुरुदत्त के तो अधिकांश उपन्यासों का प्रारम्भ ही कथोपकथन के नाटकीय ढंग से होता है। उनके कथोपकथन प्रत्यक्षतः कथानक के सूत्र संबंधित होते हैं और कथानक की पारम्परिक क्रमबद्धता को कायम रखते हुए विविध घटनाओं में असंगति नहीं आने देते। उनके 'भ्रमजाल' और 'दासता के नये रूप' का उदाहरणार्थ लिया जा सकता है। इन दोनों उपन्यासों के गठन में कथोपकथन का महत्वपूर्ण स्थान है और कथा-वस्तु और पात्रों के चरित्र-चित्रण के विकास के साथ राजनीतिक उद्देश्य की अभिव्यक्ति इस तत्व के कुशल संयोजन से की गयी है। आत्म-कथात्मक शैली में कथोपकथन का स्वरूप शैली की विशिष्टता के कारण किंचित् भिन्न हो जाता है। आत्मकथात्मक शैली में नायक के चरित्र-चित्रण की ही प्रमुखता मिलती है। अतः उपन्यासकार नायक, नायिका या अन्य किसी एक पात्र का स्थान ग्रहण कर प्रत्येक घटना का वर्णन करता चलता है। स्वयं कथा कहने के कारण इसमें कथोपकथन की विशेष गुंजाइश नहीं रहती। जो कथोपकथन आते भी हैं, वे भी स्मृति पर आधारित रहते हैं तथा वे प्रधान पात्र के व्यक्तित्व को ही अभिव्यंजित करते हैं। स्मृति के आधार पर बीते युग के कथोपकथन होने के कारण इनमें संक्षिप्तता होती है और ये रोचकता के साथ चरित्र नायक की परिस्थितियों से परिचित कराते हुए स्वाभाविक रूप से कथानक का विस्तार करते हैं। नागार्जुन के 'बलचनमा' और राहुल सांकृत्यायन के 'जीने के लिए' में इसके उदाहरण देखे जा सकते हैं। 'बलचनमा' प्रसंगानुसार उन व्यक्तियों और उनके कथनों का स्मरण करता चलता है, जो उसके जीवन में आकर उसे प्रभावित कर दिशा निर्देश देते हैं।

पात्रों की व्याख्या करना

कथोपकथन को कथानक और पात्र के बीच का सेतु कहा जा सकता है। कथोपकथन पात्रों की विचारधारा का प्रतिबिम्ब होता है। इसी माध्यम के द्वारा लेखक

१ अनन्त गोपाल शेवडे, ज्वालामुखी, पृष्ठ २२

चरित्रों की न केवल व्याख्या करता है, अपितु उनके विषय में विविध जटिल परिस्थितियों तथा अन्तर्द्वन्द्व संबंधी प्रत्यक्ष बोध करता है। 'दासता के नये रूप' में चन्द्रकांत और प्रमिला के बीच वार्ता का एक प्रसंग देखिए, देखो प्रमिला ! जब सत्ताधारी पार्टी से असन्तुष्ट जनों की संख्या बहुत हो जायगी, तब वे क्रान्ति उत्पन्न कर सकते हैं।

'क्रांति तो कभी भी हितकारक नहीं हो सकती। यह तो एक हथौड़े की चोट से पत्थर फोड़ने के समान है। जैसे हथौड़े की चोट से कितने कितने बड़े और किस-किस रूपरेखा के टुकड़े होंगे, कहा नहीं जा सकता, उसी भाँति क्रांति के प्रभाव से समाज का क्या कुछ बन जायेगा, कहना कठिन है। यह कुशल नीतिज्ञों का ढंग नहीं। क्रांति तो अनपढ़, मूर्ख और अयोग्य लोगों का हथियार है। मैं अपने देश में तो इसका प्रयोग नहीं चाहती।'[१] स्पष्ट है कि जहाँ चन्द्रकांत साम्यवाद पर अपनी आस्था व्यक्त करता है, वहीं प्रमिला में उसके विरोध के बीज अंकुरित रहे हैं।

नागार्जुन के दुखमोचन का मानवतावादी दृष्टिकोण उसके इस कथन में साकार हो उठा है

'विपत्ति के इन क्षणों में इस तरह की बातें करना बर्बर प्रतिहिंसा का सूचक है। बेणी माधव ! नित्याबाबू की हरकतों से हमारा काफी नुकसान हुआ है और आगे भी हो सकता है, लेकिन इस वक्त तो हम बिना किसी भेद भाव के उनकी सहायता करेंगे। मैं महसूस करता हूँ कि अपने गाँव के एक-एक व्यक्ति की सुरक्षा का दायित्व हम पर है। अभी यह नहीं देखना है कि फलाँ दौलतमन्द है और फलाँ गरीब है, फलाँ हमें गालियाँ देता है और फलाँ हमारा नाम लेकर सुबह-शाम शंख फूँकता है अभी एक व्यक्ति हमारा अपना आदमी है बेणीमाधव।'[२]

उद्देश्य का स्पष्टीकरण

राजनीतिक उपन्यासों की रचना एक निश्चित राजनीतिक उद्देश्य लेकर होती है। अतएव कथोपकथन इन उपन्यासों में उद्देश्य के स्पष्टीकरण की दृष्टि से एक अनिवार्य तत्व के रूप में उपस्थित होता है। राजनीतिक उपन्यासों में लेखक अपना मन्तव्य प्रसंगानुसार पात्रों के माध्यम से व्यक्त करता है। प्रायः सभी राजनीतिक उपन्यास इस प्रवृत्ति से आक्रांत कहे जा सकते हैं। इस रूप में कथोपकथन अपने स्वाभाविक स्वरूप से हटकर राजनीतिक उद्‌बोधक का स्थान ग्रहण कर लेते हैं। राजनीतिक मन्तव्यों के स्पष्टीकरण के कारण वे दीर्घ, विचारप्रधान तथा व्याख्यात्मक हो

१ गुरुदत्त, दासता के नये रूप, पृष्ठ १७१

२. नागार्जुन, दुखमोचन, पृष्ठ १३२

जाते हैं। कभी कभी तो लेख या भाषण का रूप भी धारण कर लेते है। वस्तुत यह कलात्मक पक्ष के दौर्बल्य का सूचक कहा जायेगा।

'अहिंसा' की व्याख्या करते हुए 'बयालीस' का एक पात्र कहता है 'हम अहिंसक सेना के सेनानी है। सत्य हमारी ढाल है' अहिंसा हमारा अस्त्र है और जनता ही, हमारी शक्ति है। अस्त्र शस्त्रो से भी अधिक बल जनता मे है, और जनता का बल विश्वास और लगन म है तथा विश्वास और लगन का बल केवल सत्य और अहिंसा म है। हमारा उद्देश्य सत्य है अतएव ईश्वर हमारी सहायता करेगा। अहिंसा मार्ग के सिपाहियो का, केवल सत्य का फल चाहिए, अहिंसा का अर्थ यह है कि हम दूसरे की वस्तु अपहरण नहीं करना चाहते, दूसरे के प्राप्य पर अपना अधिकार जमा कर उसे वचित करना नहीं चाहते। सत्य और अहिंसा का पुजारी कभी किसी काल मे नही हारता। एक अहिंसक व्रती के शरीरपात से, वहाँ शत सहस्र की सख्या म वैसे ही हढव्रती उसका रिक्त स्थान लेने के लिए आ जाते हैं। ससार के सम्मुख हम ईश्वरीय अस्त्र का प्रयोग कर रहे हैं।'[१] यह कथन वस्तुत गांधीवाद के अहिंसा, सत्य और सत्याग्रह की व्याख्या है और कथोपकथन के स्वाभाविक ढग से न आकर आरोपित ही कही जायेगी। जहाँ एक ओर साम्यवाद का अदम्य कामरेड असद के कथन म सयत रूप से आया है, वहाँ दूसरी ओर ब्रह्मदत्त उसे नाराकशन बना देता है

'हम हक और इसाफ चाहते हैं। इसाफ हासिल करने के लिए जान देना एक बात है, बेइसाफी से दबकर जान क्यो दी जाये ? वीमस्ट एवर फाइट फार जस्टिस (हमे न्याय के लिए निरन्तर लड़ना होगा) इफ डेथ कम्स' लट इट बी इन फाइट फार जस्टिस' नाट इन सरेंडर टू इनजस्टिस (न्याय के लिए लडते हुए मृत्यु आनी है तो आय, अन्याय के सम्मुख पराजय मे नहीं।)[२] असद के इस कथोपकथन म सम्बद्धता और अनुकूलता है किन्तु ब्रह्मदत्त का कथोपकथन अनेक पृष्ठो म फैलकर बिखरा सा लगता है मैं वर्ग के अनुसार व्यक्ति को देखता हूं। मैं भौतिकवादी कल्याण का ही सबसे बडा समझता हू। शोषक के हथियारो से न डरो। यही मार्क्स ने कहा था, लेनिन ने कहा था, यदि हो सके तो जैसे हो, अन्यथा अस्त्रो से शोषक को हटा दो। हर नये निर्माण के लिए एक ध्वस की अवश्यकता है।'[३] कहना न होगा कि ऐसे कथोपकथन 'नारावाद' से अधिक महत्व नहीं रखते।

---

१ प्रतापनारायण श्रीवास्तव, बयालीस, पृष्ठ २००

२ यशपाल, झूठा सच (वतन और देश), पृष्ठ २३६

३ रांगेय राघव, सीधा सादा रास्ता, पृष्ठ २७५-२७७

उद्देश्यपरक कथोपकथन का एक अच्छा उदाहरण 'रंगभूमि' में देखा जा सकता है—'हम जायदाद के लिए अपनी आत्मिक स्वतन्त्रता की हत्या क्यों करें? हम जायदाद के स्वामी बन कर रहेंगे, उसके दास बनकर नहीं। अगर सम्पत्ति से निवृत्ति न प्राप्त कर सकें तो इस तपस्या का प्रयोजन ही क्या ?'[१] यहाँ विनय के माध्यम से लेखक ने गाँधी-दर्शन के दृष्टिकोण की सफल व्यंजना की है।

कथोपकथन से वातावरण की सृष्टि

राजनीतिक उपन्यासकारों ने कथोपकथन को अपने इच्छित की सृष्टि का भी एक सफल माध्यम बनाया है। देवड़े जी का 'ज्वालामुखी' इस दृष्टि से एक महत्वपूर्ण उपन्यास है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि राजनीतिक उपन्यासों में कथोपकथन के गुणों का निर्वाह कलात्मक ढंग से नहीं हो सका है। डॉ० प्रतापनारायण टंडन ने कथोपकथन के निम्नलिखित गुण बताये हैं

(क) उपयुक्तता
(ख) अनुकूलता
(ग) सम्बद्धता
(घ) स्वाभाविकता
(ट) संक्षिप्तता
(च) उद्देश्यपूर्णता

राजनीतिक उपन्यासों में समग्र रूप से कथोपकथन का अध्ययन करने से यह कहा जा सकता है कि उनमें उपर्युक्त समस्त गुणों का समाहार नहीं हो सका है। संक्षिप्तता का अभाव तो इन उपन्यासों का एक सामान्य दोष है। राजनीतिक उपन्यास में धाराप्रवाह ढंग के भाषणों या लम्बे कथोपकथनों को देखा जा सकता है। 'बलचनमा' में स्वामी जी व शर्मा जी के समाजवादी चेतना से युक्त भाषण,[२] 'रैन अँधेरी' में श्यामा का दीर्घ कथन,[३] 'सती मैया का चौरा' में मन्नी का बयालीस की क्रांति में कम्युनिस्टों की भूमिका का स्पष्टीकरण[४] इत्यादि कथोपकथन-दीर्घता के कारण बोझिल और नीरस बन पड़े हैं। वस्तुतः यह प्रभाव भारतीय राजनीति का ही कहा जा सकता है, जो प्रवा

१. प्रेमचन्द, रंगभूमि, पृष्ठ ४३८
२. नागार्जुन, बलचनमा, पृष्ठ १७५-७८
३ मन्मथनाथ गुप्त, रैन अँधेरी, पृष्ठ ४१
४ भैरवप्रसाद गुप्त, सती मैया का चौरा, पृष्ठ ५२५-२८

त्मक भाषणबाजी को जनमानस पर प्रभाव डालने वाली संजीवनी समझती है। राजनीतिक मंच की यह उपदेशात्मक वृत्ति साहित्य में बाधक है, यह तथ्य हमारे राजनीतिक उपन्यास अभी तक नहीं समझ सके, यह एक दुखद स्थिति है। यही कारण है कि इनके उपन्यासों में व्यक्त विचार पात्रों के अपने विचार न होकर लेखक के विचार बन कर रह जाते हैं। डॉ० गणेशन का यह कथन ठीक ही है कि हिन्दी के कई उपन्यासकारों में न जाने कहाँ से यह धारणा आ गयी है कि क्रांतिकारी पात्रों को बोलना अधिक चाहिए, कभी-कभी भाषण भी देना चाहिए। परन्तु बात सचमुच इसकी बिल्कुल विरुद्ध है। पात्र जितना बोलता है, उतना उसमें आन्तरिक खोखलापन रहता है।'[1] राजनीतिक उपन्यासकार मचीय वाचालता को उपन्यास का अंग न बनाये तो अधिक उपयुक्त होगा। समाजवादी यथार्थ के चितेरों को, कम से कम राल्फ फाक्स के विचारों को ही समझना चाहिए, जो यह मानता है 'संभाषण बेकार है, यदि हम जीवन की उन तमाम प्रक्रियाओं को नहीं समझते, जो संभाषणों के पीछे छिपी है। निश्चय ही पात्रों के अपने राजनीतिक विचार हो सकते हैं, और होने चाहिए भी, किन्तु शर्त यह है कि वे पात्रों के अपने विचार हों, लेखक के विचार नहीं।'[2]

वातावरण

अपने प्राथमिक परिचय से लेकर आद्यन्त पाठक के मन को अभिभूत करते हुए अथकित रूप में अपने साथ समेटे रहना उपन्यास में वातावरण का ही गुण होता है। अतएव वातावरण का उपन्यास में विशिष्ट स्थान है। वातावरण से अभिप्राय देश और काल की उन उपाधियों से है, जिनके अन्तराल से उपन्यासकार कथा एवं पात्रों का निर्विशिष्ट रूप चित्रित करता है। इसके अन्तर्गत युग और देश की वेष-भूषा, रीति-रिवाज आदि के साथ घटनाओं और व्यक्तियों की स्थूल परिस्थितियाँ भी शामिल हैं, इन्हीं के सयोजन से वातावरण में यथार्थता आती है। सक्षेप में कहा जा सकता है, कि वातावरण दो रूप में हमारे सम्मुख आता है सामाजिक जीवन तथा भौतिक परिस्थितियाँ। इनमें सामाजिक वातावरण जहाँ कथावस्तु को सजीवता प्रदान करता है, वहाँ भौतिक वातावरण पात्रों के मानसिक परिवर्तन के लिए सयोज्य है। सामयिक होने के कारण राजनीतिक उपन्यासों में वातावरण का अपना एक विशेष महत्व होता है, क्योंकि तद्युगीन वातावरण से सलिप्त होने पर ही लेखक सम्पूर्ण परिवेश को विश्वसनीय बना सकता है। यह कहना अनुचित न होगा कि उपन्यासकार के समक्ष देश-काल

---

१. डॉ० गणेशन, हिन्दी उपन्यास-साहित्य का अध्ययन, पृष्ठ २४२

२ राल्फ फाक्स, उपन्यास और लोक-जीवन (अनु०नरोत्तम नागर), पृष्ठ १०६-१०७

का जो परिवेश रहता है, उपन्यास मे वह उसी का चित्रण कर युग के प्रत्यकन को सहज, सटीक एव सजीव कर सकता है ।

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासो मे वातावरण जीवन्त रूप मे प्रस्तुत हुआ है, क्योंकि अधिकाश राजनीतिक गतिविधियो एव आन्दोलनो से निकट का सम्बन्ध रहा है । राजनीति के सक्रिय एक अग रहे है, जिनका चित्रण उन्होने अपने उपन्यासो मे किया है । यशपाल, भैरवप्रसाद गुप्त, अमृतराय, सेठ गोविन्ददास, अज्ञेय, मन्मथनाथ गुप्त, जैनेन्द्र, गुरुदत्त, अनन्तगोपाल शेवडे, यज्ञदत्त इत्यादि उपन्यासकार राष्ट्रीय आन्दोलन से सम्बन्ध रहे हैं ।

राजनीतिक उपन्यासो मे वातावरण को निम्न आशयो से ग्रहण करने का आग्रह है

१ मुख्य प्रभाव की अभीष्ट अभिव्यक्ति के लिए
२ मानसिक दृष्टिकोण के चयन के साथ मुख्य प्रभाव को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए ।
३ देशकाल, भाषण-प्रवाह तथा ससर्ग के क्रम मे विशिष्ट विवरणो के आकलन हेतु ।

मुख्य प्रभाव की अभीष्ट अभिव्यक्ति के लिए

राजनीतिक उपन्यासो को हमने तीन वर्गों मे विभाजित किया है...वादनिरपेक्ष, वादसापेक्ष एव मिश्रित । वादनिरपेक्ष राजनीतिक उपन्यासो मे राष्ट्रीय आन्दोलनों का और उनके परिवेश मे बदलते हुए सामाजिक जीवन का अकन रहता है । इसमे राष्ट्रीय आन्दोलन व राजनीतिक घटनाओ को प्रमुखता मिलती है और व्यक्ति तथा समाज उसके सहयोगी के रूप मे रहते हैं । वस्तुत. इन सहयोगी तत्वो से वातावरण को सजीवता मिलती है । 'ज्वालामुखी' मे बयालीस की क्रांति का यथार्थ चित्रण इन्ही तत्वों के माध्यम से उभरा है । बयालीस की क्रांति मे हिंसक और अहिंसक, दोनो तत्व सक्रिय हो गये थे और वातावरण को घनीभूत बनाने के लिए लेखक दोनो प्रकार से दृश्यो की सृष्टि करता है । कथानक के प्रारम्भ होते ही लेखक नाटकीय ढग से नीरांजन की ज्योति बुझने से अनिष्ट कल्पना की भावना से राजनीतिक धरातल पर आ जाता है और द्वितीय महायुद्ध से उत्पन्न अनिष्टकारी परिस्थितियो का सकेत देते हुए भारतीय राजनीति के स्तर पर आकर बयालीस की भूमिका को स्पष्ट करता है । इसी वातावरण के परिप्रेक्ष मे कांग्रेस के अधिवेशन और गाँधी जी के भाषण-सूत्र को पकड़ कर नायक के द्वारा सूचित करता है 'यह तो पर्व है, महापर्व ! शिव का ताडव होने

जा रहा है। डमरू की डम-डम सुनायी दे रही है। धरा, भूमि, सब डोलने की तैयारी में हैं। यह तो आनन्द, महान आनन्द का क्षण है। आओ, नाचो इस रौद्र भैरव की नृत्य लीला में साथ समरस हो जाओ'[1] इस परिवर्तन में भाव कथानक, पात्र और कथोपकथन एक दूसरे के साथ समरस हो वातावरण को ही प्रभावोत्पादक बनाने में लग जाते हैं।

देश-काल की दृष्टि से हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों को दो वर्ग में विभाजित किया जा सकता है

१—स्वाधीनता पूर्व युग (१८८५ से १९४७ ई० तक)

२—स्वातन्त्र्योत्तर काल (१९४७ ई० से आज तक) स्वाधीनता पूर्व युग की महत्वपूर्ण राजनीतिक घटनाएँ इस प्रकार हैं

१ कांग्रेस के नेतृत्व में हुए अहिंसक आंदोलन—इसके अन्तर्गत असहयोग आन्दोलन नमक-सत्याग्रह सविनय अवज्ञा आन्दोलन इत्यादि का समावेश किया जा सकता है।

२ क्रांतिकारी गतिविधियाँ – ये १९३२ ई० तक सक्रिय रहकर मुख्यतया आतंकवादी राष्ट्रभावों से अनुप्राणित रहीं।

३ स्वाधीनता पूर्व अन्य घटनाएँ—बंगाल का दुर्भिक्ष, बयालीस की क्रांति, आजाद हिन्द फौज का गठन, नाविक-विद्रोह, स्वाधीनता प्राप्ति एवं देश विभाजन आदि।

स्वातन्त्र्योत्तर-काल की घटनाएँ

१—सत्तारूढ़ कांग्रेस और व्याप्त भ्रष्टाचार

२—आम चुनाव

३—राजनीतिक दल और उनकी गतिविधियाँ

स्वाधीनता-पूर्व युग

स्वाधीनता पूर्व युग का चित्रण प्रेमचन्द के उपन्यासों के अतिरिक्त मन्मथनाथ गुप्त के स्वाधीनता आन्दोलन की पृष्ठभूमि पर आधारित 'उपन्यास-सप्तक' के उपन्यासों, गुरुदत्त के 'जमाना बदल गया,' भगवतीचरण वर्मा के 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' और 'भूले बिसरे चित्र' में अपनी समग्रता के साथ अंकित हुआ है। प्रेमचन्द के प्रेमाश्रम, कर्मभूमि, रंग-भूमि एवं गोदान में सन् १९२० से १९३६ का राजनीतिक भारत चित्रित है। गुरुदत्त

१ सन सगोपाल शेवड़े, ज्वालामुखी, पृष्ठ ११

के 'जमाना बदल गया' में १८८५ से १९४७ तक की घटनाएं कथानक का आधार बनी हैं, जब कि भगवतीचरण वर्मा के बृहदाकार उपन्यासों में गाँधी युग की प्रवृत्तियों एवं घटनाओं को महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। मन्मथनाथ गुप्त के 'उपन्यास सप्तक' में सन् १९२१ से स्वाधीनता प्राप्ति तक की राजनीतिक गतिविधियों का अंकन किया गया है। यद्यपि उपर्युक्त सभी उपन्यासों में राष्ट्रीय जागरण से स्वाधीनता-प्राप्ति तक की समान घटनाओं को सग्रथित कर कथावस्तु का संगठन करने पर भी रचना-काल के भेद से वातावरण के निर्माण में शैलीगत अन्तर देखा जा सकता है। प्रेमचन्द ने जहाँ विवरणात्मक शैली अपनायी है और प्रत्यक्षीकरण पर बल दिया है, वहाँ स्वतन्त्र्योत्तर-काल के लेखकों ने कथावस्तु में विवरणात्मक शैली में नाटकीय एवं पात्रों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की पद्धति का समावेश कर वातावरण को अभिव्यंजित किया है।

स्वाधीनता-पूर्व की प्रमुख राजनीतिक घटनाओं में बयालीस की क्रांति एवं देश विभाजन ने उपन्यासकारों का ध्यान सर्वाधिक आकर्षित किया है। प्रतापनारायण श्रीवास्तव का 'बयालीस,' रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' का 'नयी इमारत' व अनन्तगोपाल शेवड़े का 'ज्वालामुखी' सन् बयालीस की क्रांति की पृष्ठभूमि पर आधारित है। इसके अतिरिक्त कतिपय अन्य उपन्यासों में भी इस घटना को स्थान मिला है। वातावरण की दृष्टि से 'ज्वालामुखी' एक उत्कृष्ट उपन्यास है।

वातावरण और आंचलिकता

हिन्दी में आंचलिक उपन्यासों की प्रवृत्ति यदि राजनीतिक कारणों से न भी मानी जाय तो भी इस मत से इन्कार नहीं किया जा सकता कि उसने सामयिक प्रदेशवाद को पोषित किया है। स्थानीय रंग के संदर्भ में मत देते हुए प० सीताराम चतुर्वेदी ने लिखा है कि आंचलिकता किसी कथा के मूल तत्व के रूप से नहीं, वरन् सजावट के रूप में उस कथा के लिए दृश्य, भाषा, वेश, आचार-विचार और व्यवहार का सटीक विस्तृत विवरण है।[1] वस्तुतः किसी भी राष्ट्रीय या राजनीतिक आन्दोलन की प्रतिक्रिया सभी क्षेत्रों में समान नहीं होती। वह मूलतः उस क्षेत्र के निवासियों की राजनीतिक चेतना पर निर्भर करती है। नागार्जुन, रेणु, भैरवप्रसाद गुप्त आदि उपन्यासकारों के जो आंचलिक उपन्यास लोकप्रिय हुए हैं, उनमें गहरा राजनीतिक सम्पर्क मिलता है और इन उपन्यासों का एक ध्येय राजनीतिक आंचलिक जागृति का भी है। राजनीतिक कथावस्तु के पृष्ठाधार पर स्थानीय वातावरण का निदर्शन स्थानगत भौगोलिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों की समष्टि के समन्वय को स्थानीय रंग दिया गया

१ राल्फ फ़ाक्स, उपन्यास और लोक-जीवन, पृष्ठ १३१

है। यशपाल के 'झूठा सच' में भी इसकी छाप मिलती है। इसमें राष्ट्र-विभाजन के राजनीतिक परिपार्श्व में पंजाबी जन-जीवन की सशक्त अभिव्यक्ति है। 'झूठा सच' में वर्णन का विश्लेषणात्मक विस्तार पात्रों या लेखक की टीका के रूप में प्रभावोत्पादक बन पड़ा है। रेणु के 'मैला आंचल' की बिखरी सी कथावस्तु वातावरण के कुशल संयोजन से ही सम्हल सकी है। लेखक जिस वातावरण को अंकित करना चाहता है, उसे शब्दों को रूप दे ही देता है और दृश्य हमारी आँखों के सामने साकार हो उठता है। अनन्त गोपाल शेवडे के 'ज्वालामुखी' में बयालीस की क्रांति का सप्राण चित्रण है और हिन्दी रिव्यू' के सम्पादक के शब्दों में इस उपन्यास का नायक वास्तव में सन् १९४२ का उत्तप्त वातावरण है, जिसने उसमें जीवन भरा है। वातावरण की यथार्थता से पात्रों की मनोदशा, करुणा, आतंक और संघर्ष सजीव हो उठे हैं। गुरुदत्त के राजनीतिक उपन्यासों में भी वातावरण को प्रमुखता मिली है। उनके वर्णन का प्रत्येक अंश अपने आप में युक्तिसंगत होता है और विचार का सूत्र इन अंशों को एक दूसरे से जोड़ता है। उनके पात्रों का वातावरण से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। नागार्जुन और भैरवप्रसाद गुप्त ने समाजवादी यथार्थवाद के अनुरूप विवरण की सचाई के अलावा प्रतिनिधि परिस्थितियों में प्रतिनिधि चरित्रों का भी सच्चा चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। किन्तु इतना होने पर भी हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों को अभी इस दिशा में कई मंजिलें पार करना है। संतुलन के साथ दृश्यों और विवरणों का उपयोग जैसा चाहिए, वैसा नहीं है। वातावरण और पात्र के पारस्परिक सम्बन्ध को भी अभी गहराई से समझने की आवश्यकता प्रतीत होती है। राल्फ फाक्स ने सत्य ही कहा है कि 'वातावरण का प्रश्न पात्र और वातावरण के बीच का वह नाजुक सम्बन्ध है, जिसे मूर्त करना इतना कठिन है और जो यदि लेखक को अपने पात्रों की वास्तविकता को गहरा बनाना है, अपनी कृति के निर्णयात्मक क्षणों को घनीभूत बनाना है, लेखक के लिए आवश्यक है।

राजनीतिक उद्देश्य

राजनीतिक उपन्यास में उद्देश्य का उतना ही महत्व है, जितना वर्ण्य वस्तु का। उपन्यास जीवन की व्याख्या है और वर्तमान जीवन पग-पग पर राजनीति से उद्वेलित होता है। इस रूप में जीवन और राजनीति एक दूसरे के पर्यायवाची हो रहे हैं। आज के जीवन की व्याख्या करते समय राजनीतिक प्रभाव को उससे विलग नहीं किया जा सकता। यह व्याख्या दो प्रकार से की जा सकती है—व्यक्तिगत रूप से अथवा परिवर्तनशील चरित्र के गतिमान रूप में।

व्यक्तिगत व्याख्या में मनुष्य की आन्तरिक भावनाओं का विश्लेषण होता है। किन्तु वह पात्र अपने स्रष्टा के दृष्टिकोण से प्रतिकूल नहीं जा सकता। हडसन ने जीवन

को उपन्यासकार ने विषय के रूप में माना है और उपन्यासकार के लिए यह उचित भी है कि वह युगानुरूप जीवन की प्रतिच्छाया प्रस्तुत करे।

जीवन की व्याख्या का दूसरा रूप गतिमान परिवर्तनशील जीवन के अंकन से व्यक्त होता है। इस पद्धति से अंकित जीवन व्याख्या पाठक की मनश्चेतना में विस्तार पाती है और स्वयं पाठक की व्याख्या हो जाती है।

राजनीतिक उपन्यास में जीवन की व्याख्या किसी भी रूप में क्यों न की जाय, उसमें लेखक की मान्यताएँ आरोपित रहती ही हैं। यह सत्य ही है कि 'जब जीवन के ताने बाने से ही उपन्यासकार अपनी सृष्टि बुनता है, उसके रंग में ही उसे रँगता है तो यह कैसे संभव है कि उसमें जीवन के प्रति उपन्यासकार की अपनी भावनाओं की छाया न हो, संकेत न हो।'[1]

सच तो यह है कि उद्देश्यविहीन उपन्यास की कल्पना ही असंगत है। ब्रजरत्नदास का कथन है 'मानव अपनी सचेतन अवस्था में निरुद्देश्य रह नहीं सकता। साधारणतः उपन्यास मनोरंजन का साहित्य समझा जाता है, पर यह केवल इसका बाह्य रूप है। अच्छे उपन्यास जीवन संघर्ष के चित्रों द्वारा सिद्धांतों का नैतिक महत्त्व समझाते हैं तथा मनोवेगों या प्रवृत्तियों द्वारा प्रेरित होने पर कार्य या अकार्य कर मनुष्य कैसे सफल अथवा विफल होते हैं, इनके सजीव चित्र उपस्थित कर उन पर प्रभाव डालते हैं।'[2] गुलाबराय भी उद्देश्य को उपन्यासकार के दृष्टिकोण में निहित मानते हुए कहते हैं 'विचार और भाव भी होते हैं।' लेखक का जीवन के प्रति एक विशेष दृष्टिकोण होता है, उसी दृष्टिकोण से वह जीवन की व्याख्या करता है और उसी के अनुरूप उसके विचार होते हैं।[3]

राजनीतिक उपन्यास अपने उद्देश्य में इतने स्पष्ट हैं कि अधिकांश आलोचकों ने उनकी इस प्रवृत्ति पर आक्षेप किये हैं। इनमें से अनेक वर्तमान वैचारिक युग में भी मनोरंजन को ही उपन्यास का उद्देश्य निरूपित करने में संकोच नहीं करते। ब्रजरत्नदास के शब्दों में 'उपन्यास का पाठक किसी आन्दोलन का समर्थन या खंडन करने या उपदेश सुनने के लिए उपन्यास नहीं पढ़ता। उसका उपन्यास का पढ़ना मनोरंजन के लिए होता है।'[4] इसी को श्रीनारायण अग्निहोत्री ने अपने रेशमी शब्दों में यों व्यक्त किया है : 'तथ्य तो यह है कि कथा के द्वारा किसी मतवाद का पोषण कला की हत्या करना है।'

१ शिवनारायण श्रीवास्तव, हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ २३-२४
२ ब्रजरत्नदास, हिन्दी उपन्यास-साहित्य, पृष्ठ ४०-४१
३ गुलाबराय, काव्य के रूप, पृष्ठ १७५
४. ब्रजरत्नदास, हिन्दी उपन्यास-साहित्य, पृष्ठ ४२

किन्तु आगे वही स्वीकार करते हैं कि 'यदि कला-निर्माण में कोई मतवाद हो सकता है तो वह है मानव हितवाद।'[1] प्रश्न सहज रूप से उठता है कि क्या राजनीतिक मानव हितवाद की विरोधिनी है? राजनीति की आधारभूमि ही मानव हित है, यह सर्वमान्य तथ्य है, समझ में नहीं आता कि फिर अग्निहोत्री जी का यह विरोधाभास क्या अर्थ रखता है।

स्पष्ट है कि बदलते हुए युग के अनुरूप यदि आलोचकगण अपनी मान्यताएँ नहीं बनायेंगे तो उनके दृष्टिकोण में इस प्रकार का विरोधाभास मिलना स्वाभाविक ही है। देवकीनन्दन खत्री के युग में उपन्यास यदि मात्र मनोरंजन के उद्देश्य से लिखे जाते थे और मनोरंजन को ही उनका मुख्य उद्देश्य स्वीकार लिया गया था तो उसी को आज भी मानते जाना युक्तिसंगत नहीं। उद्देश्य में भी परिस्थितियों के अनुसार युगानुकूल परिवर्तन होता रहा है, यह एक ऐतिहासिक तथ्य है।

जब विभिन्न तत्वों के आधार पर उपन्यास के वर्गीकरण की आतुरता प्रदर्शित की जाती है तो यह ध्यान रखना भी आवश्यक है कि यह वर्गीकरण और उसके मानदण्ड विशिष्ट गुणों के अनुरूप ही होगा और मूल्यांकन के समय इन गुणों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। मूल्यांकन के समय 'सब धान बाइस पसेरी' का सिद्धांत यहाँ चरितार्थ न होगा। राजनीतिक उपन्यास में यदि उद्देश्य राजनीतिक न हो तो उसका मूल्य ही क्या! उसकी इच्छा-तृप्ति का स्रोत कहाँ? सिद्धान्त प्रचार और वर्ग-चेतना को प्रसर करना तो राजनीतिक उपन्यासों का एक मुख्य उद्देश्य है और उसका मूल्यांकन भी उसी आधार पर होना चाहिए।

राजनीतिक उपन्यासकार अपने उद्देश्य की स्पष्ट घोषणा कर सामने आये हैं। इसका एक प्रमुख कारण यह है कि राजनीतिक उपन्यास राष्ट्रीय आन्दोलनों से उद्भूत राजनीतिक चेतना की देन है। इसी की भूमिका से उपन्यास-रचना विधान के उद्देश्य में राजनीति को स्थान प्राप्त हुआ। कहा जा सकता है कि राजनीतिज्ञों द्वारा घोषित राजनीतिक मान्यताओं ने समाज के साथ-साथ साहित्य को भी सचालित किया। इसे मानने से कौन इन्कार करेगा कि सन् १९२० के उपरान्त विभिन्न राजनीतिक विचार-धाराओं ने भारतीय मानस को तीव्र गति से आन्दोलित किया। इनमें से जो दो राजनीतिक वाद भारतीय राजनीति में अधिक सक्रिय हुए, वे गाँधीवाद और समाजवाद हैं। साहित्य में गाँधीवाद का पोषण और प्रचार का परचम प्रेमचन्द ने और समाजवाद-मार्क्सवाद का लाल झंडा यशपाल ने उठाया।

---

१ श्रीनारायण अग्निहोत्री, उपन्यास-तत्व एवं रूप-विधान, पृष्ठ १७१

गाँधीवाद के भारतीय जीवन के अधिक निकट होने पर भी सन् १९३४ के निकट समाजवादी और मार्क्सवादी विचारधारा भारतीय राजनीति में अंकुरित हुई और इसका उपन्यास में निदर्शन कराया यशपाल ने। यह गाँधीवाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में रूस की जनक्रान्ति की सफलता से यहाँ ग्रहण किया गया। स्वयं यशपाल इसे विरोध का साहित्य मानते हैं। उनके शब्दों में "मेरे विचार से विरोध का साहित्य सदा भविष्य की ओर जायगा और समर्थन का साहित्य सदा स्थिति का पोषण करेगा।" वे यह भी मानते हैं कि "लेखक से ऐसे विरोध की आशा इसलिए की जा सकती है, क्योंकि जनसमुदाय की अपेक्षा वह अधिक सचेत और भावुक होता है। वास्तव में उसका विरोध समाज की चेतना या विकास की इच्छा का ही प्रकट रूप होता है। विकास का ही भविष्य है। ऐसी चेतना या साहित्य सदा उभरा लिये रहता है, क्योंकि वह बहुत समय तक दब घुटने के बाद फटता है।"[1] इतना ही नहीं, अपितु उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं कि 'साहित्यिकों को चाहिए कि वे अपनी लेखनी द्वारा आर्थिक क्षेत्र में जनवाद और सामूहिक हित के लक्ष्य को लाने का प्रयत्न करें।'[2]

उद्देश्य की अभिव्यक्ति की दो विधियाँ हैं—प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष। लेखक के विचार और मान्यताएँ प्रच्छन्न रूप में अधिक प्रभावी हो सकती हैं और कलात्मक सौष्ठव को भी बनाये रख सकती हैं। विषय के साथ विचारों का समावेश स्वाभाविक ढंग से होना चाहिए। प्रेमचन्द के गाँधीवादी पात्र सूरदास, प्रेमशंकर, चक्रधर, अमरकान्त आदि लेखक की आदर्शवादी विचारधारा के अनुसार व्यक्तित्व पाते हैं और विचारों के साथ उनका दृढ़ सम्बन्ध है। यशपाल ने भी अपने विचारों को पात्रों के माध्यम से अत्यन्त कुशलता से व्यक्त किया है। उद्देश्य को अभिव्यक्ति देते समय लेखक को अपने विचारों के प्रचार के लिए पात्रों के जीवन को अस्वाभाविक रूप देना चाहिए। पात्रों के जीवन के आधार पर ही उन्हें अपने विचारों को रूप देना चाहिए, न कि सिद्धान्तों के लिए पात्रों की सृष्टि। अप्रत्यक्ष विधि में जीवन के अंकन द्वारा व्याख्या, सामग्री के चुनाव, संगठन, कथन पर आवश्यक बल, चरित्र-चित्रण एवं कथा-विकास के द्वारा ही उपन्यासकार जीवन के विषय में अपने विचारों का प्रकाशन कर सकता है। इस सन्दर्भ में वयोवृद्ध उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा का यह कथन राजनीतिक उपन्यासकारों का मार्गदर्शन कर सकता है—"उपन्यासकार का लक्ष्य ऊपर-ऊपर से पूर्ण मनोरंजन और भीतर से

१ मासिक 'आजकल,' जुलाई, १९६०, पृष्ठ ३३-३४, श्री विश्वनारायण सिंह को दिये एक इन्टरव्यू से।

२ मासिक 'आजकल,' जुलाई १९६०, पृष्ठ ३३-३४, श्री विश्वनारायण सिंह को दिये एक इन्टरव्यू से।

सत्य, शिव, सुन्दरम् की साधना होना चाहिए। अपनी संस्कृति के इस सूत्र का मैं कायल हूँ और यही मेरा आदर्श है। अंग्रेजी में उसको यों कह दूँ—'फोटोग्रेफिक रियलाइजेशन गुड बी ब्लैंडेड विद ए डोमिनन्ट नोट ऑफ़ आइडियलिज्म,' मैं इसी का निर्वाह करता हूँ। प्रत्यक्ष उपदेश के मैं बिलकुल विरुद्ध हूँ। इसका कोई एस्थटिक वैल्यू नहीं, चाहे उपन्यास का क्षेत्र आर्थिक हो, चाहे सामाजिक राजनीतिक या नैतिक।''[१]

किन्तु सच तो यह है कि हिंदी के अधिकांश राजनीतिक उपन्यासों में उद्देश्य प्रत्यक्ष विधि से होने के कारण आलोचकों की वक्र दृष्टि का कारण बना है। समाजवादी—यथार्थसमन्वित उपन्यासों में उद्देश्य पात्रों की नारेबाजी में पड़कर अपने कलात्मक पक्ष को क्षीण कर बैठा है। पात्रों के कथपकथन का मुख्य ध्येय ही उद्देश्य की अभिव्यक्ति करना मान लिया गया है। अन्य राजनीतिक उपन्यासों की स्थिति भी इससे कुछ अधिक भिन्न नहीं है। 'चढ़ती धूप' का मोहन कहता है 'समाज की भयंकर समस्या और नारकीय विषमता का निपटारा युद्ध में है शांतिमय समय या समझौते में नहीं पूँजीवादी स्वार्थों के विनाश में है, पारस्परिक मेल में नहीं। क्रांति में है, परिवर्तन में नहीं, कोटि-कोटि शोषित श्रमिकों की हुंकार में है, व्यक्तिवादी आत्माभिव्यक्ति में नहीं, हिंसा में है, अहिंसा में नहीं।'[२] इसी उद्देश्य को लेकर उपन्यास की कथावस्तु की रचना की गयी है। एक दूसरा उदाहरण 'विषाद-मठ' के एक गीत को देखिए—'राते के दिन सदा नहीं रहते। सिर धुन धुन कर पछताने वाले! तेरे दुःखों के ताप से चट्टानें पिघलने लगी हैं। स्वतन्त्रता, शांति और साम्य की दुन्दुभी बजने वाली है। तूने अपना बागी सिर उठाया है, तेरे ऊपर खून से भीगा झण्डा है।'[३]

गांधीवादी उपन्यासों में राजनीतिक उद्देश्य की घोषणा प्रत्यक्ष रूप से की गयी है। 'ज्वालामुखी' का नायक अभय का यह कथन गाँधीवाद का ही पोषण करता है: 'गाँधी जी के दर्शन में पूरी आस्था है और मेरा यह सम्पूर्ण विश्वास है कि अहिंसा के मार्ग से ही भारत शीघ्र और पूर्णतया सफल हो सकता है। भारत की विशिष्ट जीवन प्रणाली, दार्शनिक परम्परा और आध्यात्मिक वृत्ति में अहिंसा जो चमत्कार दिखा सकती है, वह हिंसा के बस का नहीं। हिंसा की प्रतिक्रिया अधिकाधिक हिंसा और उसकी प्रतिक्रिया अधिकतम हिंसा—इस दुष्चक्र से मानव की मुक्ति नहीं। क्रोध का प्रतिकार अक्रोध से हो, द्वेष का प्रतिकार प्रेम से हो, और हिंसा का प्रतिकार अहिंसा से हो तो यह दुष्चक्र भंग हो जाता है और मानव उसमें से मुक्त हो जाता है। मानव के

१ शशिभूषण सिंहल उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा, पृष्ठ २८६
२ अंचल - चढ़ती धूप, पृष्ठ १२५
३ रांगेय राघव विषाद-मठ, पृष्ठ १६३

प्रश्नों का हल निकालने में हिंसा बेकार और निकम्मी साबित हुई—अहिंसा पूर्णतः सफल और उपयोगी।'[1]

शैलीगत वैशिष्ट्य

अभिव्यंजना का कलात्मक ढंग ही शैली है, जो शॉपेनहावर के शब्दों में मस्तिष्क की छाया वृत्ति.के दृश्य रूप की भंगिमा है। म्यूलेन के मत से भाषा के रूप में विचारों की अभिव्यक्ति शैली का प्रकट रूप है। स्टेण्डल मानते हैं कि 'किसी प्रस्तुत विचार में उस पूर्ण प्रभाव को उत्पन्न कर देने वाली सब परिस्थितियों के योग को शैली कहते हैं, जो उस विचार द्वारा प्रस्तुत होनी चाहिए।' उपर्युक्त परिभाषाओं से राजनीतिक उपन्यास में शैली के महत्त्व को समझा जा सकता है। राजनीतिक उपन्यास एक विशेष वर्ण्य वस्तु पर अपना ढाँचा निर्मित करता है और इस कथावस्तु की सार्थकता प्रयुक्त शैली-तत्व के उत्तम प्रयोजन पर निर्भर होती है।

राजनीतिक सिद्धान्तों के समावेश ने शैली के रूप को भी प्रभावित किया। मार्क्सवादियों के सिद्धान्तानुसार न तो कलाकार और न वर्ण्य विषय एक दूसरे से पृथक् करने योग्य और न एक दूसरे पर निष्क्रिय रूप से आश्रित रहने वाले सार पदार्थ हैं। कलाकार के अस्तित्व का उद्भव वर्ण्य विषय से होता है। और वह वर्ण्य विषय से एकाकार करता हुआ होता है और यद्यपि वर्ण्य वस्तु की प्राथमिकता रहती है, कलाकार की प्रतिक्रिया वर्ण्य विषय पर होती है और वह कभी निष्क्रिय नहीं रहता। कलाकार तो उसके जीवन की कसौटी होता है। वह उसे उस गहनतम ज्ञान को निर्धारित करने एवं स्वरूप देने में सहायक होता है, जो भीतर से अभिव्यक्ति का प्रत्याशी होता है। मार्क्सवादियों के अनुसार वास्तविक संसार का आभास प्राप्त करने और उसका मर्म जानने का लेखक का ढंग हो सकता है।

कुछ भी हो, यह तो माना ही जा सकता है कि कलाकृति अपने रूप के माध्यम से ही रचना में निहित वास्तविकता को उद्घाटित करती है। शैली के तीन प्रकार हैं—कथात्मक, आत्मचरितात्मक और पत्रात्मक। राजनीतिक उपन्यास मुख्यतः कथात्मक शैली में ही लिखे हैं। जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी आदि ने कुछ उपन्यास आत्मचरितात्मक शैली में राजनीतिक उपन्यासों की रचना की है, किन्तु राजनीतिक तत्व की दृष्टि से वे सुगठित न होने के कारण असफल राजनीतिक बन कर रह गये। नागार्जुन का 'बलचनमा' और अचल का 'उल्का' अवश्य ही आत्मचरितात्मक राजनीतिक उपन्यास के रूप में सफल रहे हैं। पत्रात्मक शैली का प्रयोग कुछ उपन्यासों में

---

१ अनन्तगोपाल शेवड़े ज्वालामुखी, पृष्ठ २४७

अवश्य मिलता है, परन्तु इस शैली मे सम्पूर्ण उपन्यास कोई नहीं है। उपन्यासो म व्यग्या त्मक शैली का भी प्रयोग बहुतायत से किया गया है। आचार्य चतुरसेन का 'बगुले के पख' और राजेन्द्र यादव के 'उखडे हुए लोग' म व्यग्यात्मक शैली विशेष रुप से व्यवहृत की गयी है।

जिन राजनीतिक उपन्यासो म राजनीतिक तत्त्व गौण हुआ है, उसम शैली की दृष्टि से अन्तर दिखलायी देता है। उदाहरणार्थ जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी और अज्ञेय की त्रयी' को लें। इनके उपन्यासो में मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्राधान्य मिलने से भाषा शैली प्रौढ साहित्यिक और काव्यात्मक गुण से युक्त है। भाषा मे प्रवाहात्मकता है, उपमाओं का अभिव्यजनापूर्ण प्रयोग किया गया है। इन्होने भावावेश स पूर्ण वक्तृता शैली को अपनाया है तथा भाषा शैली अनुचितन के कारण गम्भीर व तत्समबहुला है। इन्होने व्यक्ति के माध्यम से समाज की शाश्वत समस्याओ पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है, किन्तु इस पद्धति को ग्रहण करने के कारण राजनीतिक तत्त्व नहीं उभर सके है। व्यक्ति का अध्ययन (भले ही वह राजनीतिक पात्र हो) उद्देश्य होने से कथानक स्वल्प मिलता है तथा घटनाओ की गौणता है। इसी कारण वर्णनात्मकता का अभाव है। शैली की दृष्टि से पूर्व दीप्ति चेतना प्रवाह व काल विपर्यय को अपनाने की चेष्टा की गयी है, पर उनका पूर्णत निर्वाह नहीं हो सका है।

समाजवादी यथार्थवादी उपन्यासो म पृष्ठभूमि की विवेचना आलोचक की नयी भूमिका है। वर्णन की शैली पृष्ठभूमि का महत्वपूर्ण परिष्कार है। इसके कारण ही पृष्ठभूमि को वातावरण का आधार और उत्पत्ति का क्षेत्र निरूपित किया जाने लगा। राजनीतिक उपन्यास म सामयिक प्रवृत्तियाँ तत्कालीन जीवन के अनुवाद के रूप म सम्मुख आयी और उनका उदात्तीकरण और अभिनयात्मक परिचय पाठको को प्रभावित करने म समर्थ हुआ। पृष्ठभूमि को महत्व प्राप्त होने से तथ्यात्मक शैली का आग्रह बढा और वर्णित घटना-काल को 'मूवी कैमरा' की-सी आँखो से देखने की प्रवृत्ति आयी।

भाषा

राजनीतिक उपन्यासो म चमत्कार की विशेष प्रवृत्ति नहीं मिलती। इनका आरम्भ इतिवृत्तात्मक कथानक से होता है। राजनीतिक उपन्यासो की भावव्यजना म काव्य-कल्पना का उल्लास नहीं, अपितु मृत्युलोक की व्यावहारिक सत्ता का चित्र मिलता है। भाषा साहित्य का बाह्य रूप है और वह उसकी आत्मा को अपने अन्दर सुरक्षित रखती है। वह मानव हृदय के भावो को मूर्त रूप देकर स्थायित्व प्रदान करती है। शैली भाषा से अलग वस्तु नहीं वह भाषा की चाल और गति ही है। शैली भाषा को भावानुकूल रूप प्रदान कर उसकी अभिव्यजक शक्ति को महत्ता प्रदान करती है। कहा जा सकता

है कि भाषा एक स्वाभाविक वस्तु है, लेकिन शैली कलाकार का रचना-चातुर्य । लेखक अपने भावो को अधिक मूर्तिमत्ता प्रदान करने के लिए भावानुकूल शब्दो का प्रयोग करता है ।

राजनीतिक उपन्यास जनसाधारण की भावनाओ को व्यक्त करते हैं और विचारप्रधान होते हैं । अतएव उनकी भाषा जनता की बोलचाल की भाषा है । सरलता इसका रहस्य है और उपन्यास मे निहित विचार को यह स्वाभाविक रूप से प्रकट करती है। राजनीतिक उपन्यासकार इस तथ्य से परिचित हैं कि भाषा विचारो का वाहन है। विचार ही सबसे महत्वपूर्ण हैं, भाषा का स्थान तो बाद मे है । क्या बन्दर को ऐसे घोडे पर बैठाना शोभा देता है, जिसकी साज सज्जा हीरो तथा मोतियो की हो ?[1] यही कारण है कि उनकी भाषा मे कला और उपयोगिता का सम्मिश्रण है । उसमे भाषा का व्यावहारिक चलतापन होता है, जिसे हम दैनिक सामाजिक जीवन मे काम काज की भाषा कह सकते है जहाँ न व्याकरण के विशेष बन्धन हैं और न साहित्यिकता का विशेष आग्रह । नागार्जुन के 'रतिनाथ की चाची' का एक उदाहरण देखिए—'जमींदार चुनाव मे हारकर अपने अन्धकारमय भविष्य की कल्पना करते हुए कछुए की भाँति दुबके पड़े थे। अन्दर ही अन्दर कुछ सोचकर अपने पैंतरे बदल डालने का उन्होने निश्चय किया । परम्परा की दुहाई देकर कांग्रेसी मन्त्रियो को उन्होने धमकी दी—'आपका खादी का कुर्ता पहले हम अपने खून से तर कर देंगे, उसके बाद जाकर जमींदारी प्रथा उठा दीजियेगा ।'[2]

इन उपन्यासो मे विचार को स्पष्ट बनाने के लिए 'जैसे,' 'मानो' आदि का प्रयोग कठिन विषय को अधिक बोधगम्य बनाने के लिए विशेष रूप से किया गया है। इसके कारण भाव व्यंजना कहीं-कहीं अधिक सुन्दर हो गयी है । किन्तु जहाँ इस आलंकारिक पद्धति का अनुसरण समुचित रूप से नहीं हो सका है, वहाँ वह अरुचिकर भी हो गई है । अश्क के उपन्यासों मे यह दुर्बलता विशेष रूप से उभरी है। "ठाकुर साहब धारा सभा के सदस्य पहले भी रह चुके थे । उनके लिए वहाँ अब कोई नवीनता न बची थी । उसके प्रति उनकी अब वैसी ही उदासीन, निरपेक्ष, ऊबी हुई दृष्टि थी जैसी किसी रसिक पुरुष की अपनी किसी अधेड़ रखैल के प्रति, जिसके भीतर अब नया कुछ ज्ञातव्य नहीं है, जिसका शरीर ढल चुका है और अन्दाज बासी पड़ चुके है, जो एक रोज के इस्तेमाल से घिस गये है ।

---

१. विवेकानन्द के राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के सम्बन्ध में विचार, पृष्ठ २५
२ नागार्जुन : रतिनाथ की चाची, पृष्ठ ६४

'बिलकुल ऐसी ही ठाकुर साहब के लिए यह धारा-सभा थी।'[१]

कथोपकथन में भाषा की स्वाभाविकता आवश्यक है। कथोपकथन के क्रमिक विकास में आवश्यक है कि पात्र की वाक्य-योजना में वह स्वाभाविक भावभंगी हो, जो वस्तुतः नित्य के व्यवहार में प्राप्त होती है। वार्तालाप में प्रायः वाक्य का शुद्ध क्रम नहीं जाता। इसीलिए वास्तविकतावादी अधिकतर नाट्य प्रणाली का अनुसरण करते हैं। प्रेमचन्द में यह प्रवृत्ति नहीं मिलती, पर प्रेमचन्दोत्तर राजनीतिक उपन्यासों में इस प्रणाली का उपयोग किया गया है जिससे कथोपकथन की भाषा की शक्ति सामने आयी है। 'देखा भाई पुरी, है न आदमी में फरक! शाबाश है बुड्ढे को, असली सरदार है न! जवान बेटे मारे गये, बहुएँ, लड़की छिन गईं, घर का सब मालमता लुट गया लेकिन यह पाव भर आटे के लिए हाथ नहीं पसारेगा।' और अब उन सरदार जी का कथन भी सुन लें, जिसकी ऊपर चर्चा है —'मैं क्या अपाहिज, मंगल हूँ, फकीर हूँ? मैं किसान आदमी हूं। मेरे हाथ-पाँव अभी टूट नहीं गये हैं। मैंने उमर भर ब्राह्मण, नाई, कमीन और फकीर को चुटकी देकर दस आदमी को खिलाकर खाया है। मैं आटे के लिए किसी के आगे हाथ पसारूं? तेरी आँख का पानी मर गया है तो तू जाकर माँग।'[२]

राजनीतिक उपन्यासों की भाषा को हम संक्षेप में शिक्षित मध्य वर्ग की भाषा कह सकते हैं। प्रेमचन्द गाँधी जी की हिन्दुस्तानी के कायल थे। वे भाषा के ऐसे रूप को पसन्द करते थे, जिसमें संस्कृत और फारसी के प्रचलित शब्द बिना रोक-टोक आ जावें। वे भाषा के उन प्रचलित रूपों को अपनाने के पक्ष में थे, जो जनता द्वारा अपनाया गया हो, उसके ऊपर लादा न गया हो। हिन्दुस्तानी तत्कालीन राजनीतिक स्थिति के अनुकूल थी, अतः प्रेमचन्द ने उसे ही ग्रहण किया। उनका कथन है कि 'जो लोग भारतीय राष्ट्रीयता का स्वप्न देखते हैं और जो इस सांस्कृतिक एकता को दृढ़ करना चाहते हैं, उनसे हमारी प्रार्थना है कि वे लोग हिन्दुस्तानी का निमन्त्रण स्वीकार करें, जो कोई नई भाषा नहीं है। बल्कि उर्दू और हिन्दी का राष्ट्रीय स्वरूप है।' प्रेमचन्द ने भाषा के इस रूप को ही अपनाया। उनके राजनीतिक उपन्यासों में हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी, तीनों के प्रचलित शब्दों का उपयोग किया गया है। देहाती और क्षेत्रीय भाषा को भी उन्होंने स्थान दिया है। हिन्दी के उन राजनीतिक उपन्यासों में, जिसमें ग्रामीण जीवन का चित्रण किया गया है, भाषा का यही रूप अपनाया गया है। 'कर्म-भूमि' का एक उदाहरण देखिए—"तो फिर कौन रोजगार करोगे? कौन रोजगार है,

१ अमृतराय : हाथी के दाँत, पृष्ठ ४६
२ यशपाल : झूठा सच (वतन और देश), पृष्ठ ४८७

जिसमें तुम्हारी आत्मा की हत्या न हो, लेन-देन, सूद, बटा अनाज, कपड़ा, तेल, घी सभी रोजगारों में दाव-घात है। जो दाव घात समझता है, वह मजा उड़ाता है, जो नहीं समझता उसका दिवाला पिट जाता है। मुझे कोई ऐसा रोजगार बतला दो, जिसमें झूठ न बोलना पड़े, बेईमानी न करनी पड़े। इतने बड़े बड़े हकीम हैं, बताओ कौन घूस नहीं लेता ? एक सीधी सी नकल लेने जाओ, तो एक रुपया लग जाता है। बिना तहरीर किये थानेदार रपट नहीं लिखता। कौन वकील है, जो झूठे गवाह नहीं बनाता ? लीडरों में ही कौन है, जो चन्दे के रुपये में नोच खसोट न करता हो ? माया पर तो संसार की रचना हुई है, इससे कोई कैसे बच सकता है ?" नागार्जुन और भैरवप्रसाद गुप्त के उपन्यासों के अतिरिक्त 'बयालीस,' 'स्वतन्त्र भारत,' 'अनबुझी प्यास,' 'अमरबेल' इत्यादि उपन्यासों में भाषा का ऐसा ही रूप देखने को मिलता है। किन्तु जिन राजनीतिक उपन्यासों में नागरी जीवन चित्रित हुआ है या मध्यवर्ग को प्रमुखता मिली है, भाषा का स्वरूप बदल गया है। ऐसे उपन्यासों में भाषा का क्लिष्ट रूप भी देखने को मिलता है। जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, राजेन्द्र यादव और मन्मथनाथ गुप्त के उपन्यासों से यह अन्तर सहज ही समझा जा सकता है। इनमें उपन्यासों में भाषा के नये और क्लिष्ट शब्द गढ़ने की प्रवृत्ति देखने में आती है। अंग्रेजी के शब्दों और वाक्यों का प्रयोग भी अधिकायत से हुआ है। चिन्तन-आत्मचिन्तन शैली का एक उदाहरण 'विवर्त' से प्रस्तुत किया जा रहा है—'दुनिया में कई दुनियाँ है और आदमी में कई आदमी। असल में चेतना में पर्त पर पर्त है। इसलिए जो है, वह निश्चित नहीं है, वह एक रूप में नहीं है। क्या है, सो कहा नहीं जा सकता। जो है, अनिर्वचनीय है। है तो एक, पर दीखता है, प्रतीत होता है इसमें भिन्न। प्रतीति होने से ही जगत् है। प्रतीति है माया, इससे जगत् माया है। माया ममता होने की शर्त है। यही है होने का आनन्द, यही उसका दुःख। अपनी प्रतीतियों में मन वर्तन करते हैं। इससे सदा नये नये प्रपंच पकते हैं। शायद होना और होते रहना छलना ही है।'

राजनीतिक उपन्यासों में पात्रानुकूल भाषा का ध्यान भी रखा गया है। इनका नागरिक नगर में व्यक्त भाषा का उपयोग करता है, लेकिन ग्रामीणों की भाषा देहाती स्तर की होती है। जाति धर्म, व्यवसाय और शिक्षा की दृष्टि से भी पात्रों की भाषा एवं बोलचाल में अन्तर आ जाता है और राजनीतिक उपन्यासकारों ने इसे दृष्टिगत रख भाषा को पात्रानुकूल रखने का प्रयत्न किया है। राजनीतिक उपन्यासों में साम्प्रदायिक समस्या का चित्रण अधिक विस्तार से किया गया है। अतएव यह स्वाभाविक ही था कि समस्या का समाधान विभिन्न सम्प्रदाय के व्यक्तियों द्वारा उन्हीं की बोली बानी में यथार्थ के धरातल पर किया जाय। नौकरशाही के कर्मचारियों, धर्माचारियों, किसानों, मजदूरों की भाषा को भी इन उपन्यासकारों ने उसी प्रकार दिखलाया

जैसे कि य लोग बोलते है। स्थानाभाव के कारण हम यहाँ इसकी विशद विवेचना न करके एक-एक उदाहरण प्रस्तुत कर रहे है—

धर्माचारियो की भाषा

मौलवी—'बेटो, बन्दे को अल्लाह की रजा पर इत्मीनान करना चाहिए। उस कादिर मुतलिक के रहम पर सब्र करना चाहिए। उसकी हर बात बन्दे की बहबूदी (हित) के लिए होती है। वह चाँद-सूरज और तमाम कायनात (सृष्टि) की खबर रखता है। पत्थर म बन्द कीडे का भी नहीं भूलता।[1]

पंडित—'क्या मगल है और क्या अमगल है, यह हम अपनी अपनी दृष्टि स देखते हैं, भाई! जो हमारी दृष्टि मे आज अमगल दिखायी देता है, कल वन कर वही मगल हो जाता है, क्योंकि प्रभु की दृष्टि में वही मगल है और आज जिसे हम मगल कहते है, वही कल अमगल भी हो सकता है। मगल और अमगल का निर्णय तो वही कर सकता है, जो ज्ञानी है। पर मनुष्य अभी ज्ञान से कितनी दूर है।[2]

धर्मान्धता मे पडकर मौलवियो और पडितो की भाषा भाव-परिवर्तन से किस तरह बदल जाती है, इसके उदाहरण भी देखिए—

'देश की हत्या' म एक मौलवी मुसलमानो से कहता है—

'खुदा परवर दिगार ने हजरत को एक नमूना बनाकर हमारे पास भेजा है। हमको उनकी बातो को अमल म लाना चाहिए। हजरत नबी ने काफिरो की हर शै को हलाल बताया है। इसलिए आप लोगो को काफिरो की लूटी हुई धन दौलत और उनसे छीनी हुई औरतें हलाल है। आपका उनकी औरतें और धन-दौलत लेने पर कोई गुनाह नहीं लगता, बल्कि सवाब होगा।[3]

सरकारी कर्मचारी (सिपाही) की भाषा का नमूना देखिए—'कोतवाली को वेरलैस कर दिया हुजूर! मिरजा जी अटेण्ड कर रहे थे हुजूर तौन उन्होंने मिसेज दिया कि अस्पताल की गाडी भिजवाते हैं हुजूर।' उपर्युक्त भाषा लखनऊ के पुलिसमैन की है, अत. उसमे अग्रेजी-अरबी मिश्रित हिन्दुस्तानी की छटा स्वाभाविक ही है। थानेदार सुल्तानसिंह और हैड कान्स्टेबल के बीच की वार्ता का एक उदाहरण और देखिए—

'सुल्तानसिंह ने कहा—मेरा ख्याल है, मुलजिम इधर ही से भाग गया है।

१ यशपाल, झूठा सच (वतन और देश) पृष्ठ ४२४

२ अनन्त गोपाल शेवडे, ज्वालामुखी, पृष्ठ २६१

३ गुरुदत्त, देश की हत्या, पृष्ठ १७८

हेड ने कहा—पर हुजूर तो कहते थे कि उसे लकवा मार गया है और इलाज हो रहा है।

सुल्तानसिंह ने कहा—बताया तो यही गया था, बल्कि कई जरियों से इसकी तस्दीक हुई थी। पर इस जगने की बात किसी ने नहीं बतायी थी। नहीं तो उधर दो सिपाही तैनात करने में कठिनाई क्या थी।[1] अब ग्रामीण किसानों की भाषा का नमूना देखिए—

'काशी बोला—मजूरी मजूरी है, किसानी किसानी है। मजूरी लाख हो, तो मजूर ही कहलायेगा। सिर पर घास रखे जा रहे हो, कोई इधर से पुकारता है—ओ घास वाले। कोई उधर से! किसी की मेड़ पर घास घर लो, तो गालियाँ मिलें। किसानी से मरजाद है।' यह प्रेमचन्द के गाँव के लोगों की बोली है, जो उनके उपन्यासों के ग्राम्य वातावरण को मुखरित करने में सहयोग प्रदान करती है। यह कहा जा सकता है कि उपन्यासकार ने गाँव के अशिक्षित लोगों की बातचीत की शैली को अपना कर पात्रानुकूल भाषा का उपयोग किया है।

मुसलमान एवं अंग्रेज पात्रों की भाषा

राजनीतिक उपन्यासों में राष्ट्रीय आन्दोलनों एवं साम्प्रदायिक समस्या का अंकन होने के कारण उनमें मुसलमान एवं अंग्रेज पात्रों की प्रचुरता मिलती है। मुसलमान पात्रों की भाषा तो प्राय वैसी ही मिलती है, जैसी कि अक्सर मुसलमान बोलते हैं, पर अंग्रेजों की भाषा पात्रानुकूल नहीं कही जा सकती। अंग्रेजों की भाषा को जहाँ अंग्रेजी-हिन्दुस्तानीमिश्रित रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है, वहाँ वह अस्वाभाविक ही अधिक हो गयी है।

मुसलमान पात्रों की भाषा का नमूना प्रेमचन्द के 'कर्मभूमि' का देखिए—'तुम्हारे खयालात तकरीरों में सुन चुका हूँ। ऐसे खयालात बहुत ऊँचे, बहुत पाकीजा, दुनिया में इन्कलाब पैदा करने वाले हैं और कितनों ही ने इन्हें जाहिर करके नामवारी हासिल की है, लेकिन इल्मी बरस दूसरी चीज है, उस पर अमल करना दूसरी चीज है।'[2]

अंग्रेजी पढ़े लिखे मुसलमान पात्रों की भाषा में अंग्रेजी का प्रयोग भी मिलता है—

'सुनो मेरी जान! असद द्रवित स्वर में बोला,' 'इस तरह दिल छोटा न करो। वक्त और मौके का तो ख्याल करना पड़ेगा। मैं तुम्हारा हूँ, तुम मेरी हो, लेकिन पार्टी की लायल्टी तो है।' या फिर 'तुम प्रद्युम्न और जुबेदा की बात जानती हो।' इस समय तो पार्टी इनको भी इजाजत नहीं दे रही। उन्हें ताकीद कर दी गयी है कि इस बारे में

१. मन्मथनाथ गुप्त, प्रतिक्रिया, पृष्ठ ४
२ प्रेमचन्द, कर्मभूमि, पृष्ठ ६५

किसी के सामने बात न करें। पार्टी की मंजूरी के बिना मैं कैसे कर सकता हूँ? इट विल बी अगेंस्ट रूल्स एन्ड इन प्रेजेंट सिचुएशन अगेंस्ट कामन सेंस।'[1]

राजनीतिक पात्र और उनकी भाषा

पात्रानुकूल भाषा के अन्तर्गत राजनीतिक पात्रों को लेकर भी उनकी भाषा का अध्ययन किया जा सकता है। प्रायः समान राजनीतिक सिद्धांतों को अपनाने और तदनुसार आचरण के कारण पात्रों की भाषा एवं विचारों में समानता तथा दूसरे राजनीतिक दल के समर्थन से असमानता मिलती है। विचारों की सौम्यता से, नैतिक गुणों पर आस्था से गाँधीवादी पात्रों की भाषा में जहाँ सरलता और कोमलता दिखलायी पड़ती है, वहाँ हिंसात्मक वृत्ति पर विश्वास करने के कारण साम्यवादी पात्रों की भाषा में कठोरता, परुषता और स्वच्छन्दता का आग्रह रहता है। उनकी भाषा रोष और उत्तेजना से युक्त रहती है। इसी तरह साम्प्रदायिक पात्रों की भाषा में धार्मिकता का पुट और प्राचीन संस्कृति का आवेश मिलता है। यह विभेद निम्नलिखित उदाहरणों से सहज ही समझा जा सकता है

गाँधीवादी पात्र

तुम लोग यह ऊधम मचाकर मुझ क्यों कलंक लगा रहे हो? आग लगाने से मेरे दिल की आग न बुझेगी, लहू बहाने से मेरा चित्त शांत न होगा, आप लोगों की दुआ से यह आग और जलन मिटेगी। परमात्मा से कहिए, मेरा दुख मिटायें। भगवान से बिनती कीजिए, मेरा संकट हरें। जिन्होंने मुझ पर जुलुम किया है उनके दिल में दया धरम जागे बस मैं आप लोगों से और कुछ नहीं चाहता।'[2]

क्रांतिकारियों की भाषा

क्रांतिकारियों की भाषा, देश प्रेम, त्याग और आत्म-बलिदान के भावों से प्रायः संयत, दृढ़ और भावनायुक्त रहती है।

'इसके विपरीत मैं यह समझता हूँ कि इसका हमारे देश के युवकों पर बहुत अनुप्रेरणादायक प्रभाव पड़ेगा। इस समय इसी की जरूरत है। कांग्रेस तथा अन्य दलों में जो प्रतिक्रियावादी प्रवृत्तियाँ पुष्ट होकर पनप रही हैं, उनका प्रतिकार इन्हीं फाँसियों से होगा। मैं तो कहता हूँ और भी त्याग होना चाहिए।

---

१ यशपाल झूठा सच (वतन और देश) पृष्ठ २३४
२ प्रेमचन्द रंगभूमि, भाग १ पृष्ठ ३४२

साम्यवादी पात्र

'आप अकेले नही है, करोडो की तादाद है आपकी ! आप जब उठ खडे होंगे और एक कठ होकर हुकार करेंगे तो जालिम जमीदारो का कलेजा दहलने लगेगा। वे है ही कितने, दाल मे नमक के बराबर ! किसान भाइयो, अब आप जग गये है। खान बहादुर, चाहे महाराज बहादुर कोई आपका हक नही छीन पायगा। आप अपनी ताकत को पहिचानिए।'[१]

सम्प्रदायवादी पात्र

'वर्तमान सरकार मुसलमानो को जीवित रखने के लिए पूर्ण प्रयत्न करेगी, परतु यह हो नही सकेगा। भारत की मस्जिदें खुदापरस्ती की मस्जिदें नहीं हैं। ये उस अत्याचार और पक्षपात का चिन्ह हैं, जो भारत के हिन्दुओं के साथ सात सौ वर्ष से होता आ रहा है।'[२]

वस्तुत यह वर्गीकरण भी पात्रानुकूल भाषा का ही एक विशेष रूप है और इसी रूप मे अगीकार किया जा सकता है। इन पात्रो की भाषा भी अपनी जातीयता की छाप को स्पष्ट करती है। भाषा की सरलता एव स्वाभाविकता और विषय के साथ अनुरूपता भी राजनीतिक उपन्यासो मे मिलती है। राजनीतिक उपन्यासो मे उर्दू-हिन्दी का परिमार्जित सम्मिश्रण तो मिलता ही है, अग्रेजी और क्षेत्रीय लोक बोलियो को भी पर्याप्त स्थान मिला है। कथोपकथन मे इस बात की सतर्कता भी रखी गयी है कि उसमे मुसलमान पात्र भाषा मे उर्दू की तत्समता और हिन्दू पात्र सस्कृत की तत्समता का उपयोग करें।

प्रादेशिक बोली और यथार्थ

जिन आचलिक उपन्यासो मे राजनीतिक छाप है, उनमे प्रादेशिक बोलियो का प्रयोग पात्रो की यथार्थता की दृष्टि से किया गया है। 'टेढे मेढे रास्ते' मे (यद्यपि यह आंचलिक उपन्यास नहीं है) भगडू मिश्र अपनी ही बोली मे बोलते हैं। रेणु के उपन्यासों मे सम्भाषण के स्थान पर वर्णन मे प्रचलित प्रादेशिक बोली के शब्दो को प्रयुक्त किया गया है। 'मैला आचल' मे हिन्दी-अग्रेजी शब्दो का ग्रामीण रूप भी देखने को मिलता है— 'रौनहट टीशन मे जो होमापाथी डागडर थे,' 'बालदेव जी आजकल 'जयहिन्द' करते हैं', 'परती-परिकथा' मे अग्रेजी के प्रचलित ग्रामीण रूप देखिए—मनाजा के बाद सत-

१. नागार्जुन बलचनमा, पृष्ठ १७६
२ गुरुदत्त। देश की हत्या पृष्ठ २६७

दीर्घ । तमदीर करने के लिए कानूनगो स ज्यादा पावर वाले हाकिम साहब आये हैं। हर नया हाकिम नया एलान करता है—बाउण्ड्री तनाजा हम नहीं जाने । समाजवादी यथार्थवादी उपन्यासो म शोषित किसानो के चित्रण के समय देहाती अथवा प्रान्तीय भाषा का भी प्रयोग मिलता है । कहीं कहीं यह देहाती बोली फूहड शब्दावली से भी अलकृत है ।[1] सक्षेप म राजनीतिक उपन्यासो की शैली सीधी सादी यथार्थवादी शैली है और उसमे शब्द और विचार की अनुकूलता का समुचित निर्वाह मिलता है । रोमान्टिक प्रसगो के समावेश होने पर यह शैली परिवर्तित हो रोमान्टिक भी हो जाती है और आलोचना के समय व्यग्यप्रधान भी ।

कोई भी कृति बिना कलात्मक हुए न तो सफल हो सकती है और न प्रभाव पूर्ण । किन्तु राजनीतिक उपन्यास के मूल्याकन के समय इस तथ्य को विस्मृत नहीं करना चाहिए कि अपनी विशिष्टता के कारण उसम तथा कलात्मक उपन्यास म अन्तर होता है । कला तो उसमे भी रहती है किन्तु विशुद्ध कलात्मक दृष्टि से उसकी विवेचना न्यायसगत न होगी । उसकी अपनी सीमाए और सम्भवनाएँ हैं । वह उद्देश्य की उपलब्धि के लिए कहीं-कहा सीमोल्लघन कर देता है पर उद्देश्य की सुदृढता ही इस असगति को ढँक लेती है ।

वैचारिकता उपन्यास होने के कारण उनके स्वरूप म किचित अतर परिलक्षित होता है । किन्तु मान्य सिद्धात को आधार मान कर उद्देश्य की दृष्टि से राजनीतिक उपन्यास मानव चेतना और उसकी सृजना शक्ति को क्रियात्मक रूप देते हैं । कथा के सहारे राजनीतिक विचारो का सीधा प्रभाव पडता है । स्पष्ट है कि कला कह सकते हैं । इन उपन्यासो की विशेषता है कि इनम कला प्रधान पद पर आरूढ नहीं की जाती अपितु मात्र सहारे के रूप मे आकर राजनीतिक विचारो की अभिव्यक्ति देती है ।



1 भैरवप्रसाद गुप्त सत्ती मैया का चौरा, पृष्ठ ४६१

अध्याय १०

समसामयिक राजनीतिज्ञों एवं विचारकों के मत एवं आदर्शों के साथ औपन्यासिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन

- भारतीय राजनीति के तीन चरण
- राष्ट्रीय भावना का विकास
- हिन्दी उपन्यास एवं राष्ट्रीयता
- उदारपंथी नेता एवं राजभक्ति
- प्राचीन गौरव, धार्मिक पहलू
- उग्र राष्ट्रीयता
- गांधीवाद
- गांधीय सिद्धांत
- गांधीवाद का चिन्तन पक्ष
- अहिंसा की भूमिका, सत्याग्रह
- हिन्दी उपन्यासों मे
  गांधीवाद का सैद्धांतिक पक्ष
- सियारामशरण गुप्त के उपन्यासों में
  गांधीवाद का रूप
- जैनेन्द्र के उपन्यासों मे
  गांधीय दर्शन
- गांधीवाद और प्रेमचन्द
- गांधीवाद का धर्मपक्ष
- धार्मिक विचारधारा
- सर्वोदयी भावना
- हिन्दी उपन्यासों मे
  गांधीवाद का व्यवहारिक पक्ष
  हृदय-परिवर्तन,

औद्योगिक सभ्यता का विरोध

हिन्दू-मुस्लिम एकता

> सर्वोदय, सर्वोदय के मूलभूत सिद्धान्त

> साम्यवाद एवं समाजवादी विचारधारा

> मार्क्स की प्रेरक शक्तियाँ,

मार्क्स के सिद्धान्त, द्वन्द्वात्मक
भौतिकवाद, इतिहास की भौतिक व्याख्या,
अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त,
सर्वहारा की क्रान्ति एवं अधिनायकत्व,
मार्क्सवाद एवं साहित्य,

> वर्ग संघर्ष का चित्रण, समाजवादी यथार्थवाद एवं प्रेम,

> [illegible] मतवाद की आलोचना

> राजनीतिक सिद्धान्तों एवं साहित्यिक प्रक्रिया में भेद

भारतीय राजनीति के तीन चरण

भारतीय राजनीति के क्रमिक विकास के अनुरूप हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों को घटना-काल के अनुसार तीन चरणों में विभक्त किया जा सकता है

१—प्रथम चरण सन् १८८५ से १९२० ई० तक

२—द्वितीय चरण सन् १९२१ से १९४७ ई० तक

३—स्वातन्त्र्योत्तर काल या तृतीय चरण सन् १९४७ के उपरान्त

उपर्युक्त वर्गों को हम क्रमश राष्ट्रीय जागरण का युग, गाँधी-युग और समाजवादी विचारधारा का युग भी कह सकते हैं। हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों में युगानुरूप राजनीति का कहाँ तक प्रभाव पड़ा है, यह उनके अध्ययन करते समय पहले ही निर्देशित किया जा चुका है। स्थूल रूप से कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय जागरण-काल के उपन्यासों में राष्ट्रीय कांग्रेस एवं उसके वरिष्ठ नेताओं की राजभक्तिसमन्वित राष्ट्रभक्ति का स्वरूप देखने को मिलता है। इसी प्रकार गाँधी युग में रचित उपन्यासों में गाँधी दर्शन तथा स्वातन्त्र्योत्तर काल में समाजवादी विचारधाराओं का प्राधान्य दिखायी पड़ता है। यो मार्क्सवाद का प्रभाव गाँधी युग में भी मिलता है, किन्तु राष्ट्रीय आन्दोलनों के कारण उसका स्वरूप स्पष्टत सम्मुख नही आ सका था। किन्तु इतना होने पर भी उसे राजनीतिक मान्यता प्राप्त हो गयी थी, इसमें सन्देह नहीं।

राष्ट्रीय भावना

हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यासों में राजनीतिक तत्त्वों के अभाव का मूल कारण तात्कालिक राजनीतिक स्थिति थी। सन् १८८२ से गाँधी जी के आविर्भाव तक राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई, जो वस्तुत क्रान्ति को रोकने के लिए एक 'सेफ्टी वल्व' के के समान थी। इसने वैधानिक विरोध के मार्ग को प्रशस्त किया, जिससे जनता के विभिन्न वर्गों के पारस्परिक अभाव मिलकर जन-आन्दोलन का रूप धारण न कर सके। राजनीतिक नेतृत्व मध्य वर्ग के हाथ में आ गया और उसके वैधानिक आन्दोलन के कार्यक्रम के कारण जनसाधारण से उसका निकट का सम्बन्ध स्थापित न हो सका। इस युग के नेता उदारवादी विचारों से प्रभावित थे और ब्रिटेन ही इस युग के राजनीतिज्ञों का मार्गदर्शक था। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, महादेव गोविन्द रानाडे, दादा भाई नौरोजी आदि सभी राजनीतिक नेता ब्रिटिश राज्य-व्यवस्था तथा न्याय पर विश्वास रखते थे। स्वय गाँधी जी भी कई वर्षों तक इसी भ्राति के शिकार रहे। कांग्रेस का विश्वास था कि देश का हित ब्रिटिश सरकार के सहयोग करने में है और राजनीतिक मुक्ति

का मार्ग क्रमिक सुधारवादी विकास से ही सम्भव है। दूसरे शब्दों में कांग्रेस का उद्देश्य कुछ वैधानिक सुधारों की प्राप्ति तक सीमित था और किसी भी क्रांतिकारी परिवर्तन का आकांक्षी नहीं था।

ऐसी स्थिति में भारतीय तथा ब्रिटिश स्वार्थों के बीच संघर्ष उत्पन्न हुआ। प्रारम्भ में यह संघर्ष तीव्र न था, किन्तु ज्यों ज्यों यह खाईं बढ़ती गयी, भारतीय राष्ट्रीयता भी उग्र होती गयी। राष्ट्रीयता के इस मार्ग को सतुष्ट करने का श्रेय वस्तुतः तद्युगीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना को है। इसी नींव पर आगे चलकर राजनीतिक प्रासाद निर्मित हो सका। युग की इन भावधाराओं के अनुरूप ही इस युग के उपन्यासों में उनका अंकन हुआ। जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, इस युग की सामाजिक विचारधारा मूलतः सुधारवादी थी। वैचारिक एवं सांस्कृतिक धरातल पर पाश्चात्य एवं भारतीय संस्कृति का संघर्ष इस युग की विशिष्टता थी। समाज-सुधारक बदलते हुए युग में नवीन परिस्थितियों एवं नवीन विचारों के अनुसार समाज में परिवर्तन चाहते थे। पाश्चात्य संस्कृति के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकने की दृष्टि से रूढ़िवादी दल ने प्रतिरक्षात्मक नीति का अवलम्ब लिया और प्राचीनता के मोह में पड़कर प्रतिक्रियावादी हो गये। इस प्रतिक्रियावादी चिन्तन पद्धति का प्रभाव इस युग के उपन्यासों पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। भारतवर्ष में राष्ट्रीयता की भावना का समुचित विकास उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ। राष्ट्रीयता के विकास में जिन दो तत्वों ने प्रमुख योग दिया, वे हैं ब्रिटिश शासन-व्यवस्था तथा धार्मिक आन्दोलन। धार्मिक आन्दोलनों ने नव जागृति का उल्लेखनीय प्रसार किया। राष्ट्रीयता के आवश्यक तत्वों में से वंशीय एकता, भौगोलिक एकता, समान संस्कृति और समान धर्म-भावना ने इस युग की राष्ट्रीय भावना को उद्दीप्त किया। निरंकुश शासन के अधीन दीर्घ काल तक समान रूप से पराधीन रहने और अत्याचार सहने, महान् ऐतिहासिक संघर्षों में सामान्य साझेदारी की गौरवानुभूति तथा समान उत्तराधिकार की चेतना से उत्पन्न समचित्तता से राष्ट्रीयता को अत्यधिक बल मिला।

फिर भी धार्मिक सामाजिक आन्दोलनों के परिणामस्वरूप इस युग के उपन्यासकारों की दृष्टि युगीन राजनीतिक गतिविधियों के प्रति उदासीन रही। सामाजिक प्रश्नों की ओर ही उनका ध्यान विशेष रूप से गया और उनका ही उपन्यासों में सम्यक् अंकन किया गया।

हिन्दी उपन्यास एवं राष्ट्रीयता

तद्युगीन राजनीतिक स्थिति के अनुरूप ही उपन्यासों में दो राजनीतिक तत्व इन उपन्यास में स्थान प्राप्त कर सके हैं। ये तत्व राजभक्ति और देश प्रेम की भावना से

सम्बन्धित हैं। राष्ट्रीयता का आधार जातीयता तथा अतीत-गौरव है। ये दोनों तत्व परस्पर विरोधी होते हुए भी सामयिक राजनीति की प्रतिच्छाया ही कहे जायेंगे। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी का कथन इस दृष्टि से उद्धृत किया जा सकता है "अंग्रेजी सभ्यता संसार में सर्वोच्च है, इंग्लैण्ड और भारत की असण्डता एकता का चिन्ह है। यह सभ्यता भारतवासियों के प्रति अपूर्व आशीर्वादों और प्रसादों से परिपूर्ण है और अंग्रेजों के सुनाम को अपूर्व ख्याति दिलानेवाली है।[1] इस कथन का साम्य 'आदर्श हिन्दू' (भाग १) के लेखक प० लज्जाराम मेहता की भूमिका में देखा जा सकता है :

"परमेश्वर का लाख धन्यवाद है कि उसकी अपार दया से हम भारतवासियों को ब्रिटिश गवर्नमेन्ट की उदार छाया में निवास करके हजारों वर्षों के अनन्तर सच्चे शान्ति सुख के अनुभव करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इस असाधारण शान्ति और उदारता के जमाने में सरकार से भारतवासियों को जो बोलने और लिखने की स्वतंत्रता प्राप्त है, उसका सदुपयोग होना ही इस अकिंचन लेखक को इष्ट है।"[2]

उदारपंथी नेता एवं राजभक्ति

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि राजनीतिक और उपन्यासकार, दोनों की दृष्टि में राजभक्ति का स्वरूप एक समान राजभक्ति के इसी स्वरूप में चित्रित किये गये हैं। उदारवादी राजनीतिज्ञों की विचारधारा 'आदर्श हिन्दू' (भाग ३) के पात्र प० प्रियनाथ के द्वारा मुखरित हुई है

"जिन बातों को देने का सरकार ने वादा कर लिया है अथवा आप जिन पर अपना स्वत्व समझते हैं, उन्हें सरकार से माँगें। जब माता पिता भी बेटे बेटी को रोने से रोटी देते हैं तब राजा से माँगने में कोई बुराई नहीं है। तुम ज्यों-ज्यों माँगते जाते हो, त्यों-त्यों धीरे-धीरे वह देती भी जाती है। किन्तु काम वही करो, जिससे तुम्हारे 'नराणाम् च नराधिप'—इस भगवद्वाक्य में बट्टा न लगे। जब राजा ईश्वर का स्वरूप है, तब उसकी गवर्नमेन्ट शरीर न होने पर भी उसका शरीर है। इसलिए नियमबद्ध आन्दोलन करना आवश्यक व अच्छा है, किन्तु जो मुटमर्दी करने वाले हैं, जो उपद्रव करके डराने वाले हैं, अथवा जो अपने मिथ्या स्वार्थ के लिए औरों के प्राण लेने पर उतारू होते हैं, उनके बराबर दुनिया में कोई नीच नहीं। वे राजा के कट्टर दुश्मन हैं। सचमुच देशद्रोही हैं। वे स्वयं अपनी नाक कटाकर औरों का अपशकुन करते हैं। उनसे अवश्य घृणा करनी चाहिए।"[3]

---

१. डॉ० बी० पट्टाभि सीतारामय्या : संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ २५

२ लज्जाराम शर्मा मेहता - आदर्श हिन्दू, भाग १, भूमिका, पृष्ठ २

३. लज्जाराम शर्मा मेहता - आदर्श हिन्दू, भाग ३, पृष्ठ २४०

प्राचीन गौरव

इस युग के उपन्यासो मे राष्ट्रीयता का जो स्वरूप उभरा है, उसका प्रथम प्रेरणा स्रोत राष्ट्र का प्राचीन गौरव तथा संस्कृति है। प्राचीन गौरव को प्रतिष्ठित करने का श्रेय धार्मिक सामाजिक आंदोलनों को है। इस युग में अनेक मनीषियो ने अतीत की परम्परा पर जोर देकर उसके गौरव की ओर जनता का ध्यान आकर्षित कर सांस्कृतिक परिवर्तन की भूमिका तैयार की। यह परिवर्तन ही धार्मिक आन्दोलनो मे अभिव्यक्त हुआ। हिन्दी के प्रारम्भिक उपन्यासो मे यह स्वरूप विविधता के साथ चित्रित हुआ है। सच तो यह है कि यह प्रवृत्ति राष्ट्रीयता की अपेक्षा जातीयता के अधिक निकट है तथा आर्य समाज तथा धार्मिक संस्थाओ द्वारा उठाये गये आन्दोलनो की देन है।

आर्थिक पहलू

राष्ट्रीयता की भावना का एक दूसरा पहलू राष्ट्र की आर्थिक समृद्धि को लेकर चला है, किन्तु वह अत्यन्त क्षीण है। कहा गया है कि इस युग की राष्ट्रीयता की भावना का दूसरा पक्ष देश की आर्थिक समृद्धि से सम्बन्धित है, वहाँ इन उपन्यासकारो ने अपनी भाँति-भाँति की योजनाएं प्रस्तुत की है। एक स्वर से देशी उद्योग धन्धो के विकास पर बल देने, विदेशो मे देश का धन न जाने देने, अग्रेजी शिक्षा-व्यवस्था की अव्यावहारिकता एवं उसमे भारतीय परिस्थितियो के अनुरूप परिवर्तन करने तथा अन्य प्रकार की सुख समृद्धि के हेतु नये नये कदम उठाने का आग्रह किया है।''[1] कहना न होगा कि यह भावना कांग्रेस और उसके नेताओ के विचारो की प्रतिच्छाया ही है। सन् १९०६ में प० मदनमोहन मालवीय ने कलकत्ता अधिवेशन में कहा था कि हमारे देश का कच्चा माल देश से बाहर चला जाता है और विदेशो से तैयार होकर उसका माल हमारे पास आता है। अगर हम स्वतन्त्र होते तो ऐसा न होने देते। उस हालत मे हम भी उसी प्रकार अपने उद्योगो का सरक्षण करते, जिस प्रकार सब देश अपने उद्योगों की शैशवावस्था मे करते हैं। १८९८ मे प० मदनमोहन मालवीय ने प्रस्ताव रखा था कि सरकार को देशी उद्योग धन्धो एवं कला-कौशल की उन्नति करना चाहिए। सन् १८९९ मे लाला लाजपतराय की प्रेरणा पर कांग्रेस ने आधा दिन शिक्षा एवं उद्योग-धन्धो के विचार मे लगाया और इसके लिए एक उपसमिति स्थापित की।[2] उद्योग-धन्धों के विकास पर बल देने की इस राष्ट्रीय भावना का एक चित्र 'अरण्य बाला' मे देखिए.

"कल-कांटे का जहाँ-तहाँ कारखाना खोलो। तुम्हे कपड़ा, लोहा, चमड़ा आदि

---

१. डॉ० चण्डीप्रसाद जोशी : हिन्दी उपन्यास : समाजशास्त्रीय विवेचन, पृष्ठ ७७

२ डॉ० बी० पट्टाभि सीतारामय्या संक्षिप्त कांग्रेस का इतिहास, पृष्ठ ४७

सब पदार्थों का कारखाना खोलना होगा। ऐसा उपाय करना होगा कि अपने नित्य के व्यवहार के आवश्यक पदार्थों के लिए यहाँ के रहने वालों को दूसरों का मुँह न जोहना पड़े।"[1] तात्कालिक राजनीतिक परिस्थितियों से उद्भूत वातावरण का क्रियात्मक रूप 'हिन्दू गृहस्थ' में माचिस के कारखाने को सहकारी ढंग पर स्थापित करने के प्रयास के रूप में दिखाया है।

वस्तुतः यह युग कांग्रेस की उदारवादी नीति के चरम उत्कर्ष का था। प्रारम्भ में कांग्रेस का ध्येय ब्रिटिश साम्राज्यान्तर्गत रहकर औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्ति तक सीमित था। अधिकांश राजनीतिज्ञ ब्रिटिश न्याय पर पूर्ण आस्था रखते थे और वे ब्रिटिश शासन-व्यवस्था में परिवर्तन चाहते थे। गोखले जी ने मार्ले के सम्मुख साम्राज्यान्तर्गत औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग को युगानुरूप मानकर प्रस्तुत किया था।

उग्र राष्ट्रीयता

इसी युग में उग्र राष्ट्रीयता की प्रवृत्ति का विकास भी होता है। उग्र राष्ट्रीयता के जो दो स्वरूप दिखायी देते हैं, उन्हें हम कांग्रेस की उग्र राष्ट्रीयता तथा हिंसात्मक दलों की उग्र राष्ट्रीयता कह सकते हैं। कांग्रेस की उग्र राष्ट्रीयता उदारवादियों की असफलता का परिणाम थी, जब कि गुप्त हिंसात्मक दलों का प्रेरणा-स्रोत मैजिनी के नेतृत्व में इटली में चल रही हिंसात्मक गतिविधियाँ थी। कांग्रेस की उग्र राष्ट्रीयता ने आगे चलकर स्वतन्त्रता को अपना जन्मसिद्ध अधिकार घोषित कर असहयोग और संघर्ष का रास्ता अपनाया। इतना होने पर भी हिंसात्मक क्रान्ति उनका लक्ष्य न था। उग्र राष्ट्रीयता की भावना ने भारतीय राजनीति को नूतन मार्ग दिखाया, इसमें सन्देह नहीं, किन्तु अपनी इस प्रक्रिया में वह हिन्दुत्व तथा धार्मिक आध्यात्मिक आश्रय में पहुँच गयी। कहा जाता है कि उदारपंथी नेताओं की अस्थिर नीतियों का कारण पाश्चात्य शिक्षा तथा संस्कृति-अनुराग था और जिसकी प्रतिक्रिया के रूप में उग्र राष्ट्रवादियों ने हिन्दुत्व को संघर्ष की आधार-पीठिका बनाया। इस तरह कांग्रेस की राजनीतिक गतिविधियाँ प्राचीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक आन्दोलन की ही एक कड़ी बनकर रह गयीं। लोकमान्य तिलक, अरविन्द और कुछ अंशों तक लाला लाजपत राय की राजनीतिक गतिविधियों में हिन्दुत्व की प्राचीन भारतीय संस्कृति की गहरी छाप है। तिलक ने शिवाजी, गणेशोत्सव, गीता को राष्ट्रीय सेवा का आधार निरूपित किया। अरविन्द ने राष्ट्रीयता को आध्यात्मिक शक्ति के समकक्ष बनाया और उसे धार्मिक स्वरूप की मान्यता दी। सन् १९०६ में अरविन्द ने कहा था - "अन्य व्यक्ति स्वदेश को एक जड़

१ ब्रजनन्दन सहाय : अरण्य बाला, पृष्ठ ३२५

पदार्थ, युद्ध मैदान, खेत, वन, पर्वत, नदी भर जानता हूँ, मैं स्वदेश को माँ मानता हूँ, उसकी भक्ति करता हूँ, पूजा करता हूँ। माँ की छाती पर बैठकर यदि कोई राक्षस रक्तपात करने के लिए उद्यत हो, तो भला लड़का क्या करता है? निश्चिन्त होकर भोजन करने बैठता है स्त्री-पुत्र के साथ आमोद करने में लीन रहता है या माँ का त्राण करने के लिए दौड़ पड़ता है।' उग्र राष्ट्रीयता ने राजनीति को प्राणवान बनाया, किन्तु गाँधी-युग में गाँधी जी के नेतृत्व के कुछ वर्षों बाद ही वह अपनी तीव्रता को न बनाये रख सका। उग्र राष्ट्रीयता का एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि उसने राष्ट्रीय आन्दोलन को जनता तक पहुँचाया और कौंसिल के वाद विवाद की निस्सारता को व्यक्त किया। त्याग, सेवा और कर्म का मार्ग ही राष्ट्र सेवा का मार्ग बन गया।

प्रेमचन्द के 'सेवासदन' में डॉ० श्यामचरण उदारवादी नेता के प्रतिनिधि पात्र हैं। कौंसिल चुनाव जीतने तक ही उनकी राष्ट्र-सेवा सीमित है, जो निष्क्रियता में परिणत हो जाती है। फलतः वे सामाजिक सुधार की समस्याओं के समाधान के लिए कौंसिल की राय की अपेक्षा करते हैं। वे कहते हैं 'मैं उस विषय (वेश्या-समस्या) में कौंसिल में प्रश्न करने वाला हूँ, जब तक गवर्नमेन्ट उसका उत्तर न दे, मैं अपना कोई विचार नहीं कर सकता।'[1] शान्तिकुमार को भी सन्तोष है कि 'उत्तर मिले या न मिले, प्रश्न तो हो जायेंगे। इसके सिवा हम कर ही क्या सकते हैं।'[2] प्रेमचन्द के गाँधीयुगीन उपन्यासों में उदारपंथी राजनीति की असफलता के अनेक चित्र मिलते हैं, जिनका प्रथम आभास 'सेवासदन' में मिलता है। इन उपन्यासों में उग्र राष्ट्रीयता के विभिन्न स्वरूप भी उन्होंने तन्मयता के साथ अंकित किये हैं, जिनकी चर्चा आगे की जायगी।

गाँधीवाद

राष्ट्रीयता की भावना राजनीति का अंग है, स्वयं में कोई राजनीतिक विचार दर्शन नहीं। इस भावना के प्रस्फुटित होने पर भारतीय राजनीति में जिन दो प्रमुख राजनीतिज्ञों की विचारधारा का राजनीतिक रंगमंच में प्रवेश होता है वे हैं—गाँधीवाद और समाजवाद। गाँधीवाद का ही विकसित स्वरूप सर्वोदय है, जो आचार्य विनोबा भावे के दिशा निर्देशन में नयी दिशा का संकेत देता है।

गाँधीय सिद्धांत

भारतीय राजनीति में गाँधी-युग का प्रारम्भ सन् १९२० से माना जा सकता

१ प्रेमचन्द सेवासदन, पृष्ठ १७७

२ प्रेमचन्द सेवासदन, पृष्ठ १७८

है और स्वाधीनता पूर्व-युग के तीन दशक गाँधी जी के विचार-दर्शन से अत्यधिक प्रभावित रहे हैं। वर्तमान में भी गांधीवाद बहुत अंशों में सत्ताधारी दल की नीति को परिचालित कर रहा है। गाँधी-विचारधारा पाश्चात्य एवं भारतीय दर्शन का सम्मिश्रण है। एक ओर जहाँ उन पर टालस्टाय, इमर्सन, रस्किन, थोरो आदि पाश्चात्य विचारकों का प्रभाव था, वहीं वे दूसरी ओर भारतीय दर्शन विशेषत जैन दर्शन से प्रेरित थे। गांधी जी के राजनीतिक विचार अंग्रेज राजनीतिक ग्रीन से साम्य रखते हैं। अहिंसा गाँधी जी की (राजनीतिक मूल्यांकन की दृष्टि से) मौलिक देन है। यों यह भारतीय दर्शन का ही अंग है। सत्याग्रह की पद्धति भी नयी नहीं है और इसका उल्लेख १९ वीं शताब्दी के पाश्चात्य राजनीतिज्ञों के विचारों में देखा जा सकता है।

गाँधी-युग में जनतंत्र राजनीतिक व्यवस्था के आदर्श के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका था। जनतंत्र की स्थापना में जनता की भूमिका ही प्रमुख होती है। पराधीन भारत में इस राज्य-व्यवस्था के लाने के लिए तीन मार्ग थे —

१ वैधानिक संस्थाओं में जनता के प्रतिनिधियों के माध्यम से परिवर्तन का प्रयत्न,

२ जनता के बहुमत को सगठित कर राज्य व्यवस्था में असहयोग द्वारा परिवर्तन, और

३ जनता द्वारा हिंसक क्रांति की स्थिति उत्पन्न कर क्रांति द्वारा सत्ता पर अधिकार।

गाँधी जी ने उपर्युक्त तरीकों में से जनता के असहयोग द्वारा राज्य-व्यवस्था में परिवर्तन का मार्ग चुना। यही सत्याग्रह का मार्ग है, जो हिंसक क्रांति के सदृश विध्वंसात्मक न होकर सर्जनात्मक है। गाँधी जी अहिंसक प्रयत्नों को प्रमुखता देते थे। उनका तो मत था कि जब सरकार तथा शत्रु कठिनाई में हो, तो सत्याग्रही को उसकी कमजोरी का भी लाभ नहीं उठाना चाहिए। गाँधी जी अहिंसा को सत्याग्रह से अधिक महत्व देते थे। इसीलिए कहा जाता है कि नि शस्त्र क्रांति दर्शन का पूर्ण विकास बिना अहिंसा के असम्भव है और यही गाँधी जी की मौलिक देन है। गाँधी दर्शन में सत्याग्रह और अहिंसा एक दूसरे के पूरक हैं।

गाँधी जी के जीवन दर्शन को ही गाँधीवाद कहा जाता है और इस रूप में उसे एक निश्चित विचारधारा की मान्यता प्राप्त हो गयी है। गाँधी जी का जीवन-दर्शन भारतीय धरातल पर राजनीति को धर्म तथा नीति सर्वमान्य नियमों से सम्बद्ध करता है। गाँधी जी मानते थे कि विभिन्न धर्म एक ही सत्य की प्राप्ति के अलग-अलग मार्ग हैं और वे इस रूप में धर्म के कार्य को विनैयात्मक मानते थे। धर्म और नैतिक जीवनादर्शों के कारण गाँधीवाद मूलत. आध्यात्मिक दर्शन है। उनकी विचारधारा उपनिषदों

के सर्वात्मवाद से प्रभावित हैं, जिसके अनुसार जीव ईश्वर रूप और ईश्वर अंश तथा ईश्वर विश्व-रूप है। उनके अनुसार सेवा, प्रेम और त्याग का मार्ग ही धर्म का मार्ग है। इसीलिए कहा गया है 'धर्म और नैतिकता उनके विचारों और आचरण की आधारशिला, उनका जीवन प्राण है।'[1] किन्तु धार्मिकता के साथ वे यह भी मानते थे कि 'अपने देश और उसके द्वारा समग्र मानवता की निरन्तर सेवा ही मेरे लिए मोक्ष का मार्ग है। मैं प्रत्येक जीवित वस्तु के साथ अपने को एकाकार कर देना चाहता हूँ।' इस कथ्य से उनके ऊपर गीता के अनासक्ति-योग की प्रतीति होती है।

गांधीवाद का चिन्तन-पक्ष

गांधीवाद के चिन्तन पक्ष के अन्तर्गत सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह आदि सिद्धान्तों का समावेश किया जाता है। 'सत्य गांधी जी के जीवन और दर्शन का ध्रुवतारा है।'[2] उनके सत्य की परिभाषा इतनी विस्तृत है कि 'परमेश्वर सत्य' है, यह कहने की अपेक्षा 'सत्य' ही परमेश्वर है यह कहना अधिक योग्य है।'[3] उनके अनुसार 'सत्य' शब्द सत् से बना है। सत् का अर्थ है अस्ति-सत्य अर्थात् अस्तित्व। सत्य के बिना दूसरी किसी चीज की हस्ती ही नहीं है और अन्तिम विजय सत्य की ही होती है। उनके सत्य की प्रतीति का मार्ग कठिन है और उसकी प्राप्ति अहिंसा के मार्ग से हो सकती है।

अहिंसा की भूमिका

गांधी जी की अहिंसा एक भावात्मक प्रक्रिया और शक्ति है, जो प्राणिमात्र से प्रेम करने के लिए प्रेरित करती है। गांधी जी के शब्दों में 'अनेक धर्मों में जो 'ईश्वर प्रेमरूप है' यह कहा गया है, वह प्रेम और यह अहिंसा भिन्न नहीं है। प्रेम का शुद्ध व्यापक स्वरूप अहिंसा है। पर जिस प्रेम में राग या मोह की गन्ध आती हो, वह अहिंसा नहीं हो सकता।'[4] इस तरह गांधी जी की अहिंसा निवृत्तिमूलक या निषेधात्मक शक्ति नहीं है। अहिंसक का विरोध भी इस स्थिति में अन्यायी के प्रति प्रेम का ही परिचायक होता है, घृणा का नहीं। उनकी अहिंसा कायरता का पर्यायवाची नहीं। वे मानते थे कि अहिंसा वीरों का धर्म है, कायरों का नहीं। अहिंसा के बारे में उनका दावा था कि "अहिंसा सामाजिक चीज है। केवल व्यक्तिगत चीज नहीं है। जो धर्म व्यक्ति के साथ खतम हो जाता है, वह मेरे काम का

---

१ गोपीनाथ धावन : सर्वोदय तत्त्व-दर्शन, पृष्ठ २६
२ गोपीनाथ धावन : सर्वोदय तत्त्व-दर्शन, पृष्ठ २६
३ गांधी-साहित्य, भाग ५ : धर्मनीति, पृष्ठ ११८
४ गांधी विचार-दोहन, पृष्ठ १६

नहीं है। मेरा यह दावा है कि सारा समाज अहिंसा का आचरण कर सकता है और आज भी कर रहा है।" इसी को अधिक स्पष्ट करते हुए डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या ने लिखा है "जैसे हम पागलों और अपराधियों को पुनर्शिक्षित करते हैं, उसी प्रकार हमें युद्धाधिपतियों, लोलुप राजाओं, बदला लेने वाले शासकों, क्रुद्ध भाई, प्रतिशोध की भावना से भरे पति और हठी बालकों को पुनर्शिक्षित करना है। गांधी जी ने इन सबको एक पृथक श्रेणी में रखा है और इन पर एक नये विज्ञान का, एक नये नियम का जो कि प्रेम का नियम है, एक नये दर्शन का जो कि अहिंसा का दर्शन है, प्रयोग किया जाता है।"[1]

अहिंसा को एक विधेयात्मक शक्ति का रूप देकर गांधीवाद सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्रों में एक नये अध्याय को खोलती है।

सत्याग्रह

सत्याग्रह गांधीवाद का मर्मपक्ष है। सत्य पर आग्रहपूर्वक आचरण तथा अधर्म या असत्यादि साधनों द्वारा आग्रहपूर्वक विरोध का सत्याग्रह है। गांधी जी मानते थे कि अहिंसक साधनों द्वारा सत्य के लिए साधना ही सत्याग्रह है। सत्याग्रह एक ऐसी कार्य-प्रणाली है, जिसमें अधर्म पर धर्म से, हिंसा पर अहिंसा से, असत्य पर सत्य से, द्वेष पर प्रेम से तथा पशु बल पर आत्म-बल से विजय प्राप्त करने और विरोधी मानवता को जाग्रत करने का प्रयास किया जाता है। सत्याग्रही का यह दृढ़ विश्वास होता है कि 'किसी को दबा देने की अपेक्षा उसका मन-परिवर्तन कर देना ज्यादा अच्छा है। गांधी जी साध्य के साथ साधनों की नैतिकता को अत्यावश्यक मानते थे। वे हिंसात्मक साधनों को अपनाने के विरुद्ध थे। उन्होंने उपवास, असहयोग, अविनय-अवज्ञा, कर-बन्दी धरना आदि को सत्याग्रह के प्रकार बनाये।

हिन्दी उपन्यासों में गांधीवाद का सैद्धान्तिक पक्ष

गांधीवाद के उपर्युक्त सैद्धान्तिक पक्ष का चित्रण सियारामशरण गुप्त के उपन्यासों में मिलता है, यद्यपि हिन्दी में गांधीवाद का समावेश प्रेमचन्द के उपन्यासों से प्रारम्भ हो गया था। सियारामशरण गुप्त के 'गोद', 'अन्तिम आकांक्षा' और 'नारी' उपन्यासों में गांधी-दर्शन का सात्विक एवं व्यावहारिक पक्ष कलात्मक रूप से प्रस्फुटित हुए हैं। डॉ० देवराज का मत है कि 'सियारामशरण जी के कथा-साहित्य पर गांधीवाद के सत्य और अहिंसा का पूर्ण प्रभाव है और इस प्रभाव का दर्शन उनके आन्तरिक और बाह्य अर्थात् विषय निर्वाचन तथा उनके बाह्य कलेवर, दोनों में पाया जा सकता है।

१ पट्टाभि सीतारामय्या गांधी और गांधीवाद, भाग १, पृष्ठ ३६

प्रेमचन्द जी के उपन्यासों में भी सत्य और अहिंसा के प्रति इतनी गहरी आस्था नहीं दिखलायी पड़ती।"[1]

सियारामशरण गुप्त के उपन्यासों में गांधीवाद का रूप

'गोद' सियारामशरण गुप्त का प्रथम उपन्यास है, जो गांधीवाद के हृदय-परिवर्तन सिद्धान्त का दिग्दर्शन कराने वाला मीलचिन्ह है। मात्र सन्देह में भारतीय नारी-समाज में किस प्रकार लांछित हो उत्पीड़ित होती है, उपन्यास की किशोरी उसका एक दृष्टान्त है। प्रयाग सगम के मेले में परिवार से बिछुड़ी किशोरी दूसरे दिन घर पहुँचने पर भी समाज के सन्देह का शिकार बनती है, यद्यपि वह निर्दोष है। इसी घटना को लेकर शोभाराम के साथ निश्चित उसका विवाह-सम्बन्ध टूट जाता है और जिसका आघात न सह सकने के कारण किशोरी की माँ रोग-ग्रस्त हो जाती है। लोकापवाद की आड़ में बनीराम अपने भाई शोभाराम का विवाह एक सम्पन्न जमींदार की पुत्री के साथ निश्चित करता है। इधर किशोरी का विवाह भी ऐसी परिवर्तित परिस्थिति में कुरूप एवं प्रौढ़ वर के साथ तय होता है। शोभाराम परिस्थितियों से परिचित हो किशोरी को एकान्त में अपनाकर अपने आत्म-बल का परिचय देता है। वस्तुत इस कार्य में शोभाराम की भाभी पार्वती की भूमिका ही महत्वपूर्ण रहती है। नयी स्थितियों में किशोरी की पवित्रता सिद्ध होने पर दोनों का वैवाहिक सम्बन्ध सम्पन्न होता है।

इस कथानक को लेकर गांधीवाद के हृदय-परिवर्तन के माध्यम से लोकापवाद की सामाजिक समस्या का समाधान प्रस्तुत किया गया है। गांधी-दर्शन की एक विशिष्टता है कि वह पुरातन का विरोध नहीं करता। यही कारण है कि शोभाराम चाहकर भी किशोरी को एकान्त में ही ग्रहण करता है। उसमें आत्म बल की कमी नहीं, किन्तु इतना होने पर भी समाज के प्रति विद्रोह कर सामाजिक जीवन को अस्त-व्यस्त नहीं करना चाहता।

प्राचीन संस्कारों के प्रति मोहासक्ति या श्रद्धा की भावना उनके उपन्यास 'नारी' में भी ध्वनित है। 'नारी' त्याग, आत्म बलिदान, प्रेम जैसे मानवीय गुणों की सशक्त अभिव्यक्ति है, जो समग्रता में मानवतावाद का संदेश देती है। जमना उपन्यास की नायिका है, जिसके जीवन की समस्या का समाधान परम्परावादी गांधी-नीति से किया गया है। वह अपनी निजी आस्था का निर्वाह करते हुए सामाजिक दायित्व का पालन करने के पीछे नहीं है। सच तो यह है कि गुप्त जी के पात्र सामाजिक मर्यादाओं का पालन करने में ही अपने जीवन का उन्नयन मानते हैं। 'अंतिम आकांक्षा' में एक सत्य-

---

१ स० डॉ० नगेन्द्र : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १०६

निष्ठ सेवक की कहानी वर्णित है। सेवक का नाम है रामलाल, जिसे समाज ने एक डाकू की हत्या करने के कारण पापी समझ बहिष्कृत कर रखा है। स्वामी की पुत्री के विवाह के प्रसंग पर बरात 'हत्यारे' सेवक के हाथ का जल ग्रहण को तैयार नहीं होती। रामलाल इस द्विविधापूर्ण स्थिति मे स्वामी की प्रतिष्ठा के लिए घर छोड़कर जाने को उद्यत हो जाता है। स्वामी की पुत्री का विवाह अपनी आँखों से देखने की उसकी साध पूर्ण नहीं हो पाती। इसकी पूर्ति होती है, कन्या की विदाई के समय अर्जित पूँजी के दो रुपये भेंट कर।

गुप्त जी का गांधी दर्शन उनके प्रमुख पात्रो के चरित्र मे निहित है, जो मानवीय संवेदना के धनी हैं। भारतीय संस्कृति के उपासक के रूप में वे आस्थामय जीवन को अभिव्यक्ति देते हैं। समाज की असगतियो को परखते हुए भी वे विद्रोह के स्थान पर अपने मनोविकारो से जूझते हुए मानवता का मार्ग प्रशस्त करते हैं। जीवन की कलुषता के स्थान पर जीवन की उज्वलता के उल्लास को वे व्यक्त करते है। हृदय-परिवर्तन पर उनकी प्रगाढ़ आस्था है और सत्य तथा अहिंसा के मार्ग से वे अपने व्यक्तित्व का विकास कर सामाजिक कुरीतियो का परिहार चाहते हैं।

विष्णु प्रभाकर का यह कथन सत्य के अत्यधिक निकट है कि 'गुप्त जी की रचनाओं मे शिव अथवा नैतिकता का चित्रण है। उनका साध्य विशुद्ध नैतिकता है और यही उनकी मानवता का मूलाधार है। उनकी विचारधारा पर गांधीवाद का गहरा प्रभाव है। वह स्वीकार करते हैं कि मनुष्य मूल मे बुरा नहीं है, परिस्थिति उसे भला-बुरा बनाती है।'[1] सत्य और अहिंसा से परिचालित उनके पात्र गांधी-दर्शन की नैतिकता का उद्घोष करते है।

जैनेन्द्र के उपन्यासो मे गांधीय दर्शन

जैनेन्द्र के उपन्यासो मे भी गांधीवाद का गहरा संस्पर्श है, किन्तु इस तथ्य को विस्मृत नहीं किया जा सकता कि उन्होंने गांधीवाद को शुद्ध बौद्धिक माध्यम से ग्रहण किया है। उनमें सियारामशरण गुप्त जैसी तल्लीनता का अभाव है, अत वे गांधीवाद को समग्र दृष्टि से ग्रहण नहीं कर पाते। जैनेन्द्र स्वयं चिन्तक हैं और विभिन्न विचार-दर्शनो से प्रभावित हैं। उनका विचार-दर्शन गांधीवादी आत्म-पीडा, फ्रायड की काम पीडा और रहस्यवादी दृष्टिकोण से समन्वित है। फ्रायड के प्रभाव के कारण पात्रो की स्थिति मे चारित्रिक विकृति का उन्मेष दिखलायी पड़ता है, जो गांधीवादी नैतिकता के सर्वथा विपरीत कहा जा सकता है। डॉ० नगेन्द्र का मत है कि "हिन्दी मे मूलत दो लेखक

---

1. स० डॉ० नगेन्द्र : सियारामशरण गुप्त, पृष्ठ १२२

ऐसे हैं, जिन्होंने गांधी-दर्शन को गम्भीरतापूर्वक ग्रहण किया है', जैनेन्द्र और सियारामशरण। इनमें से जैनेन्द्र की स्वीकृति एकान्त बौद्धिक है, उनकी आत्मा गांधी-दर्शन के सात्विक प्रभाव को ग्रहण नहीं कर सकी है।" वस्तुत जैनेन्द्र व्यक्तिवादी और इस रूप में समाज और व्यक्ति, दोनों के महत्व को नगण्य मानकर चलते हैं। गांधी दर्शन का मूल ध्येय है जीव मात्र के साथ आध्यात्मिक एकता की एकसूत्रता, जो जैनेन्द्र के व्यक्तिवादी अह के कारण कुंठित हो जाती है।

जैनेन्द्र के उपन्यासों में से 'सुखदा' और 'विवर्त' में राजनीति के स्थूल पक्ष की ओर ध्यान देकर क्रांतिकारी पात्रों की उद्भावना कर कथानक में अहिंसा के प्रतिष्ठापन का प्रयास किया गया है। हिंसात्मक क्रांति में विश्वास रखने वाले हरीश, लाल, प्रभात आदि पात्रों तथा उनके विचारों का चित्रण सामयिक आतंकवादी दल से साम्य रखता है। सच तो यह है कि हिन्दी उपन्यासों में क्रान्तिकारी पात्रों और उनकी विचारधारा के प्रति समुचित न्याय स्वयं क्रान्तिकारी उपन्यासकार भी नहीं कर सके हैं। वस्तुतः क्रान्तिकारियों की आराध्य उनकी मातृभूमि थी और उसके प्रति उनकी दृष्टि श्रद्धा और पूजा-भाव की थी। इसे क्रान्तिकारी भावुकता भी कहा जा सकता है। ब्रिटिश सत्ता का विरोध वे हिंसात्मक तरीके से करना चाहते थे, किन्तु सुनियोजित सामूहिक कार्यक्रम के अभाव में ये व्यक्तिगत वीरता को ही अपना लक्ष्य मानते थे। किन्तु मन्मथनाथ गुप्त, अज्ञेय, यशपाल आदि क्रान्तिकारी लेखकों ने क्रान्तिकारियों की यौन लिप्सा को ही क्यों प्रमुखता दी है, यह वही बता सकते हैं। किन्तु लेखक ने हिंसा के सूक्ष्म रूप अहम्मन्यता का सुखदा के व्याज से विवेचन करते हुए अहिंसा के स्थापनार्थ अह को गांधीवादी आत्म पीड़ा में विगलित होते दिखलाया है। 'विवर्त' में भी हिंसावृत्ति का खण्डन करते हुए नायक जितेन के अपराधी व्यक्तित्व का, ग्रन्थि से उद्भूत उसके विभाव का परिष्कार अहिंसात्मक रीति से किया गया है।[1] जितेन का पुलिस को आत्म समर्पण करना गांधीवादी हृदय-परिवर्तन का ही उदाहरण है, जो आकस्मिक ढंग से होता है। वस्तुतः भुवनमोहिनी के प्रति अगाढ प्रेम की यह सारी लीला है। पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी के कथनानुसार 'विवर्त' में "प्रेम के इस मान और प्रेम के इसी अभिमान की कथा है। उसमें प्रेम की हिंसा है और प्रेम की ही प्रतिहिंसा है। जितेन ने आजादी के लिए विद्रोह का झंडा नहीं उठाया, अन्त में उसने फाँसी के दण्ड को स्वीकार कर कहा—"सब लोग तो यही जानते थे कि वह आजादी का, क्रांति का, विश्व की शान्ति का काम कर रहा है। मैंने उन्हें यह बताया था, लेकिन भीतर मैं यही खुद नहीं जानता था। इसी से शायद मैं नेता था। अब जेल के भीतर आया हूँ, तब हल पा गया हूँ। प्यार और कुछ

१. रघुनाथ सरन झालानी : जैनेन्द्र और उनके उपन्यास, पृष्ठ ६२

नहीं होता, घृणा और कुछ नहीं होती, सत्य ही एक चीज होती है।" जैनेन्द्र के उपन्यास 'कल्याणी' में भी गाँधीवादी दर्शन को जो मान्यता दी गयी है, वह भी विकृति-पूर्ण है। कल्याणी सत्याग्रह, उपवास तथा आत्म पीड़ा का मार्ग ग्रहण कर अपने क्रूर पति के हृदय परिवर्तन का प्रयास करती है, किन्तु असफल रहती है। वस्तुतः यह गाँधीवाद का एकांगी स्वरूप है, जो जैनेन्द्र की बौद्धिकता के कारण समग्रता में प्रस्तुत नहीं होता। कल्याणी का कथन है "भीतर का दर्द मेरा इष्ट हो। धन मैल है, मन का दर्द पीयूष है। सत्य का निवास और कहीं नहीं है। उस दर्द की साभार स्वीकृति में से ज्ञान की और सत्य की ज्योति प्रकट होगी। अन्यथा सब ज्ञान ढकोसला है और सब सत्य की पुकार अहङ्कार।" भगवतीप्रसाद वाजपेयी के उपन्यासों में भी सत्य और अहिंसा का विशेष आग्रह है। 'पतवार' की भूमिका में उन्होंने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि 'एक स्थायी विश्व-शान्ति और मनुष्य मात्र का कल्याण सत्य और अहिंसा द्वारा ही सभव है।' 'पतवार' का नायक दिलीप गाँधीवाद के कर्मयोग में आस्था रखता है और जनसेवा के उच्च नैतिक आदर्शों से अनुप्राणित पात्र है। वाजपेयीजी के 'गुप्तधन', 'चलते-चलते', 'मनुष्य और देवता' तथा 'भूदान' में गाँधीय सिद्धान्तों का स्पष्ट संकेत मिलता है। किन्तु अधिकांशतः यह तात्विक अभिव्यक्ति शिथिल तथा आडम्बर के रूप में ही है।

गाँधीवाद और प्रेमचन्द

प्रेमचन्द के उपन्यासों में गाँधीवाद का प्रभाव और गाँधी-युग की झलक का समन्वय है। अतः गाँधीवाद के सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य में उन्हें केवल गाँधीवादी कहना उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। यह सच है कि अपने युग के अन्य साहित्यकारों के समान प्रेमचन्द भी गाँधी जी के व्यक्तित्व से प्रभूत मात्रा में प्रभावित हुए थे। किन्तु इतना होने पर भी वे गाँधी-दर्शन के अन्धानुगामी नहीं थे। यही कारण है कि वे गाँधीवादी जीवन दर्शन की अपेक्षा गाँधीवाद के प्रगतिशील विचारों और कार्यक्रम से अधिक प्रभावित थे। फलतः उनके उपन्यासों, विशेषतः 'प्रेमाश्रम,' 'रंगभूमि' और 'कर्मभूमि' में गाँधीवाद की जिन अनेक मान्यताओं को स्थान मिला है, वे सामयिक सामाजिक जीवन की पृष्ठभूमि में सजीव हो उठी हैं। उनके उपन्यासों में गाँधीय सिद्धांतों का चित्रण व्यापक धरातल पर हुआ है। संक्षेप में उन्होंने गाँधी-दर्शन के आधार पर पात्रों की उद्भावना कर नवीन नैतिक तथा आदर्श मूल्यों की स्थापना की है। 'रंगभूमि' का सूरदास, 'कायाकल्प' का चक्रधर तथा 'कर्मभूमि' का अमरकांत गाँधीवादी पात्रों के रूप में गाँधी जी की राजनीतिक मान्यताओं को प्रस्थापित करते हैं। इन पात्रों के उज्ज्वल चरित्र को दिखाने की दृष्टि से अराजकतावादी प्रवृत्ति के चरित्र भी अवतरित होते हैं।

गाँधीवादी पात्र इन पात्रो से सघर्षरत रहते हुए आदर्शों एव नैतिक मूल्यो की स्थापना करने मे सफल होते हैं।

उपन्यास की समग्रता मे गांधीवाद को तात्विक रूप से ग्रहण न करने के कारण प्रेमचन्द के उपन्यासो म विभिन्नता के दर्शन होते हैं। प्रेमचन्द-युग मे राष्ट्रीय कार्यक्रम गाँधी जी के नेतृत्व म ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध सघर्षरत थे। स्वतन्त्रता-प्राप्ति ही उनका प्रथम और अन्तिम लक्ष्य था। लेकिन इस युग के उपन्यासकार और स्वय प्रेमचन्द किसानो की कठिनाइयों, शोषण और सामाजिक कुरीतियो का चित्रण करते हैं। इन राजनीतिक उपन्यासो मे किसान और किसान-मजदूर अपने कष्टपूर्ण जीवन से मुक्ति पाने के लिए सरकार से सघर्ष करते है। यह कहा जा सकता है कि अधिकतर नामक आर्थिक मांगों को लेकर अहिंसक आन्दोलन का प्रारम्भ करते है, जो अतिम स्थिति म जाकर ब्रिटिश शासन के साथ टक्कर मे परिवर्तित हो जाता है। अधिकाशत उपन्यासो मे आर्थिक कारणों से निर्मित किसानो की दयनीय स्थिति का चित्रण मिलता है, जब कि सच तो यह है कि गाँधी जी ने राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से आर्थिक प्रश्नो को उतना महत्व नहीं दिया था। इस तरह विचार-दर्शनो मे साम्य होते हुए भी राजनीतिक उपन्यासो मे उपन्यास-लेखको की चिन्तन प्रक्रिया में किंचित अन्तर देखा जा सकता है।

सच तो यह है कि हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासो मे तात्विक रूप से गांधी-दर्शन की स्पष्ट एव प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति अत्यन्त विरल है। अधिकाश उपन्यासो मे गांधी युग का प्रभाव मिलता है, जिसे गाँधीवाद का प्रभाव मानना युक्तिसगत न होगा। यह बात अलग है कि दोनो एक दूसरे के पूरक होकर अपने मिश्रित रूप मे राजनीतिक उपन्यास का रूप धारण कर लेते हैं।

गाँधीवाद का कर्मपक्ष

हिन्दी उपन्यासो मे गाँधीवाद के चिन्तन पक्ष का प्रभाव देखने के उपरान्त उसके कर्म या व्यवहार पक्ष पर विचार करना उपयुक्त होगा। गाँधीवाद का यह पक्ष अपनी विभिन्नता के साथ राजनीतिक उपन्यासो मे आग्रहपूर्वक अंकित किया गया है। गाँधीवाद के इस व्यावहारिक पक्ष के अन्तर्गत सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि सभी मान्यताएँ स्वदेशी के सिद्धात से अनुप्राणित है। समाज-व्यवस्था मे आवश्यक परिवर्तन लाने के ध्येय से गाँधी जी ने एक अट्ठारह-सूत्री रचनात्मक कार्यक्रम निर्धारित किया था। उनका रचनात्मक कार्यक्रम मूल रूप मे इस प्रकार है साम्प्रदायिक एकता, अस्पृश्यता निवारण, मद्यपान निषेध, खादी, ग्रामोद्योग, ग्राम स्वच्छता, बुनियादी तालीम, प्रौढ शिक्षा, स्त्रियो की उन्नति, स्वास्थ्य एव सफाई की

शिक्षा, मातृभाषा प्रेम, राष्ट्रभाषा प्रेम, आर्थिक समानता, किसान-संगठन, छात्र-संगठन, आदिवासियों की सेवा, कोढ़ियों की सेवा।

आर्थिक विचार-धारा

गाँधी जी के आर्थिक विचार सत्य तथा अहिंसा पर आधारित है। वे सदैव नैतिक और मानवीय मूल्यों पर जोर देते थे और भौतिक कल्याण मात्र से सन्तुष्ट नहीं थे। वे भौतिक पूँजी की तुलना में मनुष्यरूपी पूँजी को अधिक महत्व देते थे। गाँधी जी न केवल रहन-सहन के स्तर को ही ऊँचा करना चाहते थे, बल्कि जीवन के स्तर को भी सोद्देश्य, सुन्दर, सार्थक तथा सारगर्भित बनाना चाहते थे।

संक्षिप्त रूप से गाँधीवादी अर्थ-व्यवस्था के निम्न अभिन्न अंग है - कल्याणकारी अर्थ व्यवस्था, सर्वोदय, विकेन्द्रीकरण, न्यासधारिता, आर्थिक स्वावलम्बन, उद्योगों का प्रादेशिक प्रसार, ग्रामों का पुनरुत्थान, अवसर की समानता तथा धन व आय का न्यायोचित वितरण। राजनीतिक क्षेत्र की तरह आर्थिक क्षेत्र में भी वे विकेन्द्रीकरण के पक्ष में थे। उनका यह विश्वास था कि यन्त्र-चालित अर्थ-व्यवस्था अन्ततोगत्वा हिंसा तथा पाशविक शक्ति पर आधारित होती है और केन्द्रीकृत अथवा सकेन्द्रित अर्थ-व्यवस्था में मनुष्य पूर्ण तथा सुखी जीवन व्यतीत करने की कल्पना नहीं कर सकता। वे चाहते थे कि उत्पादन विभिन्न स्थानों में गृहोद्योग के रूप में हो। उनके मत में ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था को पुनर्जीवित करने का एकमात्र साधन चरखा है। वे भारी मशीनों के इस्तेमाल के हक में थे, बशर्ते कि समुदाय की ओर से राज्य इनका मालिक हो।

गाँधी जी वर्ग-भेद, वर्ग-संघर्ष, मानुषी शोषण तथा हिंसामयी स्वार्थ-सिद्धि को समाप्त करना चाहते थे। किन्तु इसके लिए वे साम्यवादियों द्वारा शक्ति-बल का उपयोग करने के पक्ष में नहीं थे। अतः पूँजीवाद, उद्योगवाद तथा साम्यवाद की आर्थिक बुराइयों का उन्मूलन करने के लिए उन्होंने न्यासधारिता का सिद्धांत प्रतिपादित किया। वे मानते थे कि समस्त राष्ट्रीय सम्पत्ति, प्राकृतिक साधन तथा उत्पादन न्यास के रूप में रखा जाना चाहिए, जो सर्वाधिक सामाजिक कल्याण के लिए प्रयुक्त हो। इस दृष्टि से उत्पादन के सामाजिक सम्बन्धों को स्वस्थ, उदार, कल्याणकारी तथा मैत्रीपूर्ण बनाने के लिए न्यासधारिता का सिद्धांत एक सर्वोत्तम विचार है।

सर्वोदयी भावना

गाँधी जी किसी वर्ग विशेष तथा अधिक लोगों की अधिक भौतिक भलाई ही नहीं, अपितु सभी लोगों की सर्वाधिक नैतिक, मानसिक तथा भौतिक भलाई चाहते थे और उनका ध्येय सर्वोदय था। उनके विचारानुसार सर्वोदय एक प्रजातन्त्र है, जिसमें

तन, मन और वाणी की शुद्धता होगी, जीवन का निर्धारक तत्व स्वदेशी होगा तथा सभी क्रियाकलापों के निर्देशक तत्व सत्य तथा अहिंसा होंगे। जीवन की पवित्रता के लिए नशीले पेय तथा भौतिक विकास का निषेध अपरिहार्य है। वे चाहते थे कि गाँव आत्मभरित तथा स्वावलम्बी एकक होना चाहिए। सर्वोदय राज्य एक धर्मनिरपेक्ष राज्य होगा।

हिन्दी उपन्यासों में गाँधीवाद का व्यावहारिक पक्ष

गाँधीयुग की यह विशिष्टता है कि स्वातन्त्र्य-संघर्ष-काल में सामाजिक समस्याओं तथा राजनीतिक प्रश्नों को एक समन्वित रूप मिला। अहिंसा तथा सत्याग्रह सिद्धान्त को राजनीतिक स्वरूप मिलने से आत्म-बल की प्रतिष्ठा हुई और शक्ति का मानदण्ड आध्यात्मिक बन गया। 'रंगभूमि' के सूरदास, 'ज्वालामुखी' के अभय और 'दुखमोचन' के दुखमोचन अपनी चारित्रिक विशिष्टताओं से युक्त गाँधीवादी पात्र हैं जो सत्य और अहिंसा से परिचालित हैं। सूरदास तो जैसे गाँधी जी की ही प्रतिमूर्ति है, जो आदर्श सत्याग्रही के रूप में न्याय, सत्य और धर्म के लिए प्राणोत्सर्ग कर देता है। सत्य की साधना सूरदास का सम्बल है, जो आत्म-बल की प्रतिष्ठा करता है। सच्चे सत्याग्रही के समान ईश्वर पर उसकी आस्था है, क्योंकि ईश्वर ही सत्य है। आदर्श सत्याग्रही के रूप में सूरदास, अभय और दुखमोचन, सभी शत्रुओं के प्रति किसी प्रकार की दुर्भावना नहीं रखते। वे अहिंसा के अनन्य उपासक हैं। गाँधीवाद किसी भी व्यक्ति से घृणा करने की अनुमति नहीं देता। 'प्रेमाश्रम' का प्रेमशंकर मानव प्रेम का प्रतीक है। वह घायल होकर भी डॉ॰ प्राणनाथ की रक्षा करता है। प्रेमचन्द गाँधीयुगीन वर्ग संघर्ष के प्रति अभिरुचि रखते हुए भी उसका समाधान संघर्ष में नहीं, प्रत्युत समझौते में देखते हैं, जो गाँधी-दर्शन के अनुकूल है। 'प्रेमाश्रम' और 'कायाकल्प' में किसान सबल जनता के संघर्ष को वाणी अवश्य देते हैं, किन्तु वे संघर्ष को अन्तिम लक्ष्य नहीं मानते। 'प्रेमाश्रम' में समाज व्यवस्था से शोषण का अन्त हृदय-परिवर्तन के सुधारात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया। गाँधीवादी शब्दावली में इसे अहिंसात्मक क्रांति कहा जा सकता है। 'कायाकल्प' में मजदूरों, चमारों, किसानों का संयुक्त मोर्चा सामन्तवादी तथा साम्राज्यवादी ताकतों से सशक्त मुकाबले को तैयार होता है, पर गाँधीवादी चक्रधर उसे मनोनुकूल मोड़ दे देता है। 'कर्मभूमि' का लगानबन्दी आन्दोलन भी हिंसात्मक स्वरूप ग्रहण करने के पूर्व गाँधीवादी 'कमेटीवाद' के भँवर में फँस जाता है। प्रेमचन्द के अन्तिम पूर्ण उपन्यास 'गोदान' को जनवादी प्रवृत्ति का वाहक कहा जाता है। किन्तु इसमें भी शक्कर मिल की हड़ताल गाँधीवाद के प्रभाव में यथार्थ के धरातल पर चित्रित नहीं हो सकी है। यहाँ भी प्रेमचन्द ने मजदूर-आन्दोलन का नेतृत्व अवसरवादी नेताओं के हाथ में सौंपकर वर्ग संघर्ष को ओट देने का चतुरतापूर्ण कदम उठाया है।

प्रेमचन्द ने अपने युग की समाजवादी चेतना को उपन्यासों में अंकुरित अवश्य किया है, पर गाँधीवाद का पाला उसे पुष्पित होने के पूर्व ही नष्ट कर देता है। इस रूप में समाजवादी चेतना गूँज की प्रतिध्वनि बनकर रह जाती है। 'गोदान' शोषण पर आधारित वर्तमान वर्ग विभाजित समाज-व्यवस्था का मार्मिक चित्र होने पर भी वर्ग-संघर्ष नहीं, अपितु समझौतावादी विवशता का प्रतीक बनकर रह गया। वर्ग-संघर्ष पर विश्वास न रखते हुए भी अनेक लेखकों ने सत्याग्रह को समस्या का समाधान नहीं माना है। जैनेन्द्र के 'कल्याणी' का उल्लेख पहले किया जा चुका है। वृन्दावनलाल वर्मा के प्रथम राजनीतिक उपन्यास 'अचल मेरा कोई' में भी सुधाकर के सत्याग्रह की असफलता इसी कोटि की है। सुधाकर ने अपनी पत्नी कुन्ती को अपने मनोनुकूल मार्ग पर लाने हेतु सत्याग्रह का अवलम्बन लिया है, किन्तु कुन्ती का हृदय-परिवर्तन होना तो दूर रहा, प्रत्युत वह आत्महत्या कर लेती है। गाँधी जी का विश्वास था कि सत्याग्रह और अहिंसा वैयक्तिक एवं पारिवारिक धरातल पर अत्यधिक सफल सिद्ध हो सकते हैं। किन्तु वर्मा जी ने कुन्ती की आत्महत्या तथा जैनेन्द्र ने 'कल्याणी' की मृत्यु द्वारा उक्त विश्वास को धराशायी कर दिया।

हृदय-परिवर्तन

गाँधीवादी उपन्यासों में हिमालय संघर्ष की निर्णायक स्थिति आने के पूर्व ही हृदय परिवर्तन का प्रसंग आ जाता है, जो क्रांति का मार्ग अस्वाभाविक रूप से अवरुद्ध कर देता है। प्रेमचन्द, जैनेन्द्र, अनन्त गोपाल शेवड़े आदि के उपन्यासों में हृदय-परिवर्तन के पचीसों उदाहरण ढूँढे जा सकते हैं। 'प्रेमाश्रम' में प्रेमशंकर और मायाशंकर का, 'विवर्त' में जितेन का, 'गबन' में जौहरा का, 'गोदान' में मातादीन का हृदय-परिवर्तन गाँधीवाद की स्वीकृति ही है। गाँधीवाद का यही एक ऐसा सिद्धान्त है, जिसे प्रेमचन्द ने पूर्ण निष्ठा के साथ आत्मसात् किया है, जिसका कहीं कोई विरोध नहीं है। स्वयं प्रेमचन्द का कथन है "मैं महात्मा जी के चेंज ऑफ हार्ट के सिद्धान्त में विश्वास रखता हूँ। इसलिए जमींदारी मिटेगी, यह मानता हूँ। जमीन किसानों की होगी। मैं गाँधीवादी नहीं हूँ, केवल गाँधी जी के चेंज ऑफ हार्ट में विश्वास करता हूँ।"[1] हृदय-परिवर्तन के द्वारा ही आर्थिक समानता की स्थिति लाने की कल्पना कर अहिंसक क्रांति का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। 'प्रेमाश्रम' में प्रेमचन्द क्रांतिकारी वीरपाल के अराजकतावादी कृत्यों का समर्थन न कर विनय को अपनी सहानुभूति देते हैं, जो अहिंसक क्रांति पर आस्थावान है। गाँधीवाद भी मानता है कि असमान धन-वितरण

---

१ राजेश्वर गुरु : प्रेमचन्द : एक अध्ययन, पृष्ठ १०१

का प्रश्न हिंसक साधनों से हल नहीं हो सकता। यह हृदय परिवर्तन के आध्यात्मिक साधन से सहज सभव है।

इसके लिए गाँधी-दर्शन में ट्रस्टीशिप की व्यवस्था है। गाँधी जी मानते थे "जब तक मनुष्य अपनी तात्कालिक आवश्यकताओं के अतिरिक्त अन्य सम्पत्ति के लिए तैयार नहीं है, उन्हें सम्पत्ति की ओर अपना रुख बदल देना चाहिए और सम्पत्ति के स्वामी की तरह नहीं, उसके सरक्षक (ट्रस्टी) की तरह आचरण करना चाहिए और सम्पत्ति का उपयोग समाज के हित के लिए करना चाहिए।"[1] आवश्यकता का त्याग ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त को पुष्ट करता है।

औद्योगिक सभ्यता का विरोध

हिन्दी के गाँधीवादी राजनीतिक उपन्यासों में औद्योगिक सभ्यता का समर्थन नहीं किया गया। गाँधीवाद अर्थशास्त्र के भौतिक विकास को आत्म शक्ति का विरोधी तत्व मानता है। उसका विचार है कि भौतिक उन्नति में केन्द्रीकृत उत्पादन होने से कृत्रिमता और अनैतिकता का विस्तार होता है जो जीवन की शुचिता को विषाक्त बना देता है। गाँधी जी इसीलिए गाँवों को औद्योगिक सभ्यता से परे रखना चाहते थे। 'रंगभूमि' में पाण्डेपुर में सिगरेट कारखाने की स्थापना का प्रतिकार उपर्युक्त कारण से ही प्रस्तुत किया गया है। 'गोदान' में भी शक्कर मिल के माध्यम से औद्योगिक समस्या पर विचार किया गया है। औद्योगीकरण के पीछे मुनाफाखोरी की जो भावना होती है, उसे प्रेमचन्द ने गाँधी जी के सदृश ही शोषण का सुनियोजित ढंग बताया है। यही कारण है कि उन्होंने पूँजीवादी वर्ग की शोषण-वृत्ति की कटुतम आलोचना की है। प्रभुसेवक के इस कथन में व्यवसायियों का वीभत्स रूप प्रस्तुत किया गया है 'व्यवसाय कुछ नहीं है, अगर नर-हत्या नहीं है। आदि से अन्त तक मनुष्यों को पशु समझना और उनसे पशुवत् व्यवहार करना इसका मूल सिद्धान्त है। जो यह नहीं कर सकता, वह सफल व्यवसायी नहीं हो सकता।'[2] प्रेमचन्द ने 'रंगभूमि' और 'गोदान,' दोनों उपन्यासों में औद्योगिक समस्या का जो स्वरूप प्रस्तुत किया है, वह औद्योगिक अनैतिकता है, जिसका गाँधी जी ने सदैव विरोध किया। प्रेमचन्द के औद्योगीकरण के विरोध के पीछे उनकी चारित्रिक आदर्श की आस्था का भी भय है, जो गाँधीवादी सिद्धांत से साम्य रखती है। गाँधी जी मानते थे कि औद्योगीकरण असामाजिक तत्वों को प्रोत्साहित करते हैं। प्रेमचन्द का सूरदास उन्हीं तथ्यों का प्रत्यक्षीकरण करता है 'साहब, आप पुतलीघर के मजूरों के लिए घर क्यों नहीं बनवा देते? वे सारी बस्ती में फैले हुए

१ गोपीनाथ धावन : सर्वोदय तत्व दर्शन, पृष्ठ ८५
२ प्रेमचन्द : रंगभूमि, भाग २, पृष्ठ १८०

है, और रोज ऊधम मचाते है । हमारे मुहल्ले मे किसी ने औरतो को नही छेडा था, न कभी इतनी चोरियाँ हुई थी, न कभी इतने धडल्ले से जुआ हुआ, न शराबियो का ऐसा हुल्लड़ रहा । जब तक मजूर लोग यहाँ काम पर नहीं आते, औरतें घरो से पानी भरने नही निकलती । रात को इतना हुल्लड होता है कि नींद नहीं आती । किसी को समझाओ, तो लड़ने पर उतारू हो जाता है ।'[1]

औद्योगिक सभ्यता की असंगतियो को देखकर ही गाँधी जी ग्रामोद्योग को अधिक प्रमुखता देते थे । प्रेमचन्द भी जैसे उनका अनुमोदन करते हुए कहते हैं :

'उन्हें घर से निर्वासित करके दुर्व्यसन के जाल मे न फँसायें, उनके आत्माभिमान का सर्वनाश न करें और यह उसी दशा मे हो सकता है, जब घरेलू शिल्प का प्रचार किया जाय और वह अपने गाँव मे कुल और बिरादरी की तीव्र दृष्टि के सम्मुख अपना अपना काम करते रहें । (कुटीरोद्योग को प्रोत्साहित करने के लिए प्रेमचन्द सुझाव देते हैं) इसके लिए हमे विदेशी वस्तुओ पर कर लगाना पडेगा । यूरोप वाले दूसरे देशो से कच्चा माल ले जाते हैं, जहाज किराया देते हैं, उन्हें मजूरो को कडी मजूरी देनी पडती है, उस पर हिस्सेदारो को नफा भी खूब चाहिए । हमारा घरेलू शिल्प इन समस्त बाधाओ से मुक्त रहेगा ।'[2]

हिन्दू-मुस्लिम एकता

भारतीय राजनीति को साम्प्रदायिक राजनीतिक दृष्टिकोण प्रारम्भ से ही प्रभावित करता रहा है । अग्रेजो ने कूटनीति का आश्रय ले साम्प्रदायिक भावना का विस्तार किया । ब्रिटिश सरकार ने राष्ट्रीय काग्रेस को जन-जीवन को प्रभावित करने वाली राजनीतिक सस्था के रूप मे विकासोन्मुख देखकर उसे हिन्दुओ की सस्था के रूप मे प्रचारित किया । फलत मुस्लिम लीग की स्थापना हुई और उसको प्रोत्साहित करने की दृष्टि से मार्ले मिन्टो रिफार्म बिल मे साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व को मान्यता दी गयी । इससे साम्प्रदायिक कटुता में वृद्धि होने से राष्ट्रीय एकता मे बाधाएँ उत्पन्न हुई ।

गाँधी जी ने इस समस्या का समाधान सामाजिक क्षेत्र मे निकालने का प्रयास किया । गाँधी-युग मे सामाजिक समस्याएँ भी राजनीतिक प्रश्नो के साथ समन्वित होती हैं । यही कारण है कि हिन्दू-मुस्लिम एकता, अछूतोद्धार एव खादी गाँधी जी के स्वराज्य के मुख्य अग बन गये थे ।

हिन्दू-मुस्लिम एकता की समस्या हिन्दी के अनेक राजनीतिक उपन्यासो मे चित्रित

---

१ प्रेमचन्द : रंगभूमि, (भाग १), पृष्ठ १६७-६८
२ प्रेमचन्द : प्रेमाश्रम, पृष्ठ १२७-२८

हुई है। 'कायाकल्प' में इस समस्या को महत्वपूर्ण स्थान मिला है। गो वध के प्रश्न को लेकर जिस साम्प्रदायिक दंगे की स्थिति का निर्माण होता है, वह गाँधीवादी ढग से निपटाया जाता है। चक्रधर की नैतिक एवं अहिंसक वीरता से हृदय-परिवर्तन द्वारा इस समस्या का समाधान किया गया है। यह बतलाने की चेष्टा की गयी है कि यदि दोनों सम्प्रदाय एक दूसरे की भावनाओं का सम्यक् सम्मान करें तो साम्प्रदायिकता के विषदन्त तोड़े जा सकते हैं। 'प्रेमाश्रम' का कादिर हिन्दू मुस्लिम एकता का प्रतिनिधिक पात्र है, जो मुस्लिम होने पर बहुसंख्यक हिन्दू किसानों के आन्दोलन का नेतृत्व करता है। यद्यपि कादिर गाँधीवादी पात्र है, फिर भी उसमें हिंसक भावना का सर्वथा लोप नहीं है। वह कहता है 'धरती के लिए छत्रधारियों के सिर गिर जाते हैं, हम भी अपना सिर गिरा देंगे।'[१]

गाँधी जी हिन्दू मुस्लिम एकता के लिए जीवनपर्यन्त प्रयत्नशील रहे और उनके प्रयत्नों का रचनात्मक साहित्यिक रूप हिन्दी ही नहीं, अपितु भारतीय उपन्यास-साहित्य में सजीवता के साथ अंकित हुआ है। हम तो यहाँ तक कह सकते हैं कि हिन्दू मुस्लिम एकता के सम्बन्ध में हिन्दी के उपन्यासकार गाँधी जी के विचारों से भी आगे प्रतीत होते हैं। गाँधी जी परम्परागत मान्यताओं पर आस्था रखने के कारण हिन्दू मुस्लिम एकता के लिए वैवाहिक तथा खान-पान का सम्बन्ध स्थापित करना आवश्यक नहीं मानते थे। उनका मत था कि इस रीति का अनुकरण करने से दोनों धर्म तथा जातीय विशेषता की रक्षा न कर सकेंगे। वे इस विचार को मानते थे कि दोनों अपने धर्म की मर्यादा को सुरक्षित रखते हुए पारस्परिक एकता को दृढ़ बनायें। किन्तु प्रेमचन्द ने 'कर्मभूमि' में लाला समरकान्त और सलीम के भोजन का दृश्य प्रस्तुत कर आपसी खान-पान की ओर संकेत किया है।[२] समाजवादी विचारों से अनुप्राणित किन्तु गाँधीयुगीन कृति 'नयी इमारत' में प्रबल जी ने महमूद और धारती के प्रेम के माध्यम से इस समस्या का हल प्रस्तुत किया है।

हिन्दू मुस्लिम-साम्प्रदायिकता स्वाधीनता-आन्दोलन में किस तरह बाधक थी, इसका दिग्दर्शन रघुवीरशरण मित्र ने 'बलिदान' में किया है। हिन्दू-मुस्लिम-साम्प्रदायिकता अंग्रेजों की कूटनीतिक चाल के कारण राजनीतिक बन गयी थी और इस रूप में उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम के प्रश्न से स्वाधीनता को पीछे ढकेलना चाहा था। 'बलिदान' रहमान, यूसुफ और सत्येन्द्र के जननी-जन्मभूमि पर किये गये बलिदान की गाथा है। इसमें गाँधीवाद के मानवीय गुणों का प्रस्फुटन हुआ है।

---

१ प्रेमचन्द - प्रेमाश्रम, पृष्ठ १३४

२ प्रेमचन्द - कर्मभूमि, पृष्ठ ३५४-५५

इस तरह इन उपन्यासकारों ने यह बतलाने का प्रयास किया है कि हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य की समस्या पारस्परिक प्रेम एवं सहानुभूति से ही सुलझ सकती है। दोनों सम्प्रदायों के मध्य आत्मीयता का सम्बन्ध सुदृढ़ करने के लिए अहिंसा एवं सहनशीलता का मार्ग प्रशस्त करना होगा। किन्तु इस दृष्टि से प्रस्तुत 'रोटी बेटी' के आदर्श कहीं-कहीं अतिभावुक होकर अप्रायोगिकता की सीमा तक पहुँच गये हैं।

सर्वोदय

सर्वोदय-दर्शन को महात्मा गांधी ने जन्म दिया, किन्तु उसे परिष्कृत कर विकसित करने का श्रेय आचार्य विनोबा भावे को है। यही कारण है कि सर्वोदय दर्शन के प्रणेता विनोबा ही माने जाने लगे हैं। भू दान, सम्पत्तिदान, साधन दान, बुद्धि दान, हृदय-परिवर्तन की प्रक्रियाएँ होने पर भी विनोबा की देन हैं। उन्होंने अधिकारों के विसर्जन का एक देशव्यापी आन्दोलन छेड़ दिया है, जो अहिंसक एवं सांस्कृतिक दोनों है। सर्वोदय ने जनता का तीव्रता से ध्यानाकर्षित किया है और हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों ने भी सर्वोदय के बुनियादी तत्वों को ग्रहण किया है।

सर्वोदय के मूलभूत सिद्धान्त[1]

सर्वोदय का आदर्श है अद्वैत और उसकी नीति है समन्वय। मानवकृत विषमता का वह निराकरण करना चाहता है और प्राकृतिक विषमता को घटाना चाहता है। सर्वोदय की दृष्टि में जीवन एक विद्या है, एक कला भी जीव मात्र के लिए, प्राणि-मात्र के लिए समादर, प्रत्येक के प्रति सहानुभूति ही सर्वोदय का मार्ग है। सर्वोदय दूसरों को जिलाने के लिए जीने में विश्वास करता है। वह मानता है कि दूसरों को अपना बनाने के लिए प्रेम का विस्तार करना होगा, अहिंसा का विकास करना होगा और आज के सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन करना होगा। सर्वोदय समाजनिरपेक्ष, शाश्वत और व्यापक मूल्यों की स्थापना करना और बाधक मूल्यों का निराकरण करना चाहता है। वह ऐसे वर्गविहीन, जातिविहीन और शोषणविहीन समाज की स्थापना करना चाहता है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति और समूह को अपने सर्वांगीण विकास के साधन मिलेंगे। यह क्रान्ति अहिंसा और सत्य द्वारा ही सम्भव है। सर्वोदय इसी का प्रतिपादन करता है।

सर्वोदय की पृष्ठभूमि आध्यात्मिक है। यह बात विज्ञान में नहीं है, क्योंकि वह जीवन का बाहरी नक्शा बदल सकता है, पर भीतरी नक्शा बदलना उसके वश की बात

---

१. श्रीकृष्णदत्त भट्ट - 'सर्वोदय दर्शन' की भूमिका पर आधारित।

नहीं। वह राजनीति के स्थान पर लोकनीति का पक्षपाती है। राजनीति में जहाँ शासन मुख्य है, वहाँ लोकनीति में अनुशासन। राजनीति में जहाँ सत्ता मुख्य है, वहाँ लोकनीति में स्वतन्त्रता। राजनीति में जहाँ नियंत्रण मुख्य है, वहाँ लोकनीति में संयम। राजनीति में वहाँ सत्ता की स्पर्धा, अधिकारों की स्पर्धा मुख्य है, वहाँ लोकनीति में कर्तव्यों का आचरण। सर्वोदय का क्रम यही है कि शासन से अनुशासन की ओर, सत्ता से स्वतंत्रता की ओर, नियन्त्रण से संयम की ओर अधिकारों की स्पर्धा की ओर से कर्तव्यों की आचरण की ओर बढ़ो।

सर्वोदय मानव की भौतिक उन्नति को ही पर्याप्त नहीं मानता। वह ऐसी क्रान्ति को निस्सार मानता है, जिसमें मानवता का नैतिक स्तर ऊँचा न उठे। उसकी दृष्टि में क्रान्ति की सार्थकता है दुश्मन को गले लगाने में, क्रांति है अत्याचारी को क्षमा करने में, क्रांति है गिरे हुए को ऊपर उठाने में। वह मानता है कि इस क्रांति का साधन है—हृदय-परिवर्तन, जीवन-शुद्धि, साधन-शुद्धि और प्रेम का अधिकतम विस्तार।

संक्षेप में सर्वोदय में से सत्य और अहिंसा, अस्तेय और अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य और अस्वाद, सर्वधर्म-समन्वय और श्रम की प्रतिष्ठा, अभय और स्वदेशी आदि व्रत स्वतः स्फुर्त होते हैं। इन मूल्यों को अधिकाधिक सामाजिक बनाने से ही सर्वोदय का मार्ग प्रशस्त होगा।

सर्वोदय के इन सिद्धांतों को हरिभाऊ उपाध्याय ने निम्नानुसार वर्गीकृत किया है .

(१) समाज में किसी एक व्यक्ति को स्वामित्व का अधिकार न रहे।

(२) व्यक्ति परस्पर अपने स्वार्थ को महत्व न दें—उनमें स्वार्थों की परस्पर होड न हो।

(३) मनुष्य के नाते सबको समान स्वतन्त्रता और विकास की अनुभूति हो।

(४) स्वराष्ट्र, नीति और परराष्ट्र-नीति जैसी दो अलग-अलग नीतियाँ न हों—बल्कि एक विश्व-समाज हो और एक विश्व-नीति।

(५) उसका नारा 'जय राष्ट्र' की बजाय 'जयजगत' हो।

(६) जीविका-निर्वाह में शरीर शक्ति और बुद्धि शक्ति का भेद न रखा जाय—सामूहिकता तथा सहकार-नीतियों का पालन किया जाय।

(७) न ऐकान्तिक आर्थिक स्वावलम्बन हो, न ऐकान्तिक आर्थिक परावलम्बन, बल्कि परस्परावलम्बन हो।[१]

---

१ साप्ताहिक 'प्रहरी', जबलपुर, दिनांक १-१२-१९६३

गांधीवाद एवं सर्वोदय का राजनीतिक उपन्यासों में चित्रण

यह दुःख की बात है कि ऊँचे शाश्वत ध्येय को मान्यता देने वाले सर्वोदय को इने-गिने उपन्यासकारों ने ही अभिव्यक्ति दी है। अमृतलाल नागर का 'बूँद और समुद्र,' नागार्जुन का 'दुखमोचन' और हरिदत्त दुबे का 'पुनर्जन्म' सर्वोदयी भावना से प्लावित उपन्यासों के उत्तम उदाहरण हैं।

'बूँद और समुद्र' में व्यक्ति और समाज के समन्वय को सर्वोदयी विचारधारा के अनुसार अंकित करने का प्रयास है। उपन्यास का संदेश है : 'मनुष्य का आत्म-विश्वास जागना चाहिए, उसके जीवन में आस्था जागनी चाहिए। मनुष्य को दूसरे के सुख-दुख में अपना सुख दुख मानना चाहिए। विचारों में भेद हो सकता है, विचारों के भेद से स्वस्थ द्वन्द्व होना है और उससे उत्तरोत्तर उसका समन्वयात्मक विकास भी। पर शर्त यह है कि सुख-दुख में व्यक्ति का व्यक्ति से अटूट सम्बन्ध बना रहे- जैसे बूँद से बूँद जुड़ी रहती है—लहरों से लहरें। लहरों से समुद्र बनता है—इस तरह बूँद में समुद्र समाया है।'[१] सभी प्रकार के मतवादों से ऊपर उठकर समता और न्याय के राज्य की स्थापना की समस्या उपन्यास में ध्वनित है और उसे मूर्त रूप देना चाहता है साहित्यकार महिपाल। किन्तु उसके आदर्श और व्यवहार में सर्वोदयी की यथार्थ भावना का अभाव है। आदर्शवादी होने पर भी वह सामाजिक व्यवस्था की विषमताओं में से अपना मार्ग निकाल सकने में असमर्थ है। वह पूँजीवादी व्यवस्था का शिकार हो अपनी आस्थाओं को क्षयी होते देखता है। इतना ही नहीं, अपितु वह आत्मघात कर लेता है। इसके विपरीत है सज्जन, जिसके जीवन में वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन का समन्वय चरितार्थ हुआ है। वह एक विकासशील पात्र है। बाबा राम जी के सम्पर्क में आकर उसके जीवन में जो परिवर्तन होता है, वह सर्वोदय की सामूहिक चेतना और व्यक्तिवादी दृष्टिकोण के सर्वथा अनुकूल है। बाबा जी सेवा पर, कर्म की कुशलता पर और एकांत साधना पर जोर दे उसी पथ का अनुगामी बनाते हैं। वह सज्जन से आग्रह करते हैं कि विज्ञानी यदि नाश को सिद्ध करता है तो तुम निर्माण को सिद्ध करो। जिसकी चेतना विराट् होगी, उसकी विजय होगी। द्वन्द्व से चेतना का रहस्य खुलता है। बाबा जी विनोबा की ही प्रतिमूर्ति हैं, जो सज्जन कन्या को भूमिदान और सम्पत्ति-दान का उपदेश दे, सामाजिक विषमताओं के निवारण का व्यक्तिवादी समाधान सुझाते हैं। लोक-कल्याण तथा व्यक्ति-मंगल को लेकर सज्जन के हृदय में संघर्ष होता है, किन्तु बाबा उसे इस सर्वोदयी तथ्य से परिचित कराते हैं कि सच्चा समाजवादी वही

---

१. अमृतलाल नागर - बूँद और समुद्र, पृष्ठ ६०६

है, जो दूसरो के लिए जिये, जिये और जीने दे। बाबा का सज्जन पर गहरा प्रभाव पड़ता है और वह अपने जीवन को समाज-कल्याण के लिए अर्पित करने का सकल्प लेता है। वह सर्वोदयी पात्र है और उसका दृढ विश्वास है कि अतत मनुष्य की सामाजिक चेतना जाग्रत होकर सारे वैषम्यो को दूर करेगी। बाबा राम जी के माध्यम से सर्वोदय सिद्धातो का प्रतिष्ठापन प्रस्तुत उपन्यास मे किया गया है, जिसकी चर्चा अन्यत्र की जा चुकी है।

नागार्जुन का दुखमोचन भी सर्वोदय के साम्य दर्शन से प्रभावित है और उसके जीवन की गतिविधियो और उसके व्यक्ति का विकास सर्वोदय दर्शन की आधार शिला पर हुआ है। सच्चे समाजवाद की उपलब्धि उन्होने सर्वोदय के अधिक निकट देखी है। नागार्जुन के उपन्यासो का विश्लेषण करते समय 'दुखमोचन' की इस विशिष्टता का विस्तृत उल्लेख किया जा चुका है।

हरिदत्त दुबे के उपन्यास 'पुनर्जन्म' मे विनोबा भावे के भू दान आन्दोलन के मूल तत्व त्याग, सर्वोदय के नैतिक आधार और जीवन की पवित्रता का चित्रण है। आचार्य विनयमोहन शर्मा का कथन है कि हरिदत्त दुबे यद्यपि उपन्यास-जगत मे विख्यात नही हैं, फिर भी उनका यह उपन्यास प्रकाश मे आ जाने पर हिन्दी मे प्रेमचन्द की आदर्श उपन्यास परम्परा का अवश्य पुनरुद्धार करेगा। 'मैला आँचल' मे जहाँ ग्राम-जीवन की घिनौनी तस्वीर अकित है, वहाँ 'पुनर्जन्म' में मानव -सद्भावना के आधार पर आदर्श ग्राम निर्माण की विधायक योजना मिलती है। अपने विषय का यह एक ही उपन्यास है, जिसमे मनोवैज्ञानिक चरित्र चित्रण के साथ आधुनिक समस्याओ का आदर्श हल सुझाया गया है। लेखक की दृष्टि पवित्रतावादी है। इसलिए उपन्यास मे जहाँ मानव-जीवन का प्रकृत शैथिल्य भी चित्रित किया गया है, वहाँ भी अशोभन वृत्ति या श्रृगार नही उभर पाया है।[1]

स्वातन्त्र्योत्तर उपन्यासो मे गाधी विचारधारा का ह्रास स्पष्ट रूप से दिखलायी पड़ता है। इसके विपरीत समाजवादी यथार्थवादी विचारधारा से वेष्टित उपन्यासो मे आश्चर्यजनक वृद्धि परिलक्षित होती है। जिस महान् व्यक्ति के व्यक्तित्व ने सारे विश्व को चमत्कृत किया और चिन्तन के धरातल को बदल दिया, वह स्वाधीनतोपरान्त ही भारतीय चिन्तन और भारतीय आचार-व्यवहार के लिए अनाकर्षक कैसे बन गया, यह एक विचारणीय समस्या है। जहाँ तक मैं समझता हूँ, उसके निम्नाकित कारण हो सकते है:—

---

१. विशाल भारत, अक सितम्बर, १६५७

(१) गाँधीवाद के अनुयायियों में सत्ता प्राप्ति के उपरान्त ऐश्वर्य की तीव्राभिलाषा और उसका उपभोग,

(२) सामान्य जन-जीवन में गाँधीय विचार-धारा के उन्मुक्त प्रवाह के लिए राजनैतिक एवं प्रशासनिक कारणों से शुद्धता और सात्विकता का अभाव,

(३) नैतिक मूल्यों की अवहेलना कर बढ़ती हुई भौतिक ऐश्वर्य की आकांक्षा के कारण गांधीवादी अध्यात्म, नैतिकता और राजनीति को 'आउट ऑफ डेट' समझने की प्रवृत्ति।

इनके कारण ही मार्क्स और फ्रायड की विचारधाराएँ हमारे चिन्तन को आप्लावित करती जा रही है। यह शुभ लक्षण नहीं है और उपन्यासकारों को चाहिए कि वे कर्तव्यच्युत न होकर ऐसे साहित्य का सर्जन करें, जो मानव सम्बन्धों के परिमार्जन में योग देकर मानव-सम्बन्धों में साम्यमयी स्थिति लाने का प्रयास करे। गाँधी जी का साहित्य सम्बन्धी दृष्टिकोण सत्य के धरातल पर आधारित है। उसमें भारतीय संस्कृति के तप और त्याग का समर्थन और भोग पक्ष का तिरस्कार है। दूसरे शब्दों में गांधी-दर्शन साहित्य में ऐसे सत्य और शिव का प्रतिष्ठापन चाहता है जो मानव गरिमा को बढ़ाये। गाधी जी का कथन है 'सच्ची कला आत्मा की अभिव्यक्ति होती है। सच्ची कला को आत्मा की प्रतीति कराने में सहायक होना चाहिए।' साहित्य के सम्बन्ध में भी यही कहा जा सकता है और उपन्यासकारों के लिए इस दृष्टिकोण की उपेक्षा हितकर न होगी।

साम्यवाद एवं समाजवादी विचारधारा

भारतीय राजनीति को जिन प्रमुख राजनीतिक विचारधाराओं ने प्रभावित किया है, उनमें गाँधीवाद के बाद मार्क्सवाद का स्थान है। कार्ल मार्क्स ने जिस सिद्धांत का प्रतिपादन किया था, उसे वैज्ञानिक समाजवाद, मार्क्सवाद और साम्यवाद जैसे विभिन्न नामों से पुकारा जाता है। इस समाजवादी विचारधारा का अन्वेषण मार्क्स, प्लेटो, टॉमस मूर, हेरिंग्टन, कैम्पानेल्ला, सेंट साइमन, राबर्ट ओवेन और चार्ल्स फूरिये जैसे अनेक विचारकों का ऋणी है, क्योंकि किसी न किसी रूप में उसने इन विद्वानों के विचारों से प्रेरणा ग्रहण की है।

मार्क्स तथा एंगेल्स ने १९ वीं शताब्दी में वैज्ञानिक समाजवाद का प्रतिपादन किया था। रूस की विजय से एशिया के परतन्त्र देशों का ध्यान इस समाजवादी दर्शन की ओर आकर्षित हुआ। इसी पृष्ठभूमि में भारत में भी प्रथम असहयोग आन्दोलन के बाद समाजवादी विचार का बीजारोपण तथा सन् १९२४ में साम्यवादी दल की स्थापना होती है। तत्कालीन भारतीय राजनीतिक परिस्थितियों में समाजवादी दर्शन के

दो राजनीतिक सिद्धात विवेचनीय है। समाजवाद न केवल विदेशी पूँजीवाद या साम्राज्यवाद से लडना है, अपितु देशी पूँजीवाद से भी टक्कर लेना है। वह दो वर्गों को मानता है' एक शोषक और दूसरा शोषित। इन दोनो के अपने अपने वर्ग के स्वार्थ होने से वर्ग सघर्ष अनिवार्य है। वर्ग सघर्ष मे यह क्राति या हिंसा को अनैतिक नहीं मानता।

भारत मे समाजवादीधारा दो रूपो मे मिलती है। एक का उद्भव और विकास काग्रेस के अन्तर्गत होता है और प० जवाहरलाल नेहरू जैसे नेता का मार्गदर्शन मिलता है। काग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना और उसका विस्तार इसी 'स्कूल' की देन है। दूसरा रूप है भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का। यह भी समाजवादी तथा साम्यवादी कहलाते है। दोनो के विचारो का स्रोत मार्क्सवाद होने पर भी दोनो के दृष्टिकोण मे भिन्नता मिलती है। स्वाधीनता पूर्व-युग मे व्यावहारिक रूप मे समाजवादी दल की सम्पूर्ण शक्ति राष्ट्रीय आन्दोलन मे लगी रही तथा साम्यवादी दल पूँजीवाद के विरुद्ध कार्यक्रमो को आयोजित करता रहा। साम्यवादी मानते थे कि काग्रेस पूँजीपतियो के हाथो की कठपुतली है, क्योकि उसका नेतृत्व पूँजीपति वर्ग करता है।

इस रूप मे स्वभावतः पूँजीवाद का विरोध करते हुए यह दल काग्रेस-विरोधी रूप मे उभरता गया। काग्रेस समाजवादी दल हिंसा को व्यावहारिक रूप से अनिवार्य तत्व नही मानता। अत विचारो मे विभिन्नता होते हुए भी वह अहिंसावादी नेतृत्व पर आस्था रखते हुए राष्ट्रीय आन्दोलनो मे सहयोग प्रदान करता रहा। यह दल मध्य वर्ग को समाजवादी व्यवस्था के क्रान्तिकारी अग के रूप मे भी मान्यता देता है, जब कि साम्यवादी इस वर्ग के अस्तित्व को नही मानता। मार्क्सवादी दृष्टि मे मध्य वर्ग एक प्रतिक्रियावादी शक्ति है और उसका विनष्ट होना चाहिए। इस रूप मे भारतीय साम्यवादी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति अर्थात् मार्क्सवाद को व्यवहार मे लाने के समर्थक है। वे मार्क्सवाद को एक निश्चित, स्थिर दर्शन मानकर चलते हैं, फलत उनके कार्यक्रमो मे भारतीय सामाजिक, राजनीतिक तथा सास्कृतिक मूल्यो की स्पष्ट अवहेलना दिखायी पडती है। गुरुदत्त ने अपने मार्क्सवाद विरोधी उपन्यासो मे इसका सजीव चित्रण किया है। मार्क्सवाद की समाजवादी व्यवस्था को समझने के लिए उसके सिद्धातो को समझ लेना आवश्यक है।

मार्क्स की प्रेरक शक्तियाँ

मार्क्स पर तीन विचारधाराओ का प्रभाव द्रष्टव्य है (१) हीगल का द्वन्द्ववाद (२) ब्रिटेन का अर्थशास्त्र, (३) फ्रास का काल्पनिक समाजवाद। इन विचारो से प्रभावित होने पर भी उसने इन्हें पूर्णत अगीकार न करके उन्हे अपने विचारो के अनुरूप

पूर्णता प्रदान की है। उसने हीगेल के द्वन्द्ववाद के काल्पनिक स्वरूप के स्थान पर भौतिक तत्व की प्रतिष्ठा की। इसी तरह उसने ब्रिटिश अर्थशास्त्र के सिद्धान्त का नवीनीकरण कर पूँजीवाद की आन्तरिक असंगतियों, पूँजीवादी संकटों तथा श्रमिक एवं पूँजीपति के पारस्परिक सम्बन्धों का विश्लेषण किया। फ्रांस के समाजवादियों से भी उसने क्रांति तथा वर्ग संघर्ष की भावना अंशत ग्रहण कर वितरण-प्रणाली के स्थान पर उत्पादन-क्रिया को दोषी निरूपित किया।

मार्क्स के सिद्धान्त

मार्क्स ने जो सिद्धान्त प्रतिपादित किये, वे इस प्रकार हैं .

१—उत्पादन-प्रणाली के अनुरूप ही वर्गों की उत्पत्ति होती है,

२ - वर्गों में परस्पर संघर्ष होना अनिवार्य है और यह वर्ग-संघर्ष सर्वहारा की अधिनायकशाही का मार्ग प्रशस्त करता है, और

३—सर्वहारा का यह अधिनायकत्व संक्रमणकालीन होगा। इसमें केवल सर्वहारा का एक वर्ग होगा और अन्य वर्ग समाप्त हो जायँगे। इस तरह एक राज्यविहीन समाज की सृष्टि होगी।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद

मार्क्स के इस सिद्धात को 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद' की संज्ञा दी गई है। 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद वह दर्शन-प्रणाली है, जो हमें उन आभ्यन्तरिक नियमों का ज्ञान कराती है, जिसके अनुसार इस भौतिक जगत् का विकास होता है, इस भौतिक जगत् के रहने वाले प्राणियों का विकास होता है और उनके विचारों में रूपान्तर होता है। द्वंद्वात्मक भौतिकवाद *दृश्य-जगत् की गति के नियमों की व्याख्या करता है।'*[1]

संक्षेप में मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद की विशिष्टताएँ इस प्रकार हैं :

(१) द्वंद्वात्मक भौतिकवाद मानता है कि प्रकृति इस प्रकार के तत्वों का आकस्मिक संघटन नहीं है, जो एक दूसरे से असम्बद्ध, प्रभावहीन तथा पूर्णतः स्वतन्त्र हों। द्वन्द्ववाद के अनुसार प्रकृति उन समस्त वस्तुओं एवं दृश्यों से मिलकर निर्मित होती है जो परस्पर सम्बन्धित, निर्भर और प्रभावपूर्ण हैं। अतः किसी भी प्राकृतिक घटना को उसके चारों ओर के वातावरण से अलग करके देखा या समझा नहीं जा सकता।

(२) प्रकृति में अविराम गति, प्रतिक्षण नवोन्मेष, परिवर्तन और विकास है। एंगेल्स के शब्दों में 'लघु से लघु वस्तु से लेकर विशाल से विशाल वस्तु तक, लघुतम जीव-

---

१ आचार्य नरेन्द्र देव राष्ट्रीय और समाजवाद,

कोश से लेकर मानव तक—समस्त प्रकृति निरन्तर गतिमान और परिवर्तनशील है, उसकी स्थिति रचना एवं ह्रास के सतत प्रवाह में है।' इस तरह द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद किसी वस्तु के स्थायी एवं स्थिर होने तथा उसके मूलभूत कारणों को दैवीय बताने का विरोध करता है।

(३) द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के अनुसार प्रकृति का विकास क्रम सीधे-सीधे न होकर चक्करदार मार्ग से होता है। इस विकास क्रम में हम अदृश्य और अकिंचन परिमाण सम्बन्धी परिवर्तनों में स्पष्ट और मौलिक गुण सम्बन्धी परिवर्तनों तक पहुँच जाते हैं। इसी को कहा गया है कि पहले की गुणात्मक परिस्थिति से दूसरी गुणात्मक परिस्थिति तक संक्रमण का नाम विकास है। द्वन्द्वात्मक पद्धति की महत्ता है कि मात्रा-परिवर्तन से उस वस्तु के गुण में परिवर्तन हो जाता है।

(४) द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के अनुसार प्रकृति के समस्त बाह्य रूपों एवं पदार्थों में आन्तरिक असंगति (इनर कन्ट्राडिक्शन) भी मौजूद है। 'इन पदार्थों और रूपों के भाव पक्ष और अभाव-पक्ष दोनों हैं, उनका अतीत है तो अनागत भी, एक अंश मरणशील है तो दूसरा विकासोन्मुख है। इन दो विरोधी अंशों का संघर्ष पुरातन और नवीन, मरणशील और विकासोन्मुख, निर्वाण और निर्माण का संघर्ष ही—विकास क्रम की आन्तरिक प्रक्रिया है। परिमाण भेद के गुण भेद में परिवर्तित होने की यही आन्तरिक प्रक्रिया है।'[1] असंगतियाँ ही विकास की जन्मदात्री हैं। लेनिन के शब्दों में 'विरोधी तत्वों के संघर्ष का नाम ही विकास है।' क्रान्ति साधारण समाज से नवोन्नत समाज की ओर अग्रसर होने के लिए एक अनिवार्य सोपान है।

इतिहास की भौतिक व्याख्या

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के अनुसार ऐतिहासिक घटनाएँ भी भौतिक कारणों से निश्चित होती हैं। यह भौतिक तत्व वस्तुतः आर्थिक प्रभाव है, जो उत्पादन प्रणाली से सम्बन्धित है। मार्क्स ने इसे प्रगतिवादी परिप्रेक्ष्य में अपनी चिन्तनधारा की आधार पीठिका बनाया है। उनके अनुसार 'समाज में व्याप्त उत्पादन-व्यवस्था में लगे हुए मनुष्य निश्चयात्मक सम्बन्धों में प्रवेश करते हैं, जो कि निर्धारित रहते हैं—अर्थात् उनकी मानव आकांक्षा पर निर्भरता नहीं है—ऐसे उत्पादक सम्बन्ध जो कि उत्पादन की भौतिक शक्तियों के विकास के एक निश्चयात्मक सोपान के समानान्तर चलते हैं। इन्हीं उत्पादन-सम्बन्धों के योग से सामाजिक आर्थिक रूप तैयार होता है। यही वह वास्तविक आधार-पीठिका कही जा सकती है, जिस पर वैधानिक तथा आर्थिक ढाँचे खड़े होते हैं

---

१ जे० स्टालिन : द्वन्द्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद।

और सामाजिक चैतन्य के निश्चयात्मक रूप बनते हैं। भौतिक जीवन में उत्पादन की प्रणाली जीवन की सामाजिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक प्रणालियों के सामान्य रूप को निश्चित करती है।

उपर्युक्त आधार पर उसने निम्न तथ्यों का प्रतिपादन किया है

(१) समाज के राजनीतिक और कानूनी ढाँचे की आधारशिला उसका तत्कालीन आर्थिक ढाँचा होता है,

(२ यह आर्थिक ढाँचा उत्पादन-सम्बन्धों के योग से निर्मित होता है, और

(३) उत्पादन-शक्तियों के विकास की स्थिति पर ही इन सम्बन्धों की निर्भरता है।

एंगेल्स के शब्दों में 'समस्त सामाजिक परिवर्तनों तथा राजनीतिक क्रान्तियों के अन्तिम कारण न तो मनुष्यों के मस्तिष्क में, और न उसके चरम सत्य और न्याय सम्बन्धी विशेष ज्ञान में पाये जाते हैं, वरन् वे उत्पत्ति और विनिमय के ढगों में ही मिल सकते हैं।' इस तरह सामाजिक या राजनीतिक क्रांतियों का मूल कारण उत्पादन या वितरण प्रणाली में परिवर्तन होना है।

अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त

मार्क्स मानता है कि समस्त उपयोगी वस्तुओं में श्रम पदार्थ का सम्मिश्रण है, जो कि सभी की साझेदारी है। समस्त उपयोगी वस्तुएँ सामाजिक श्रम का ही परिणाम हैं। वह यह भी कहता है कि उन समाजों का धन, जिनमें उत्पत्ति की पूँजीवादी पद्धति प्रचलित है, अनेक वस्तुओं के संग्रहीकरण से प्रकट होता है, और उसकी इकाई वस्तु है। इसका तात्पर्य यह है कि धन का संग्रहीकरण पूँजीवादी समाज की विशिष्ट प्रवृत्ति है। श्रम से उनका आशय व्यक्ति की समस्त शारीरिक एवं मानसिक शक्तियों से था, जिनका प्रयोग वह भोग्य मूल्य के पैदा करने में करता है। इसीलिए उन्होंने अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त निकाला। इसके अनुसार अतिरिक्त मूल्य वह श्रम है, जिसका पूँजीपति कोई मूल्य नहीं देता। पूँजीपति के इस लाभ में श्रमिक की साझेदारी नहीं होती, जो शोषण है। वस्तुतः पूँजीपति का लाभ श्रमिक की मेहनत का ही अंग है, अतः दोनों के स्वार्थ परस्पर टकराते हैं और वर्ग-संघर्ष की स्थिति का निर्माण होता है। अतिरिक्त मूल्य की यह उपलब्धि ही सर्वहारा वर्ग को जन्म देती है। मार्क्स मानता है कि सम्पत्ति के केन्द्रीकरण के कारण समस्त समाज पूँजीवाद और सर्वहारा—शोषक और शोषित-वर्गों में विभाजित हो जायगा तथा मध्य वर्ग का लोप हो जायगा।

सर्वहारा क्रान्ति एवं अधिनायकत्व

ऐसी स्थिति के बनने पर सर्वहारा पूँजीवाद का काल बनकर उसकी कब्र खोदना

है। सर्वहारा क्रान्ति से, वर्गों के उन्मूलन से वर्ग विहीन समाज स्थापित होगा। किन्तु इस परिवर्तन के लिए हिंसात्मक क्रान्ति एक आवश्यक तत्त्व होगा।

सर्वहारा का एकाधिपत्य होने पर संक्रमण-काल की स्थिति का निर्माण होगा। इस सन्दर्भ में एंगेल्स के अनुसार 'जो पार्टी क्रान्ति में विजयी होगी, उसके लिए यह नितान्त आवश्यक होगा कि वह अपने शासन को बनाये रखने के लिए प्रतिक्रियावादी शक्तियों को शस्त्र बल का भय दिखाकर उन्हें अपने नियन्त्रण में रखने के लिए विवश हो।' इसी का समर्थन मार्क्स ने यों किया है 'श्रमिक बुर्जुआ वर्ग के विरोध को समाप्त करने के लिए राज्य को एक क्रान्तिकारी तथा अस्थायी रूप में प्रतिष्ठित रखते हैं। फलतः इस संक्रमणीय युग में राज्य दमनात्मक, स्वेच्छाचारी एवं असहनशील रहेगा। सर्वहारा के इस अधिनायकत्व में उत्पादन पर राज्य का जो एकाधिकार होगा, उसमें उत्पादन का आधार सामाजिक उपयोगिता होगी।'

पूँजीवादी सत्ता के उन्मूलन पर इस अधिनायकत्व का अन्त होगा और उस समय राज्य की उपयोगिता नहीं रहेगी। संघर्ष एवं वर्गीय भावना का पूर्णतः अन्त हो जायगा और उत्पादन के साधनों पर समाज का एकाधिकार होगा। इस तरह वर्गविहीन समाज का निर्माण होगा।

मार्क्सवाद एवं साहित्य

भारत में समाजवादी विचार-दर्शन का अध्ययन सन् १९२५ ई० में होने लगा था, किन्तु चिन्तन प्रक्रिया पर उसका प्रभाव एक दशक के उपरान्त परिलक्षित हुआ। रूस में समाजवादी व्यवस्था की स्थापना के परिणामस्वरूप संघर्षरत भारत का ध्यान उस ओर जाना स्वाभाविक ही था। मार्क्सवाद के रचनात्मक पक्ष से प्रभावित हो भारतीय उपन्यासकारों ने उसे अपने चिन्तन का विषय बनाया। हिन्दी उपन्यास-साहित्य में राहुल सांकृत्यायन, यशपाल और रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' इस नयी परम्परा के सूत्रधार बने।

मार्क्सवादी जीवन-दर्शन के अनुसार भौतिक जगत् का अस्तित्व मनुष्य के चिन्तन से स्वतंत्र है। भौतिक शक्तियां मानव-चेतना को बदलती हैं और मानव-चेतना भौतिक शक्तियों को बदलती है। इस प्रकार भौतिक परिस्थितियों को बदलता हुआ मानव स्वयं को बदलता है।[1] इस रूप में साहित्य कल्पना और आदर्श की नहीं, अपितु यथार्थ की वस्तु हो जाती है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने इस तथ्य की विवेचना में लिखा है 'मार्क्सवादी साहित्यकार मानते हैं कि उनके साहित्य का सम्बन्ध कल्पना और आदर्श

१ रेल्फ फ्रावस नॉवल एण्ड दी पीपुल, पृष्ठ १०५

में नहीं है, ठोस और व्यावहारिक सत्य से है। उनका सिद्धान्त है कि साहित्य वास्तव में वर्ग संघर्ष के ऐतिहासिक विकास क्रम में आये हुए विभिन्न युगों के अधिकारी वर्ग की प्रवृत्तियों का परिचायक है। ऐसी अवस्था में साहित्य का सम्बन्ध ऐतिहासिक विकास से है, जो एक यथार्थ वस्तु है।[1] मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का मनुष्य के नैतिक, सांस्कृतिक आध्यात्मिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक जीवन के क्षेत्र में युगान्तरकारी प्रभाव पड़ा है। मार्क्सवाद ने बताया कि मनुष्य ही अपने भाग्य का विधाता है। वह उत्पादन के साधनों से परिचालित है और उक्त साधनों के अनुसार ही उसके सामाजिक सम्बन्ध बनते और बिगड़ते हैं। वह मानता है कि आर्थिक आधार में सामाजिक सम्बन्धों में और तदनुसार विचारों में परिवर्तन आता है। आर्थिक स्थिति को मूलभूत आधार मानने के कारण ही मार्क्सवाद इस तथ्य को उद्घाटित करता है, राजनीतिक, दार्शनिक एवं नैतिक मान्यताएँ भी समाजविशेष की आर्थिक स्थिति के अनुरूप स्वरूप ग्रहण करती हैं।

मार्क्सवाद का साहित्यिक संस्करण है समाजवादी यथार्थवाद, जो साहित्य का आधार आर्थिक तथा भौतिक मानता है। यह साहित्य की उपादेयता वर्गहीन समाज की स्थापना में सहायक बनने में मानता है। फलतः पूँजीवाद के नाश के लिए शोषितों का वर्ग-संघर्ष के लिए प्रेरित करता है। इसके लिए वह शोषितों की समस्याओं और उनकी दयनीय सामाजिक आर्थिक स्थिति का चित्रण कर जीवन की विषमताओं को निर्देशित कर समाज की बाधक मान्यताओं के प्रति विद्रोह की भावना उत्पन्न करता है।

डॉ० शिवकुमार मिश्र ने समाजवादी यथार्थवाद के आधारभूत तत्वों को सूत्र रूप में इस प्रकार बताया है

* *वस्तुगत यथार्थ का उसके क्रान्तिकारी विकास की भूमिका में समाजवादी दृष्टि के आधार पर चित्रण।*
* समाज-विकास की द्वन्द्वमूलक प्रक्रिया की भूमिका में प्रगतिशील तथा प्रतिगामी शक्तियों की परख।
* ऐतिहासिक विकास की मूलभूत अन्तर्धाराओं का ज्ञान, नये को समर्थन देकर जर्जर प्राचीन का बहिष्कार, ऐतिहासिक सत्य, जीवन के 'पाजिटिव' पक्ष पर अधिक बल।
* समाज में व्याप्त वर्ग-संघर्ष तथा वर्गीय असंगतियों का गहरा और सूक्ष्म विश्लेषण तथा उद्घाटन।

---

१ आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : नया साहित्य : नये प्रश्न, पृष्ठ १

* मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का अंकन, जीवित, सक्रिय तथा सामाजिक मनुष्य की प्रतिष्ठा, 'पाजिटिव हीरो' की सृष्टि।
* भविष्य के एक क्रान्तिकारी, रचनात्मक तथा वैज्ञानिक दृष्टि से सम्पन्न तर्क सम्पन्न 'विज़न' का मूर्त्तीकरण।[1]

इस तरह संक्षेप में कहा जा सकता है कि समाजवादी यथार्थवाद का यथार्थ सामाजिक प्राणी का यथार्थ है। आचार्य वाजपेयी का मत है कि "इस यथार्थवाद में दो तत्व हैं, जो वास्तव में सत्यात्मक जीवन के दो पक्ष हैं। एक है वह असह्य और नग्न वास्तविकता, जो परिस्थिति बनकर हमें घेरे हुए है, और दूसरा है एक स्वप्न, जो साम्यवाद का साध्य है। यह एक वास्तविक-जीवन दृष्टि है, जिसमें तात्कालिक यथार्थ और उसे गति और दिशा प्रदान करने वाला आकांक्षित भवितव्य दोनों का द्वन्द्वात्मक संयोग है। साथ ही इस दृष्टिकोण की भूमि भी पूर्ण तथा सामाजिक है। इस विशिष्ट वस्तुवादी धारणा में मानवात्मा या चेतना को भौतिक द्रव्य का ही अग्रिम विकास बताने पर भी यह तथ्य बचा रहता है कि मानवात्मा विकासशील है। एंगेल्स ने इस आधार पर मानव-समाज की चरम परिणति इसमें देखी है कि सामाजिक सह-के आधार पर मनुष्य अपनी समस्त परिस्थितियों का पूर्णतया सचेतन नियन्त्रण करे, वह निसर्ग की दया पर निर्भर न रहे, या आकस्मिक संयोग और घटनाएँ ही उसका भाग्य निर्णय न करें किन्तु अपने भाग्य का नियन्ता केवल मनुष्य ही बने। और ऐसा वह व्यक्तिगत रूप से करने में कभी समर्थ नहीं हो सकता। यह परिणति वर्गहीन समाज के सहयोग की भूमि पर ही सम्भव है। यह दृढ़ आशा का स्वर है। इसमें मानवता की चिर विजयिनी आत्मा का पूर्ण विश्वास प्रदीप्त है।"[2]

हिन्दी उपन्यास साहित्य में मार्क्सवाद का प्रभाव वर्तमान अर्थ व्यवस्था के वैषम्य से उद्बुद्ध सामाजिक तथा ऐतिहासिक चेतना के स्वाभाविक परिणाम के रूप में अंकित हुआ है। विगत दो दशकों में समाजवादी यथार्थवाद के आधार पर रचित उपन्यासों का अध्ययन पूर्व अध्यायों में किया जा चुका है, अतः संक्षेप में ही उनका उल्लेख किया जा रहा है। राहुल सांकृत्यायन, यशपाल, अंचल, रांगेय राघव, अमृतराय, नागार्जुन, भैरवप्रसाद गुप्त इत्यादि समाजवादी यथार्थवाद के प्रमुख उपन्यासकार माने जाते हैं। यशपाल, रांगेय राघव, भैरवप्रसाद गुप्त और अमृतराय की व्यक्तिगत सीमाएँ हैं। मार्क्सवाद के सिद्धान्तों को बौद्धिक स्तर पर ग्रहण करने पर भी वे मध्यवर्गीय संस्कारों से अपने को विरत नहीं कर सके हैं। 'गांधीवाद की शव-परीक्षा' करने वाले विचारक

१ आलोचना, अंक २८, अक्टूबर, १९६३
२ आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : नया साहित्य नये प्रश्न, पृष्ठ १४२-४३

उपन्यासकार यशपाल की बौद्धिकता पाश्चात्य दर्शनों का प्रतिफलन है। उनमें मार्क्स के अर्थवाद और फ्रायड के भोगवाद का समन्वय दिखलायी पड़ता है। गांधीवाद के प्रति प्रतिक्रियावादी यशपाल मार्क्स पर आस्था रखते हुए फ्रायड के भोगवाद को स्वीकृति देते हुए जब दिखलायी पड़ते हैं तो आश्चर्य का उद्रेक स्वाभाविक है।

हिन्दी के समाजवादी वादसापेक्ष्य उपन्यास रूसी साम्यवादी उपन्यासों से प्रभावित कहे जाते है। अतः सोवियत उपन्यासों के आधारभूत सिद्धान्तों को समझ लेना उपयुक्त होगा। रूसी उपन्यास की आधार-पीठिका है वर्ग-संघर्ष, जो अन्ततः विजय में परिणत होगा। इस संघर्ष का स्वरूप विध्वंसात्मक ही नहीं, सर्जनात्मक भी है। यह प्रकृति की उन अवरोधक शक्तियों के प्रति विद्रोह करता है, जो मानव की मानसिक तथा सामाजिक प्रगति को कुंठित कर उसके प्रगति के मार्ग को अवरुद्ध करती है। डॉ० एस० मर्स्की ने आधुनिक सोवियत उपन्यास की विशेषताओं की ओर ध्यान दिलाते हुए लिखा है '*नये सोवियत उपन्यास की तीन मुख्य विशेषताएँ है—उद्देश्यवादिता, सामाजिक समग्रता के साथ प्रगति और ज्ञान के प्रकार के रूप में कल्पनात्मक रचना की स्वीकृति।* इनके सम्मिलन को सोवियत आलोचकों द्वारा सामाजिक यथार्थवाद कहा जाता है।'[1] हिन्दी के समाजवादी उपन्यासकारों की भी इस दिशा में निश्चित धारणाएँ है। यशपाल का मत है कि 'प्रगतिशील साहित्य का काम समाज के विकास के मार्ग में आनेवाली अन्धविश्वास, रूढ़िवाद की अड़चनों को दूर करना है। समाज को शोषण के बन्धनों से मुक्त करना है। कार्यक्रम में प्रगतिशील, क्रांतिकारी सर्वहारा श्रेणी का सबल साधन बनना प्रगतिशील साहित्य का ध्येय है। काल्पनिक सुखों की अनुभूति के भ्रमजाल का दूर करके मानवता को भौतिक और मानसिक समृद्धि के रचनात्मक कार्य के लिए प्रेरणा देना, प्रगतिशील साहित्य का मार्ग है।'[2]

वर्ग संघर्ष का चित्रण

हिन्दी के समाजवादी यथार्थवाद उपन्यासों में मुख्यतः वर्ग-भेद के आधार पर सामाजिक विरामोन्मुख युग विशेष की वर्गीय स्थिति के चित्रण का प्रबल आग्रह है। आचार्य वाजपेयी के कथनानुसार 'नया मतवाद निम्न क्रान्तिकारी विचारों को सम्मुख रखता है समस्त साहित्य दर्गगत होता है, वर्गविशेष की संस्कृति का पोषण करता है और तत्कालीन सामाजिक यथार्थ का ही प्रतिबिम्ब हुआ करता है। (२) केवल वर्ग-हीन समाज का साहित्य ही सार्वजनिक होता है, शेष सम्पूर्ण साहित्य वर्गों की सीमा

१. डॉ० एस०मर्स्की - टेन्डेन्सीज आफ द माडर्न नावेल,

२ देखिए—'बात बात मे बात,' पृष्ठ २७

मे परिबद्ध रहता है। (३) राष्ट्रीय या मानवीय संस्कृति नाम की कोई वस्तु नहीं होती, केवल वर्गगत संस्कृतियाँ ही हुआ करती है।"[1]

सम्भवत यही कारण है कि हिन्दी के समाजवादी उपन्यासो में शोषितो और शोषकों के विशिष्ट पहलुओं का चित्रण ही अधिकतर मिलता है। शोषितों के तीन प्रकार हिन्दी उपन्यासो मे मिलते है

(१) किसान या किसान मजदूर

(२) मजदूर

(३) नारी

नागार्जुन और भैरवप्रसाद गुप्त के अधिकाशत उपन्यासो का शोषित वर्ग किसान या किसान मजदूर है। सामाजिक रूढियस्त नारी का शोषित चित्रण यशपाल, अचल, अमृतराय, नागार्जुन और भैरवप्रसाद गुप्त के उपन्यासो मे समाजवादी चेतना के परिवेश मे उभरा है। नागार्जुन और भैरवप्रसाद गुप्त के किसान जमींदार-सघर्ष पर आधारित उपन्यास जमीदारी उन्मूलन के बाद की कृतियाँ है, जिनका सामयिक राजनीतिक महत्व नगण्य ही कहा जा सकता है। किसान जमींदार-सघर्ष तो स्वतत्र भारत मे बीते युग की घटना बनकर रह गयी है। सैद्धान्तिक नारेबाजी से अधिक महत्व इनका नही माना जा सकता। राजा, महाराजा, जमीदार, ताल्लुकेदार के खोखले व्यक्तित्व, उनकी पतनोन्मुखता और हीन आकाक्षाओ से लेकर समाज द्वारा उपेक्षित पात्रो के विवध चित्र मिलते है। इनमे ब्रिटिश काल मे बुर्जुआ वर्ग की आपदाओ के बीच भी सामूहिक मानवीय चेतना के क्रमिक विकास का आभास अवश्य है। इस प्रगतिवादी दृष्टि ने शोषक वर्ग की वास्तविकता, उनके सघर्ष, स्वार्थ रक्षा के प्रयत्न, उनके अन्तर्विरोध को तथा निम्न वर्ग के जीवन चरित्र को अभिव्यक्ति दी।

नागार्जुन ने 'वलचनमा' और 'बाबा बटेसरनाथ' मे तथा भैरवप्रसाद गुप्त ने 'गङ्गा मैया' और सत्ती मैया का चौरा' आर्थिक वैषम्य के शिकार कृषक वर्ग की दयनीय दशा के करुण जीवन वृत्त के माध्यम से सर्वहारा वर्ग की वर्ग सघर्ष की भूमिका को रेखाकित किया है। वर्ग सघर्ष का चित्रण समाजवादी यथार्थवाद की एक सामान्य प्रवृत्ति है, जो अधिकाश उपन्यासो मे मिलती है। भैरवप्रसाद गुप्त के 'मशाल,' अचल के 'चढती धूप,' राजेन्द्र यादव के 'उखडे हुए लोग' मे मजदूर सघर्ष का अकन किया गया है। मजदूरो की आर्थिक विपन्नता, सघर्ष और सगठन के अनेक चित्र कुशलता के साथ उरेहे गये है। 'मशाल' के शकूर का विश्वास है कि रूस की राह ही जिन्दगी की राह है और इसके लिए पूँजीवाद के विरुद्ध श्रमिक सघर्ष अनिवार्य है।

---

१. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी · नया साहित्य . नये प्रश्न, पृष्ठ ५५

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के शिकंजे में कसे वर्गबद्ध ये चरित्र स्वाभाविकता के अभाव में असंतुलित से हो गये हैं। मतवाद के पूर्वग्रह के कारण चरित्रों का सहज विकास नहीं हो सका है। प्रचारात्मक ध्येय को प्रमुखता प्रदान करने से कलात्मक पक्ष न्यून हो गया है। पात्र और घटनाएँ स्वाभाविक क्रम में न आकर वर्ग-संघर्ष के पूर्व निर्धारित क्रम में आती हैं और संस्कारगत जीवन को उच्छिन्न करने की चेष्टा करती हैं। कलात्मक दोष होने पर भी यह तो स्वीकार करना ही होगा कि यह सैद्धान्तिक रूप से मार्क्सवादी वस्तुगत मान्यताओं का भली भाँति निर्वाह करता है। समाजवादी उपन्यासकारों का यान्त्रिक दृष्टिकोण उनके उद्देश्य की पूर्ति में कहाँ तक साधक है, यह एक विचारणीय प्रश्न है। प्रचार का प्रयोजन रसात्मकता का बाधक बनकर हृदय-स्पर्शी नहीं बन पाता। हिन्दी के ये उपन्यास समाजबोध तो कराते हैं, पर अपनी न्यूनताओं के कारण शाश्वत धरातल पर नहीं आ पाते। अतः राष्ट्रीय साहित्य की कोटि में परिगणित नहीं किये जा सकते।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का यह कथन सत्य ही है कि इतिहास को साहित्य ही राष्ट्रीय चेतना का अंग बनाता है। हमें अपेक्षा ऐसी रचना की है, जो तत्कालीन प्राणवत्ता को राष्ट्र की स्थायी निधि बना सके। यथार्थ बोध और वस्तुनिष्ठ दृष्टि प्रचार-कार्य कर सकती है, मानव गरिमा के विकास की सहायक नहीं बन सकती। कलाकृति सर्जना है, उत्पादन नहीं।[1] सच तो यह है कि हिन्दी के वाद-सापेक्ष राजनीतिक उपन्यासों में राजनीतिक सिद्धान्तों का उद्भावन सूक्ष्म अप्रच्छन्न रूप से नहीं मिलता, जो उपन्यासकारों की कलाहीनता का ही सूचक है।

हिन्दी के समाजवादी यथार्थवाद उपन्यासों में सामाजिक चेतना के चित्रण सम्मुख व्यक्ति के वैयक्तिक चेतना को प्रायः विस्मृत कर दिया गया है। इस रूप में जिस साहित्य की सृष्टि होती है, उसमें समाज की आशा-आकांक्षाओं को ही अभिव्यक्ति मिल सकती है। किन्तु वस्तुतः यह मार्क्स की व्याख्या के प्रतिकूल जाता है। मार्क्स मानता था कि 'प्रत्येक मानव का एक दोहरा इतिहास होता है, क्योंकि वह एकबारगी एक ऐसा प्रतिनिधि भी है, जिसका एक सामाजिक इतिहास है तथा एक व्यक्ति भी, जिसका व्यक्तिगत इतिहास भी है। ये दोनों भी, चाहे उनमें कितना ही प्रत्यक्ष द्वन्द्व क्यों न दिखायी दे, एक इकाई है, क्योंकि सामाजिक इतिहास अन्ततः व्यक्तिगत इतिहास को प्रभावित करता है, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि कला के क्षेत्र में भी सामाजिक स्वरूप व्यक्तिगत चरित्र पर हावी होना होगा।'[2] किन्तु हिन्दी के इन उपन्यासों में

१ आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : आधुनिक काव्य-रचना और विचार
२ रैल्फ फाक्स : उपन्यास और लोक जीवन (अनु० नरोत्तम नागर), पृष्ठ १६

व्यक्ति का नहीं, अपितु उसकी वैयक्तिक कुंठाएँ ही महत्वपूर्ण मान ली गयी हैं। हम साहित्य और समाज के अविच्छेद्य सम्बन्ध को मान्यता देते हुए भी व्यक्ति की अपनी सत्ता का भी महत्त्व मानते हैं। अतः आनुपातिक रूप से व्यक्ति पक्ष एवं समाज पक्ष के संतुलन के औचित्य का समर्थन करते हैं। समाजवादी यथार्थवाद से अनुप्रेरित उपन्यासों में समाज निष्ठा के भावों के प्रबल प्रवाह और कम्युनिस्ट संज्ञक पात्रों के लघु व्यक्तित्व को देखकर आभास होता है कि साम्यवादी समाज में सर्वग्रासी सत्ता मनुष्य के व्यक्तित्व को शायद बहा ही ले जायगी। डा० भटनागर का भी कथन है "समाजवादी यथार्थ चाहे समाज के चित्रण के लिए जितना उपयोगी हो चाहे उसमें नय सामाजिक तामरस्व की आदर्शवादी अतिरंजक कल्पना हो—वह मानवीय चरित्र की (उन) सूक्ष्म भंगिमाओं की उपस्थिति नहीं कर सकता व्यक्तिगत जगत् के सूक्ष्म को स्थूल उपन्यासों में सामाजिक स्थूल पर बलि कर दिया गया है।"[1] महाभारत में भी महर्षि व्यास ने सारे गुह्यतर ज्ञान का सार 'न हि मनुष्यात् श्रेष्ठतरं हि किंचित्' (मनुष्य से बढ़ कर श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है।) बताया है।

समाजवादी यथार्थवाद एवं प्रेम

प्रेम के विविध सम्बन्ध एवं नारी समस्याएँ समाजवादी यथार्थवादी उपन्यासों में मुख्य वर्ण्य विषय के रूप में चित्रित हुई हैं। क्रान्तिकारी-साम्यवादी यशपाल का विचार दर्शन मार्क्सवाद निहलिस्ट-दर्शन और फ्रायड के समीकरण से निर्मित माना जाता है। मार्क्सवाद के सिद्धान्तों में आस्था होने पर भी उनके उपन्यासों में सैद्धान्तिक विरोधाभास भी मिलता है। जनक्रांति पर अडिग विश्वास होने पर भी वे मध्यवर्गीय पात्रों को अभिव्यक्ति देते हैं—सर्वहारा वर्ग को नहीं। निम्न मध्यवर्ग के पात्रों का उनके उपन्यासों में प्रायः अभाव ही है। मार्क्सवाद मध्यवर्ग को मान्यता नहीं देता, किन्तु यशपाल और अमृतराय के पात्र मुख्यतया मध्यवर्ग के हैं। यशपाल के मध्यवर्गीय पात्रों के सम्बन्ध में यह ठीक कहा गया है कि "ये पात्र सामन्ती एवं पूँजीवादी शोषण से मुक्ति एवं काम सम्बन्धों में निहलिस्ट दर्शन के दो सीमान्तों को जोड़ते हैं। इस परस्पर विरोधी द्विमुखी दृष्टि के प्रतिपादन के लिए मध्यवर्गीय पात्रों का चुनाव किया गया है। उनके उपन्यासों में किसान पात्रों का अभाव है जो जन आन्दोलन का एक आवश्यक अंग है।'

मध्यवर्गीय पात्रों को लेकर फ्रायड के भोगवाद को अभिव्यक्त करने की प्रवृत्ति से यशपाल और अमृतराय ने सामाजिक संघर्ष को स्थान की अपेक्षा यौन स्वच्छन्दता

---

१ डॉ० रामरतन भटनागर मूल्य और मूल्यांकन, पृष्ठ २२२-२३

का प्रसार अधिक है। फलतः सैद्धान्तिक निष्कर्ष सहज स्वाभाविक न होकर आरोपित लगते हैं। इन उपन्यासों में रोमांस और साम्यवाद का समन्वय इस तरह हुआ है कि 'इस निष्कर्ष पर आना पड़ता है कि बिना प्रेम किये साम्यवाद की निष्पन्नता नहीं प्राप्त हो सकती। साम्यवादी पात्रों की भ्रमर-वृत्ति का चित्रण स्वयं साम्यवादियों ने किया है, अतः उसे सत्य के निकट मानना अनुपयुक्त न होगा। यशपाल, जैनेन्द्र, भगवत मन्मथ नाथ गुप्त, अमृतराय के नारी पात्र आत्म-दान को, नारीत्व को समर्पित करने को सतत उत्सुक हैं। यदि यही साम्यवादी नारीमूर्ति है तो भारतीय सांस्कृतिक धरातल पर उसे स्वीकार नहीं किया जा सकता। श्री मोतीसिंह के शब्दों में 'इन्होंने अपने उपन्यासों में जिस जीवन और चरित्र का निरूपण किया उसकी एक उपलब्धि तो यह है कि वे पात्र किन्हीं विशेष परिस्थितियों में पड़कर कम्युनिस्ट सचक प्राणी हो गये हैं और दूसरी उपलब्धि है कि यौनव्यापार का अवरोध और आकर्षण नये साहसिक कार्यों और कम्युनिस्ट पार्टी लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक होता है। उनके उपन्यासों में यौनवृत्ति का उभार अधिक है और समाजवादी यथार्थ कम।'[1]

जनतंत्र की आलोचना

मार्क्स पूँजीवादी जनतंत्रीय शासन-व्यवस्था को अनुपयुक्त मानता था और उसका कटु आलोचक था। उसका विश्वास था कि पूँजीवादी लोकतन्त्र में जो निर्वाचन होता है, उसका अर्थ है कि श्रमिक अपने बुरे प्रतिनिधित्व के लिए किसी पूँजीवादी प्रत्याशी को, जिसे वह चाहता है, मत दे। दूसरे शब्दों में पूँजीवादी जनतन्त्र एक आडम्बर और धोखा है। गांधी जी भी पूँजीवादी जनतन्त्र को सच्चा जनतन्त्र नहीं कहते थे। 'गोदान' में मिर्जा खुर्शेद जैसे इसी को अभिव्यक्ति देते हैं

'मुझे अब इस डेमोक्रेसी में भक्ति नहीं रही। जरा सा काम और महीनों की बहस। हाँ, जनता की आँख में धूल झोंकने के लिए अच्छा स्वांग है। जिसे हम डेमोक्रेसी कहते है, वह व्यवहार में बड़े बड़े व्यापारियों और जमींदारों का राज्य है और कुछ नहीं। चुनाव में वही बाजी ले जाता है, जिसके पास रुपये हैं। मेरा बस चले तो कौंसिलों में आग लगा दूँ।'

'उदयास्त' में भी स्वातन्त्र्योत्तर स्थापित जनतन्त्र पर व्यंग्य किया गया है: 'यह कैसा जनता का राज्य है? यह कैसा जनतन्त्र है? एक तरफ विश्व की जातियाँ नवोदित भारत की ओर उन्मुख हो रही हैं—दूसरी ओर भारत की एक आँख आँसू से तर है और दूसरी नशे से लाल हो रही है। यह सब क्या है?'

---

१ आलोचना, वर्ष ४, अंक १, अक्टूबर १९५४ (लेख : साम्यवादी उपन्यास)

'हाथी के दाँत' के ठाकुर परदुमन सिंह, 'उखड़े हुए लोग' के देशबन्धु जैसे चुने हुए जन प्रतिनिधियों का चित्रण भी जनतंत्र की असफलता को अभिव्यक्त करने के ध्येय से हुआ है। इसके विपरीत 'बगुले के पंख' का अपढ़, अछूत किन्तु तिकड़मबाज जुगनू है, जो किसी भी प्रकार की योग्यता न होने पर भी चुनाव जीत कर मंत्री बन जाता है। वस्तुतः यह दोष भी जनतंत्र की शासन प्रणाली का है, जो दलीय स्थिति के आधार पर शासन का सूत्र अयोग्य हाथों में सौंप देता है। इसीलिए कहा गया है: 'गणतन्त्रों का एक भारी दोष यह है कि उनमें योग्यतम व्यक्ति को अधिकार नहीं मिलता। गुटों के प्रतिनिधि को अधिकार मिलता है। चाहे उसमें योग्यता हो या नहीं।'[1]

राजनीतिक सिद्धान्त एवं साहित्यिक प्रक्रिया में भेद

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों के अनुशीलन से हम इस तथ्य पर पहुँचते हैं कि राजनीतिक सिद्धांत साहित्यिक प्रक्रिया में पड़कर कुछ भिन्न स्वरूप ग्रहण कर लेते हैं। मूलतः यह अन्तर राजनीतिक और साहित्यकार की स्वभावगत विशेषता है। इसका एक कारण तो शायद यह भी है कि राजनीतिक विशिष्ट सैद्धांतिक चिन्तन-प्रक्रिया से परिचालित होता है, जब कि साहित्यकार अनुभवगत जीवन का चित्रण करता है। इस दृष्टि से साहित्यकार जन-जीवन के अधिक निकट रहता है तथा उसका लक्ष्य अनुभूति से सिद्धान्तों का मूल्यांकन करना होता है। चिन्तन प्रक्रिया का यह मूलभूत अन्तर है। राजनीतिक सिद्धान्त की उपादेयता राजनीतिक अधिकारों की प्राप्ति तक सीमित है, किन्तु साहित्यकार इन राजनीतिक अधिकारों के तल में निहित आर्थिक पहलुओं के आधार पर बनते बिगड़ते मानव रूपों की कल्पना यथार्थ के धरातल पर करने का प्रयास करता है। उदाहरणार्थ हम प्रेमचन्द के राजनीतिक उपन्यासों को लें। प्रेमचन्द-युगीन भारत में राष्ट्रीय चेतना अपने चरम उत्कर्ष पर थी। गांधी जी के नेतृत्व में राष्ट्रीय कांग्रेस ब्रिटिश सत्ता से अहिंसक संघर्ष कर रही थी। प्रेमचन्द उपन्यास के माध्यम से इसी संघर्ष का चित्रण करना चाहते थे, किन्तु उनके उपन्यासों में कहीं भी यह संघर्ष प्रत्यक्ष रूप में अंकित नहीं हुआ, अपितु वे ब्रिटिश सत्ता के प्रतीक सामन्तशाही नरेशों और जमींदारों, शासन व्यवस्था की प्रतीक पुलिस या म्युनिसिपैलिटि के विरुद्ध संघर्ष अंकित करते हैं। स्वातन्त्र्योत्तर-काल में भी नागार्जुन या भैरवप्रसाद गुप्त जमींदार और किसान का जो संघर्ष चित्रित करते हैं, उसे विद्रोह को अभिव्यक्त करने वाला प्रतीक ही मानना होगा, क्योंकि जमींदारी उन्मूलन अथवा रियासतों के विलयन

---

१. आचार्य चतुरसेन : बगुले के पंख, पृष्ठ २३६

के उपरांत संघर्ष की यह स्थिति इतिहास की वस्तु हो गयी है। वर्ग-संघर्ष की इस स्थिति के अभाव में ही शायद समाजवादी लेखक मध्यवर्गीय जीवन का संघर्ष चित्रित कर रहे हैं, यद्यपि मार्क्सवाद में इस वर्ग को मान्यता नहीं है। हम कह सकते हैं कि साहित्यकार क्रांतद्रष्टा होता है और भावी सम्भावनाओं के अनुरूप अपना मार्ग निश्चित करता है।

कुछ उपन्यासकारों ने विभिन्न विचारों को समन्वित कर एक नया दर्शन देने का प्रयास किया है। इनमें इलाचन्द्र जोशी और आचार्य चतुरसेन का उल्लेख विशेष रूप से किया जा सकता है। इलाचन्द्र जोशी ने व्यक्ति और समाज की समस्याओं का हल मनोविश्लेषणवादी ढंग से करने का प्रयत्न किया है। इस सन्दर्भ में डॉ० चण्डीप्रसाद जोशी का यह कथन उद्धृत करना ही पर्याप्त होगा

'इलाचन्द्र जोशी का विचार दर्शन आधुनिक युग की बौद्धिक अराजकता का परिणाम है। उन्होंने प्रतिज्ञा कर ली है कि वह भी दीनइलाही धर्म की स्थापना अवश्य करेंगे। अन्तत: 'जिप्सी' उपन्यास में वह 'जन संस्कृति-समन्वय केन्द्र' की स्थापना भी करते हैं। वह गांधीवाद, समाजवाद, सर्वोदयवाद, फ्रायडवाद अध्यात्मवाद, व्यक्तिवाद आदि (यदि कोई 'वाद' और निकल आया तो उसे भी) सभी का समन्वय करके क्रांति करना चाहते हैं। उस क्रांति का नेतृत्व एकमात्र निम्न मध्य वर्ग की नारी कर सकती है, क्योंकि उसका सर्वाधिक शोषण होता है। अब देखिए कि जोशी जी ने शोषण का कौन सा सूत्र पकड़ा। वह निम्न मध्यवर्गीय नारी जमींदारी आदि शोषक वर्ग की यौन-वासना, यौन अनाचार से पीड़ित है। अन्तत: जोशी जी आकाशचारी की तरह गांधीवाद तथा समाजवाद से उतरकर काम वासना की गुफा में लौट आते हैं और उस गुफा से इलाचन्द्र जी क्रांति का संचालन करते हैं।'[1] कोई विचारधारा अपने में पूर्ण नहीं होती, अतः विभिन्न विचारधाराओं का समन्वय उचित धरातल पर होना हम अनुचित नहीं मानते हैं।

आचार्य चतुरसेन के 'उदयास्त' में और वृन्दावनलाल वर्मा के 'अमरबेल' में भी गांधीवाद एवं समाजवाद के समन्वय से समश्रम-सहयोग का सिद्धांत प्रतिपादित किया गया।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि एक ओर जहाँ उपन्यास सामयिक राजनीतिक सिद्धांतों का मंडन या खंडन करते हैं, वहाँ नूतन मार्ग का संकेत देना भी नहीं भूलते।



१ डॉ० चण्डीप्रसाद जोशी हिन्दी उपन्यास समाजशास्त्रीय विवेचन, पृष्ठ ४५१

अध्याय ११

हिन्दी राजनीतिक उपन्यासों का वैचारिक एवं साहित्यिक प्रदेय तथा सम्भावनाएं

- राजनीति का आग्रह
- मानव मूल्य की दृष्टि से
- नारी-समस्या
- काम समस्या
- राष्ट्रीय दृष्टि से
- अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से
- क्षेत्र विस्तृति
- जीवन की व्याख्या
- मानव मूल्य की नूतन मान्यताएँ
- आभिजात्य से सामान्य की ओर
- क्रान्ति की प्रेरणा
- व्यक्ति और समाज
- यथार्थ और स्वानुभूति-दर्शन
- पुनर्निर्माण सम्बन्धी दृष्टिकोण
- शैक्षणिक मूल्य
- लोकतन्त्रीय समाजवाद एवं भावी सम्भावनाएं

राजनीतिक तत्वों का आग्रह

उपन्यास के जनतन्त्रीय साहित्यिक विधा होने के कारण उसमे जीवन का कोई अंग निषिद्ध नही है। उसकी क्षेत्र-विस्तृति अत्यन्त व्यापक है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन सत्य ही है कि 'इस युग मे बड़ा भारी विचार-मंथन चल रहा है। विभिन्न विज्ञानो ने मनुष्य की अनेक पुरानी मान्यताओ और जीवन मूल्यों को नये रूप मे उपस्थित करने मे सहयोग दिया है। उपन्यास-साहित्य मे यह विचारगत उथल पुथल सर्वाधिक क्रियाशील है।'[1] सच तो यह है कि जीवन की विशालता के अभिव्यंजन मे उपन्यास की सफलता असंदिग्ध है। 'घर की चहारदीवारी के अन्दर का रुदन हासमय सीमित पारिवारिक जीवन, तत्कालीन और तद्देशीय परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए मनुष्य का सामाजिक जीवन, अतीत के अन्धकार में विलुप्तप्राय देशीय जीवन, विचारों के विविध संसार मे जीनेवाले मनुष्य का संघर्षमय आन्तरिक जीवन, सबको उपन्यास मे अंगीकार मिल सकता है।'[2] मानवीय रुचियो के वैविध्य से उपन्यास भी विविधता-मय है। वर्जीनिया वुल्फ के शब्दो मे कहा जा सकता है कि —"The proper stuff of fiction does not exist, everything is the proper stuff of fiction" राजनीतिक विशेषता से युक्त राजनीतिक उपन्यास राजनीतिक घटनाओं एवं सिद्धांतों से प्रभावित मानव-समाज की एवं जीवन की व्याख्या करते हुए जीवन के विविध पक्षों के सत्य की रसात्मक अभिव्यक्ति करता है।

इस तरह राजनीतिक उपन्यास अपने कलेवर मे राजनीति, मानव, समाज, राष्ट्र और विश्व के क्षितिजो को एक विशिष्ट दृष्टिकोण से देखने का प्रयास करता है। वह सम सामयिक राजनीति के परिप्रेक्ष मे राष्ट्रीय जागरण का सहयोगी बनकर राष्ट्रीय राजनीतिक समस्याओ का ऐतिहासिक आर्थिक पृष्ठभूमि पर विश्लेषण कर निर्देश दे जनमन को प्रबुद्ध करता है। राजनीतिक परिपार्श्व मे बदलते हुए मानव मूल्यों का प्रतिस्थापन करता है और राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय भूमिका पर व्यापक राष्ट्रीय एकता, विश्व बन्धुत्व, मानवतावाद आदि का जयघोष करता है।

अपने सम्पूर्ण सामाजिक परिवेश मे मानव राजनीतिक उपन्यास का ऐसा उवर्रक है, जो उसे पुष्ट बनाकर स्वयं पुष्ट होता है।

---

१ आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी · 'हिन्दी उपन्यास-साहित्य का अध्ययन'

२ डॉ० गणेशन : हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन पृष्ठ २६-२७

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यास का जन्म भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की देन है। सन् १९२१ में गांधी जी के नेतृत्व में राष्ट्रीय आन्दोलन ने एक नया रूप लिया और उसके एक-दो वर्ष बाद ही हम प्रेमचन्द के 'प्रेमाश्रम' को राष्ट्रीय आन्दोलन के सहयोगी के रूप में पाते हैं। तब से आज तक राजनीतिक उपन्यास राष्ट्रीय जागरण में एक विशिष्ट भूमिका का निर्वाह कर रहे हैं। वे जनमत-निर्माण के वाहक के रूप में अपने दायित्व का पालन कर विभिन्न राजनीतिक समस्याओं का निर्देश देते आये हैं।

राजनीतिक दृष्टि से उनका महत्व सम-सामयिक ऐतिहासिक घटनाओं का आकलन भी रहा है, जो ऐतिहासिक नीरसता का परिमार्जन भी करता है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में गाँधी-युग के राष्ट्रीय आन्दोलनों को यथायोग्य महत्व मिला है। प्रताप-नारायण श्रीवास्तव कृत 'बयालीस,' गुरुदत्त कृत 'स्वाधीनता के पथ पर,' अनन्त गोपाल शेवड़े कृत 'ज्वालामुखी' में बयालीस की क्रांति की ओर यशपाल कृत 'झूठा सच' और देवेन्द्र सत्यार्थी कृत 'कठपुतली', देश विभाजन की संवेदना अतुलनीय है। उपर्युक्त उपन्यासों में सन् १९४२ के आसपास का राष्ट्रीय वातावरण लिपिबद्ध है। मन्मथनाथ गुप्त ने स्वाधीनता संग्राम की पृष्ठभूमि पर जिस उपन्यास-सप्तक की रचना की है, उसमें सन् १९२१ से १९४७ तक के राजनीतिक भारत की झाँकी प्रस्तुत की गयी है।

राजनीतिक घटनाओं और वातावरण ही नहीं, अपितु राजनीतिक सिद्धान्तों के अनुसार भी राजनीतिक उपन्यासों की रचना कर पाठकों के राजनीतिक ज्ञान में अभि-वृद्धि की गयी है। इस दृष्टि से हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों को उनकी राजनीतिक विचार-धारा के अनुसार निम्नलिखित श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है . समा-जवादी यथार्थवादी उपन्यास गांधीवादी, उपन्यास, सर्वोदयी भावना से युक्त उपन्यास एवं सम्प्रदायवादी उपन्यास। इनकी चर्चा पिछले अध्याय में की जा चुकी है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि भारतीय स्वाधीनता-संग्राम से सम्बन्धित ब्रिटिश शासन और आन्दोलन के मध्य भारतीय स्वशासन का प्रगतिशील इतिहास भी इन उपन्यासों का एक विशिष्ट विषय रहा है। साथ ही भारतीय राजनीतिक दलों और उनकी गतिविधियों की स्पष्ट झलक भी इनमें दृष्टिगत होती है।

मानव-मूल्य की दृष्टि से

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यास-साहित्य में अन्तरात्मा की खोज का अभाव है। राजनीतिक सिद्धांतों के आदर्शों के अनुकूल मानवीय मूल्यों का निर्धारण व्यापकता के अभाव में एकांगी हो जाता है। मानवीय मूल्यों में सर्वाधिक गौरवमयी अन्तरात्मा की खोज है। सार्वभौम मानवीय मूल्य ही कला का अभीष्ट होता है। उदारता, सहिष्णुता, न्याय, त्याग, तप, संयम, स्नेह आदि मनोभावों के संश्लिष्ट चित्रण कला को रागात्मि

करता वृत्ति प्रदान करते हैं। मानव मात्रकी अभ्युदय-कामना को लेकर चलने वाली कला में देश, काल और भाषा की भावना तिरोहित हो जाती है। उसमें प्रतिष्ठित समानता, स्वातन्त्र्य, विश्व-बन्धुत्व, जनक्रांति आदि के आदर्श युग-युग और देश-देश के हो जाते हैं। दूसरे शब्दों में मानवीय सत्य ही कला को विश्व-व्यापकता प्रदान करते हैं और मानवीय वास्तविकता ही कला का आधार है—भले ही वह वास्तविकता स्थूल हो या सूक्ष्म। मानवीय मूल्यों का आधार पाकर ही सौन्दर्य की भावना व्यापक होती है।

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों में मनवाद विशेष के आधार पर मानव मूल्यों का प्रतिष्ठापन एकांगी ही कहा जा सकता है। सिद्धांतों के कारण उनका क्षेत्र सीमाबद्ध हो जाता है और वह अपनी चिरन्तनता को प्राप्त करने में असमर्थ रहता है। कहा जा सकता है कि इन उपन्यासों में स्वानुभूति—पूर्ण तात्विक दर्शन या मानव की मानवता का विश्लेषण करने वाली दृष्टि का अभाव है, जिससे जीवन की स्पष्टता और सजीवता का अंकन नहीं हो सका है।

सामाजिक दृष्टि से

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों में देशान्तर्गत अनेक सामाजिक समस्याओं की ओर भी ध्यान आकर्षित कराया गया है। ऐसी समस्याओं में नारी समस्या, काम-समस्या, आर्थिक एवं जातीय समानता, अछूतोद्धार आदि प्रमुख हैं, जो राजनीति के परिप्रेक्ष में प्रस्तुत की गयी हैं।

नारी-समस्या

सभ्यता के विकास के साथ-साथ नारी के चेहरे भी बदलते रहे हैं और हिन्दी उपन्यासों में नारी-चित्रण के चित्र बदलती हुई सामाजिक स्थिति के ही अनुरूप हैं। प्रेमचन्दोत्तर काल में बाल-विवाह, अशिक्षा, पर्दा-प्रथाएँ, दहेज, वैधव्य, वेश्यावृत्ति की समस्याएँ प्राचीन आदर्शों के आग्रह से सहज स्वाभाविक समाधान नहीं प्राप्त कर सकी हैं। नारी उस युग में सहानुभूति का पात्र थी और उसे समानाधिकार प्राप्त न था। यही कारण है कि उपन्यासकारों ने पृथक परिवार या स्वच्छन्द प्रेम का समर्थन अपने उपन्यासों में नहीं किया। नारी-समस्याएँ पुरुष की दया की आश्रित थीं। गाँधी युग में उसकी स्थिति में परिवर्तन हुआ और ऐसे आदर्श स्वीकृत हुए, जिनमें प्राचीन और नवीन था, पूर्व और पश्चिम दर्शन का एक विवेकपूर्ण समन्वय था। यही समन्वय देश के सामाजिक राजनीतिक जीवन का मेरुदण्ड बना। गाँधी जी ने बताया कि स्त्री-पुरुष एक-दूसरे के पूरक हैं। स्त्री-पुरुष की गुलाम नहीं—सहधर्मिणी, अर्द्धांगिनी और मित्र है। वे मानते थे कि

नारी-जीवन को अब भी सही दिशा न मिली तो समाज का आधा भाग प्रगति से वंचित रह जायगा। प्रेमचन्द-युग म नारी-समस्या सबधी सुधार का प्रवृत्ति क्रांति से भिन्न होते हुए भी परिवतन को आवश्यक मानती थी और समाज-व्यवस्था मे परिवर्तन से भी अधिक हृदय परिवतन म आस्था रखती थी। यही कारण है कि प्रेमचन्द ने अपने युग की नारी समस्याओ का समाधान गाधीवादी विचारधारा के अनुसार हो देने का प्रयास किया है। पर्दा प्रथा, अशिक्षा दहेज प्रथा, बाल विवाह, अनमेल विवाह और समानता और स्वतंत्रता आदि नारी समस्याओ का चित्रण प्रेमचन्द के उपन्यासो म मिलता है जिन पर गाँधी जी के विचारो की गहरी छाप है। गाँधी जी के समान उन्होने प्रेम का नारी की सबसे बडी शक्ति माना और उसकी महत्ता त्याग, सेवा और पवित्रता म प्रतिष्ठापित की। नारी की वैयक्तिक स्वतत्रता और आर्थिक स्वतत्रता और आर्थिक स्वतत्रता की समस्या पर विचार करते हुए उन्होने पाश्चात्य जीवन का अधानुकरण करने वाली 'उच्छृंखल नारी को हेय चित्रित किया है। राष्ट्रीय आन्दोलन से प्रभावित नारी-जागरण का सहानुभूतिक चित्रण भी उनके उपन्यासो की विशिष्टता है जो सामाजिक संघर्ष एव राजनीतिक आन्दोलनो मे सलग्न नारियो के मनोहारी चित्र प्रस्तुत करते हैं।

प्रेमचन्दोत्तर काल म नारी-समस्याओ का नवीन दृष्टिकोण स विचार किया गया है। इस काल म एक ओर स्वराज्य की सामाजिक आर्थिक व्याख्या के माध्यम से समानता और स्वतत्रता के अधिकार सवमान्य हो चले थे तो दूसरी ओर मार्क्सवादी दर्शन के कारण समाज म आधारभूत परिवतन की भूमिका निर्मित होने लगी। इसी व्यापक धरातल पर नारी जीवन की सामाजिक आर्थिक समस्याओ पर विचार किया गया और नैतिकता के नये मूल्य प्रतिष्ठापित हुए। फ्रायड के प्रभाव के कारण नारी के यौन सम्बन्धो का विश्लेषणात्मक विवेचन भी किया जाने लगा। नारी का क्षेत्र परिवार स सामाजिक एव राजनीतिक पीठिका तक विस्तृत हुआ।

प्रेमचन्दोत्तर काल क राजनीतिक उपन्यासो म समाजवादी प्रगतिवादी उपन्यासकारो ने आतंकवादी-साम्यवादी आन्दोलनो की पृष्ठभूमि म नारी के अधिकारो की घोषणा की और उसकी सामाजिक आर्थिक, यहाँ तक कि यौनस्वतत्रता को अभिव्यक्ति दी। यशपाल ने नारी की नैतिकता पर मार्क्सवादी ढग स विचार किया है। उनके मत मे नैतिकता समाज व्यवस्था पर आधारित रहती है और समाज व्यवस्था म परिवर्तन के साथ नैतिक मूल्यो म परिवर्तन आवश्यक है। नागार्जुन के 'रतिनाथ की चाची,' 'नयी पौध' और 'उग्र तारा' अमृतराय के 'बीज' भैरवप्रसाद गुप्त के 'गगा मैया' व 'सत्ती मैया का चौरा' और राजेन्द्र यादव क उखडे हुए लोग' आदि उपन्यासो म नारी समस्याओ का निदान मार्क्सीय दृष्टिकोण से किया गया है।

यशपाल ने अपन सभी उपन्यासो म नारी समस्या का चित्रण किया है। उनके

उपन्यासों में नारी के दो रूप उभरे हैं—एक तो वह, जिसमें नवीन धारा से सचालित पात्र हैं और दूसरा वह, जो परम्परावादी विचारधारा को अपनाये हुए हैं। 'दादा कामरेड' की शैल, 'पार्टी-कामरेड' की गीता, 'देशद्रोही' की यमुना व चदा प्रगतिवादी नवीन धारा की प्रतीक हैं। परम्परावादी विचारधारा के अनुसार विकसित होने वाले पात्र है 'देशद्रोही' की राज, नर्गिस, गुलशन, और दादा कामरेड' की यशोदा। आर्थिक रूप से मनुष्य की आश्रित नारी के क्षण-क्षण बदलते रूप के चित्रण का प्रतीक हैं 'मनुष्य के रूप' की सोमा। यशपाल की नारी अत्यन्त दुर्बल, कामुक और वासना की मूर्ति के रूप में चित्रित हुई है। इसके विपरीत नागार्जुन के नारी पात्रों में दृढ़ता का अकन हुआ है। उसकी उग्रतारा उर्फ उगनी एक अत्यन्त सशक्त नारी पात्र है।

काम-समस्या और उसका चित्रण

मार्क्स और फ्रायड के सिद्धान्तों ने काम-समस्या को नये ढग से समझने को बाध्य किया। यशपाल के शब्दों में पूँजीवादी समाज में नारी भोग विलास की वस्तु है, जिस पर पुरुष का पूरा आधिपत्य है। उसका अपना कोई अस्तित्व और गौरव नहीं है। उसका अस्तित्व किस की पुत्री, श्रीमती और माता बनने में है।'[1] मार्क्सवाद मानता है कि जब तक नारी आर्थिक रूप से पुरुष के आधीन है और उस पर आश्रित है, उसकी स्थिति पुरुष के समान कभी नहीं हो सकती। समाज में पुरुष के समान अधिकार पाने के लिए उसका आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होना आवश्यक है।[2]

इसी समाजवादी आधार पर भारतीय नारी परिवार और समाज के घेरे से पृथक् हो स्वच्छन्दता के मार्ग पर आरूढ़ हुई। नारी की स्वतन्त्रता और यौन सम्बन्धों को एक नयी भूमिका सामने आयी। नारी-समस्या को सामाजिक रूप में देखने के अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक आधार पर भी उसका विश्लेषण किया जाने लगा। यौन पक्ष एक शाश्वत समस्या है, जो व्यक्ति और समाज के ढाँचे को सदैव प्रभावित करती आयी है। फ्रायड के सिद्धांतों ने यौन पक्ष के विश्लेषण को गति दी और विगत दो दशकों में हिन्दी उपन्यासों में यौन आकर्षण से उत्पन्न वैयक्तिक और सामाजिक सघर्ष को नयी भावभूमि मिली। राजनीतिक उपन्यासों में यौन-पक्ष के चित्रण से सामाजिक मूल्य की व्याख्या तो कुछ अशों तक समझ में आती है, किन्तु पात्रों के यौन पक्ष का वैयक्तिक विश्लेषण वर्ण्य वस्तु में विशेष सहायक प्रतीत नहीं होता। चरित्र के एकान्तिक स्वरूप के विश्लेषण में उनका सामाजिक पक्ष दुर्बल हो उपन्यास के सामाजिक-राजनीतिक मूल्य को सदिग्ध बनाता है। यौन पक्ष के असतुलन के कारण कभी-कभी लगता है

१. यशपाल बात-बात में बात, पृष्ठ ५५
२ यशपाल : चक्कर क्लब, पृष्ठ ८६

कि प्रेम की उन्दम्न और वासना के विस्फोट के अतिरिक्त इन उपन्यासों मे जीवन ही नहा है।

हिन्दी के राजनीतिक अथवा अर्धन राजनीतिक उपन्यासों म यौन पक्ष सर्व प्रथम जैनेन्द्र के उपन्यासो म मिलता है। उनके 'सुखदा' और 'विवर्त' के पात्रो का सामाजिक जीवन यौनाक्रान्त है। 'विवर्त' के जितेन के जीवन को गति उसकी काम प्रवृत्ति की प्रतिक्रिया है। दमित कामवृत्ति के वशीभूत हो वह क्रांतिकारी जीवन अपना कर आत्म-तृप्ति का मार्ग ढूंढता है।

यथार्थ की भूमिका पर यौन पक्ष को लेकर व्यभिचार का चित्रण भी अनेक राजनीतिक उपन्यासो म मिलता है, वस्तुत जिसकी उपन्यास में कोई उपादेयता नहीं है। मन्मथनाथ गुप्त के राजनीतिक उपन्यासो म क्रांतिकारियो की भगवादी विलास वृत्तियां इसी श्रेणी म अभिहित की जा सकती है। हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासो मे न जाने क्यो क्रांतिकारियो को अत्यधिक कामुक व्यक्ति के ही रूप म चित्रित किया गया है। मन्मथनाथ गुप्त के अतिरिक्त जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासों के क्रांतिकारी पात्र व्यभिचार वृत्तियो के ही शिकार हैं और अश्लीलता की व्यजना करते हैं।

स्वातन्त्र्योत्तर राजनीतिक उपन्यासो मे तो जैसे यौन-वर्जनाओं को स्वच्छन्द रूप से उपन्यस्त करना शैली का अग बन गया है। यह सत्य है कि यौन सम्बन्ध अपने म अश्लील नहीं होते किन्तु यदि सत्य के उद्घाटन की मूल प्रेरणा न होकर केवल स्थूल तथ्यो के आधार पर विगर्हणाओं और निम्नताओं का ही वर्णन हो तो हम उसे अश्लील और त्याज्य मानने को विवश है। इसका कारण मात्र यह है कि अश्लीलता विषय म नही, अभिव्यजना म रहती है, ऐसा हम मानते हैं। इस भांति हम देखते है कि भारतीय नैतिकता का विघटन नये उपन्यासो का एक पक्ष है। भारतीय परिवार के स्वस्थ चित्रण का अभाव भी इन उपन्यासो मे दृष्टिगत होता है, जिसका प्रमुख कारण स्वच्छन्दता का आग्रह ही है। अच्छा होगा कि उपन्यासकार इस तथ्य को समझे कि वासना की स्वच्छन्दता से क्रांति का मार्ग कंटकाकीर्ण ही होता है और उसमे शक्ति नही, दौर्बल्य भाव की अभिवृद्धि होती है।

यह सच है कि वर्तमान राजनीतिक उपन्यासो मे सामाजिक परिप्रेक्ष्य म समाज वादी विचारधारा को जमकर वकालत की जा रही है। किन्तु उनकी विचारधाराएँ यथार्थ के निकट होते हुए भी जनता को सदेश नही दे पातीं, क्योंकि भारतीय मानस प्राचीन नैतिकता, धर्मान्धता, त्याग और तपस्या और पाप-पुण्य की भावना, प्रारब्ध-वादिता आदि के प्राचीन किन्तु दृढ सस्कारो को अपने से विलग नहीं कर सका है। कहा जाता है कि विगत अर्द्ध शताब्दी मे जो सामाजिक राजनीतिक क्रांतियां हुई हैं,

उन्होंने यथार्थवाद को तो प्रतिष्ठित किया, किन्तु इस ओर ध्यान नहीं दिया है कि यथार्थ की वास्तविक सफलता किसी आदर्श के निर्माण में ही है। दूसरे शब्दों में समाज अभी तक अपनी उन्नति का यथार्थ मार्ग निश्चित नहीं कर सका है। स्थूल रूप से इन उपन्यासों में नवराष्ट्र के निर्माण तथा जीवन के सम्पूर्ण गौरव की प्रतिष्ठा अभी इन उपन्यासों में होनी शेष है।

राष्ट्रीय दृष्टि से

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के उपरान्त राष्ट्र में अनेक समस्याएँ उठ खड़ी हुई हैं और जो राष्ट्रीय विकास के मार्ग की बाधक हैं। प्रान्तीयता, साम्प्रदायिकता, भाषा तथा जात-पाँत के भेद भाव कुछ ऐसे महत्वपूर्ण प्रश्न हैं, जो राष्ट्रीय एकता के लिए घातक सिद्ध हो रहे हैं। राष्ट्रीय एकता देश की स्वाधीनता का अभिन्न अंग है। किसी भी प्रजातांत्रिक राष्ट्र में विभिन्न प्रश्नों पर राजनीतिक मतभेद हो सकते हैं और जिनका आपसी तौर पर निराकरण भी हो सकता है, किन्तु ऐसे प्रश्नों को दुराग्रह से राजनीतिक बाना पहनाना राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए खतरा उत्पन्न करता है।

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों का योगदान, इस दृष्टिकोण से सराहनीय रहा है। राष्ट्रीय एकता को छिन्न-भिन्न करने वाले तत्वों का उन्होंने कभी समर्थन नहीं किया। केवल गुरुदत्त के उपन्यासों में हिन्दुत्ववादी राष्ट्रीयता के समर्थन से धर्मनिरपेक्षता के सिद्धान्त की अवहेलना अवश्य मिलती है। उनके कतिपय उपन्यासों में सम्प्रदायवादी विचारों की गूँज राष्ट्रविरोधी ही कही जायगी।

एक विशाल राष्ट्र होने के कारण भारत अनेक जातियों, धर्मों, संस्कृतियों और भाषाओं का संगम है। इतना होने पर भी राष्ट्रीय इतिहास, सांस्कृतिक परम्परा और अर्थ व्यवस्था एक सूत्र में बंधी है और दृढ़ है। स्वाधीनता के बाद हमारा धर्म निरपेक्षता का सिद्धान्त राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ बनाता है। वस्तुतः वह हमारी राष्ट्रीयता का अङ्ग है। कुछ धर्मान्ध और संकुचित विचार के व्यक्ति राष्ट्रीय एकता को भङ्ग करने के लिए साम्प्रदायिक द्वेष-भावना को यदा-कदा भड़काने का प्रयत्न करते हैं। ब्रिटिश शासन-काल में साम्प्रदायिक भावना का बीजारोपण हुआ और उन्होंने इसकी जड़ें इतनी मजबूत कर दी थीं कि परिणामतः देश का विभाजन हुआ।

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों में साम्प्रदायिक एकता का विस्तृत चित्रण मिलता है। प्रेमचन्द ने इस दिशा में मार्गदर्शक का कार्य किया। प्रतापनारायण श्रीवास्तव के 'बयालीस,' विष्णुप्रभाकर के 'निशिकान्त,' देवेन्द्र सत्यार्थी के 'कठपुतली,' यशपाल के 'झूठा सच' आदि अनेक उपन्यासों में साम्प्रदायिक विद्वेष के कारणों और

परिणाम के चित्रण के माध्यम से साम्प्रदायिक एकता के प्रतिष्ठापन को महत्व दिया दिया है।

गांधीवादी उपन्यासों में तो इस समस्या को अत्यधिक महत्वपूर्ण ढंग से उठाया गया है। इन उपन्यासों के अध्ययन से यह तथ्य प्रकट होता है कि संकीर्ण विचारों से जो तनाव पैदा होता है, वह राष्ट्रीयता को धक्का पहुँचाता है। प्रत्येक क्षेत्र की अपनी समस्याएँ और आकांक्षाएँ हो सकती हैं, पर राष्ट्रीय हित सबके ऊपर है। फूट और विघटन की प्रवृत्तियाँ सामाजिक और सांस्कृतिक दासता की सूचक हैं और उन्हें प्रोत्साहित करना राष्ट्र हित में नहीं है।

इन राजनीतिक उपन्यासों में अलगाव की प्रवृत्ति, जात-पात, प्रान्तीयता और भाषावाद का उल्लेख भी प्रसंगानुसार आया है, किन्तु साम्प्रदायिक विद्वेष की तरह उपर्युक्त प्रवृत्तियों को राष्ट्रीय एकता के विघातक तत्वों के रूप में ही चित्रित किया गया है। इस दृष्टिकोण से उपन्यासकारों ने राष्ट्रीय समस्याओं में अवगत कराते हुए राष्ट्रीय हित को ही सर्वोपरि माना है।

मूलभूत भ्रष्टाचार की भावना का विस्तृत चित्रण भी राजनीतिक उपन्यासों में राष्ट्रीय समस्या के रूप में ही अंकित किया गया है। वस्तुतः आधुनिक युग में भ्रष्टाचार किसी भी देश के लिए अभिशाप है, जो राजनीतिक विचार न होने पर भी राष्ट्र की गम्भीरतम समस्या है। इधर प्रशासन ने भी इस ओर ध्यान देना शुरू किया है। हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों में कांग्रेसी नेताओं, व्यापारी वर्ग और शासकीय कर्मचारियों के भ्रष्टाचारों की गाथाओं से पृष्ठ के पृष्ठ रँगे हुए हैं। चतुरसेन शास्त्री के 'बगुले के पंख,' अनन्तगोपाल शेवडे के 'भग्न मन्दिर,' यशपाल के 'झूठा सच' अश्क जी के 'बड़ी बड़ी आँखें' आदि उपन्यास सत्तादल और प्रशासन में फैले भ्रष्टाचार का पर्दाफाश करते हैं। सारांशतः आधुनिक उपन्यासों का राजनीतिक दृष्टिकोण सामन्तवाद, पूँजीवादी शोषण के साथ ही साथ अवसरवादी नेता-वर्ग, व्यापारी वर्ग और कर्मचारी-वर्ग के भ्रष्टाचार के विरुद्ध अधिकांशतः जिहाद करता है और गरीब असहाय जनता का नये उत्थान का सबल देकर नये समाज के नवोदय के स्वप्नों में व्यस्त है।

अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से

मानवता और विश्व शांति के प्रति साहित्यकार का सामान्य उत्तरदायित्व माना गया है। साहित्य मानव सम्बन्धों में साम्यमयी स्थिति का प्रतिष्ठापन करता है। इस अर्थ से ही वह मानव भावों की व्यवस्था करता है। वह प्रयास करता है कि मानव-मानव के पारस्परिक सम्बन्धों में सुधार हो, जिससे देश में और देश के बाहर भी

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासो मे अन्तर्राष्ट्रीय धरातल अत्यन्त सतही है। इने-गिने उपन्यासो मे—राष्ट्रीय आन्दोलन, विशेषत बयालीस की क्रांति के प्रसग मे अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओ की अभिव्यक्ति अवश्य मिली है, किन्तु वह भी दाल मे नमक जैसी ही है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की गूँज इन उपन्यासो मे सीमित रूप मे ही आ सकी है।

भावात्मक रूप से मानवतावाद की जो व्याख्या की गयी है, वह अवश्य ही अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज के अनुरूप है। *गाँधीवाद मे भारतीय दर्शन, निष्ठा और जीवन के* जिन ऊँचे शाश्वत ध्येय का समावेश है, वह वस्तुत जन-मानस के अभावो की पूर्ति का दर्शन है। इसका अन्तर्राष्ट्रीय विकास मानवता के विकास और सद्भावना मे निहित है, जो उपन्यासो मे अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के परिपार्श्व मे उपन्यास का विषय बन सकता है। हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासकारो को जो अभी राष्ट्रीय धरातल से आगे नही बढ सके है, इस ओर ध्यान देना चाहिए।

क्षेत्र-विस्तृति

आधुनिक सभ्यता की देन के रूप मे उपन्यास बाह्य जीवन की आवश्यकता को समग्र रूप मे प्रस्तुत करने वाली विधा है। उसने मनुष्य के क्रिया-कलापो को चित्रित करते समय यह स्पष्ट रूप से बतलाने का प्रयास किया है कि किसी चरित्र के जीवन मे घटित होने वाले कार्य व्यापारो को गति देने वाला वह जीवनोद्देश्य है, जिसके लिए मानव जी रहा और मर रहा है।[1] उपन्यास राजनीति से प्रभावित युग की नयी अभिव्यक्ति का वह नूतन रूप है, जो अपारदर्शी जन-जीवन को अन्तर्विरत शक्ति बनने की दिशा मे अग्रसर है। विगत अर्द्ध शताब्दी मे विश्व के रगमच मे विस्मयजनक परिवर्तन हुए है। राजनीतिक क्षेत्र मे सामन्तवाद के पराभव और श्रमिक शक्ति के विकास से सामान्य व्यक्ति का महत्व बढा है। प्रजातत्र और समाजवाद के विस्तार से जीवन-दर्शन और विचारणा के क्षेत्र मे आमूल परिवर्तन हुए है और उपन्यास-साहित्य मे उनकी प्रतिष्ठापित करने की प्रवृत्ति को देखकर हम बर्नार्ड शॉ शब्दो मे कह सकते है कि उपन्यास मानव के अनुभव की परिधि को बढाता है। इस कथन की सत्यता उपन्यास-साहित्य के क्रमिक विकास को देखकर सहज समझी जा सकती है। राजतत्र तथा सामन्त-युग मे जिस साहित्य की रचना हुई और जिसमे उपन्यास भी सम्मिलित है, वह जनता के हितो की उपेक्षा कर मात्र धनिक वर्ग के विलास की पूर्ति का साधन है। मध्यवर्गीय उत्थान के साथ-साथ समाज मे पूँजीवाद का उदय हुआ और स्वतत्रता की आड मे व्यक्तिगत पूँजी का विस्तार हुआ। साहित्य पर भी पूँजीवाद ने अपना प्रभाव अकित किया और स्वतत्रता के नाम पर व्यष्टि-समष्टि, स्वान्त. सुखाय और लोक हिताय

१ विजयशकर मल्ल आलोचना, अक्टूबर १९५४, पृष्ठ ६४

कला कला के लिए या कला जीवन के लिए आदि प्रश्न उपस्थित हुए और साहित्य कल्पना के लोक का निर्माण करने लगा। पूँजीवाद म शोषण की शक्ति के विस्तार से सामूहिक चेतना को जाग्रति हुई और कार्ल मार्क्स और महात्मा गांधी के विचारो ने समाज को नयी दिशाएँ दी। इन विचारा के अनुरूप समाज के नये सिरे से निर्माण किये जाने की आवश्यकता पर जोर दिया जाने लगा।

प्रथम महायुद्ध के बाद रूस मे समाजवाद की स्थापना हुई और द्वितीय महायुद्ध के बाद इसका विस्तार ससार के आधे भाग मे हो गया। इसकी लहरें भारत के कूल से से भी टकरायी किन्तु गाधीय सिद्धान्तो के कारण अपना वचस्व न बना सकी। एक ओर समाजवाद और पूँजीवाद का सघष अभी चल रहा है और दूसरी ओर गाँधीवाद अपना मार्ग बना रहा है। इन राजनीतिक चक्रो मे फँसे मानव समाज की आशा आकाक्षाओ का चित्रण करने से हिन्दी उपन्यासो म क्षेत्र विस्तृत हुई है। राजनीतिक उपन्यासा मे राज नीतिक विचार धाराओ को ग्रहण कर सामूहिक चेतना को व्यापक राष्ट्रीयता के धरा तल पर अभिव्यक्ति देने का क्रम चला। व्यापक राष्ट्रीयता से हमारा तात्पर्य विश्व बन्धुत्व मे है। समाजवाद और गाँधीवाद दोनो व्यापक राष्ट्रीयता को अपना लक्ष्य मानते हैं और इस स्तर पर उपन्यास सास्कृतिक चेतना के उत्थान का वाहक बन उनका सम धक और कभी-कभी मार्ग दर्शक भी बनता है। वह यथार्थ और आदर्श के समन्वय से मानव मन का परिष्कार का नयी दृष्टि देता है।

राजनीतिक मतवादो या सिद्धातो के उपन्यास मे समावेश किये जाने के कारण व्यष्टि और समष्टि-जीवन का चित्रण विविधता लिये हुए है और जिसने व्यावहारिक मानवीय धरातल पर मानव-सत्व की महत्ता का बोध कराया है। राजनीतिक प्रभावो से परिवर्तित राष्ट्रीय जीवन के नूतन क्षितिजो को उपन्यास-साहित्य मे स्पश किया और इसके कारण उसका भाव-क्षेत्र विशद हुआ है।

जीवन की व्याख्या

नवराष्ट्र निर्माण के साथ ही अनेक समाजिक, नैतिक और आर्थिक समस्याएँ उठ खडी हुई हैं और मानव-जीवन को आन्दोलित कर रही है। राजनीतिक स्वतन्त्रता के कारण अपने विशिष्ट राजनीतिक मतवाद क आधार पर नव आदर्श की प्रतिष्ठा के प्रयास चल रहे है। राजनीतिक उपन्यास इसी धरातल पर किसी न किसी ध्येय को लेकर राजनीति या समाज की समस्याओ के परिवेश म मानव-जीवन की व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। इन्ही मतवादा के कारण समाज की व्यवस्था और जीवन के आदर्श के सम्बन्ध मे मत-वैभिन्य मिलता है। उपन्यास उपयोगिता की तुला पर इनके भार उठाने का प्रयत्न कर रहा है क्योकि यही एक ऐसा माध्यम है, जो मानव-चेतना,

सार्थकता अथवा नियति के विभिन्न सत्यों को अभिव्यक्ति दे सकता है। केटिल का यह कथन सत्य के अत्यधिक निकट है कि उपन्यास का भविष्य स्वतन्त्र विषय नहीं है। वह जाति के सामाजिक एवं सांस्कृतिक विषयों के साथ संलग्न है। अतः भविष्य में भी श्रेष्ठ उपन्यासकार की कला की कसौटी यह रहेगी कि वह अपने अग्रगण्य कलाकारों की भांति अपने समय के गम्भीरतम प्रश्नों के प्रति कितनी ईमानदारी और सच्चाई से उलझ सका है।[1] सच तो यह है कि उपन्यास ही ऐसा साहित्यिक माध्यम है, जिसके द्वारा हम अपने सामाजिक-राजनीतिक जीवन में उठने वाली अधिकांश समस्याओं पर विचार कर सकते हैं। हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों में यह प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। जीवन की व्याख्या की प्रक्रिया में उपन्यासकार सत्य के अन्वेषण का प्रयत्न करता है। यह उचित भी है, क्योंकि सत्य तत्व की अनुभूति मानव की उच्चतम स्थिति है और इसकी उपलब्धि कराना उपन्यास के प्रधान दायित्वों में से एक है। राजनीतिक सिद्धान्तों के अनुरूप वर्ण्य विषय में अन्तर होने पर भी उपन्यासकार की आत्मानुभूति एवं सत्यान्वेषण की वृत्ति सदैव एक सी रहती है। यही कारण है कि वह मतवाद के भीतर रहकर भी मानव व मानवीय सत्य के प्रसार, गति और गहराई की उपेक्षा नहीं कर सकता।

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों में जीवन की व्याख्या मुख्यतः गांधीवाद या समाजवाद के सिद्धान्तों—मानवीय मूल्यों के आधार पर मिलती है। इन राजनीतिक सिद्धान्तों के कारण उपन्यास का केन्द्र होने के बावजूद भी मानव अपने सम्पूर्ण यथार्थ स्वरूप में नहीं आ सका है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि उपन्यासों के पात्रों में निजत्व या व्यक्तित्व प्रभावहीन है। श्रीनारायण अग्निहोत्री ने सम्भवतः इसीलिए कहा है कि 'अतीत में और अब भी हिन्दी उपन्यासों का केन्द्र मानव या तो स्वतः उपन्यासकार के इच्छित आत्मस्थापन का प्रक्षेपण मात्र बनकर रहा है, या उसकी दलगत राजनीति का प्रचारी चित्र।'

इस सत्य से मुँह नहीं मोड़ा जा सकता कि राजनीतिक सिद्धान्तों के आग्रह ने उपन्यास को प्रचारक बना दिया। हम यह मानते हैं कि साहित्य का मानव-जीवन में समस्त क्रिया-कलापों तथा सम्बन्धित विचारों और सिद्धान्तों का समन्वय अवांछनीय नहीं है, किन्तु उनका स्थान आनुषंगिक ही होना चाहिए। उसका जीवन-दर्शन इतना व्यापक होना चाहिए कि उसमें मनुष्य का अन्तर्निहित सामर्थ्य, उसका जटिल परिवेश और जीवन प्रक्रिया आत्मोपलब्धि की दिशा में स्वाभाविक रूप से अग्रसर हो। इसी ओर उपन्यासकारों का ध्यानाकर्षित करते हुए बख्शी जी ने कहा है - 'उपन्यासकारों से

१ वी० एस० प्रिचेट : प्रिफेस टु दि लिविंग नावेल, पृष्ठ १९६

लिए जो काम सबसे अधिक स्पृहणीय हो सकता है वह प्रचार का नहीं, निर्माण का ही हो सकता है। वे ऐसे चरित्रों का निर्माण करें, जिनसे पाठकों को चिरन्तन स्फूर्ति, आनन्द उत्साह और दीप्ति की प्रेरणा हो।[1]

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों की जीवन-व्याख्या अभी सन्तुलित नहीं कही जा सकती। सम्भवतः यह इसलिए कि उसमें प्रचार का प्रयोजन अभिव्यक्त हुआ है, मानव की गरिमा नहीं।

गांधी जी के नेतृत्व में राष्ट्रीय आन्दोलनों ने भारतीय जीवन में और प्रथम महायुद्ध के समय रूसी लाल क्रान्ति ने रूसी जीवन में विचारों की क्रान्ति की। इनके अपने स्वरूप थे —एक थी अहिंसक क्रान्ति और दूसरी हिंसात्मक। इनके कारण बौद्धिक चेतना का विस्तार मिला। ज्ञान के नये आयामों की उपलब्धि हुई और जीवन में नये मूल्य स्थापित हुए। इन राजनीतिक सिद्धान्तों की जिसकी विवेचन परिच्छेद में विस्तृत चर्चा की जा चुकी है, हिन्दी उपन्यास साहित्य को गांधीवाद और जनवादी मान्यताओं की मनःचेतना से अनुप्राणित किया। किन्तु इस राजनीतिक साधना ने यथार्थोन्मुख होने से मानवीय मूल्यों को जो स्थान मिला वह सीमित रहा। इस तथ्य की उपेक्षा हुई कि मानवीय वास्तविकता ही कला का आधार है, जिसका आधार पाकर सौन्दर्य की भावना व्यापक होती है।

मानव-मूल्य की मान्यता

सन् १९५६ में अमृतसर साहित्यकार परिषद् में साहित्यकार के दायित्वों पर विचार करते हुए आचार्य विनोबा भावे ने कहा था कि जीवन में जिन अवांछनीय मूल्यों की प्रतिष्ठा हो गयी है, जैसे सत्ता, धन आदि उनको वहाँ से हटाकर जीवन का जो सर्वश्रेष्ठ मूल्य-सत्य है—उसकी प्रस्थापना करना। उसी प्रकार न्याय, समता, मानवता आदि मूल्यों की भी प्रतिष्ठा बढ़नी चाहिए। यानी योग्य स्थान मिलना चाहिए।' सत्य तो यह है कि प्रस्थापित मानव मूल्य और जीवन-दर्शन ही किसी उपन्यास को कालजयी बनाते हैं। साहित्य की व्याख्या करते हुए उसे सहितानाम् भाव साहित्यम्' बनाया गया है। स्पष्ट है कि दोनों स्थितियों में उसका दायित्व मानवता का प्रसार करना है। हम यह मानते हैं कि साहित्य युगसापेक्ष होता है किन्तु संस्कारगत नैतिकता को भी उससे पृथक् नहीं किया जा सकता।

साहित्य का उद्देश्य मानवता का उन्नयन है। यह लक्ष्य युग-सापेक्ष नहीं है। उसका लक्ष्य तो मानव-मानव में सम्यक् रूप से विकास लाना होता है। वह मानव

१ पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी - हिन्दी कथा-साहित्य, पृष्ठ २२०

मूल्यों की आधारशिला पर मुक्त चिन्तन कर मानवीय एकता का प्रसार करता है। इसीलिए कहा गया है कि उपन्यासकार को चाहिए कि वह मानव-अस्तित्व की गहराई में उतर कर उसकी रक्त-शिराओं में चलने वाले भय और साहस के द्वन्द्व को पहचाने। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का भी कथन है कि 'समूची मनुष्यता जिससे लाभान्वित हो, एक जाति दूसरी जाति से घृणा न करके पास लाने का प्रयत्न करे, कोई किसी का आश्रित न हो, कोई किसी से वंचित न हो, इस महान् उद्देश्य से ही हमारा साहित्य प्राणोदित होना चाहिए।'[1]

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों में मानव-मूल्य विशिष्ट राजनीतिक सिद्धान्तों को लेकर स्थापित हुए हैं। अतः उनमें व्यापकता का अभाव है। अखिल भारतीय मराठी साहित्य सम्मेलन के ३२ वें अधिवेशन (जून १९६४) में नारायण देसाई ने मार्क्सवादी दृष्टिकोण से मराठी उपन्यास की निर्मम शव-परीक्षा करते हुए कहा था कि सामाजिक सन्दर्भ, मानव-मूल्य तथा ऐतिहासिकता के बोध के अभाव में आज का उपन्यास घुटन, कुंठा, बौद्धिक विलास एवं प्रयोगों के चमत्कार का प्रदर्शन बन कर रह गया है।

वाद सापेक्ष हिन्दी राजनीतिक उपन्यासों में अधिकांश समाजवादी-यथार्थवाद से अनुप्राणित है। समाजवादी यथार्थवाद सामाजिक विषमताओं के मूल कारण को पहचान कर उन्हें विनष्ट करने का प्रतिक्रियात्मक हल प्रस्तुत करता है। वह ऐसे उपेक्षित निम्न श्रेणी के समाज का चित्र प्रस्तुत करता है, जो अपनी विषम सामाजिक परिस्थितियों से संघर्ष कर रहे हों। वस्तुतः समाजवादी यथार्थवाद की मूल वस्तु है वर्ग-संघर्ष। शोषित दीन-हीनों की वर्ग-चेतना का जागरण और शक्ति-संचय उस युग का स्वप्न है, जब कोई शोषक न रहेगा, सब समान हो जायेंगे, सब मिलकर परिश्रम करेंगे और सब मिलकर उपभोग करेंगे। इसमें सामाजिक धरातल पर व्यक्ति की उपेक्षा हो जाती है और गतिशीलता जीवन-स्रोत से निःसृत न होकर केवल कुछ बने-बनाये सम्भवतः उपयोगी नियमों के अन्ध पर्वर्तन में भटक जाती है। इस प्रक्रिया से शाश्वत मानव-मूल्य भी अपना महत्व खो बैठते हैं।

राजनीतिक भाव-भूमि के परिप्रेक्ष्य में समाज के विभिन्न स्तरों व मानव को देखा गया। परिणामतः मानव-मूल्य राजनीतिक दृष्टि से निर्धारित हुए और उन्हें सर्वमान्य या शाश्वत नहीं कहा जा सकता। वाद की आवश्यकता तभी है जब हम मानव-जीवन के प्रति आस्थावान हों और संघर्ष सिद्धांतों, आदर्शों और जीवन-विधियों की टकराहट न्याय और औचित्य के हेतु हो। दृष्टि वस्तु-परक प्रयोजन तक सीमित न हो, अपितु

---

१ आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी : अशोक के फूल, पृष्ठ १४६

दृष्टि विस्तृत, अनुभूति गहरी और सकल्पशक्ति प्रखर हो। मानवत्व का विरोध न होकर उसके अतिचार का प्रतिरोध हो।

इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि राजनीतिक उपन्यासो का क्षेत्र अभी सकुचित है। उनका कल्पना-जगत परिमित है और उनके पात्र जीवन की अत्यन्त क्षुद्र परिधि के भीतर समाविष्ट हो जाते हैं।

आभिजात्य से सामान्य की ओर

हिन्दी के आरम्भिक उपन्यास-साहित्य मे आभिजात्य का अत्यधिक प्रभाव परिलक्षित होता है, जो सम्भवत तात्कालिक भारतीय राजनीति मे साम्राज्यवाद और सामन्तवाद की प्रधानता का प्रतिफलन है। राष्ट्रीय आन्दोलन के गतिशील होने पर सामन्तवादी प्रवृत्तियो पर आघात किये जाने लगे और इस प्रक्रिया से सामान्य जनता को महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करने के कारण गौरव प्राप्त हुआ। सोवियत रूस मे लाल क्रान्ति होने और उसमे शोषितो की सफलता से उसका अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाव पडा। भारत की खेतिहर जनता भी इस प्रभाव से अछूती न रही। इतना होने पर भी प्रेमचन्द-युगीन उपन्यासो मे, जिसमे प्रेमचन्द के उपन्यास भी सम्मिलित हैं, अभिजात पात्रो का अस्तित्व बना रहा। प्रेमचन्द के अभिजात पात्रो मे सहानुभूतिक दृष्टिकोण गाँधीवादी नैतिक सुधारवाद के रूप म है। वे आभिजात्य प्रवृत्ति से 'गोदान' मे मुक्त हो सके और होरी के रूप मे सामान्य जन का प्रतिष्ठापन हुआ। इस परिवर्तन मे गाँधी जी के नेतृत्व में चलने वाले जनान्दोलन और हरिजनोद्धार का योगदान प्रमुख है। प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य मे आभिजात्य की उपेक्षा होने लगी। उपन्यास यथार्थ की भूमिका पर आया और उसका प्रेरणा स्रोत सामान्य व्यक्तित्व और उसकी समस्याएँ बनी। प्रगतिशील साहित्य की प्रेरक शक्ति के रूप मे समाजवादी यथार्थवादी प्रवृत्ति प्रोत्साहित हुई और आभिजात्य का रहा सहा मोह भी नष्ट हो गया। हिन्दी के उपन्यास, जो समाजवादी यथार्थवादी भूमिका पर विरचित हुए है, अभिजात पात्रो से दूर है। नागार्जुन, रांगेय राघव, भैरवप्रसाद गुप्त,अमृतराय आदि के प्राय समस्त उपन्यासो मे विशिष्ट राजनीतिक मतवाद के कारण आभि-जात्य वर्ग की भर्त्सना की गयी और सामान्य को गौरव दिया गय । ये उपन्यास मूलत. सामाजिक और समाजवादी हैं और इनके पात्र मतवाद से सचालित होने के कारण अपने स्वतत्र व्यक्तित्व का विकास नही कर पाते। सामाजिकता के अत्यधिक आग्रह के कारण पात्र उदात्त नही हैं और विशिष्ट राजनीतिक सिद्धान्त से सचालित है।

क्रांति की प्रेरणा

साहित्य का मूलाधर सर्जन मे है। इसी नाते तात्विक समन्वय की स्फूर्ति उसके

भीतर होती है। यही कारण है कि आधुनिक समाजवाद और कम्युनिज्म का आधार भले ही कार्ल मार्क्स के द्वारा निर्धारित किये गये सिद्धान्तो मे पाया जाय, किन्तु अपनी प्रत्यक्ष वास्तविकता के लिए इसे सदा लेलिन, ट्राटस्की और गोर्की की लेखनी का ऋण मानना ही पड़ेगा। यह सब सही, लेकिन ससार की महाभयकर आँधियों के उठाने मे हृदय को कँपा देने वाले तोड़फोड़ के साहित्य की भी एक प्रेरणा थी निर्माण। नव निर्माण की यह प्रेरणा ही क्रान्ति की प्रेरणा है, जो हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासो मे सर्जन और निर्माण के अन्तर्द्वन्द्व से आन्तरिक समन्वय को बल देती है। राजनीतिक उपन्यास सामाजिक न्याय का बोध कराते हुए शासन और समाज की असगतियो के विरुद्ध क्रान्ति की प्रेरणा देते है। सच तो यह है कि कोई भी उपन्यासकार देश और काल की सर्वथा उपेक्षा नही कर सकता और समाज की गति के अनुसार ही उसके साहित्य का रूप परिवर्तित होता रहता है। तदनुसार हो उपन्यास मे आधुनिक युग का प्रभाव लक्षित होता है। इन उपन्यासो मे क्रान्ति का जो स्वरूप अकित हुआ है, उसका लक्ष्य मानवता ही है, भले ही वह किसी राजनीतिक सिद्धान्त से ही प्राप्त किया जा सकता हो।

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासो मे क्रान्ति की प्रेरणा मुख्यतया समाजवादी यथार्थवादी आधार-पीठिका पर है। भारतीय राजनीति मे मार्क्सवाद अभी भी ऊपरी सतह पर ही है और भारतीय मानस को विशेष प्रभावित न कर सका है। सच तो यह है कि साम्यवाद के सिद्धान्त भारतीय सस्कृति से आपूर मानव-मन के भीतर अभी तक पैठ न सके है। यही कारण है कि समाजवादी यथार्थवादी उपन्यासो मे जिन सामाजिक क्रान्तियो का अकन किया गया है, वह वास्तविक न होकर सैद्धान्तिक ही है, जो पाठकों पर अपेक्षित प्रभाव डालने मे असमर्थ सिद्ध होता है। उदाहरणार्थ स्वातन्त्र्योत्तर राजनीतिक उपन्यासो मे सामन्तवादी विचारधारा के विरोध हेतु किसान-जमींदार का वर्ग-सघर्ष जनतान्त्रिक भारत मे कोई मूल्य नही रखता। यह तो अब बीते युग की गाथा ही कही जा सकती है। इस दृष्टि से नागार्जुन का 'वरुण के बेटे' या 'उग्रतारा' अवश्य महत्वपूर्ण कहे जा सकते है, जो नयी दिशाओ की ओर मार्क्सवादी दृष्टि से इगित करते है। गाँधीवादी प्रभाव से युक्त राजनीतिक उपन्यास मूलत भारतीय परिस्थितियो के अनुरूप होने के कारण अपेक्षाकृत अधिक स्वाभाविक है। इनमे हरिजनोद्धार, हिन्दू-मुस्लिम एकता, राष्ट्रीय भाषा, प्रेम जैसे प्रश्नो को उठाकर जिस सामाजिक क्रान्ति का चित्रण किया गया है, वह यथार्थ के अधिक निकट है। कांग्रेस के नेतृत्व मे राष्ट्रीय आन्दोलनो ने जन जीवन मे जागृति के जिस स्वरूप को उपस्थित किया, उसने समस्त सामाजिक वातावरण को प्रभावित किया। उसकी महत्वपूर्ण उपलब्धि विचार-स्वातंत्र्य की क्षमता है, जो सामाजिक असगतियों को 'नीर क्षीर' विवेक से देखना चाहती है।

वर्तमान सामाजिक स्थिति और शासन-नीति के प्रति क्षुब्ध भाव भी क्रांति का मार्ग प्रशस्त करते है। शांतिप्रिय द्विवेदी के 'दिगम्बर' का एक उदाहरण देखिए—'मध्य युग को सामन्तवादी कहा जाता था, आधुनिक युग को साम्राज्यवादी और पूँजीवादी। तो क्या राष्ट्रीय आन्दोलन मे जो लोग गांधी के पीछे पीछे चले, वे इस युग की शोषित पीडित जनता या दुख दैन्य से द्रवित होकर सार्वजनिक क्षेत्र म आये थे ? नहीं, वे तो गांधी को ढाल बनाकर जनता के सत्व के नाम पर प्रभुता से अपने अपने अधिकारो का सघर्ष कर रहे थे। इस सघर्ष मे बलिदान गांधी का ही हो गया, वरदान उन्हे मिल गया। अब स्वय सत्तारूढ होकर व उन्ही साम्राज्यवादी और पूँजीवादी सुविधाओ का उपभोग कर रहे है—जिनका वे भी विरोध कर रहे थे। स्पष्ट है कि लेखक वर्ग सघर्ष को प्रोत्साहित न करते हुए जीवन के सत्य का प्रस्तुत कर क्राति की प्रेरणा ही देता है। बख्शी जी ने एक स्थल पर सत्य ही लिखा है कि जो कला जनता के जीवन म नव प्रेरणा नहीं द सकती, वह चिरन्तन सौन्दर्य की निष्प्राण प्रतिमा का तरह व्यर्थ रहती है।

व्यक्ति और समाज के परिवर्तित सम्बन्ध

व्यक्ति समाज की इकाई है और समाज राजनीति का अंग है। उपन्यास जीवन की व्याख्या है और इस रूप म समाज का महाकाव्य। इस तरह राजनीति व्यक्ति और उपन्यास, दोनो का स्वतन्त्र रूप से बढने देने म बाधक है। स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासो म राजनीतिक 'टच' का प्रमुख कारण राष्ट्रीय जीवन म राजनीति का प्राधान्य ही है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का यह कथन उचित ही है कि स्वराज्य मिलने के पश्चात् देश मे सहसा राजनीतिक शक्ति का इतना प्राधान्य हो गया कि उसने सामाजिक जीवन के अन्य उदीयमान पक्षो का स्वतन्त्र रीति से बढने नहीं दिया। सामाजिक जीवन की विविध दिशाओ म जो कुछ कार्य हो, वह राजनीति का 'स्टैम्प' लगा कर ही हो इस सर्वग्रासिनी वृत्ति ने राष्ट्रीय जीवन को एकागी बना दिया है।'[1]

द्वितीय महायुद्ध से उत्पन्न सकटकालीन स्थिति म सामाजिक दुर्व्यवस्था अपनी चरम सीमा पर पहुँच गयी और सामान्य व्यक्ति अभावो की आंधी म उखड गया। उनके विद्रोह का साहित्यकारों न वाणी दी और इसी सामाजिक आधार पर साहित्य राजनीति से आलिंगन करने लगा। मार्क्सवाद ने मार्ग प्रशस्त किया और अनेक उपन्यास लेखको ने व्यक्ति को सामाजिक और राष्ट्रीय स्तर की विविध समस्याओ व राजनीतिक परिप्रेक्ष म रखा।

---

१ आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी आधुनिक काव्य-रचना और विचार, पृष्ठ ७

मार्क्सवाद ने बताया कि सामाजिक सहयोग के आधार पर मनुष्य अपनी समस्त परिस्थितियों का पूर्णतया सचेतन नियन्त्रण करे, वह निसर्ग की दया पर निर्भर न रहे, या आकस्मिक संयोग और घटनाएँ ही उसका भाग्यनिर्णय न करें, किन्तु अपने भाग्य का नियन्ता स्वयं मनुष्य ही बने। इस सिद्धांत के अनुसार यह परिणति वर्गहीन समाज के सहयोग की भूमि पर ही सम्भव है।

इन नव्य विचारधारा ने हिन्दी के उपन्यास-साहित्य को प्रभावित किया और संघर्ष की भूमिका निर्मित की। सामाजिक रीति-नीति-व्यवस्था को लेकर प्राचीन नैतिक व्यवस्था के विरोध में एक उग्र विरोध भावना सामने आयी। राजनीतिक क्षेत्र में यह विप्लव की संचालिका बनी। हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों में यह विद्रोह-भावना समाज के प्रचलित नीति-व्यवस्था के प्रति है और शासन की व्यवस्था के प्रति भी।

यह ठीक ही कहा गया है कि आधुनिक युग में क्रांति की जो भावना फैल रही है, उसके मूल में आदर्शों का संघर्ष ही काम कर रहा है। भिन्न भिन्न युगों में नये-नये आदर्शों का निर्माण होता रहा है। उन्हीं आदर्शों के द्वारा जातीय जीवन के स्वच्छंद विकास में अवरोधों को दूर करने का प्रयास किया जाता है। आदर्शों में मनुष्यत्व का चरम उत्कर्ष प्रदर्शित होता है। ज्यों ही जाति के भीतर उत्कर्ष की यह भावना निश्चेष्ट हो जाती है, त्यों ही जनता में क्रांति की भावना उत्पन्न हो जाती है। जनता की यह क्रांति जनता की ही भाषा में प्रकट होती है।

समाजवादी यथार्थवादी हिन्दी उपन्यासों में जिस सामाजिक क्रांति का चित्रण मिलता है, वह पूर्णतया वास्तविक नहीं है। मतवाद के अनुकूल उपन्यास रचना के कारण वह आरोपित सा प्रतीत होता है। यह सच है कि जनसाधारण वर्तमान शासन-व्यवस्था से पूर्णतया सन्तुष्ट नहीं है, उसमें उसके प्रति विक्षोभ भी है, किन्तु वह इतना विस्फोटक नहीं है, जैसा कि चित्रित किया जाता है। इसका मूल कारण हमारी संस्कृति और लोकतन्त्रात्मक शासन है, जो परिस्थिति के अनुसार लोकतन्त्रात्मक समाजवाद की दिशा में अग्रसर हो रहा है।

आत्म कल्याण को प्रधानता देकर भारत ने जिस सामाजिक व्यवस्था की रचना की, उसके कारण वह एक दिशा में अग्रसर होता रहा। धर्म, अर्थ और काम, तीनों को पुरुषार्थ मानकर भी उसने मोक्ष को स्वीकार किया। जहाँ सभी बन्धनों का लोप हो जाता है, वहाँ व्यक्ति को सच्ची मुक्ति प्राप्त होती है। राजनीति के क्षेत्र में जनतन्त्र के द्वारा जो शासन-व्यवस्था निर्मित की जाती है, उसके मूल में भी यही भावना काम करती है कि सभी व्यक्तियों को अपने व्यक्तिगत विकास के लिए पूर्ण अवसर प्राप्त हो

और उसी के साथ व्यक्तिगत संघर्ष को दूर करने के लिए राष्ट्र की उन्नति म व्यक्ति की उन्नति का समावेश किया जाय।[1]

यथार्थ और स्वानुभूत दर्शन

कहा गया है कि रचना प्रक्रिया वस्तुत कलाकार का अभ्यंतर सत्य है वस्तु परक तथ्य नहीं। राज्य-सत्ता, समाज-व्यवस्था का प्रतीक होती है, पर वही आवरण म मतवाद, नीतिपरकता या अपनी अस्तित्व रक्षा के प्रयत्नों के कारण बनती है और उसका निर्देशन भी रचनाकार को प्राय स्वीकृत नहीं होता। शासन या राजनीतिक पार्टी के निर्देशन म वास्तविक साहित्य की रचना की ही नहीं जा सकती, क्योंकि रचनाकार की अपनी स्वतन्त्रता ही उस परिस्थिति म खत्म हो जाती है।'[2] उपर्युक्त कथन म यथार्थ और स्वानुभूत दर्शन का महत्व ही स्पष्ट हो जाता है। यथार्थवाद का विकास जनतन्त्र के सिद्धान्तों के प्रसार के साथ हुआ है। इस नूतन दृष्टिकोण का ग्रहण कर, जीवन म जो यथार्थता है उसी के आधार पर सत्य की समीक्षा होने लगी। यथार्थ के इसी परिवेश म किसी भी युग म जो विचारधारा प्रवर्तित होती है, उसका प्रचार सामयिक साहित्य के द्वारा ही होता है। वेब्सन का कथन है कि सामयिक साहित्य म समकालीन लोगों की जीवन गाथाएँ विशेष महत्वपूर्ण होती हैं, क्योंकि उन्हीं से पाठकों को अपने युग की भिन्न भिन्न विचारधाराओं का ज्ञान हो जाता है। उपन्यास सही अर्थों म जनता का साहित्य है और जीवन की यथार्थता के साथ उपन्यासकार के स्वानुभूत दर्शन का आकलन भी।

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों म यथार्थ का आग्रह प्रबल है। यह बात पृथक् है कि यह यथार्थ लेखक की राजनीतिक दृष्टि से कभी-कभी एकपक्षीय हो जाय। यह सत्य ही कहा गया है कि समाज की जो स्थिति होती है और देश की जो समस्या होती है, उसके द्वारा किसी भी व्यक्ति के जीवन की गति एक सीमा तक अवश्य निर्दिष्ट होती है। कोई भी व्यक्ति अपने देश, समाज अथवा युग की उपेक्षा नहीं कर सकता।

हिन्दी के समाजवादी यथार्थवादी उपन्यासों म जिस यथार्थ का चित्रण मिलता है, वह विशिष्ट मतवाद को लेकर ही है। कभी-कभी तो यह केवल राजनीतिक यथार्थ के रूप म देश और काल की सीमा को लाँघ कर अयथार्थ सा हो जाता है। ऐसी स्थिति म लेखक मात्र द्वन्द्वशास्त्री बनकर अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेता है।

---

१ पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी हिन्दी कथा साहित्य, पृष्ठ ८९

२ डॉ० कमलाकान्त पाठक 'नवभारत,' दीपावली विशेषांक, पृष्ठ ३९

पुनर्निर्माण सम्बन्धी दृष्टिकोण

साहित्यकार का प्राथमिक कर्तव्य देश के प्रति होता है। राष्ट्र और व्यक्ति का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। राष्ट्रीय सुरक्षा, पुष्टि और समृद्धि में व्यक्ति और पार्टी की सुरक्षा, पुष्टि और समृद्धि है। साहित्य में सहित का भाव निहित है। सहित के दो अर्थ है— एकत्र होना और हित के साथ होना। इस अर्थ में निर्माण और हित-साधन साहित्यकार का कर्तव्य हो जाता है। श्रीनारायण अग्निहोत्री के मतानुसार 'जिन दो प्रमुख माध्यमों के द्वारा साहित्य अपने को मानव-जीवन से सामान्य रूप से तथा युगविशेष के जीवन से विशिष्ट रूप से सम्बन्धित रखता है, वे हैं समाचारपत्र तथा उपन्यास। ....उपन्यास समाचारपत्र का रूपान्तर कर नवीन साहित्यिक सृष्टि के रूप में प्रस्तुत करता है।'[1] अतः यह कहा जा सकता है कि उपन्यास बाह्य स्थितियों का विश्लेषण करते हुए निर्माण की भूमिका बनाता है। इसके लिए वह मानव-सम्बन्धों में साम्यमयी स्थिति लाने का सहेतुक प्रयत्न करता है।

हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासों में मतवाद विशेष के प्रतिपादन के कारण निर्माण की इस प्रक्रिया में विभेद दिखलायी पड़ता है। समाजवादी यथार्थवादी उपन्यासों में वर्ग-संघर्ष को प्रोत्साहित कर जिस भावी समाज के निर्माण की ओर इंगित किया जाता है, वह वर्तमान के राष्ट्रीय निर्माण का बाधक बन जाता है। वर्ग संघर्ष की स्थिति का चित्रण उत्तेजना का कारण होता है और वो वर्गों में कटुता को, दूसरे शब्दों में हिंसात्मक प्रवृत्ति को जन्म देती है। देश में आये दिन होने वाली हड़तालों से जो राष्ट्रीय अहित हो रहा है, वह किसी से छुपा हुआ नहीं है।

राजनीतिक उपन्यासों में राष्ट्रीय नेताओं एवं राजनीतिक दलों की कटु आलोचना करने की प्रवृत्ति भी मिलती है। समाजवादी यथार्थवादी उपन्यासों में कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यों को उचित सिद्ध करने के लिए कांग्रेस और उसके नेताओं को अत्यन्त हेय दृष्टि से चित्रित किया गया, जो कभी-कभी ऐतिहासिक तथ्यों के विपरीत भी जाता है। गुरुदत्त के प्रायः सभी उपन्यासों में कांग्रेस के साथ कम्युनिस्टों की नीतियों पर कटु प्रहार किया गया है। गुरुदत्त के उपन्यासों का मूल स्वर हिन्दुत्ववादी है और प्राचीन भारतीय संस्कृति से आप्लावित है। उपन्यासों की यह प्रवृत्ति श्रेयस्कर नहीं, क्योंकि यह राष्ट्रीय एकता के मार्ग को अवरुद्ध करती है।

हम आलोचना करने के विरोधी नहीं हैं। किन्तु यह अवश्य चाहते हैं कि आलोचना उस शालीनता के साथ हो, जो साहित्यकार का लक्षण है। गुलाब राय ने सत्य ही लिखा है : 'शालीनता साहित्यकार का मुख्य लक्षण है। वह आलोचना में

---

१. श्रीनारायण अग्निहोत्री : उपन्यास तत्व एवं रूप विधान, पृष्ठ २६५

कटुता और तिरस्कार की भावना को न आने दे। वह दूसरों की असफलताओं पर प्रसन्न न हो और न गर्वोल्लास का अनुभव करे। नहीं तो वह अशान्ति फैलाने के लिए स्वयं दोषी हो जायगा। देश उन्नायकों के प्रति घृणा या तिरस्कार की भावना पैदा करना अनुशासन हीनता उत्पन्न करना है। साहित्यकार को न्याय का पल्ला नहीं छोड़ना चाहिए। अभावों, न्यूनताओं और असफलताओं के साथ उपलब्धियों और मार्ग की कठिनाइयों का भी ध्यान रखना चाहिए। उनकी उपेक्षा करना अन्याय होगा।' वस्तुतः पुनर्निर्माण की भावना जाग्रत करने का यही मार्ग है।

स्वाधीनता-प्राप्ति के उपन्यास भारत-निर्माण-पथ पर बढ़ रहे हैं। विगत दो दशकों की अवधि को पुनर्निर्माण-काल कहा जा सकता है। रूसी साहित्य में पुनर्निर्माण सम्बन्धी उपन्यासों की रचना ने विश्व-साहित्य को एक नयी दिशा दी है। ग्लादकोव का 'शक्ति' वालन्तीन कतयेव का 'आगे बढ़ो, समय!' पिलनियाक का 'वोल्गा कैस्पियन की ओर बहती है,' शोलोखोव का 'नयी जुती जमीन' ऐसे ही उपन्यास हैं, जिनमें रूस की पंचवर्षीय योजना और पुनर्निर्माण का ज्ञानवर्धक चित्रण है, यों इनकी आधार-भूमि द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद ही है।

हिन्दी में इस तरह के उपन्यासों का अभाव है। कुछ उपन्यासों में संक्षिप्त चर्चा अवश्य मिलती है, किन्तु उसमें राष्ट्रीय रूप सामने नहीं आ पाता। इस दृष्टि से रेणु का 'परती : परिकथा' अधिक सफल है।

शैक्षणिक मूल्य

साहित्य की अन्य विधाओं के सदृश राजनीतिक उपन्यासों का भी एक विशिष्ट मूल्य है। वह पाठकों के राजनीतिक ज्ञान में अभिवृद्धि करता है और राजनीतिक की असंगतियों का परिष्कार करता है। वाद निरपेक्ष राजनीतिक उपन्यास समसामयिक घटनाओं और उनके कारण बदलते हुए जीवन का कलात्मक इतिहास होता है। इति-हासकार की तथ्यसंकलन वृत्ति की नीरसता का उसमें अभाव रहता है। वाद सापेक्ष राजनीतिक उपन्यासों में राजनीतिक विचारधाराओं का प्रचारात्मक स्वरूप रहता है जो उपन्यास के माध्यम से जनमन को जाग्रत करने का कार्य करता है।

हिन्दी में वाद-सापेक्ष राजनीतिक उपन्यास मार्क्सवाद की देन हैं। वर्तमान रूसी उपन्यास साहित्य ही उनका आधारभूत आदर्श रहा है, जो शिक्षा, प्रचार या सैद्धान्तिक विवेचन को उपन्यास का अंग बनाकर विकसित हो रहा है। मार्क्सवाद से प्रभावित ये उपन्यास समाजवादी यथार्थवादी धरातल पर व्यक्ति या समाज के विश्लेषण के स्थान पर सामाजिक स्थितियों तथा सामान्य वैयक्तिक विशेषताओं तक ही सीमित हैं। रूसी उपन्यास-साहित्य के बारे में डॉ० नगेन्द्र का कथन है कि 'भौतिकवाद से

प्रभावित समाजवादी यथार्थवादी उपन्यासो का विशेष गुण उनका शिक्षण-मूल्य है। अन्य किसी भी धारा के उपन्यासो मे तत्कालीन देशीय स्थितियो को, उसके व्यवसाय, विज्ञान, व्यापार, शिक्षा आदि मे होने वाली प्रगति को इतनी सफलता से नहीं दिखाया गया है जितनी सफलता से समाजवादी यथार्थवादी उपन्यासो मे।'[1] हिन्दी के समाजवादी यथार्थवादी उपन्यास अभी इस दृष्टि से प्रगति-पथ पर हैं और उन्हे कई मंजिलें पार करनी हैं। अभी तो उन्होने मार्क्सवाद के वर्ग-संघर्ष पर ही अपना ध्यान केन्द्रित कर अराजकता को ही प्रश्रय दिया है। स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासो मे अधिकाशत जमींदार किसान का संघर्ष चित्रित किया गया है, जो रजवाडो, जमींदारो के उन्मूलन के बाद विशेष शैक्षणिक महत्व नहीं रखता।

दूसरे शब्दो मे शैक्षणिक मूल्य की दृष्टि से ये उपन्यास शिथिल है।

सम्भावनाएँ

विगत तीन दशाब्दियो मे हिन्दी के राजनीतिक उपन्यासो की प्रगति महत्त्वपूर्ण रही है और उसने विभिन्न सामयिक घटनाओ और राजनीतिक विचारधाराओ को ग्रहण कर अपना मार्ग प्रशस्त किया है और इस रूप मे उसका भविष्य आशामय होता जा रहा है। राजनीतिक उपन्यासो के अनुशीलन से इस तथ्य का ज्ञान होता है कि वे उपदेशात्मक औपन्यासिक परम्परा से शक्ति संचय कर सामाजिक वृत्ति और राजनीतिक उन्नयन की भावना से पुष्ट हो जन-साधारण को समय की बदलती हुई परिस्थिति से परिचित एव जाग्रत कराने की दिशा मे अग्रसर है। सिद्धान्त-प्रचार के उद्देश्य की प्रबलता से रसमयता के अभाव होने पर भी वे ज्ञान—विशेषत. राजनीतिक ज्ञान के नये आयामो से परिचित कराने मे समर्थ सिद्ध हुए है।

राजनीतिक उपन्यास का क्षेत्र व्यापक है और राल्फ फाक्स के शब्दो मे कहा जा सकता है कि 'क्रान्तिकारी उपन्यास का क्षेत्र इतना व्यापक है कि उसमे हर मानव-चरित्र, हर भाव, व्यक्तियो का प्रत्येक द्वन्द्व आ जाता है—कुछ भी उससे बाहर नहीं है।.. क्रांतिकारी के लिए अतीत की विरासत मे जो कुछ भी प्राणवान् और आशापूर्ण है, वह भी स्वीकार्य है, और भविष्य के निर्माण के लिए वर्तमान मे जो कुछ भी उपयोगी है, उसे भी वह अंगीकार करता है।'[2]

यह सच है कि व्यक्ति ही वर्तमान समाज की सबसे बडी समस्या है और विश्व की प्रत्येक हलचल के मूल मे व्यक्ति की ही समस्या है। राजनीति का आधार भी

---

१. डॉ० गणेशन : हिन्दी उपन्यास-साहित्य का अध्ययन, पृष्ठ ४१६

२. राल्फ फाक्स . उपन्यास और लोक जीवन, पृष्ठ १०८

व्यक्ति ही है और स्वाधीनता, समता और सौहार्द्र ही उसके लिए व्यक्तित्व के विकास का आदर्श है। विज्ञान की प्रगति के कारण विश्व के प्रत्येक भाग के मानव की समस्याएँ एक सा स्वरूप ग्रहण कर रही हैं। इस सन्दर्भ मे पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी का कथन भी विचारणीय है 'सचमुच ससार की सबसे बडी पहेली है एक व्यक्ति का व्यक्तित्व और ससार की सबसे बडी समस्या है व्यक्तित्व की समस्या। एक स्थान मे व्यक्ति सबसे पृथक् होकर अपने व्यक्तित्व की रक्षा के लिए सचेष्ट रहता है और दूसरे स्थान मे परिवार, समाज, जाति और राष्ट्र में सम्मिलित होकर सभी के साथ वह ऐसा सम्बद्ध हो जाता है कि किसी भी स्थिति मे वह अपने को पृथक् नही कर सकता।"[1] राजनीति की इसी अनैतिकता की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए, सन् १९५० मे नोबुल पुरस्कार सम्मान ग्रहण करते हुए विख्यात मनीषी बरट्रेण्ड रसैल ने कहा था कि 'वर्तमान राजनीति और राजनीति शास्त्र म मानव मन के तथ्यो और सत्यो का जितना चाहिए, उतना ध्यान नहीं रखा जाता। इसी का परिणाम ये सब कही आये दिन की निराशाएँ हैं। राजनीति का रूप यदि वास्तव म वैज्ञानिक होना है, और राजनीतिक घटनाओ का भाव यदि ऐसा अपेक्षित है कि वे घटें और कही कोई चौंके नही, तो यह नितान्त आवश्यक है कि हमारा इस दिशा का सारा चिन्तन मनुष्य के आचरण-व्यवहार के मूल स्रोतो की गहराइयो तक पहुँचा हुआ हो।'

इस दृष्टिकोण से कहा जा सकता है कि मानव-कल्याण को प्रधानता देकर भारत ने जिस सामाजिक व्यवस्था की रचना की, उसके कारण वह एक दिशा में अग्रसर होता रहा।

स्वाधीनतोपरान्त भारत एक प्रजातान्त्रिक राष्ट्र से अब प्रजातान्त्रिक समाजवाद की श्रेणी पर पहुँच गया है। बीच की इस कालावधि मे राजनीतिक उपन्यासो ने महत्वपूर्ण भूमिका अभिनीत की है। वह प्रजातत्र के अनुरूप रही है। प्रजातत्र की रीढ जनमत है और इसम प्रत्येक दल या नागरिक को यह अधिकार प्राप्त है कि वही शासकीय दल की नीतियो की न केवल निर्भीक आलोचना करे, अपितु चाहे तो जनमत को प्रभावित कर उसे बदल भी डाले। इसके लिए जो मत प्रचार होता है या मत-वैभिन्न प्रदर्शित किया जाता है, वह स्वस्थ प्रजातत्र का आवश्यक अग माना गया है। इस दृष्टि से प्रजातत्र समूहवाची न होकर मानववादी राज्य-व्यवस्था है जो व्यक्ति और उसकी वाणी के स्वातन्त्र्य का प्रतिष्ठापन करती है। इधर भुवनेश्वर कांग्रेस अधिवेशन में जिस लोकतान्त्रिक समाजवाद को लक्ष्य निर्धारित किया गया है, उससे भावी राज नीतिक उपन्यासो को जो दिशा मिलेगी, वह प्रेरणादायक होगी। लोकतान्त्रिक समाजवाद वस्तुत प्रजातत्र और साम्यवाद के अतिशयो के बीच से निकाला गया मध्य मार्ग

१ साप्ताहिक हिन्दुस्तान, नयी दिल्ली, अक २२ मार्च १९६४, पृष्ठ १९

है। भारतीय सांस्कृतिक परम्परा की पृष्ठभूमि में स्वीकृत प्रजातन्त्र सिद्धान्ततः समाजवादी यथार्थवादी साहित्य को स्वकृति नहीं दे सकता था। किन्तु लोकतान्त्रिक समाजवाद में दोनों की विशेषताओं का आकलन हो जाने से साहित्य में समाजवाद की व्यवहारिक उपयोगिता और प्रजातन्त्र की मानववादी प्रवृत्तियाँ एक स्तर पर आकर मिल सकेंगी। इस रूप में भावी राजनीतिक उपन्यास जनजीवन से स्फूर्ति ग्रहण कर मानवतावादी दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करेगा। लोकतान्त्रिक समाजवाद में नैतिक आग्रह के आधार पर मानवीय समानता के विकास से सामाजिक एवं आर्थिक विषमताओं का उन्मूलन हो सकेगा। इसके लिए समाज में तदनुकूल वातावरण निर्मित करने में राजनीतिक उपन्यास एक महत्वपूर्ण उपकरण होगा, जो मानवीय अधिकारों की प्रेरणा जाग्रत कर समाजवाद की मूलभूत धारणा को परिपुष्ट बनायेगा। विजयेन्द्र स्नातक ने इस सम्बन्ध में ठीक ही लिखा है 'समाजवाद के आधार-स्तम्भ समान अवसर और समानाधिकार को मानकर चलने से हम साहित्यकार के लिए इसके (लोकतान्त्रिक समाजवाद) प्रसार-प्रचार में योग देने की अनेक सम्भावनाएँ पाते हैं। मानव-विकास की दिशा में सबसे बड़ा प्रयत्न साहित्यकार ही करता है। वह बौद्धिक धरातल पर जीवन-स्पृहा को स्पष्ट करता हुआ घृणा, क्रोध, हिंसा, द्वेष, वैषम्य, विरोध स्तेय, लोभ आदि प्रवृत्तियों पर शासन करना सिखाता है। यदि साहित्यकार अपने सर्जन में समाजवाद के मूल उद्देश्यों को समाविष्ट करता रहे, तो वह किसी भी राजनीतिक नेता से छोटा सिद्ध नहीं होगा। साहित्यकार की देन राजनीतिक नेता से कहीं बड़ी और फलप्रद सिद्ध होगी।'[1]

इस स्थिति में राजनीतिक उपन्यास व्यावहारिक मानवीय धरातल पर आकर सामयिक साहित्य की श्रेणी से ऊपर उठकर जीवन-योग से निःसृत होंगे। उसमें समाज-बोध और शाश्वत साहित्य दोनों का समाहार हो सकेगा।



---

१ पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी - हिन्दी कथा-साहित्य, पृष्ठ ८६

परिशिष्ट १

स्थापित—सन् १८८८ ई०

लहरी बुक डिपो,
प्रकाशक · विक्रेता
सं० ८१

२५/१, रामकटोरा रोड,
काशी, ३-२-१९६१
श्री बृजभूषण सिंह 'आदर्श'
सागर।

मान्यवर महोदय,

कृपा कार्ड आपका ता० १-१-६१ का मिला, परन्तु उत्तर देने में इस कारण विलम्ब हुआ कि श्री दुर्गाप्रसाद खत्री जी यहाँ थे नहीं, बाहर गये हुए थे। अब उनके आने पर उनसे पूछ के आपके प्रश्नो का उत्तर दे रहे हैं।

रक्तमण्डल उपन्यास का पहिला भाग का पहिला संस्करण सन् १९२८ में हुआ था और उसका अन्तिम अर्थात् चौथा भाग १९३० में छपा। सफेद शैतान के पहिले भाग का प्रथम सस्करण १९३४ में छपा और अंतिम अर्थात् चौथा १९३७ के लगभग छपा। यह उन उपन्यासो का प्रकाशन-काल है और रचना-काल भी यही मान लेना चाहिए, क्योंकि श्री दुर्गाप्रसाद जी ने उपन्यासो को पूरा लिखकर नहीं छपवाया, बल्कि ज्यो ज्यो लिखते जाते थे, त्यो-त्यो उपन्यास छपते जाते थे। और जो कुछ हमारे योग्य सेवा हो लिखते रहें, कृपा बनाये रहें।

भवदीय,
हस्ताक्षर—अपाठ्य,
प्रबन्धक।

परिशिष्ट २

मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के पाँचवें नागपुर अधिवेशन के लिए प्रेषित महात्मा गांधी का सन्देश :

साबरमती, २५-१-१९२२

महाशय,

आपका पत्र महात्मा जी को मिला। उनकी राय मे इस राज्य-क्रांति के समय साहित्य सम्बन्धी सस्थाओ का आगामी कर्तव्य (१) राजक्रांति मे मदद दें, ऐसी किताबो का हिन्दी मे लिखा जाना, अनुवाद करके फैलाना और (२) हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का पूरा यत्न करना और उसके लिए द्रविड देश में हिन्दी शिक्षको को भेजा जाना, होना चाहिए। मद्रास मे हिन्दी प्रचार का काम हो रहा है, पर इतना बस नही।

आपका,
सुरेन्द्र

प्रति,
श्री प्रयागदत्त शुक्ल,
मन्त्री, म० प्र० हिन्दी साहित्य सम्मेलन,
सीताबर्डी, नागपुर।

परिशिष्ट ३

शोध-प्रबन्ध में विवेचित राजनीतिक एवं अंशतः राजनीतिक उपन्यास—

उपन्यासकार	उपन्यास
अज्ञेय	शेखर एक जीवनी भाग १ १९४०
	शेखर एक जीवनी भाग २ १९४४
अंचल	चढ़ती धूप १९४५
	नयी इमारत १९४७
	उल्का १९४७
अनन्तगोपाल शेवडे	ज्वालामुखी १९५६
	भग्न मन्दिर १९६०
अमृतराय	बीज १९५२
	हाथी के दांत
अमृतलाल नागर	महाकाल १९४७
	बूंद और समुद्र १९५६
अमरकान्त	सूखा पत्ता
अश्क	बड़ी-बड़ी आँखें १९५४
इलाचन्द्र जोशी	सन्यासी १९४१
	निर्वासित १९४६
	मुक्ति पथ १९५०
	जिप्सी १९५२
कमल शुक्ल	इन्सान जाग उठा
कृष्णचन्द्र भिक्खु	संक्रान्ति १९५१
	भंवरजाल १९५१
गुरुदत्त	स्वाधीनता के पथपर १९४२
	पथिक १९४३
	स्वाराज्यदान १९४८
	विश्वासघात १९५१
	देश की हत्या १९५३
	विलोमगति १९५४
	छलना १९५७
	बीती बात १९५९
	दासता के नये रूप १९५५
	भग्नाश
गोविन्ददास	इन्दुमती
चतुरसेन शास्त्री	धर्मपुत्र १९५४
	उदयास्त १९५८
	बगुले के पंख १९५८
जैनेन्द्र	सुनीता १९३५
	कल्याणी १९३९
	सुखदा १९५२
	विवर्त १९५३
	जयवर्धन १९५६
दयाशंकर मिश्र	बुझते दीप

लेखक	उपन्यास	वर्ष
दुर्गाप्रसाद खत्री	रक्तमण्डल (चार भाग)	१९२८ से ३०
	सफेद शैतान (चार भाग)	१९३४ से ३७
दुर्गाशंकर मेहता	अनबुझी प्यास	१९५०
देवेन्द्र सत्यार्थी	कठपुतली	१९५३
नागार्जुन	रतिनाथ की चाची	१९४८
	बलचनमा	१९५२
	नयी पौध	१९५३
	बाबा बटेसरनाथ	१९५४
	दुखमोचन	१९५७
	वरुण के बेटे	
	कुम्भीपाक	
	हीरक जयन्ती	
	उग्रतारा	
नित्यानन्द वात्स्यायन	केलाबाडी	१९५२
प्रतापनारायण श्रीवास्तव	बयालीस	१९४८
प्रेमचन्द	प्रेमाश्रम	१९२२
	रंगभूमि	१९२४
	कायाकल्प	१९२८
	कर्मभूमि	१९३२
	गोदान	१९३६
	मंगलसूत्र (अपूर्ण)	१९३६
फणीश्वरनाथ 'रेणु'	मैला आँचल	१९५४
	परती-परिकथा	१९५७
भगवतीचरण वर्मा	टेढ़े-मेढ़े रास्ते	१९४६
	भूले-बिसरे चित्र	१९५९
मन्मथनाथ गुप्त	रैन अँधेरी	१९५९
	रंगमंच	१९६०
	अपराजित	१९६०
	प्रतिक्रिया	१९६१
	सागर-संगम	१९६२
	जागरण	१९६३
	शिव	१९४६
महेन्द्रनाथ	आदमी और सिक्के	१९५२
	रात अँधेरी है	१९५४
यज्ञदत्त शर्मा	दो पहलू	१९४०
	इन्सान	१९५१
	अन्तिम चरण	१९५२
	निर्माण-पथ	१९५३
	बदलती राहें	१९५४
यशपाल	दादा कामरेड	१९४१
	देशद्रोही	१९४३
यशपाल	पार्टी कामरेड	१९४६
	मनुष्य के रूप	१९४९
	झूठा सच (वतन और देश)	१९५८
	झूठा सच (देश का भविष्य)	१९६०

लेखक	कृति	वर्ष
रांगेय राघव	विषाद मठ	१९४६
	हुजूर	१९५२
	सीधा-सादा रास्ता	१९५५
राधिकारमण सिंह	पुरुष और नारी	१९४०
राजेन्द्र यादव	उखड़े हुए लोग	१९५६
राहुल सांकृत्यायन	जीने के लिए	१९४०
लक्ष्मीनारायण लाल	रूपाजीवा	१९५९
लज्जाराम शर्मा मेहता	हिन्दू गृहस्थ	१९०३
	आदर्श दम्पत्ति	१९०४
विष्णु प्रभाकर	निशिकान्त	१९५५
वृन्दावनलाल वर्मा	अचल मेरा कोई	१९४८
	अमर बेल	१९५३
शुकदेव बिहारी मिश्र	स्वतन्त्र भारत	१९४९
प्रतापनारायण मिश्र		
सियारामशरण गुप्त	गोद	१९३२
	अन्तिम आकांक्षा	१९३३
	नारी	१९३७
हंसराज रहबर	कंकर	१९५३
हिमांशु श्रीवास्तव	लोहे के पंख	
छबिनाथ पाण्डे	अन्धकार	१९५१
छैलीलाल गुप्त	मनु की बेटियाँ	

परिशिष्ट ४

सहायक ग्रन्थ एवं पत्र-पत्रिकाओं की सूची

लेखक	ग्रन्थ
अमृतराय	नयी समीक्षा
इन्द्रनाथ मदान	प्रेमचन्द चिन्तन और कला
इलाचन्द्र जोशी	विवेचना साहित्य-चिन्तन
कृष्ण मेहता	काश्मीर पर हमला
कार्ल मार्क्स	
फ्रेडरिक एंगेल्स	कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा पत्र
किशोरलाल घ० मशरूवाला	गाँधी विचार-दोहन
कोमल कोठारी	प्रेमचन्द के पात्र
विजयदान देथा	
कैलाश प्रसाद	प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यास
गणेशन	हिन्दी उपन्यास-साहित्य का अध्ययन
गंगाप्रसाद पाण्डेय	हिन्दी कथा-साहित्य
गोपीनाथ धावन	सर्वोदय तत्त्व दर्शन
गुलाबराय	गाँधीय मार्ग
चन्द्रशेखर शास्त्री	आतंकवाद का इतिहास
चण्डीप्रसाद जोशी	हिन्दी उपन्यास समाज शास्त्रीय अध्ययन
जवाहरलाल नेहरू	हिन्दुस्तान की समस्याएँ
जे० बी० कृपलानी	गांधी : एक राजनीतिक अध्ययन
जैनेन्द्र कुमार	काम, प्रेम और परिवार
	साहित्य का श्रेय और प्रेम
	सोच विचार
ताराशंकर पाठक	हिन्दी के सामाजिक उपन्यास
दीनानाथ व्यास	अगस्त १९४२ का महान् विप्लव
देवराज उपाध्याय	कथा के तत्त्व
नन्ददुलारे वाजपेयी	आधुनिक साहित्य
	नया साहित्य नये प्रश्न
	प्रेमचन्द साहित्यिक विवेचन
	हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी
नरेन्द्र देव	समाजवाद और राष्ट्रीय क्रान्ति
	समाजवाद : लक्ष्य और साधना

नगेन्द्र विचार और विवेचन
विचार और अनुभूति
और विश्लेषणविचार
सियारामशरण गुप्त
पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी हिन्दी कथा साहित्य
लक्ष्मीनारायण टंडन हिन्दी उपन्यास म कथा शिल्प का विकास
हिन्दी उपन्यास म वर्ग भावना(प्रेमचन्द युग)
प्रभा कृष्णलाल हमारा स्वातन्त्र्य सघर्ष
प्रेमचन्द कुछ विचार
साहित्य का उद्देश्य
पुरुषोत्तमलाल श्रीवास्तव आदर्श और यथार्थ
बलभद्र जैन अहिंसा दर्शन
बलभद्र तिवारी इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास
बी० पट्टाभि गाधी और गाधीवाद
सीतारामय्या (अनु० वेदराज वेदालकार)
सक्षिप्त काग्रेस का इतिहास
ब्रजरत्नदास हिन्दी उपन्यास साहित्य
बेनीप्रसाद हिन्दू-मुस्लिम समस्या
भूपेन्द्रनाथ सान्याल मार्क्स का दर्शन
महात्मा गाधी युद्ध और अहिंसा
महेन्द्र चतुर्वेदी हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण
महेन्द्र भटनागर समस्यामूलक उपन्यास और प्रेमचन्द
महेन्द्रचन्द्र राय मार्क्सवाद और साहित्य
यशपाल गाधीवाद की शव परीक्षा
मार्क्सवाद
रगनाथ दिवाकर सत्याग्रह मीमासा
रामअवध द्विवेदी हिन्दी साहित्य के विकास की रूपरेखा
रामदीन गुप्त प्रेमचन्द और गाधीवाद
रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास
रामविलास शर्मा प्रेमचन्द और उनका युग
रघुनाथशरन जैनेन्द्र और उनके झालानी उपन्यास
रामरतन भटनागर कलाकार प्रेमचन्द
जैनेन्द्र साहित्य और समीक्षा
राजेश्वर गुरु प्रेमचन्द एक अध्ययन
रे० फ० फाक्स उपन्यास और लोक-जीवन
राधाकृष्णन स्वतन्त्रता और सघर्ष
ल० नटराजन भारत के किसान विद्रोह
विनोबा भावे साहित्यिकों से

विश्वनाथप्रसाद मिश्र — हिन्दी का सामयिक साहित्य

शशिभूषण सिंहल — उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा

शची रानी गुर्टू — प्रेमचन्द और गोर्की

शिवदानसिंह चौहान — साहित्य की समस्याएं
हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष

शिवनारायण श्रीवास्तव — हिन्दी उपन्यास

शिवरानी देवी — प्रेमचन्द घर में

शान्तिप्रिय द्विवेदी — युग और साहित्य

श्रीनारायण अग्निहोत्री — उपन्यास-तत्व एवं रूप विधान

सम्पूर्णानन्द — व्यक्ति और समाज

सीताराम चतुर्वेदी — साहित्य समीक्षा

सुख सम्पत्तिराय भण्डारी — भारतवर्ष और उसका स्वातन्त्र्य-संग्राम

सुरेशचन्द्र तिवारी — यशपाल और हिन्दी कथा साहित्य

सुषमा धवन — हिन्दी उपन्यास

हजारीप्रसाद द्विवेदी — आधुनिक हिन्दी साहित्य पर विचार
हिन्दी साहित्य

हंसराज रहबर — प्रेमचन्द जीवन और कृतित्व

हरस्वरूप माथुर — प्रेमचन्द : उपन्यास और शिल्प

त्रिभुवन सिंह — हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद

अंग्रेजी के संदर्भ-ग्रन्थ

Andrus and Mukharji — Rise and Growth of Congress in India

Bose, Subhas Chandra — Indian Struggle

Caudwell, Cristopher — Illusion and Reality
Further studies in Dying Culture

Devid Daiches — Critical Approaches to literature

Desai, A R — Social Background of Indian Nationalism

Fast, Howard — literature and Reality

Forester, E M — Aspects of the Novel